प्राचीन वार्ता-रहस्य

प्रथम भाग

सं १९९६

प्रकाशक -

श्री विद्याविभाग कांकरोली

श्रीद्वारकेशो जयति

(श्रीद्वा. ग्र. माला का पुष्प १३)

प्राचीन वार्ता-साहित्य

प्रथम भाग

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश, (व्रजभाषा)
श्रीनाथदेव' कृत संस्कृत अनुवाद एवं
आवश्यक विवरण (गुजराती) सहित

सम्पादकः—

द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख

प्रकाशकः—

श्री विद्याविभाग—कांकरोली

सं. १९९६ श्रीवल्लभाब्द ४६१

प्रास्ताविक
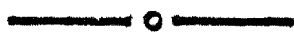
आज भारत की राष्ट्रभाषा होने का गौरव हिन्दी भाषा को दिया जा रहा है। और यह गौरव, भाषातत्त्वज्ञों से छिपा नहीं है कि व्रजभाषा के द्वारा ही सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में उसे प्राप्त हुआ है। जिस की माधुरी पर मुग्ध हो कर अपनी मातृभाषा का मोह छोडते हुए अन्य भाषा भाषी भी जिस व्रजभाषा में हृदय के उद्‌गार उन सात्विक भावों को अभिव्यक्त करते थे, जिनके द्वारा मानव जीवन की सार्थकता समझी जाती है वह राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्राण है; और इस प्राण की प्रतिष्ठा करनेवाले भगवान् जगद्‌गुरु श्री वल्लभाचार्य है।

जिस समय यवनों की उच्छृंखलता से भारतीय संस्कृति के साथ उसकी अटल धर्मभावना लुप्त होती चली जा रही थी, देश की भाषा के सिंहासन पर विदेशी भाषा एक प्रकार से चढ बैठी थी। यह पाप हमारी उन कुचली हुई आत्माओं की विवश दृष्टि में हो रहा था जिन को अमृतका सन्देश सुना कर जाग्रत, उत्थित और प्रबुद्ध करनें-वाला सं. १५३५ के पूर्व कोई महानुभाव प्रादुर्भूत नहीं हुआ था।

पाप प्रक्षालन के लिये निर्मलनीरा भागीरथी के अतिरिक्त अन्य कौन? बस भाषा के पाप प्रक्षालन के लिये भक्ति की भागीरथी प्रवाहित हुई और श्रीवल्लभाचार्य तथा उनके सुपुत्र गोस्वामि श्रीविठ्ठ-लनाथजी प्रभुचरण ने भारतीय जनता को उसमें मज्जन के लिये उद्-घोषणा कर दी। अष्टछाप की स्थापना ने धार्मिकता के अनुपान से भारतीयता को मरने से बचाया। आज हम देख रहे है हमारी भाषा,

हमारी संस्कृति, हमारा देश विषाद विपत्ति के निविडान्धकार से छुट-कारा पा कर प्रकाश की किरणों के पडने से सचेष्ट हो गया है।

द्वन्द्व परिचालन क्रम से एक समय इस के बाद वह आया जब नव शिक्षितोंनें ब्रजभाषा का विरोध किया, पर वह ववंडर असन्मूल होने से स्वयमेव शान्त हो गया।

साहित्य के पारखियोंनें अपने अध्यवसाय, दक्षता और वास्त-विक ज्ञान के सहारे ब्रजभाषा के प्रति पुनः लोगो की सद्भावना स्थापित की। और उसके अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित कर अक्षय पुण्य का उपार्जन किया।

इसी ववंडर का एक छोटा हिस्सा 'अश्लीलता का आन्दोलन' था, जिसने समस्त प्राचीन साहित्य पर हडताल पोत दी थी, चाहे वह संस्कृत का वैदिक, पौराणिक, वैज्ञानिक साहित्य हो, चाहे भाषा का। पर इसकी मीमांसा लाख चेष्टा करने पर भी न की जा सकी कि वास्तव में अश्लीलता साहित्य में अपनी क्या परिभाषा रखती है?

'घटं भिन्द्यात्, पटं छिन्द्यात्' की भावनानें इस अश्लीलता आंदोलन की हवा पा कर साम्प्रदायिक साहित्य की लहलही, हरीभरी, सत्य, शिव, और सुन्दर वाटिका पर भी चोट की, और झाडझंखडों के साथ एक ओर से उन लताप्रतानों, सुरभित गुल्मों, फलित द्रुमों को भी साफ कर डालने का 'एलान' कर दिया, जिनसे देश, धर्म, समाज का मस्तिष्क नवीन स्फुरणा की प्राप्ति कर सकता था। अस्तु

आर्य समाज के उपदेशकों की चेतावनी पा कर उठे हुए

सनातन धर्म के उपदेशकों की भांति भाषासाहित्य के प्रेमियों, पक्षपातियों, और आस्वादकों को मूर्च्छना जागृत हुई चारों ओर घोर विरोध होने लगा, पर क्रियात्मक नहीं वाचनिक, और वह भी मर्यादा की बांध तोड कर। जो सभ्य, शिक्षित समाज को उचित नहीं जँचा।

विरुद्ध आन्दोलन को दबाने के लिये रचनात्मक कार्य की आवश्यकता है और अनिवार्य यह है कि वास्तविकता को प्रकाशन में लाया जाय, जिसे देख कर विरोधी भावना यदि वह हठ मूलक नहीं है तो स्वयमेव कपूर हो जाय।

द्विदलात्मक व्रजभाषा साहित्य के गद्य पद्य पर यहां कहने की आवश्यकता नहीं है। उस पर विद्वानोंने यथेष्ट प्रकाश डाल दिया है। साहित्य की अभिरुचिने उसके पद्यात्मक साहित्य को बहुत कुछ प्रकाशित कर दिया है फिर भी अभी उतना संग्रह उपलब्ध है जिस के लिये समय, धन और कार्यकर्ता की आवश्यकता है। सूरदासजी, नन्ददासजी की अधिकांश. अधिकांश रचना को छोड कर शेष अष्टछाप के कवियों की कृतियाँ बन्धनों में बंधी हुई उन्मुख और उद्ग्रीव होने की बाट जोह रही है। न जाने कब उनको वह उन्मुक्त वात प्रकाश प्राप्त होगा?

इधर गद्य साहित्य की भी यही दशा है। अभी तक व्रजभाषा का जो साहित्य प्रकाशित हुआ है वह वार्तात्मक था, प्रकाशकों ने उसे विकृत अथवा अविकृत किसी भी रूप में प्रकाशित करनेका श्रेय प्राप्त किया. पर आवश्यकता थी अन्वेषण की। अद्यावधि मुद्रित

वार्ताओं का अधिकांश प्रकाशन जहां तक मुझे ज्ञात है किसी आदर्श पुस्तक के अभाव में ही हुआ है। जैसी कुछ भी पुस्तक संशोधित, परिष्कृत, परिवर्द्धित अथवा विकृत रूपमें प्राप्त हुई वह मुद्रित करा दी गई, उसके साथ न तो शंकाओंका समाधान करनेवाला, और न उसे प्रमाणित करनेवाला कोई अन्य साहित्य भी प्रकाशित किया गया जिस से उस के स्वरूप की रक्षा की जा सकती।

कुछ समय पूर्व हमारे मित्र भगवदीय द्वारकादासजी परिख के हृदय में श्रीवल्लभाधीश प्रभु की स्फुरणा से एसी जागृति हुई और उन्होने इस के लिये चेष्टा करने का संकल्प किया। उक्त मित्र ने भारी प्रयत्न, प्रचार एवं तत्परता से प्रस्तुत वार्ता साहित्य को नवीन रूपमे प्रकाशित करने का कार्य प्रारंभ किया। गुजराती भाषा भाषी होने पर भी व्रजभाषा के प्रति उनकी यह आस्था देख कर मुझे चकित हो जाना पडा। वास्तव में इस प्रकार की दृढ भावना वैष्णव धर्म का प्रभाव है जिसने सारे गुर्जर प्रान्त में व्रजभाषा साहित्य का, कीर्तन, वार्ता और पदों के द्वारा एक जालसा बिछा दिया है।

जब नागरी प्रचारिणी सभा, और हिन्दी साहित्य सम्मेलनने देश के विभिन्न भाषा भाषी प्रान्तो में एक हिन्दी भाषा के प्रचार की बात सोची भी नही थी, सोचना तो दूर उनका जन्म भी नहीं हुआ था उस के लगभग ३०० वर्ष पूर्व ही पुष्टिमार्गने समस्त गुर्जर प्रान्त में भाषा साहित्य का विस्तार कर दीया था, यही कारण है कि आज गुजरात में हिन्दी प्रचार की आवश्यकता प्रतीत नहीं हो रही है वह तो वहाँ इस भक्तिमार्ग के द्वारा बहुत कुछ पनप चुकी है। अस्तु

उपर कहा जा चुका है कि प्राचीन वार्ताओ प्रकाशित करने के लिये हमारे उक्त मित्र ने उत्साह के साथ कार्य शुरू किया। उन्होने न केवल उसका समस्त साहित्य ही एकत्रित किया, प्रेस कापी भी तैयार की और छपाने के लिये आर्थिक साहाय्य एकत्रित कर दिया। उन्होंनें एक प्राचीन वार्ता की (भावप्रकाश वारी) पुस्तक अन्वेषण कर प्राप्त की जिसका लेखन सं. १७५२ है। जहां तक घ्यान है इस से प्राचीन वार्ता की (भावप्रकाश वारी) पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं हुई।

चौरासी वैष्णवें की वार्ता पर श्री हरिरायजीनें भाव प्रकाश नाम से टिप्पण किया है जिसमें उसके रहस्य का उद्घाटन किया गया है, इस प्रकार वार्ता के वृत्त की पुष्टि श्रीहरिरायजी जैसे विद्वान महानुभाव के लेख द्वारा होती है।

द्वारकादासजी ने उस के साथ एक काम यह भी किया कि उन सब पर गुजराती भाषा में एक अपना स्पष्टीकरण भी लगाया और चरित्र नायकों की ऐतिहासिक जीवनी पर भी प्रकाश डालने का श्रम किया। कहने का तात्पर्य यह कि वार्ता का वास्तविक रहस्य प्रकाशित करनेका आयोजन किया गया और उस में यथा संभव त्रिविध भाव भरने की चेष्टा की गई है।

इस प्रकार छपाने योग्य तैयार पुस्तक और उसके लिये प्राप्त अर्थ साहाय्य पा कर विद्याविभाग को इस के लिये कुछ भी चेष्टा न करनी पडी, उलटे उक्त महाशयने हमे एसे ग्रन्थ के प्रकाशन का

सौभाग्य सहज ही सौंप दिया। और यह ग्रन्थ श्रीनाथदेव कृत 'संस्कृत वार्ता मणि माला' नामक ग्रन्थ के आवश्यक भाग के सहित विद्या-विभाग से द्वा० ग्र० माला के त्रयोदश पुष्प के रूप में निकाला जा रहा है। श्रीनाथदेव कृत उक्त वार्ता मणिमाला, अन्यत्र अभी तक तो अप्राप्य है उस की एक ही कापी विद्याविभागान्तर्गत सरस्वती भंडार में उपलब्ध हुई है।

श्रीनाथदेव का परिचय विशेषतया उपलब्ध नहिं होता. उन्होने इस ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार अपना उल्लेख किया है।

"इति श्रीशाचार्य वर्य पद भक्ति मता मया
कृतया वैष्णव कथा मालयात्मा प्रसीदतु ॥२५॥"

"इति श्रीविष्णुस्वामि मतानुवर्ति श्रीवल्लभ पद पद्म परा-गानुरागि महाशय मठेश विप्र श्रीनाथदेवेश संस्कृतायाँ वैष्णव वार्ता मालायाँ चतुरशीति वार्ता मणिकोत्तरं ससुमेरु पंचविंशतिमो मणिः सम्पूर्णेयं वैष्णव वार्ता माला पूवार्द्धे श्रीमतीत उत्तरार्द्धेपिसा" २०१
३७०७। ३

पुस्तक में लेखन संवत् नहीं दिया है। अन्तिम अंक पद्यांक है जिससे ज्ञात होता है कि इसमें लगभग तीन हजार सातसो सात श्लोक अनुष्टुम् है।

इन्होने अपनेको मठेश शब्दसे सम्बोधित किया है यदि मठेश और मठपति एकही पर्यायवाची शब्द है तो कहना पडेगा कि यह तैलंग ब्राह्मण और मठपति जयगोपाल भट्टके वंशज थे।

जयगोपाल भट्टने अपने रचित तैत्तरीयोपनिषद् भाष्यमें अपना परिचय इस प्रकार दिया है:—प्रथम द्वितीय श्लोकोंमे श्रीवल्लभाचार्य और श्रीगुसांईजी को प्रणाम कर आगे श्लोक में वह लिखते है:—

श्रीमद्गोकुलनाथान् श्रीमत्कल्याणराय गुरुचरणान्
नाम निवेदन दातृन् प्रणमामि मुहुर्मुहु: प्रेम्णा ॥३॥
तैलङ्ग यज्य चिन्तामणि तनयो मठपतित्व विख्यात:
जयगोपाल उपनिषद् भाष्यं वितनोतितैत्तरीयायाम् ॥४॥

इससे ज्ञात होता है कि मठपति जयगोपाल भट्ट तैलंग ब्राह्मण चिन्तामणि भट्ट के पुत्र ओर श्रीगोकुलनाथजी (च. पुत्र) तथा श्रीकल्याणरायजी के शिष्य थे, अत: उनके सम सामयिक थे।

इनके मठपति होनेसे श्रीनाथदेव के विषयमें एसा अनुमान होता है कि यह इन्ही के वंशज हों।

अन्य किसी साधनके अभाव में इनके विषय में इतनाही कहकर हमें चुप रहना पडता है×

× શ્રીનાથભટ્ટના સંબંધી મારૂં આ અનુમાન ચોક્કસ થયું છે કે:—

તેઓનો (ચીમનલાલ શાસ્ત્રીના કથનાનુસાર) કાવ્ય રચના કાલ સં. ૧૭૨૪નો છે. અને તેઓએ સંસ્કૃત મણીમાલા ૧૭૨૭ લગભગ રચેલી છે. નહિ તો શ્રીહરિરાયજીકૃત "ભાવપ્રકાશ"ની કંઈક આછી રૂપરેખા તેઓ અવસ્ય તેમની મણીમાલામાં લેત. શ્રીહરિરાયજીનો ભાવપ્રકાશ સં. ૧૭૨૯ પછી અને સં ૧૭૫૦ પહેલાં લખાયેલો છે. કારણ કે આ ભાવપ્રકાશનું નામ સં. ૧૭૨૯માં રચાયલા "સંપ્રદાયક કલ્પદ્રુમ"માં સ્પષ્ટતયા પ્રાપ્ત થતું નથી. આ શ્રીનાથભટ્ટે "દુષણોદ્ધાર" "જલભેદ વિવૃત્તી" આદિ અનેક ગ્રન્થોની રચના કરેલી છે. તે તેમના ગ્રન્થોની ઈતિશ્રી થી સમજાય છે. શ્રીનાથભટ્ટે વાર્તામાં પોતાની સંસ્કૃત

कार्य की अधिकता के भयसे और उपयोगिता की दृष्टि से सम्प्रति वार्ता रहस्य का यह प्रथम भाग ही प्रकाशित किया जा रहा है। यदि इसके द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त होगा तो अगले भाग भी अनुकूल संयोग पा कर प्रकाशित किये जावेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिये जिन धनीमानी महानुभावों ने अर्थ साहाय्य दे कर इस पुण्यकार्य में हाथ बटाया है उनके नाम सम्पादक के विवरण में दिये जा रहे हैं। जिन के अर्थ साहाय्य से कुछ कापियाँ वैष्णवो में विनामूल्य वितीर्ण की जावेगी इसके साथ हम इस बात को यहां प्रकाशित कर देना अपना धर्म समझते है कि **प्रस्तुत पुस्तक की विक्री से जो लाभ होगा वह इस के अग्रिम भागो और साम्प्रदायिक अप्रसिद्ध ग्रन्थो के प्रकाशन में ही लगाया जायगा।**

इस बात के प्रकट करने में मुझे हिचकिचाहट पैदा हो रही है कि हम जैसा चाहिये हिन्दी वार्ता को शुद्ध रूप में प्रकाशित न

વાણીને સાહિત્યિક અલંકારોથી બહુજ દુર રાખી એક સાદી સરળ અને કથાનક કરી છે. એ, તેમનું વિશેષ પાંડિત્ય સૂચન કરે છે. જેવો વિષય તેવી જ ભાષા હોય તો તે દીપી ઉઠે, તદનુસાર વાર્તાની ભાષા બહુ જ સરળ રાખી છે.

શાસ્ત્રીજીના કથનાનુસાર તેઓ અવશ્ય જયગોપાલ મઠપતિના વંશજ અથવા કુટુંબી હોવા જોઇએ. કારણકે જયગોપાલનો સમય શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીકલ્યાણરાયજીના સમકાલીન ઉપરોક્ત શ્લોકથી સિદ્ધ થાય છે. અને શ્રીનાથદેવનો જન્મ સમય લગભગ ૧૬૮૦નો પ્રાપ્ત થાય છે. એટલે અટકના અને સમયના સંબંધથી એમ અનુમાન સિદ્ધ થાય છે કે હો ન હો તેઓ મઠપતિના વંશજ જ હોવા જોઈએ.

"સંપાદક"

कर सके। इसका कारण कांकरोली के इतिहास के लिखने और छपा-नेकी मेरी व्यस्तता ही है। उक्त ग्रन्थ में जुटे रहने के कारण सच कहा जाय तो मुझे सावधानी से प्रेस कापी देखनेका पुरा अवसर भी नहीं मिला, प्रूफ संशोधनकी बात तो दूर।

इधर प्रस्तुत, और उक्त ग्रन्थ का शीघ्र प्रकाशित करना आवश्यक था अतः मेंने अपना काम अपनें जिम्मे रखकर प्रस्तुत ग्रन्थका भार श्रीद्वारकादासजीको सौंपा और उसका उनको सम्पादक बना दिया। अतः उसकी उत्तमता का श्रेय उनको और त्रुटियें, न्यूनताओं, असावधानियें का दोष मुझ पर है। फिर भी इतना कहना पडेगा कि उक्त महानुभाव इस के लिये सतत सचेष्ट रहे हैं कि मेरे उपर किसी प्रकार का दोष न आने पाये। उनकी इस सहृदयता, कार्यतत्परता एवं सौशील्य पर एक डाह पैदा होती है।

सब से बडी असावधानी, और गुजराती कम्पोजीटरो के कारण पुस्तक में त्रुटियाँ रह गई होगी फिर भी हम कहेंगे कि हिन्दी के कम्पोज करनेवालें ने अपनी दक्षता दिखलाई है जिन्हें एसा अवसर कदाचित् ही उपलब्ध होता है। पाठक उन त्रुटियें के लिये क्षमा करें और उन्हें यथास्थान सुधार ले। प्रस्तुत पुस्तक के मुद्रक महोदय के भी हम आभारी है कि उन्होने यह काम शीघ्रता और सुन्दरता के साथ पूरा किया।

सम्पादक प्रति तो हमे धन्यवाद देनेकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती, क्योंकि उन्होने जिस निष्काम कर्मयोग के भक्तिके उंचे सिद्धान्त से काम किया है वह आदरणीय और अनुकरणीय है। हमारी

दृढ धारणा है कि यदि उक्त मित्र महोदय के हृदयमें उद्विग्नता उत्पन्न करने का अवसर न दिया जाय तो वे साम्प्रदायिक साहित्य के प्रकाशन में बहुत कुछ कार्य कर सकते है, चाहिये केवल गुणग्राही।

विद्याविभाग के अध्यक्ष गो. श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (शु. सं. तृ. पीठाधीश्वर) और उपाध्यक्ष उनके अनुज उत्साहशील गो. श्री विट्ठलनाथजी महाराज एसे ही महानुभाव है. जिनके आश्रय में रहकर हमारे मित्र महोदयनें साम्प्रदायिक गंभीर ज्ञान प्राप्त करनेमें बहुत कुछ अग्रेसरता दिखलाई है। उनके विवरण से उनके परिज्ञान, खोज और गंभीरता का पता लगेगा हमे उसे यहाँ प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं है।

उनके साथ इस कार्य में अथवा यों कहिये मेरे कार्य में अभिन्नभावसे परिश्रम करनेवाले मित्रद्वय पं. पुरुषोत्तम शास्त्रीजी (शेहरा निवासी सम्प्रति वीसनगर) तथा सरस्वती भंडार विद्याविभाग के व्यवस्थापक पं. लक्ष्मीनारायग शास्त्रीजी का उपकार विस्मृत नहीं किया जा सकता। साम्प्रदायिक प्रसिद्ध पत्रकार पं. वसन्तराम शास्त्रीजी (अहमदाबाद) का सौजन्य भी भूला नहीं जा सकता जिन्होंने सम्पादक के लिये पुस्तक प्रकाशनमें प्रेस आदिकी सभी प्रकारकी सुविधाए सरल कर दी थी।

भगवान करुणा वरुणालय श्री हरि प्रभु श्री द्वारकाधीश के चरणकमल स्मरण करते हुए हम अपने वक्तव्य से विराम लेते है. जिनके अनुग्रह बलसे हमें आगे भी इस प्रकारके पुण्य कार्यों के आयोजन का सौभाग्य अधिगत होगा। ॐ शान्तिः ३ ॥

सं. १९९६
प्र. श्रावण शु. १२/९६
ता. २८-७-३९

विधेय-
प्रकाशक-**पो. कण्ठमणि शास्त्री.**
संचालक विद्याविभाग
कांकरोली.

वार्ता
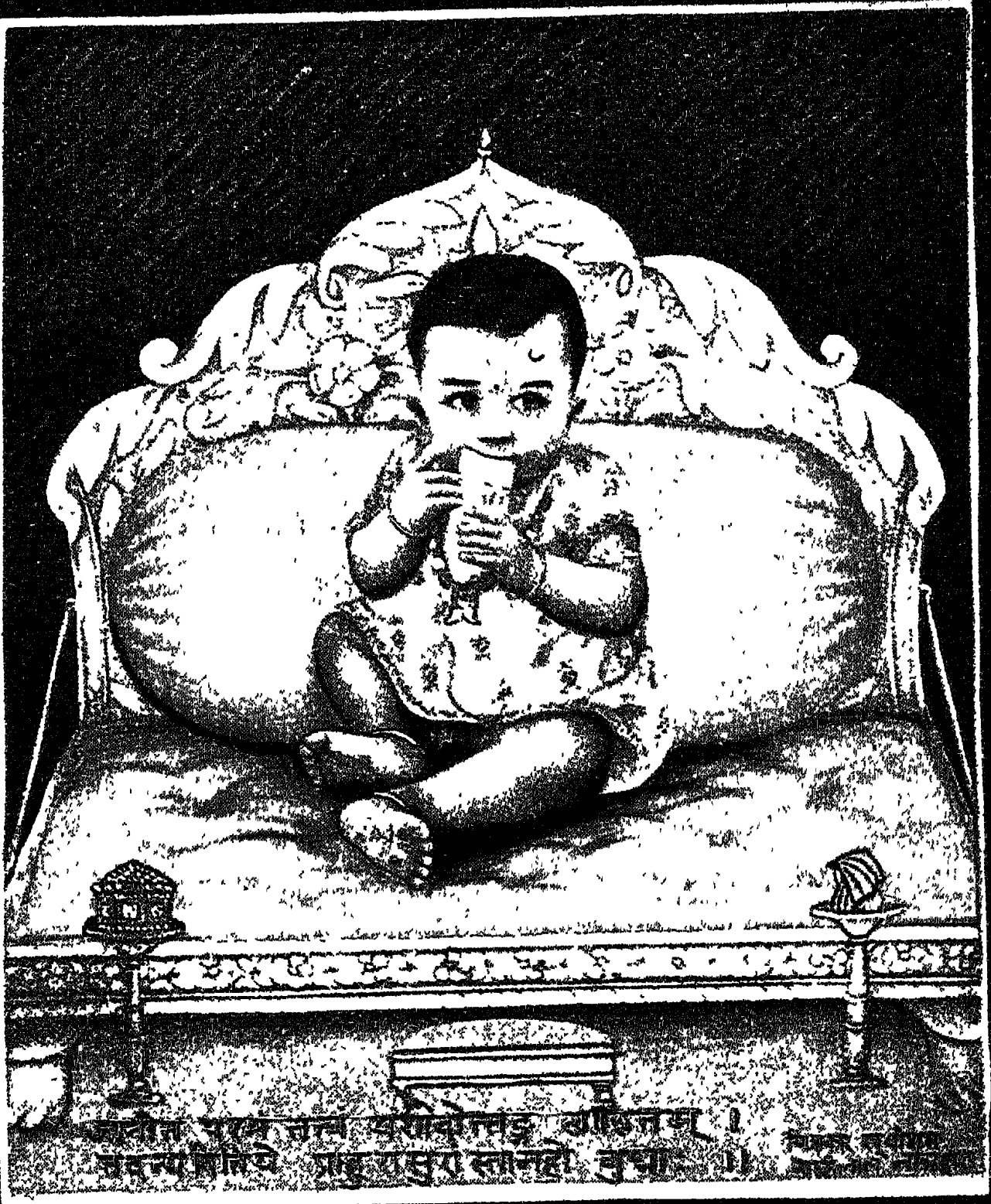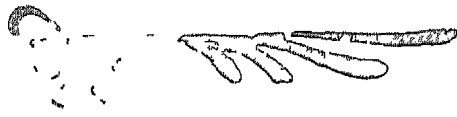
गो० श्री व्रज भूषणात्मज

चि० श्री गिरिधर गोपाल

अर्पण-पत्रिका.

श्रीवल्लभ विठलेश गुरु कृष्णरूप श्रीनाथ।
द्वारकेश अठ सखनि नमि पर्यो प्रेम के पाथ॥ १

गोपीजन अनुभव प्रथम कियो कृष्ण के साथ।
पाछें दमला आदि जिन धर्यो चरन में माथ॥ २

अपने जन हित कारने वल्लभ भूतल आय।
सेवा सुख सरसाय पुनि ता हित कुल प्रगटाय॥ ३

मेरे तो **गिरिवरधरन गोपाल** हि इक नाम।
लगन लगाई छिप गए चितवन आठो जाम॥ ४

श्रीगिरिधर गोपालजू राखो चरनन पास।
दीन पुकारत करि दया जानि आपुनो दास॥ ५

लाल ही लाल पुकारके प्रान भये बेहाल।
अब तो प्यारे दोरिके आन दिखावो चाल॥ ६

मंद हसन चितवन तनक आज्ञा देत हुँकार।
नेन भ्रकुटि कटि किंकनी मन्मथ मोहन धार॥ ७

हेमंते प्रथमे मासे प्रथम दिना के अंत।
वरद देन सुकुमारिका छोडि छिपे कित कंत॥ ८

नाथ रावरी हित कथा कहँ लगि वरनों अंत।
छिनु छिनु में पोषत रहे ज्यों मृगशीर्ष हिमंत॥ ९

श्रीयमुना गिरिराजजू व्रजमंडल सब ठोर।
अपनो जन मो जानिके रखि लेहो निज ओर॥ १०

लालन आओ हरखके सेवक अपुनो जान।
हृदय करो सीतल प्रभु बिसरो नहिं छनमान॥ ११

मंजु कछुक चिंतन कीयो अपने मन के हेत।
गिरिधरजू अपनाइयो जानि प्रेम संकेत॥ १२

अवधीके दिन जात हे जो नहिं पूरो आस।
प्रान पखेरू उडनको आतुर आवन पास॥ १३

"तिहारो"

મૂલ્ય સંબંધી કંઈક

આ પુસ્તક પ્રકાશન કાર્યમાં આજ સુધી લગભગ ૬૨૫) જેટલી રકમ વૈ. સદ્ગૃહસ્થો તરફની નિરપેક્ષ ભાવથી પ્રાપ્ત થઈ છે. તદર્થ અમોએ **પ્રત ૧૦૦૦ વિના મૂલ્યે** નિમ્નોક્ત સજ્જનોને આપવાનો નિશ્ચય કર્યો છે:—

૧ વસંત પંચમી પહેલાં જેઓનાં નામ નોંધાઈ ગયાં છે તેમને,

૨ કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગના ઉંચા દરજાની પરીક્ષામાં ઉત્તીર્ણ થનાર બાલકોને,

૩ ભગવદ્ મંડલીઓ, પાઠશાળાઓ, અને નિષ્કંચન તેમજ વિરક્ત ભગવદીયો ને,

૪ ગોસ્વામી બાલકો અને ખાસ સહાયક વિદ્વાનોને,

બાકીની એક હજાર પ્રત રૂ. ૧) થી આપવામાં આવશે. (પોસ્ટેજ અલગ) તેનાથી જે દ્રવ્ય પ્રાપ્તિ થશે તે દ્વારા બાકીના વાર્તાના ભાગો પ્રકાશિત થશે.

"શુદ્ધાદ્વૈત" ના ગ્રાહકોને પોણી કિંમતે આ ભાગ આપવામાં આવશે.

આ ભાગ અને બીજા ભાગો વિના મૂલ્યથી કોને આપવા અથવા કોને ન આપવા તે સમ્પાદકની ઇચ્છા ઉપર જ છે.

વ્યવસ્થાપક, "વાર્તા-સાહિત્ય"

विषय सूची

सं.	वार्ता	पृष्ठ
१	दामोदरदास हरसानी की वार्ता	२८
२	कृष्णदास मेघन की वार्ता	७१
३	दामोदरदास संभरवाले की वार्ता	९३
(३)	लौंडी की वार्ता	१२९
४	पद्मनाभदास की वार्ता	१३६
५	तुलसां की वार्ता	१७१
६	पारवती की वार्ता	१८५
७	रघुनाथदास की वार्ता	१८९
८	रजो की वार्ता	१९६

संस्कृत वार्ता मणिमाला

सं.	वार्ता	पृष्ठ
१	दामोदरदास हरसानी की वार्ता	१
२	कृष्णदास मेघन की वार्ता	९
३	दामोदरदास संभरवाले की वार्ता	१८
४	पद्मनाभदास की वार्ता	२९
५	तुलसां की वार्ता	४१
६	पारवती की वार्ता	४३
७	रघुनाथदास की वार्ता	४५
८	रजो की वार्ता	४६

વાર્તા સંબંધી સાદી સમજ

અમોએ આ વાર્તાઓ (૮૪ વૈષ્ણવોની) સંવત ૧૬૯૭ ના ચૈત્ર સુદિ ૫ મે શ્રીગોકુલ મધ્યે લખી ચુકાયલા પુસ્તકના આધારે છપાવી છે. આનાથી વિશેષ પ્રાચીન ગ્રન્થ હજુ સુધી અમને મળ્યો નથી. આ વાર્તાના ગ્રન્થ સાથે અમોએ અન્ય પ્રાચીન કેટલીક વાર્તાની પ્રતો પણ મેળવી છે. જ્યાં જ્યાં પાઠાંતર પ્રાપ્ત થયું છે ત્યાં ત્યાં ફૂટનોટ આપી છે.

આ વાર્તાઓ શ્રીગોકુલનાથજીએ મૂળ વ્રજભાષામાંજ રચેલી છે અને તે જેમની તેમ વ્રજભાષામાંજ અમે અહીં આપી છે. વાર્તાના ગાંભીર્યાદિથી મુગ્ધ થઇને શ્રીયુત મહેશ મહાનુભાવ શ્રીનાથભટ્ટે (दूषणोद्धार આદિના કર્તા) વિદ્વાનોના મનોરંજનાર્થ તે વાર્તાઓને સંસ્કૃતમાં શ્લોકબદ્ધ કરી છે.

આ વાર્તાઓનો સંસ્કૃત અનુવાદ તે તેની મહત્તાના દર્પણરૂપ છે. ફક્ત ચોર્યાશી વાર્તાના સંસ્કૃત અનુવાદરૂપે શ્રીનાથભટ્ટે લગભગ ૩૭૦૦ થી પણ વધુ શ્લોકો યોજ્યા છે અને તે "મણિકા" રૂપે કાંકરોલી " વિદ્યા-વિભાગ " માં વિદ્યમાન છે. આમાં કેટલાક પ્રસંગોમાં વિશેષ જાણવાનું મળતું હોવાથીજ તે ક્રમશઃ અમે દરેક વાર્તા સાથે આપેલા છે.

આ વાર્તાઓમાં કેટલું બધું સાંપ્રદાયિક અગાધ રહસ્ય સમાયલું છે તે જણાવવાને અર્થે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ દરેક વાર્તાના દરેક પ્રસંગ ઉપર મધ્યમભાષાથી* ભાવનો પ્રકાશ કર્યો છે અને તે પણ વ્રજભાષામાં ગદ્યરૂપેજ.

આ બન્ને મહાનુભાવ વિદ્વાનોના વાર્તા ઉપરના અથાગ પ્રેમ અને પરિશ્રમથી સાધારણ બુદ્ધિનો મનુષ્ય પણ સમજી શકે છે કે સાંપ્રદાયિક તમામ ગ્રન્થોમાં વાર્તાઓ કેટલી ઉપયોગી હોવી જોઈએ ?

આ ઉપર્યુક્ત કથિત સાહિત્ય ઉપરાંત અમોએ સાંપ્રદાયિક આચાર્યો અને વિદ્વાનોના સહકારથી અન્ય પણ કેટલોક મહત્ત્વપૂર્ણ

---

* ન અત્યંત સ્પષ્ટ તેમજ ન અત્યંત ગૂઢ એવી ભાષામાં રહસ્યનું ઉદ્‌ઘાટન કર્યું છે. મહાકવિ નંદદાસજીના શબ્દોમાં કહીએ તોઃ-

"नाहिन उघरे गूढ न एसे मरहट देश वधू कुच जेसें ।"

સંગ્રહ આ પુસ્તકમાં કરેલો છે. જેવો કેઃ—પ્રાચીન ઐતિહાસિક ગ્રંથોનું અત્યંત સંશોધન કરીને આ વાર્તાઓમાં રહેલો અને તેને અપેક્ષિત અન્ય ઇતિહાસ પૃથક્ રૂપે આપેલો છે. તેમજ શ્રીહરિરાયજીના સંસ્કૃત ગ્રન્થોને અહીં આપેલા શ્રીહરિરાયજીના ભાવ પ્રકાશ સાથે જ્યાં જ્યાં સંશય થાય ત્યાં ત્યાં સરખાવી તેની પ્રામાણિકતા સિદ્ધ કરી છે. જેથી લહીયાઓ પ્રત્યેનો અન્યાયપૂર્ણ અસંબદ્ધ પ્રલાપ ઘણા અંશમાં દૂર થાય છે. અને વાર્તાઓમાં ઉત્પન્ન થતા સંદેહોના નિવારણાર્થે શ્રીઆચાર્યજીના, શ્રીગુસાંઈજીના, તેમજ અન્ય ગ્રન્થોનાં પ્રમાણો આપેલાં છે. વળી અમોએ આ વાર્તાઓનું ઈતિહાસ, તત્ત્વ અને રસ એમ ત્રણે દૃષ્ટિથી યથાધિકાર આધુનિક અલ્પબુદ્ધિ વાંચકોને પણ ઉપયોગી થઇ પડે તે હેતુને ખાસ લક્ષ્યમાં રાખી પરમ્પરાગત પ્રાપ્ત સંકલન કર્યું છે. જેથી દુરાગ્રહથી રહિત અન્ય કોઈ પણ વ્યક્તિ વાર્તા ઉપર આક્ષેપ કરવાની ધૃષ્ટતા નહિજ કરે.

"વાર્તા" અને "ભાવપ્રકાશ" બન્ને ક્રમશઃ શ્રીગોકુલનાથજી તથા શ્રીહરિરાયજી કૃત છે તે નિર્વિવાદ છે. તેના પ્રમાણરૂપે તેની અતિ વિખ્યાતિજ સંતોષજનક છે. તો પણ અન્ય પ્રમાણો અહિં આપીએ છીએઃ—

એક તો એ પ્રમાણ કે ઉપર્યુક્ત બન્ને ગ્રન્થોની સેંકડો લિખિત પ્રતિઓ અતિ પ્રાચીન પ્રાપ્ત થાય છે અને તેમાં "શ્રીગોકુલનાથજી-રચિત" "શ્રીહરિરાયજીકૃત" એવા લેખો પ્રાપ્ત થાય છે.

અમે અત્રે આપેલા શ્રીહરિરાયજીના ભાવપ્રકાશ નાં પ્રાચીન લિખિત પુસ્તકો ઘણી જગ્યાએ અમારા જોવામાં આવ્યાં છે જેવાં કે પાટણ, અમદાવાદ, ડભોઈ, ગોકુળ, નાથદ્વારા, કાંકરોલી, જતીપુરા ઇત્યાદિ સ્થળોમાં.

અમારી પાસે જે પ્રત છે, તે સં. ૧૭૫૨ માં લખાયલી છે અને તે શ્રીહરિરાયજીના સમયનીજ છે. કારણ કે શ્રીહરિરાયજીની ભૂતલ સ્થિતિ સં. ૧૭૭૨ સુધીની પ્રસિદ્ધ છે. અતઃ આ પ્રત અત્યંત પ્રામાણિક ગણી શકાય. આ ગ્રન્થ અમને પરમ ભ. મહાનુભાવ

ગોવિંદદાસ (શ્રીનાથદ્વારાવાળા) બાવા પાસેનો પ. ભ. જદુનાથદાસ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલો છે. તેમજ આ ગ્રન્થને નિત્યલીલાસ્થ તિલકાયિત શ્રીગોવર્ધનલાલજીએ પણ અવલોકીને પુષ્ટ કર્યો છે. જેથી આ ગ્રન્થની પ્રમાણિકતા વિષે વધુ કહેવું નિરર્થક છે. આવીજ એક પ્રતિ સં. ૧૭૫૨ ની લખાયલી શ્રીગોકુલના પરમ ભગવદીય શ્રીયુત મુખીયાજી ગૌરીલાલજી પાસે પણ અમે જોઈ છે. તેમાં એક વિશેષતા એ છે કે દરેક પ્રસંગોનાં સુંદર ચિત્રોનો પણ તે ગ્રન્થમાં સમાવેશ કરેલો છે. પ્રત દર્શનીય છે.

આ "ભાવપ્રકાશ"ની લેખનશૈલી શ્રીહરિરાયજીની સંસ્કૃત ગ્રંથોની રચના શૈલીને મળતી જ આવે છે. શ્રીહરિરાયજી ગહન વિષયો સંબંધી ગ્રન્થો રચવામાં પ્રથમ પૂર્વપક્ષ કરીને પછી સ્વયં તેનો નિરાસ કરે છે. (જુઓ શ્રીહરિ. કૃત નિષ્કામ લીલા આદિ ગ્રન્થો) તેમ અહીં પણ ઘણી જગાએ પૂર્વપક્ષ (સંદેહ) સ્વયં કરી પછી તેનું સમાધાન પણ આપ સ્વતઃ જ કરે છે.

આ શૈલી પણ આપના "ભાવપ્રકાશ" માટે એક સબલ પ્રમાણ છે. અને ત્રીજું પ્રમાણ ઉપરોક્ત વલ્લભજી મહારાજનું ઘોળ છે. ચોથું પ્રમાણ ભાવપ્રકાશ સાથે શ્રીહરિ૦ના સંસ્કૃત ગ્રંથોની એકવાક્યતા છે. (જુઓ દામો૦હર૦ની વાર્તા પાન ૫૨)

"વાર્તા" સંબંધી અન્ય પ્રમાણ "સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમ" જે સં. ૧૭૨૯માં શ્રીહરિરાયજીના શિષ્ય વિઠ્ઠલનાથ ભટ્ટે રચેલો છે, તેમાં આ પ્રમાણે છેઃ—

"वल्लभविट्ठल वारता, प्रगट कौन नृपमान" ॥ ३० ॥ (पान १४१).

સૃષ્ટિના પ્રારંભથી જ દૈવી અને આસુરી એમ બે પ્રકારના જીવોની ઉત્પત્તિ જોવામાં આવે છે. એટલે ઉત્તમોત્તમ દૈવી સંપત્તિવાળી વસ્તુઓને આસુરી દુરાગ્રહી પુરૂષો હીન બતાવે તો તે ઉપેક્ષણીય જ છે. પરંતુ દેખાતા દૈવી પુરૂષોજ આસુરાવેશી થઇને પોતાની દૈવી સંપત્તિને અસભ્ય ભાષાથી સર્વ સમક્ષ તિરસ્કાર કરે ત્યારે તો તે કોઈ પણ સહૃદય પુરૂષને અસહ્ય લાગ્યા વિના રહે નહિ જ.

એવાંજ અનેક કારણોને લઈને અમોએ સર્વ મહાનુભાવોના સહકારથી આ કાર્ય ઉઠાવ્યું છે કે સાંપ્રદાયિક વ્રજભાષાનું ગદ્યપદ્યાત્મક સાહિત્ય પ્રાચીન કાળની શૈલીથી લખાયેલું હોવા છતાં તે આજ પણ ધાર્મિક અને ઐતિહાસિક ક્ષેત્રોમાં કેટલું બધું ઉપયોગી તેમજ પ્રમાણિક છે તે અન્ય તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાય સાથે જનસમૂહ સમક્ષ સુરક્ષિત રૂપથી મુકવું

આ કાર્યમાં દ્રવ્યની અત્યંત અપેક્ષા રહેલી છે. માટે સંપ્રદાય અને શ્રીઆચાર્યચરણમાં મમતા રાખવાવાળા સદ્ગૃહસ્થો, શ્રીમદ્‌-આચાર્યચરણના જીવનચરિત્રરૂપ આ ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષાસાહિત્યની નિષ્કલંકતા પ્રકટ કરી, બાહ્યાભ્યંતર પ્રહારકોનો સંયુક્ત સામનો કરવા કટિબદ્ધ થાવ; અને યથાશક્તિ તનુજા વિત્તજા સેવા ઉઠાવો એ નમ્ર પ્રાર્થના કરી હું અહિં વિરમું છું.

વાર્તામાં ત્રણ જન્મ કહ્યા છે તે આ પ્રમાણે સમજવાઃ—

ત્રણ જન્મની સમજ. શરણે આવ્યા પહેલાંની જે સ્થિતિ તે એક જન્મ. દૃષ્ટાંતરૂપે ગાયત્રી પ્રાપ્ત કર્યા વિનાનો સંસ્કારરહિત એક બ્રાહ્મણનો બાલક. આ જન્મ ભૌતિક જન્મ તરીકે ઓળખાય છે—

શરણે આવ્યા પછીની જે સ્થિતિ તે બીજો જન્મ. અને તે આધ્યાત્મિક જન્મ તરીકે ઓળખાય છે. કારણ કે તેમાં ભાવનાનું સ્વરૂપ (વૈષ્ણવત્વ) બિરાજે છે. દૃષ્ટાંતરૂપે ગાયત્રીમંત્રને પ્રાપ્ત થયેલો બ્રાહ્મણ, તેમાં બ્રહ્મત્વપણાની સ્થિતિ રહે છે. ત્રીજો જન્મ મૂલભૂત જે આત્મારૂપ છે અને તેજ ભાવરૂપ હોવાથી તે આધિદૈવિકરૂપ છે. આ પ્રકારે ત્રણ સ્વરૂપ શ્રીહરિરાયજીએ કહેલાં છે. તે સમજવા પુરતુંજ અમે વાર્તામાં કેટલીક જગે તે સ્પષ્ટરૂપે આપ્યું છે.

આ આધિદૈવિક ભાવરૂપ આત્માની સત્તાને અનુસારજ આધ્યાત્મિક અને આધિભૌતિકમાં ક્રિયાઓ આદિની સ્થિતિ રહેલી છે. (વિશેષ જુઓ વાર્તા–રહસ્ય પાન ૭.)

“સમ્પાદક”

॥ શ્રીહરિ: ॥

—:ઉપકાર-સ્મરણ:—

કૃપાપીયૂષપારાવાર શ્રીમદ્ ગોસ્વામી શ્રી ૧૦૮ તૃતીય પીઠાધીશ્વર **શ્રીવ્રજભૂષણલાલજી મહારાજ** અને આપશ્રીના અનુજ ગોસ્વામી શ્રી ૧૦૮ **શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી મહારાજશ્રીનો** ઉપકાર, આ વાર્તા-સાહિત્યના નૂતન ઐતિહાસિક પ્રકાશન કાર્યથી, સમગ્ર વૈષ્ણવ સૃષ્ટિમાં અને ઇતિહાસજ્ઞોમાં સદાય અવિસ્મરણીય રૂપે રહેશે જ.

આપશ્રીની હાર્દિક કૃપા અને સર્વ પ્રકારની સહાયતાથી જ આ કાર્ય સફલ થયું છે અને આગલ ઉપર પણ થશે જ, એ કહ્યા વિના રહી શકાતું નથી.

સમગ્ર સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં, આપશ્રીની જ કૃપાથી સિદ્ધ થયેલ આ વાર્તાસાહિત્યના નૂતન ઐતિહાસિક પ્રકાશન કાર્યદ્વારા ઇતિહાસજ્ઞો, સાંપ્રદાયિક વિદ્વાનો અને ભાવુકોમાં પણ પુષ્ટિ સંપ્રદાયના ભાષા-સાહિત્ય પ્રત્યે પુનઃ શ્રદ્ધા નવપલ્લવિત થઈ છે, તે, આ પુસ્તકોમાં આવેલા અભિપ્રાયોથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે.

આપ શ્રીમાન શ્રીસુબોધિનીજી આદિ સંસ્કૃત સાહિત્યના પ્રખર જ્ઞાતા હોવા ઉપરાંત સાંપ્રદાયિક ભાષાસાહિત્ય તરફ પણ આપશ્રીને પૂર્ણ પ્રેમ છે. આપશ્રીનું તો એટલે સુધી મન્તવ્ય છે કે આજકાલ ભાષાસાહિત્યથી જ સંપ્રદાયનો પ્રચાર સારી રીતે થઈ શકે છે, કેવલ સંસ્કૃત સાહિત્યથી નહિ જ.

આપશ્રીને કીર્તન ઉપર તો એટલી બધી પ્રીતિ છે કે આપશ્રી સ્વયં પ્રાચીન પુસ્તકોના આધારે કીર્તનોનું યથાર્થ સંશોધન કરે છે. (જે હવે પછી પુસ્તકાકાર રૂપે બહાર પાડવામાં આવશે) આપશ્રી અન્યની માફક પ્રસિદ્ધિના ઉપાસક નથી. આપશ્રી પ્રાચીન સેવા-

પ્રણાલી અને સંપ્રદાયની પ્રાચીન પરિપાટીના સંરક્ષક છે. તેમજ આપશ્રીની બુદ્ધિ એટલી તીવ્ર છે કે દ્વિવિધ સાહિત્યમાં રહેલા વિરોધાભાસનો, સંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તો અને વાર્તાના દૃષ્ટાંતો દ્વારા સહેજે પરિહાર કરી બન્ને પ્રકારના સાહિત્યના આશયને શુદ્ધ રૂપમાં સમજાવે છે. આપશ્રી ઇતિહાસના પ્રખર જ્ઞાતા હોવાથી અનેક યુક્તિઓ દ્વારા વાર્તા,કીર્તનો, પરંપરા પ્રાપ્ત પ્રણાલી, અને રીતભાત આદિની એકવાક્યતા કરી સંપ્રદાયના ભાષાસાહિત્યની ઐતિહાસિકતા બહુજ સુંદર પ્રકારે સિદ્ધ કરી આપે છે.

આપશ્રી તો એવું આશ્ચર્ય પ્રકટ કરે છે કે વાર્તાઓમાં સ્પષ્ટ રૂપે રહેલો ઇતિહાસ અને સિદ્ધાન્ત પણ વિરોધકર્તાઓને કેમ દેખાતો નથી? વાર્તામાં એવા અનેક પ્રસંગોનો ઉલ્લેખ છે કે જેનું ઐતિહાસિક અસ્તિત્વ આજ પણ વિદ્યમાન છે; દૃષ્ટાંત રૂપેઃ—બેઠકો, કીર્તનો, વસ્તુઓ, વંશજો, પ્રચલિત ગાથાઓ, રીતભાત, હક્ક, જાગીરો, અને 'પંચમહાલ' આદિ નામોની બોધાણી. વાર્તાની સત્યતામાં આટલા બધા સર્વમાન્ય પુરાવાઓનું આજ પણ અસ્તિત્વ હોવા છતાં વાર્તા ઉપર આક્ષેપ કરનારાઓને વાર્તામાં અશ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તે ખરેખર આશ્ચર્યજનક છે. તેથી તેઓની બુદ્ધિ કેવા પ્રકારની હશે? તે સમજાતું નથીજ.

આપશ્રીએ આ કાર્યમાં દ્રવ્યાદિ અનેક પ્રકારની ગુપ્ત સહાયતાથી જે આગલ પડતો ભાગ લઈ ભાષાસાહિત્યને ઉત્તેજન આપ્યું છે તે માટે હૂં સમગ્ર વૈષ્ણવ સૃષ્ટિ તરફથી આપનો અંતઃકરણ પૂર્વક ઉપકાર માનું છું.

આપશ્રી તરફથી અનેક વખતે આ કાર્યના અંગે કાંકરોલીથી અમદાવાદ આદિ સ્થળોએ જવામાં રેલ્વેભાડા આદિનું ખર્ચ પોતાના પ્રાઇવેટ ખર્ચમાંથી આપી આ કાર્યમાં પોતાનો અદ્વિતીય ઉત્સાહ છે, એમ સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે. તે માટે સર્વ ભાષાસાહિત્યના પ્રેમીયો આપશ્રીના પૂર્ણ રૂણી છે. અસ્તુ.

કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગાધ્યક્ષ અને ઉપાધ્યક્ષનો ઉપકાર સ્મરણ કર્યા બાદ આ કાર્યને નવચેતન અર્પનાર, ભાષાસાહિત્યના પૂર્ણપ્રેમી

અને પક્ષપાતી મારા પરમમિત્ર કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગના સંચાલક શ્રીયુત **કણ્ઠમણિજીનો** ઉપકાર તો અગ્રસ્થાને જ રહેશે.

જો સાચું કહીએ તો મારા આ વાર્તા-સાહિત્ય પ્રકાશનના વિચાર ને સમ્પૂર્ણ ટેકો આપી તેઓએજ આ કાર્યને નવચેતન આપ્યું છે. તેમાં જરાય શંકા નથી. વિદ્યાવિભાગાન્તર્ગત સરસ્વતી ભંડારમાં સંગ્રહિત હસ્તલિખિત ૬૦૦૦ ઉપરાંત પ્રાચીન પુસ્તકોના અવલોકનનો સુઅવસર તેઓએ શ્રીમાનોની આજ્ઞાથી મને આપ્યો. તેમજ વિદ્યાવિભાગના નામથી દ્રવ્ય પ્રાપ્તિ અર્થે રસીદબુક પણ આપી.આથી આ કાર્ય ત્વરીત અને સુગમ થયું. તદુપરાંત તેઓએ સંશોધન આદિ અનેક પ્રકારથી મને આ કાર્યમાં નિઃસ્વાર્થ રૂપે મદદ કરી. જો કે એમનું સ્વાસ્થ્ય બીલકુલ અસ્વસ્થ હતું તેમજ વિદ્યાવિભાગના કાર્યનો બોજો પણ તેમના માથે અત્યંત હતો છતાં પોતાના અમૂલ્ય સમયનો ભોગ આપી આ કામમાં જે પૂર્ણ ઉત્સાહ દેખાડયો છે તેને માટે હું તેમનો ઉપકાર કદી ભુલી શકું તેમ નથી. અસ્તુ.

પુરોહિત પંડિતપ્રવર શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી **લક્ષ્મીનારાયણજી** (સરસ્વતી ભંડારના વ્યવસ્થાપક)નો ઉપકાર, હું તેમજ સંસ્કૃત સાહિત્યના શોખીનો કદી ભૂલશે નહિજ. તેઓએ શ્રીનાથદેવ કૃત સંસ્કૃત વાર્તામાલાને શુદ્ધ કરવામાં બહુજ પરિશ્રમ લીધો છે. પ્રસ્તુત (ઉપસ્થિત) સંસ્કૃત વાર્તામાલાની એકજ પ્રતિ અમને પ્રાપ્ત હોવાથી અને તે પણ અશુદ્ધ હોવાથી તેના સંશોધનનું કાર્ય અત્યંત મુશ્કેલ હતું. તે નિર્વિવાદ જ છે. તે કાર્ય પંડિતજીએ અનેક પ્રતિકૂળ સંયોગોમાં પણ પૂર્ણ કર્યું અને સંસ્કૃત સાહિત્યના શોખીનોના હાથમાં પ્રસ્તુત વાર્તામાળા સુંદરતાથી પરિપૂર્ણ બનાવી અર્પી તે બદલ તેમનો ઉપકાર અવિસ્મરણીય જ છે.

શ્રીયુત્ શાસ્ત્રીજી **વસંતરામજીનો** ઉપકાર જેટલા મનાય તેટલો ઓછો જ છે. કારણ કે આ કાર્યમાં તેમણે જેટલો ફાળો નિઃસ્વાર્થ રૂપે આપ્યો છે, તેટલો અન્ય કોઇએ નથી આપ્યો. શ્રીયુત્ શાસ્ત્રીજીએ

શારીરિક અસ્વસ્થ્ય હાલતમાં પણ સ્વયં પગે ચાલી પ્રેસ અને કાગળ વિગેરેની સરળતા પ્રાપ્ત કરાવી આપી, તેમજ પ્રેસ કોપીને શુદ્ધ કરી, પ્રુફ સંશોધન કરી, પોતાની ભાષાસાહિત્ય તરફની તીવ્ર લાગણી દેખાડી આપી. તેમની આ અસાધારણ પ્રવૃત્તિ અને મહેનત જોઈને હું ખરેખર ચકિતજ થયો. તેમણે અનેક પ્રકારે સલાહ આદિથી તેમજ શુદ્ધાદ્વૈતમાં વિનામૂલ્ય આ સંબંધી જાહેરખબરો અને લેખો આદિને સ્થાન આપી આ કાર્યના પ્રચારમાં પણ સારો ભાગ આપ્યો છે. યદિ ઉપરોક્ત શાસ્ત્રીજીનું અન્ય વિદ્વાનો અનુકરણ કરે તો આજ પુષ્ટિમાર્ગનું ભાષાસાહિત્ય પુનઃ જનસમૂહમાં ગૌરવાંકિત થાય તે નિઃસંદેહ છે. શાસ્ત્રીજીના શ્રમનો અને ભાષાસાહિગ્ય ઉપરના પ્રેમનો બદલો અમે જરા પણ આપી શકીએ તેમ નથી જ. તેથી અમે અહીં કેવલ તેમના ઉપકારનું સ્મરણ કરીને જ સંતોષ માનીશું.

શ્રીયુત **રમાનાથજી**, શ્રીયુત મુખીયાજી **ગોકુલદાસજી વિદ્યા-સુધાકર** શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી **ચિમનલાલજી** અને શ્રીયુત **પુરૂષોત્તમ શાસ્ત્રીનો** પણ ઉપકાર માનવો અસ્થાને નહિ જ ગણાય. ઉપરોક્ત મહાશયોએ અમને આ કાર્યમાં સલાહ સંશોધન અને અભિપ્રાયાદિ દ્વારા ઘણી મદદ કરી છે. તદર્થ તેમનો ઉપકાર માનવો પણ આવશ્યક જ છે.

આ ઉપરાંત વાર્તાપ્રેમી **શ્રીગોવિંદલાલજી** બાવાસાહબ (સુરત) તથા **શ્રીદ્વારકેશલાલજી** વિગેરે અભિપ્રાયદાતાઓનો ઉપકાર માનું છું. સદ્‌ગત થયેલા વાર્તાપ્રેમીઓનું સ્મરણ કરવું પણ અત્રે આવશ્યક હોવાથી તેમના નામનો પણ હું અહીં ઉલ્લેખ કરૂં છું. શ્રીતિલકાયત **શ્રી ગોવર્ધનલાલજી**, ચિ. **દામોદરલાલજી** તેમજ શ્રીનાથદ્વારા નિવાસી પ. મ. ભ. **શ્રીગોવિંદદાસ બાવા** અને પ. ભ. **જદુનાથદાસ** જેમની કૃપા દ્વારા મને વાર્તામાં પ્રેમ થયો અને યત્કિંચિત તેના રહસ્યનું દર્શન થયું તેમજ ૧૭૫૨માં લખાયલું હસ્તલિખિત શ્રીહરિરાયજીના

ભાવપ્રકાશ વાળું પુસ્તક પ્રાપ્ત થયું છે તેથી તેમનો ઉપકાર માનવો અતિ આવશ્યક છે.

શ્રીયુત મગનલાલ શાસ્ત્રી, શ્રીયુત **કલ્યાણજી** શાસ્ત્રી એવં શ્રીયુત **તેલીવાળાનું** સ્મરણુ પણુ અસ્થાને નહિ જ ગણાય.

આ કાર્યમાં અર્થપ્રદાન કરવાવાળા સદ્‌ગૃહસ્થોનો ઉપકાર માની તેમના નામોનો ઉલ્લેખ કરીએ છીએ:—

૧૦૦) શેઠ ચીમનલાલ મોતીલાલ પાટણ.

૧૦૧) શેઠ કાળીદાસ દ્વારકાદાસ ભરતીયા સુરત.

૧૦૧) બાઈ નર્મદા તે શેઠ ચીમનલાલ ખેમચંદની વિધવા; તેના ટ્રસ્ટીઓ શેઠ રણછોડદાસ કૃષ્ણારામ તથા શેઠ ડોસાભાઈ વિઠ્ઠલદાસ વડનગર.

૬૦) શેઠ બલદેવદાસ હરિવલ્લભદાસ સિદ્ધપુર.

૫૧) શેઠ વાડીલાલ દલસુખરામ વડનગર.

૫૧) શેઠ ગોવિંદલલા ચુનીલાલ અમદાવાદ.

૧૦) મોતીલાલ લલ્લુભાઈ વિસનગર.

૧૦) ચુનીલાલ ભાઇચંદ વિસનગર.

૨) જેકીશનદાસ વિઠ્ઠલદાસ બોરડી.

૨૫) નાગોરી મોતીબેન અમદાવાદ

૨૫) શેઠ મણીલાલ લલ્લુભાઈ મણીયાર વિસનગર.

૨૫) શાસ્ત્રી પુરૂષોત્તમ પિતાંબરજી વિસનગર.

૨૫) ડોસાભાઈ વિસનગર.

૧૫) નર્મદાબાઈ તે નાનચંદ લીલાચંદની વિધવા હા. અમૃતલાલ. વિસનગર

૫) મંગલદાસ ખીમચંદ માતર.

૫) રણછોડદાસ લક્ષ્મીદાસ શ્રીગોકુલ.

૫) વિઠ્ઠલદાસ મોતીચંદ માંગરોલ.

૫) દલસુખભાઈ મોતીલાલ ડભોઈ.

૨) વલ્લભદાસ નરોતમદાસ પેટલાદ.

૧) જમનાદાસ મણીલાલ ભગતવાળા ડભોઈ.

આ ઉપરાંત હાલોલ અને ડભોઈ વિગેરે સ્થળોના ગ્રાહકોનો પણ ઉપકાર માની હું અહીં વિરમીશ.

ત. ક. આ કાર્યમાં દ્રવ્યની મદદ કરાવનારાઓનાં શુભ નામોઃ– શ્રીયુત અધિકારીજી **લજ્જાશંકરજી**, મથુરા. શ્રીયુત **શેઠ ડાસાભાઈ વિઠ્ઠલદાસ**, વડનગર. પ. ભ. **ભાઈ ચંદુલાલ વિઠ્ઠલદાસ**, પાટણ. પ. ભ. **ભાઈ જયન્તીલાલ મગનલાલ**, અમદાવાદ. અને શ્રીયુત **તંત્રી " અનુગ્રહ "** અમદાવાદ.

આ ઉપરાંત સ્મૃતિભ્રમથી રહી જતા અન્ય ગૃહસ્થોનો પણ અંતઃકરણ પૂર્વક ઉપકાર માનું છું.

છેવટની એક વાત રહી જાય છે તે એ કે **વાર્તા-સાહિત્ય પ્રતિ ગંદા આક્ષેપ અને તિરસ્કાર કરનારા ઈશ્વર કોટીમાં ગણાતા બૌદ્ધાવતારો અને જીવ કોટીના ચિદ્રુપાદિનો પણ ઉપકાર અત્રે માનવોજ રહ્યો.** કેમકે તેમના આક્ષેપોથી પ્રેરાઈ આ કાર્ય જલ્દી પ્રારંભાયું.

" સંપાદક "

प्राचीन वार्ता-रहस्य का शुद्धिपत्रक.

कृपया नीचे लिखे शब्दों को सुधार कर पढ़िये

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति	
द्वादशो वै	द्वादशाङ्गोह वै	५	२३	
શ્રીમહાજી	શ્રીમહાપ્રભુજી	૧૨	૧૫	
कीए	किये	१५		यहाँ और आगे के पत्रों में भी
दीए	दिये	,,		
लीये	लिये	,,		
हे	हैं	,,		
हे	हैं	,,		
चोरासि	चोरासी	,,		
दूरावनो	दुरावनो	,,	२१	
दैवि	दैवी	१६		यहाँ और अन्यत्र भी
जानीयो	जानियो	,,		
राजसि	राजसी	,,		
तामसि	तामसी	,,		
तिनों	तीनों	१७	१	
शेठ	सेठ	२८	६	अन्यत्र भी
लेईगो	लेइगो	,,	१२	
काढी	काढि	,,	१४	
ऊठी	उठि	,,	१९	
तीन्यों	तीनों	२९	५	
तिन्यों	,,	,,	७	
ईनकों	इनकों	,,	८	
भाईन	भाईननें	,,	११	
‘હરિશરણી’	‘હરષરાની’	૩૦	૬	

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति	
७४	७६	,,	२२	
જમૂહ	સમૂહ	૩૧	૧૧	
में	मैं	,,	१९	
कीयो	कियो	३७	१७	अन्यत्रभी
સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મ-સંબંધ કરાવ-વાનું	સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ કરાવ્યું અન્યથા બ્રહ્મ-સંબંધ કરાવવાનું	૪૩	૧૮	
महाप्रमू	महाप्रभु	४५	८	अन्यत्रभी
करी	करि	४६	५	
चुकि	चुकी	,,	१२	
बहुरी	वहुरि	४९	१	अन्यत्रभी
वीनती	विनती	,,	१६	
लिजियो	लाजियो	५४	२	
शके	सके	५५	१०	
लेहू	लेहु	५६	१	
तिसरे	तीसरे	५८	१	अन्यत्रभी
सहायता सु	सहायतासूं	६०	१९	
लगी	लगि	६२	१०	
भगवद्‌लीला	भगवल्लीला	,,	१३	
निचे	नीचे	६३	५	
थांभि	थांभी	६९	११	
मूढे	मूढैः	७०	३	
पांच दिन	पांच दिन भये	७२	३	
कहि	कही	७२	९	
कीया	कीयो	६८	२३	

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति	
૧૪૭૬	૧૫૭૬	૯૦	૨૩	
जब	अब	९३	१७	
તુલસીકૃત	૦	૯૮	૨૩	
सहचरि	सहचर	१००	१४	
समांतिष्ठ	समातिष्ठ	१०१	२५	
लोंडि	लोंडो	११४	१	
स्त्रि	स्त्री	१२४	१३	
महोडो	म्होडो	१२४	१६	
सगरी	सिगरी	१२५	१६	अन्यत्रभी
दासकुं	दासकूं	१२६	७	
लाकिक	लौकिक	१२८	१६	
ગાદ્ય	વાદ્ય	૧૪૩	૧૨	
लव्धो प्रच्चारकैः	लव्धोपचारकैः	१४३	२१	
स	सर्व	१४६	६	
लुटि	लूटि	१४८	९	
रीन	रिन	१५१	१९	
રાખ્યવો	સરખાવો	૧૫૫	૧૪	
सखि	सखी	१७१	२१	अन्यत्रभी
पांच	पांव	१८५	१७	
आधिदैनीक	आधिदैविक	१९०	४	
ના૬૨૭	ના૨૬૭	૨૦૩	૧૭	
प्रेमरुपा	प्रेमरूपा	२०३	१९	
वेद कह्यो विधि निषेध को	वेद कह्यो श्रीहरि मुख निरखत वि- धि निषेध को	२०३	२४	

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
नैरोक्ष्यं	नैरपेक्ष्यं	२०५	२३
सर्वमाबो	सर्वभावो	,,	२३
निरक्षेप	निरपेक्ष	२०४	२
कर्मीभ्यां	कर्माभ्यां	२०६	१३
आचार्य	आचार्य	२०७	१८
अरोगते	अरोगतेथे	,,	नोट में
कीसी	किसी	,,	नोट में
हानी नहिं होतो	हानि नहीं आती	,,	नोट में

संस्कृत वार्ता मणिमाला

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
प्रतिबोधितः	प्रतिरोधितः	७	२०
प्रकाशयत्य	प्रकाशयत्ययं	१३	३
कुप्णदास	कृष्णदास	१४	२
प्रसादितुम्	प्रसादितम्	१६	५
दामोदरण	दामोदरेण	२१	३
द्लानि	दलानि	,,	६
मूष्पापि	मूष्मापि	२२	१३
प्रसदान्नं	प्रसादान्नं	२५	२
(भडली)	भंडिलः भड्डलिः (भाषा)	२७	१३
अथकैदो	अथैकदो	२८	१५
श्रत्वेति	श्रुत्वेति	२९	१३
रत्य	रेत्य	३१	३

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
तद्व्यापार	तद्व्यापार	३३	२
हार्दैं	हार्दैं	,,	१७
श्रतवान्	श्रुतवान्	३४	१८
कान्यकब्ज	कान्यकुब्ज	३५	६
पसे	परो	३५	१७
प्रस्यहं	प्रत्यहं	३६	१०
व्सासो	व्यासो	३७	१९
रोगं निवृत्तम चिरादिति	गमिष्यत्यचिराद्रोगइति	४४	१२
मद्भ्यहम्	मद्भ्यहम्	४६	१२

श्रीद्वा. ग्रन्थमालाना १३ मा पुष्प तरीके

प्राचीन वार्ता-रहस्य

श्री गिरधर गोपालना स्मरणार्थे

प्रत. १०००

वैष्णवोने विनामूल्य
अर्पण करी छे.

द्वारकादास

શ્રીદ્વારકેશો જયતિ

પ્રસ્તાવના

"વાર્તા-સાહિત્ય"

(ભૌતિક દૃષ્ટિથી)

પુષ્ટિસંપ્રદાયમાં દ્વિવિધ સાહિત્ય ઉપલબ્ધ થાય છે. એક પ્રમાણાત્મક અને બીજું પ્રમેયાત્મક. અથવા બીજી રીતે કહીએ તો એક શબ્દપ્રમાણવાળું સિદ્ધાન્તાત્મક અને બીજું આપ્ત પ્રમાણવાળું ફલાત્મક સાહિત્ય.

પુષ્ટિમાર્ગનું દ્વિવિધ સાહિત્ય

શબ્દપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમાં સિદ્ધાન્ત અને તેને પ્રાપ્ત કરવાના વિધિ નિષેધ આદિ કર્તવ્યનો સમાવેશ રહેલો છે, જ્યારે આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમાં લોકવેદાતીત શ્રીકૃષ્ણ અને તેના અલૌકીક આસ્વાદરૂપ સુધા સ્વરૂપનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ યથાર્થ રૂપે કહેલો છે. બીજા પ્રકારે કહીએ તો શબ્દપ્રમાણનું પ્રત્યક્ષ ફલ તે આપ્તપ્રમાણવાળા સાહિત્યમાં નિરૂપેલું છે.

શબ્દના અર્થથી અહીં વેદજ મુખ્ય પ્રમાણ રૂપે કહેલો છે. અને **તે વેદ પ્રતિપાદ્ય સિદ્ધાન્ત જ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણ સ્વરૂપે** હોઇ તે સાહિત્યને શબ્દપ્રમાણાત્મક કહ્યું છે. તેવીજ રીતે આપ્તના અર્થથી અહીં લોકવેદાતીત શ્રીકૃષ્ણના તાદૃશ ભક્તો જાણવા. અને તેવા આપ્તપુરૂષોએ જે પ્રકારે અને જેવા સ્વરૂપનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરી જેમાં તેનું વર્ણન કર્યું છે, તે બધાં વાક્યો અને ગ્રન્થો પ્રમાણરૂપ છે. માટે તેવા સાહિત્યને આપ્તપ્રમાણાત્મક કહ્યું છે.

બીજા પ્રકારે આપ્તપુરૂષોમાં પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ નિરંતર સ્થિત હોવાથી તેમનાં વાક્યો અને ગ્રન્થોને પ્રમેયાત્મક કહેલા છે. આ રીતે પ્રમાણાત્મક અને પ્રમેયાત્મક અથવા શબ્દપ્રમાણવાળું અને આપ્તપ્રમાણવાળું એમ બે પ્રકારનું સાહિત્ય પુષ્ટિમાર્ગમાં ઉપલબ્ધ થાય છે.

શબ્દપ્રમાણાત્મક સાહિત્ય સિદ્ધાન્તરૂપ છે અને આપ્તપ્રમા-

ણાત્મક સાહિત્ય તે સિદ્ધાન્તના દૃષ્ટાન્તરૂપ હોઇ ફલરૂપ છે. આ પ્રકારે તે બન્ને સાહિત્યનો પરસ્પર સંબંધ છે.

જેમ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણરૂપે શ્રીકૃષ્ણ છે તેમ પ્રમેયરૂપે પણ શ્રીકૃષ્ણજ રહેલા છે. તો પણ પ્રમાણરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સાધનાત્મક હોઈ અનુકરણીય છે, જ્યારે પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ ફલાત્મક હોઈ કેવલ સ્મરણીયજ છે. અર્થાત્ આપ્તજન કથિત પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં શ્રીકૃષ્ણે, સ્વભક્તોને સ્વયં અનુગ્રહરૂપ થઈ ફલરૂપ સ્વાનંદનું જે દાન કરેલું જોવામાં આવે છે, તેનું અહર્નિશ સ્મરણ (ચિંતવન) કરી સાધનદશાવાળા ભક્તો, શબ્દપ્રમાણાત્મક ગ્રન્થોમાં રહેલા સિદ્ધાન્ત રૂપ શ્રીકૃષ્ણના પ્રમાણ સ્વરૂપને લક્ષ્યમાં સાધી, તેમાં કહેલા કર્તવ્યાકર્તવ્યનું નિઃસાધનતાની ભાવનાથી અનુકરણ કરે, તોજ કીટભ્રમર ન્યાયે પુષ્ટિમાર્ગ ફલીત થાય છે. યદિ કોઇ અનધિકાર ચેષ્ટાથી સ્મરણ કરવા યોગ્ય પ્રમેયાત્મક સ્વરૂપને કૃતીથી અનુસરે તો તેને ભગવત્પ્રાપ્તિ રૂપી ફલમાં અનેક પ્રતિબંધ પ્રાપ્ત થાય છે તે ખાસ લક્ષ્યમાં રાખવાની વાત છે.

પ્રમેયમાર્ગનું પુનઃ પ્રાકટ્ય અને તેની વિશિષ્ટતા

જ્યારથી શ્રીઆચાર્યચરણે આપ્તવાક્યના સમૂહરૂપ શ્રીમદ્ભાગવતની સમાધિભાષાને પ્રસ્થાન ચતુષ્ટય રૂપે સ્થાપી ત્યારથી પ્રમેય માર્ગ (પુષ્ટિમાર્ગ)નું પુનઃ પ્રાકટ્ય આ પૃથ્વીમાં થયું. વળી શ્રીઆચાર્યચરણે સમાધિભાષાને કેવલ પ્રસ્થાન ચતુષ્ટયમાં સ્થાન આપીનેજ સંતોષ નથી માન્યો કિંતુ **પ્રસ્થાન ત્રયીના સંદેહના નિવારકરૂપે તેને કહી તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા સહજ સિદ્ધ કરી છે.***

આપ્તવાક્ય ના સમૂહરૂપ શ્રીમદ્ભાગવત, એક ભક્ત (નારદજી) ના વચનને આધિન થઈને જ્ઞાનાવતાર વ્યાસજીને અનુભવમાં આવેલ પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ હોઇ, શબ્દાત્મક વેદનું તે ફલ છે. અને તેથીજ

---

*वेदाः श्रीकृष्णावाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥
उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम् । (શ્રીઆચાર્યચરણ)

શબ્દપ્રમાણ કરતાં પણ આપ્તપ્રમાણ શ્રેષ્ઠ છે તે નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે. આ આપ્તવાક્યોરૂપ પ્રમેયાત્મક શ્રીકૃષ્ણમાં શબ્દબ્રહ્મની પરતંત્રરૂપે સ્થિતિ સહજ હોવાથી તે દ્વિગુણીત પ્રમાણભૂત છે. બીજી રીતે તે પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણની આપ્તપુરૂષોમાં નિરંતર સ્થિતિ હોવાથી તેમનાં વાક્યો શબ્દપ્રમાણથી વિશેષ બળવત્તર હોયજ. તેમાં આશ્ચર્ય શું ?

પ્રમેયાત્મક સાહિત્યના બે ભેદ.

આ પ્રકારના પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં પણ બે ભેદ છે. એક પુષ્ટિનું પ્રમાણભૂત પ્રમેયરૂપ સાહિત્ય અને બીજું કેવલ ભાવાત્મક સાહિત્ય. પ્રમાણભૂત પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં, સેવનીય શ્રીયશોદોત્સંગ+ અને સ્મરણીય ગોપીકાવલ્લભ (શ્રીનાથજી), ઉભય સ્વરૂપ વિષયક સાહિત્યનો સમાવેશ રહેલો છે. અને બીજા કેવલ ભાવાત્મક સાહિત્યમાં ભાવ સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયકજ સાહિત્યનો સમાવેશ થયેલો છે. ભાવદ્વારા જ સેવનીય યશોદોત્સંગ અને સ્મરણીય ગોપિકાવલ્લભનો આનંદ પ્રાપ્ત થઈ શકતો હોવાથી આ ભાવાત્મક સાહિત્ય પણ ભક્ત અને ભગવાનના પરમાનંદમાં શ્રીઆચાર્યચરણની માફક મધ્યસ્થરૂપ છે.

આ ભાવને શ્રીહારરાયજીએ કૃષ્ણાસ્ય તરીકે કહેલો છે તેજ સર્વાત્મભાવરૂપ, નિરોધરૂપ, સ્વતંત્ર ભક્તિરૂપ અથવા તો પુષ્ટિભક્તિરૂપ જે કહો તે શ્રીઆચાર્યચરણ જ છે. એટલે શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ પરમભાવરૂપ છે. જેથી આપ્તજનોદ્વારા કહેલું શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ પ્રમેયનું પણ પ્રમેય અને ફલનું પણ ફલ છે. તે ભાવાત્મક શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્ય સંસ્કૃત અને ભાષા બન્નેમાં પ્રાપ્ત થાય છે. અને તે સાહિત્ય શબ્દપ્રમાણાત્મક અને આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યની એકવાક્યતાના મધ્યસ્થ રૂપ છે. જે પુરૂષે શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક

+जानित परमंतत्त्वं यशोदोत्संगलालितम् ।
तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो वुधाः ॥ (શ્રીગુસાંઈજી)

×सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान गोकुलेश्वर ।
स्मर्तव्यो गोपिकावृन्दे क्रीडन् वृन्दावनेस्थितः ॥ (શ્રીગુસાંઈજી)

ભાવાત્મક સાહિત્યનો અનુભવ કર્યો છે તેને કોઈપણ પ્રકારનો વિરોધ શબ્દપ્રમાણાત્મક અને આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમાં દેખાતો નથીજ. એટલે શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્યની એકવાક્યતા અને મહત્તા, પુષ્ટિમાર્ગના સાહિત્યક્ષેત્રમાં પૂર્ણપણે રહેલી છે. તે વાત તેના અનુભવીથી તો જરાય અજાણી નથીજ.

શ્રીઆચાર્યચરણનું ભાવાત્મક સ્વરૂપ અને તદ્વિષયક સાહિત્ય કેવી રીતે પ્રકટ થયું ?

શ્રીઆચાર્યચરણે સ્વયં, પોતાનું સ્વરૂપ મુખારવિન્દના અધિષ્ઠાતા રૂપ વૈશ્વાનર અને વાણીના પતી તરીકેનું સ્વમુખથી વર્ણવ્યું છે. (જેમ શ્રીકૃષ્ણે ગીતા આદિ અનેક સ્થળે પોતાનું સ્વરૂપ પોતે કહેલું છે તેમ) અને પોતાનું આંતરિક ભાવાત્મક હાર્દરૂપ સ્વરૂપ અવ્યક્ત રૂપે શ્રીસુબોધિનીજીમાં પણ સ્થાપ્યું છે. અને તે પોતાના નિગૂઢ સ્વરૂપનો પ્રકટ અનુભવ પોતાના સેવકોને આપે કરાવ્યો છે. તે સેવકોમાં મુખ્ય દમલા, પ્રભુદાસ અને પદ્મનાભદાસ છે. દમલાદ્વારા શ્રીઆચાર્યચરણેજ પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ શ્રીગુસાંઈજીને કરાવ્યો. એટલે પછી શ્રીગુસાંઈજીએ સંસ્કૃતમાં શ્રીઆચાર્યચરણના નામ, રૂપ, અને ગુણને (ક્રમશઃ સર્વોત્તમ, વલ્લભાષ્ટક અને સ્ફુરત્કૃષ્ણપ્રેમામૃત રૂપે) પ્રકટ કરી શ્રીઆચાર્યચરણના ભજનનો માર્ગ ખુલ્લો કર્યો. પદ્મનાભદાસે સ્વાનુભવ પદ્યરૂપે ભાષામાં વર્ણવ્યો. આ રીતે શ્રીઆચાર્યજીનું પરમ ફલાત્મક ભાવસ્વરૂપ પુષ્ટિસૃષ્ટિમાં પ્રકટ થયું. અને અનેક જીવોને યથાધિકાર તેનો અનુભવ થયો. અને તેનાં અનુભવનાં વાક્યો અને ગ્રન્થોનું ભાવાત્મક સાહિત્ય આ રીતે પ્રકટ થયું.

શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્યની પ્રામાણિકતા.

આ શ્રીઆચાર્ય વિષયક તમામ સાહિત્ય આપ્તવાક્યરૂપ હોઈ પ્રમેય કોટીનું છે. જેમ વ્યાસજી, વાલ્મીકિ આદીના આપ્તવાક્ય અને અનુભવ પ્રમાણ સ્વરૂપ, શ્રીભાગવત, રામાયણ આદિને શબ્દપ્રમાણથી યે વિશેષ મહત્ત્વયુક્ત સર્વત્ર માનવામાં આવેલાં છે, તેમ શ્રીગોકુલેશ

પણ ભગવત્સાક્ષાત્કાર યુક્ત હોવાથી તેમની કહેલી આ વાણીરૂપી વાર્તાઓ પણ આપ્તવાક્ય અને અનુભવપ્રમાણરૂપ હોઈ સર્વત્ર પ્રમાણરૂપે ગણાઇ છે. તેથી તે વિશ્વસનીય સત્ય અને સ્વતઃ સિદ્ધરૂપ જ છે.

શ્રીગુસાંઇજીએ માર્ગનું રહસ્ય શ્રીગોકુલેશમાં સ્થાપ્યું હતું. એટલે શ્રીગોકુલેશે શ્રીઆચાર્યચરણના ભજન રૂપ આ રહસ્યને સારી રીતે સમજીને પોતે તેનો અનુભવ કર્યો. ત્યારપછી તે અનુભવ સ્વભક્તોમાં પ્રકટ કર્યો. એટલે શ્રીગોકુલેશે સર્વોત્તમ, અને વલ્લભાષ્ટક ઉપર સ્વતંત્ર ટીકા કરી અને તેમાં શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ બહુજ સ્પષ્ટ રૂપે વર્ણવ્યું. તો પણ તે સંસ્કૃતમાં હોઈ સર્વોપયોગી ન થવાથી તેમજ સંક્ષિપ્ત લાગવાથી શ્રીગોકુલેશે તે શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને ભાષામાં ગદ્યરૂપે વિસ્તારપૂર્વક સ્પષ્ટ કર્યું. જેથી તે સર્વોપયોગી થયું.

આ કલીકાલમાં પ્રમેયાત્મક પુષ્ટિમાર્ગનો અનુભવ શ્રીઆચાર્યચરણની કૃપા વિના અશક્ય હોઈને જ શ્રીગુસાંઇજીએ, શ્રીગોકુલેશે તેમજ શ્રીહરિરાયજીએ શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને સ્પષ્ટ કરવાવાળા અનેક ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષા અને સંસ્કૃત સર્વ પ્રકારના ગ્રન્થો કર્યા. અને શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને સારી રીતે સમજાવ્યું. અને આ ગ્રન્થોમાં વાર્તાને મુખ્ય સ્થાન મળ્યું. તેથી જ શ્રીગોકુલેશે વૈષ્ણવોની વાર્તાને ફલ રૂપે કહી છે.

આપ્તવાક્યોના સમૂહરૂપ વાર્તાઓના આ (ઉપરોક્ત કથીત) ગૂઢ આશયને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ સારી રીતે જાણ્યો. તેથી વાર્તાના સ્વરૂપને સમજાવવાને માટે આપે સૂત્રાત્મકરૂપે અત્યંત ભગવદ્ભાવ પ્રચૂર એક લેખ લખ્યો (તે અમે વાર્તાની શરૂઆતમાં આપ્યો છે) તે ઉપરાંત વાર્તાના દરેક પ્રસંગો ઉપર સૂક્ષ્મ "ભાવપ્રકાશ" યોજ્યો. અને વાર્તાનો આશય બહુજ સ્પષ્ટ કર્યો. આ રીતે શ્રીઆચાર્યચરણના જીવનચરિત્રરૂપ આ વાર્તાઓના મહત્ત્વમાં વિશેષ વધારો થયો.

શ્રીહરિરાયજીના મતે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે. કારણ કે આ વાર્તાઓના એક એક અક્ષરમાં શ્રીઆચાર્યજી ઓતપ્રોત રૂપે બિરાજે છે. **આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીના ત્રિવિધ ઇતિહાસ**

રૂપ છે. ૧ ભૌતિક, ૨ આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક. ૧ ભૌતિક= બાહ્ય ક્રિયાત્મક જીવનચરિત્રરૂપે, ૨ આધ્યાત્મિક=આંતરજીવનચરિત્ર રૂપ જ્ઞાનાત્મકપણે. ૩ આધિદૈવિક=ભાવાત્મક સ્વતંત્ર ભક્તિરૂપે. આ વાર્તાઓમાં શ્રીઆચાર્યચરણનાં રૂપ, ગુણ, વય, આકાર, જ્ઞાન સામર્થ્ય, ભક્તવત્સલતા આદિ ધર્મો, વાણીમાધુર્ય, નિત્યક્રમ, શાસ્ત્રાર્થશૈલી, સેવા અને કથાની પ્રણાલીકા, આનંદીતસ્વભાવ, રીતભાત, ચાલ, બિરાજવાની શૈલી, પાકક્રિયા, વિવેક, ધૈર્ય, આશ્રય, ઐશ્વર્યાદિ અનેક અલૌકીક ધર્મો, સત્ય, દયા, દીનતા, સેવા અને કથાની તત્પરતા, વિરહ આદિ અનેક નિગૂઢ ભાવો, તેમજ અનેક ચરિત્રોનો સમાવેશ થયેલો છે. એટલે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યચરણના જીવનચરિત્ર રૂપ છે. સારાંશ કે શ્રીઆચાર્યજીનું સાંગોપાંગ આંતર બાહ્ય સ્વરૂપ અને તેના ધર્મો તથા અનેક તત્ત્વો અને ભાવનાઓ આ વાર્તામાં પ્રત્યક્ષરૂપે વિદ્યમાન છે. તે તેના અભ્યાસીને જણાયા વિના રહેતું નથી જ. અને તેથી પણ આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીનું જ સ્વરૂપ છે તે સ્વયં સિદ્ધ થાય છે. એવીજ રીતે ૨૫૨ ની વાર્તા શ્રીગુસાંઇજીના જીવનચરિત્રરૂપ છે. આ વાતને સમજાવવા જ શ્રીહરિરાયજીના સેવક મહાશય વિઠ્ઠલનાથ ભટ્ટ પણ શ્રીગોકુલનાથજી રચિત ગ્રન્થોનાં નામોનો ઉલ્લેખ કરતાં ૮૪–૨૫૨ વૈષ્ણવોની વાર્તા ન કહેતાં "वल्लभविट्ठल वार्ता प्रकट कीन नृपमान।" એમ સૂક્ષ્મ પ્રકારથી ઉદેપુરના **રાજા માનસિંહને** વાર્તાઓનું સ્વરૂપ સમજાવતાં સં. ૧૭૨૯ માં કહેલું છે. આજ વાત સદ્ગત શ્રીયુત મૂલચંદ્ર તેલીવાળા "શૃંગાર રસમંડન"ની પ્રસ્તાવનામાં આ પ્રમાણે લખે છે:—

"સાંપ્રદાયિક ગાથાઓનો વિચાર કરતાં શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરને લીલાના સાક્ષાત્ અનુભવમાં શ્રીમદ્ દામોદરદાસજી સહાય થાય તે અનુચિત નથી જ. × × × **આપશ્રીનું (શ્રીગુસાંઇજીનું) વિશેષ ચરિત્ર સાંપ્રદાયિક વાર્તાઓ વિગેરેમાં પ્રસિધ્ધ છે.**"

આ પ્રકારે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઇજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસરૂપ હોઇ રક્ષણીય અને મનનીય છે. તેમજ તે સાંપ્રદાયિક સમગ્ર સાહિત્યમાં સર્વોત્કૃષ્ટ છે.

આ વાર્તાઓમાં ધાર્મિક તત્ત્વો અને રહસ્યોનો એટલો બધો સમાવેશ છે કે તેના શ્રદ્ધાપૂર્વકના શ્રવણ માત્રથીજ હૃદયનો નાસ્તિક અજ્ઞાનાંધકાર સહેજે નષ્ટ થઈ જાય છે અને હૃદય અત્યંત શુદ્ધ બની કમલની માફક ખીલી ઉઠે છે.

યદિ આ વાર્તાઓને શ્રીઆચાર્યજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસમાંથી કાઢી લઈએ તો શ્રીઆચાર્યજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસરૂપે શેષ કંઇ પણ રહેતું જ નથી. માટે શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપના જ્ઞાન અર્થે, સંપ્રદાયની સેવાપ્રણાલીના અને ધાર્મિક સિદ્ધાંત આદિના દૃષ્ટાંતરૂપે આ વાર્તાઓ પૂર્ણ ઉપયોગી છે.

આજસુધીમાં જેટલા મહાનુભાવોએ શ્રીઆચાર્યચરણનાં જીવનચરિત્રો લખ્યાં છે તેમને દરેકને વાર્તાઓમાંના વૈષ્ણવોના ભાવવાહી પ્રસંગોનો આશ્રય લેવો જ પડયો છે. જુઓ *વલ્લભાખ્યાન, પ્રદીપ, દિગ્વીજય, વલ્લભચરિત્ર આદિ ગ્રન્થો.

વાર્તા રચના કાલ

આ વાર્તાની રચના શ્રીગોકુલેશે વિ. સંવત ૧૬૪૨ પછી અને ૧૬૪૫ પહેલાં કરેલી છે. તે એથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ૨૫૨ની વાર્તામાં એક પણ પ્રસંગ સાતે બાલકો અલગ થયા પછીનો પ્રાપ્ત થતો નથી. કાન્હબાઈની વાર્તામાં શ્રીગોકુલનાથજીએ યજ્ઞ કરવાનો વિચાર કર્યો ત્યારે શ્રીગિરિધરજીની આજ્ઞા માંગી છે તે પ્રસંગ આવે છે એટલે તે વખતે સાતે બાલકો ભેગાજ બિરાજતા હતા તે સ્પષ્ટ જ છે. સં. ૧૬૪૫ પછી સાત બાળકો અલગ અલગ રહેવા લાગ્યા. બાકી બીજો એવો એક પણ પ્રસંગ શ્રીગુસાંઇજીની લીલા વિસ્તાર પછીનો પ્રાપ્ત થતો નથી. શ્રીગુસાંઇજીની લીલાવિસ્તારનો પ્રસંગ ચાચાજી અને છીતસ્વામીની વાર્તામાં આપેલો છે. અને શ્રીગુસાંઈજીએ સં. ૧૬૪૨ માં લીલા વિસ્તારી છે તે સ્પષ્ટજ છે.

---

*વલ્લભાખ્યાન અને પ્રદીપના સમયમાં વાર્તાનું સ્વરૂપ ગ્રન્થાકાર રૂપે ન હતું તો પણ વાર્તાના પ્રસંગોની વિખ્યાતી જગપ્રસિદ્ધ હતી તેથી અન્ય સંપ્રદાયના ભક્તમાલ આદિ ગ્રન્થોમાં પણ તેનું અસ્તિત્વ દેખાય છે.

આ વાર્તાની રચના પછી જ શ્રીગોકુલેશે નિજવાર્તા, ઘરૂવાર્તા, અને બેઠકચરિત્ર રચેલાં હોવાં જોઈએ કારણ કે વાર્તાના જ અમૂક પ્રસંગોનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ ઉપરોક્ત ગ્રન્થોમાં પ્રાયઃ જોવામાં આવે છે. દામોદરદાસ હરસાનીનો પૂર્વપ્રસંગ પાછલથી પ્રાપ્ત થયેલો હોવાથી વાર્તામાં તે દેખાતો નથી પરંતુ નિજવાર્તામાં તે આપેલો છે. આથી પણ એક અનુમાન થઈ શકે છે કે ઉપરોક્ત ત્રણ ગ્રન્થોની રચના પછીથી થયેલી હોવી જોઈએ. અને ભાવસિંધુ તો લગભગ સં. ૧૬૮૦ પછીથી રચાયલો સ્પષ્ટ જ છે. કારણ કે તેમાં ચંદાબાઇ અને જહાંગીરનો પ્રસંગ છે.

આ રીતે વાર્તાનો રચનાકાલ સં. ૧૬૪૨ થી ૧૬૪૫ સુધીનો નિશ્ચિત થાય છે.

લહીયાઓ ઉપરનો મિથ્યાદોષ.

કેટલાક સુજ્ઞ ગણાતા પુરૂષો પણ ઘણીવાર એમ કહે છે કે વાર્તામાં લહીયાઓએ સ્વકલ્પિત રોચક પ્રસંગ લખીને વાર્તાને વધારી છે. મૂલ વાર્તા બે હજાર શ્લોકનીજ હતી અને પાછલથી તે દસ હજાર શ્લોક જેટલી થઈ. આ આક્ષેપ કેવલ અજ્ઞાનતાસૂચક અને અન્યાયપૂર્ણ છે તે કહ્યા વિના રહી શકાતું નથી. કારણ કે મૂલ વાર્તા સંસ્કૃતમાં રચાયલીજ નથી કિન્તુ વ્રજભાષામાં જ રચાયલી છે. તે અનેક પ્રાચીન ગ્રન્થોની વિદ્યમાનતા અને મહાશય વિઠ્ઠલનાથની વાણીથી પણ સિદ્ધ થાય છે. તેમજ શ્રીગોકુલનાથજી રચિત સંસ્કૃત વાર્તા અદ્યાપિ કોઈને પ્રાપ્ત થઈ પણ નથી. જે સંસ્કૃત વાર્તા સંપ્રદાયમાં પ્રાપ્ત છે તે શ્રીનાથદેવ મડેશના નામની છે અન્ય કોઈપણ પ્રાપ્ત નથી. એટલે મૂલવાર્તા સંસ્કૃત હતી તે આક્ષેપ મિથ્યા થાય છે.

બીજું તેના પ્રમાણ રૂપે શ્રીહરિરાયજી કૃત ભાવપ્રકાશ સબલ પુરાવો છે. કારણ કે શ્રીહરિરાયજીનું પ્રાકટ્ય વ્રજ સંવત ૧૬૪૭માં છે અને આપ શ્રીગોકુલેશજીના જ શિષ્ય છે તેમજ શ્રીગોકુલેશજીના ગ્રન્થોના પૂર્ણ અભ્યાસી છે. યદિ શ્રીગોકુલેશજીએ વાર્તા સંસ્કૃતમાં રચી હોત તો આપ પણ તેના ઉપરનો ભાવ પ્રકાશ સંસ્કૃતમાં જ

રચત, કિંતુ આપે ભાષામાં રચ્યો છે. અને સંસ્કૃત વાર્તા સંબંધી જરા જેટલોયે કોઈ પણ જગ્યાએ ઉલ્લેખ કર્યો નથી. શ્રીગોકુલેશ સં. ૧૬૯૮ સુધી ભૂતલ ઉપર બિરાજ્યા. એટલે શ્રીહરિરાયજીને શ્રીગોકુલેશનો સહવાસ અને સાંપ્રદાયિક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનો સમય ખૂબજ મળેલો હોવો જોઈએ. તેથી આવી વાતો આપનાથી અજાણી રહેજ નહિ.*

વળી લહીયાઓ એ વાર્તામાં કલ્પિત પ્રસંગો વધારી તેને પેટના અર્થે રોચક બનાવી સંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તથી વિરૂદ્ધ કરી છે તેવા પ્રકારનો આક્ષેપ પણ અનુચિત જ છે. અમારી દૃષ્ટિએ વાર્તામાં એક પણ પ્રસંગ વધારેલો અમને લાગતો નથી તેમ સંપ્રદાય વિરૂદ્ધ સિદ્ધાન્તવાળો પણ જણાતો નથી. જે જે વાર્તાઓ ઉપર આક્ષેપો થયા છે તેનો પરિહાર અમે પ્રમાણો દ્વારા કર્યો છે અને આગલ ઉપર કરીશું. આ ભાગમાં તુલસાં અને રજોની વાર્તા ઉપર થયેલા અનુચિત અજ્ઞાનજનક મૂર્ખતા પૂર્ણ આક્ષેપો નો પરિહાર અમે શાસ્ત્રીય પ્રમાણો દ્વારા કર્યો છે †

શ્રીગોકુલેશના સમય સુધી તો એકજ લહીયો મુખ્યતા રૂપે પુસ્તક લખતો અને પોતાના આશ્રિત અન્ય મનુષ્યો પાસે તે પ્રતની અનેક નકલો કરવાવતો હતો. અને તે શ્રીગોકુલેશ તપાસતા હતા.

---

* વિશેષ શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીહરિરાયજીનું જીવનચરિત્ર ભાગ ૨ માં આપવામાં આવશે.

† રજો એ આચાર્યચરણને અનસખડી અરોગાવી તેમાં વર્ણાશ્રમ વિરૂદ્ધ ભક્તિમાર્ગની દૃષ્ટિથી કંઇએ નથી. કારણ કે તે અનસખડી સ્વયં શ્રીબાલકૃષ્ણ પ્રભુ સાક્ષાત્ રૂપથી મુખમાં અંગીકાર કરતા એટલે તે મહાપ્રસાદના તરીકે હોવાથી ભક્તિમાર્ગમાં તેને બાધ આવતો નથીજ. તે સંબંધી શ્રીનાથ ભટ્ટે પણ भुक्तप्रभोः प्रसादात्तं पक्वान्नं એમ સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે. તેમજ શાસ્ત્રીજી વસંતરામે પણ તે સંબંધી તેજ જવાબ પહેલાં શુદ્ધાદ્વૈતમાં પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત (હાલ મોજુદી અવસ્થાનું) દ્વારા આપી ચુકયા છે. એટલે તે બાબતમાં અમે વાર્તામાં કંઈ લખ્યું નથી. (વિશેષ અન્ય પ્રમાણો રજોની વાર્તામાં જુઓ.)

અને પછીજ તે ગ્રન્થોનો પ્રચાર થતો. એટલે જરાયે પોલ તે સમયમાં ચાલતી ન હતી. તે લહીયાનું નામ "બલીયા" હતું. એ વાત જગપ્રસિદ્ધ છે. એટલે પોતાની અજ્ઞાનતાથી કોઈ પ્રસંગ યા વાર્તા સમજમાં ન આવે તો તે કલ્પિત છે એમ કહેવું તે ખરેખર હાસ્યાસ્પદ છે અને પોતાના જ પાંડિત્યને બટ્ટો લગાડવા જેવું છે. પાંડિત્ય એનું જ નામ છે જે સર્વે ગ્રન્થોની અધિકાર ભેદ અને દૃષ્ટિભેદ આદિથી એકવાક્યતા કરી આપે.

હવે આપણને જે અનેક પ્રતીઓ હસ્તલિખીત વાર્તાની પ્રાપ્ત થાય છે તેમાં, કોઈ પ્રતી અપૂર્ણ છે તો કોઈ પ્રતીના કેટલાક પ્રસંગોમાં વિવિધતા અને વિશેષતા પણ પ્રાપ્ત થાય છે.

પ્રસંગોની અપૂર્ણતા અને વિવિધતા

આ વસ્તુ આક્ષેપકર્તાઓની ઢાલરૂપ હોઈ ભ્રમ ઉત્પન્ન કરવાવાળી વસ્તુ છે. પરંતુ જો પ્રાચીન સમય ને ધ્યાનમાં લઇએ તો સમજી શકાય છે કે તે ભ્રમ મિથ્યા છે. કારણકે પ્રાચીન કાલમાં નિશ્ચિત લિખીયાઓ પાસેથી પુસ્તક લખાવવામાં દ્રવ્યની વિશેષ આવશ્યક્તા પડતી હતી. એટલે દ્રવ્યવાન સિવાય અન્ય તેનો લાભ લઈ શકતા ન હતા. તે સમયમાં વાર્તાનો પ્રચાર અત્યંત હતો તેમ તેના ઉપર જનસમૂહનો પ્રેમ પણ અઢળક જ હતો. તેથી સાધારણ સ્થિતિના લોકો કાં તો વાર્તા સ્વયં ઉતારી લેતા અથવા તો કંઠસ્થ પ્રસંગો ને શેષ રાખી અન્ય પ્રસંગો થોડાક દ્રવ્યમાં ઉતરાવી લેતા યા ઉતારી લેતા. આથી અનેક પ્રકારની પૂર્ણ અપૂર્ણ અને વિવિધતાવાળી પ્રતીયો આજ આપણા જોવામાં આવે છે તેના પુરાવા રૂપ અમને એક જીર્ણપત્ર પ્રાપ્ત થયેલો તેની નકલ અમે કરી લીધી હતી તે અહીં આપીએછીએઃ—

શ્રીહરિ શ્રી...જી આગલ સુધ કરશો શ્રીજમન પાન કરતાં યાદ કરશો.

સિદ્ધ શ્રીગોકુલમધ્યે શ્રીમહારાણીજીના પયપાનન અભિલાષી ભાઈ જીવનભાઈ જોગ લી. શ્રીવલ્લભદાસાનુદાસ મહાપમર અમૃતના દૈન્યતાપૂર્વક જયજયશ્રી............

જત તમારો પત્ર મળ્યો મારે એક ૮૪ અને એક ૨૫૨ની વાર્તાનું પુસ્તક જોઈએ છીએ. કૃપા કરીને તમો લેતા આવજો. મારી પાસે દ્રવ્યની અનુકુલતા નથી તો જેમ બને તેમ ટુંકું ઉતરાવી સાર સાર લખાવી જરૂર લેતા આવજો. અમારા મોહનભાઈ લાવ્યા હતા તે કહેતા હતા કે રૂ. ૧૦૦) અંકે સો પુરા આપ્યા છે. પણ ભાઈ મારી પાસે તો રૂ. ૫૦) થી વધારે આપવાની શકતી નથી. માટે તમે ચતુર છો જેમ ઠીક સમજો તેમ લખાવી જરૂર લાવજો......

અહિં મહારાજ પધાર્યા છે તમારી દંડવત કરી છે. હાલ એજ. કામકાજ લખજો. જોઈતું કરતું મંગાવજો. સંવત ૧૭૮૦ ના મિતિ શ્રાવણ વદ ૫ વાર સોમ.

આ પત્રથી આપ જાણી શકો છો કે ઉપરોક્ત અમારૂં કથન સત્ય છે કે નહિં?

આપણી વાર્તાઓ પ્રાચીન ભારતીય ઐતિહાસિક શૈલીથી લખાયલી છે. એટલે તેમાં વિશેષ ભૌતિક કાલનું નિરૂપણ જોવામાં આવતું નથી. તો પણ આસપાસના પ્રસંગો અને ઇતિહાસ જોવાથી આપણે ભૌતિક કાલનો પ્રાયઃ નિશ્ચય કરી શકીએ છીએ.

વાર્તાની ઐતિહાસિકતા

આપણી ભારતીય પ્રાચીન ઐતિહાસિક લેખન શૈલી એવા પ્રકારની હતી કે જેના અવલોકન દ્વારા ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષને મનુષ્ય સારી રીતે સાધી શકતો હતો. કારણ કે આપણે ત્યાંની ઇતિહાસની વ્યાખ્યાજ આ પ્રમાણે છે કેઃ—

इतिह पारम्पर्य्योपदेशः आस्तेऽस्मिन्। इतिह+आसघञ्। धर्मार्थकाम मोक्षाणामुपदेश समन्वितम्। पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते। इत्युक्त लक्षणे पुरावृत्तप्रकाशके भारतादिग्रन्थे। (शब्दस्तोम महानिधि)

આ વ્યાખ્યાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે જેમાં પરમ્પરાગત-ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષનો ઉપદેશ હોય તેજ ભારતીય દૃષ્ટિથી ઇતિહાસ કહેવાય. આજ કાલના કહેવાતા ભારતના સંતાનો પરંતુ મન, વાણી અને

ક્રિયાથી પાશ્ચાત્ય જડવાદ નેજ અનુસરનારા ઉપરની ભારતીય ઇતિહાસની વ્યાખ્યાથી અજ્ઞાન હોઇ જેમાં સંવત આદિ કાલનિર્દેશ હોય તેનેજ ઈતિહાસ માને છે, પછી ભલે તે અન્યથા રૂપે હોય. આ અજ્ઞાનતા મનુષ્યને કેવા અંધકારમય માર્ગે લઈ જાય છે તે અત્યારે સર્વ કોઈ પ્રત્યક્ષપણે જોઈ શકે છે. જો ઉપરની વ્યાખ્યા પ્રમાણ રૂપ ન હોય તો ગીતા, ભાગવત, રામાયણ આદિ મહાન ઐતિહાસિક ગ્રંથો પણ કલ્પિત રૂપે થઈ જાય, તે સર્વથા અવાંચ્છનીયજ છે. અતએવ ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષનો પરમ્પરાગત ઉપદેશ જેમ ગીતા આદિ ગ્રંથોમાં છે તેમ વાર્તાઓમાં પણ સ્પષ્ટ પણે રહેલો છે. તે આપણે સ્થલે સ્થલે અવલોકીશું. અતએવ વાર્તાઓમાં કલ્પિતતા કે અનૈતિહાસિકતાનો જરાય આરોપ આવી શકે તેમ નથીજ. ભારતીય પ્રણાલીથી વાર્તા વિશેષ કરીને ધાર્મિક ઇતિહાસ રૂપ છે જ.

વાર્તા અને ભાષાસાહિત્ય સંબંધી સાંપ્રદાયિક, અન્ય સાંપ્રદાયિક અને તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાયોઃ—

ભક્ત મહાનુભાવ કવિ **દયારામ** કહે છે કેઃ—

"સકલ તત્વનું તત્વ છે એ સાર માંહે સાર ॥
પાઠ કરતાં માત્રમાં વશ થાય શ્રીનંદકુમાર ॥
શ્રીવલ્લભ વિઠ્ઠલ પ્રભુને પ્રસન્ન કરવા ચ્હાય ॥
નથી અવર ઉપાય બીજો હરિ ભક્તના ગુણ ગાય ॥
શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુના અંતરંગ એ ભક્ત ॥
મુજ ઉપર કરૂણા કરી દ્યો શ્રીવલ્લભ પદ આસક્ત ॥
એ વૈષ્ણવ પદરજ રતીની છે ઘણી મુજને આશ ॥
ગાય ગુણ હરિદાસના દયારામ દાસનો દાસ ॥"

આ પુસ્તકમાં આપેલા ચોરાશી વૈષ્ણવોના શ્રીહરિરાયજી કૃત લીલાના સ્વરૂપોના નામ સંબંધી અને શ્રીહરિરાયજીએ રચેલા વાર્તા ઉપરના ભાવપ્રકાશ અને લેખ સંબંધી **શ્રીવલ્લભજી મહારાજ** પોતાના ધોળમાં આ પ્રમાણે કહે છેઃ—

" ચોરાશી ચિત લાવીને કરે પાઠ નિત્ય ધરી નેમ,
પુષ્ટિપંથ પ્રભુ પ્રસન્ન થાયે હદે બાઢે પ્રેમ. ૧૨૨
કૃપા શ્રીહરિરાયજી કરી દીન જાણી દાસ,
મૂલ ચોરાશી ભક્તનાં તે નામ કર્યાં પ્રકાશ. ૧૨૩
શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુનાં અંગ દ્વાદશ જેહ,
ધર્મ સાથે ધર્મી કહીએ સમે દ્વાદશ તેહ. ૧૨૪
ચોરાશી વ્રજ કોશ માટે ચોરાશી એ ભક્ત,*
પ્રેમલક્ષણા પૂરેપૂરી શ્રીવલ્લભપદ આસક્ત. ૧૨૫
એ વૈષ્ણવ પદ કમળ રજ રતિ તણી છે અતિઆશ,
ગાયે ગુણ હરિદાસના પદરજ **શ્રીવલ્લભ દાસ**"–(રસમય ધોળ સાગર)

ગોસ્વામિ બાલકોના અભિપ્રાયો:—

૧ "**૮૪ અને ૨૫૨ એ પુષ્ટિમાર્ગના કાયદાઓ છે.** જેના જાણવાથી પુષ્ટિપ્રભુની પ્રાપ્તિ રૂપી મુકદમામાં સહેજે ફલિભૂત થઇ શકાય છે." (**શ્રીતિલકાયત શ્રીગોવર્ધનલાલજી**)

૨ "વાર્તા અમારૂં ગૌરવ છે. તેમાં અમારા પૂર્વજો સાથે પરબ્રહ્મ શ્રીનાથજી એક સંબંધીની માફક બોલતા, ચાલતા, માગતા અને અરોગતા હતા. આથી અમારા કુલનું વિશેષ ગૌરવ બીજું કયું હોઇ શકે ?" (સુરતીસ્થ **ચિ. ગોવિંદલાલ બાવાસાહબ**ના સ્વતંત્ર ઉદ્દગાર)

૩ " સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતમાં જો સમજ ન પડે તો વાર્તાઓ અહર્નીશ વાંચવી. માર્ગના તમામ સિદ્ધાંતોનું મૂલ વાર્તાઓ છે." (**શ્રીદ્વારકેશલાલજી**)

૪ સંપ્રદાયના સંસ્કૃત સાહિત્યના પ્રખર વિદ્વાન અને મર્મજ્ઞ તેમજ સેવારસિક મહાનુભાવ **શ્રીગોકુલદાસજી વિદ્યાસુધાકર મુખ્યાજી** (કોટા–બડે મથુરેશજીના) સમગ્ર સાંપ્રદાયક ભાષાસાહિત્યને માટે આ પ્રમાણે લખે છે:—

"हम लोग तो वार्ता भावना को मानवेवारे है क्योंकि वार्ता भावना ही

---

* શ્રીહરિરાયજીના લેખ અને ભાવપ્રકાશનું એક વિશેષ પ્રમાણ.

पुष्टिमार्ग को प्रचार करवेवारे है × × × प्राचीन वार्ता भावनान की पुस्तक में **जो विरोध मालुम पडे है वह अपनी अल्प बुद्धि को दोष है.** वार्ता भावना में उत्तम मध्यम ओर प्रथमाधिकारी के योग्यतानुसार कर्तव्याकर्तव्य को निरुपण है" × × × × ×

સંપ્રદાયના પ્રખર જ્ઞાતા શ્રીયુત **શાસ્ત્રીજી કણ્ઠમણિજી** વાર્તા કીર્તન આદિ ભાષાસાહિત્ય માટે આ પ્રમાણે કહે છેઃ—

" संप्रदायकी एक भाषानिधि ८४ वैष्णव वार्ता तथा २५२ वैष्णवकी वार्ता प्राचीन अष्टसखाओ के कीर्तन तथा चरित्र आदि हैं **जिनके लिये संप्रदायानुयायीओ के गर्व होना चाहिए. इसकी अनभिज्ञतासे मान-हानि करना हमारे लिये पाप है. हमे इनके अवलोकनसे वास्तविक तत्त्वकी प्राप्ति करनी चाहिये. इसका समुचित रुपेण रक्षण नितान्त आवश्यक है."** × × ×

(વિશેષ અભિપ્રાયો "ભાષાસાહિત્યનું ગાંભીર્ય"નામના પુસ્તકમાં જુઓ.)

બીજા પણ વાર્તા અને ભાષાસાહિત્યના ગૌરવને વધારનાર વિદ્વાનોના અન્ય અભિપ્રાયો ઘણા છે. **પરંતુ સ્થલ-સંકોચથી આટલા જ આપ્યા** છે. હવે અન્ય સંપ્રદાયી વિદ્વાન અને સાક્ષર પુરૂષો આપણા ભાષાસાહિત્યને માટે શું લખે છે? તેનું ટુંક વૃત્તાંત અહીં નોંધ્યું છેઃ—

શ્રીયુત **આચાર્ય શ્રીરસિક મોહનજી વિદ્યાભૂષણ** આપ્તવાક્યનું પ્રમાણ અને તેની ભગવત્સ્વરૂપથી અભિન્નતા આ પ્રમાણે કથે છેઃ—

" इन वक्तव्यों म पूर्ण विश्वास करना बडा कठिन है। सन्तो और ऋषियो द्वारा व्यक्त सत्य सर्वातिरिक्त है; **वह उन लोगोंकी विचार शक्तिसे परे है जिनको अपने हृदयमें भगवत्कृपा रुपी ज्वाला के स्फुलिंग प्राप्त नहिं हुये हैं।** हम साधारण मनुष्य इस सत्यको आत्मामें कठिनता से ही प्रवेश कर सकते हैं। हमारी जानकारी में तो नाम कुछ अक्षरों से बना है, एसा नाम स्वयं ब्रह्म से अभिन्न केसे हो सकता है? हम इसके लिये कोई कारण नहिं बता सकते। वस्तुतः युक्तिवादी की सम्पूर्ण सांसारिक विधियाँ इस सत्य को प्रकट करने में

असमर्थ है। इस जगतमें बहुत सी ऐसी चीजें है विशेषतः वे वस्तुयें जो सर्वातिरिक्त हैं जिनकी व्याख्या साधारण बुद्धि से नहीं की जा सकती। एसी ही बातों के लिये **सन्तों ओर ऋषियों के शब्द जिन्हें 'आप्तवाक्य' कहा जाता है, प्रमाण माने जाते हैं।"**

શ્રીયુત સુપ્રસિદ્ધ **સાહિત્ય સંશોધક મિશ્રબંધુઓ** વાર્તાઓ માટે આ પ્રમાણે લખે છે:—

"विट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजीने ८४ ओर २५२ वैष्णव की वार्ता नामक गद्य में जो दो बृहत् ग्रन्थ लिखे उनके देखनेसे विदित होता है कि **ये भक्तगण सदैव कृष्णानंद में ही निमग्न रहते थे। ८४ एवं २५२ वैष्णव को वार्ताओ में इसी संप्रदाय** (वल्लभीय) **के महात्माओंका वर्णन है."**

("વિનોદ" પ્રૌ. મા. પ્ર. ૧૧ અ.)

શ્રીયુત મિશ્રબંધુઓ વાર્તાને ઐતિહાસિક માને છે. તેઓ તેમના વિનોદમાં લખે છે કે:—"**इनसे** (वार्तासे) **तात्कालिक कई महात्माओंका समय स्थिर हो जाता है"** × × × ×

શ્રીયુત મિશ્રબંધુઓ, આપણા વાર્તા કિર્તન આદિ ભાષાસાહિત્ય માટે કેટલું માન રાખે છે તે જુઓ. તેઓ લખે છે કે:—

"कविता भंडार आपहीके (श्रीवल्लभाचार्यजीके) **शिष्यों की रचनासे परिपूर्ण हुआ है॥ व्रजभाषा का जो भाषा कविता पर साम्राज्य सा हो गया है इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि आपके संप्रदायवालोंने अपनी पुरी रचना इसीमें की है। महातमा सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कविगणोंकी रचना व्रजभाषाकी भूषण स्वरुप है। यदि भाषा काव्यको आपके संप्रदाय द्वारा इतना सहारा न मिला होता तो आज शायद व्रजभाषाकी कविता इतनी परिपूर्ण न होती। यह सब आपहीका प्रताप है।"** (भा. १ आदि प्र. २२९ पान)

"इनके (श्रीविट्ठलनाथजी) ओर इनके पिता श्रीमहाप्रभुजी के कारण भाषासात्यिकी बहुत बडी उन्नति हुई॥" (२९१ पान)

" महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी के ये महाराज (श्रीगोकुलनाथजी) आत्मज थे। इनके दो ग्रन्थ चोरासी वैष्णवोंकी वार्ता ओर २५२ वैष्णवोंकी वार्ता प्रसिद्ध है। × × × × **इनकी लेख प्रणाली प्रसंशनीय हे॥"** × × × ×

આ ઉપરોક્ત પ્રમાણોથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે કે પુષ્ટિમાર્ગનું ભાષાસાહિત્ય, અન્ય સાહિત્યરસિકોની દૃષ્ટિમાં પણ કેટલું ઉત્તમ નિષ્કલંક અને શ્રીઆચાર્યજીના પ્રતાપને પ્રકટ કરવાવાળું છે? આવા શુદ્ધ ભક્તોના ચરિત્રો અને તેમની અનુભવી વાણી ઉપર જેઓ આક્ષેપ કરે છે તેમને કયા શબ્દોથી સંબોધવા તે માટે ભાષામાં કોઈ શબ્દો જ મને તો મળતા નથી. વાર્તા ઐતિહાસિક, નિષ્કલંક અને શુદ્ધ છે. તે સર્વાનુમતે (વિચારકોમાં) નિર્વિવાદપણે સિદ્ધ જ છે—

" हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास "ના લેખક કાશી, હિન્દી યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર શ્રીયુત્ રામચંદ્ર શુકલ આ પ્રમાણે લખે છેઃ—

" गुरु नानकजीके जन्मके थोडे ही दिन बाद स्वामी वल्लभाचार्य का जन्म हुआ। यह तैलंग ब्राह्मण थे। जिनका जन्म १४७९ ई० में हुआ था। × × × इनकी अब तक पूजा होती है। × × × पद इन्होंने लिखे हों अथवा न लिखे हों किंतु हिन्दी विशेषतः **ब्रजभाषा सदा इनकी कृतज्ञ रहेगी। क्योंकी इन्होंने उसे प्रोत्साहित किया और इनके शिष्योंने उसे गौरव के शिखर पर पहुँचा दिया."** पा. २९

" इस कालके वैष्णव संप्रदायने एक नए ढंग का सर्वोत्तम साहित्य निकाला। यह साहित्य मुख्यतः ब्रजभाषा में है जिसकी मधुरता जगत प्रसिद्ध है॥ " पा. ४२

" इस समय दो और भक्तोंका उल्लेख कर देना उचित ज्ञात होता है। एकका नाम विठ्ठल विपुल था। × × × दूसरे स्वामी गोकुलनाथजी थे। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र थे। इन्होंने ब्रजभाषा में दो प्रसिद्ध गद्य ग्रंथ लिखे है एक चौरासी वैष्णवों की वार्ता और दूसरी दोसौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता, जिन में वैष्णव मतके ८४ और २५२ भक्तोंका

वर्णन है। इन ग्रंथों से उस समय के गद्य लेखनका पता तो लगता ही है बहुत से भक्तों और भक्त कवियों का समय भी निश्चित होता है। इन पिता-पुत्र स्वामियोने हिन्दी गद्यका भी बडा उपकार किया किन्तु इनका गद्य व्रजभाषा में था।" पा. ६२

"कृष्ण भक्तों में रसखान का नाम विशेष रूपसे स्मरणीय है। जाति के यह मुसलमान दिल्ली के पठान थे किन्तु वास्तव में यह वैष्णव मतके भक्त और विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। २५२ वैष्णवोंकी वार्ता में इनका भी चरित्र दिया हुआ है पहले इनका आचरण ठीक न था किन्तु वैष्णव हो जाने पर यह सुधर गये। इन्होंने श्रृंगाररस की बडी उत्तम कविता की है और प्रेम का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन प्रेमवाटिका नामक ग्रंथ में दिया है। इनका सुजान रसखान नामक ग्रंथ बडा प्रसिद्ध है। यह श्रीकृष्ण के आनंदमें मग्न रहते थे। और उच्च कोटिके कवि थे।"

"वैष्णव संप्रदाय भी धन्य है जिसने एक मुसलमान को भी कृष्ण भक्ति का इतना उत्कृष्ट कवि बना दिया और उसको अपने में मिला लिया।"

યાદ રાખો કે જો વાર્તા–કીર્તન આદિ પ્રકટ ન હોતે તો આ અન્ય તટસ્થ પુરૂષો દ્વારા વૈષ્ણવ સંપ્રદાયનું ગૌરવ જાહેરમાં ન આવત.

"શોચ્યસ્થિતિ" નામની પુસ્તિકામાં વાર્તા વિરૂદ્ધ જે ગંદા અભિપ્રાયો જે જે વ્યક્તિઓએ આપ્યા છે તેઓ આ ઉપરોક્ત સાંપ્રદાયિક અને અન્યસાંપ્રદાયિક એવં તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાયો આગળ કેટલા ટકી શકે છે? તે વાંચકો જ નિર્ણય કરી લે. અસ્તુ.

હજુ ભાષા અને ભાષાસાહિત્ય માટે ઘણું લખવાનું રહી જાય છે પરંતુ હાલમાં સમય અને સ્થલ સંકોચથી તે અપૂર્ણજ રાખ્યું છે. અમે બહુજ જલ્દી વાર્તા ભાગ ૨ જો "**શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત અને અષ્ટછાપ**" એ નામનો મોટો ગ્રન્થ બહાર પાડવાનો વિચાર રાખ્યો છે. તેમાં ઉપરોક્ત વિષયોનો સમાવેશ કરવામાં આવશે.

श्री द्वारकेशो जयति

" વાર્તા-માહાત્મ્ય "

(આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિથી)

હવે આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિથી જોઈએ તો પણ આ વાર્તાનું મહત્ત્વ અત્યંત છે. જરા પણ અતિશયોક્તિ વિના અમે એમ કહી શકીએ છીએ કે વાર્તા વિના સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતોની પૂર્ણતા થતી નથી જ. કારણ એ છે કે કોઈ પણ વસ્તુ અથવા પ્રતિજ્ઞારૂપ સિદ્ધાંતને સિદ્ધ કરવાને હેતુ અને દૃષ્ટાંત એ બેની આવશ્યકતા રહેલી છે. તે બે વિના પ્રતિજ્ઞાની પૂર્તિ થતી નથી જ. જેમકે વેદમાં શ્રુતિ કહે છે કે "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" આ તો વેદે પ્રતિજ્ઞા અથવા સિદ્ધાંત રૂપે કહ્યું કે આખું જગત બ્રહ્મરૂપ છે. એ પ્રતિજ્ઞાના હેતુમાં વેદ કહે છે કે " तज्जलानिति " એટલે દરેક વસ્તુની ઉત્પત્તિ અને લય બ્રહ્મમાંજ થાય છે માટે તે જગત બધું બ્રહ્મરૂપ છે. અહિં સુધી તો પરોક્ષવાદ થયો પરંતુ આ પ્રતિજ્ઞાનું પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત વેદમાં નથી કિંતુ શ્રીભાગવતમાં છે. (શ્રીકૃષ્ણે મૃતિકા-ભક્ષણ સમયે પોતામાં સર્વ બ્રહ્માંડને દેખાડયું છે તે.) એટલે શ્રી ભાગવત, વેદ પ્રતિપાદ્ય સિદ્ધાન્તના પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંતરૂપ છે માટે વેદરૂપ વૃક્ષના ફલરૂપે તેને ગણવામાં આવ્યું છે. પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત વિના સિદ્ધાન્તની પૂર્તિ થતી જ નથી. એટલે પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત વિના એ સિદ્ધાન્ત જલ્દી દરેક મનુષ્યના ગળે ઉતરે નહિજ. માટે દૃષ્ટાંતની ખાસ જરૂરત છે. વેદમાં દૃષ્ટાંત નથી માટે એ પરોક્ષવાદી છે. વેદની પ્રતિજ્ઞાઓના દૃષ્ટાંતોરૂપે શ્રીમદ્ભાગવત છે. માટેજ શ્રીઆચાર્ય-ચરણે શ્રીમદ્ભાગવત શાસ્ત્રને પ્રસ્થાન ચતુષ્ટયમાં ગણ્યું છે અને તેનું મહત્ત્વ વેદ કરતાં પણ વધુ રાખ્યું છે. કારણ કે તે (શ્રીભાગવત) દૃષ્ટાંતરૂપ હોઈ પ્રત્યક્ષવાદી છે. જેથી તે વિશેષ પ્રમાણરૂપ છે. આ કારણને લઇનેજ શ્રીઆચાર્યચરણે વેદ ઉપર ભાષ્ય નહિં કરતાં શ્રીમદ્-ભાગવત ઉપર ટીકા કરી, તેને (શ્રીભાગવતને) સંસારભરમાં ઉચું પદ આપ્યું. અને પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંતરૂપ હોઈ તેને પુરૂષોત્તમરૂપ ગણ્યું.

તેજ પ્રકારે આપણી આ વાર્તાઓ પુષ્ટિસિદ્ધાન્તની પૂર્તિમાં પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંતરૂપે રહેલી હોઇ સર્વ સિદ્ધાન્તાત્મક ગ્રંથોમાં તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા સહજ સિદ્ધ થાય છે.

યદિ વાર્તાઓ સંપ્રદાયમાં ન હોત તો પુષ્ટિસંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તોની પુષ્ટિમાં ઉણપજ રહેત. તે ઉપરોક્ત કથનથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે. વાર્તાઓ પ્રત્યક્ષવાદી હોવાથી તે સિદ્ધાન્તોના તાદૃશ ફલરૂપ છે.

આ વાર્તાઓ આપ્તવાક્ય રૂપ છે તે વાત પહેલાં સિદ્ધ થઈ ચુકી છે. એટલે તે શબ્દાત્મક પ્રમાણથી પણ ઉંચું પદ પ્રાપ્ત કરે છે.

પ્રમાણમૂર્દ્ધન્ય આપ્તવાક્ય રૂપ વાર્તાઓ

ન્યાય દર્શનમાં કહેલાં અનુમાનાદિ અન્ય પ્રમાણો અંતમાં શબ્દ પ્રમાણમાંજ વિલીન થતાં હોવાથી અહીં અન્ય પ્રમાણોના કથનની આવશ્યકતા રહેતીજ નથી. અને શબ્દપ્રમાણ કરતાં આપ્તપ્રમાણ દ્વિગુણીત બલ યુક્ત છે તે આગલ કહી ગયા છીએ. એટલે આ આપ્તવાક્યના સમૂહરૂપ વાર્તાઓ પ્રમાણમૂર્દ્ધન્ય હોઈ સિદ્ધાન્ત સમજાવવામાં સર્વોત્કૃષ્ટ પદને પ્રાપ્ત કરે છે તે નિર્વિવાદ છે.

આ વાર્તાઓમાં જે આધ્યાત્મિક અદ્વિતીય તત્ત્વજ્ઞાન રહેલું છે તે હરેક જ્ઞાનવાન પુરૂષ વાંચીને સહજ સમજી શકે તેમ છે. એટલે હાલ સ્થલ સંકોચથી અહીં વિશેષ લખતા નથી. વાર્તા ભાગ ૨ જા માં તેનો પૂર્ણપણે ઉલ્લેખ કરવામાં આવશે.

નિર્ગુણ–સગુણ (ભક્તોનો) ભેદ

સર્વાત્મભાવવાળા આત્મારામ ભક્તો તે નિર્ગુણભક્તો અને ક્રિયા-પ્રાધાન્ય કામભાવવાળા (દ્વૈતભાવવાળા) ભક્તો તે સગુણભક્તો જાણવા. આ વસ્તુ સમજવા માટે શ્રીહરિ૦કૃત "सर्वात्मभाव निरूपणम्" ગ્રન્થ જુઓ.

નિર્ગુણ ભક્તો, અન્ય ભક્ત નિરપેક્ષ હોવાથી સ્વતંત્ર કહેવાય છે અને તેઓ કેવલ ભાવમાં જ વિલસે છે. જ્યારે

સગુણ ભક્તો, અન્ય ભક્ત સાપેક્ષ હોઈ દ્વૈતભાવનાવાળા હોય છે. એટલે તેઓ બાહ્યક્રિયાપ્રાધાન્ય લીલામાં વિલસે છે. હાલતો આટલું જ જાણવું બસ છે. આ સંબંધી વિશેષ વાર્તા ભાગ ૨માં આપવામાં આવશે.

આ વાર્તામાં આવેલાં ઐતિહાસિક સ્વરૂપોની યાદી

વાર્તા સં.	સ્વરૂપોનાં નામ.	કોનાં સેવ્ય.	હાલ ક્યાં બિરાજે છે.
૩	શ્રી દ્વારકાનાથજી	શ્રી મહાપ્રભુજી	કાંકરોલી
૪	શ્રી મથુરાનાથજી	,,	કોટા
૫	છોટા મથુરેશજી	,,	,,
૮	શ્રી બાલકૃષ્ણજી	,,	મુંબઈ

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

"વાર્તા–રહસ્ય"

વાર્તાના સ્વરૂપની પરંપરા અને તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા:–

(આધિદૈવિક દૃષ્ટિથી)

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः ॥ (निबंध)

શ્રીમદ્ભાગવતના સ્વરૂપની પરંપરા

રૂપ અને નામ એમ બે પ્રકારે ક્રીડાકર્તા પુરુષોત્તમનું સૂક્ષ્મ બીજ રૂપનામાત્મક સ્વરૂપ તે ગાયત્રી. વૃક્ષરૂપ નામાત્મક સ્વરૂપ તે વેદ, અને ફલરૂપ રસરૂપ નામાત્મક સ્વરૂપ તે શ્રીમદ્ભાગવત. આસ્વાદ્યતાના પ્રતાપે કરીને બીજથી અને વૃક્ષથી પણ રસાત્મક ફલનો સમુત્કર્ષ સર્વાનુભવ-ગોચર છે. તેથી એક રીતે બીજાત્મક ગાયત્રીથી અને કલ્પદ્રુમાત્મક વેદથી પણ નિર્ગલિત તત્ફલ રસાત્મક શ્રીમદ્ભાગવતનો સમુત્કર્ષ સહજ સિદ્ધ થઈ રહે છે.

શ્રીમદ્ભાગવતનું અલૌકિકત્વ અને નિત્યત્વ

કાવ્યમાં લોકોને સમજાવવા માટે રૂપક બતાવાય છે તેમ અહિં કલ્પદ્રુમ આદિ શબ્દો અલંકારરૂપે કહેવામાં આવ્યા નથી. કારણ કે શ્રીમદ્ભાગવત તો સર્વ વેદોના સારરૂપ હોવાથી સર્વોદ્ધારક છે, તેથી તેમાં આવા અલંકારોની કલ્પના કરવી ઠીક નથી. પણ સાક્ષાત્ વ્યાસજી ભગવાનના જ્ઞાનના અવતારરૂપ હોવાથી તેમના જ્ઞાનમાં એ સત્ય વસ્તુ કલ્પવૃક્ષરૂપે સ્ફુરી, તે પ્રમાણથી જ તેના શબ્દો અન્યથા અનુપપન્ન થાય તો પ્રમાણ ન ગણાય, તેથી (વ્યાપી) વૈકુણ્ઠમાં વેદરૂપ વૃક્ષ છે,

તેના ફલરૂપ શ્રીમદ્ભાગવત પણ ત્યાં નિત્ય છે, જેને વ્યાસરૂપે ભગવાન કરુણા કરી સર્વોદ્ધારાર્થ પધાર્યા ત્યારે સાથે લાવ્યા છે. રસરૂપ હોવાથી તેમના અંતઃકરણમાં સ્થિત હતું, તે સ્વપુત્ર શુકના અંતઃકરણમાં સ્વાન્તઃકરણદ્વારા આપ્યું. અને તે શુકદેવજીદ્વારા પૃથ્વી પર આવ્યું. અતઃ આ શ્રીમદ્ભાગવત અલૌકિક નિત્ય અને અનાદિ છે.

શ્રીમદ્ભાગવતનું આધિદૈવિક સ્વરૂપ અને તેની લીલા

દ્વાદશસ્કંધાત્મક શ્રીભાગવતમાં દશવિધા સર્ગાદિ આશ્રયાન્તા લીલાનું સુનિપુણ પ્રતિપાદન છે. આ દશવિધા લીલાએ કરીને પણ વિશિષ્ટ શુદ્ધ પુરુષોત્તમનું હૃદય તો નિરોધલીલા જ છે. તેથી નિરોધલીલા પ્રતિપાદક દશમસ્કન્ધ હૃદયવત્ પરમ નિગૂઢ છે. ૮૭ અધ્યાયના આ હૃદયાત્મક પરમ નિગૂઢ નિરોધસ્કન્ધમાં જન્માદિ પાંચ પ્રકરણ છે.

તે પાંચ પ્રકરણ મધ્યે દ્વિતીય પારિભાષિક તામસ પરંતુ વસ્તુતઃ નિર્ગુણ પ્રકરણમાં નિરોધદાનમાં મુખ્ય અધિકારી શ્રીવ્રજજનોનો જ પ્રસંગ પ્રશંસાયો. વસ્તુતઃ તો પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રભુનો પ્રાદુર્ભાવ જ સાધનનિષ્ઠને અર્થે નથી, પરન્તુ કેવલ નિઃસાધનને જ અર્થે છે, તેથી કેવલ નિઃસાધન સ્વરૂપાકાંક્ષી શ્રીવ્રજજનનાં પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ પણ સર્વેશ્વર સર્વાત્મા પ્રાદુર્ભૂત પ્રભુસ્વરૂપ સ્વતઃજ થઈ જાય છે. એ સિદ્ધાન્ત સ્પષ્ટ કરવાને આ તામસ પ્રકરણના પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ એમ ચાર અવાન્તર વિભાગ છે.

નિજ સ્વરૂપપ્રાકટ્યથી અનન્તર પ્રમાણાત્મક બાલલીલાનો સ્વીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને પ્રેમનું દાન કરે છે, પ્રમેયાત્મક ગોચારણાદિ લીલાનો અંગીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને આસક્તિનું દાન કરે છે, અને સાધનાત્મક શ્રીગોવર્ધનોદ્ધારણાદિ લીલાનો અંગીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને વ્યસનનું દાન કરે છે. આ પ્રકારે નિઃસાધન

શ્રીવ્રજજનને પ્રમાણરૂપ પ્રેમ, પ્રમેયરૂપા આસક્તિ અને સાધન-રૂપ વ્યસનનું-સર્વાત્મભાવનું-પણ સ્વરૂપતઃ દાન કરીને બ્રહ્માનંદથી પણ અધિક પરમ વિમલ ભજનાનન્દાત્મક પુષ્ટિમહારસરૂપ શ્રી રાસોત્સવાદિ અવિચલ નિત્યલીલામાં મધ્યપાતી પ્રવેશરૂપ ઉત્કૃષ્ટોત્કૃષ્ટ ફલનું સહજ દાન કરે છે.

નિરોધના આ પ્રકારના દ્વિતીય તામસપ્રકરણના મધ્યમાં મધ્ય-મણિવદ્ દ્વિતીય અવાન્તર પ્રમેયપ્રકરણના અન્તમાં સર્વાન્તર મધ્ય-

સુધાનું મધ્યત્વ અને આધિપત્ય

નાયક અસ્મત્સર્વસ્વ શ્રીવેણુ-નિનાદનો સર્વોપકારક પ્રાદુર્ભાવ થાય છે. જે સ્વરૂપાત્મક સુધા શ્રીઆચાર્યચરણના અવલંબન વિના પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રભુના પણ રસાત્મક સ્વરૂપમાં આધિદૈવિકતા ન સમર્પાતાં અગ્રિમા સર્વ લીલાનો આવિર્ભાવ સુદુર્ઘટ થઈ જાય.

આ પ્રકારે સુધાએ કરીને જ રસાત્મક ફલસ્વરૂપ શ્રીભાગ-વતનો ઉપર્યુક્ત કથિત બીજરૂપ ગાયત્રી અને કલ્પવૃક્ષ રૂપ વેદથી પણ

વાર્તાનું અલૌકિક સ્વરૂપ અને તેની પરંપરા

સમુત્કર્ષ સિદ્ધ થાય છે. તે સુધાનું સ્વરૂપ તે શ્રીસુબોધિનીજી અને તેનો મનથી અનુભવાતો નિર્ગુણ ભાવાત્મક વિલાસ તેજ આ વાર્તાઓ. જેવા પ્રકારે શ્રી ભાગવત વૈકુણ્ઠમાં નિત્ય ફલરૂપે બિરાજે છે અને તે શ્રીશુકદ્વારા ભૂતલમાં પણ સર્વોદ્ધારાર્થ પ્રકટયું, તેવા જ પ્રકારે આ મૂર્તિમંત સુધા અને તેનો ભાવાત્મક નિર્ગુણ વિલાસ નિત્યલીલામાં પરમ રસ રૂપે-ભાવરૂપે-સ્થિત છે. અને તે શ્રીગોકુલેશદ્વારા ભૂતલમાં દૈવ-જનોદ્ધારાર્થ પ્રકટચો છે. શ્રીશુક અક્ષરબ્રહ્માત્મક છે ત્યારે શ્રી ગોકુલેશ સાક્ષાત્ શ્રીગોકુલેશસ્વરૂપ છે. અતઃ શ્રીશુકદ્વારા પ્રકટિત ફલમાં સુધા અવ્યક્ત રૂપે છે. જ્યારે અહીં વ્યક્ત અને નિરાવરણ ક્રીડારૂપ છે.

આથી જ વાર્તાઓ રૂપી શ્રીમદાચાર્યચરણનો આધિદૈવિક નિર્ગુણ ભાવાત્મક વિલાસ, એ ફલનું યે ફલ, રસનો યે રસ, ગાયત્રીની યે ગાયત્રી,

વાર્તાની સર્વોત્કૃષ્ટતા

દર્શનનું પણ દર્શન અને તત્ત્વનું પણ તત્ત્વ છે. જેથી શ્રીગોકુલેશે વાર્તાને શ્રીસુબોધિનીજીની કથાના પણ ફલ રૂપે વર્ણવી છે.

શ્રીભાગવત રસાત્મક ફલ છે અને તે ફલના રસના આસ્વાદ–સુધા–ના પરમ ભાવરૂપ આ વાર્તાઓ છે. જેમ શ્રીભાગવત સારસ્વતકલ્પીય અવતારલીલાના પ્રતિપાદનરૂપ છે, તેમ આ વાર્તાઓ પણ નિત્યલીલાસ્થિત ભાવાત્મક સ્વરૂપની ભાવમયી લીલાના પ્રતિપાદન રૂપ છે. જેમ શ્રીભાગવતના શ્રવણમાત્રથી સમગ્ર લીલાસહિત શ્રીકૃષ્ણ હૃદયમાં પધારે છે, તેમ આ વાર્તાઓના શ્રવણમાત્રથી જ શ્રીકૃષ્ણની લીલાના અનુભવમાં મુખ્ય એવા પરમફલરૂપ ભાવનું દાન થાય છે. અર્થાત્ શ્રીવલ્લભાધીશનું ભાવાત્મક સ્વરૂપ હૃદય-સ્થિત થાય છે.

આ પ્રકારે વાર્તાના સ્વરૂપની પરંપરા કહીને હવે તેમાં રહેલા મૂર્તિમંત સુધાસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો સૂક્ષ્મ ઉલ્લેખ કરીએ છીએ.

"પૂર્ણ બ્રહ્મ શ્રીલક્ષ્મણસુત" અતએવ આપ પૂર્ણ બ્રહ્મ **शृंगाररसरसो हरिः रसो वै सः** રૂપસુધાનું સ્વરૂપ છે. તે મુખ્ય

શ્રીઆચાર્યજીનું આધિદૈવિક સ્વરૂપ.

સુધા પુરુષાકાર છે. "**बर्हापीडं नटवरवपुः**" આ શ્લોકપ્રતિપાદિત સ્વરૂપ છે, દેહભાવરહિત રસસ્વરૂપ છે. જેમ દેહમાં વીર્ય મુખ્ય તેમ ભગવત્સ્વ-રૂપમાં સુધા. જેમ દેહમાં વીર્યસાર મસ્તકમાં રહે તેમ અહીં સુધા, "આનંદમાત્રકરપાદમુખોદરાદિ" સ્વરૂપના સારભૂત હોઈ અધરમાં સ્થિત છે.

આ પ્રકારે શ્રીઆચાર્યજીનું સુધાસ્વરૂપ કેવલ ભક્તમાત્રૈક-અનુભવગમ્ય છે. તેમાં અત્યંતાંતરંગ કોટિમાં વિરલ પદ્મનાભદાસાદિનો અનુભવ પ્રમાણસ્વરૂપ છે—

આ સુધાસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજી વિના પુષ્ટિપ્રભુની સર્વ રસમયી લીલાનો પ્રાદુર્ભાવ જ સુદુર્ઘટ છે. તે—સુધા—વિપ્રયોગાત્મક અને સદાનંદરૂપ હોવાથી કૃષ્ણસ્વરૂપ છે. અતઃ શ્રીગુસાંઈજી વલ્લભાષ્ટકમાં " **वस्तुतः कृष्ण एव** " એમ આજ્ઞા કરે છે.

શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપની મુખ્યતા.

આ સુધા મુખ્ય સાત સ્વરૂપે વિલસે છે, તેનો વિલાસ સ્વતંત્ર નિરપેક્ષ અને સ્વછન્દ છે. તેનાં સાત સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે.

શ્રીઆચાર્યજીનાં મુખ્ય સાત સ્વરૂપ અને તેમની સ્થિતિ.

૧ મુખ્ય પુરુષાકારસુધા. ૨ આનંદસ્વરૂપ-ભગવદ્ભાવરૂપ કૃષ્ણ સ્વરૂપ—૩ પરમાનંદસ્વરૂપ—ગૂઢસ્ત્રીભાવરૂપ સ્વામિનીસ્વરૂપ—૪ કૃષ્ણાસ્યસ્વરૂપ—ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ—૫ વૈશ્વાનરસ્વરૂપ—તાપાત્મક—૬ વલ્લભસ્વરૂપ—લીલામધ્યપાતી દાસ્યરૂપ—અને ૭ આચાર્ય સ્વરૂપ-સન્મનુષ્યાકૃતિ, ભક્તિમાર્ગાબ્જમાર્તંડ અને વાક્પતિસ્વરૂપ.

આ સાતે સ્વરૂપથી શ્રીઆચાર્યજીનો ભિન્ન ભિન્ન પ્રકરણનો સ્વતન્ત્ર વિહાર સાંપ્રદાયિક સમગ્ર ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષાસાહિત્યમાં વિશેષતઃ વાર્તા—કીર્તનમાં બિરાજે છે. અતઃ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે.

જે પ્રકારે દ્વાદશસ્કન્ધાત્મક શ્રીભાગવત " **द्वादशो वै पुरुषः** " શ્રુત્યનુસાર દ્વાદશ અંગરૂપ શ્રીહરિનું સ્વરૂપ છે, તે પ્રકારે આ વાર્તાઓ પણ દ્વાદશ અંગ અને તેના ૭ ધર્મ અને એક ધર્મી મળી ૮૪ લીલાત્મક રૂપ શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે.

આ પ્રકારે વાર્તાની સમુત્કર્ષતા (ઉત્તમતા) સહજ સિદ્ધ છે.

શ્રીઆચાર્યજીના દ્વાદશ અંગ અને તેની ભાવાત્મક લીલાનું કોષ્ઠકઃ—

શ્રીઆચાર્યજીનાં અંગ.	લીલા	વૈષ્ણવોનાં નામ.
હૃદય (મધ્ય)	નિરોધ લીલા	શ્રીદામોદરદાસ હરસાનીજી.
શિર	(પુષ્ટિ) મુક્તિ	શેઠ પુરુષોત્તમદાસ.
૨ હસ્ત	ઊતિ (પુષ્ટિ)આશ્રય	પદ્મનાભદાસ–ગદાધરદાસ
૨ સ્તન	મન્વંતર(પુષ્ટિ)ઈશાનુકથા	નારાયણદાસ–ગર્જ્જનધાવન
૨ સાથલ	સ્થાન (પુષ્ટિ) પોષણ	પૂરણમલ્લ–કન્હૈયાશાલ
૨ કર	સર્ગ (પુષ્ટિ) વિસર્ગ	માધવભટ્ટ–યાદવેંદ્રદાસ
૨ પાદ	અધિકાર(પુષ્ટિ) સાધન	પ્રભુદાસજલોટા–દિનકરશેઠ

ઉપર્યુક્ત પ્રત્યેક અંગસ્વરૂપ વૈષ્ણવોના સાત ભેદ છે. તેમાં ૧ ધર્મી અને ૬ ધર્મો. ઐશ્વર્ય, વીર્ય, યશ, શ્રી, જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય છે. તે તે ધર્મ અને ધર્મીવાળા વૈષ્ણવોની વાર્તાઓમાં સમજાવવામાં આવ્યું છે.

આ પ્રકારે સમગ્ર વાર્તારૂપ શ્રીઆચાર્યજીની ભાવાત્મક લીલાને જે ધીર પુરુષ શ્રદ્ધાપૂર્વક હૃદયમાં ધારણ કરે છે; તેના ઉપર શ્રી આચાર્યજી પ્રસન્ન થાય છે અને તે ભક્તના હૃદયમાં સ્થિત થઈ પોતાના પરમ નિગૂઢ સ્વરૂપનો અનુભવ કરાવે છે.

તેવા ભક્તોનો મહિમા કોણ કહી શકવાને સામર્થ્યયુક્ત છે ?

શ્રીભાગવતમાં લૌકિકી, પરમત અને સમાધિભાષા રહેલી છે. તેજ ત્રણ ભાષાઓ વાર્તાઓમાં ભૌતિક ઇતિહાસ–લૌકિકી–

વાર્તાની ત્રણ ભાષા.

શાસ્ત્રાર્થ–પરમત અને રહસ્ય–સમાધિ–રૂપે રહેલી છે. વાર્તાઓમાં પહેલી બે ભાષાઓ સૂક્ષ્મ રૂપે છે. જ્યારે ત્રીજી સમાધિરૂપ રહસ્યભાષા પૂર્ણપણે છે. શ્રીગોકુલનાથજીએ વાર્તાઓની

ત્રણે ભાષાના ત્રણ ઐતિહાસિક ગ્રંથો કરેલા છે અને તે *નિજવાર્તા, ઘરૂવાર્તા, અને બેઠકચરિત્ર એ નામથી પ્રસિદ્ધ છે. જેથી આ ત્રણે ગ્રન્થ વાર્તાની ટીકારૂપ છે.

શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ ભાવાત્મક છે. અને તે ભાવનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે :—

ભાવનું સ્વરૂપ અને તેનું સર્વોત્કૃષ્ટ ફળ

ભાવ એટલે કેવલ (ધર્મી) વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ અને તેજ—પુષ્ટિમાર્ગમાં—કૃષ્ણાસ્ય (શ્રીઆચાર્યચરણ) કહેવાય છે. અને તેજ પુષ્ટિ-ભક્તિ અથવા સ્વતન્ત્ર ભક્તિ તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. આ ભાવનું રમણ પણ ભાવાત્મકજ છે. જેથી તે ક્રિયાપ્રાધાન્ય અને ઇન્દ્રિયપ્રાધાન્ય એવા કામભાવ-વાળી સંયોગાત્મક લીલાથી પર છે. આ ભાવ ભાવનાથી જ સિદ્ધ થાય છે. અન્ય ભક્તસાપેક્ષ નિત્યલીલા એજ આ સંયોગાત્મક લીલા જાણવી. તેના રસનો અનુભવ અલૌકિક ઇંદ્રિય અને ક્રિયાદ્વારા અનુભવાય છે. જ્યારે સર્વાત્મભાવવાળી અન્યભક્તનિરપેક્ષ નિત્ય લીલા—ભાવાત્મકલીલા—ના રસનો અનુભવ કેવલ ભાવનાદ્વારા જ પ્રભુ કરાવે છે. આ ભાવપ્રાપ્તિમાં કેવલ વિરહની ભાવના જ એક માત્ર સાધનરૂપ છે. આમાં લીલાની ભાવના, સ્વરૂપની ભાવના સાધનરૂપ મટી જઈ ફલરૂપ થાય છે. આમાં જ્ઞાન ગુણગાન આદિ બાધક છે. અને આ કેવલ—ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક--ભાવનો અનુભવ એજ પરમ ફલ જાણવું.

આ ભાવ પ્રથમ તાપરૂપ થઈ ભક્તના લૌકિક દેહને સ્વ તાપ-દ્વારા શુદ્ધ કરી અલૌકિક કરે છે. આજ દેહમાં નવો દેહ કરે છે. અગ્નિ જેમ સ્વપ્રવેશથી કાષ્ઠને તેજોમય બનાવી દે છે, તેમ આ તાપ

---

* નિજવાર્તા=ઇતિહાસરૂપ, ઘરૂવાર્તા=રહસ્યભાષા. બેઠકચરિત્ર=(વિશેષતઃ) પરમતરૂપ.

પણ ભક્તના દેહને યથાસ્થિત રાખી અલૌકિક તેજોમય–આધારભૂત–બનાવે છે. વિપ્રયોગાગ્નિસ્વરૂપાત્મક હોવાથી દેહનો નાશ થતો નથી. જ્યારે દેહ તેજોમય થઈ આધારભૂત બને છે ત્યારે તે ભાવાત્મક વિપ્રયોગાગ્નિ ભક્તના સમગ્ર આકારમાં સર્વલીલાવિશિષ્ટ સ્વરૂપે પ્રવેશ કરે છે. દૃષ્ટાંત રૂપેઃ—ભક્તના હસ્તમાં હસ્ત રૂપે, પાદમાં પાદ રૂપે એમ સર્વ અંગોમાં જાણવું. ત્યારે તે ભક્ત અલૌકિક તદ્રૂપતાને પામે છે. આ પ્રવિષ્ટ વિરહાત્મા પ્રભુ મહાદુઃખે અનુભવાય છે. આ ભાવ સ્થિર થયા પછી તેમાં વિચિત્રતા પ્રાપ્ત થાય છે અને તે બે પ્રકારની છે. વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય.

જેમ મહાસમુદ્રમાં ડુબેલાને સમુદ્રની લ્હેરોમાં મજ્જન ઉન્મજ્જન થાય છે, તેમ વિરહભાવરૂપી રસસિન્ધુમાં ડુબેલા આ રસિક ભક્તને વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય સહજ સિદ્ધ થઈ જાય છે. આ ભક્તને પ્રભુ વિના જરાયે ચેન પડતું નથી. તે વિકલ થઈ તદ્રૂપ બની જાય છે. અતઃ તે ભક્ત તે વિપ્રયોગાગ્નિમાં પ્રવેશ કરે છે. આનું નામજ ભાવાત્મક રમણ કહેવાય છે. ત્યારે ભક્ત અસ્વાસ્થ્યે કરીને સ્વયં કૃષ્ણ–સદાનંદ–રૂપનો અનુભવ કરે છે. *

આ ભાવ તેજ સર્વાત્મભાવ કહેવાય છે. જેમાં દેહાદિકની સ્ફુરણા નથી થતી એટલે પ્રભુમાં અનન્ય ભાવ થાય એનેજ સર્વાત્મભાવ કહેવામાં આવે છે. આ અનન્ય ભાવમાં હું સમગ્ર પ્રભુનો છું એવી શુદ્ધ અદ્વૈતની ભાવના રહેલી છે. આમાં ઇંદ્રિયોના વિષયોનો સારી રીતે ત્યાગ છે. આમાં દેહ ઇંદ્રિય આદિના પૃથક્ત્વનું ભાનજ રહેતું નથી.

સર્વાત્મભાવનું સ્વરૂપ

આ સર્વાત્મભાવ, સ્વરૂપાનંદ અને ભાવાનંદથી પણ ઓળખાય

---

* श्याम रटत श्यामा श्याम भईरी । इत कृष्ण उत कृष्ण जित देखो तित कृष्ण मयीरी ।

છે. આના રમણમાં જેટલી ક્રિયા આદિ છે તે કેવલ ભાવમાત્રજ જાણવી. અને આ આનંદ આત્માદ્વારાજ અનુભવાય છે. આ ભાવ આનંદરૂપ હોઈ રસરૂપતાને પામેલો છે અને તે રસસ્વરૂપાત્મક છે. અને તે રસ—શૃંગારરસાત્મા હરિરૂપ છે. આ સ્વરૂપના પ્રત્યેક અવયવ મુખ—ચરણ આદિ સર્વ આનંદરૂપ છે. તેના ઐશ્વર્યાદિ બધા ધર્મો પણ આનંદાત્મકજ છે. આ પ્રભુના ધર્મો અને શક્તિઓ પણ પ્રભુરૂપ છે. સર્વ સ્વરૂપાત્મક આનંદ છે. આ શૃંગારરસના દ્વિવિધ ભેદ છે. સંયોગ અને વિપ્રયોગ. ઉભય રસ શૃંગારરસરૂપજ છે. સંયોગ રસ ધર્મસહિત હોવાથી ક્રિયાત્મક છે અને તે લોકવેદમાં પ્રસિદ્ધ છે. જ્યારે વિપ્રયોગરસ ધર્મીરૂપ, ભાવાત્મક અને કેવલ છે તેથી તે અનુભવથીજ જાણી શકાય છે.

આ ભાવાત્મક રસરૂપ પ્રભુના વ્રજમાં રહેલા ભાવાત્મક સર્વ પદાર્થો હમેશાં એક ભાવથી યુક્ત છે. અને તે સર્વે ભગવદ્રૂપ છે. તેની સર્વ સામગ્રી ભાવરૂપજ છે.

ગંગાજીની માફક ભાવનાં ત્રિવિધ સ્વરૂપ છે. આધિદૈવિક, આધ્યાત્મિક અને આધિભૌતિક.

ભાવનું વ્યાપકત્વ, વર્ચસ્વ અને સર્વોત્કૃષ્ટત્વ

આધિદૈવિક:—સ્વયં ભક્તિ (ભાવ) રૂપ છે. અને ભક્તિ એજ પુષ્ટિ છે. આધ્યાત્મિક:—ભાવનારૂપ છે. અને તે માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ છે. આધિભૌતિક:—ક્રિયારૂપ છે અને તે કર્મસ્વરૂપ છે, જેમ ગંગાજીના આધિભૌતિક સ્વરૂપમાં આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિકની સ્થિતિ છે, તેમ ક્રિયામાં (કર્મરૂપમાં) ભાવના—માહાત્મ્યજ્ઞાન—અને ભાવની—ભક્તિની—સિદ્ધિ રહેલી છે. આ ક્રિયા તે કર્મરૂપ હોઈ સદાચારથી યુક્ત શ્રીકૃષ્ણની સેવા તેજ છે. એટલે ભૌતિક તનુજાવિત્તજારૂપ ક્રિયાત્મક સેવામાં સ્વરૂપના

માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ આધ્યાત્મિક ભાવનાના સંબંધે કરીને, તે ભૌતિક-સેવામાં આધિદૈવિકી ભાવાત્મક—માનસી—સેવાની સિદ્ધિ રહેલી છે. તનુજાવિત્તજા વિના માનસી અપ્રાપ્ય છે.

આ પ્રકારે અંતરંગલીલાસંબંધી ભાવનાં ત્રણ સ્વરૂપ કહ્યાં. હવે બહિરંગલીલાસંબંધી ભાવનાં ત્રણ સ્વરૂપ આ પ્રકારે છેઃ—

આધિભૌતિકમાં કલ્પનારૂપે ભાવની સ્થિતિ છે.

આધ્યાત્મિકમાં વાસનારૂપે ભાવની સ્થિતિ છે.

આધિદૈવિકમાં સત્યરૂપે ભાવની સ્થિતિ છે.

ભૌતિક સ્થૂલદેહાદિકલ્પનાદ્વારાજ સર્વત્ર કાર્યની સિદ્ધિ કરી શકે છે, અતઃ તે કલ્પના તે એક સત્તારૂપ છે. કલ્પનારૂપી સત્તાત્મક ભાવ વિના કોઈ પણ કાર્યની ઉત્પત્તિ કે સિદ્ધિ નથીજ. આધ્યાત્મિક સૂક્ષ્મદેહાદિ (પરલોકમાં પાપપુણ્યનો ભોગકર્તા)માં વાસનાનીજ ચૈતન્યાત્મક રૂપ સ્થિતિ છે. એટલે સૂક્ષ્મદેહ વાસનારૂપેજ અંતઃસ્થિત છે. અને તે તત્ત્વરૂપ વાસના પોતાના બલથી કલ્પનાને ઉત્પન્ન કરી સર્વ કાર્ય કરાવે છે. આ રીતે તેનું પ્રધાનપણું અને ચૈતન્યાત્મક રૂપ કહ્યું. આધિદૈવિક તે સત્ય આત્મારૂપ છે. આત્મા એ આનંદરૂપ છે અને તેની સત્તા સર્વત્ર છે. જગત તો તેની એક માત્ર કણિકાથી ચાલી રહ્યું છે. આ રીતે તે ભાવ સત્‌ચિદાનંદ કૃષ્ણરૂપ છે. અને તેના આનંદના સારભૂત કૃષ્ણાસ્ય—શ્રીવલ્લભાચાર્ય છે. અતઃ કૃષ્ણા-સ્યજ અંતરંગ બહિરંગલીલામાં મધ્યપાતિ છે. તેમના વિના કોઇપણ લીલા સંભવતીજ નથી. અતઃ બાહ્યાભ્યંતર જગત બ્રહ્મરૂપ હોઈ કૃષ્ણાસ્યના આધારથીજ સ્થિત છે.

આ રીતે ભાવસ્વરૂપ—કૃષ્ણાસ્યરૂપ—શ્રીવલ્લભનું વ્યાપકત્વ, વર્ચસ્વ, અને સર્વોત્કૃષ્ટત્વ કહ્યું.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

मंगलाचरणम्

श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

ये नित्यं परिभावयन्ति चरणौ श्रीवल्लभस्वामिनो
ये वा तद्गुणगानसेवनपरा ये सन्निधिस्थायिनः ।
ये वा तद्गतभावभावितमनोमोदान्विताः सन्ततं
तेषामेव सदास्तु दास्यमपरं किं वा फलं जन्मनः ॥१॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશનાં ચરણોનું ધ્યાન કરે છે, જેઓ તેના ગુણગાનમાં અને સેવનમાં તત્પર છે, જેઓ તેના સાન્નિધ્યમાં રહેનારા છે. વળી જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીમાં રહેલ ભાવથી ભાવનાવાળા મનના આનન્દથી હમેશાં યુક્ત છે, **તે ભગવદીયોનું દાસ્ય મને સદા થાઓ. જન્મનું બીજું શું ફળ છે?**

ये कृष्णास्यकृपायुताः प्रतिदिनं तन्मार्गचिन्तापराः
ये वा लौकिकवैदिकादि सकलं तत्कर्तृकं मन्वते ।
येषामन्यदुपास्यमेव न परं चित्ते समारोहति
स्वीयत्वेन वृतास्त **एव सततं मद्रक्षका भूतले ॥२॥**

અર્થ:—જેઓ શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુના મુખારવિન્દાવતાર શ્રીમહાપ્રભુજીની કૃપાથી યુક્ત છે. પ્રતિદિન તે મહાપ્રભુજીના માર્ગનો વિચાર કરવામાં તત્પર છે, અને જેઓ લૌકિક વૈદિક સઘળું તેમણે કરેલું જ માની રહ્યા છે, અને જેઓના ચિત્તમાં બીજું ઉપાસ્ય ચઢતું જ નથી. જેઓનું પ્રભુએ સ્વકીયપણાથી વરણ કરેલ છે. **તે ભગવદીયોજ ભૂતલમાં મારા રક્ષક થાવ** ॥ ૨ ॥

ये तद्वाक्यविचारमात्रचतुरा गूढार्थबोधे रताः
ये विश्वासयुताः कृतौ च कथिते श्रीवल्लभस्वामिनः।
ये तद्वक्त्रदिदृक्षया हृदि सदा तप्ता विरक्ताः सुखे
तद्दास्यं प्रतिजन्म मे फलतु, किं सिद्धैः फलैरन्यतः ॥३॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશની કૃતિમાં તથા કથનમાં વિશ્વાસ વાળા છે, જેઓ તેના મુખારવિન્દનાં દર્શનની ઈચ્છાથી સદા હૃદયમાં તપ્યા કરે છે, અને સંસારના સુખમાં વિરક્ત છે, તેવા ભગવદીયોનું દાસ્ય પ્રતિજન્મ મને ફલીભૂત થાઓ, **બીજાં સિદ્ધ થતાં ફલોથી શું?** ॥ ૩ ॥

ये श्रीवल्लभपादसेवनकृते दीनाः स्वदेहादिको–
पेक्षास्तत्परचेतनास्तदुदितं सर्वं स्वतः कुर्वते ।
येषां बुद्धिरहर्निशं समधिका तत्तोषणे सादरा–
स्तेषामेव सतां सदा चरणयोः पातः परं मे फलम् ॥४॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશનાં ચરણકમલના સેવન માટે દીનતાવાળા છે, પોતાના દેહાદિકની ઉપેક્ષા કરનારા છે, તે શ્રીમહાપ્રભુજીમાં પરાયણ બુદ્ધિવાળા, તેઓશ્રીએ આજ્ઞા કરેલું બધું પોતે જાતે કરે છે; અને જેઓની બુદ્ધિ તે મહાપ્રભુને પ્રસન્ન કરવામાં અધિક આદરવાળી છે, તે **સત્પુરુષોના ચરણમાં પડવું તેજ મારે પરમ ફળ છે.**

ये वा तत्प्रियनन्दसूनुचरणासक्ताः पुनः स्वामिनो
दास्यं शुद्धतया तदीयहृदयाभिप्रायमातन्वते ।
ये जीवत्फलमेतदेव निखिलं बुद्ध्या सदा मन्वते
तेषामेव पदाम्बुजे मम रतिः सेवाफलं जायताम् ॥५॥

અર્થ:—જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીના પ્રિય નન્દનન્દનના ચરણોમાં આસક્ત છે. ફરી શ્રીઠાકુરજીનું દાસ્ય તેમના હૃદયના અભિપ્રાયને જાણીને શુદ્ધપણાથી કરે છે. અને જેઓ જીવવાનું બધું ફળ આજ છે એમ બુદ્ધિપૂર્વક માને છે, **તે ભગવદીયોનાં ચરણ કમલમાં સેવાના ફલરૂપ રતિ (પ્રેમ) મને થાઓ** ॥ ૫ ॥

ये तद्बोधनचातुरीकलनतः सन्तुष्टचित्ताः सदा
ये वा मानससेवनां तदुदितां मुख्यां परां जानते ।
ये 'दोषः सकलो निवृत्त' इति तद्विश्वासतो मन्वते
तेषामेव ममास्तु पादकमलद्वन्द्वे परा रेणुता ॥६॥

અર્થ:—જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીની સમજાવવાની ચાતુરીના વિચારથી સદા સન્તુષ્ટ ચિત્તવાળા છે અને જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીએ કરેલ માનસી સેવાને કેવલ મુખ્ય માને છે, જેઓ "મારો બધો દોષ નિવૃત્ત થયો છે" એમ તેઓશ્રી ઉપરના વિશ્વાસથી માને છે. **તે ભગવદીયોનાં બન્ને ચરણકમલમાં મને રજપણું થાઓ.**

ये गोपीपतिपादरेणुभजने श्रीवल्लभैकाश्रिता
ये वा दास्यपरम्परामुपगताः प्राप्ताः परां दीनताम् ।
ये "स्वीयं सकलं तदीय"मिति हृत्पङ्केरुहे मानयन्त्ये—
तेषामहमस्मि दासपदवीं प्राप्तः सदा जन्मनि ॥७॥

અર્થ:—જેઓ ગોપીપતિ શ્રીકૃષ્ણના ભજનમાં શ્રીવલ્લભાધીશના આશ્રયવાળા છે. જે દાસ્યની પરમ્પરાને પામ્યા છે, શ્રેષ્ઠ દીનતાને પ્રાપ્ત થયા છે. જેઓ હૃદયમાં બધું તે પ્રભુનું છે એમ માની રહ્યા છે. **સદાય જન્મમાં** (જન્મોજન્મે) **એવાઓની દાસપદવીને હું પ્રાપ્ત થયો છું.**

ये तद्रूपमहर्निशं स्वहृदये तापात्मकं सुन्दरं
साकारं सरसं रसात्मकतया ख्यातं हि जातं भुवि ।
नित्यं तत्परिचिन्तयन्ति सततं सङ्कीर्त्तयन्त्यादरात्
तेषां दैन्यभरेण मे प्रतिभवं दास्यं हि भूयात्फलम् ॥८॥

અર્થ:—જેઓ તાપાત્મક સુન્દર સાકાર સરસ રસાત્મકપણાથી પૃથ્વીમાં પ્રકટેલા અને પ્રસિદ્ધ, તે મહાપ્રભુજીના સ્વરૂપનું રાત્રિદિવસ ચિન્તન કરે છે અને આદરથી હમેશાં ગાય છે. **દીનતાના ભારથી પ્રતિભવ (પ્રતિજન્મ) તે ભગવદીયોનું દાસ્યજ મને થાઓ.** ૮

॥ इति श्रीहरिदासोक्तं दास्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ चोरासी वैष्णवकी वार्ता श्रीगोकुलनाथजी कीए ताको भाव श्रीहरिरायजी कहत हे सो लिख्यते ॥

समग्र वार्ता के उपर **श्रीहरिरायजीकृत भावात्मक लेखः—**

चोरासी वैष्णव को कारण यह हे जो दैवी जीव चोरासी लक्ष योनि में परे हें ॥ तिनमें ते निकासिवे के अर्थ चोरासी वैष्णव कीए ॥ सो जीव चोरासी प्रकारके हें ॥ राजसी तामसी सात्त्विकी निर्गुण ए चारि प्रकार के गिरे[1] ॥ तामें ते गुणमय राजसी तामसी सात्त्विकी रहन दीए ॥ सो श्रीगुसांईजी उद्धार करेंगे ॥ श्रीआचार्यजी विना श्री गोवर्द्धनधर रह न सके तो अपने अंतरंगो निर्गुण पक्षवारे चोरासी वैष्णव (प्रकट) कीए ॥ सो एक एक लक्ष योनिमें तें एक एक वैष्णव निर्गुण वारे के उद्धार वैष्णवद्वारा कीए ॥ ओर रसशास्त्रमें रसादिक विहारके आसन चोरासि वैष्णव कीए हे सो वर्णन कीये हें ॥ न्यारे न्यारे अंग के भावरूप ॥ चोरासि वैष्णव रसलीला संबंधी निर्गुण हे श्री ठाकुरजी के अंगरूप[2] ॥ तातें शास्त्र रीतिसों आसन चोरासी या भावसों अलौकिक हें ॥ ओर श्री आचार्यजी के अंग द्वादश हें सो स्वरूपात्मक हें । एक

---

१ राजसी तामसी चैव सात्त्विकी निर्गुणा तथा । एवं चतुर्विधा गोप्यः...फल० प्र अ० ३ को० ३

२ व्रज वृंदावन गिरि नदी पशु पंछी सब संग ।
इनसों कहा दूरावनो यह सब मेरो अंग ॥
(श्रीहरि०) याकी एकवाक्यता.

एक अंग में सात सात धर्म हें ॥ ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ए छह धर्म, एक धर्मी ॥ ए सातमें या प्रकार बारह सते चोरासि वैष्णव श्री आचार्यजी के अंग रूप अलौकिक सर्व सामर्थ्यरूप हें ॥ और साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम की लीला चोरासि कोस व्रजमें हें ॥ सो एक एक जीवकों अंगीकारि करि ॥ दैवि जीव जो चोरासि लक्ष योनिमें गिरे हें तिनको उद्धार करि चोरासि कोस व्रजमें जो जीव (जा) लीला संबंधी हें ॥ तिनकों तहां प्राप्त करन के अर्थ चोरासि वैष्णव अलौकिक प्रगट कीए ॥ यहभाव तें चोरासि वैष्णव श्रीआचार्यजी के हे सो एक दिन श्रीगोकुलनाथजी चोरासि वैष्णव की वार्त्ता करत कल्याण भट्ट आदि वैष्णव के संग रसमग्न होइ गए सो श्रीसुबोधिनीजी की कथा कहन की सुधि नांही ॥ सो अर्द्ध रात्रि होई गई ॥ तब एक वैष्णवने श्रीगोकुलनाथजी सों बिनती करि ॥ जो महाराजाधिराज आज कथा कब कहोगे ॥ अर्द्धरात्रि गई ॥ तब श्रीमुखतें श्रीगोकुलनाथजीनें कही ॥ आज कथाको फल कहत हें ॥ वैष्णव की वार्तामें सगरो फल जानीयो ॥ वैष्णव उपरांत और कछु पदारथ नाहि हें ॥ यह पुष्टि भक्तिमारग हें सो वैष्णवद्वारा फलित होयगो ॥ श्रीआचार्यजीहू यही कहते दमला तेरे-लिए मारग प्रगट कीयो हें ॥ तातें वैष्णव की वार्त्ता हे सो सर्वोपरि जानियों ॥ या प्रकार चोरासि वैष्णव श्रीआचार्यजी के निर्गुण पक्ष के मुखिया जानने ॥

अब रई राजसी तामसी सात्विकी गुणमय* तिनके उद्धारार्थ श्रीगुसांईजी नें चोरासि वैष्णव राजसि कीए ॥ चोरासि वैष्णव तामसि

* देखो निर्गुण सगुण भेद "वार्तामाहात्म्य"

कीए ॥ चोरासि वैष्णव सात्विकी कीए ॥ ये तिनों जूथ मिलिके दोयसे बावन भए ॥२५२॥ श्रीगुसांईजीके अंगसंबंधी हैं ॥ या प्रकार श्री आचार्यजी श्रीगुसांईजी के सेवक को भाव कहें ॥

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

શ્રીહરિરાયજીકૃત સમગ્ર વાર્તાઓ ઉપરના ભાવાત્મક લેખનું ટિપ્પણ

શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ ભગવદ્લીલાનું અસ્તિત્વ બતાવતાં, ચાર પ્રકારના જીવોનું આ લેખમાં નિરૂપણ કરે છે. ૪ પ્રકારો–૧ નિર્ગુણ, ૨ રાજસ, ૩ તામસ, ૪ સાત્ત્વિક. નિર્ગુણ ભક્તોનો શ્રીઆચાર્યચરણદ્વારા ઉદ્ધાર નિરૂપેલો છે. જ્યારે શેષ ત્રણ ગુણમય ભક્તોનો ઉદ્ધાર શ્રીગુસાંઈજીદ્વારા કહેલો છે,

જ્યારે શ્રીગોવર્દ્ધનધરે શ્રીઆચાર્યજીને દૈવી જીવોના ઉદ્ધારાર્થ ભૂતલમાં પ્રકટ થવાની આજ્ઞા આપી ત્યારે શ્રીઆચાર્યજી વિના શ્રીગોવર્ધનધર લીલામાં રહી ન શક્યા.* તે વખતે નિજ અંતરંગ–આધિદૈવિક ભાવરૂપ નિર્ગુણ ચોર્યાશી વૈષ્ણવોને પણ શ્રીઆચાર્ય-ચરણમાં જ અંગરૂપે સ્થાપી (પ્રકટ કરી) પૃથ્વી ઉપર તે તે ભાવરૂપ આધિદૈવિક વૈષ્ણવોના ભૌતિક સ્વરૂપના ઉદ્ધારાર્થ પ્રાકટ્ય કર્યું.

અત: તે અંતરંગી ચોર્યાશી વૈષ્ણવો શ્રીઆચાર્યજીના દ્વાદશ અંગ અને તેના સાત–૬ ધર્મ, ૧ ધર્મી–ભેદથી ભૂતલ વિષે શ્રીઆચાર્યચરણમાં જ ભાવરૂપે પ્રકટ થયા.

આ પ્રકારે ચોરાશી વૈષ્ણવોના ભૌતિક–લક્ષ ચોર્યાશી યોનિ સ્થિત–અને આધિદૈવિક–અંગરૂપ–એમ બે સ્વરૂપ અહીં નિરૂપ્યાં છે.

---

* પ્રત્યક્ષવિરહ (નંદદાસકૃત વિરહમંજરી)

રસશાસ્ત્રમાં નિરૂપેલાં રસાદિક વિહારનાં–તે શ્રીઠાકુરજીના સંબંધથી અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થયેલાં–ચોર્યાશી આસનોનાં સ્વરૂપ શ્રીઠાકુજીના અંગરૂપ એવા ઉપર વર્ણવેલા આધિદૈવિક ચોર્યાશી વૈષ્ણવોનાં છે.

અતએવ આ રસમય લીલા ચોર્યાશી કોસ વ્રજમાં સ્થિત છે. તે લીલાના સંબંધી ભૌતિક ચોર્યાશી સાધનરૂપ ભક્તોના તેમના જ આધિદૈવિક સ્વરૂપ દ્વારા, ઉદ્ધાર કરી તે તે લીલામાં પ્રાપ્તિ કરાવવી એ શ્રીઆચાર્યચરણના પ્રાકટ્યનું મુખ્ય કારણ છે અને તે પ્રાપ્તિના ફલાત્મક સાધનનું નિરૂપણ કરવું તે આ વાર્તા પ્રકટ કરવાનો મુખ્ય ઉદ્દેશ છે. આ માર્ગમાં સાધન અને ફલનું અભેદપણું કહેલું હોવાથી આ વાર્તાઓ પરમ ફલરૂપ છે. આજ પ્રકારે શ્રીગુસાંઈજીના અંગસંબંધી ૨૫૨ સગુણ ભક્તોનું ભૌતિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપ નિરૂપેલું છે.

શ્રીહરિરાયજી કૃત ભાવાત્મક લેખનું સ્વારસ્ય:–

જેવા પ્રકારથી શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીમદ્ભાગવતના ચાર અર્થરૂપ આનંદમય શ્રીહરિ અને તેની લીલાનાં દર્શન નિબંધમાં કરાવ્યાં છે તેવા જ પ્રકારે શ્રીહરિરાયજીએ આ વાર્તાઓના ચાર અર્થરૂપ પરમાનંદસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજી અને તેમની ભાવાત્મક લીલાનાં દર્શન આ લેખમાં કરાવ્યાં છે. શ્રીભાગવતના શેષ ત્રણ અર્થરૂપ શ્રીહરિનાં સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીસુબોધિનીમાં સ્થાપ્યાં છે, તેમ શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાના અર્થરૂપ શેષ ત્રણ સ્વરૂપ "ભાવપ્રકાશ" માં સ્થાપ્યાં છે.

આ લેખમાં દર્શાવેલાં શ્રીઆચાર્યજીનાં ચાર સ્વરૂપો આ પ્રમાણે છે:—

૧ " तातें अपने अंतरंगी निर्गुण पक्षवारे चोरासि वैष्णव (प्रकट) कीए "

અંતરંગી=આધિદૈવિક, નિર્ગુણ પક્ષવારે વૈષ્ણવ=દેહભાવરહિત

પુરુષાકાર સુધા–**बर्हापीडं नटवरवपुः**–સ્વરૂપ સાથે ભાવાત્મકરીતે વિલસનારા ભક્તોને પ્રકટ કર્યા.

જ્યાં જે પ્રકારના ભાવના ભક્તોનું પ્રાકટ્ય હોય, ત્યાં તે પ્રકારના ભાવાત્મક પ્રભુનું પ્રાકટ્ય અવશ્ય રહેલું જ છે. તેથી અહીં સુધાસ્વરૂપનું પ્રાકટ્ય કહેલું છે.

२ " ओर रसशास्त्रमें रसादिक विहार के आसन (रूप) चोरासी वैष्णव कीए हे । न्यारे न्यारे अंग के भावरूप । चोरासि रसलीला संबंधी निर्गुण हे । "

અહીં આસનશબ્દથી પાત્રરૂપતા કહેલી છે. રસની સ્થિતિ સ્ત્રીઓમાં જ છે જેથી તે રસના પાત્રરૂપ છે. અને લીલાશબ્દથી સંયોગત્વ પણ સિદ્ધ જ છે. આ લીલાની સ્થિતિ સ્વામિનીભાવ વિના નથી. અતઃ અહીં "**स्वामिनोभावसंयुक्त**" ઇત્યાદ્યુક્ત શ્રીઆચાર્યજીનું પરમાનંદરૂપ ગૂઢસ્ત્રીભાવ સ્વામિનીસ્વરૂપનું પ્રાકટ્ય કહેલું છે.

३ " ओर श्रीआचार्यजी के अंग द्वादश हे सो स्वरूपात्मक हे ।

અહિં દ્વાદશ અંગ શબ્દથી સાકાર પુરુષોત્તમનું પ્રતિપાદન છેઃ કારણ કે "**द्वादशो वै पुरुषः**" પુરુષ નિશ્ચયે દ્વાદશાંગ છે એમ શ્રુતિ કહે છે. અને તે પુરુષોત્તમ આનંદરૂપ છે. તેથી શ્રીઆચાર્યજીનું નામ પણ "**आनंद**" એમ છે. અને તે ભગવદ્ભાવરૂપ છે. જેથી શ્રીહરિરાયજી આજ્ઞા કરે છે કે "**भगवद्भावभावितः**"।

४ " चोरासि कोस व्रजमें जो जीव जा लीला को संबंधी हे तिनकों तहां प्राप्त करन के अर्थ चोरासि वैष्णव अलौकिक प्रगट कीए ॥"

અહિં કેવલ વિપ્રયોગાત્મક કૃષ્ણાસ્યસ્વરૂપ કહેલું છે. વિપ્રયોગ વિના કોઈ પણ વસ્તુની પ્રાપ્તિ નથી જ. અતઃ આપે વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપે ભૂતલ ઉપર પધારીને, દૈવી જીવોને સ્વતાપાત્મક સ્વરૂપનું દાન કરી શુદ્ધ કર્યા અને ભગવદ્લીલાના સંબંધને પ્રાપ્ત કરાવ્યા.

આ પ્રકારે આ લેખમાં શ્રીઆચાર્યજીનાં ચાર સ્વરૂપો કહ્યાં છે.×

॥ श्रीद्वारिकेशो जयति ॥

કુંજ પ્રકરણ —: समस्त लीला प्रकरण:—

ચોર્યાશી કોસ વ્રજમાં ચોરાસી કુંજ મુખ્ય છે.

રસિક પુરુષો અને મહાત્માઓના નિકુંજાદિવર્ણનમાં અનેક મત છે. તેને પરસ્પર વિરુદ્ધ જોઈને શંકા કરવી નહિ. કારણ કે આ નિકુંજલીલા ભાવસિદ્ધ છે.જેનો જેવા ભાવનો અધિકાર હોય તેને તેવા પ્રકારના ભાવાત્મક સ્વરૂપનાં દર્શન થાય છે. રહસ્યપુરાણમાં ૯૩ કોટિ રાસલીલાનું વર્ણન છે. અને ૯૩ કોટિ કુંજો પણ છે. વૃંદાવન બે છે. એક પૃથ્વી ઉપરનું અને બીજું ગોલોકનું નિત્યવૃંદાવન– આ નિત્ય વૃંદાવનનો જ આવિર્ભાવ ભૌતિક વૃંદાવનમાં ભગવત્ક્રીડાર્થે થયેલો છે. એટલે આ ભૌતિક વૃંદાવન પણ તદ્રૂપ જ છે. એવા જ પ્રકારે શ્રીગોકુલ ગોવર્ધન આદિ છે. જેથી વારાહપુરાણમાં તીર્થરાજ પ્રયાગના સમક્ષ પ્રભુએ વ્રજને પોતાનું ઘર કહેલું છે.

આ નિત્યલીલાના શ્રીમદ્‌ગોકુલ આદિ સ્થલોના ભૌતિક ગોકુલ આદિ ધામોમાં આવિર્ભાવનો પ્રકાર શ્રીગુસાંઈજીએ વિદ્વન્મંડનમાં નેત્રના દૃષ્ટાંતથી સમજાવ્યો છે.

જેમ અસલ નેત્રેન્દ્રિય આ દેખાતા પ્રાકૃત ચક્ષુની અંદર રહેલી છે, (આ વાત આજના ડૉકટરી વિજ્ઞાનથી સિદ્ધ થાય છે.) અને તેથી જ આ નેત્રમાં તેની તદ્રૂપતા હોઈને આ ભૌતિક નેત્રદ્વારાજ સર્વ વસ્તુ પ્રત્યક્ષ થઈ શકે છે. તેવા જ પ્રકારે આ દેખાતા ભૌતિક

× આ, શ્રીહરિરાયજીના ભાવરૂપ લેખનું મૂલ સાધનપ્રકરણ છે. તેમાં વ્રતચર્યાપ્રસંગના "वयस्यैरागतस्तत्र" આદિ શ્લોકોનાં શ્રીસુબોધિનીજીમાં આધિદૈવિક ભાવરૂપ અંતરંગ ભક્તોની અંગરૂપે સ્થિતિ આદિનો પ્રકાર શ્રીઆચાર્યચરણે સમજાવ્યો છે. જિજ્ઞાસુઓએ ત્યાં જોવું. સ્થલસંકોચથી અહિં તે ન લખતાં ખાલી સૂચના માત્ર કરી છે.

શ્રીમદ્ગોકુલ આદિના સેવનથી જ સર્વ લીલાનો સાક્ષાત્કાર થઈ શકે છે. કારણ કે તે નિત્યલીલાના શ્રીમદ્ગોકુલ આદિ નિત્ય ધામોથી તદ્રૂપતાને પ્રાપ્ત થયેલાં છે.

આવા જ પ્રકારે શ્રીહરિરાયજીના સમગ્ર વાર્તા ઉપરના લેખમાં રહેલાં વૈષ્ણવોનાં બે સ્વરૂપો જાણવાં. ભૌતિક અને આધિદૈવિક સ્વ-રૂપોની ભાવ અને અંગરૂપે સ્થિતિ હોવાથી તેમના સન્મુખ થતાં માત્રથી જ ભૌતિક સ્વરૂપમાં શ્રીઆચાર્યજી દષ્ટિદ્વારા તેમના આધિદૈ-વિક મૂલ સ્વરૂપોનો પ્રવેશ કરાવે છે. તેથી વૈષ્ણવો અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થાય છે—

આ ભાવાત્મક સ્વરૂપોના સ્થાપનનો પ્રકાર વ્રતચર્યાપ્રસંગનાં શ્રીસુબોધિનીજીમાં શ્રીઆચાર્યચરણે સારી રીતે સમજાવ્યો છે. પૂતના દ્વારા શોષેલાં કુમારિકાઓના પુંભાવરૂપ સ્વરૂપોને શ્રીઠાકોરજીએ દષ્ટિ-દ્વારા કુમારિકાઓમાં સ્થાપી રસયોગ્ય કર્યાં છે. અસ્તુ.-

૯૩ કોટિ કુંજોમાં ચોર્યાશી કુંજ મુખ્ય છે. માટે તે તે કુંજના અધિ-કારી નિર્ગુણ ચોરાશી સેવકો શ્રીઆચાર્યચરણે અંગીકાર કર્યા.

હવે ચોર્યાશી કુંજોનાં નામ લખીએ છીએ :—

૧ પ્રીતિકુંજ, ૨ પ્રેમકુંજ, ૩ કંદર્પકુંજ, ૪ લીલાકુંજ, ૫ મજ્જનકુંજ, ૬ વિહારકુંજ; ૭ ઉત્કણ્ઠ કુંજ, ૮ મોહન કુંજ, ૯ યુગલ કુંજ, ૧૦ હાવકુંજ, ૧૧ ભાવકુંજ, ૧૨ કટાક્ષકુંજ, ૧૩ અલક કુંજ, ૧૪ મુક્તાકુંજ, ૧૫ ભ્રૂકુંજ, ૧૬ વેણીકુંજ, ૧૭ રોમરાજિકુંજ ૧૮ નીવીકુંજ, ૧૯ કટિક્ષીણકુંજ, ૨૦ માનકુંજ, ૨૧ ભ્રમનકુંજ, ૨૨ તિષ્ઠનકુંજ, ૨૩ સંગીતકુંજ, ૨૪ આલસ્યકુંજ, ૨૫ કલકૂજિત કુંજ, ૨૬ વિવિધાકાર કુંજ, ૨૭ દુકુલકુંજ, ૨૮ નેત્રકુંજ, ૨૯ કુંડલકુંજ, ૩૦ હારકુંજ, ૩૧ તામ્બૂલકુંજ, ૩૨ આડકુંજ, ૩૩ લાવણ્યકુંજ, ૩૪ હાસ્યકુંજ, ૩૫ ઉત્સાહકુંજ, ૩૬ ઉગ્રતાકુંજ, ૩૭ કોકિલાલાપકુંજ, ૩૮ ગ્રીવકુંજ, ૩૯ આલિંગનકુંજ, ૪૦ ચુમ્બનકુંજ, ૪૧ અધરપાન

કુંજ, ૪૨ દર્શનકુંજ, ૪૩ દર્પનકુંજ, ૪૪ પ્રલાપકુંજ, ૪૫ ઉન્માદકુંજ ૪૬ દર્પકુંજ, ૪૭ ઉત્સાદનકુંજ, ૪૮ ઉત્કર્ષકુંજ, ૪૯ દીનકુંજ, ૫૦ અધીનકુંજ, ૫૧ સુરતકુંજ, ૫૨ આકર્ષણકુંજ, ૫૩ ઉચ્ચાટનકુંજ, ૫૪ મૂર્છાકુંજ, ૫૫ વશીકરણકુંજ, ૫૬ સ્તમ્ભનકુંજ, ૫૭ પ્રિયાસ્કન્ધારોહણકુંજ, ૫૮ આવેશકુંજ, ૫૯ વાર્તાલાપકુંજ ૬૦ પર્યંકકુંજ, ૬૧ પ્રિયાચરણતાડકાનકુંજ, ૬૨ નખક્ષતકુંજ, ૬૩ દન્તક્ષતકુંજ ૬૪ ક્ષપિતરંગકુંજ, ૬૫ વિગતાભરણકુંજ, ૬૬ ભૂષણકુંજ, ૬૭ કંપકુંજ, ૬૮ રતિપ્રલાપકુંજ, ૬૯ તુત્તલગિરકુંજ, ૭૦ પ્રિયાવાસભવનકુંજ, ૭૧ મદનગુહ્યકુંજ, ૭૨ આસક્તપુંજકુંજ, ૭૩ પરમરસકુંજ, ૭૪ પીડાવાદાકુંજ, ૭૫ સુરતશ્રમનિષેધકુંજ, ૭૬ હુતુકકુંજ, ૭૭ વાગ્વિભ્રમ કુંજ, ૭૮ વ્યવસ્તભાવકુંજ, ૭૯ કામટંકકુંજ, ૮૦ કિંકિનીરવકુંજ, ૮૧ વીરવિપરીતકુંજ—સુરતાન્તકુંજ, ૮૨ કલિકાકૌતુકકુંજ, ૮૩ સુરતકુંજ, ૮૪ સહજપ્રેમકુંજ.

આ પ્રકારે ભાવાત્મક ચોર્યાશી કુંજો કહી. આ કુંજોમાં એક એક કુંજમાં બધી કુંજો અન્તરભાવથી રહે છે. અને કોઈ કોઈ જગાએ પ્રકાશિત થઈને રહે છે.

હવે બીજું કેટલુંક મુખ્ય લીલાનું રહસ્ય વર્ણન કરીએ છીએ. પ્રથમ શ્રીઠાકોરજી અને શ્રીસ્વામિનીજીના સ્વરૂપને જાણવાને અર્થે તેમનાં રહસ્યરૂપ સ્વરૂપોનું વર્ણન કરીએ છીએ :—

વ્રજમાં સપ્તાવરણસ્વરૂપ શ્રીઠાકોરજીનાં બિરાજે છે તે આ પ્રકારે:- વાસુદેવ, સંકર્ષણ, પ્રદ્યુમ્ન, અનિરુદ્ધ, કાલાત્મા, સંયોગરસાત્મક, અને વિપ્રયોગરસાત્મક, જ્યારે પૂર્ણ પ્રભુનું પ્રાકટ્ય થાય (સારસ્વતકલ્પમાં) ત્યારે ૭ સ્વરૂપ શ્રીમથુરાજીમાં પ્રકટ થાય છે અને વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ વ્રજમાં પ્રકટે છે. તે સાતે સ્વરૂપની સ્થિતિ આ પ્રકારે જાણવી :—

પૂતનાવધમાં સંકર્ષણ. ધર્મપાલનમાં અનિરુદ્ધ—લઘુરાસસમયે પ્રથમ ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો ત્યારે અને દ્વારકામાં.

કામચાર પ્રદ્યુમ્ન–કુબ્જાને ત્યાં પધાર્યા ત્યારે.

રાજલીલામાં વાસુદેવ–મુચુકુંદપર કૃપા કરી ત્યાં.

મહાભારતમાં કાલાત્મા–(કાલાત્મા=**काल के काल ईश ईशन के**)

'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।'

ગીતા ૧૧–૩૧

नंदस्त्वात्मज उत्पन्ने સંયોગાત્મક સ્વરૂપ–તેજ વસુદેવજીને ત્યાં પ્રાકૃત શિશુ થયા '**बभूव प्राकृतः शिशुः**'

વિપ્રયોગાત્મસ્વરૂપ વ્રજમાં સ્થિત છે. મથુરા પધારતી સમયે શ્રીસ્વામિનીજીના હૃદયઅંતર્ગત વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ પ્રવેશ્યું–આ સ્વરૂપ મથુરા નથી પધાર્યું. સદા તે તો વ્રજમાં જ બિરાજે છે.

અન્ય કલ્પોમાં આ સાતમાંથી એક અથવા બે એમ પ્રાકટ્ય થાય છે માટે તે અંશાત્મક રૂપે પ્રકટે છે, પૂર્ણ રૂપે નહિ. શ્રીભાગવતમાં સારસ્વતકલ્પની લીલા છે. માટે "**कृष्णस्तु भगवान् स्वयं**" એમ કહેલું છે.

આવીજ રીતે શ્રીસ્વામિનીજીનાં સાત સ્વરૂપ છે :—

૧ શ્રીશક્તિ, ૨ ભૂશક્તિ, ૩ લીલાશક્તિ, ૪ મનોરથાત્મક, ૫ સ્વામિન્યાત્મક, ૬ સંયોગાત્મક, ૭ વિયોગાત્મક.

સારસ્વત કલ્પમાં સાતે રૂપથી પ્રકટે છે. અન્ય કલ્પમાં એક બે રૂપે પ્રકટે છે—

પ્રથમના પાંચ સ્વરૂપનું કીર્તિજીને ત્યાં પ્રાકટ્ય છે શ્રીઠાકુરજીના પ્રાકટ્યના પછી પંદર દિવસે અને જ્યારે શ્રીઠાકોરજીનું પ્રાકટય થયું ત્યારે તેની સાથે માયાવૃત સંયોગરસાત્મક સ્વરૂપ પ્રકટયું (નંદાલયમાં) અને વિયોગરસાત્મક સ્વરૂપ બે વર્ષ પહેલાં સેવાકુંજમાં પ્રકટયું છે.

જ્યારે કીર્તિજી પોતાને ત્યાંથી શ્રીસ્વામિનીજીને નંદાલયમાં

પધરાવી લાવ્યાં ત્યારે શ્રીઠાકોરજી માતાની ગોદમાં હસ્યા. તે સમયે પાછળનાં બન્ને રસાત્મક સ્વરૂપો પહેલાના કીર્તિજીની પાસેનાં આધારભૂત પંચવર્ણાત્મક સ્વરૂપમાં સ્થાપન (શ્રીઠાકોરજીએ) કર્યાં. આ પ્રકારે બન્નેનાં વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ પરસ્પર હૃદયમાં વિદ્યમાન છે. [**सौंदर्यपद्य**નું ચિંતન અહીં કરવું] જ્યારે શ્રીઠાકોરજી મથુરાજી પધાર્યાં ત્યારે તે વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ શ્રીસ્વામિનીજીના હૃદયમાં પૂર્ણરૂપે સ્થાપ્યું. મથુરામાં આ સ્વરૂપનું ગમન નથી.

શ્રીસ્વામિનીજીનું મનોરથાત્મક જે સ્વરૂપ છે તેમાં અન્ય (સ્વામિની)ના પ્રભુથી રમણ કરવાના મનોરથ તથા વરદાન આદિથી જે સ્વામિની પ્રકટે છે તે મળી રહે છે. અને સ્વામિન્યાત્મક સ્વરૂપમાં પ્રતિકુંજ પ્રતિમંડલ પ્રતિયૂથમાં જે સ્વામિનીજીના અંશ સ્વરૂપ હોય છે તેમની એકતા છે.

પુષ્ટિ સંપ્રદાયના મતે અષ્ટ સખીનાં નામ આ પ્રકારે છે;— શ્રીચન્દ્રાવલીજી, શ્રીલલિતાજી, શ્રીવિશાખાજી, શ્રીચમ્પકલતાજી, શ્રીચન્દ્રભાગાજી, શ્રીરાધાસહચરી, શ્રીશ્યામાજી અને શ્રીભામાજી આ આઠમાં શ્રીચન્દ્રાવલીજીને સ્વામિનીત્વ છે અન્ય સાતને સખીત્વ છે. તેથી પંચાધ્યાયીમાં અન્તર્ધાન અને આવિર્ભાવ અને મહારાસમાં **काचित् काचित्** કરીને સાત જ ગણાવ્યાં છે. *

(શ્રીચંદ્રાવલીજીના પ્રાકટ્ય આદિનો સર્વ પ્રકાર ભગવદિચ્છા હશે તો હવે પછી ગ્રન્થ પ્રકટ થશે તેમાં આપીશું. મુદ્રણખર્ચની પૂર્તિ થઈ નથી એટલે વાંચકોએ આટલાથી સંતોષ માનવો.)

રસિક ભક્તો માટે ધ્યાનાર્થ લલિતાજીનાં સ્વરૂપ, સેવા આદિનું કોષ્ઠક આપ્યું છે.

---

* આ સમસ્ત પ્રકરણ યુગલસર્વસ્વ અને અન્ય પ્રાચીન પુસ્તકોમાંથી ઉદ્ધૃત કર્યું છે.

નામ	લીલાનું સ્વરૂપ.	રંગ		
દામોદરદાસ હરસાની	લલિતાજીનું સ્વરૂપ	ગોરોચનપ્રભા ઉજ્વલલાલાશયુક્ત		
વસ્ત્રનો રંગ.	મુખ્ય સેવા	ચાતુર્ય	ભાવ	વાદ્ય
મયૂર પિચ્છ	પાનની બીડી	મધ્યામુખ્ય સ્નેહવર્દ્ધન	સખ્ય	બીન

श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ હરસાનીજીની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય.

આ સમગ્ર વાર્તા શ્રીભાગવતના દશમસ્કંધનિરોધરૂપ અને તેના પરમ ફલ-ભાવ-રૂપ છે. આમાં પરમ નિર્દુષ્ટ શબ્દાત્મક આંતર રમણનું વર્ણન છે, જેથી તે તામસ ફલપ્રકરણના પણ ફલ-ભાવ-રૂપ છે. આ વાર્તાનું મૂલ યુગલગીતમાં છે. આ પરમ ફલરૂપ શબ્દાત્મક લીલા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયમાં સ્થિત છે. અતઃ આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના પરમ નિગૂઢ હૃદયરૂપ છે, અને તેમાં ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક નિરોધનું સ્વરૂપ રહેલું છે.

एवमेव स्थितिर्ज्ञेया स्वामिनीहृदयेषु हि ।
सैवास्मदाचार्यवर्यैर्'नमामी'त्यत्र रूपिता ॥ (स्व. मा. से. फ. नि.)

શ્રીભાગવતના દશમસ્કંધના પારિભાષિક તામસ, પરંતુ વસ્તુતઃ નિર્ગુણ પ્રકરણમાં પ્રમાણ, પ્રમેય, સાધન અને ફલનું નિરૂપણ છે. તેમ અહિં પણ તે ચારેનું નિરૂપણ છેઃ—

પ્રસંગ ૧માં બ્રહ્મસંબંધની આજ્ઞા સમયેઃ—

"**साक्षाद्भगवता प्रोक्तं**" ત્યાં ભગવદાજ્ઞા, એ આ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણરૂપે સ્વીકારાઈ છે.

"प्रमाणं भगद्वाक्यमाविर्भूयोदितं हि यत् । (स्व. मा. म. नि.)

તે આજ્ઞાસમયે સાક્ષાત્ પ્રભુનું પ્રાકટ્ય તેજ આ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમેયરૂપ કહેવાય છે. "**प्रमेयो हरिरेवात्र**"

તે સમયે પુષ્ટિમાર્ગનો પ્રાદુર્ભાવ–ગદ્યમંત્રરૂપે "**भगवन्नामोपदेशकः**" (સં. વા.) – તેજ સાધનરૂપ કહેલ છે. "**साधनं भगवन्मार्गः**", અને તેજ ફલરૂપે છે. કારણ કે આ માર્ગમાં ફલ અને સાધન એક જ છે. "**फलं साधनमेव हि**"

બીજા પ્રકારે ભગવત્પ્રાકટ્ય એજ ભક્તિમાર્ગમાં ફલ કહેવાય છે. **भक्तिमार्गे भगवतः प्राकट्यं फलमुच्यते**" આથી અહીં ભગવાનનું સાક્ષાત પ્રાકટ્ય એ ફલ જાણવું.

આ પ્રકારે બ્રહ્મસંબંધના પ્રસંગમાં ચારે વસ્તુનું નિરૂપણ કર્યું છે.

આ નિરોધ તેજ ફલરૂપ આધિદૈવિક માનસી છે. **चेतस्तत्प्रवणं सेवा मानसी फलरूपिणी। प्रोक्ता निरोधरूपा ॥२॥ (स्व. मा. से. फ. नि॰)** અને તેનું દાન શ્રીઆચાર્યચરણે દામોદરદાસજીને કર્યું છે. "**रसभावभृतां नित्यं**" **(सं. वा.)** જેથી દામોદરદાસ શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયનું સ્વરૂપ છે, અને તેમની વાર્તા તે પરમ ફલરૂપ નિરોધલીલાનું સ્વરૂપ છે.

આ નિરોધાત્મક પુષ્ટિમાર્ગનું પ્રાકટ્ય કેવલ દામોદરદાસજીના અર્થેજ છે. આ માર્ગના અધિકારી સર્વ દૈવી જનોના મૂલ આધિદૈવિક રૂપ દામોદરદાસજી જ છે. માટે શ્રીઆચાર્યજી આજ્ઞા કરે છે કે "**दमला, यह मार्ग तेरे लिए प्रकट कीयो हे**" "**पुष्टिपथस्तव हितार्थं वै प्रकटितः**" **(सं. वा. શ્લો. २५)**

જેઓમાં આવા પ્રકારની (ભાવાત્મક નિરોધરૂપ) પ્રભુની સ્થિતિ હોય તે સ્વતંત્ર–નિર્ગુણ–ભક્તો કહેવાય. અને આજ પ્રકારે તે પુષ્ટિભક્તિ–આધિદૈવિક નિરોધરૂપા માનસી–પણ સ્વતન્ત્ર કહી કહી શકાય. "**स्वतंत्रभक्तास्ते**" **(स्व० मा० से० फ० नि०)**

આવા સ્વતન્ત્ર ભક્તિવાળા ભક્તોમાં મૂર્તિની માફક પ્રભુનો આવેશ થાય છે, અને તે ભક્તો નિત્ય અને મૂર્તિની માફક સેવનીય

હોય છે. દામોદરદાસજીનું આવા પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. માટે જ શ્રી ગુસાંઈજી આજ્ઞા કરે છે કેઃ–" **वार्ताम्प्रायस्तवास्यतः** " (**सं. वार्ता**)

પ્રશ્નઃ—જ્યારે તમો દામોદરદાસજીની વાર્તાને નિરોધલીલા કહો છો, તો શ્રીમદ્‌ભાગવતમાં દશમસ્કંધ સમગ્ર નિરોધરૂપ હોઈ તેમાં જન્મપ્રકરણ–રાજસ પ્રકરણ સાત્ત્વિક પ્રકરણ ગુણ પ્રકરણ આદિ છે, તે આ વાર્તામાં ક્યાં છે?

ઉત્તરઃ—તમારો પ્રશ્ન યથાર્થ છે. પરંતુ પ્રશ્નનો જવાબ શ્રીહરિરાયજીકૃત ભાવરૂપ લેખમાં આવી ગયેલો છે. તેમાં લખ્યું છે કે ૮૪ વૈષ્ણવો નિર્ગુણ છે, અને શ્રીઆચાર્યજીના અંગના ભાવરૂપ છે. તેથી તેમની વાર્તાઓ પણ તે તે અંગની લીલાના ભાવરૂપ છે. એટલે નિર્દુષ્ટ શબ્દાત્મક રમણરૂપ છે. એમાં ગુણમય ક્રિયાપ્રાધાન્ય સંયોગાત્મક લીલાની સંભાવના હોય જ નહિ. આ વાર્તાઓમાં કેવલ ભાવાત્મક પ્રભુની જ સ્થિતિ છે. જેથી આ નિરોધલીલારૂપ દામોદરદાસજીની વાર્તા ભાવાત્મક હોઈ પરમ ફલરૂપે કહી છે.

બીજું જન્મપ્રકરણ સંબંધી એવું કહેવાનું છે કે—આ વાર્તામાં ભાવાત્મક શ્રીગોપીજનવલ્લભનું સાક્ષાત્ પ્રાકટ્ય પણ બ્રહ્મસંબંધના પ્રસંગમાં આવી ગયું છે. વળી વિશેષમાં જેમ શ્રીકૃષ્ણના જન્મનો અલૌકિક પ્રકાર (**कालः परमशोभनः**)શ્રીભાગવતમાં વર્ણવ્યો છે. તેમ સ્વયં પરમ ભાગવત શ્રીદામોદરદાસજીએ શ્રીગુસાંઇજી સમક્ષ શ્રીઆચાર્યજીના અલૌકિક પ્રાકટ્યના પ્રકારનું વર્ણન કરેલું છે, અને તેનો શ્રીગુંસાંઈજીએ શ્લોકબદ્ધ " સહસ્રકૃત ? " નામનો ગ્રન્થ પણ રચેલો છે. (જુઓ સંવાદ) તે ગ્રન્થ શ્રીગોકુલનાથજી પાસે હતો. આપના લીલામાં પધાર્યા બાદ બલીયા (?) ના હાથ લાગ્યો (હાલ અપ્રાપ્ય છે.) એથી સંભવ છે કે શ્રીગોકુલનાથજીએ ભાવરૂપ શ્રીઆચાર્યજીના જન્મનો પ્રકાર વાર્તામાં યોજ્યો નહિ હોય.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

दामोदरदास हरसानी की वार्ता.

जन्म (१) शरण आये पहेले को प्रकार *

– भौतिक स्वरूपको प्रसंगः –

पाछे आप श्रीआचार्यजी आगे पधारे ॥ तहां एक बडो नगर–वृद्धनगर (वर्धा)–आयो ॥ सो वा ठोर एक बडो नगरशेठ हतो ॥ सो क्षत्री हतो ॥ वाके चार बेटा हुते ॥ सो तीन बेटा तो बडे हते ॥ ओर सबतें छोटे दामोदरदास हते ॥ सो उन चारि भाईनने बिचार कियो ॥ जो होंई तो यह द्रव्य अपनो अपनो हम चारों भाई बांटि लेई ॥ काहेते जा द्रव्य हे सो क्लेश को मूल हे ॥ पाछे हमारो आपस में हित न रहेगो ॥ दामोदरदास तो छोटे हते ॥ सो इनसों कहे ॥ क्यों बाबा तू अपने बांटेको द्रव्य लेईगो ॥ तब दामोदरदास कहे में तो कछु समुझत नांहि ॥ तुम बडे हो ॥ आछो जानो सो करो ॥ तब इनने द्रव्य सब घरमेंसु काढी ॥ वाके चारि बांट किए॥ सो चारि चिठ्ठी लिख के वाके उपर डारि ॥ सो जा जाके नाम की चिठ्ठी आई ॥ सो सो वाने लीयो ॥ तब दामोदरदास सों कही ॥ तुमारो द्रव्य जहां तुम कहो वहां धर ॥ ता समें दामोदरदास गोखमें बैठे हते ॥ सो गोख के नींचे राज-मारग हतो ॥ सो ता समें श्रीआचार्यजी महाप्रभु वा मारग होई निकसे ॥ सो उपरतें दामोदरदास की दृष्टि परी ॥ सो तत्काल ऊठी दोरे ॥ न कछु द्रव्य की सुधि रही । न कछु घर की सुधि रही ॥ सो आवत ही श्री आचार्यजी महाप्रभु को साष्टांग दंडवत् कीये ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु

* कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त प्राचीन स्फुट लेखसुं उद्धृत.

श्रीमुखतें कहें ॥ जा दमला तू आयो ॥ तब इनने कही, महाराज, हों कब को मारग देखुं हूं ॥ सो श्रीमहाप्रभुजी के चरणारविंद के पाछे पाछे दामोदरदास चले ॥ सो पाछे भाई कहन लगे ॥ जो दामोदरदास कहां गए ॥ तब काहुने कही जो या मारग में एक लरिका × जात हुते ॥ तिन के पाछे पाछे दामोदरदास जात हे ॥ तब ये तीन्यों भाई उहां ते चले ॥ सो आगे वा नगर के बाहर एक स्थल हुतो ॥ तहां श्रीआचार्यजी आप विराजे हे ॥ आगे दामोदरदास बेठे हे ॥ तब इह देखत ही तिन्यों भाई चकित होय गये ॥ सो ईनकों श्रीआचार्यजी के दर्शन साक्षात तेजपुंज के भए ॥ सो इनतें कछु बोल्यो न गयो ॥ अपुने मन में विचारे जो कदाचित कछु बोलेंगे ॥ तो इह अग्नि हम को भस्म कर डारेगी ॥ तब दामोदरदास भाईन कों देखिकें कह्यो ॥ जो जाउ ॥ सो भाईन दामोदरदास को स्वरूप ता समय तेजोमय देखें ॥ सो भय खाय के पीछे फिर आए*[1] ॥ जो दैवी जीव होते तो शरन आवते ॥ श्रीआचार्य-जी को नाम दैवोद्धारप्रयत्नात्मा हे ॥ तब दामोदरदास को संग लेकें श्रीआचार्यजी आगें पधारे ॥ दामोदरदास कछु ब्याहे तो हते नांहि ॥ जो इनकों स्त्री आदि आइ के प्रतिबंध करे ॥ बहोत दिना के बिछुरे हते ॥ सो आय मिले ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु की संग दामोदरदासजी चले ॥ सो आगे फेर विद्यानगर कछुक दिन में पधारे ॥

× संवत १५४६ में श्रीआचार्यजी वा समय ११ वर्षके हते ।

*१ આ ત્રણ ભાઇઓ ઉદ્વેગ, પ્રતિબંધ, અને લૌકિક ભોગનાં સ્વરૂપો છે. દામોદરદાસ નિરોધરૂપ માનસી સેવાનું સ્વરૂપ છે. જેથી તે આધિદૈવિકી સેવામાં ઉદ્વેગ આદિ ત્રણે વસ્તુ પ્રતિબંધરૂપ હોઈ શ્રીઆચાર્યજીએ પોતાના આધ્યાત્મિક અગ્નિસ્વરૂપનાં દર્શન દેઈ તે ત્રણેને ભય ઉત્પન્ન કરાવી દૂર કર્યા.

દામોદરદાસજીનો શેષ રહેલો ભૌતિક ઇતિહાસ.

દામોદરદાસજીના પિતાનું નામ થીરદાસ * અને માતાનું નામ જસોદા હતું. થીરદાસનો જન્મ સંવત ૧૪૫૫ માં થયો હતો. તેઓ શ્રીરંગપટ્ટમમાં રહેતા હતા. લગભગ સં. ૧૫૦૦ સુધી તેમને કોઈ સંતાન ન હતું. થીરદાસ દ્રવ્યપાત્ર અને ધર્મનિષ્ઠ હતા. તેઓ જ્ઞાતિએ ક્ષત્રિય હતા. થીરદાસની અટક 'હરિશરણી' હતી. તેઓ શ્રીરંગ-પટ્ટમમાં એક પ્રતિષ્ઠિત વ્યક્તિ તરીકે ગણાતા હતા. ગામમાં તેમણે બે ધર્મશાળાઓ પણ બંધાવી હતી. તે ધર્મશાળામાં ઉતરતા સાધુ યાત્રીઓનો તેઓ સારી રીતે સત્કાર કરતા હતા, તેમજ તેઓ મહાત્માઓની સેવા અને સંગમાં પણ પ્રીતિવાળા હતા.

એક દિવસે કોઈ એક મહાપુરુષ તેમને ત્યાં આવેલા. થીરદાસે તે મહાપુરુષની સારી સેવા કરી. ત્યારે મહાપુરુષે પ્રસન્ન થઈ તેમને ત્યાં ચાર પુત્રો થવાનું વરદાન આપ્યું. અને ચોથો પુત્ર હરિભક્ત થશે તેમ કહ્યું. એ પ્રમાણે થીરદાસની નિષ્કામ સેવાથી પ્રસન્ન થઈ વરદાન આપી તે મહાપુરુષ ગામમાંથી ચાલી નીકળ્યા.

થીરદાસે પુત્ર થવાની આશા છોડી દીધી હતી. તેમને પ્રાપ્ત થતી વૃદ્ધાવસ્થા જોતાં તે વાત બનવી અસંભવ જેવી હતી. છતાં હરિની સમાન કોટિના ભક્તો હરિની માફકજ સમાન ધર્મવાળા હોય છે, જેથી તેઓ અન્યથા પણ કરી શકે છે. તે ન્યાયે મહાપુરુષના થયેલા વરદાનથી થીરદાસને ચાર પુત્રરત્નોની પ્રાપ્તિ થઈ. પહેલા પુત્ર ચતુરદાસ થયા. બીજાનું નામ ભગવાનદાસ ધર્યું. ત્યારબાદ ત્રીજા પુત્રની ઉત્પત્તિ થઈ. જ્યારે થીરદાસ ૭૪ વર્ષના થયા અને તેમનાં

---

* શ્રીવલ્લભચરિત્રના કર્તા સ૦ લલ્લુભાઇ જજ્જ પિતાનું નામ કપુરચંદ લખે છે. "સંવાદમાં" થીરદાસ છે અને તે દામોદરદાસજીએ સ્વયં કહેલું હોવાથી વિશેષ પ્રમાણરૂપ કહી શકાય. સંભવ છે કે મૂલનામ થીરદાસ હોય અને પ્રખ્યાત નામ કપુરચંદ પણ હોય.
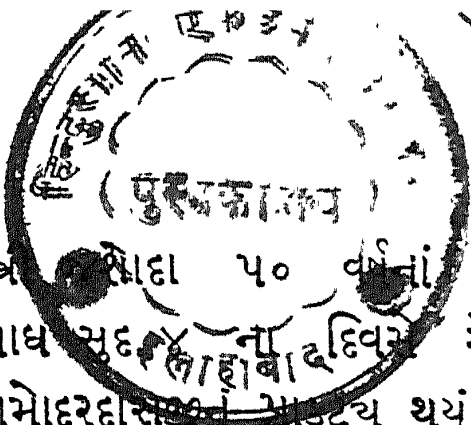
શ્રી જશોદા ૫૦ વર્ષનાં થયાં ત્યારે તેમને ત્યાં સંવત ૧૫૩૧ ના માઘ સુદ ૪ ના દિવસે ચોથા પુત્ર તરીકે મહાનુભાવ હરિભક્ત દામોદરદાસજીનું પ્રાકટ્ય થયું. તેઓ જન્મતાં જ પ્રસન્નવદન અને અંતર્દૃષ્ટિવાળા થયા. વળી તેઓના કપાલમાં દિવ્ય ભગવત્તેજ બિરાજતું હતું. થોડા દિવસ બાદ માતા જશોદા શ્રીહરિના ચરણારવિંદને પ્રાપ્ત થયાં. ત્યારથી દામોદરદાસનું લાલનપાલન સ્વયં થીરદાસજ કરતા હતા. તેઓનો દામોદરદાસ પ્રત્યે અત્યંત પ્રેમ હતો. એક ક્ષણ પણ દામોદરદાસજી વિના થીરદાસ રહેલા ન હતા. થીરદાસને જેસી અને રંગો નામનાં બે કન્યારત્નો પણ હતાં.

સંવત ૧૫૩૪ ના કાર્તિક માસમાં અનેક સાધુ સંતોનો એક જબ્બરદસ્ત જમૂહ યાત્રા કરવા નિકળેલો. તેમની સાથે થીરદાસ પણ દામોદરદાસજીને તેમની ભાઈ ભોજાઈને સોંપી યાત્રા કરવા નિકળી પડયા. યાત્રાની પહેલી મજલે થીરદાસને રાતના એક સ્વપ્ન થયું. તેમાં ભગવાને થીરદાસને આજ્ઞા કરી કે, મારી અલૌકિક ભેટ રૂપ તારા ચોથા પુત્ર દામોદરદાસને લઇને તું ચંપારણ્ય જા. દામોદરદાસ વિના તારી યાત્રા સંપૂર્ણ થશે નહિ. સવારે થીરદાસ પોતાના ગામમાં આવ્યા. ત્યાં દામોદરદાસજીને રોતા જોઈ થીરદાસે દામોદરદાસની ભોજાઈને રોવાનું કારણ પૂછ્યું ત્યારે ભાઈ ભોજાઇએ કહ્યું કે—જ્યારથી તમો ગયા છો ત્યારથી દામોદરદાસ રોયા જ કરે છે. કોઈ પણ ઉપાયે તે રોતા બંધ થતા નથી. સારૂં થયું કે તમો તરત જ ઘેર પાછા આવ્યા. હવે તમારે જ્યાં જવું હોય ત્યાં દામોદરદાસને લઇને જ જાઓ. પછી થીરદાસ દામોદરદાસને લઇને યાત્રાએ ગયા. રસ્તામાં સાધુ સંતોના સમૂહને મળ્યા. કેટલાક દિવસ પછી તેઓ ચંપારણ્ય પહોચ્યા. સંવત ૧૫૩૫ ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના દિવસે શ્રીઆચાર્યજીનો પ્રાદુર્ભાવ થયો. તે અલૌકિક પ્રાકટ્યઉત્સવનો અનુભવ સાડા ચાર વર્ષના બાલક દામોદરદાસને થયો. બીજા પણ

કેટલાક સત્પુરુષોને તે પ્રાકટ્યનો અનુભવ થયો. થીરદાસ લક્ષ્મણભટ્ટજીનો પ્રભાવ જોઈને તેમના શિષ્ય થયા. પછી કેટલાક દિવસ ત્યાં રહીને તેઓ પાછા શ્રીરંગપટ્ટમમાં આવ્યા. ત્યાં ઉપદ્રવ થવાથી કેટલાક વર્ષ બાદ થીરદાસ સહકુટુંબ વૃદ્ધનગર (વર્ધા) આવીને રહ્યા. ત્યાં તેઓ કાપડનો ધંધો કરતા. આ રીતે થોડાક સમય સુધી થીરદાસ વર્ધામાં રહ્યા. પછી સંવત ૧૫૪૫ માં થીરદાસે પોતાના દેહનો ત્યાગ કર્યો.

થીરદાસના બાર મહિનાનાં ક્રિયાકર્મ કર્યાં બાદ તેમના ચારે પુત્રો અલગ થયા. દામોદરદાસ નાના હોવાથી તેમની દેખરેખ તેમના મામા રાખતા. જ્યારે ચારે ભાઈ અલગ થયા ત્યારે કલેશનું મૂળ જે દ્રવ્ય તેના ચાર ભાગ કર્યાં.

આ સમય દરમિયાન દામોદરદાસજી રાજમાર્ગ ઉપર આવેલા પોતાના મકાનના ગોખલામાં બેસી રહેતા અને પૂર્વે મળેલા અલૌકિક સ્વરૂપના ધ્યાનમાં મગ્ન રહેતા. લૌકિક કોઈ પણ પ્રકારની વાત તેઓ જાણતા ન હતા.

એક દિવસે જ્યારે દામોદરદાસજી રાજમાર્ગ ઉપર આવેલા પોતાના મકાનના ગોખલામાં બેઠા હતા. તેવામાં બાલસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણ ત્યાં થઈ પધાર્યા. (સંવત ૧૫૪૬ પછી અને સં. ૧૫૪૭ પહેલાં) દામોદરદાસજીને આપનાં દર્શન થતાં માત્ર તેઓએ આપના ચરણકમલમાં સાષ્ટાંગ દંડવત્ કર્યાં* શ્રીઆચાર્યચરણે તેમનો હાથ પકડી ઉઠાવી અને આજ્ઞા કરી કે "દમલા તું આયો ?" પછીનો બધો પ્રસંગ વાર્તામાં છે. ત્યાં જુઓ)

× શ્રીઆચાર્યજીના આસુરવ્યામોહલીલા પછીનો શેષ પ્રસંગઃ-

---

* સંવાદ, દિગ્વિજય આદિ ઘણાં ગ્રંથોમાંથી કરેલું સંશોધન.
× કલ્પદ્રુમ આદિ ગ્રંથોમાંથી.

જ્યારે શ્રીઆચાર્યજીએ આસુરવ્યામોહલીલા કરવાનો વિચાર કર્યો ત્યારે સં. ૧૫૮૨ માં આપશ્રી દામોદરદાસજીને લઇને વ્રજમાં શ્રીનાથજી પાસે પધાર્યા. શ્રીનાથજી પાસે શ્રીઆચાર્યચરણે આ સમયે દામોદરદાસના દેહની સ્થિતિ રહે એમ ત્રણ વાર માગ્યું; તે વરદાન પ્રાપ્ત કરીને દામોદરદાસને શ્રીમદ્‌ગોકુલમાં વાસ કરાવ્યો. નિર્વાહ અર્થે ચરણપાદુકાજી પધરાવી આપ્યાં. (સાંભળવા પ્રમાણે આ પાદુકાજી શ્રીનાથજીની પાસે બિરાજે છે) પછી શ્રીઆચાર્યચરણે અડેલ પધારી કેટલાક સમય પશ્ચાત્ સંન્યાસ ધારણ કર્યો અને વ્યામોહ કર્યો.

તે સમયે દામોદરદાસ અડેલ આવ્યા, અને પછીથી ત્યાંજ એક પર્ણકુટી રચીને રહેવા લાગ્યા. શ્રીઅક્કાજીની આજ્ઞાથી શ્રીગુસાંઇજીએ દામોદરદાસ પાસેથી સેવાપ્રણાલી, ઉત્સવક્રમ અને માર્ગનું રહસ્ય આદિ પ્રાપ્ત કર્યું.

કેટલાક સમય પછી સંવત ૧૬૦૭ માં દામોદરદાસજી ૭૬ વર્ષ ભૂતલ ઉપર સર્વ સમક્ષ બિરાજી સદેહે અંતર્હિત થયા.*

* લૌકિકી ભાષા.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अब श्रीआचार्यजीके चोरासि वैष्णव की वार्तामें गूढ आशय श्रीगोकुलनाथजी कहे हें ॥ तहां श्रीहरिरायजी कछुक भाव प्रकट करत हे ॥

पुष्टिमार्गीय वैष्णव के (अर्थ) जनाइवे के अर्थ ॥[1]

अब प्रथम सेवक सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु के दामोदर-दास जिनको श्रीआचार्यजी दमला कहते ॥

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो यातें ॥ दमला सो अमला ॥ मल करिकें रहित ॥ तहां यह संदेह होई जो साधारन वैष्णवमें मल नांहि ॥ तो दामोदरदासमें केसें संभवे ? दामोदरदास के दरसन तें इनके नाम लिए तें पाप जाय तो इनको नाम दमला सो अमला कहें ॥ ताको प्रयोजन कहा ? यह संदेह होई ॥ तहां कहत हें ॥ यह भक्तिमारग में श्रीठाकुरजीमें प्रीति होइ तहां तांई अमल हे ॥ जब श्रीठाकुरजी तें अधिक *श्रीआचार्यजी में प्रीति होई तब अमला कहिए ॥ दामोदरदास को एक दृढ भाव श्रीआचार्यजी में हे ॥ जो दामोदरदास की गोद में माथो धरके श्रीआचार्यजी पोढे हते ॥

---

१ सं. १७५२ में लिखित पुस्तक को अक्षरशः उतारो ।

* धर्मी विप्रयोगात्मक स्वरूप में प्रीति, माने सर्वात्मभाव होय सो अमला

सो श्रीगोवर्धनधर साक्षात् पधारे ॥ तब बरजे, "निकट मति आवो, महाप्रभुजी जगेंगे" एसो दृढ भाव हे ॥ जो ऊठि के श्रीठाकुरजी को दंडोत हू न कीए ॥ ओर श्रीगुसांईजी पूछे ॥ श्रीठाकुरजीसें बडे क्यों कहे ? तब दामोदरदासने कहि ॥ दान बडो के दाता बडो ? दाता जहां देई तहां दान चलो जाई ॥ जहां चाहे तहां दाता दानकुं राखे॥ यह भाव दृढ हे जातें श्रीआचार्यजी दमला कहतें ॥ जो कोइ प्रकारसें अन्यसंबंध[1] को गंध हूं नांहि हें ॥ तातें अमला हें ॥ ओर इनको नाम दामोदरदास यातें हे जो पुरुषोत्तमसहस्रनाम में श्रीआचार्यजी कहें हे॥ "दामोदरो भक्तवश्यो ॥" ओर श्रीसुबोधिनीजी में विस्तार करिके लिखे हे ॥ जो पुरुषोत्तम साक्षात् भक्तन के वस देखाए ॥ सो अपनो बंधन छोडि न सके ॥ ओर जसोदाजी को व्रजभक्तन को (स्वरूप) दिखाए॥ जसोदाजी इतनें भक्त हे जो श्रीठाकुरजी कों बांधे सो उन भक्तन क संमति देखि के बंधाने जो दाम व्रजभक्त लाए हे ॥ परंतु जसोदाजी को बंधन छुडाइवे कि सामर्थ नांहि हें ॥ तातें जमलार्जुन वृक्ष गिरें ॥ तब सोर भयो ॥ तब व्रजभक्तननें दाम छोरे हे ॥ तातें श्रीठाकुरजीसें जसोदाजी बडे ॥ श्रीदामोदरजी सें व्रजभक्त बडे, सो भक्तवत्सलता प्रगट करी तेसें ही दामोदरदास नाम करि दामोदरदास कें—अनन्य भक्त के—वस श्रीआचार्यजी हें ॥ तातें कहतें "दमला यह मारग तेरे लिये प्रगट कीयो हें ॥" तातें यह आयो जो ओर भक्त बहोत हें परंतु तेरे में वस हों यह जनाए ॥

---

१ अन्यसंबंध=संयोगात्मक कामभाव [देखो प्रसंग १० के रहस्यमें]

आर दामोदरदास को अलौकिक सरूप हें सो ललिताजी को प्रागट्य हे ॥ उहां सगरी रहस्य लीला में श्रीस्वामिनीजी की आज्ञाकारी जेसें ललिताजी तेसें हि इहां श्रीआचार्यजी की आज्ञाकारनी ललितारूप दामोदरदास ॥ जो जनमते ही तें बाल ब्रह्मचारी सखीरूप गृहस्थाश्रम को जानत नाहीं ॥ सो ललिताजी को भाव यह कीर्तन में जाननो ॥

दामोदरदासको अलौकिक आधिदैविक स्वरूप

(जन्म ३)

राग केदारो ॥

हँसि हँसि दूध पीवत नाथ ॥

मधुर कोमल बचन कहि कहि प्रांन प्यारी साथ ॥ १ ॥
कनक कटोरा भर्यो अमृत दियो ललिता हाथ ॥
लाडिली अचवाय पहले पाछें आप अघात ॥ २ ॥
चिंतामनि चित बस्यो सजनी निरखि पिय मुसक्यात ॥
स्यामा स्याम कि नवल छबि परी रसिक बल बल जात ॥ ३ ॥

याको यह भाव कहत हें ॥ जो दोऊ स्वरूप रतन खचित सज्या पर बिराजे हें ॥ तहां ललिताजी कनककटोरा में दूध ओटि कें मिश्री सुगंध डारि ले आई ॥ तब ललिताजीने बिचार कीए जो दोउ स्वरूप बिराजे हें ॥ पहले में श्रीस्वामिनीजी के हाथ में देउगी तो श्रीठाकुरजी कौं पान कराय कें पान करेगी ॥ तहां मनोरथ सिद्ध न होइगो ॥ तातें

श्रीठाकुरजो के हाथ में देउगी ॥ तब पहले पान श्रीस्वामिनीजी करेंगी ॥ तातें दूव को कटोरा श्रीठाकुरजीके हाथ में दीयो ॥ तब लाडिली अचवाय पहले पाछे आप अघात ॥ काहेतें इनके हाथसों वे अरोगे ॥ उनके हाथ सों चिंतामनिरूप श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजीके हृदय में हे[1] ॥ तातें श्रीस्वामिनीजी के पान कीए श्रीठाकुरजी तृपत होत हे ॥ या प्रकार ललिताजी की प्रीतिचातुर्य देखि कें श्रीठाकुरजी मुसिकानें ॥ यह नवल छवि दूध पान करिवे के समय की सोभा उपर में (श्रीहरिरायजी) बलिहारी जात हों ॥ या प्रकार को भाव दामोदरदास कौं श्रीआचार्यजी महाप्रभूनमें हे ॥ तातें न्यारी श्रीठाकुरजी की सेवा नांहि पधराई ॥ श्रीआचार्यजी महाप्रभु ठाकुर हे * ॥ इनकी " मानसी सा परा मता " मानसी सेवा के अधिकारी हें ॥ लीलारसमें मगन रहत हें ॥

पाछे एक समें श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप व्रजमें पाउ धारें ॥ तब दामोदरदास साथ हे ॥

वार्ताप्रसंग १
आध्यात्मिक स्वरूप
(जन्म २)

श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप दामोदरदासकु दमला कहते ॥ ओर कहेते जो "दमला यह मार्ग तेरे लीये प्रगट कीयो हें" ॥ सो श्रीगोकुल में चोतरा एक गोविंदघाट उपर हतो ॥ सो ता ठोर छोंकर के नीचे श्री

---

१ पुंरूपं च पुनस्तदंतरगतं प्रावीविशत्स्वप्रिये । (सौ० पद्य)

* पुंभावरूप विप्रयोगात्मक स्वरूप (त्रिविधभावना)

२ हृदयगत धर्मी विप्रयोगरूप भावात्मक लीला " नमामि हृदये शेषे " यह भावमय लीला ।

आचार्यजी आप विश्राम करते ॥ सो ताके पास श्रीद्वारिका-नाथजी को मंदिर हे ॥ तहां श्रीआचार्यजी को चिंता उपजी[३] ॥ जो श्रीठाकुरजीने आज्ञा दीनी हैं ॥ जो जीवन को ब्रह्मसंबंध करवाओ ॥ तातें श्रीआचार्यजीने विचार्यो जो जीव तो दोष सहित हे ॥ ओर श्रीपूर्णपुरुषोत्तम तो गुननिधान हे ॥ एसें संबंध केसें होय ? तातें चिंता उपजी ॥ सो अत्यंत आतुर भए ॥ ता समें श्रीठाकुरजी तत्काल प्रगट होइके श्रीआचार्यजी महाप्रभु सों पूछी ॥ जो तुम चिंता–आतुर क्यों हो ? तब श्री आचार्यजी महाप्रभु आप कहे ॥ जो जीवको स्वरूप तो तुम जानत ही हो, दोषवंत हे ॥ जो तुमसो जीवन को संबंध केसे होइ ? तब श्रीठाकुरजी कहें जो तुम (जा) जीवनकू ब्रह्म-संबंध करो ताको हों अंगीकार करुंगो ॥ तुम जीवन को नाम देउगे तिनके सकल दोष निवृत्त होइगे ॥ तातें तुम जीवन को अंगीकार करो ॥

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश:

जीवन के उद्धारिवे की चिंता भई ॥ ताको कारन यह ॥ जो उत्तम वस्तु को अंगीकारि कराए सुख लेई ॥ प्रीतम को मध्यम वस्तु दोषसहित जीव केसे अंगीकार कराइए ? यह मारगकी रीति हे ॥ तथा जगत में महात्मी जीव हे ॥ जो आप ब्रह्मसंबंध करावे तो लोक में जीवको दृढ विश्वास कोइ एक को होइ ॥

---

३ यहा श्रीआचार्यजी की बेठक हे (ऐतिहासिकतत्त्व) संभव हे यह जगह पहले द्वारकाधीशके मंदिरमें मिलि गई हो ।

तातें श्रीठाकुरजी के मुखतें ब्रह्मसंबंध की आज्ञा कराए ॥ तामें जीवनको विश्वास दृढ कराए जो श्रीआचार्यजी को वचन दीये हें ॥ जाको ब्रह्म संबंध होइगो ताकों न छोडेंगे ॥ यह माहात्म्य तें जीव ब्रह्मसंबंध सब करेंगे ॥ तातें श्रीठाकुरजी सो कहवाए ॥

ए बातें श्रावन सुदि एकादशी[1] के दिन मध्यरात्र कों भई ॥ प्रातःकाल पवित्रा द्वादशी हती ॥ तातें पवित्रा सूत को सिद्ध करी राख्यो हतो ॥ सो पवित्रा ता समे के अक्षर हे ताको श्रीआचार्यजीने "सिद्धान्तरहस्य" ग्रन्थ कीयो हे ॥[2]

वार्ता प्रसंग १

शुरु

[3]ता समें दामोदरदास नेक दूरि सोये हते ॥ तातें दामोदरदास सो श्रीआचार्यजीने पूछी जो दमला, तें कछु सून्यो ? तब दामोदरदास नें कह्यो जो महाराज मेने श्रीठाकुरजी के बचन सुने तो सही ॥ परि समुझ्यो नाही ॥ तब श्री आचार्यजी आप कहे ॥ जो मोको श्रीठाकुरजीने आज्ञा कीनी हे ॥ जो तुम जीवनको ब्रह्मसंबंध करवावो ॥ तिनको हों अंगीकार करूंगो ॥ और जीनको तुम नाम देउगे ॥ तिनके सकल दोष निवर्त्त होइगे । ताते ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो ॥

---

१ વ્રજ સં. ૧૫૫૦ના શ્રાવણ સુદ ૧૧ ના રોજ

૨ આ પ્રસંગની સત્યતારૂપે ગ્રન્થ વિદ્યમાન છે.

૩ અહીં હાલ પણ દામોદરદાસજીની બેઠક છે,

दामोदरदास ने कही मेनें श्रीठाकुरजी के वचन सुने परिं समुज्यो नाही ॥ ताको कारन यह जताए जो एकादसाध्यायमें भगवद्गीतामें श्रीठाकुरजी के बचन हे सो अपुने पढिके समुझो चाहे सो समुझे न जाई[2] ॥ जब गुरु कृपा करे तब समुझो जाई[3] ॥ तातें श्रीठाकुरजी के कहेतें दामोदरदास समुझे तब श्री ठाकुरजीके सेवक भए ॥ तातें दामोदरदास श्रीआचार्यजी के सेवक हे ॥ जब श्रीआचार्यजी समजावें तब ही समुझे ॥ यह कही (यह): जताए ॥ जो हृदय में दृढ ज्ञान गुरुकी कृपाहितें होई ॥ स्वामी सेवक भाव प्रगट दिखाए ॥ जो दामोदरदास कहे समुझे ॥ तो श्रीआचार्यजी की बराबरि ज्ञान कह्यो जाई तातें कहे में समुझ्यो नांहि ॥ अथवा कहे में समुझे नाहीं मेरे समुझवे को कहा प्रयोजन हे? आप कहे ताके समुझवे को प्रयोजन मोकों हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भाव प्रकाश

(ख) ओर कथा कहेत में श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों कहते ॥ जो दमला बडी बार भई हे श्रीठाकुरजी का बार्ता नांहि करी ॥

वार्ताप्रसंग १ शुरु

---

१ न तु मां शक्यसे...એ શ્લોકનો ફલિતાર્થ—ગીતામાં શ્રીકૃષ્ણ ઉપદેશક રૂપે હોવાથી ગુરુરૂપે કહ્યા.

२ तत्स्वरूपं तु दुर्ज्ञेयं स्वसामर्थ्येन सर्वथा ॥

(શ્રીહરિ૦ કૃત૦ માર્ગસ્વરૂપ નિ૦)

३ ज्ञातं तत्फलदं, तत्र हेतुस्तद्गुरुसंश्रयः ॥

(શ્રીહરિ૦ કૃત૦ સ્વમાર્ગમર્યાદા નિ૦)

ताको तात्पर्य यह हे जो श्रीठाकुरजी की वार्त्ता आपु श्रीस्वामिनी रूप, दामोदरदास ललितासखी रूप ॥ सो ललिता सो एकांत रहस्यवार्ता श्रीठाकुरजी के मिलन को प्रसंग प्रथम जा प्रकार लीला करी हे सो नाही करी ॥ सो करन के लिए सबन के आगे एसें कहते ॥ (जो) कथा कहत समें ॥ श्रीठाकुरजी की वार्ता नाहीं करी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भाव प्रकाश

इति प्र. १. समाप्त.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ હરસાનીજીની વાર્તાના પ્રસંગોનું પરિશિષ્ટ રહસ્ય.

પ્રસંગ ૧ બ્રહ્મસંબંધનો:—

આ ભાવાત્મક પુષ્ટિમાર્ગના પ્રભુ કૃષ્ણ પણ "**रसो वै सः**" એ શ્રુતિને અનુસાર ભાવાત્મક રસ રૂપજ છે. એટલે તેમના સંબંધી આ પુષ્ટિમાર્ગની સર્વ વસ્તુ ભાવરૂપ રસરૂપ જ—જાણવી. આ ભાવાત્મક સ્વરૂપનો સંબંધ પણ ભાવાત્મક જ છે. (**मुख्यो हि ब्रह्मसम्बन्धः, स भावात्मक एव हि**) તેમજ આ પુષ્ટિમાર્ગના પ્રકટકર્તા, શ્રીકૃષ્ણના મુખારવિંદરૂપ ભક્તોના અનુભવમાં આવેલા શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ પણ ભાવાત્મક જ છે. એટલે આ સમગ્ર ભક્તિમાર્ગ પણ ભાવાત્મક જ છે. (**तेन भावात्मको मार्गः**-) અતઃ આ માર્ગનાં પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ પણ ભાવાત્મક શ્રીકૃષ્ણ જ છે. અને તે શ્રીગોકુલનાથજીએ આ પ્રસંગમાં સૂક્ષ્મરૂપે કહેલાં છે. (જુઓ દામો૰ ની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્ય.)

હવે આ પ્રસંગમાં એક શંકા થાય છે કે:—

પૂર્વપક્ષી:—જેઓ પોતાના અને બ્રહ્મના સ્વરૂપને અજ્ઞાનથી ભૂલી ગયેલા છે, અને અવિદ્યાથી દોષને પ્રાપ્ત થયા છે, એવાને માટે બ્રહ્મસંબંધની આવશ્યકતા છે એ તમારૂં કહેવું ઠીક છે. પરંતુ દામોદરદાસજી તો શરણે આવ્યા પહેલાં જ પોતાના અને શ્રીઆચાર્યજીના અલૌકિક સ્વરૂપને (જન્મથી જ) જાણતા હતા. તેમજ તેઓની અંતર્દૃષ્ટિ હોઈ અલૌકિક ભગવત્સંબંધને પ્રાપ્ત થયેલાજ હતા. તે તેમના ભૌતિક ઇતિહાસમાં કહેલું છે. ત્યારે એમને બ્રહ્મસંબંધ લેવાની શી આવશ્યકતા? અને શ્રીઆચાર્યજીએ એમને પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ કેમ કરાવ્યું?

સિદ્ધાન્તી:—તમારો પ્રશ્ન યથાર્થ છે. પરંતુ આ ભાવાત્મક ભક્તિમાર્ગનું બ્રહ્મસંબંધ પણ ભાવાત્મક છે. અને આ નિર્દોષ ભાવાત્મક સંબંધમાં શૃંગારરસના આધારભૂત સ્થાયીભાવની સ્થિતિ છે. " **शृंगार रससंस्थानं स्थायी भावः प्रभुर्मतः ।** " માટે આ બ્રહ્મસંબંધ તે સ્થાયીભાવના આલંબન ભાવરૂપ જાણવું. પુષ્ટિમાર્ગમાં જે શ્રીકૃષ્ણ તત્ત્વરૂપે છે, તે રસરૂપ કહેવાય છે. "**रसो वै सः**" **इति श्रुत्या रसात्मा स विनिरूपितः ॥** અને તે સ્વામિનીજીના હૃદયમાં સ્થિત સ્થાયી ભાવાત્મક પ્રભુ કૃષ્ણ છે. "**तदेकहृदयस्थायी तद्भावः कृष्ण एव हि** " અને તે રસાત્મક કૃષ્ણની સેવાજ પુષ્ટિમાર્ગમાં છે, તે સેવાનો અધિકાર બ્રહ્મસંબંધદ્વારા પ્રાપ્ત થાય છે. માટે આ બ્રહ્મ-સંબંધ તે રસાત્મક સ્થાયીભાવરૂપ પ્રભુનો આલંબન ભાવ જાણવો. આલંબન વિના રસની સ્થિતિ નથી. માટે શ્રીઆચાર્યજીએ બ્રહ્મસંબંધ રૂપી આલંબન દ્વારા સમગ્ર દૈવી જીવોના આધિદૈવિક મૂલભૂત દામોદર-દાસજીના હૃદયમાં પ્રમાણ તરીકે ભાવાત્મક સ્થાયીભાવરૂપ રસાત્મા પ્રભુને સ્થાપ્યા.

આ પ્રકારે દામોદરદાસજીના હૃદયમાં સર્વ પ્રથમ નિરોધાત્મક પુષ્ટિમાર્ગના ભાવાત્મક સ્વરૂપની સ્થિતિ કરી અને તેમની દ્વારા સમગ્ર પુષ્ટિસૃષ્ટિમાં રસરૂપ સ્થાયી ભાવ કૃષ્ણની સ્થાપનાર્થે તેમને સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ કરાવવાનું કોઈ પ્રયોજન રહેતું નથી જ.

આ પ્રસંગમાં (બ્રહ્મસંબંધના) શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીઆચાર્યજીના વલ્લભ (લીલામધ્યપાતી દાસ્યરૂપ) સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. અને તેના રહસ્યનું સૂક્ષ્મસ્વરૂપ શ્રીહરિરાયજીએ. " **प्रीतमको मध्यम वस्तु दोषसहित जीव केसें अंगिकारि कराइये.** " આ શબ્દોમાં સમજાવ્યું છે.

આ દાસ્યરૂપ સ્વરૂપને શ્રીદ્વારકેશજી ભાવનાવાળા શેષ માહાત્મ્ય રૂપે ઓળખાવે છે, અને તે આ પ્રમાણે:—

શ્રીઆચાર્યજીનું શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ.

ફલપ્રકરણમાં ભગવાને ગોપીજનોને કહ્યું કે, '**न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः**' દેવતાની આયુષ્ય લઈને તમારૂં ભજન કરીએ તો પણ પાર ન આવે. આ શ્રીમુખથી આજ્ઞા કરી, પરંતુ કૃતિમાં ન આવી. શ્રીમુખથી કહ્યું માટે શ્રીમુખાવતારનું પ્રાકટ્ય થાય ત્યારેજ વચનનું પ્રતિપાલન થાય. માટે શ્રીમુખાવતાર શ્રીવલ્લભાધીશે પ્રગટ થઈ સેવા કરી. સેવાના અધિકારી તો વ્રજભક્તો છે, માટે તેમના ભાવનું અનુસરણ કર્યું. (**सेवारीत प्रीत व्रजजनकी जनहित जग प्रगटाई**) આ પ્રકારે દાસ્યભાવ કર્યો. તેથી આપ આજ્ઞા કરે છે કે, '**इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः** ॥ અહિં સેવા તે શ્રીગોપીજનોના હૃદયસ્થિત ભાવાત્મક સ્વરૂપ કૃષ્ણ (શ્રીગોપીજનવલ્લભ) ની માટે "**कृष्णसेवा सदा कार्या**" એમ આજ્ઞા કરી છે.

આ શેષ ભાવનો અનુભવ (આપ) "**नमामि हृदये शेषे**" એ વાકયમાં કરે છે.

આ સ્વરૂપની કૃપાજ પુષ્ટિમાર્ગમાં ફલરૂપ છે, અને તે અત્યંત દુર્લભ છે.

શ્રીઆચાર્યજી તૃતીય સ્વરૂપે (**रूपं तत्त्रितयात्मकं**) જેમ લીલાના મધ્યપાતી છે. તેમ ભૂતલમાં પણ વલ્લભસ્વરૂપે દૈવી જીવોના સમુદ્ધારક છે.

જેમને અલૌકિક આભરણ હોય તેજ ઉદ્ધારક થઈ શકે—તે અલૌકિક આભરણ ("**हियें हार बिनु डोर**" એ દૃષ્ટાંતરૂપ) શ્રીઆચાર્યજીમાં સૂચન કરવાને અર્થે શ્રીગુસાંઈજીએ આપનું નામ સર્વોત્તમમાં "**अप्राकृताखिलाकल्पभूषितः**" એમ યોજયું છે. તેમજ

સપ્તશ્લોકીમાં "**श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावांशुभूषिता मूर्तिः**" એમ કહેલું છે.

આ પ્રકારે લીલાસંપાદનકર્તાઅને જીવોના ઉદ્ધાર કર્તા દાસ્યરૂપ શ્રીવલ્લભનું સ્વરૂપ આ બ્રહ્મસંબંધના પ્રસંગમાં નિરૂપ્યું છે.

वार्ता प्रसंग २

ओर श्रीआचार्यजीनें श्रीठाकुरजीकी पास तीन वार यह मांग्यो ॥ जो मेरे आगे दामोदरदास की देह न छुटे ॥ ताको हेतु यह हे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप संन्यास ग्रहण करिवेको बिचार मनमें करे ॥ ता समें श्रीगोपीनाथजी तथा श्रीगुसांईजी दोउ भाई बालक हते ॥ तातें मार्गकी वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभु दामोदरदासको समझाईके थापी ॥ दामोदरदास सों कछु गोप्य न राख्यो ॥ ओर श्रीआचार्यजी श्रीभागवत अहर्निश देखते, कथा कहते ओर दामोदरदास सुनते ॥ ओर मार्गको सब सिद्धांत भगवद्लीलारहस्य श्रीआचार्यजीने दामोदरदासके हृदय विषे स्थाप्यो[1] ॥ दामोदरदासके हृदे विषें मार्ग स्थापि केतेक दिन पाछे श्रीआचार्यजी आप संन्यास ग्रहण कीयो ॥ तब केतेक दिन पाछें श्रीगुसांईजीनें श्रीअक्काजीसों पूछी ॥ जो आचार्यजीने मार्ग प्रकट कीयो हे सो उच्छवको कहा प्रकार

---

૧ અહીં શૃંગારરસનો સ્થાયી ભાવ જણાવ્યો છે. અહીં આ વાક્યનું અનુસંધાન કરોઃ—दमला प्रभुदास बडभागी ताको पुनि पुनि आप सिखावे ॥

हे ॥ हम तो कछु जानत नाही ॥ तब श्रीअक्काजीने कह्यो ॥ जो मारग तथा उत्सव को प्रकार सब दामोदरदास सों कहे हे ॥ सो उनसों तुम पूछो ॥ तुमसों दामोदरदास सब कहेंगे ॥ तब श्रीगुसांईजी दामोदरदास के घर पधारे ॥ तब दामोदर-दासने बहुत सन्मान करी भक्तिभावसों घरमें पधराए ॥ ता पाछे श्रीगुसांईजीने उच्छव के प्रकार पूछे ॥ सो दामोदरदा-सने कहें[1] ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यामें संदेह बहोत हे ॥ जो श्रीआचार्यजी कर्तुं, अकर्तुं अन्यथा कर्तुं सर्वसामर्थ्ययुक्त हे ॥ सो श्रीठाकुरजी पास क्यों मांगे ? ताको अभिप्राय यह हें जो दामोदरदास कों प्रेमलक्षना भक्ति दृढ होई चुकि हें ॥ ओर ललिताजी को स्वरूप हे ॥ सो श्रीठाकुरजी कों परमप्रिय हे ॥ सो ललिताजी मध्याजी हे ॥ दोउ स्वरूप की सेवा में मगन हे ॥ सो श्रीआचार्यजी के दर्शन ओर श्रीठाकुरजीके दर्शन दोउ में भाव हे ॥ जातें श्रीआचार्यजी श्रीठाकुरजी सों कहे जो में दामोदरदास कों जैसे नित्य अनुभव करावत हों तेसें तुमहू नित्य अपने स्वरूप कों अनुभव कराईयो ॥ यह कहिके यह जताए जो दामोदरदास पर अत्यंत प्रीति श्रीआचार्यजी की हें ॥ तातें जाने जो मति कहूं मेरे पाछे दमला कोई बात सों दुख पावे ॥ तातें श्रीठाकुरजी सों कहे ॥

---

१ આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો સંચારી ભાવ કહ્યો છે.

ओर मारग दामोदरदासके हृदयमें स्थापन कियें (सो) श्रीगुसांईजी के लीए ॥ ताको तात्पर्य यह हे जो यद्यपि श्रीगुसांईजी ईश्वर हे, बालक हें, तो कहा भयो ? परंतु श्रीआचार्यजी महाप्रभु अपुनो भक्तिमारग दामोदरदास के हृदयमें स्थापन करते ॥ आपु श्रीमुखतें कहतें "यह मारग दमला तेरे लिए प्रगट कियो हे" तातें वैष्णवके हृदयमें स्थापन करे तो आगे वैष्णव में फेले ॥ जो श्रीगुसांईजीके हृदय में प्रथम धर्म रहे ॥ तो गोकुलमें हि धर्म रहतो ॥ गोकुलमें तो पहलेंहीसों शेष अशेष माहात्म्य धारन कीए हें ॥ काहेतें बिंदुसृष्टि हे । ओर वैष्णव सो तो नादसृष्टि हे ॥ तातें इनकों तो भक्ति दिये तें होई ॥ तातें गोपालदास गाये हें ॥ "भक्तिमारगीय जीव स्वतंतर केवल भक्त न थाय" ॥ तातें भक्तिमार्गीय जीव स्वतंत्र हे ॥ दैवी ॥ परंतु केवल आपतें भक्ति न बढे ॥ तातें श्रीआचार्यजी नवरत्न में कहे हें ॥ "निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैरपि" या प्रकार भक्तनके हृदयमें राखें[1] ॥ तातें भक्तिमारग प्रकट भयो ॥ नहिं तो ईश्वरमारग कहावतो ॥ (तहां केवल) ईश्वरमारग कहावें ॥ भक्तिमारगमें ईश्वर हू मारग कहावे ॥ जहां भक्ति तहां भगवान ॥ जहां भक्ति नांहि तहां भक्तिमारगकी रीति सों भगवान न रहें ॥ अंतर-जामी व्हे आप रहे ॥ तातें भक्तनको उत्कर्ष जामें होई सो भक्तिमारग कहावें ॥

॥ इति ॥ प्रसंग २ समाप्त ॥

---

१ कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते ॥ દામોદરદાસમાં આ પ્રકારની સ્વતન્ત્ર ભક્તિ સ્થાપી.

પ્રસંગનું પરિશિષ્ટ રહસ્યઃ—

આ પ્રસંગમાં શ્રીગોકુલનાથજીએ આચાર્યસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. પુષ્ટિમાર્ગના સ્થાપક ભક્તિરૂપ કમલના સૂર્ય શ્રીકૃષ્ણની સેવારૂપ કર્મના પ્રવર્તક, શ્રીકૃષ્ણરૂપ જ્ઞાનના દેવાવાળા—ગુરુરૂપ શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ છે. આપ પુષ્ટિમાર્ગના સ્થાપનકર્તા હોઈ તે માર્ગની રક્ષાના અર્થે તેમજ પુષ્ટિમાર્ગના કર્મરૂપ શ્રીકૃષ્ણની સેવાની ઉત્સવપ્રણાલી આદિની રક્ષાને અર્થે શ્રીઠાકુરજી પાસે દામોદરદાસની સ્થિતિ માગી.

ત્રણવાર માગવાનું કારણ એ કે જે વાત ત્રણવાર કહેવામાં આવે તે લોકમાં પણ પ્રમાણરૂપ થાય છે. બીજું, મન વાણી અને ક્રિયા એમ ત્રણે પ્રકારે દામોદરદાસને અનુભવ કરાવવાનો શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીઠાકોરજીને સંકેત કર્યો. જેથી સંયોગરસનું દાન થવાથી દેહ ટકી રહે એ મૂળ હેતુ છે.

આચાર્યસ્વરૂપને શ્રીદ્વારકેશજી ભાવનાવાળા અશેષ માહાત્મ્યસ્વરૂપે ઓળખાવે છે તે આ પ્રકારેઃ—

પ્રભુએ પોતાના નિજમાહાત્મ્યને દૈવીજનો પ્રતિ ભૂતલમાં પ્રકટ કરવાના અર્થે નિજ મુખારવિંદરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણને ત્રણ પ્રકારે પ્રકટ થવાની આજ્ઞા આપી.

૧ સન્મનુષ્યાકૃતિરૂપે પ્રકટ થાવ, જેથી સુંદર સ્વરૂપ નિરખીને દૈવી જીવો પ્રેમપૂર્વક શરણ આવે.

૨ અતિકરુણાવંત રૂપે પ્રકટ થાવ, જેથી દોષવંત જીવો નિકટ આવી ઉપદેશ લઈ શકે.

૩ હુતાશરૂપે પ્રકટ થાવ જેથી શરણે આવેલા જીવોના પાપપુંજનો દાહ સહજે થઈ જાય.

આ ત્રણ પ્રકારનું જનઉદ્ધરણરૂપ શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ તે અશેષ માહાત્મ્યરૂપ જાણવું.

આ અશેષ માહાત્મ્યનું સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીએ સકલ બાલકત્વાવચ્છિન્ન વિષે ભૂમિમાં ભક્તિરૂપી ભગવન્માહાત્મ્યના પ્રચારાર્થે સ્થાપન કર્યું છે.

बहुरी एक समय दामोदरदास ओर श्रीगुसांईजी एकांतमें बेठे हते ॥ तब श्रीगुसांईजी दामोदरदाससों पूछे ॥ जो तुम श्रीआचार्यजी को कहा कार के जानत हो ? तब दामोदरदासने कह्यो जो हम तो श्रीआचार्यजी महाप्रभून को जगदीस सो संसार में सब कोऊ कहत हें जो सबतें बडे जगदीस श्रीठाकुरजी हें, तिनतें अधिक करि जानत हें ॥ तब श्रीगुसांईजी दामोदरदास सों कहे ॥ जो तुम एसे क्यों कहत हो ! जो, श्रीठाकुरजी तें बडे हे ? तब दामोदरदास नें श्रीगुसांईजीसों कह्यो जो महाराज, दान बडो के दाता बडो ? काहुके पास धन बहोत हें तो कहा करे ? देई ताको जानिये ॥ ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुनको सर्वस्व धन श्रीनाथजी हे ॥ सो हम जेसे जीवनको आपु दान कीयो हें ॥ तातें हम श्रीआचार्यजी को सर्व ते बडे करि जानत हें ॥[1]

वार्ता प्रसंग ३

इति वार्ता प्र. ३ समाप्त ॥

---

૧ અહિં શ્રીઆચાર્યજીના સુધાસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે. દેહભાવ રહિત પુરુષાકાર સુધાનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે સમજવું:—જ્યાં દેહ અને આત્મા ભિન્ન નથી દેહ એજ આત્મા છે અને આત્મા એજ દેહ છે. દૃષ્ટાંત રૂપે:—સિદ્ધ ગવૈયાઓ દ્વારા તાદૃશ થતું સાકાર રાગનું સ્વરૂપ. આવી જ રીતે આ સુધા ભાવાત્મક સાકારરૂપ છે. તે સાકારપણામાં દેહભાવ નથી તેથી તે નિર્ગુણ છે અને તે પુરુષાર્થરૂપ હોવાથી પુરુ-

बहुरी एक समय श्रीगुसांईजी बेठक म बेठे हते ॥ द्वे चार वैष्णव कुंभनदास गोविंददास आदि एकांत हसिवे खेलिवे के लिये पास बेठे हते ॥ आपु उनसों हँसत खेलत मसकरी करत बहुत ही प्रसन्नता में खेल की बार्त्ता करत हते ॥ ता समें दामोदरदास तहाँ आए ॥ तब श्रीगुसांईजी बहुत आदर सन्मान कीए ॥ पाछें दामोदरदास तहाँ आय के दंडवत करि के बेठे ॥ तब श्रीगुसांईजी सों दामोदरदासने कह्यो जो महाराज, अपनो मारग निश्चिंतताको नांहिं ॥ यह मार्ग हें सो तो अत्यंत कष्ट आतुरता को हे, दुःख को हे ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे जो तुम धन्य हो ॥ साँची कहत हो ॥ परि हम को जब श्रीआचार्यजीकी कृपा होइगी तब कष्ट आतुरता होइगी ॥ यह मार्ग तो श्रीआचार्यजी के अनुग्रह बिना ना होई ॥

वार्ता प्रसंग ४

तब दामोदरदास दंडवत कीए ओर कहें जो हमको राजसों एकबेर बीनती करनी सो करी ॥ पाछे आप प्रभू हो भली जानोगे सो करोगे ॥ परि यह मारग तो या भांतिको हे ॥ तब श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न भए ओर कहें जो हमको

ષાકાર છે. જેમ દેહમાં વીર્ય તેમ આનંદમાં સારભૂત આ સુધા જાણવી. આનંદરૂપ શ્રીઠાકોરજીનું આધિદૈવિક સ્વરૂપ સુધા હોવાથી શ્રીઠાકોરજી કરતાં શ્રીઆચાર્યજી (સુધારૂપ) ને મોટા કહ્યા. અને તે લોકરીતિના દૃષ્ટાંતદ્વારા સિદ્ધ કર્યું. આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો સ્થાયી રતિભાવ જાણવો.

यह वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभू तुम द्वारा कहे ॥ जो तुम न कहोगे तो ओर कोन कहेगो ? तुम को देखत हैं तब चित्त अतिप्रसन्न होत हे तातें सुखेन कहो॥ आप सरिखे श्रीआचार्यजी के सेवक जानिके कहत हें ॥ पाछें दामोदरदास को शिक्षा अंगिकारि करत भये ॥ तातें बडे सो बडे ॥

यह लोकरीति सें विरुद्ध हे ॥ जो सेवक स्वामीसें शिक्षा करें ॥ यह संदेह होय तहां कहत हे दामोदरदास ललितारूप हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो श्रीचंद्रावलीजी कों (श्रीगुसांईजी) परकीयारसभाव हे ॥ परकीयारस में प्रीति बहोत हें, अष्टप्रहर चित्त प्यारे सें लग्यो रहत हे ॥ सो जारभाव को प्रकार दिखाये ॥ जो ओर के संग हांसी केसी ?

(दूसरो हेतु) तथा दामोदरदास की देह मात्र दीसत हे परंतु श्रीआचार्यजी को आवेश अष्ट प्रहर रहत हे ॥ जो मुख सें श्रीआचार्यजी बोलत हें ॥ तातें श्रीगुसांईजी कहत हें ॥ जो हमकों यह वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभु तुम द्वारा कहे ॥*

इति प्र. ४. समाप्त.

---

* શુદ્ધપુષ્ટિભક્તોનું સ્વરૂપ સાક્ષાત્ ભગવાનની સમાન જ બધી પ્રકારે હોય છે. જુઓ:—

१ स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ॥ (पुष्टिप्रवाहमर्यादा)

२ सेवकः सेव्यं यादृशरूपं पश्यति स्वस्यापि तादृशं रूपं संपादयति। (१–२–२३)

આ શ્રીહરિરાયજીકૃત ભાવપ્રકાશનું મૂળ શ્રીહરિ૦કૃત સ્વમાર્ગીયસેવાફલનિ૦ માં છે. જુઓઃ—

एवमेव हि तद्भक्तेः स्वातन्त्र्यं नान्यथा भवेत् ॥ ५ ॥ ત્યાંથી यतो भगवता प्रोक्तं...ત્યાં સુધી (૧૦½) ના શ્લોકોનો આ ફલિતાર્થ સમજવો. તે શ્લોકોમાં બતાવેલી રાસસ્ત્રીઓની સ્વતંત્રભક્તિ શ્રીઆચાર્યજીએ નિજ સેવકોમાં સ્થાપી છે–તેથી શ્રીઆચાર્યજીના સેવકોમાં મુખ્ય દામોદરદાસ આદિ સ્વતન્ત્ર ભક્તો છે અને તેમના અર્થે જ સમર્પણની આજ્ઞા અને પુષ્ટિમાર્ગનું પ્રાકટ્ય છે. એવા શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તોમાં શ્રીમહાપ્રભુજીનો આવેશ નિત્ય હોવાથી શ્રીગુસાંઈજીએ પણ આજ્ઞા કરી કે “ [illegible] यह वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभू तुम द्वारा कहे ” (वार्ता[illegible]स्यतः ॥ (संस्कृत वार्ता) તેજ વાતની પુષ્ટિને અર્થે શ્રીહરિરાયજી स्वमार्गीयसेवाफलनि० ના ૧૧ મા શ્લોકમાં આ પ્રકારે આજ્ઞા કરે છે કેઃ–श्रीमत्प्रभोस्तु तद्दानमाचार्येभ्यो न संशयः ॥ શ્રીગુસાંઈજીને જે ભાવપ્રાપ્તિ (સ્વતન્ત્રભક્તિ) થઈ, તે અસ્મદાચાર્યવર્ય શ્રીમદ્ વલ્લભાધીશદ્વારાજ થઈ, તેમાં કશો શક નથી. માટે જ શ્રીહરિરાયજીએ અહીં ભાવપ્રકાશમાં કહ્યું છે કે दामोदरदास की देह मात्र दीखत हे ॥ परंतु श्रीआचार्यजी को आवेश अष्टप्रहर रहत हे ॥ जो मुखतें श्रीआचार्यजी बोले हे ॥ આ પ્રમાણે શ્રીહરિરાયજીના સંસ્કૃત ગ્રન્થો શ્રીહરિરાયજીએ વ્રજભાષામાં કરેલા આ ભાવપ્રકાશ સાથે સર્વ સંમત રૂપે હોવાથી આ ભાવપ્રકાશની પ્રામાણિકતા પણ સિદ્ધ થાય છે. શું આવાં રહસ્યો અને અન્તરંગી પ્રકારો લીખીયાઓ સમજી શકે ?

આ પ્રસંગમાં શ્રીઆચાર્યજીનું ભક્તહૃદયસ્થિત વિપ્રયોગાત્મકૃષ્ણાસ્ય સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે. આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો સંચારી ભાવ કહ્યો છે.

(क) ओर एक दिन दामोदरदास के पिता को श्राद्ध दिन हतो॥ ता दिन श्रीगुसांईजी तहां

वार्ता प्रसंग ५

पधारे ॥ वाके पिता को श्राद्ध करवायो ॥ पाछें उत्थापन के समें दामोदरदास दरसनकों आए ॥ तब श्रीगुसांईजी ने कही ॥ जो मोकूँ श्राद्ध की दक्षिणा देउ ॥ तब दामोदरदास ने कही जो दक्षिणा में एक बात कहूंगो ॥ सो सिद्धान्तरहस्य के ड़ेढ श्लोक को व्याख्यान कहे ॥ यह एसो बात हे ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे जो आगे कहो ॥ तब दामोदरदास ने कही जो मेने तो इतनो संकल्प कीयो हे ॥ तब श्रीगुसांईजी चुप करि रहें ॥ पाछें दामोदरदासने मारग की प्रणालिका कही ॥ ॥ श्रीभागवतकी टीका श्रीसुबोधिनीजी श्रीआचार्यजी महाप्रभूनके ग्रन्थनकी टीका ओर रहस्यवार्ता श्रीगुसांईजीकी आगे सब कहें ॥

(ख) ता पाछें श्रीगुसांईजी दामोदरदास को नमस्कार करन न देते॥ यातें जो श्रीगुसांईजी अपने मनमें यों विचारे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु दामोदरदास के हृदे विषे (सदा) सर्वदा बसत हें ॥ तो इन पास क्यों नमस्कार करन दीजे ? यातें नमस्कार न करन देते ॥ ओर दामोदरदासको श्रीगुसांईजी अपनो चरणोदक हू न देते ॥

पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभूनने दामोदरदासको दरशन

दीनो ओर आज्ञा दीनी जो तू श्रीगुसांईजीको चरणोदक नित्य लिजियो ॥ तब प्रातःकाल दामोदरदास श्रीगुसांईजी के पास आए ॥ चरणोदक माग्यो ॥ तब श्रीगुसांईजीने चरणोदककी नाहीं कीनी ॥ तब दामोदरदासने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो मोकों श्रीआचार्यजीकी आज्ञा भई हे ओर श्रीआचार्यजी को दरशन भयो हे ॥ ओर कह्यो हें जो चरणोदक लीजियो ॥ तब श्रीगुसांईजीने चरणोदक दीनो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

(क) श्राद्ध करायवेको अभिप्राय यह (हे) जो दामोदरदास के पितरन को उद्धार तो होइ चुक्यो ॥ जब ए भक्त में (हे) ॥ मर्यादा-मारग में नृसिंहजीने प्रह्लाद सों कह्यो हें[१] एकीस पुरषा भक्त के तरे ॥ सो दामोदर-दास तो पुष्टिमार्गीय हे ॥ तातें इनके पितर तरे यामें कहा संदेह हे ? परंतु पुष्टिमार्ग के संबंध विना पुष्टिमार्ग में अंगीकार न होई ॥ तातें श्रीगुसांईजी को संबंध श्राद्धद्वारा पाय पुष्टिमार्ग में अंगीकार भयो ॥ जो दामोदरदास के श्राद्ध तें पुष्टिमार्गमें अंगीकार होई ॥ परंतु गुरुकी अपेक्षा हे ॥ गुरु बिना अंगीकार में दृढ अंगीकार नांहि ॥ तातें श्रीगुसांईजीको संबंध कराए ॥

तहां यह संदेह होय जो दामोदरदासको श्राद्ध कराए ॥ इनके

---

१ त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ।
यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ श्री. भा. ७-१०-१८

पितरन को पुष्टिको संबंध भयो ॥ और भगवदीय को नाहिं कराए ॥ सो उनके पितरनको केसें होइगो ? यह संदेह होय तहां कहत हे ॥ यह पुष्टिमार्गीय दैवी जीव के आधिदैविक (मूलभूत) दामोदरदास हे ॥ जहां इनके पितरन को पुष्टिसंबंध भयो तब सगरे पुष्टिमार्गीयके पितरनको पुष्टिसंबंध भयो ॥ जेसे मारग, दामोदरदास के पितरन को पुष्टिसंबंध (भयो) एसे मारग दामोदरदास के लिए ॥ तामें सगरे पुष्टिमारग के (जीवन के) लिए ॥ या प्रकार मूलमें भक्ति ता करि के सबमें फेले ॥ या प्रकार दामोदरदासकी भक्ति करि के जीवमें भक्ति बढि हें ॥ जीवको सामर्थ्य नांहि हें ॥ जो पुष्टिमारगकी भक्ति एक छिन करि शके ॥

ओर दक्षिणामें दामोदरदासने सिद्धांतरहस्य के डेढ श्लोक को व्याख्यान कियो ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे आगे कहो ॥ तब दामोदरदासने कही जो मेंने तो इतनो (ही) संकल्प कीयो हे ॥ ताको कारन यह हे जो सत्यसंकल्प (तो) इतनेही में सगरो मारग हे ॥

(ख) श्रीगुसांईजी चरणोदक दामोदरदास को न देते दंडोत करन न देते ॥ सो यातें जो श्रीस्वामिनीजीकी अनन्य सखी हे ॥ उनही को करे ॥ तातें दामोदरदासने हठ नांहि कीयो ॥ पहले चरणोदक न लीयो ॥ तातें श्रीआचार्यजी (ने) दामोदरदास को समझायो ॥ जो तूं श्रीगुसांईजी को चरणोदक लिजीयो ॥ दंडोत करियो में श्रीगुसांईजी के हृदय में बिराजत हूं ॥ मेरो स्वरूप मोतें प्रगटे हे ॥ तब दामोदरदास

श्रीगुसांईजीसों यह भेद कहे[1] ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे लेहू ॥ प्रसन्न होइके चरणोदक दीये ॥ जाने जो श्रीआचार्यजी के भावतें लेत हें ॥ मेरे भावतें नांहि ॥

याही तें श्रीगोपीनाथजी यद्यपि (श्रीआचार्यजी के बडे पुत्र) श्रीगुसांईजी के बडे भाई हे ॥ परंतु काहू वैष्णवने चरणोदक नांहि लियो ॥ या भावतें श्रीगुसांईजी के सात बांलक ओर वल्लभकुलके चरनोदकमें श्रीआचार्यजीको भाव जनायो ॥ तातें चरनोदक लेनो ॥ दंडोत करनो ॥ यह सिद्धांत जनायो ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

---

१ भेद शब्दथी लीलाना प्राकटयनो भेद समजवो. "संवाद" मां दामोदरदासजीए श्रीगुसांईजीने आ प्रकार समजाव्यो छे. तेनो भावार्थ आ प्रमाणे छे: ज्यारे दामोदरदास श्रीगुसांईजीना चरणमां पडया त्यारे श्रीगुसांईजीए तेमने श्रीहस्तथी उठाडी अने पोताने नमन आदि न करवानी आज्ञा करी. त्यारे दामोदरदासजीए आ भेद कह्यो केः-लीलामां मारूं प्राकटय आपथी ज छे. (ललिताजीनुं प्राकटय चंद्रावलीजीथी ज छे.) आ अर्थ अहिं न लईए तो श्रीगो-पीनाथजी पण श्रीआचार्यजीना पुत्र हता. तेथी तेमनुं चरणोदक लेवामां कशो वांधो न ज होय. परंतु जे भगवद्‌भक्तोने मूल लीलानुं ज्ञान अने पोताना स्वरूपनो अनुभव छे तेओनी सर्व क्रिया वाणी अने भावना पोताना मूल स्वरूप रूपे ज स्थित रहे छे अने ते मूल संबंधथी ज ते सर्व कार्य अहीं पण ते प्रमाणे करे छे. श्रीगो-नाथजीनुं मूल स्वरूप लीलामां बलदेवजीनुं छे. "बलदेव श्रीगोपीनाथ

ओर दामोदरदास को श्रीआचार्यजी तीसरे दिन दरसन देते ॥ मारग की रहस्यवार्ता कहते ॥

वार्ता प्रसंग ६ एसी कृपा करते ॥ ओर कदाचित तीसरे दिन दरशन न होतो तो ता दिन दामोदरदास के पेट में पीडा बहुत होती, अत्यंत कष्ट पावते ॥ ओर पाछे दरसन होतो तब तत्काल कष्ट निवर्त्त होई जातो ॥ एसी भांति केतेक वर्षपर्यंत श्रीआचार्यजी दरशन दीनो एसी कृपा करते ॥ जो बात होती सो सब दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आगे कहते ॥ ओर मारग के प्रकार (प्रकाश?) की वार्ता अहर्निश करते ॥ श्रीगुसांईजी दामोदरदास की उपर बहोत कृपा करते ओर कहते जो दामोदरदास के हृदयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभू सदा विराजे हे ॥

કહીએ " (વલ્લભાખ્યાન) માટે તે મર્યાદાપુષ્ટિ છે. જ્યારે શ્રી આચાર્યજીના સેવકોનાં સ્વરૂપ નિર્ગુણ આધિદૈવિક ભાવરૂપ છે. જેથી શ્રીગોપીનાથજીની ભક્તિ તેમને અનુકૂલ હોય જ નહિ તે સહજ છે. આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો ઉદ્દીપન ભાવ કહેલો છે.

सर्वात्मभावसाध्यो हि स्वरूपानन्द उच्यते । (श्रीहरि०) સર્વાત્મભાવથી પ્રાપ્ત થતો આનંદ તે સ્વરૂપાનંદ કહેવાય છે.

સર્વાત્મભાવની વ્યાખ્યાઃ—

'अहं भगवतः सर्व' इति सर्वात्मभावनम्। (श्रीहरि०) હું સમગ્ર પ્રભુનો એનું નામ સર્વાત્મભાવ. વધુ સર્વાત્મભાવ સમજવા માટે જુઓ "વાર્તારહસ્ય"

दामोदरदास कों तिसरे दिन श्रीआचार्यजी दरशन देतें ॥ ताको

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

हेतु यह जो तिन दिन लों दरसनको आवेस तामें मगन रहते ॥ तिसरे दिन सरीर की सुधि होती ॥ सो विरह कष्ट होतो ॥ सो दरशन करि फेरि स्वरूपानंदमें मगन होई जातें ॥

इति प्र. ६ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ७

ओर पहले दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आधो गादी दाबि के बेठते[1] ॥ सो एक दिन श्रीआचार्यजी महाप्रभूने देख्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी ने दामोदरदाससों पूछी जो दमला, तु श्रीगुसांईजी को कहा करिके जानत हे ? तब दामोदरदासने कही जो महाराज, हों तो इनकों तुमारे पुत्र करिके

---

१ આ પ્રસંગ લગભગ સંવત ૧૫૮૦ ના અરસામાં બનેલો છે. જ્યારે શ્રીગુસાંઈજી આઠ વર્ષના હતા. અહિં ગાદી દાબીને બેસતા એવા શબ્દો છે. પ્રાચીન તમામ હસ્તલિખિત પુસ્તકોમાં આજ શબ્દો જોવામાં આવે છે. તેનો ગુજરાતી અનુવાદ કરનારાઓએ "અડધી ગાદી ઉપર બેસતા." એમ અર્થ કર્યો છે, તે અત્યંત ભ્રમોત્પાદક છે. દાબવો શબ્દ વાળવાના અર્થનો દ્યોતક છે. સારાંશ એ છે કે દામોદરદાસજી શ્રીગુસાંઈજીની અડધી ગાદી વાળીને પાસે બેસતા (આજ પણ કેટલાક બાલકોને ત્યાં તેમના પિતાના પ્રાચીન સેવકોને એ પ્રમાણે કવચિત્ બેસતા જોવામાં આવે છે. પરંતુ તેમ કરવું તે ઉચિત નથી. તે કૃતિમાં માહાત્મ્યજ્ઞાનનું વિસ્મરણ હોવાથી

जानत हूं ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू दामोदरदास सों कहे जो जेसें तू मोकों जानत हे । तेसें इनको स्वरूप जानियो[2] ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

एक समें श्रीगुसांईजी बेठे हें ॥ तब दामोदरदास ने कही ॥ महाराज, अपनो मारग निसंगता को

वार्ता प्रसंग ८

नांही ॥ रूप प्रगट कर्ता (हे) ॥ (ओर कही जो) एक समें श्रीमहाप्रभुजी पोढे हते ॥ तब श्रीगोवर्धननाथजी आप कहे जो जीव को उद्धार करो ॥ लीलाकर्त्ता अवलंबन सुद्धि करता उद्दीपन भाव या प्रकार डेढ श्लोक कहे ॥

त्यां लोकवत् स्नेह थई जवाथी भावनी हानि थाय छे) यद्यपि लोक अने वेदथी दामोदरदासजीनुं आ प्रकारे बेसवुं विरुद्ध नथी. तो पण दास्यभावने जणाववाने अर्थे ज श्रीआचार्यजीए तेमने टोक्या. लोकमां पिताना मुख्य माननीय सेवक पुत्रनी बरोबरनुं मान प्राप्त करी शके छे. ते राजद्वारमां पण देखाय छे. तेमज वेदथी पण पट्ट शिष्य अने पुत्रनो एक समान अधिकार छे. शिष्यने पुत्र वत् ज कहेलो छे-परंतु अहिं तो स्ववंशमां पण श्रीआचार्यजी ज बिराजता होई श्रीआचार्यजीनी समान ज दास्यभावनुं अनुकरण करवुं जोईए. अन्यथा दास्यभावमां त्रुटि प्राप्त थाय. यद्यपि दामोदरदासजीने आ कार्य बाधकरूप न हतुं छतां पण दामोदरदासजी द्वारा सर्वे दैवी जीवो प्रति श्रीआचार्यजीए आ शिक्षा करी छे-दामोदरदासजी —तो श्रीआचार्यजीना तद्रूप ज छे.

२. श्रीविट्ठलेशे स्वाखिलमाहात्म्यस्थापकाय नमः ॥ (श्रीहरि०)

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि ॥
साक्षात् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥ १ ॥
ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः ॥ यह डेढ श्लोक में सब आयो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो (अभिप्राय) कहत हे ॥ श्रावण महिना के पति भगवान हे ॥ एक अमल जो उजियारो पक्ष भक्तजननको हे ॥ तिन एकादशी को दिन प्रभून कोहे ॥ एकादश्यां ॥ एकादश इंद्रिय की सुद्धि भक्तजननको करायवे को ॥ महा निशि जो अर्द्धरात्रि रासलीलामें साक्षात् भगवान (भक्तन) सों निसंक होई रहस्यवार्ता करत हे लीलामें तेसेही श्रीआचार्यजीसों बोले ॥ सगरे अक्षर कहत हे ॥ यहां तांई श्रीआचार्यजो उपर भाव ॥ श्रीगोवर्द्धनाथजी अब कहें ॥ ब्रह्मसंबंध करावो ॥ सबको देहजीवकों ॥ (तातें दामोदरदासने श्रीगुसांईजीसों कह्यो) जो भक्तिमारगके विस्तार की आज्ञा हे सो तुम करो ॥ अज्ञान जीव हें ॥ याही ब्रह्मसंबंध तें दोष जाइगें ॥ अंगोकार कराए ॥ एक श्लोकमें लीला ॥ आधे श्लोकमें मारग की रीति ॥ सब इनमें आयो ॥ या प्रकार श्रीगुसांईजी सों दामोदरदासने कह्यो ॥

ओर ता पाछे दामोदरदासकी सहायतासु आपने शृंगाररसमंडन ग्रन्थ कियो ॥ *

इति प्र. ८ समाप्त.

---

* यस्मात् सहायभूतौ...(शृं. रसमंडनम्)

પ્રસંગ ૮–પુષ્ટિ સૃષ્ટિના જીવોને આસુરભાવરૂપ દોષની ઉત્પત્તિનો પ્રકારઃ–સૃષ્ટિ પ્રક્રિયાના પ્રારંભમાં દૈવી જીવ જેમ આસુરી જીવથી જુદા થયા, તેમ ઈંદ્રિય પણ દૈવી અને આસુરી એમ બે પ્રકારની થઈ. ત્યારે આસુરી જીવ દૈવી જીવ પાસે આવીને કહે કે મારૂં પણ ગાન કર. ત્યારે દૈવી જીવે કહ્યું કે "यो यदंशः सतं भजेत" હું ભગવદંશ છું ભગવદ્ગાન કરીશ. તેથી દૈવી જીવને પાપવેધ ન થયો. ત્યારે આસુરી જીવ દૈવી ઈંદ્રિય પાસે ગયો. અને દૈવી ઈંદ્રિયને ભયત્રસ્ત કરીને કહ્યું કે મારૂં ગાન કર. તે વખતે દૈવી જીવનો દેહ તો હતો નહિ કે જેથી દૈવી ઈંદ્રિય તેમાં પ્રવિષ્ટ થઈ શકે. જેથી ઈંદ્રિયે સભય થઈ આસુરી જીવનું ગુણગાન કર્યું. ત્યારે દૈવી ઈંદ્રિયને પાપવેધ થયો. જેથી દૈવીજીવ શુદ્ધ તથા દેહ શુદ્ધ. ઈંદ્રિયમાં દ્વૈવિધ્ય. ઈંદ્રિય સ્વયં દૈવી, પરંતુ આસુરીના ગાનથી આસુર ભાવવાળી થઈ. એ મૂલ દોષ છે. આ પ્રકાર "द्वयाह प्राजापत्याः" એ શ્રુતિમાં કહ્યો છે. વ્યાસજીએ પણ "द्वैधा ह्यर्थभेदात्" એ સૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે. આ દોષનિવારણના અર્થે શ્રીઆચાર્યજીનું પ્રાકટ્ય થયું. (भावभावना) અને આપે ભગવદાજ્ઞાને લોકમાં પ્રમાણરૂપ કરાવી બ્રહ્મસંબંધદ્વારા આ મૂલ દોષ અને તેથી ઉત્પન્ન થતા પાંચે દોષની નિવૃત્તિ કરી.

શ્રીહરિ૦ કૃત૦ ભાવનું સ્પષ્ટીકરણ :

રાસાદિ લીલાની માફક અહીં પણ શ્રીઆચાર્યજી (स्वामिनीभावसंयुक्त) સાથે શ્રીગોવર્દ્ધનધરે પાંચ પ્રકારે ભાવાત્મક નિર્ભય અને સ્વતંત્ર રૂપે રમણ કર્યું તે આ પ્રકારેઃ–પાંચ પ્રકારઃ-આત્માથી–મનથી–વાક્–પ્રાણથી––ઈંદ્રિયથી અને શરીરથી.

સાક્ષાત ભગવાન (साक्षाद्भगवत्ता) સ્વરૂપ દ્વારા પ્રકટ થઈ જીવોને ફલનું દાન કર્યું તે આત્માથી રમણ–શ્રીઆચાર્યજીની ચિંતાને આપે જાણી એટલે બન્નેના મનની એકતા વિના હૃદયગત ભાવ પરસ્પર ઉદય ન થાય માટે અહીં, મનથી રમણ. આપ ચિંતા કેમ

वार्ता प्रसंग ९

ओर प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभू दामोदरदास सों कह्यो जो यह मारग तेरे लिए प्रगट कियो हे ॥ जो जहां लगि श्रीआचार्यजी के मारग की स्थिति हे तहां तांई दामोदरदास की (भी) मारगमें स्थिति गोप्य हे ॥

ओर दामोदरदासने कह्यो जो मेनें श्रीठाकुरजीके वचन सुने परि समुझ्यो नांहि ॥ ता समें श्रीआचार्यजीने कह्यो अज हू दश जन्मको अंतराय हे ।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको हेतु यह ॥ जो जब लगी श्रीआचार्यजी महाप्रभूके मारग की स्थिति हे तब लगी दामोदरदास को प्रागटच फेरि फेरि हे ॥ (गोप्य रीतिसों) मारग को स्तंभ यातें हे ॥ जो श्रीआचार्यजीने दामोदरदास के हृदयमें भगवदलीला स्थापी ॥ सो संपूर्ण सृष्टि के उद्धार के निमित्त ॥ दामोदरदासके जनम दसलों मारग की स्थिति हे* जेसे वल्लभकुल को प्रागटच हे ॥ तेसें

કરો છો એ વાણીથી લીલા કરી અને તે શ્રવણ કરી આચાર્યજી-એ પ્રતિ ઉત્તર કર્યો તેથી આપ સંયોગાત્મક વાણીદ્વારા-પ્રાણમાં પ્રવેશ્યા—વાક્પ્રાણથી, પ્રાણનો ધર્મ બળ છે. પ્રભુના પ્રાણ અલૌકિક છે માટે ભગવાનને વશ કરી વચન લીધું—ઇંદ્રિયથી. પછી આપ અંતર્ધ્યાન થયા તે કાયિક લીલા. આ પ્રકારે સ્વામિની સ્વરૂપે ભાવાત્મક રમણ શ્રીઆચાર્યજી સાથે શ્રીજીએ કર્યું.

* ભાવાત્મક આધિદૈવિક માર્ગની, તે માર્ગ આ પ્રકારે ભક્તોના

हि भक्ति दृढ करन के लिए दामोदरदास को हू अनेक वैष्णवनमें प्रागट्य हे ॥

इति प्र. ९ समाप्त.

वार्ता प्रसंग १० एक समें श्रीआचार्यजी सुंदर सिलाके पास [जाको पूजनी सिला कहें हे तहां छोंकर के निचे श्रीआचार्यजीकी बेठक हें तहाँ] दामोदरदासकी गोदमें मस्तक धरि आप पोढे हे ॥ ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी मंदिरतें श्रीआचार्यजी के पास पधारे ॥ तब दामोदरदासने सेनहीमें श्रीगोवर्द्धननाथ-

---

હૃદયમાં રહ્યો છે:-શ્રીઠાકુરજી અને તેમની સેવાના પદાર્થો અને ક્રિયાઓમાં ભાવનાસહિત ભકતોને અનુભવ-ગોસ્વામિબાલકોમાં અને તેમની પ્રત્યેક ક્રિયામાં શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો અનુભવ. વૈષ્ણવોમાં અને તેમની ક્રિયાઓમાં લીલાસૃષ્ટિની ભાવનાનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ-વ્રજ ગિરિરાજજી જમનાજી ગોકુલ અને વ્રજવાસીયોમાં લીલાના આધિદૈવિક સ્વરૂપોની ભાવનાનો અનુભવ. ઉપર્યુક્ત ચાર પ્રકારથી પ્રકટ થયેલા આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગનો અનુભવ એક પણ ભકતને જ્યાં સુધી છે ત્યાં સુધી આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગની સ્થિતિ ભૂતલ ઉપર છે પછી ક્રિયાત્મક (ભૌતિક સેવા) અને જ્ઞાનાત્મક (શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાંત) માર્ગનીજ વિદ્યમાનતા રહેશે.

આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગના તિરોધાનના કારણભૂત ભાવાત્મક સ્વરૂપો અને ભાવાત્મક ગ્રંથોથી બાલકો અને વૈષ્ણવોનું વિસ્મરણ જાણવું. માટેજ શ્રીજીથી (ભાવાત્મક કૃષ્ણ) બહિર્મુખ ન થવાનો ઉપદેશ બાલકો અને વૈષ્ણવોને શ્રીઆચાર્યચરણે કરેલો છે.

जीसों कहे जो तुम अब हि यहां मति आवो ॥ तुम चंचल हो॥ (तातें) श्रीआचार्यजी जागि उठेंगे ॥ तब श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाडे होय रहे ॥ तब श्रीआचार्यजी जागि उठें ॥ कहे बाबा उहां क्यों ठाडे होय रहे हो पास पधारो ॥ तब श्रीगोवर्द्धन-धर पास आय श्रीआचार्यजीसों कहे ॥ जो तुम्हारो सेवक (ने) मोकूं बरज्यो जो यहां मति आवो ॥ श्रीआचार्यजी जागि उठेंगे ॥ तातें में दूरि ठाडो रह्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी दामो-दरदास उपर खीजन लागें ॥ जो तें श्रीगोवर्द्धननाथजीकों क्यों बरजे ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहें ॥ इनसों क्यों खीझत हो ? इननें अपनो धर्म राख्यो ॥ इनकों ऐसेहि चाहियें ॥ तब श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धनधर को गोदिमें बेठाय कपोल परस करि कहें बाबा, कछु आज्ञा करो ॥ तब श्रीगोवर्द्धनधर कहे ॥ मोकों गाय बहुत प्रिय हें ॥ तब श्रीआचार्यजी सदूपांडे को बुलाय वेदकर्म करिवे की पवित्री हती सो दे कहे याके दाम करि श्रीगोवर्द्धननाथजीकों गाय ल्याय देउ × ॥

इति प्र. १० समाप्त.

× ક્વચિત્ નૂપુર માગ્યાનો પણ ઉલ્લેખ પ્રાપ્ત છે.

આ પ્રસંગમાં શ્રીઆચાર્યજીનું દાસ્યરૂપ વલ્લભસ્વરૂપનું પ્રતિ-પાદન છે.

પ્રસંગ ૧૦ નું પરિશિષ્ટ રહસ્યઃ—

આ પ્રસંગમાં શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીવલ્લભ સ્વરૂપ (દાસ્યરૂપ) નો અનુભવ કહેલો છે. તે આ પ્રકારેઃ—

આપ કદી નિદ્રાધીન થતા નથી. નિદ્રાના મિષથી આપ કેવલ વિપ્રયોગરસનો અનુભવ કરતા. લોકદષ્ટિથી પણ આપનું નિદ્રાધીન થવું યુક્તિસંગત લાગતું નથી. કારણ કે લોકમાં પણ જ્યારે કોઈ મનુષ્યને મહાન્ હર્ષ અથવા શોકને પ્રાપ્ત કરાવે એવો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થાય છે, ત્યારે તે પુરુષને નિદ્રા સર્વાંશે સ્વતઃ ત્યાજ્ય થઇ જાય છે એ સર્વાનુભવગોચર છે. તેવીજ રીતે શ્રીઆચાર્યચરણને લીલાના વિયોગરૂપ અત્યંત દુઃખ અને દૈવી જીવોના ઉદ્ધારરૂપ આનંદ પ્રાપ્ત થયો છે. તેવા પ્રસંગે નિદ્રા કેમ આવે ? નજ આવે.

બીજા પ્રકારે આપનો નિત્ય નિયમ જોવાથી જ્ઞાત થાય છે કે આપ બન્ને અનોસરમાં નિદ્રાના મિષથી સૂક્ષ્મ વિશ્રામ કરતા. બપોરના અનોસરમાં વ્રજભક્તોની વેણુગીત યુગલગીત આદિની ભાવનાનો અનુભવ કરતા. પછી નિજ સેવકો ઉપર તે અનુભવેલો મહાન્ રસ કથારૂપે વરસાવતા "भोजन कर विश्राम छिनक ले निज मंडली बुलाई । वेणुगीत पुन युगलगीत की रस वरखा बरसाई" ॥

રાત્રિના અનોસરમાં ભગવત્કથા કર્યા પછી દામોદરદાસની સાથે આપ રહસ્યવાર્તા કરતા. ત્યારબાદ મધ્યરાત્રિનો ભોગ શ્રીને આરોગાવતા પછી આપ સર્વે વૈષ્ણવોની ગુપ્ત રીતે તપાસ કરતા. (જુઓ ગોપાલદાસ જટાધારીની વાર્તા) કેટલોક સમય વીત્યા પછી આપ પોઢવા પધારતા. (લગભગ એક વાગે) અને ત્રણ વાગે આપ શાચાદિક કરતા. આ પ્રમાણે આપનો નિત્યનિયમનો ક્રમ હતો. આપનાં આહાર અને નિદ્રા બહુજ અલ્પ હતાં. આ બન્ને અનોસરના વિશ્રામમાં રાસલીલૈકતાત્પર્ય આપ રાસાદિક લીલાનો હૃદયસ્થિત ધર્મી વિપ્રયોગરૂપે

અનુભવ કરતા." नमामि हृदये शेषे " એ ભાવાત્મક માનસી લીલામાં મગ્ન રહેતા.

આ પ્રકારના ધર્મી વિપ્રયોગના અનુભવમાં બાહ્ય (ધર્મ સહિત સંયોગાત્મક) સ્વરૂપની અપેક્ષા રહેતી નથી. બાહ્ય પ્રાકટ્યમાં કામાત્મભાવની સ્થિતિ રહેલી છે એટલે તેમાં ક્રિયાપ્રાધાન્ય અને અન્યસાપેક્ષતા રહેલી છે. જેથી આમાં દ્વૈતપણાનું ભાન રહે છે. "પ્રભુ મારા છે" એ પ્રકારના ભાવને કામભાવ કહેવામાં આવે છે, આમાં દેહાદિની સ્ફુરણા અને વિષયોનો સમાવેશ હોવાથી દ્વિધા ભાવ રહેલો છે. ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રસમાં સર્વાત્મભાવની સ્થિતિ છે. "હું સમગ્ર પ્રભુનો" એ પ્રકારના ભાવને સર્વાત્મભાવ કહેવામાં આવે છે. આમાં દેહાદિના પૃથક્પણાનું ભાનજ રહેતું નથી. તે કેવલ પ્રભુમય થઈ જાય છે. આમાં ક્રિયાદ્વારા અનુભવ નથી. પરંતુ ભાવદ્વારા અનુભવ થાય છે. આ ભાવ આંતરરમણ રૂપ હોઇ અન્યનિરપેક્ષ છે. આમાં બાહ્ય સ્વરૂપના આવિર્ભાવની અપેક્ષા મુદ્દલે રહેતી નથી. ઉલટું બાહ્ય સ્વરૂપનો આવિર્ભાવ આ અનુભવમાં બાધકરૂપ છે. આ વિપ્રયોગરસમાં કેવલ ભાવભાવનજ હોય છે. આ નિરપેક્ષીત ભક્તો સ્વતંત્ર હોવાથી શુદ્ધ પુષ્ટિ કહેવાય છે, "कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते" કૃષ્ણનું આધીનત્વ (અપેક્ષિતા) ત્યાં સુધી મર્યાદા કહેવાય. (ભાવ સિદ્ધ થયા પછી સ્વરૂપની અપેક્ષા રહેતી નથી. ભાવથી કોટાનકોટિલીલાવિશિષ્ટ સ્વરૂપો સ્વેચ્છાનુસાર પ્રકટ થાય છે)

स्वतंत्रफलरूपो यः स्वरूपावेशतो हरेः ।
धर्मी रूपः स विज्ञेयो नाविर्भावप्रयोजनम् ॥ (शिक्षा०)

આ ધર્મી વિપ્રયોગ રસનો શ્રીઆચાર્યચરણ અનુભવ કરતા. તેનું જ્ઞાન દામોદરદાસને છે કે નહિ ? તેની પરીક્ષાને અર્થે અને દામોદરદાસનો ઉત્કર્ષ લોકમાં પ્રસિદ્ધ કરવાને અર્થેજ શ્રીજી આ અનોસરના સમયમાં

પધાર્યા. નહિ તો આપ સર્વજ્ઞ હતા. આ સમયે પધારી શ્રીમહાપ્રભુજીને શ્રમ શું કરવા દે ? કારણ કે બન્ને સ્વરૂપ પરસ્પર અત્યંત ગાઢ સ્નેહી છે. શ્રીનાથજી તો શ્રીઆચાર્યચરણની પાછલ પાછલ ફરે છે. (જુઓ વિદ્યાનગરનો પ્રસંગ) તે બન્ને સ્વરૂપ એક બીજાના શ્રમને સહન કરી શકતાંજ નથી. છતાં પધાર્યા તેનું કારણ એજ કે દામોદરદાસની ઉત્કર્ષતા સિદ્ધ કરવી છે. દામોદરદાસજી તો શ્રીઆચાર્યજીનું હૃદય છે. એટલે શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયની ક્ષણક્ષણની બધી લીલાનો તેમને અનુભવ છે. આ વખતે શ્રીઆચાર્યચરણ ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રસનો અનુભવ કરે છે. તે જાણીનેજ દામોદરદાસે શ્રીજીને રોકયા. કારણકે—આપના પધારવાથી શ્રીઆચાર્યચરણ જે અત્યારે પરમ આંતરરમણરૂપ સુખનો અનુભવ કરે છે તેમાં વિક્ષેપ પડે તેથી દૂરથીજ રોકયા.

આ પરમ સુખરૂપ સર્વાત્મભાવવાળા આંતરરમણમાં કામભાવવાળું બાહ્ય રમણ અન્યસંબંધના ગંધરૂપ હોઈ બાધક છે કારણ કે બાહ્ય સંયોગમાં એકલીલાનોજ એક કાલમાં અનુભવ છે. જ્યારે આંતર સંયોગાત્મક રમણમાં એકકાલાવચ્છિન્ન અનેક લીલાના પરમ સ્વાદનો અનુભવ ભક્ત કરે છે. માટે આ આંતરરમણ આગળ કામાત્મક બાહ્ય રમણ અન્યસંબંધરૂપ હોવાથી ત્યાજ્ય છે. ભક્તની સાધનદશામાં જેમ અન્યાશ્રય બાધકરૂપ છે. તેમ અહીં અન્યસંબંધનો ગંધ પણ બાધકરૂપ છે. આ આંતરરમણમાં બાહ્ય સ્વરૂપની અપેક્ષા નથી. જો બાહ્ય સ્વરૂપ પ્રગટ થાય તો રસાભાસ થઈ જાય. તેથી દામોદરદાસજીએ શ્રીજીને રોકયા. અહિં દામોદરદાસજીએ શ્રીઆચાર્યજીનું પરમ અલૌકિક સુખ વિચારી પોતાનો દાસ્ય ધર્મ પ્રકટ કરેલો હોવાથી જ્યારે શ્રીઆચાર્યજી ખીજ્યા ત્યારે શ્રીજીએ પક્ષ કર્યો. અન્યથા સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતમાં હાનિ આવે.

શ્રીજી તે વખતે ત્યાં વૃક્ષ નીચે ઉભા કેમ રહ્યા ? પાછા મંદિરમાં કેમ ન પધાર્યા ? તેમાં પણ એ રહસ્ય છે કેઃ—શ્રીનાથજીનું

વૃક્ષની ઓટમાં ઉભા રહેવાનું પ્રયોજન એ હતું કે "वैष्णवा वै वनस्पतयः" એવી શ્રુતિ છે. એટલે વૃક્ષ વૈષ્ણવ છે. તેથી વૈષ્ણવની ઓટ (હૃદય)માં આપ સ્થાયીભાવ રતિરૂપે દામોદરદાસની ઇચ્છાથી સ્થિત રહ્યા. કારણકે શ્રીઆચાર્યચરણના સેવકોની કા'ન શ્રીજી અને શ્રીગુસાંઇજી બન્ને રાખતા. તેમનો કદિ અપરાધ પણ બને તો કંઈ કહેતા નથી. મોટાના સેવકો પણ મોટાજ હોય.

શ્રીઆચાર્યચરણના હૃદયમાં સ્થાયીભાવ રતિરૂપે આપની સ્થિતિ હોવાથી, તરતજ આ (બાહ્ય) સ્થાયીભાવ રતિના સ્વરૂપને આપે જાણ્યું. જેથી આપનું ચિત્ત આંતરરમણમાંથી બ્હાર આવ્યું. અને જ્યારે દૃષ્ટિ ખોલીને જોયું તે સમયે શ્રીનાથજીને જોયા. પછી શ્રીઆચાર્યજીએ પૂછ્યું ત્યારે બધો પ્રકાર શ્રીજીએ કહ્યો. તેથી શ્રીઆચાર્યજી આપ દામોદરદાસ ઉપર ખીજ્યા. ત્યારે શ્રીજીએ પક્ષ કર્યો. આ પ્રકારે દામોદરદાસનો ઉત્કર્ષ સહજ સિદ્ધ થયો.

આ પ્રકારે દામોદરદાસ હરસાની અને તેમની વાર્તાનો ભાવ કહ્યો.

વૈષ્ણવ ૧ વાર્તા ૧ સમાપ્ત

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

કૃષ્ણદાસ મેઘનની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ—

આ સમગ્ર વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયની નિરોધલીલાના ધર્મી સ્વરૂપ છે, એટલે હૃદયવત્ છે. શ્રીઆચાર્યજીએ કૃષ્ણદાસમાં સમગ્ર ઐશ્વર્ય (षडैश्वर्य) સ્થાપ્યું હતું. માટે શ્રીહરિરાયજી કૃષ્ણદાસના આધિદૈવિક સ્વરૂપનું વર્ણન કરતાં આ પ્રકારે શબ્દો યોજે છેઃ–"कृष्णदासमें ऐश्वर्य को आवेश बहोत हें।" તે ૭ પ્રકારના ઐશ્વર્યનું શ્રીગોકુલેશે વાર્તામાં વર્ણન કર્યું છે. તે આ પ્રમાણે જાણવું:—

પ્રસંગ ૧:—प्रथम परिक्रमा में बद्रीनारायन के परली ओर किरणी नाम पर्वत हे ॥ तहांते एक बडी शिला गिरी ॥ सो कृष्णदास मेघन ने हाथ सों थांभि ॥

અહિં અલૌકિક સામર્થ્યરૂપ વીર્યનું પ્રતિપાદન છે.

પ્રસંગ ૨:—ता पाछें वेदव्यासजी सों बिदा होय के श्रीआचार्यजी तिसरे दिन पधारे ॥ तब कृष्णदास कों ठाडो देखि प्रसन्न भए ॥

અહીં શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞામાં પરમ વિશ્વાસરૂપ શ્રીધર્મનું નિરૂપણ છે.

"श्रियो हि परमा काष्ठा सेवकास्तादृशा यदि।" इति वाक्यात्।

પ્રસંગ ૩:—ताकी अटकर तें पेरि के गंगाजी के पार गए।

અહીં દેહનો પૂર્ણ વૈરાગ્ય ધર્મ કહ્યો. ભગવદર્થે જરાપણ શરીરનો વિચાર કર્યા વિના, ભયંકર ગંગાસાગરમાં ઝંપલાવવું એનાથી શ્રેષ્ઠ વૈરાગ્ય ધર્મ બીજો કયો હોઈ શકે ?

तहांते खेत में ते गीलो धान कटवायो। टका की जगे द्वे टका देके मुरमुरा सिद्ध करवाए।

રાત્રિના સમયે ખેડુતો ધાન નીંદતા ન હોવા છતાં કૃષ્ણદાસે પોતાના પ્રભાવથી તે ખેડુત (એક મૂઢ વ્યક્તિ કે જે પોતાની પકડેલી

વાતને છોડે નહિ તે)ના નિશ્ચયને ફેરવી રાત્રિના ધાન નીંદાવ્યું અને ભાડભૂન્જા (મૂઢ વ્યક્તિ) પાસે સિદ્ધ કરાવ્યું (જુઓ ભાવસિન્ધુ) અહીં કૃષ્ણદાસનું ઐશ્વર્ય કહ્યું. "ईश्वरः पूज्यते मूढे" इति वाक्यात् ।

સજ્ઞાન પુરુષ તો આકર્ષાય, પરંતુ મૂઢ પુરુષો પણ ઐશ્વર્યના પ્રભાવે આજ્ઞાધીન થાય તે ઐશ્વર્ય.

તેમજ વાસુદેવદાસ છકડા, વિષ્ણુદાસ છિપા, નારાયણદાસ આદિને કૃષ્ણદાસેજ ભગવત્પ્રાપ્તિ કરાવી. ત્યાં પણ કૃષ્ણદાસના ઐશ્વર્યનું નિરૂપણ છે. તે પ્રસંગો તે તે વાર્તામાં છે. "सर्वेषामितरसाधनासाध्य-भगवत्प्राप्तिसंपादन"માં ઐશ્વર્ય. (नामरत्नाख्यटीका)

પ્રસંગ ૩ (ख):—जो श्रीआचार्यजी पूर्ण पुरुषोत्तम होइ तो मेरे हाथ मति जरियो ॥

અહીં જ્ઞાનનું નિરૂપણ છે.

જ્ઞાનનું ફલ તે પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનો અનુભવ, જેમ નદીમાં જ્ઞાન છે 'मग्नगतयः सरितो वै' તેમ કૃષ્ણદાસને પણ પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનો બોધ થઈ ગયો છે. તે હાથમાં અગ્નિ લઇ સિદ્ધ કર્યું.

પ્રસંગ ૪:—बहुरी मार्ग हृदयारूढ भए पाछे कदाचित् गोप्य वार्ता होई सो सबन के आगे कहे ॥

અહીં યશ ધર્મનું નિરૂપણ છે.

'स्वयशोगानसंहृष्ट' એવા પ્રભુનો સ્વાનુભવાર્થ સર્વત્ર યશોગાન કરતા. આ છએ ધર્મ જેમાં સિદ્ધ છે એવા વિપ્રયોગનું દાન પણ કૃષ્ણદાસને હતું. માટે શ્રીઆચાર્યચરણે વ્યામોહ કર્યો ત્યારે વિરહાનલથી આ દેહને બાળી નાખી ભૂતલનો ત્યાગ કર્યો. (જુઓ પ્ર૦ ૮)

માટે કૃષ્ણદાસને ધર્મી રૂપ કહ્યા.

———×———

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके सेवक कृष्णदास मेघन क्षत्री सोरोंमें रहते तिनकी वार्ता ॥

सो कृष्णदास दस वर्षके घर छोडि के आये हते ॥ हृदयमें वैराग्य हतो ॥ सो प्रथम सोरमजी गंगा न्हायवेकुं आये ॥ सो वहां एक बडो योगी महात्मा रहतो ॥ सो चेला करतो ॥ उनके चेला भये ॥ सो वा महात्माकुं योग सिद्ध हतो ॥ दोय वरस पाछें ये सं. १५३५ की सालमें वैशाख कृष्ण ११ के ब्रह्ममुहूर्त समय योगाभ्यास साधत हतो ॥ वा समय कृष्णदास पास बेठे हते ॥ सो वाहि समय योगके प्रभावसूं गुरुने जानी ओर कही जो या समय भूतल विषे भगवदवतार भयो हे ॥ तब कृष्णदासके मनमें दर्शनकी परम उत्कंठा भई ॥ वह संवत मिती मास सब याद करि लियो। पाछें गुरुसों बदरिकाश्रम जायवेकी आज्ञा माँगी ॥ सो गुरुने नाहि करी ॥ ओर कही ॥ जो अभी तु बालक हे ॥ सो कहां जायगो ? फेर कृष्णदास दस वर्ष ओर गुरुके यहां रहे ॥ फेर गुरुकी आज्ञा ले बदरिकाश्रम के मिष पृथ्वीपर्यटनको चले ॥

शरण आये पहेले को प्रकार* (जन्म १)

सो प्रयाग आये ॥ (यहां दामोदरदास संभरवारे को मिलाप भयो) (देखो दा. सं. की वार्ता) तब उनने सुनी जो **श्रीवल्लभाचार्यजी**

---

*एक प्राचीन प्रतमेंसूं।

प्रकट भए हें ॥ सो दक्षिणमें पधारे हैं ॥ कृष्णदेव राजाकी समीप मायावाद खंडन कीए हैं ॥ यह सुनत ही कृष्णदास दक्षिण देश गये ॥ तब राजाके यहां खबरि पाए ॥ जो पांच दिन ॥ यहां ते पधारे हे ॥ सो कृष्णदास रात्रि दिन चले ॥ सो तीन दिन में दक्षिण के झारखंड में श्रीआचार्यजी को दर्शन पूर्ण पुरुषोत्तम (रूपसों) पाए ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही कृष्णदास आयो ॥ तब कृष्णदास (ने) दंडोत करि के (कह्यो)महाराज में आयो ॥ अब मो पर कृपा करि के सरन लेऊ॥ बहोत संसारमें भटक्यो ॥ अब में आपकी सरन में आयो हों ॥ तब श्रीआचार्यजीनें कृष्णदास सें कहि ॥ (जो) तेरे तो गुरु हे ॥ अब क्यों तू शरन आवत हें? ॥ तब कृष्णदास ने कहि महाराज आप साक्षात् पुरुषोत्तम हो ॥ में तिहारो हों ॥ तुम अब मोकों मति छोडो ॥ में संसारसमुद्र में डूबत हों ॥ या प्रकार बहोत दैन्य करी ॥ तब श्रीआचार्यजी कृष्णदास कों नाम सुनाये ॥ सरनि ले पृथ्वीपरिक्रमा को पधारे ॥ +

+ ષષ્ઠપુત્ર શ્રીયદુનાથજી રચિત "દિગ્વિજય"માં પણ કૃષ્ણદાસ ઝારખંડમાં જ અને આજ સમયે શરણે આવ્યાનો ઉલ્લેખ છે જુઓઃ–

तत्सविधे सूकरक्षेत्रान्मेघनकृष्णदासक्षत्रियः प्रयागं समेत्य, दामोदर हस्ते ताम्रपात्रं निरीक्ष्य, विद्यापुरजयं श्रुत्वा, भगवदवतारो जात इत्यनुमाय, द्रुतमाचार्यानुपेत्य, पादयोर्निपतितः । तत आचार्यैः समुत्थाय कुशलं पृष्ट्वा तस्मै निजमन्त्रमाले दत्ते ।

अथ पम्पायां समागताः ।

(प्रथम दक्षिण यात्रा)

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

કૃષ્ણદાસ મેઘનનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ—

કૃષ્ણદાસ મેઘન ઘણું કરીને પૂર્વના હતા. તેમના પિતા શ્રી રામચંદ્રજીના ઉપાસક હતા. જેથી કૃષ્ણદાસ પણ નાનપણથી જ રામભક્ત હતા. તેમનો જન્મ સં. ૧૫૨૩માં થયો હતો. તેઓ ક્ષત્રિય હતા, અને તેમની અટક મેઘનની હતી. સંવત ૧૫૩૩માં તેઓને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થવાથી તેઓ સોરમજીમાં ગંગા–સ્નાનાર્થ આવ્યા. ત્યાં કેશવાનંદ નામના એક પ્રસિદ્ધ મહાત્માના ચેલા થયા.

જ્યારે તેમણે સંવત ૧૫૩૫ ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ પોતાના ગુરુના મુખથી ભગવદવતાર થયાનું સાંભળ્યું, ત્યારથી તેમને ભગવદ્દર્શનની તીવ્ર ઉત્કણ્ઠા થઈ. પરંતુ તે વખતે તેમની ઉમર ફક્ત બાર વર્ષનીજ હોવાથી ગુરુએ કોઈ પણ જગ્યાએ જવાની ના પાડી. ×સંવત ૧૫૪૫માં જ્યારે તેઓ ૨૨ વર્ષના થયા ત્યારે ગુરુની આજ્ઞા લઇ બદરીકાશ્રમના મિષે પૃથ્વી પર્યટન કરવા નિકળ્યા.

કૃષ્ણદાસ અનેક ગામો અને તીર્થોમાં ફર્યા. દરેક સ્થલે સં. ૧૫૩૫ ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ પ્રગટેલા બાલકની ઘરઘરમાં તપાસ કરી પરંતુ સફલ ન થયા. તોપણ તેઓ નિરાશ ન થયા. સંવત ૧૫૪૭માં મકરસ્નાનાર્થે અનેક સાધુસંતોનો મોટો મેળો પ્રયાગમાં થયેલો. ત્યાં કૃષ્ણદાસ પણ આવ્યા. તે સમયે તપાસ કરતાં કૃષ્ણદાસે સાંભળ્યું કે દક્ષિણમાં શ્રીવલ્લભાચાર્યજીએ કૃષ્ણદેવ રાજાની સભામાં દિગ્વિજય કરી, વૈષ્ણવ મતનું સ્થાપન કર્યું છે. તેઓ ઘણા તેજસ્વી છે અને સાક્ષાત્ ભગવાનનોજ અવતાર છે. નાની વયમાં તેઓએ પ્રખર પંડિતોને જીત્યા છે. સ્માર્ત્ત અને વૈષ્ણવ સંપ્રદાયના સમસ્ત આચાર્યોએ આપને વિજયતિલક કરી આચાર્યપદવી આપી છે.

આ શ્રવણ કરતાંજ કૃષ્ણદાસ દક્ષિણ તરફ ચાલી નિકળ્યા.

× અહિં જ્યાં જ્યાં સંવત, માસ આદિનો ઉલ્લેખ છે ત્યાં ત્યાં ચૈત્રાદિ સંવત્ (વ્રજનો) અને માસ આદિ સમજી લેવા.

લગભગ એ અઢી મહીનામાં સંવત ૧૫૪૮ ના વૈશાખ વદી ૮ ની સાંજે વિદ્યાનગર આવ્યા.

ત્યાં તપાસ કરતાં સમાચાર મળ્યા કે અહિંથી શ્રીવલ્લભાચાર્યજી વૈશાખ વદ ૨ ઉપરાંત ૩ ના[1] રોજ પૃથ્વીપરિક્રમા કરવા પધાર્યા છે. આપશ્રીને વિદ્યાનગરથી પધારે ફક્ત પાંચ દિવસજ થયા છે.

આ સાંભળીને કૃષ્ણદાસ શીઘ્ર ગતિએ ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા. રાત્રિ દિવસ ચાલતા ત્રીજા દિવસે વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ (શ્રી આચાર્યજીના પ્રાકટચોત્સવના દિવસેજ) દક્ષિણમાં આવેલા ઝારખંડમાં તેઓ શ્રીઆચાર્યજીને આવી મળ્યા. ત્યાં તેઓ શ્રીઆચાર્યજીને શરણે આવ્યા.[2]

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

—:સમસ્ત લીલા પ્રકરણ:—

શ્રીવિશાખાજીનું ધ્યાન કરવા માટે કોષ્ઠક આ પ્રમાણે:–

પિતાનું નામ	માતાનું નામ	વર્ણ (રંગ)	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	વય	બાજા	રાગ
ગુણભાનુ	ગુણકલા	ગુલાબી શ્વેત	રંગશહાના	વિદ્યા	૧૫	મૃદંગ	સારંગ

આ પ્રકારે વિશાખાજીનું ધ્યાન કરવું. તે મુખ્ય અષ્ટ સખીમાં છે. એમને ત્યાં ૨૧૦૦૦૦૦ એકવીસ લાખ ગાયો છે. અને બીલછુ કુંડ ઉપર વિશાખાજીની નિકુંજ છે. એ સકલ વિદ્યામાં નિપુણ છે. શ્રીસ્વામિનીજી અને શ્રીઠાકોરજીની લીલામાં લલિતાજીની માફક સહાયક છે.

કૃષ્ણદાસ મેઘન વિશાખાજીનું સ્વરૂપ છે.

---

૧ જુઓ વલ્લભીયસર્વસ્વ, અને સંપ્રદ્રાયકલ્પદ્રુમ.

૨ સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમમાં શ્રીઆચાર્યજીની સાત વર્ષની વય હતી, ત્યારે કાશીમાં જનોઇના સમયે શરણે કૃષ્ણદાસ આવ્યા, તેમ ઉલ્લેખ છે. પરંતુ દિગ્વિજય આદિ અન્ય સમગ્ર પ્રાચીન પુસ્તકોમાં વિદ્યાનગરની સભા જીત્યા બાદ શરણ આવેલા તેવા ઉલ્લેખો છે, અને તેજ ઉચિત પણ લાગે છે, ઐતિહાસિક તત્ત્વોની શોધમાં ઉત્તરોત્તર પ્રાચીન પુસ્તકોના લેખોજ વધુ પ્રમાણરૂપે ગણાય છે. જેથી સર્વ પ્રાચીન પુસ્તકોમાં આજ સમયનો ઉલ્લેખ છે, તેથી તે સબળ પ્રમાણ રૂપ ગણાય.

आधिदैविक स्वरूपको वर्णन.
(जन्म ३)
श्रीहरिरायजी कृत

सो कृष्णदास विसाखा सखी तें प्रगटे हें ॥ विसाखाजी श्रीस्वामिनीजी की* छायारूप हें ॥ जेसें छाया सरीरके संग लागी डोले तेसें विसाखाजी श्रीस्वामिनीजी के संग रहत हें ॥ ताही प्रकारसों कृष्णदास हू श्रीआचार्यजीके संग रहत हें ॥ कृष्णदासमें ऐश्वर्यको आवेश बहोत हें[१] ॥ सो आगे (वार्तामें) वरनन करत हें ॥

वार्ताप्रसंग १
(जन्म २)
आध्यात्मिक स्वरूप

श्रीआचार्यजी महाप्रभुनें पृथ्वी परिक्रमा करी ॥ तीनों बेर कृष्णदास संग रहे ॥ प्रथम परिक्रमामें वद्रीनारायनके परली ओर किरणी नाम पर्वत हे तहांते एक बडी सिला गिरी ॥ सो कृष्णदास मेघनने हाथसों थांभी × ॥ तब श्रीआचार्यजी-महाप्रभु आप बहुत प्रसन्न भए ॥ सो अलौकिक फल देते ॥ परंतु परीक्षा देखन अर्थ कहे ॥ कृष्णदाससों कह्यो जो तु मागि कहा मागत हे ? तब कृष्णदास तीन वस्तु मांगे ॥ १ मारग को सिद्धांत हृदयारूढ होइ ॥ २ मुखरता दोष जाइ ॥ ३ मेरे गुरुके घर पधारो ओर उनको अंगीकार करो ॥ तामें दोइ वस्तु दीनी ॥ गुरुके घर पधारिवेकी नांहि कीनी ॥

× કૃષ્ણદાસમાં ષડૈશ્વર્યની સ્થિતિ છે. તેથી તેઓ ધર્મીરૂપ છે. વિશેષ જુઓ "કૃષ્ણદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય"

[१] અહિં વીર્યનું નિરૂપણ છે, જુઓ કૃ. વાર્તાનું સ્વ. અને રહસ્ય.

यह पहलेको गुरुभाव हृदयमें हतो सो बाहिर प्रगट्यो ॥ तातें अलौकिक दान श्रीआचार्यजीने छिपाय लीयो ॥ दो वस्तु दीए ॥ गुरुकी नांहि कीए ॥ सो दैवी न हतो ॥ दैवी बिना एतन्मारगमें अंगीकार नांहि ॥ या प्रकार दो वस्तु दीए ॥ परंतु ओर को गुरुभाव रहे ॥ तातें मारगको अनुभव हू न भयो ॥ मुखरताको दोष हू न गयो ॥ प्रथम सामर्थ्य तें कछुक सामर्थ्य हू घटी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

इति प्र. १ समाप्त.

પ્રસંગ ૧ નો પરિશિષ્ટ ઐતિહાસિક ભાગઃ–

આ પ્રસંગ અધુરો છે તે "યદુનાથ દિગ્વિજયમાંથી પૂર્ણ કરી અહીં આપ્યો છેઃ––

बदरिकाश्रमान्तं गत्वा तन्नाथं नत्वा व्यासाश्रमं गताः । तत्र शिला पतिता सा कृष्णदासेन गृहीता । तत्राऽऽचार्यैरस्मै वरद्वयं दातुं प्रतिज्ञातम् । ततोऽन्तः प्रविश्य व्यासं श्रीबिल्वमङ्गलाऽऽज्ञया प्रमाणचतुष्टये संशयान–पृच्छन् । स तान्निरूप्याह । भक्तिः प्रवर्त्तनीया, सिद्धान्तग्रन्था विधेयाः, प्रतिपक्षा निवार्याः, गार्हस्थ्यं विधेयमित्यादि । तथेत्युक्त्वा प्रणेमुः । ततः प्रचलिता हरिद्वारोपमार्गेण सूकरक्षेत्रं समागताः ॥

સારાંશઃ—કૃષ્ણુદાસને બે વરદાન આપવાની પ્રતિજ્ઞા કરી પછી આપ ભીતર પધાર્યા. બિલ્વમંગળની આજ્ઞાથી શ્રીવ્યાસજી પાસે પ્રમાણુચતુષ્ટયમાં જે સંદેહ હતા. તે પૃછ્યા. વ્યાસજીએ તે વર્ણુન કર્યા, અને એમ કહ્યું કે "આપ ભક્તિનો પ્રચાર કરો; સિદ્ધાન્ત ગ્રન્થોનું

નિર્માણ કરો, પ્રતિપક્ષોનું નિવારણ કરો, અને ગાર્હસ્થ્ય ધારણ કરો. આચાર્યચરણે તે આજ્ઞા સ્વીકારી અને તેમને પ્રણામ કરી હરિદ્વારના ઉપમાર્ગથી સૂકર ક્ષેત્ર (સોરોં) પધાર્યા.

નોંધ:--"દિગ્વિજય"માં આ પ્રસંગ બીજી પરિક્રમા વખતે વર્ણવ્યો છે. અને અહીં પણ બીજી પરિક્રમા વખતે પ્રથમ (પહેલ-વહેલા) બદરીકાશ્રમ પધાર્યા, એમ ઉલ્લેખ છે. કારણ કે લગ્નની પહેલી આજ્ઞા બીજી પરિક્રમા વખતે પાંડુરંગ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીએ કરી. તે આજ્ઞાને ફરી વ્યાસજીદ્વારા શ્રીબદરીનાથજીએ પ્રમાણ કરાવી આ પરિક્રમાનો સમય લગભગ સં. ૧૫૬૦નો આવે છે. પહેલી પરિક્રમા શ્રીઆચાર્યજીએ ૧૫૪૯–૫૦ થી સંવત ૧૫૫૮–૫૯ સુધીમાં નવ વર્ષમાં પૂર્ણ કરી છે. (જુઓ "યદુનાથદિગ્વિજય") બીજી પાંચ વર્ષમાં એટલે ૧૫૬૩–૬૪ સુધીમાં અને ત્રીજીવાર ચાર વર્ષમાં એટલે સં. ૧૫૬૭-૬૮ સુધીમાં આપે ત્રણે પરિક્રમા પૂર્ણ કરી. ત્યારપછી પણ આપનું પૃથ્વીપર્યટન સ્થલે સ્થલે ચાલુજ હતું. જ્યાં જ્યાં શાસ્ત્રાર્થ થતો અથવા તીર્થસ્નાનાદિ પ્રસંગ હોય ત્યાં આપ પૃથ્વીપર્યટનના મિષથી પધારતા હતા (જુઓ હરદ્વારની બેઠક ચરિત્ર) પહેલી પરિક્રમા પુર્ણ કરી બદ્રીકાશ્રમ પધાર્યા. બીજી પરિક્રમા ત્યાંથી શરૂ કરી છે.

वार्ताप्रसंग २

बहुरि श्रीआचार्यजी श्रीबदरिकाश्रमतें आगे व्यासजीकी गुफामें पधारे ॥ सो (कृष्णदासकों संग नांहि ले गये)॥ तहां जीव की गम्य नांहि ॥ तातें कृष्णदास सों श्रीआचार्यजीने कह्यो जो तू ठाडो रहियो ॥ जब श्रीआचार्य-जी आगे कों पधारे ॥ तब वेदव्यासजी सामें ही आए ॥ सो

श्रीआचार्यजी को पधराइ के अपने धाम ले गए ॥ पाछे वेद-व्यासजीने श्रीआचार्यजीसों कह्यो ॥ जो तुमने श्रीभागवतकी टीका करी हे सो मोकों सुनावो ॥ तब श्रीआचार्यजी जुगल गीतके अध्याय को एक श्लोक कहे ॥ सो श्लोक ॥ "वामबाहुकृतवामकपोलो वलितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः" ॥१॥ या श्लोक को व्याख्यान कियो सो तीन दिवस में संपूर्ण भयो ॥ तब वेदव्यासजीने कह्यो जो में यह व्याख्यान की अवधारना नाहीं करि सकत, तातें अब क्षमा करो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी कह्यो जो तुम वेदांत के एसे सूत्र कहा कीए जो मायावाद पर अर्थ लग्यो ॥ तब व्यासजी ने कह्यो जो में कहा करूं? मोकूं आज्ञा ही एसी हती ॥ जो एसे करियो ॥ जामें दोइ अर्थ प्राप्त होइ ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो ॥ जो हमने तो ब्रह्मवाद पर अर्थ कीयो हे ॥ सो सुनायो ॥ सो सुनके वेदव्यासजी बहोत प्रसन्न भए ॥ तापाछें वेदव्यासजी सों बिदा होइ के श्रीआचार्यजी तीसरे दिन पधारे ॥ तब कृष्णदास कों ठाडो देखि प्रसन्न भए* ॥ कहे तू ठाडो हे ॥ तू गयो नांहि ॥ सो काहेते ? ॥ तब कृष्णदासने कह्यो जो महाराज हों कहां जाऊं ॥ मोकों तुमारे चरणारबिंद बिना कछू ओर आश्रय नांहि हे ॥ तब यह सुनिके श्रीआचार्यजी-महाप्रभू आप बहुत प्रसन्न भए ॥ ओर कह्यो जो मागि ॥

---

* અહિં શ્રીધર્મનું નિરૂપણ છે (જુઓ કૃ૦ની વાર્તાનું રહસ્ય)

तब फेरि वेई तीनि वस्तू मांगि ॥ तामें दोइ तो दीनी ॥ गुरु के घर की नांहि कीनी ॥

ओर को गुरुभाव हतो ॥ तातें प्रथम तें कछुक सामर्थ्य हू घटी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो व्यासजी की गुफामें श्रीआचार्यजी कृष्णदासको संग नहि ले गये ॥ सो यातें जुगलगीतको प्रसंग कहनो हे ॥ ताकी धारना अब ही कृष्णदास सों होइगी नांहि ॥ व्यासजी सों हू धारना ना भई ॥ सो यातें व्यासजी कलाअवतार हें ॥ पुरुषोत्तम की बानी भावरूप की धारना केसें होइ ॥ यह श्रीभागवत व्यासजीमें श्रीपुरुषोत्तम आप बिराज कें कहि गए ॥ व्यासजी द्वारा मात्र हें ॥ श्रीभागवतके रसको अनुभव नांहि हे ॥ सो रहस्य हरजीवनदासनें या पदमें कह्यो हे ॥

॥ राग केदारो ॥

जोलों हरि आपुनपों न जनावें ॥
*तोलों वेद पुरान स्मृति सब पढे सुनें नहि आवें ॥१॥
सुनि बिरंचि नारायन मुख सों नारदसों कहि दिनो ॥
नारद कहि वेदव्याससों आप सोध नहि कीनो ॥२॥
वेदव्यास ओषध की नांई पढि तन ताप नसायो ॥
तिनतें सुनि शुकदेव परीक्षित राजाको जु सुनायो ॥३॥
जदपि नृपति सुनि व्रजकी लीला दसम कही शुकदेवा ॥
तोऊ **सर्वात्मभाव न उपज्यो** तातें करि न सेवा ॥४॥

---

*तोलों सकल सिद्धांत मारगको पढे सुने नहिं आवे ॥ एसो हू पाठ हे ॥

श्रीभागवत अमृत दधि मथिके श्रीवल्लभ सर्वोत्तम ॥
करि आवरन दूरि निजजनके हाथ दिये पुरुषोत्तम ॥५॥
सेवा अरु शृंगार विविध रस श्रीवल्लभ प्रगटायो ॥
करि कृपा निज जीवन उपर हरजीवन स्वाद चखायो ॥६॥

या प्रकार श्रीआचार्यजी की कृपातें रसकी प्राप्ति है ॥

इति प्र. २ समाप्त.

શ્રી આચાર્યચરણ સંવત ૧૫૬૮ (વ્રજ) ના જ્યેષ્ઠ માસમાં બદરીકાશ્રમ પધાર્યા તે વખતનો આ પ્રસંગ છે. (શ્રીસુબોધિનીજીની શરૂઆત બીજી પરિક્રમામાં માધવ ભટ્ટ શરણે આવ્યા ત્યારે કરી દીધી હતી. તે સ્પષ્ટ છે.) આ પ્રસંગના પ્રમાણમાં શ્રીબદ્રીનાથજીના પુરોહિત વાસુદેવને શ્રીઆચાર્યચરણે લખી આપેલા વૃત્તિપત્રનો નવમો શ્લોક છે. જુઓ;—

विद्वद्भिः किल कृष्णदासकमुखैः शिष्यैरनेकैर्वृतः
सोहं श्रीबदरीवनान्तमगमं शुक्रे शकाब्दे तथा ।
देवाम्भःपतिभूमिते सह नरं नारायणं वीक्षितुं
तत्र 'व्यासमुनीश' सङ्गतिरभूदाकस्मिकी मे शुभा ॥९॥

નોંધ:--

શ્રીઆચાર્યચરણ બદરીકાશ્રમ ત્રણ વખત પધારેલા છે. તેમ યદુનાથદિગ્વિજયથી સ્પષ્ટ થાય છે. અને તેની પુષ્ટિ આ વાર્તાથી થાય છે.

યદ્યપિ આ વાર્તામાં (પ્રાચીન હસ્તલિખિત પ્રતોમાં) બદરીકાશ્રમ પધારવાનું એજ વારનું વર્ણન સાધારણ દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે છે, તો પણ સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિથી જોતાં ત્રણવાર પધારવાનું સ્પષ્ટ માલુમ પડે છે.

અત્રે આપેલા પ્રસંગ (૧) અને પ્રસંગ (૨) નું સર્વ પુસ્તકોમાં (હસ્તલિખિત) એકજ પ્રસંગ તરીકે વર્ણન જોવામાં આવે છે. છતાં અત્રે આપેલા પ્રસંગની શરૂઆતમાં बहुरि શબ્દ દરેક ગ્રન્થમાં જોવામાં આવે છે. અને તેથી તે પ્રસંગ અલગ પડી જાય છે. જેમ શ્રીભાગવતના અધ્યાય ૧૯ માં વ્રતચર્યાના પ્રસંગ પછી ૨૯ મા શ્લોકમાં "अथ गोपैः परिवृतो" ત્યાં अथ શબ્દથી અલગ પ્રકરણ ચાલુ થાય છે તેમ અહિં बहुरि શબ્દથી બીજીવારનું સ્પષ્ટ નિરૂપણ છે. એથીજ અમે તેનો પ્રસંગ ૨ તરીકે ઉલ્લેખ કર્યો છે.

એટલે વૃત્તિપત્ર ત્રીજી પરિક્રમામાં બીજી વખતે બદ્રીકાશ્રમ પધાર્યા ત્યારે લખી આપ્યું છે. અને વામન દ્વાદશીનો પ્રસંગ ત્રણ પરિક્રમા પૂર્ણ કર્યા પછી કેટલાક વર્ષ બાદ સં. ૧૫૭૬માં–કુંભ ન્હાવા-હરિદ્વાર પધાર્યા છે. ત્યાં કેટલાક મહિના બિરાજી પછી બદરીકાશ્રમ પધાર્યા તે સમયનો છે. (જુઓ બેઠક ચરિત્ર) અને પહેલો પ્રસંગ બીજી પરિક્રમા વખતનો છે. એમ ત્રણે પ્રસંગ અલગ થઇ જાય છે.

(क) बहुरि एक समय श्रीआचार्यजी गंगासागर पधारे ॥
तहां श्रीआचार्यजी आप पोढे हते ॥

वार्ता प्रसंग ३ और कृष्णदास पांव दावत हते ॥
तब श्रीआचार्यजी आप मनमें विचारे ॥

जो धानके मुरमुरा होइ तो आरोगें ॥ तब यह बात श्रीआचार्यजीके मनकी कृष्णदास मेघननें जानी ॥ सो इतनेमें श्री आचार्यजीकों निद्रा आई ॥ तब कृष्णदास उठिके गंगासागर उपर आये ॥ तब देखे तो पार एक दीवा बरत हे ॥ ताकी

अटकर तें पेरि कें गंगाजी के पार गए[1] ।। तहां एक गांव हतो ॥ तहांते खेतमें ते गीलो धान कटवायो ।। टका की जगे द्वै टका दे के मुरमुरा सिद्धि करवाए ॥ पाछें कृष्णदास श्रीगंगाजी में पेरिके श्रीआचार्यजी के पास आये ।। तब श्री आचार्यजी के चरणारविंद दाबि के जगाए ।। मुरमुरा आगे राखे[2] ॥ कह्यो जो महाराज आरोगो ॥ तब श्रीआचार्यजी-महाप्रभूनने पूछी जो तू कहां ते लायो ।। तब कृष्णदासने सब वृत्तांत कह्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइ कहें जो कछु मागि ।। तब वेई तीन वस्तू मागी ।। तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो जीव कहा मागि जाने ।। या समें जो मागतो सोई देतो ।। जो कहेतो तो श्रीठाकुरजी को स्वरूप दिखावतो।।

(ख) पाछे श्रीआचार्यजी आप सोरों पधारे ।। तब कृष्ण-दासने बिनती करिके कह्यो जो मेरे गुरु को ले आउं ।। तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो तू खेद पावेगो ॥ पाछे कृष्णदास ईकेलेई गुरु के इहां गये ।। सो जब गुरुने कृष्णदास को देख्यो ।। तब कह्यो ।। जो तेनें ओर गुरु कीये ।। तब कृष्ण-दासनें कह्यो ।। जो मेंने तो ओर गुरु नांहि किये ।। मेरे गुरु तो आप ही हो ।। परि तुमारे प्रतापतें मेनें पूर्ण पुरुषोत्तम पाये हें ।। तब वाने कह्यो ।। जो पूर्ण पुरुषोत्तम कैसें जानीए ? तब गुरुके आगे अग्नि की अंगीठी धकधकात हती ।। तामें ते

---

१ અહિં વૈરાગ્ય ધર્મ. ૨ અહિં ઐશ્વર્ય ધર્મ (જુઓ કૃ૦ની વાર્તાનું રહસ્ય)

कृष्णदासनें दो हाथकी अंजुली भरि के अंगार हाथमें लीये ओर कहें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप पूर्ण पुरुषोत्तम होइ तो मेरे हाथ मति जरियो ॥ ओर जो अन्यथा होई तो मेरे हाथ जरि बरि भस्म होइ जैयो ॥ सो एक मुहूर्त्त लों अग्नि हाथमें राखी ॥ तब उन गुरुने भय खाई ॥ तब कह्यो के डारी दे ॥ पाछें उन गुरुने कृष्णदास के हाथ पकरी के अपने हाथ सों अग्नि डारि दीनी ॥ तब कृष्णदास तहांते खेद पाइ के उठि आए ॥

(यह प्रसंग सब वल्लभाष्टक की टीकामें श्रीगोकुलनाथजी ने विस्तारपूर्वक कह्यो हे ॥)

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

(क) सो गंगासागर के तीर पधारे ॥ सो रात्रिकों पोढे हते ॥ अर्धरात्रिको मुरमुराकी मनमें आई जो भोग धरिये ॥ सो कृष्णदास पर कृपा करन के लिये ॥ काहेतें पुरुषोत्तमको कछू वस्तु की अपेक्षा होइ नांहि ॥ कदाचित होई तो काहूके उपर कृपा करन के अर्थ ॥ सो कृष्णदास कों जनाई ॥ तब कृष्णदास तरिके पार जाय ले आए ॥ यह ईश्वरकार्य हें ॥ जीवसों न होइ ॥ तब कृष्णदास चरण दाबि के जनाए (जगाए) तब श्रीआचार्यजी आप अरोगि के बहोत प्रसन्न भए ॥

तब कहे मांगि । पाछे वही तीन वस्तू मांगे ॥

तब श्रीआचार्यजी कहे जीव कहा मांगे ? जीवको मागनो हि बाधक हे ॥ तातें परमानंददासने गायो हे "मागे सर्वस्व जात हे परमानंद भाखे" ॥

(ख) ओर गुरु को भाव चित्त में हतो ॥ ता करि महाप्रभू के वचन को विश्वास न भयो ॥ जो एकवार दिए सो दृढ हैं ॥ फेरि कहा मांगनो ? ओर मारग की दुर्लभता दिखाए ॥ श्रीमहाप्रभूजी के मनकी बात मुरमुराकी जाने ॥ परंतु मारग हृदयारूढ कृपाही ते होइ॥[1] दोष को स्वरूप हे जो मुखरता दोष, जीवको स्वभाव हू जीन के हाथ नाहीं ॥ जब श्रीआचार्यजी छोडावें तब ही छूटे ॥ तातें श्रीआचार्यजी बिना ओर में इश्वरबुद्धि तथा गुरुबुद्धि करे[1] ताको एतन् मारगको फल कबहू सिद्ध न होइ ॥ यह भाव जताए ॥ पाछें कृष्णदास गुरु के यहां सूं दुःख पाय, अन्याश्रय छोडि, महाप्रभूके पास आए ॥ तब मारग को सिद्धांत हृदयारूढ भयो ओर मुखरता दोष हू गयो ॥ तातें फेरि श्रीआचार्यजी सो नाहिं माग्यो ॥ अन्याश्रय एसो बाधक हे ॥ *

इति प्र. ३ समाप्त.

---

१. સરખાવો શ્રી હરિરાયજીની વાણીઃ—

निजाचार्येषु सततं मनस्तत्प्रियसूनुषु ।

स्थापनीयं न चान्येषु सममत्या कदाचन । (चतुःश्लोकी)

* ગંગાસાગરનો સમય. ૧૫૬૦–૬૧ લગભગનો અનુમાન થાય છે. અહીં શ્રીઆચાર્યજીને દેહત્યાગની આજ્ઞા થઇ. "गंगासागर संगमे" (જુઓ અંતઃકરણ પ્રબોધ) તે આજ્ઞા સ્વીકારી નહિં કારણ કે આપનો દેહ અલૌકિક છે. તેમજ લીલામાં થયેલી પ્રથમ આજ્ઞાનું પાલન પૂર્ણ રૂપથી થયું નથી. આ આજ્ઞા અંતઃકરણમાં થઇ છે. અને તેજ વખતે આપે મુરમુરા ભોગ ધરવાની ઇચ્છા કરી. અને શીઘ્ર કૃષ્ણદાસે તે ઇચ્છા જાણી કાર્ય સિદ્ધ કર્યું. અહીં કૃષ્ણદાસે દાસધર્મ દેખાડયો. સ્વામીની ઇચ્છા (વિના આજ્ઞા કરે) જાણીને કાર્ય કરવું તે દાસધર્મ. તેથી આપ પ્રસન્ન થયા.

बहुरि मार्ग हृदयारूढ भये पाछे कदाचित् गोप्य वार्ता होइ सो सबन के आगे कहें ॥ तब

वार्ता प्रसंग ४

काहू वैष्णवने श्रीआचार्यजी सों कही जो महाराज कृष्णदास गोप्य वार्त्ता सबन के आगे कहत हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने कृष्णदास सों पूछी, जो तू गोप्य वार्ता सबन के आगे क्यों कहत हे? तब कृष्णदासने कह्यो जो महाराज, आप उनही सों पूछिये ॥ जो मेंने कहा कह्यो हे? तब उन वैष्णव सों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तुमसों इन कृष्णदासनें कहा वार्ता कही? तब उन वैष्णवनें कह्यो ॥ जो महाराज हमको तो कछू सुधि रही नांहीं ॥ तब श्रीआचार्यजी मुसिकाईके चुप करि रहें ॥

मारग हृदयारूढ भयो ॥ सो रसके भरते रह्यो न जाइ ॥ सो रहस्यवार्ता वैष्णवसों करे ॥ तामें यह

श्रीहरिरायजी कृत
भावप्रकाश

जताए ॥ कृष्णदास अपुने अनुभव करन अर्थ कहते ॥ परंतु पात्र बिना रस ठेरे नाहि ॥ (तातें वैष्णवने कही, कछु सुधि रहो नाहिं)

और कृष्णदासकी कछू दामोदरदास तें उतरती दशा ॥ जो कहे बिना रह्यो न जातो ॥ यह दोऊ भाव जताए ॥

इति प्र. ४. समाप्त.

(क) ओर एक समें श्रीआचार्यजी सों कृष्णदासनें प्रश्न पूछ्यो जो महाराज श्रीठाकुरजी को प्रिय वस्तू कहा हे ॥ ताको प्रतिउत्तर श्रीआचार्यजी कहत हें ॥ जो श्रीठाकुरजी उत्तम तें उत्तम वस्तु के भोक्ता हें ॥ परंतु गोरस अति प्रिय हे ॥ गोरस शब्देन वाणी कहियति हे ॥ ताको भाव अनिर्वचनीय हे ॥ ओर सबन ते भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हें ॥ जातें भक्तवत्सल कहवावत हे ॥

वार्ता प्रसंग ५

तब कृष्णदासने फेर पूछी जो श्रीठाकुरजी कों अप्रिय वस्तु कहा हे ? तब श्रीआचार्यजीनें कह्यो ॥ जो श्रीठाकुरजी कों धुंआ समान अप्रिय ओर नाही हे ॥ ताहूतें अप्रिय श्रीठाकुरजी कों भक्तको द्वेषी हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

गोरस सो वैष्णव को स्नेह परस्पर ओर वैष्णव को कलेश सो धुंवा ॥ जहां स्नेह तहां श्रीठाकुरजी पधारे जानिए ॥ जहां क्लेश तहां ते श्रीठाकुरजी दूरि जानिए ॥

(ख) फेरि कृष्णदासने प्रश्न पूछ्यो ॥ जो महाराज श्रीरघुनाथजी संपूर्ण सृष्टि को लेके स्वधाम पधारे ॥ ओर राजा दशरथ को स्वर्ग दीयो ॥ सो काहेते ? ताको प्रति उत्तर श्रीआचार्यजी कहे जो श्रीरघुनाथजी तो परमदयाल हें ॥ तातें स्वर्ग दीनो ॥ नातर स्वर्ग की योग्यता राजा दशरथ को न हती ॥ काहेते जो अपनो वचन सत्य करिवे को श्रीरामचंद्रजी को वनवास पठाए ॥ एसो कर्म कीया ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यह प्रश्न हीनाधिकारी को हे काहें ते साक्षात पुरुषोत्तमकी लीला तें मन बहार करी यह प्रश्न कहा ? यामें यह जताए ॥ (कृष्णदासकों) अबहो "मानसी सा परा मता" यह फल नांहि भयो ॥ तब कृष्णदास के समाधान के अर्थ आप कहे जो रामचंद्रजी दयाल हें....(देखो बार्ता)

यह कहि अपने मारग को सिद्धांत जताए ॥ जो अपने हठधर्म करि धर्मी जो श्रीठाकुरजी तिनको श्रम करावे तो हीन फल धर्मको स्वर्ग ही मिलें ॥ श्रीठाकुरजीको फल न मिले ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ६

ओर एक समें श्रीआचार्यजी सों कृष्णदासनें फेरि प्रश्न पूछयो जो भक्त होइ के श्रीठाकुरजी की लीला को भेद नांहि जानत सो काहेतें ? तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो ये विधिपूर्वक समर्पन ज्यों कह्यो हे त्यों नांहि करत ॥

*** विधि सो समर्पन पदारथ को ज्ञान नांहि ॥ अहंता ममता अपनी सत्ता अहंकार को समर्पन ॥ जो अब दास भयो ॥ प्रभु आधीन हों ॥ प्रभु करे सो सर्वोपर सिद्धांत हे ॥ यह भेद अपने में नांहि ॥ ओर अपनि योग्यता मानि भगवदीय को संग नांहि करत हे ॥ तातें योग्यता मानें**

---

*અહીંથી આ +ચિન્હ સુધીના શબ્દો શ્રીહરિરાયજીના છે.

तब प्रभु अप्रसन्न होई जात हें ॥ यह मारग दैन्य को हे ॥ सो दैन्य नांहि हे ॥ इत्यादिक अंतरायतें अपनो स्वरूप ओर भगवदीय को स्वरूप श्रीठाकुरजी को स्वरूप नांहि जानत हें ॥ ओर भगवद्भक्त को संग करे तो श्रीठाकुरजी की लीला को भेद जाने ॥ सो तो योग्यता समज नांहि करत हे ॥ ओर जो कछू करत हे सो अंतःकरण पूर्वक नांहि करत हे ॥ ता तें श्री ठाकुरजी को स्वरूप ओर लीला को भेद नांहि जानत हे ॥+

उत्तम भक्त को संग करे ॥ श्रीभागवत श्रीसुबोधिनीजी आदि ग्रन्थ को अहर्निश अवगाहन करे ॥ तब भगवद्भाव उत्पन्न होइ ॥ श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन विषे सदैव रहत हें ॥ तहां सेवा करि के बंधे हें ॥ तहां एतन्मार्गीय वैष्णव ताके हृदय में श्रीठाकुरजी विराजत हें ॥ ताको संग करनो ॥ तहां गजनधावन आदि वैष्णव को दृष्टांत दीनो ॥ जिन जिन ने भावपूर्वक सेवा करी तिन तिन के सकल मनोरथ सिद्ध भये ॥ जातें लीलास्थ व्रजभक्तन के भाव को विचार करनो ॥

जो वैष्णव श्रीठाकुरजी को स्वरूप जानत हे ॥ तिनको स्वरूप अलौकिक दृष्टि सों जान्यो जाय ॥ जो आज्ञा होइ सो जाने ॥ जो वैष्णव श्रीठाकुरजी को जानत हें सो जो कछू काज करत हे सो श्रीठाकुरजी के अर्थ करत हें ओर श्रीठाकुरजी विषें विरह ताप भाव करत हें ॥ अपुने स्वदोष

को विचार करत हैं ॥ (एसे जीव) अपुने स्वरूप विचारे जो हौं कोन हौं ? पहले कहा हतो ? भगवद् संबंध कीये तें हौं कोन हो गयो ? अब मोकों कहा–कर्तव्य ? रात्रदिवस एसे विचार करत रहें ॥ तब अपनो स्वरूप जाने ॥ ये प्राकट्य श्रीव्रजभक्तन के अर्थ हे । तातें उत्तम संग होइ तो एतन्मार्गीय ठाकुर को जाने ॥ ओर शास्त्र पुरान अनेक इतिहास हें ॥ तातें व्रजराज के घर प्रगटे सो स्वरूप जान्यो न जाय ॥ ये ठाकुर तो तबही जाने जब भगवद्भक्त को संग करे ॥ सेवा को प्रकार एतन्मार्गीय वैष्णव जानत हें ॥ तिनसों मिली भाव पूछि के सेवा करनी । तब भगवद्भाव उत्पन्न होइ ॥ श्रीठाकुरजीकी लीला को सब भेद जाने ॥

इति वार्ता प्र. ६ समाप्त ॥

---

१ ओर श्रीआचार्यजी श्रीबद्रीनाथजी के मंदिर पाउ धारे ॥ तब वेदव्यासजी साथ हे ॥

वार्ता प्रसंग ७ तब श्रीआचार्यजी वेदव्यासजी सों पूछी जो भ्रमर गीत के अध्याय में

उद्धव कों व्रजभक्त पास पठाए ॥ ता प्रसंग में आधो श्लोक घटत हे ॥ तब वेदव्यासजीने अर्द्धश्लोक कह्यो सो श्लोक ॥ "आत्मत्वाद्भक्तवश्यत्वात्सत्यवाक्त्वात्स्वभावतः" सो याकी

टीका श्रीआचार्यजीनें पहले ही कीनी हे* ॥ सो सुनि के वेद व्यासजी कहे जो तुम धन्य हो ॥ ता पाछें श्रीआचार्यजी महा प्रभु श्रीबद्रीनाथजी के मंदिर में पधारे ॥ ता दिन वामनद्वादशी हती ॥ ता दिन श्रीआचार्यजी व्रत करते ॥ सो फलाहार श्रीव्यासजी हूं ढूंढे ॥ आर कृष्णदास हूं ढूंढे ॥ परंतु मिल्यो नांहि ॥ तब श्रीबद्रीनाथजीने श्रीआचार्यजी सों कह्यो ॥ जो मेनें फलाहार को सर्वत्र खोज कीयो ॥ परि पावत नाहिं ॥ तातें तुम रसोई करि के श्रीठाकुरजो को भोग समर्पि के भोजन करो ॥ तब श्रीआचार्यजी विचारे जो श्रीठाकुरजी की इच्छा एसी ही दीसत हे ॥ इतने में कृष्णदासने आइ के कह्यो जो महाराज, इहां कछु फलाहार पाइयत नांहि ॥ तब वेदव्यासजी द्वारा श्रीठाकुरजीने कही जो सामग्री करि भोजन करो ॥ "उत्सवांते च पारणा" यह बचन हे ॥ तापाछे श्रीआचार्यजी आपु रसोई करिके श्रीठाकुरजी को भोग समर्पि के आप भोजन कियो ॥

पाछें ता दिनतें वामनद्वादशी के दिना व्रत न करते ॥ पाछे श्रीआचार्यजी श्रीबद्रीनाथजी ते बिदा होइके कृष्णदास को साथ ले के पधारे ॥[१]

---

* अत्र प्रायेण साधनचतुष्टयप्रतिपादकमर्धमन्तरितमिति प्रतिभाति 'आत्मस्वाद.........' (सुबोधिनी १०–४४–२९)

१. આ પ્રસંગ ત્રણે પરિક્રમા બાદ અડેલવાસ કર્યો ત્યાર પછી સં. ૧૪૭૬માં હરિદ્વાર થઈ અહીં (બદ્રીકાશ્રમ) પધાર્યા તે વખતનો છે. (જુઓ હરિદ્વાર બેઠક ચરિત્ર)

फलाहार ना मिल्यो ॥ ताको प्रयोजन यह जो, श्रीआचार्यजी चाहें सो सबहि मिले ॥ व्यासजी कृष्णदास सरीखे ढूंढनहारे ॥ सो फलाहार या तें न मिल्यो जो श्रीआचार्यजी के मनमें सामग्री उत्सवकी करनी ॥ ऊपर तें मर्यादा राखिवे के लिए फलाहारकी कहो ॥ सो फलाहार न मिल्यो ॥ तातें वेदव्यासजी द्वारा श्रीठाकुरजीने कहवाई ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

तातें श्रीगुसांईजीने सात लालजीन में ॥ बडे घर (प्रथम पुत्र श्रीगिरिधरजी के घर) यह रीति राखी उपवास ॥ ओर ठोर "उत्सवांते च पारणा" श्रीठाकुरजी सब सामग्री अरोगे ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ८

श्रीआचार्यजीने जब आसुरव्यामोह लीला करी, तब कृष्णदास ने हू विप्रयोग करी देहको त्याग कीयो ॥ ×

इति प्र. ८ समाप्त.

× "સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમ"
અહિં વિપ્રયોગનું નિરૂપણ છે.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ સંભરવાળાની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ–

"चेतस्तत्प्रवणं सेवा" इति ॥ ઈશ્વરમાં ચિત્તનું પૂર્ણ પરોવાવવું તેનું નામ સેવા. દરેક મનુષ્યનું ચિત્ત ત્રણ વિભાગમાં વંટાએલું છે. ૧. ખાનપાન, ૨. ગાનતાન અને ૩. સુંદર પહેરવું ઓઢવું. તે ત્રણે પ્રકારની ચિત્તવૃત્તિને **ઈશ્વરમાં યોજવાને અર્થે** શ્રીમદાચાર્યચરણે ૧ ભોગ, ૨ રાગ અને ૩ શૃંગાર પ્રાધાન્ય ઐશ્વર્યયુક્ત સેવાનો દામોદરદાસને ત્યાં સર્વ પ્રથમ પ્રાદુર્ભાવ કર્યો છે. શ્રીઆચાર્યચરણે દામોદરદાસને ત્યાં આ સેવા ભાવાત્મક ઐશ્વર્યરૂપે સ્થાપન કરી એટલે અભોગ્ય ઉત્તમોત્તમ વસ્તુ શ્રી પ્રભુને અંગીકાર કરાવવી એવી આજ્ઞા કરી. (જુઓ પ્ર૦ ૧) **શ્રી દ્વારકાનાથજીએ તેનો બાહ્ય પ્રાદુર્ભાવ સાંગોપાંગ પ્રકટ કરાવ્યો.** (જુઓ પ્ર૦ ૩) એથી મંદિર, ટેરા, ઝારી ઝરોખા આદિ **સર્વ લીલા સૃષ્ટિનો ઐશ્વર્યક્રમ પ્રથમ દામોદરદાસને ત્યાં પ્રકટ થયો.**

આ રીતે સજ્ઞાન પુરુષ અને અજ્ઞાન પુરુષ બન્નેના મનને આકર્ષીને પ્રભુમાં યોજવાને અર્થે ઐશ્વર્યરૂપ સેવાનો પ્રાદુર્ભાવ કર્યો. આથી અનેક જીવો કૃતાર્થ થયા. "**રાજ કાજે જોડીયા જન ઉચ્ચાવચ નરનાર**" દરેક ઉચ્ચ નીચ તેમજ વિવિધ અધિકારવાળા જીવોનો પણ આ ઐશ્વર્યરૂપ સેવામાં અંગીકાર છે, અને તેની કૃતાર્થતા પણ છે. માટે આ સેવા વિના ચિત્તમાં રહેલી અનેક પ્રકારની વાસનાઓનો નિરોધ દુઃશક્યજ નહિ પણ અશક્યજ છે. માટે ઉપરના દેખાવ પૂરતા પાખંડ ધર્મયુક્ત સંન્યાસાદિ કરતાં ભગવત્સેવાનિમગ્ન ગૃહસ્થાશ્રમજ એક સર્વસુલભ ભગવત્પ્રાપ્તિના સાધનરૂપ છે. આ સેવાથી અહંતા મમતા સહજમાં નષ્ટ થાય છે. (જુઓ દામોદરદાસની સ્ત્રીનું પુત્ર ઉપરનું મમત્વ કેવું દૂર થયું? પ્રસંગ ૭-૮) અને

આગળ ઉપર પુષ્ટિના સંન્યાસરૂપ વિપ્રયોગ અવસ્થાની સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે.

આથી આ દામોદરદાસની વાર્તામાં અપ્રાકૃત ઐશ્વર્યનું આધિદૈવિક સેવા અર્થે પ્રાકટ્ય નિરૂપ્યું છે. માટે આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના ભાવાત્મક નિરોધના આધિદૈવિક ઐશ્વર્યરૂપ કહી.

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभूनके सेवक दामोदरदास संभलवारे क्षत्री कन्नोज के वासी तिनकी वार्ता ॥

शरण आये पहेले को प्रकार (जन्म १)

दामोदरदास कों बालपनें तें विरह हतो जो श्रीठाकुरजी की प्राप्ति कोंन प्रकार सो होई ? सो दामोदरदास एक समय प्रयाग में आए हते मकरस्नानको ॥ सो कृष्णदास सो मिलाप भयो ॥ तब चर्चा करत कृष्णदास (मेघन) ने कही श्रीवल्लभाचार्यजी प्रकट भये हैं ॥ सो दक्षिण में पधारे हे ॥ कृष्णदेव राजा की समिपे मायावाद खंडन कीए हे ॥ उनकी कृपातें निश्चय श्रीठाकुरजी मिलेंगे ॥ मेरे गुरु सों नेह हे तिनसो कछू कार्य मेरो भयो नांही ॥ तातें जब में जहां श्रीआचार्यजी

---

* १ 'श्रीहरिरायजीकृत,' संशोधित ઈतिहास.

होइंगे तहां जाऊंगो ॥ यह दामोदरदाससों कहे के कृष्णदास दक्षिण देश गए ॥

जब तें दामोदरदास के पास तें कृष्णदास मेघन श्रीआचार्यजी पास गए ॥ तब तें दामोदरदासको विरह बहोत रहे॥ जो मोकों श्रीआचार्यजी कोन प्रकार मिलेंगे ? ॥ या प्रकार विरह करत माह महिना में मकरस्नान दामोदरदास कीए ॥ सो महा सुद १५ को दामोदरदास मकरस्नान करत हते ॥ ता समय एक तांबे को पत्र गंगा यमुना के संगम में तें दामोदरदास के हाथ आयो ॥ सो दामोदरदास घर लाए ॥ जब रात्रिकों दामोदरदास सोए ॥ तब दामोदरदास को स्वप्न भयो ॥ यह पत्र बांचे ताकी तू शरन जैयो ॥ तब सवारे उठि के प्रयाग में बड़े २ पंडित ब्राह्मग महापुरुष मकरस्नानको आए हते ॥ तिन सबन को वंचायो ॥ कोई बांचि न सके ॥ तब दामोदरदास काशी में शेठ पुरुषोत्तमदास के इहां व्योहार हतो ॥ (तहां गये) खरच की हुंडी सेठ पुरुषोत्तमदास के यहां ले गये हते ॥ तिनसों सगरी बात दामोदरदासने कही जो यह पत्र श्रीआचार्यजी बांचेंगे ॥ और काहूकी सामर्थ्य नांहीं ॥ मोसों कृष्णदास मेघन कहे गए हैं ॥ जो श्रीआचार्यजी की सरन तें श्रीठाकुरजी मिलेंगे ॥ (सो) यह सुनिके सेठ पुरुषोत्तमदास हू को चटपटी लागी ॥ जो मोको कब श्रीआचार्यजी को दरसन होइंगे ? सो शेठ पुरुशोत्तमदासकी वार्ता के भाव में वर्णन करेंगे ॥ या प्रकार दामोदरदास दिन १५

कासो रहे ॥ परंतु पत्र कोउ न बांच्यो ॥ तब कन्नोज में अपने घर आए ॥ एसे विरह करत * कछूक महिनामें श्री आचार्यजी महाप्रभू कन्नोज पधारे ॥ तब गामके बाहर बागमें उतरे ॥

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ સંભરવાળાનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ:-

દામોદરદાસ જાતે ક્ષત્રિય હતા. તેમનો જન્મસમય સંવત ૧૫૩૦ લગભગનો છે. તેમના પિતા કરોલીના ચંદ્રવંશીય રાજાના દિવાન હતા. જ્યારે તેમના પિતાએ દેહ છોડયો ત્યારે તેઓ લગભગ ૨૦ વર્ષના હતા. તેમના પિતાએ તેમને નાનપણથીજ રાજ્યનીતિના પ્રખર અભ્યાસી કર્યા હતા અને રાજા સાથે તેમનો ઘનિષ્ઠ પરિચય કરાવેલો હતો. દામોદરદાસની બુદ્ધિ અત્યંત તીવ્ર હતી અને બહુજ નાની અવસ્થામાં પણ તેમના પિતાને કવચિત્ રાજ્યનીતિને અત્યંત ઉપયોગી એવી સલાહ આપતા કે જેથી પિતા પોતાના એકના એક પુત્રનું મુખ જોઈ રહેતા અને પોતાના પુત્રની બુદ્ધિ ઉપર મુગ્ધ થતા હતા. જ્યારે રાજાને દામોદરદાસની તીવ્ર બુદ્ધિનો પરિચય થયો ત્યારે દામોદરદાસના પિતાને તેઓએ હુકમ કર્યો કે પોતાના પુત્રને નિત્ય રાજ્યદરબારમાં સાથે લાવ્યા કરો અને રાજ્યથી માહિતગાર કરો. તેમ કરતાં કરતાં લગભગ પાંચેક વર્ષમાંજ જ્યારે દામોદરદાસના પિતાએ દેહ છોડયો ત્યારે રાજાએ દામોદરદાસને તેમના પિતાની દિવાનગીરી ઉપર કાયમ કર્યા. યદ્યપિ દામોદરદાસ રાજ્યનીતિમાં પૂર્ણ

---

* સંવત ૧૫૫૧-૫૨ માં શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધારેલા હોવા જોઇએ. (જુઓ શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ.)

સંડોવાયેલા હતા છતાં તેમનું ચિત્ત વૈરાગ્યથી પૂર્ણ હતું અને ભગ-
વત્પ્રાપ્તિના અર્થે અનેક સાધુ પુરુષોનો સંગ કરતા હતા.

વ્રજ સં. ૧૫૪૮ ના વૈશાખ વદ ૨ ઉપરાંત ત્રીજના દિવસે શ્રીઆચાર્યજીએ વિદ્યાનગરથી પ્રયાણ કર્યું. સર્વ પ્રથમ દક્ષિણના ઝારખંડમાં પધાર્યા. ત્યાં ભગવદાજ્ઞા થઈ કે આપ વ્રજમાં પધારી મારી સ્થાપના કરો. તેથી આપ વ્રજ તરફ પધાર્યા. રસ્તામાં કન્નોજ મુકામ કર્યો. ત્યાં ભગવદાજ્ઞા થઈ કે અહીંના જીવોને શરણે લેવાના છે. પ્રથમ આજ્ઞાનું પાલન કરવા આપ શીઘ્ર સંવત ૧૫૪૯ ના ફાલ્ગુન માસમાં વ્રજમાં પધાર્યા. ત્યાં શ્રીજીને પાટ બેસાડી સં. ૧૫૫૦ માં બ્રહ્મસંબંધનો મંત્ર શ્રીજીના શ્રીમુખથી પ્રકટ કરાવી આપ વ્રજ-યાત્રા કરી પૃથ્વીપરિક્રમા કરવા પધાર્યા. સંવત ૧૫૫૧–૫૨ માં આપ કન્નોજ પધાર્યા.

આપના પધારવાના એક દિવસ પહેલાં દામોદરદાસને સ્વપ્નમાં શ્રીદ્વારકાધીશે જણાવ્યું કે મારૂંજ બીજું સ્વરૂપ શ્રીવલ્લભાચાર્યજી કાલે કન્નોજમાં પધારશે અને તે તને તાંબાપત્રનો અર્થ સમજાવશે. માટે તું તેમને શરણે જજે. જ્યારે શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધાર્યા ત્યારે ગામ બહાર ગંગાતટ ઉપર આપે બગીચામાં મુકામ કર્યો. અને કૃષ્ણ-દાસને સામાન લેવા બજારમાં મોકલ્યા. આપણે પહેલા વાંચી ગયા છીએ કે કૃષ્ણદાસનો અને દામોદરદાસનો પ્રથમ મિલાપ સં. ૧૫૪૭ ની મકરસંક્રાંતિ વખતે પ્રયાગમાં થયો હતો. (જુઓ કૃષ્ણદાસનો ઈતિહાસ) જ્યારે દામોદરદાસ રાજદ્વારમાંથી ઘોડા ઉપર બેસીને ઘેર આવતા હતા, તેવામાં બજાર વચ્ચે તેમણે કૃષ્ણદાસને જોયા. જેથી તેમણે શ્રીવલ્લભાચાર્યજી પધાર્યા છે કે નહિ તેમ પૂછ્યું. (વિશેષ જુઓ વાર્તા.)

× × ×

શ્રીઆચાર્યચરણે તાંબાપત્ર વાંચીને તેમાંની આકૃતિના થતા

બન્ને અર્થ દામોદરદાસને સમજાવ્યા. માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ આધ્યાત્મિક અર્થ સમજાવતાં આપશ્રીએ તે આકૃતિઓનું આ પ્રમાણે રહસ્ય કહ્યું:—

આ ગીધ અને સ્ત્રીના જેવી જે આકૃતિ જોવામાં આવે છે તે પૂતનાની છે, અને તે અવિદ્યા (અજ્ઞાન) રૂપ છે. એની પાસે ગર્દભ (ગધેડા) ની જે આકૃતિ છે, તે 'ધેનુક' રાક્ષસની છે અને તે 'દેહાધ્યાસ' નું રૂપ છે. એની પાસે જે ઘોડાની આકૃતિ છે, તે કેશી દૈત્યની છે, અને તે 'ઇન્દ્રિયાધ્યાસ' રૂપ છે. એની પાસે જે રાક્ષસની આકૃતિ છે તે 'પ્રલંબાસુર' છે અને તે અંતઃકરણાધ્યાસનું સ્વરૂપ છે. એની પાસે જે અગ્નિમંડલ છે તે દાવાનલ છે તે પ્રાણાધ્યાસરૂપ છે અને આ સન્મુખ વેણુનાદ કરતી જે મૂર્તિ છે તે સાક્ષાત શ્રીકૃષ્ણની છે. એ શ્રીકૃષ્ણ અવિદ્યા (પૂતના) દેહાધ્યાસ (ધેનુક) ઇન્દ્રિયાધ્યાસ (કેશી) અંતઃકરણાધ્યાસ (પ્રલમ્બ) ને નષ્ટ કરે છે. અને પ્રાણાધ્યાસ (દાવાનલ) નું પાન કરે છે. અને આ પાસેજ જે સર્પની આકૃતિ છે તે 'કામક્રોધ' રૂપ છે. તેના ઉપર શ્રીકૃષ્ણ નૃત્ય કરે છે. કારણ કે શ્રીકૃષ્ણની આગલ કામક્રોધનું પ્રાબલ્ય નથી ચાલતું અને આ 'ગોલાકાર' આકૃતિ છે તે બ્રહ્મરૂપ છે અને આ સાકાર 'બ્રહ્મવાદસૂચક' ચિહ્ન છે, એને આ શ્રીકૃષ્ણની સામે હાથ જોડી ઉભેલી સ્ત્રીની આકૃતિ તે 'ભક્તિ'રૂપ છે તેની તરફ શ્રીપ્રભુ પ્રસન્નતાથી જોઈ રહ્યા છે. આ ભક્તિની પાસે જે બે બાલકોની આકૃતિ છે, તે જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય છે. એ એમ સૂચન કરે છે કે ભક્તિ થવાથીજ જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે. એની પાસે પંજાની આકૃતિ છે તેમાં આ દીર્ઘરેખા છે તે પૂર્ણ આયુષ્યની છે. અને આ નાની રેખા છે તે સાધુતાની છે. એની પાસે આ બીજી સમ્મિલિત રેખા છે તે ઐશ્વર્યની છે. આની પાસે ભક્તિનું સ્વરૂપ અને ભક્તિ નિરૂપણ તત્ત્વ છે. તેથી એ સિદ્ધ છે કે મનુષ્ય ભક્તિનિષ્ઠ થાય તે દીર્ઘાયુષ્યવાન, સાધુસ્વભાવ, અને ઐશ્વર્યવાન થાય છે. આ પ્રમાણે

બધી આકૃતિની એકવાકયતા કરીને આધ્યાત્મિક અર્થ દામોદરદાસજીને કહ્યો. પછી ભક્તિ (ભાવ) રૂપ આધિદૈવિક અર્થ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરવા લાગ્યાઃ--

આ સર્વ આકૃતિઓ અનેક પ્રકારની કુંજોના ચિત્રામણ રૂપ છે. અને તારૂં જ આધિદૈવિક સ્વરૂપ (સ્ત્રી આકૃતિ રૂપ) આ ચિત્રા સખીનું છે. શ્રીસ્વામિનીજીની નિકુંજ મહલમાં ચિત્રામન કુંજ સમ્હારવી એ તારી સેવા છે. અને તું શ્રીસ્વામિનીજીની સખી છે.

આ પ્રકારે જ્યારે શ્રીઆચાર્યજીએ બન્ને અર્થરૂપ લીલાનું સમગ્ર સ્વરૂપ અને ભાવનું દામોદરદાસને દર્શન કરાવ્યું ત્યારે દામોદરદાસને સમગ્ર લીલા અને પોતાના સ્વરૂપનું જ્ઞાન થયું. ત્યાર પછી તેઓ શરણે આવ્યા.*

શ્રીઆચાર્યજીએ રાજસેવાનું પ્રથમ મંડાણ દામોદરદાસને ત્યાં (વ્રજ) સં. ૧૫૫૨ ના ચૈત્ર માસમાં સ્થાપ્યું અને તેથી જ શ્રીઠાકુરજીનું નામ પણ શ્રીદ્વારકાધીશ કાયમ રાખ્યું.

પછી દામોદરદાસે શ્રીઆચાર્યજીને બે હાથ જોડી વિનતિ કરી કે કૃપાનાથ! વ્રજલીલામાં નંદનંદન તો દ્વિભુજ છે, અને આ શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ ચતુર્ભુજ છે, તેમજ પુષ્ટિલીલામાં આયુધધારણનું કારણ શું? તે કૃપા કરીને સમજાવો.

ત્યારે શ્રીમહાપ્રભુજીએ અત્યંત પ્રસન્ન થઈ આ પ્રકારે દામોદરદાસને આજ્ઞા કરી કે:—

શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ અતિપ્રાચીન છે. આ સ્વરૂપનું વર્ણન શ્રીમદ્ભાગવત, ગીતા, ઉપનિષદ, મહાભારત, વાલ્મીકીય રામાયણ, તુલસીકૃત રામાયણ અને પદ્મપુરાણ આદિ અનેક ગ્રન્થોમાં છે.

---

*तत्र कल्किस्थानं दृष्ट्वा कान्यकुब्जं समेत्य गङ्गातटे स्थिताः। तत्र दामोदरदासदत्तताम्रपत्रस्थलीलासम्बन्धार्थं निरूप्य तदभिज्ञानं तत्कर पल्लवस्थं चित्रं प्रदर्श्य, तं सकुटुम्बं च शिष्यं कृत्वा, तत्कृते श्रीद्वारकेश्वरं प्रतिष्ठाप्य। (यदुनाथ दिग्विजय प्रथम उत्तरयात्रा)

શ્રીદ્વારકાધીશ પરમ ગુપ્ત રહસ્યલીલાનું સ્વરૂપ છે. આ સ્વ-રૂપને કોઈ જાણી શક્યું નથી. તેં પૂર્વે આજ સ્વરૂપની રાજા અંબરીષ રૂપે મર્યાદામાર્ગની રીતિથી સેવા કરેલી છે. અને આ જન્મમાં તારે પુષ્ટિરીતિથી સેવા કરવાની હોઇ હું તને આ સ્વરૂપનું અતિગુપ્ત રહસ્ય કહું છું, તે તું દઢ ચિત્તથી શ્રવણ કર. તારા દ્વારા અનેક દૈવી જીવોને આ સ્વરૂપનો અનુભવ થશે.

શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીદ્વારકાધીશના ભાવાત્મક સ્વરૂપનું વર્ણન દામોદરદાસજી આગળ આ પ્રમાણે કહ્યું:—

આ સ્વરૂપ (શ્રીદ્વારકાધીશ) શ્રીમદ્ભાગવતના દશમસ્કંધના પ્રમેય પ્રકરણના સાતમા અધ્યાયની લીલાનું પ્રાકટ્ય છે. અને અન્ય પ્રકરણની લીલા આપમાં ગુપ્ત છે. તેથી વ્રજલીલામાં આપ પ્રમેય બલ લીલા કરી ચતુર્ભુજરૂપે દર્શન આપે છે.

મુખ્ય પ્રકારથી શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ વન–નિકુંજમાં આંખ મિચૌનીની ભાવનાનું છે.

આપના નીચેના દક્ષિણ શ્રીહસ્તમાં પદ્મ (કમલ) છે. તેનો અવાંતર ભાવ ચૌદભુવન રૂપ છે. તેથી તે આયુધરૂપ છે. યથા 'भुवनात्मकं कमलं' इति।

એનો મુખ્યભાવ પુષ્ટિરીતિથી શ્રીસ્વામિનીજીની હથેલી છે. શ્રીઠાકુરજીએ શ્રીપ્રિયાજીનાં નેત્ર મિચ્યાં છે તે શ્રીસ્વામિનીજી પોતાની હથેલીથી નેત્રનિમીલન છોડાવે છે.

ઉપરના દક્ષિણ શ્રીહસ્તમાં ગદા છે. તેનો અવાંતર ભાવ અસ્ત્રના તેજનું નિવારણ છે. તેથી ગદા આયુધરૂપ છે. યથા 'अस्त्रतेजः स्वगदया' इति। મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો–અદ્ભુત લીલા જોઇને શ્રીસ્વામિનીજી ભુજાશ્લેષ કરે છે. માટે ભુજાના આશ્લેષરૂપ ગદા છે.

ઉપરના વામ શ્રીહસ્તમાં ચક્ર છે તેનો અવાંતર ભાવ તો એ છે કે જેને મુક્તિ દેવી હોય તેને ચક્રથી મારે, માટે તે આયુધરૂપ છે. યથા 'ये ये हताश्चक्रधरेण राजन्'। इति।

એનો મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો શ્રીસ્વામિનીજીએ ભુજાશ્લેષ કર્યો ત્યારે કંકણાદિ સ્પર્શ–ક્ષત ખચિત થાય છે તે આ ચિહ્ન છે.

નીચેના વામ શ્રીહસ્તમાં શંખ છે. તેનો અવાંતર ભાવ તો અસુર–ગર્વ–નિવૃત્તિ છે તેથી તે આયુધરૂપ છે. यथा ' विष्णोर्मुखोत्थानिलपूरितस्य तस्य ध्वनिर्दानवदर्पहंता ' इति ।

તેનો મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો એ છે કે શ્રીસ્વામિનીજીના નેત્રને મિચ્યાં તે સમયે સન્મુખથી ગ્રીવાનો સ્પર્શ થાય છે.

આ, શ્રીઆચાર્યજીએ જે ભાવ દામોદરદાસને કહ્યો તે શ્રી દ્વારકેશજીએ જનહિતાર્થ સ્વરચિત ભાવનાના ગ્રંથમાં શ્રી દ્વારકાધીશના સ્વરૂપવર્ણનમાં સંસ્કૃતમાં શ્લોકબદ્ધ કર્યો છે. તે આ પ્રમાણે છેઃ—

प्रिया भुजाश्लिष्टभुजः कंकणाकृतिचक्रकः ।

कंबुकंठे धृतभुजो लीला कमल वेत्रधृक् ॥ १ ॥

શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ આંખમિચૌનીનું છે તેની ભાવનાનો શ્લોકઃ—

भ्रूवल्लीसंज्ञयादौ सहचरिनिकरं वर्जयित्वा स्वकीयं,

पश्चादागत्य तूष्णीमथ नयनयुगं स्वप्रियाया निमील्यः ॥

कोऽस्मीत्येतद्वचनमसकृद्वेणुना भाषमाणः,

पातु क्रीडारसपरिचय स्त्वाञ्चतुर्बाहुरुच्चैः ॥ १ ॥

અર્થઃ—શ્રીજમુનાજીના તટ ઉપર નિકુંજમાં પોતાના યૂથની સખીને પોતાની પાછલ રાખીને અને શ્રીઠાકુરજીના મેલની સખીને પોતાની આગલ બેસાડી શ્રીસ્વામિનીજી મધ્યમાં બિરાજી હાસ્યવિનોદ કરતાં હતાં. એવા સમયે વનમાંથી શ્રીપ્રભુ શ્રીસ્વામિનીજીની પાછલથી પધાર્યા. તે શ્રીપ્રિયાજીની આગલ બેઠેલી શ્રીઠાકુરજીની સ્વકીય સખીએ આપને પધારતા જોયા. શ્રીઠાકુરજીએ એને ભ્રકુટી ચલાવીને રોકી અને કહ્યું કે મારૂ પધારવું પ્રિયાને જણાવો નહિં. પછી ચુપચાપ પધારી પાછલથી પ્રિયાજીના બન્ને નેત્રો મીચ્યાઁ. તે પછી

આપે પ્રિયાજીને પૂછવાની ઇચ્છા કરી કે હું કોણ છું? પરંતુ જો મુખથી બોલે તો અદ્‌ભુત લીલાનું રહસ્ય ખુલી જાય છે તેથી તે ક્ષણે આપે પ્રમેયબલથી બીજા બે શ્રીહસ્ત પ્રકટ કરી બેઉ શ્રીહસ્તથી વેણુનાદ કરીને વેણુમાં પૂછ્યું કે હું કોણ છું?

વેણુદ્વારા આ વચનને સાંભળીને શ્રીસ્વામિનીજી આશ્ચર્યયુક્ત થયાં. અને મનમાં વિચાર કરવા લાગ્યાં કે બે શ્રીહસ્તથી નેત્ર મીચ્યાં છે, અને બે શ્રીહસ્તથી વેણુદ્વારા પૂછે છે કે હું કોણ છું?

પોતાના પ્રિયતમની આ અદ્‌ભુત લીલા જોઈને શ્રીપ્રિયાજીએ ઉત્તર દીધો કે આપ ચતુર્ભુજ છો. એવી રીતે પરસ્પર અત્યંત રસરૂપ આનંદની વૃદ્ધિ થઈ.

ત્યાર પછી શ્રીઆચાર્યજીએ દામોદરદાસને આજ્ઞા કરી કે તેથીજ આપના શ્રીઅંગમાં ચારે આયુધનાં સ્વરૂપ મૂર્તિમાન છે. પ્રિયાનાં આવિર્ભાવાવિષ્ટ સ્ત્રીરૂપ છે અને પ્રિયા જે સ્વામિની તે કરીને વિશિષ્ટ સ્વરૂપ આપનું છે. તેથીજ આપની પીઠિકા (કંદરા) ચોખૂંટી છે. પીઠિકાના વામ ભાગમાં ચક્રના ઉપર જે પદ્માસનથી બિરાજેલું ચતુર્ભુજ સ્વરૂપ છે તે એ સ્વરૂપ છે કે જેણે કારાગારમાં વસુદેવ દેવકીને ત્યાં પ્રકટ થઈ દર્શન દીધાં અને આજ્ઞા કરીઃ—यथा 'एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे',

પીઠિકાના દક્ષિણ ભાગ તરફ ગદાની ઉપર પદ્માસનથી બિરાજેલું જે ચતુર્ભુજ સ્વરૂપ છે તે સૃષ્ટિકર્તા લક્ષ્મીપતિ નારાયણનું સ્વરૂપ છે. આપ બ્રહ્માને ત્યાં બિરાજતા ત્યારે સૃષ્ટિક્રમ આ સ્વરૂપદ્વારા થતો. यथा श्री भा० द्वि० स्कं० न० अ० । 'ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितं'.

ઈત્યાદિથી આપે પોતાના સ્વરૂપનું જ્ઞાન કરાવ્યું અને પછી આજ્ઞા થઈ કેઃ—

'एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ।'

એ આજ્ઞા આ સ્વરૂપથી થઈ તે આ સ્વરૂપ છે. આ સ્વરૂપનું બીજું પ્રમાણ શ્રી ભા૦ તૃ૦ સ્કં૦ ન૦ અ૦ સમાપ્તિમાં શ્લોકઃ—

सर्ववेदमयेनेदमात्मनात्मात्मयोनिना ।
प्रजाः सृज यथा पूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥ ४३ ॥
तस्मादेवं जगत् स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ।
व्यज्येदं स्वेन रूपेग कंजनाभस्तिरोदधे ॥ ४४ ॥

આજ સ્વરૂપ દ્વારા આ આજ્ઞા થઈ. તેથી આ બન્ને વામ અને દક્ષિણ બન્ને ભાગનાં સ્વરૂપ પણ આપ શ્રીદ્વારકાધીશનાંજ વસ્તુતઃ છે. લીલાકરણ પીઠિકામાં પ્રથમ દર્શન દે છે.

હવે બન્ને તરફ નીચેના શ્રીહસ્તની નીચે બે બે સ્વરૂપ મલીને ચાર છે. તેનું સ્વરૂપ કહે છેઃ—

પૃથક્ પ્રમાણથી તો એ ચારે પાર્ષદ છે. એમનાં નામ સુનન્દન, નન્દ, પ્રબલ, અને અર્હણ છે. બીજા પ્રમાણથી એ ચારે વેદ છે. ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद અને सामवेद ।

ત્રીજા પ્રમાણથીં એ ચારે વ્યૂહ છે-પ્રદ્યુમ્ન, અનિરુદ્ધ, સંકર્ષણ, અને વાસુદેવ. અને ચોથા પુષ્ટિના પ્રમાણથી એ ચાર યૂથાધિપતિ છે. ચાર મુખ્ય સ્વામિની છે—નિત્યસિદ્ધા (શ્રીરાધિકાજી), શ્રુતિરૂપા (શ્રીચંદ્રાવલીજી), ऋषि રૂપા (શ્રીકુમારિકા રાધા સહચરીજી) અને તુર્ય પ્રિયા (શ્રીજમુનાજી)

હવે શ્રીઅંગના ચિન્હોનું સ્વરૂપ કહે છેઃ—

શ્રીમસ્તક ઉપર કિરીટ છે તે પ્રથમ મર્યાદાનો અંગીકાર છે. મુખ્ય પુષ્ટિ ભાવથી તો મયૂરપક્ષના મુકુટનોજ પર્યાયરૂપ કિરીટ છે. મલ્લકાછ કટિમાં ધારણ છે તે સૃષ્ટિ રચવી શ્રમસાધ્ય છે, તેથી. પુષ્ટિભાવ તો કામને જીતવાના હેતુથી નટવત્ વિહારરૂપ મલ્લકાછ છે. યજ્ઞોપવીત ધારણ છે તે શ્રુતિનો અંગીકાર છે. અને શ્રીકંઠમાં હાંસ ધારણ છે તે શ્રીસ્વામિનીજી સન્મુખથી આશ્લેષ કરે છે તે

આપના ઉભય મુખની કાંતિ પ્રભારૂપ છે. વનમાલા છે તે યાવત્ વ્રજભક્તોનો અંગીકાર કરે છે. ચરણમાં નૂપુર, પાયલ અને શ્રીહસ્તમાં કડાં છે તે આપનું યુગલ સ્વરૂપ ભાવાવિશિષ્ટ સ્વરૂપ છે તેથી યુગલતા સૂચિત છે. કિરીટના પાછલ તેજનું ચિહ્ન છે તે કોટિકન્દર્પલાવણ્ય અસંખ્ય સૂર્ય આપના તેજની આગલ લજ્જિત છે.

આ પ્રકારે આપના શ્રીઅંગનાં ચિન્હ છે. આવા પ્રકારનું આપનું સુંદર સ્વરૂપ અગમ્ય છે. ×

શ્રીઆચાર્યજીના શ્રીમુખથી દામોદરદાસે શ્રીદ્વારકાધીશનું સમગ્ર ભાવાત્મક સ્વરૂપ શ્રવણ કરી હૃદયમાં ધારણ કર્યું. જેથી તેમને સમગ્ર લીલા સ્ફુરી. ત્યારે પોતે લોકલજ્જા કુલકા'નનો ત્યાગ કરી પરમ સ્નેહથી સેવા કરવા લાગ્યા.

દામોદરદાસનું અવસાન સંવત ૧૫૭૭ લગભગ છે. (વ્રજ સં.) ૧૫૭૭માં શ્રીદ્વારકાધીશ શ્રીમહાપ્રભુજીને ત્યાં પધાર્યા.

—:સમસ્ત લીલા પ્રકરણ:—

ચિત્રાજીનું ધ્યાન કરવા માટે કોષ્ટક આ પ્રમાણે:—

પિતાનું નામ	માતાનું નામ	વર્ણ=રંગ	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	બાજા	રાગ	વય
રુચિભાનુ	રુચિરકલા	પીન શરીર લંબચોડા કેશ અધકચરે	લીલાં	જ્યોતિષ / ચિત્રકલા	સીતાર	શંકરા	વર્ષ ૧૩ માસ ૮

આ પ્રકારે ચિત્રાજીનું ધ્યાન કરવું. તે મુખ્ય અષ્ટસખીમાં છે. એમને ત્યાં ૧૯૦૦૦૦૦ ઓગણીશ લાખ ગાયો છે અને શ્રીકુંડની પૂર્વ આનંદ સુખદનામ એમની કુંજ છે. એ જ્યોતિષ સારૂ જાણે છે. (તે લીલાના સંબંધથી અહીં પણ દામોદરદાસને પૂર્વસૂચિત તાંબાપત્ર પ્રાપ્ત થયું.) તેમની સેવા નિકુંજમાં ચિત્રામનની છે. દામોદરદાસ સંભરવાળાનું સ્વરૂપ ચિત્રાજીનું છે.

× શ્રીદ્વા. પ્રા. વાર્તા (કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગ તરફથી પ્રકટ થએલી)

जब श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तहां गाम के बाहिर एक बाग हतो तहां आप उतरे ॥ ओर कृष्णदास को गाम में पठायो ॥ जो सीधो सामग्री ले आउ ॥ परि काहूसों कहीयो मति ॥ जो श्रीआचार्यजी आप पधारे हें ॥

शरण आयवेको प्रकार

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

यह कहे ताको अभिप्राय यह हे जो दामोदरदास कृष्णदास को मिलेगो ॥ सो दामोदरदास सों पहिले आपहि कहे जो श्रीआचार्यजी पधारे हे ॥ सो दामोदरदास द्रव्यपात्र हे ॥ तातें इनके बुलायवेकी अपेक्षा यह मनमें आवे तो कृष्णदासको बिगार होइ ॥ सो ताते बरजी दीए जो काहूसों कहियो मति ॥ प्रीति होइगी तो आपुही आवेगो ॥ यह अभिप्राय जाननो ॥

ओर दूसरो अभिप्राय यह हे जो जा दिन श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तातें पहलेई श्रीआचार्यजी आपको (श्रीठाकुरजीको) आज्ञा भई हती ॥ जो यहांके (कन्नोज के) जीव पावन करने हे ॥ तातें श्रीआचार्यजी आप विचारे जो आग्या भई हे तो आपही होइगो ताके लिये नाहि करी हती ॥

तब कृष्णदास गाममें गए ॥ सीधो सामग्री सब लीनी । सो सब ले के चले तहां दामोदरदास राजद्वारतें आवत हते ॥ सो मारग में जात कृष्णदास कों पहचानें ॥ तब

वार्ता

दामोदरदास घोडातें उतरि के कृष्णदास के पास आए ॥ तब दंडवत करि के कह्यो ओर पूछयो जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू पधारे हें ? ॥ तब कृष्णदासने बिचार्यो जो श्री आचार्यजी की आज्ञा नाही* (तातें कछु उत्तर दीयो नांहि)

तब दामोदरदासने विचार्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी बिना ए काहेको आवे ? सो जब कृष्णदास चले तब दामोदरदास पाछे पाछे आए ॥ घोडा घर पठवाइ दीयो ॥

तब कृष्णदास को ओर दामोदरदास कों दूरि तें आवत श्रीआचार्यजी ने देखें ॥ तब दामोदरदासने दंडवत कीये ॥ तब कृष्णदाससों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तेंने वासों क्यों कह्यो ? ॥ तब इनने (कृष्णदासनें) कही महाराज मेनें तो इनसों नाही कही ॥ तब दामोदरदासनें श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो महाराज इननें तो मोसों नांहि कही ॥ हों तो इनके पाछे चल्यो आयो हूं ॥

पाछे श्रीआचार्यजी (ने) दामोदरदाससों पूछी जो पत्र पायो हे सो लायो हे ? ॥ तब दामोदरदास ने बिनती

---

* तब कृष्णदासने कही आज्ञा नांहि ॥ આવો પાઠ પણ બીજી કેટલીએક પ્રતોમાં છે.

कीनी ॥ जो महाराज पत्र को कहा काम हे ? तब श्रीआ-
चार्यजी आप कही जो तोकों आज्ञा भई हे ॥ जो पत्र बांचे
ताकी सरन जैयो ॥ तातें पत्र ल्याऊ ॥ तब पत्र मंगवायो ॥

श्रीआचार्यजीने कृष्णदास सों कह्यो जो तेनें इनसों क्यों कह्यो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यह कहे ताको कारण यह जो 'तेने आज्ञा नांही' यह कह्यो तामें हमारे पधारनो तो कह्यो ॥ तब दामोदरदासने कही जो इनने नाही कह्यो ॥ में इनके पाछे चल्यो आयो हूं ॥ या प्रकार दैन्यता सिद्ध कीए ॥

जब दामोदरदासने कह्यो पत्रको कहा काम हे ? यह कही दामोदरदास ने यह जतायो जो आप ईश्वर हो ॥ मोको अनुभव भयो हे ॥ तब (श्रीआचार्यजी) कहे ल्याव भगवद्आज्ञा होय तेसेहि करनो ॥

तब श्रीआचार्यजी ने पत्र मंगवायो हतो सो बांच्यो ॥ पाछे वाको अभिप्राय दामोदरदाससों वार्ता कह्यों + ॥

+तू चित्रा सखि हे । श्रीस्वामिनीजी की निकुंज महलमें चित्रामन कुंज सवारनें यह तेरी सेवा हे ॥ सो श्रीआचार्यजी (स्वामिनीजी) की तू सखि हे ॥ उनहि की सरन जैयो ॥ यह बांचि सूनाये ॥ (श्रीहरि-रायजी) विशेष जुओ दामो० नी वार्ताना रहस्यमां.

पाछें दामोदरदास को नाम सुनायो × ॥ पाछे श्रीआचार्यजी को दामोदरदास नें अपने घर पधराए ॥ पाछे दामोदरदास की स्त्री हू सरनि आई ॥ तब दामोदरदासको ओर उनकी स्त्री को समर्पन करवायो ॥ एक लोंडि दैवी जीव हती सोउ शरन आई ॥

वार्ताप्रसंग १

तब दामोदरदास नें वीनती करी जो महाराज अब कहा आज्ञा होत हे ? अब हम कहा करे ? तब श्रीआचार्यजी श्रीमुखतें आज्ञा किए ॥ जो अब तुम सेवा करो ॥ तब दामोदरदासनें कही ॥ जो महाराज सेवा कोन प्रकार करे ? तब श्रीआचार्यजी महाप्रभूनने कही ॥ जो कहूं श्रीठाकुरजीको स्वरूप होय सो देखो ॥ सो एक दरजी के यहां श्रीठाकुरजी को स्वरूप हतो ॥ ताको द्रव्य देके स्वरूप अपने घर ले आए॥ पाछें घर सब पोते ॥ पात्र सब बदलाये ॥ पाछें श्रीआचार्यजी ने वा स्वरूप को पंचामृत करवायो॥ श्रीद्वारकानाथजी नाम धर्यों + ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

श्रीद्वारकानाथजी नाम यातें धर्यो जो राजरीतिसो **प्रथम सेवाको** विस्तार दामोदरदास के माथे सोंपे हे ॥

---

* સ્વયં અનુગ્રહબલે આપ કન્નોજ પધારી કોઈ પણ પ્રકા- રના જીવકૃત સાધનથી અપેક્ષા રાખ્યા વિના (સ્વયં સાધનરૂપ થઈ) દામોદરદાસને શરણે લીધા. અહીં પુષ્ટિનું નિરૂપણ છે. + શ્રીદ્વાર-

पाछें सिंहासन पाट बेठाए ॥ दामोदरदास के माथे सेवा पधराय के पाछें श्रीआचार्यजी आप रसोई करि के भोग समर्प्यो ॥ समयानुसार भोग सरायो ॥ तब बीडा समर्पन लागे ॥ तब देखें

वार्ता

तो पान हरे हैं। तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों खीजके कहें जो हरे पान श्रीठाकुरजी कों न समर्पिए ॥ उत्तम तें उत्तम सामग्री होइ सो श्रीठाकुरजी को समर्पिए ॥ श्रीठाकुरजी तो उत्तम तें उत्तम वस्तु के भोक्ता हे ॥

કાશીશની પ્રાકટ્ય વાર્તામાં આ પ્રસંગનું પાઠાંતર આ પ્રમાણે છે:—तब आपने आज्ञा करी कि-तुम्हारे या गाम में एक विष्णुस्वामि संप्रदाय को शिष्य क्षत्री नारायणदर्जी है, वाके घर एक अति प्राचीन स्वरूप विराजे हे, सो पधराय लाओ ॥ तब शेठजी (दामोदरदास) ने कही, जेसी राज की आज्ञा हे वोही करूँगो । वे यह कहके दर्जी के यहां गए, रस्ता में जाते जाते मन में विचार्यो बडो आश्चर्य है कि इतने वर्ष सूँ मैं या गाम को रहिवेवारो ओर मोकूँ दर्जी के यहाँ की खबर नहि है, कौन है, कहाँ रहे है, यह विचारते घर पूछते पूछते पहूँचे । दर्जी कूँ खबर लगी कि प्रधान सेठ दामोदरदासजी आवे हैं ॥ सो वह अपने घर के द्वार पे हाथ में नजराना लिये ठाडो भयो सो सेठजी कूँ देखतेई बहुत विनीत भाव सूँ हाथ बढाय के नजराना कियो । बहुत मंदवाणी सूँ प्रधान को स्वागत कियो। सेठजी ने नजराना नहि लियो × × × दर्जीने पूछ्यो-आज आप मेरे गरीब के घर कैसे आए ? × × × तब शेठजी ने कही-जिनको चंपारण्य में प्राकट्य भयो हे वेही श्रीवल्लभाचार्यजी यहां पधारे हैं। उनने तुम्हारे पास मोकूँ भेज्यो है । तुम्हारे यहाँ, जो निधि बिराजे है उनकूँ पधरायवेकी आज्ञा करी है सो जो चहिये सौ तुम्हारो सब प्रकारको प्रबन्ध मैं राज्य की आडीसूँ

उत्तम तें उत्तम सामग्री होइ सो श्रीठाकुरजी को समर्पिए ॥ ता पाछें स्त्रीपुरुष भली भांति सो सेवा करन लागे ॥ सो श्रीद्वारकानाथजी की सेवा भली भांति सो होन लागी ॥ ओर श्रीआचार्यजी नें आज्ञा दीनी ॥ जो उतर्यो परकालो (वस्त्र को थान) होइ तामेते श्रीठाकुरजी को न समर्पिए ॥ सारे परकाले मेते प्रथम श्रीठाकुरजी को लीजिये ॥ ओर उत्तम सामग्री होइ तामें ते ओर ठोर न खरचिए ॥ ता पाछे स्त्री पुरुष नीकि भांति सो सेवा करन लागे ॥

कराय दउँ । × વિશેષ જુઓ કાંકરોલી વિદ્યા વિભાગ તરફથી પ્રગટ થયેલી "શ્રીદ્વારકાધીશની પ્રાગટ્ય વાર્તા"

શ્રીદ્વારકાનાથજી દરજીને કેવી રીતે પ્રાપ્ત થયા તે માટે બે મત ઉપલબ્ધ થાય છે. શ્રી દ્વા૦ ની પ્રાકટ્ય વાર્તામાં નિચે પ્રમાણે છે:—वा नारायण दरजी कूँ रात में स्वप्न भयो, तामें श्रीद्वारकाधीश ने आज्ञा करी कि–हमारो नाम द्वारकाधीश है और हम आबु पर्वत पे ऋषिन के आश्रम में बिराजे है तू भक्त है । तेरी श्रद्धा सूँ हम प्रसन्न होय कें तोकुं आज्ञा करे हैं कि अभी जो चंपारण्य में आचार्य जनमे हैं, उनके यहाँ हमकूँ पधारनो है, सो तेरे द्वारा हम पधारेंगे । तू यहाँ आबू आय के ऋषिन सूँ हमकूँ माँगके अपने घर ले जाव। (अष्टमोल्लास).

પછી દરજી આબુ જઈને ૠષીની પાસેથી સ્વરૂપ પધરાવી લાવ્યો છે–તે બધુ વૃતાંત્ત છે.

આ નારાયણ દરજીની વહૂનું નામ લક્ષ્મી અને બ્હેનનું નામ સરસ્વતી હતું. વિશેષ જુઓ "શ્રી દ્વા. ની પ્રાગટ્ય વાર્તા" "વિદ્યા વિભાગ કાંકરોલી" ની બીજો મત (પ્રાચીન પ્રતના આધારે):—

ओर सेवा सामग्री एसी होती जो सोने के कटोरा में अमरस राखते ॥ सो एसो उच्यताते सो ओर कोई न जाने जो यामें कछु सामग्री धरी हें ॥ या भांति सो दामोदरदास सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

पाछे वस्त्रादिक की रीति बताए ।। जो ओर कार्य में कछु आयो होइ तो (सो बस्तु) श्रीठाकुरजीके काम न आवें ।। जाके अर्थ उठे ।। तिनको प्रसाद कहावे ॥ तातें पहले श्रीठाकुरजी को सब सामग्री में ते लेनो ।। श्रीठाकुरजी

सो दरजीने अपनो घर बनवायो ॥ द्रव्यमान हतो सो नींव में श्रीद्वारकानाथजी पधारे ।। प्रगटे ।। सो मर्यादा रीति सों दरजी पूजा करे ।। सो दामोदरदास के शरण आये पहले पांच वर्ष अगाऊ श्रीठाकुरजीने बिचार्यो जो ।। दामोदरदास सों पुष्टि रीति सों सेवा करावनी हे ।। तातें दरजी को सगरो धन नास कीए ।। दरजी के घर खानपान को कसालो भयो ।। तब दरजी को एक सैव मिलापी हतो ।। तासों दरजीने पूछी मेरो द्रव्य सगरो गयो ।। ठाकुर की पूजा हू करत हों सो कहा कारन ? ॥ तब सैव ने कहि तूं देवी की पूजा करे तो द्रव्य होइ ।। ठाकुर पूज्यो तातें निर्धन भयो ।। तव दरजी देवी को पूजन करन लाग्यो ।। श्रीठाकुरजी कों एक आलिया में बेठाय राखे ।। सो कछू द्रव्य की प्राप्ति भई ॥ तव दरजी को विश्वास देवि पर भयो ।। मन में यह रहे जो कोई ठाकुर ले जाय तो आछो ।। सो दामोदरदास ने खवरि पाई तब कछूक द्रव्य दे के उह दरजी सों द्वारकानथजी कों लाये ।। ××××

આ લોકમત હોઈ લૌકિકી ભાષા છે એટલે જ સમાધિરૂપ રહસ્ય ભાષામાં જેટલી ઉપયોગી થઈ પડે તેટલીજ ગ્રાહ્ય છે.

की सामग्री में ते अन्य ठोर खरच न करनो ॥ या प्रकार पुष्टिमारग की रीति सबकों बताए ॥

पाछें श्रीआचार्यजी पृथ्वी परिक्रमाको पधारे ॥ जीनके सामग्री पिरि सोने के पात्र में मिलि जाई ॥ उज्ज्वल सामग्री रूपे के पात्र में मिलि जाइ ॥ यह गूढ भाव जनाए ॥ सोने के मिष श्रीस्वामिनीजी के भाव ते रुपे के मिष श्रीचंद्रावलिजी के भाव सों सेवा करते ॥

इति प्र. १ समाप्त.

वार्ता प्रसंग २

ओर दामोदरदास श्रीठाकुरजी को जल आप भरतें ॥ सो एक दिन दामोदरदास को सुसर दामोदरदास के घर आईके दामोदरदास सों कहन लागे ॥ जो तुम जल भरि लावत हो ॥ सो हमकों जाति में लज्जा आवति हें ॥ तातें तुम जल मति भरो ॥ लोंडी पास जल भराओ ॥

तब दामोदरदास बिचारे जो सूरदासजि गाए हें ॥ "सूर भजन कलि केवल कीजे लज्जा कान निवारि" ओर किर्तन में गाए हें ॥ "कानन काहूकी मन धरीए व्रत अनन्य एक लहीए हो" यह बिचारी अस्त्री सों कहे तुमहू जल लेंन चलो ॥ तब दामोदरदासने दूसरे दिन एक घडा तो आपु लीयो ॥ एक घडा स्त्रीके हाथ में दीनो ॥ तब स्त्री भगवदी सो घडा (गागरि) ले ससुर (दामोदरदास के) हाट आगे

तें चले ॥ तब दोउ जने (फेर) वाकी हाटके नीचे होय के निकसे ॥ तब जल लेके आए ॥ तब पाछे दामोदरदास को ससुर आयो ॥ सो आइ के दामोदरदास के पाइन पर्यो ॥ ओर कह्यो जो में चूकयो ॥ जो तुमसों कह्यो ॥ अब ते तुमही जल भरो परि अस्त्री जन पास जल मति भरावो ॥ आज पाछे हम कछू न कहेंगे तब आपहि जल भरन लागे। श्रीठाकुरजी दामोदरदाससों सानुभावता जनावन लागे ॥ जो कछु चाहिये सो दामोदरदास पास मांगि लेइ ॥ बातें करे ॥ सेवा करि के दामोदरदासने श्रीठाकुरजी को एसे प्रसन्न कीये ॥ सो इनकी सेवा देखि के श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भये ॥ तब आप अपने श्रीमुखते कहें ॥ जो जिन राजा अंबरीष न देख्यो होइ सो दामोदरदास को देखो राजा अंबरीष तो मर्यादामार्गीय हुतो। और ये पुष्टिमार्गीय हें ॥ इनमें इतनीं अधिकताइ हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

दामोदरदास जलकी सेवा श्रीयमुनाजी के भावतें करतें ॥ तातें श्रीआचार्यजी कहें ॥ मर्यादामें अंबरीष पुष्टि में दामोदरदास राजसेवा कीए ॥ तब तत-हरा रुपे के अंबरीष की उपमा केसे जानिए, जेसें श्रीठाकुरजी की मुखकी उपमा चंद्रमाकी ॥ काहेतें कहां मर्यादा कहां पुष्टि? कोटि गुनो तारतम्य जाननो॥

जब दामोदरदासके सुसरने कही ॥ अस्त्रिसो जलमति भरावो

तब दासोदरदास कहे । जल न भरावेंगे ॥ पाछे ससुर गयो ॥ तब दामोदरदासनें बिचार्यो जो जलकी सेवा (स्त्री जनसें) कराई ॥ सो जो अब में छुडांऊ तो मोकों ससुराकी का'नको दोष परे । परंतु एकवार बरजोंगो, प्रीति होइगी तो स्त्री आपुहि न छोडेगी ॥ (यों बिचार के) जो एकवार भर्यो सो सोवार भर्यो अब गामके (लोग तो) जान चुके ॥ अब में सेवा क्यों छोडों ? ॥ प्रीति होइगी तो या भांति (बिचारके) भरेगी ॥ तातें में हठ करिके भराऊं तो प्रीति बिना श्रीठाकुरजी अंगीकार न करेंगे ॥ तातें एकवार बरजों तो सही ॥ तब (स्त्री सों) कहें ॥ अब मेंही जल भरोंगो ॥ तुम मति भरो ॥ तिहारे पिताको लाज लागत हे ॥ तब स्त्रीने कही तुमही भरो ॥ या प्रकार पिताकी का'नको दोष भयो ॥ सो आगें जाय के अन्याश्रय भयो ॥

जो दामोदरदास ससुरके आग्रह का'न तें जलकी सेवा छुडावते ॥ तो इनहूंको बाधक होतो ॥ तासों फेर सेवा करन लागे ॥

इति प्र. २ समाप्त.

वार्ताप्रसंग ३

ओर एक समें उष्णकाल के दिन हते ॥ तब दामोदरदास श्रीठाकुरजी को मंदिरमें पधराइ पोढाइके आप चोवारे जाइ सोये ॥ तब श्रीद्वारकानाथजी ने लोंडी को आज्ञा दीनी जो तू किंवाड खोलि ॥ मोकों गरमी बोहात होत हें ॥ तब लोंडीने मंदिर के किंवाड खोले ॥ तब श्रीद्वारकानाथजी ने लोंडी सों कह्यो जो पंखा करि ॥ तब लोंडि

ने पंखा कीयो ॥ तब श्रीठाकुरजीने लोंडि सो कह्यो ॥ जो तू जा, रहन दे ॥ तब लोंडि किंवाड खुले छोडिके सोयवे गई ॥ तब सवारो भयो तब दामोदरदास देखे तो मंदिरके किंवाड खुले हें ॥ तब पूछे जो किंवाड कोन ने खोले हें ? तब लोंडि ने दामोदरदास सों कह्यो ॥ जो मोकूँ श्रीठाकुरजीने आज्ञा दीनी ही जो तू किंवाड खोलि ॥ तब मेने किंवाड खोले हें ॥ तब दामोदरदास ने कही जो मोसू खोलिवेकी क्यों न कही ? आप खोले ॥ फेर दामोदरदास के मनमें आई ॥ जो श्रीठाकुरजी नें मोसें किंवाड खोलिवेकी क्यों न कही ? ॥ और लोंडि सों क्यों कहे ॥ परि प्रभु बडे दयाल हें ॥ जाके विषे स्नेह होइ ॥ ताही सों संभाषन करे ॥ श्रीआचार्यजी के अंगीकार में सब समान हें ॥ लौकिक में कोऊ उंचनीच कहियो (परि) श्रीठाकुरजी स्नेह के बस हें ॥ पाछें श्रीठाकुरजीने दामोदरदास सों कह्यो ॥ जो मेने खुलाए हें और इन (नें) खोले हें ॥ जो तू यासें क्यों खीझत हे ? तू तो चोवारे जाय सोयो ॥ और मोको भीतर सुवायो ॥ तब दामोदरदासने कह्यो जो प्रसाद तब लेहूँ (जब) मंदिर नयो समराउं ॥ तब स्त्रीनें कह्यो जो एसे क्यों बने ॥ यह तो कछु पांच सात दिनको तो काम नाहीं ॥ तब दामोदरदासने कह्यो ॥ जो सखडी महाप्रसाद तो नहीं लेउगो ॥ फलाहार करूंगो ॥ तब त्योंहि करत मंदिर सिद्ध भयो ॥ तब आछो दिन देखि के श्रीद्वारकानाथजीकों मंदिर में बेठाये ॥ तब बडो उत्सव कीयो ॥

पाछें सब वैष्णवनको महाप्रसाद लिवायो ॥ ता पाछें आपु महाप्रसाद लीयो ॥

श्रीठाकुरजीने लोंडीकी पास पंखा कराए, परि स्त्रीकों नांहि जताए ॥ सोउ जलकी सेवा छोडि, तातें इनकों न कहे ॥ काहेतें पहले स्त्री जलकी सेवा न करती सो चिंता नांही ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

(सेवा) करि के छोरनो हतो तो दस पांच दिन जल भरिके ॥ पाछें अपने मनतें न भरते तो चिंता नांहि ॥ ससुरके कहेतें छोडे, तातें श्रीठाकुरजी लोंडी सों किंवार खोलाय पंखाको सेवा कराए ॥

ओर श्रीआचार्यजी की यह आज्ञा हें ॥ जहां तांइ पूरन स्नेहको प्रकार हृदयारुढ न होई तहां तांई सेवा (यथा देहे तथा देवे) अपनी देहकों सीत उष्ण विचारि कें करे ॥ सो दामोदरदास चोवारें सोए ॥ श्रीठाकुरजी कों बियारि आयवेको मारग न हतो ॥ तातें मंदिर की रीति प्रगट कराइवेके लिए श्रीठाकुरजीने लोंडिसों किंवार खुलाए ॥

लोंडिको मानसि सेवाको अधिकार हतो ॥ अष्ट प्रहर गोप्य रीति सों मानसि करती ॥ कोई जानतो नांहि ॥ तातें श्रीठाकुरजी उह लोंडि के उपर बहोत प्रसन्न रहते ॥

जब दामोदरदास लोंडि पर खीजे ॥ सो श्रीठाकुरजी सहि न सके ॥ जो मोकों प्रिय हें ता पर खीझत हे ? ॥ सो लोंडिकी पक्ष श्रीठाकुरजीने करी ॥ तथा दामोदरदासको अपराध तें छोडाइवे कों बोले जो मेनें यासों खुलाए ॥ तू क्यों खीझत हे ? आज पाछें या पर प्रीति

राखियो ॥ याको स्वरूप अलौकिक जानियो ॥ तूं जाय चोवारे पर सोयो ॥ मोकों बियारि आयवेकी ठोर नांही ॥ चित्रा सखि होइ अपनि सेवा भूलि गयो ? ॥ मंदिर संवारनो ॥ तब दामोदरदास चोंकि परे सो यह जो अपने स्वरूप को अनुभव भयो॥ तब कहे मंदिर बने तब खानपान करूं॥ यह टेक चित्राके आवेसमें कहे ॥ पाछें कारिगर बुलाय काम लगाए ॥ पाछें स्त्रीनें कही खानपान बिना केसें चलेगो ? एक दिन को काम नांही हे ॥ तातें खान पान बिना रह्यो न जायगो ॥ वह आवेस रहेतें ॥ तब खानपान मति करियो ॥ अब तो करो ॥ तब कहे फलाहार लेऊंगो ॥ या प्रकार मंदिर सवराए ॥ जारी झरोखा निज मंदिर तिवारी चोक टेरा परदा जेसें लीलासृष्टिमें करत हतें ताहि भाव सों सगरे मंदिरको ब्योंत कीए * ॥ मुहूरत देखि पधराए ॥ बडो उत्सव (कीयो) वैष्णवको समाधान श्रीआचार्यजीकी भेट काढे ॥

इति प्र. ३ समाप्त.

---

* આ પ્રસંગ લગભગ ૧૫૬૦-૬૫ માં બન્યો હોવો જોઈએ. આ પ્રસંગથી ઐતિહાસિક એક વસ્તુ એ જાણવાની મળે છે કે— શ્રીનાથજી નવા મંદિરમાં પધાર્યા પહેલાં આ મંદિર બન્યું છે કારણ કે અહીં લીલાસૃષ્ટિનો ક્રમ બતાવ્યો છે. પાછલથી બન્યું હોત તો શ્રીનાથજીના મંદિર અનુસાર બનાવ્યાનો ઉલ્લેખ અવશ્ય હોત. બીજી વાત આથી એ પણ સિદ્ધ થાય છે કે મંદિરનો તમામ પ્રકાર લીલાસૃષ્ટિને અનુસાર જ આપણે ત્યાં બનેલો છે, પ્રાકૃત નથી. શ્રીઆચાર્યજીએ સર્વ પ્રથમ શ્રીદ્વારકાનાથજીને ત્યાં રાજસેવા ચાલુ કરાવી છે.

वार्ता प्रसंग ४

बहुरि एक दिन दामोदरदास श्रीठाकुरजीको राजभोग समर्पि सय्या मंदिरमें सैया संभारन गए ॥ तब देखे तो दुलीचा उपर बिलाई ने बिगाड्यो हे ॥ तब दामोदरदासने कह्यो जो श्रीठाकुरजी तो अपनी सैया हू राखि सकत नाही ॥ एसें कह्यो तब श्रीठाकुरजी ने थार चोकी उपरसूं लात मारि डारि दीनो ओर दामोदरदास सों श्रीठाकुरजीने कह्यो ॥ जो सेवक तू के सेवक में? सेवक होइ के एसे बोलत हे? एसे बहुत खीजे पाछें दामोदरदास ने बिनती कीनी ओर बहुत मनुहार करी ॥ सब सामग्री सिद्ध करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्प्यो ॥ श्रीठाकुरजी अरोगे ॥ परि तोहू दोय मास लों बोले नांहीं ॥ पाछे वहोत बीनती करन लागे ॥ तब बोलन लागे ॥

श्रीठाकुरजीने राजभोगको थार लात मारि कें डारि दियो ॥ सो या भावतें जो श्रीआचार्यजीनें अवही दासभावको अधिकार दियो हें ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ओर यह हांसी तो सख्य भावको अधिकार भयो होइ तब ही बने ॥ तातें बिना श्रीआचार्यजीके दिए तू (तें) विशेष भाव कर्यो ॥ तातें तेरो धर्यो भोग नांहो अंगीकार करूंगो ॥ या प्रकार शिक्षा कोए ॥ **तातें अधिकार बिना विशेष बिचार किए इतनो अंतराइ जताए वैष्णवकों ॥**

इति प्र. ४. समाप्त.

वार्ता प्रसंग ९

बहुरि एक समय दामोदरदास हरसानी इनके घर पाहूने आए ॥ सो संभरवारे के घर दिन पांच सात रहे ॥ तब इन बहुत भली भांति सो समाधान कर्यो ॥ पाछें दामोदरदास हरसानी इनसों बिदा होइ के अडेल आए ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों पूछे जो दमला, तू कहां उतर्यो हो ? कहा प्रसाद लीयो हो ? तब दामोदरदास हरसानी नें श्रीआचार्यजी सों विनती करी जो महाराज कन्नोज में दामोदरदास संभरवारे के घर उतर्यो हो ॥ अनसखडी महाप्रसाद लेतो ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास संभरवारे उपर अप्रसन्न भये ओर (मनमें-बिचारे जो) यह मेरो अंतरंग सेवक* याको सखडी महाप्रसाद क्यों न लिवायो ? यह बात श्रीआचार्यजी के मनकी दामोदरदास संभरवारेने घर बेठे जानी+ ॥ जो

---

*દામોદરદાસ હરસાનીજી માટે શ્રીયદુનાથદિગ્વિજયમાં આ પ્રમાણે છેઃ—ततो वृद्धिनगरे कस्यचिच्छ्रेष्ठिनश्चत्वारस्तनयास्तेषां कनिष्ठो **दामोदरो हरेर्लीलातो गुरोः सेवार्थमत्राऽवतीर्णो** गुरोर्मार्गं प्रतीक्षमाणस्तं दृष्ट्वा दायं त्यक्त्वा समागतः पादयोर्निपतितो गुरुभिरंगीकृतो मन्त्रमालाभ्यां संस्कृतः सिद्धार्थो जातः ॥

+અહીં શંકા નહિ કરવી. કારણ કે દામોદરદાસ સંભરવાળા શુદ્ધ નિર્ગુણ ભક્ત છે. શ્રીમહાપ્રભુજી "પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદા"માં તે ભક્તોનાં લક્ષણ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છેઃ—स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ॥ तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ॥१२॥ પુષ્ટિપુષ્ટિભક્તો પણ સર્વજ્ઞ હોય છે તે માટે આપ આજ્ઞા કરે છે કેઃ—पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः તો શુદ્ધ પુષ્ટિજીવોનું તો કહેવુંજ શું ?

श्रीआचार्यजी महाप्रभु मेरे ऊपर अप्रसन्न भये हें ॥ तब स्त्रीसों कही जो तू श्रीठाकुरजीकी सेवा नीकी भांति सों करीयो ॥ ओर में तो श्रीआचार्यजी के दरशन कों अडेल जात हों ॥ तब दामोदरदास अडेल को चले ॥ सो अडेल जाइ पहोंचे ॥ तब श्रीआचार्यजी के दरशन कीये। साष्टांग दंडवत कीए ॥

तब श्रीआचार्यजी पीठ दे बेठे ॥ तब दामोदरदास संभरवारेने श्रीआचार्यजी सो बिनती करि के कह्यो जो महाराज मेरो अपराध कहा हे ? ओर जीव तो अपराध करत ही आयो हे ॥ परि अपराध कर्यो जानिए तो भली बात हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्या ॥ जो तेने दामोदरदास हरसानी को सखडी महाप्रसाद क्यों न लिवायो ? ओर अनसखडी प्रसाद क्यों लिवायो? तब दामोदरदास संभरवारेने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी, जो महाराज, दामोदरदाससेंाहि पूछिये ॥ तब श्रीआचार्यजीनें दामोदरदास हरसानी सें पूछी जो दमला तेने दामोदरदास संभरवारे के यहां सखडी महाप्रसाद क्यों न लीयो? तब दामोदरदासने कह्यो जो महाराज श्रीठाकुरजी प्रातःकाल बालभोग अरोगते सोई लेतो ॥ सो सखडी की रुचि रहती नाही तातें न लेतो ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो तू तो तेरी इच्छा ते न लेतो ॥ परि मोको तो याके उपर बडी खुनस भई हती ॥ सो भक्तन के अंतःकरण की भक्ति देखिवे को प्रभु को नाटच हे ॥ काहें तें जो दामोदरदास संभरवारे ने कन्नोज में अपने घर बेठे श्रीआचार्यजी के अंतःकरन की

जानी ॥ सो श्रीआचार्यजी तो भक्त के हृदय में सदा स्थित हें ॥ वह भक्त हृदे की बात कहा न जाने ? परि भक्त परिक्षार्थ यह प्रभू को नाटय हे ।। पाछें दामोदरदास को बहुत सन्मान करि के श्रीआचार्यजी ने घर पठाये ।। तब दामोदरदास अपने घर कन्नोज आइ पहोंचे ॥ पाछें स्त्री पुरुष भली भांति सों सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

दामोदरदास हरसानी (संभरवारेके उपर कृपा करनके अर्थ) इन के घर पाहुने आए ॥ दामोदरदास संभरवारे तनुजा वित्तजा भलि:भांति सों राजसेवा करे हें ओर जो वैष्णव (इनके यहां होयके) श्रीआचार्यजीके दरसन को जाते तिन सबन संग न्यारि न्यारि भेट पठावते ॥ वैष्णवको समाधान बहोत करते ॥ खडियामें बिना कहें खरची वैष्णवको भरि देते ॥ सो श्रीआचार्यजीके आगें बडाई बहोत भई ॥ जो आवे सो (बडाई) करे ॥ तब श्रीआचार्यजीके मनमें यह आई जो हृदयके भीतरको भाव शुद्ध होइ तब काम होइ ॥ सो अन्याश्रय न होइ ॥ यह श्रीआचार्यजीके हृदयकी जानिके दामोदरदास हरसानी इनके यहां पाहुने आये ॥ (कृपा करनके अर्थ) सो दामोदरदासके हृदयकी सगरी रीति आछी देखी, परंतु स्त्री में रंच पिताकी कानि जानि सखरी महाप्रसाद न लिये ॥ दिन पांच सात रहे ॥ परंतु अपने हृदयको अभिप्राय कछू दामोदरदाससों मारगकी बार्ता नांहि कहे ॥ पाछें श्रीआचार्यजो पास आए ॥ तब श्रीआचार्यजी

पूछे कहांते आए ॥ तब बिनती करी जो दामोदरदास संभरवारेके यहां पाहुनें गयो हतो सो सखडी नांहि लियो अनसखडी लीयो ॥ यह कहिके यह जताए जो दामोदरदासको भाव दृढ हे ॥ तातें अनसखडि लीनी ॥ स्त्रीको भाव दृढ नांहि हे तातें सखडी (महाप्रसाद) नाहीं लियो× ॥ तब श्री आचार्यजी दामोदरदास संभरवारेके ऊपर अप्रसन्न भए ॥ **जो मेरे अंतरंग सेवकको पायके स्त्रीकूं अन्याश्रय सों न छुडायो ॥ फेर एसो समें कब पावेगो ?** सो यह बात श्रीआचार्यजी के हृदयकी संभरवारेने जानी ॥ स्त्रीकों पराश्रय हे तातें नांहि जानी ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ६

ओर सिंहनंद के वैष्णव श्रीआचार्यजी के दरसन कों जाते सो कन्नोज में दामोदरदास के घर उतरतें ॥ सो दामोदरदास सबन को प्रसाद लिवावते ॥ ता पाछे जब वैष्णव अडेलको बिदा होते तब जितने वैष्णव होते तिन सबन प्रति एक एक मोहोर एक एक नारियल श्रीआचार्यजी की भेट को पठावते ॥ काहेते ? जो मेरी दंडवत खाली हाथ केसे करोगे ? ॥ सो वे दामोदरदास एसे भगवदीय हे ॥

इति वार्ता प्र. ६ समाप्त ॥

× આથી એ અનુમાન થાય છે કે સખડીની રસોઇ સ્ત્રી કરતી હતી.

(या प्रसंग को भाव प्रसंग ५ के भाव में आय गयो हे)

वार्ता प्रसंग ७

ओर दामोदरदास को ससुर बहुत संपन्न हतो ॥ तिनने एक सो लोंडी बेटी के दायजे में दीनी हती * ॥ जो मेरी बेटी बेठी रहेगी ॥ ओर कामकाज सब लोंडी करेगी ॥ परि वह लोंडी पास काम न करावती ॥ सेवा संबंधी कार्य सब आपुही करती ॥ ओर लोंडी सब ओर कामकाज करती ॥ सो वह एसी भगवदीय ही ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ८

बहुरि एक समें श्रीआचार्यजी आप दामोदरदास संभरवारे के घर पोढे हते ॥ ओर दामोदरदास संभरवारे पांव दाबत हते ॥ तब श्रीआचार्यजी इनसों पूछे ॥ जो तोको तेरे मनमें काहू बात को मनोरथ हे ? ॥ तब दामोदरदास ने कह्यो जो महाराज मोको तो आप के अनुग्रह ते काहू बात को मनोरथ रह्यो नाहि ॥ तब श्री आचार्यजीने कह्यो ॥ जो तू जाइके अपनी स्त्री सो पूछी आउ ॥ तब दामोदरदास अपनी स्त्रीसो पूछी जो तेरे काहू बात को मनोरथ हे ? तब स्त्रीने

---

* આથી દામોદરદાસની સંપત્તિ કેટલી હશે? તેનું સહજ અનુમાન થઈ શકે છે. આ એક ઐતિહાસિક તત્ત્વ છે.

कह्यो जो ओर तो कछू मनोरथ रह्यो नांहीं ॥ एक पुत्र को मनोरथ हे ॥ तब श्रीआचार्यजी सो आइ के दामोदरदासने कह्यो जो महाराज स्त्रीको तो एक पुत्र को मनोरथ हे ॥ तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख तें आज्ञा करे ॥ जो पुत्र होइगो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी आप श्रीनाथजीद्वार (जतिपुरा) पधारे ॥ ता पाछे समय भयो तब वाके गर्भ की स्थिति भई ॥ ता पाछे केतेक दिन में वा वाखरि में एक डाकोतिया आयो ॥ तब ताको सब स्मार्त्त की स्त्री पूछन लागी ॥ तब तामें ते काहूने दामोदरदासकी स्त्री सो कही ॥ जो अमूकी × तू हू पूछि, तेरे कहा होइगो ? पाछें एक लोंडिने जाइके वा डाकोतिया सों पूछी ॥ जो कहा होइगो ॥ बेटा होइगो के बेटी होइगी ॥ तब वा डाकोतियाने कह्यो ॥ जो बेटा होइगो ॥

ता पाछे केतक दिनमें श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे ॥ तब दामोदरदास चरन छुवन लागे ॥ तब श्रीआचार्यजी ने

× અમુકી શબ્દ યોજવાથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે દામોદરદાસની સ્ત્રીનું નામ ભગવત્સંબંધી અથવા યોગ્ય નહિ હતું, શ્રીગોકુલનાથજીની એક ખાસ ટેવ હતી કે ખરાબ નામને ઉચ્ચાર ન કરતા. માટેજ કેટલીક વાર્તાઓ વિના નામની આવે છે. આ ભેદ શ્રીહરિરાયજીએ " एक क्षत्रानी प्रयागमें रहती " (વાર્તા ४२) તેમાં આ પ્રમાણે કહ્યો છે:—अब जहां तहां नाम श्रीगोकुलनाथजी नांही कहे सो मातापिता हीन नाम राखे ॥ काहूको फकीरा घसीटा ॥ सो वैष्णव सों हीन नाम श्रीगोकुलनाथजी कहते नांहि ॥

कह्यो ॥ जो तू मोकों छुवे मति ॥ तोकों अन्याश्रय भयो हें ॥ तब दामोदरदासने कह्यो ॥ जो महाराज हेंतो कछु जानत नाहीं ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो तू अपनी स्त्रीकों पूछि तब दामोदरदास ने अपनी स्त्रीसो पूछी ॥ तब स्त्रीने जो प्रकार भयो हतो सो सब कह्यो ॥ सो सब बात दामोदरदासने श्रीआ-चार्यजी सों आय कही ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों कहे ॥ जो पुत्र तो होइगो परि म्लेच्छ होइगो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी आप अडेल पधारे ॥

पाछें यह बात दामोदरदासकी स्त्रीने सुनी तब तें श्रीठा-कुरजीकी सामग्री तथा पात्र को आप स्पर्श न करती ॥ कहेती जो मेरे पेट में म्लेच्छ हे तो में श्रीठाकुरजी की सामग्री तथा पात्र केसें छूओं ? या भांति सा रहे ॥ पाछें जब प्रसूति के दिन आए॥ तब दामोदरदास की स्त्रि ने अपनी महतारी सो कह्यो जो मेरे पुत्र होइ तो होत मात्र ही तू तत्काल ले जैयो ॥ में वाको मुख न देखोंगी ॥ जो वाको महोडो हम देखें तो हमारो अनिष्ट होई ॥ तातें वाको महोडो नांहि दीखे एसो उपाइ तू करियो ॥ पाछें वाको महतारीने त्योंही कीयो ॥ प्रसूत होत मात्र तत्काल अपने घर ले गई ॥ सो धाइको देके बडो कीयो ॥ *

---

* આ પ્રસંગ સં. ૧૫૬૪-૬૫ લગભગ બન્યો છે. બીજી

एक समें जब श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तब दामोदरदास सों आज्ञा करी कछू मनोरथ होइ सो मांगि ले ॥ या प्रकार फेरि दामोदरदास की परिक्षा किए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

जो स्त्रीकों पराश्रय हे ॥ ताके संगतें याहूकों पराश्रय होइ ॥ तो कछू वर दीजे ॥ इतने पुष्टिमार्गके फलसों रहित होइ ॥ परि दामोदरदास तो दृढ हे ॥ तातें कहे महाराज आपुके चरनारविंदकी सेवा मिली अब मोकों काहू बातको मनोरथ नांही हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने दामोदरदाससों कह्यो स्त्रीकों पूछी आव ॥ यामें यह जानिए जो श्रीआचार्यजी दामोदरदाससों बोले परि स्त्रीसों कछू बोले नांही ॥ ओर स्त्री हू आप आय श्रीआचार्यजी सों बिनती नांही कीनी यामें यह जानिए जो (स्त्री) बहोत श्रीमहाप्रभुजीकी निकट हूं नांही आवती, ओर मनमें अन्याश्रय हतो ॥ तातें कह्यो एक पुत्र सेवा अर्थ होय ॥ सो यह विचार नांहि आयो ? जो पुष्टिमार्ग की सेवा मांगे ते मिले ॥ पुत्र को कहा प्रमान हे जो सेवा करेगो ? इतने यह वचनमें (श्रीआचार्यजीने जान्यो) जो मेरो आश्रय छूटयो ॥ जाव पुत्र लेके सगरी भक्ति सकामी होइ गई ॥ ताते मुकुंददास * ने सप्तम स्कंधमें प्रहलाद नृसिंहजी सों

* આ મુકુંદદાસ તે દિનકરદાસના ભાઈ ૮૪ વાર્તામાં તેમની વાર્તા ૧૯ મી છે. તેમણે આખા શ્રીમદ્ભાગવતનો ભાષામાં પદ્યરૂપે અનુવાદ કર્યો છે અને તે "મુકુંદસાગર" નામથી પ્રસિદ્ધ છે. પરંતુ અત્યારે તે પ્રાપ્ત થતો નથી. તપાસ કરવાની જરૂર છે. તેમનો સમગ્ર ઇતિહાસ તેમની વાર્તામાં આપ્યો છે.

कहे हें ॥ "स्वामिसों निज अर्थ हि चाहें ॥ निंदन भक्ति अवगाहें ॥" स्वामीसों लौकिक वैदिक अपनो सुख कछू चाहे सो निंदत हे वाको भक्ति न मिले या प्रकार पुत्र दे आप श्रीगोवर्धनधर पास गिरिराज पधारे ॥ फेरि जब स्त्रीने अन्याश्रय कीयो तब आप कन्नोज पधारे ॥ ओर दामोदरदासकों चरन यातें छूवन नाहिं दीये जो स्त्रीके हाथको खान पान दामोदरदासने कीयो हे ॥ तातें चरनपरस करिवेको अधिकार नांही हे ॥ यह दामोदरदासकुं जतायो ॥

तातें अन्याश्रय बराबरि दोष दूसरो नांही हे । जेसें एक पति छोडिकें दूसरो पति करे तब स्त्रीको सगरो धर्म जाइ ॥ ताहि प्रकार अन्याश्रय रंच करे तो वैष्णवको धर्म नाश होई ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥ फेरि स्त्रोको अनन्यता भई तातें श्रीठाकुरजीकी सामग्री सेवा परस नांहि करती ॥ तब वह अन्याश्रय पुत्र द्वारा हृदय तें निकर्यो ॥ काहेतें श्री भागवतमें कहे हें भक्त कों श्रीठाकुरजी बिना ओर ठौर ममत्त्व होई सो वस्तुकों श्रीठाकुरजी तत्काल नाश करे ॥ तब ज्ञान वैराग्य दृढ होइके आश्रय सिद्ध होइ ॥ भक्ति न होइ तो वस्तु गए ओरहू अन्या-श्रय सदा करे ॥ सो स्त्रीकी पुत्रमें ममता देखि के नष्ट श्रीआचार्यजीने अपने जानिके किए ॥ तब स्त्रीकों ज्ञान भयो ॥ तब अपनि मातासों कहे ॥ जो में पुत्रको मुख न देखोंगी ॥ सो पुत्र होन समय नेत्रनसों पटी बांधि लीनी ॥ सो उनकी माता पुत्रको जन्मतही अपने घर ले गई ॥ तहां पुत्र वरस १० को व्हे पाछें म्लेच्छ भयो ॥ स्त्री पुरुष मन लगाइकें श्रीद्वारकानाथजी की सेवा करी ॥

इति प्र. ८ समाप्त.

बहुरी एक समय दामोदरदास की देह छूटी ॥ तब स्त्रीने घर में छिपाइ राखे ॥ पाछें वैष्णव सों कह्यो ॥ जो तुम एक नाव अडेल को भाडे करिलावो ॥ सो वैष्णव नाव भाडे करि लाए ॥ तो नावमें श्रीद्वारकानाथजी ओर घरमेंकी सब सामग्री त्रण पर्यंत कछु घरमें राख्यो नहि ॥ घरमें हतो सो सब नाव में धर्यो ॥ तब वैष्णवन सों कह्यो ॥ जो यह नाव अडेल ले जाउ ॥ सब श्रीआचार्यजी महाप्रभून के मंदिर में पहोंचाओ ॥ सो वैष्णव नाव लेके चले ॥ सो कोस तीस चालीस उपर नाव गई ॥ पाछें स्त्रीने प्रगट कीए ॥ जो दामोदरदास की देह छूटी हें ॥ तब वैष्णव सब आए ॥ संस्कार कीयो ॥ तब दामोदरदास को बेटा तुरक × भयो सो आयो ॥ सो आय के देखे तो घरमें कछू नाहीं ॥ जल को करवा भर्यो हे ॥ सो देखिके मूड पटकि रह्यो ॥ पाछें दामोदरदास को ससुर आयो ॥ तिननें बेटी सों कह्यो ॥ जो बेटी तेनें घरमें कछू राख्यो नाहीं ॥ जो अब तू कहा खायगी ? तब वानें कही जो तुम देउगे सो खाऊंगी ॥ क्षत्री लोगन के या समें सगे सहोदरे कछु देत हें ॥ एसी ज्ञाति की रीति हें ॥ तब दामोदरदास की स्त्रीने जलपान न कर्यो ॥ सो थोरेही दिन में देह छूटी ॥ कृति दोउन की साथ गई ॥ तब यह बात

वार्ता प्रसंग ९

× અહીં કર્મથી તુરક (મ્લેચ્છ) કહ્યો છે; જેમ રાવણ બ્રાહ્મણ હોવા છતાં રાક્ષસ કહેવાયો છે.

केतेक दिन पाछें काहू वैष्णवनें श्रीआचार्यजी आगे कही ॥ तब श्रीआचार्यजी नें कह्यो ॥ जो इनको एसोही चाहिए ॥ सो वे दामोदरदास तथा उनकी स्त्री ये दोउ श्रीआचार्यजी के सेवक एसे परम कृपापात्र भगवदीय हें ॥ तातें इनकी वार्ता को पार नाहीं ॥ सो कहां ताईं लिखिए ?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पाछें दामोदरदास की देह छूटी ॥ तब स्त्रीने देह छिपाइ यातें राखे जो पुत्र म्लेच्छ हे ॥ सगरी वस्तु श्रीजी की हे सो ले जायगो ॥ तातें नाव भरि कें सब वस्तु श्रीआचार्यजी के यहां पहुंचाई ॥ जब कोस चालिस नाव गई तब स्त्रीने जाहेर कीयो ॥ ससुर आदि ज्ञाति के सबने दामोदरदास की देह को संस्कार कियो ॥ पाछें बेटा दोरि के आयो सो देखे तो माटी को करुवा जलसों भर्यो हे ॥ आर कछू हे नांहीं ॥ जब खबर पाइ तब नाव लेके दोर्यो ॥ परंतु पायो नांही ॥ तब माथो पीटि रह्यो ॥ यामें यह जतायो जो लाकिक होइ के अलौकिक वस्तू लेन को उपाय करे सो दुखही पावे ॥ परंतु हाथ लागे नांही ॥

ओर ससुरने कह्यो ॥ कछू राख्यो नांहीं ॥ अब तू कहा खायगी ? यह लौकिक पूछ्यो ॥ तब स्त्रीने अलौकिक बात कही जो अब तुम देउगे सो खाऊंगी ॥ या समें क्षत्री लोगन में सगे देत हें ॥ तासों निर्वाह करूंगी ॥ ताको अर्थ यह जो श्रीठाकुरजी पधारे सो सेवा बिना घरकी वस्तु केसे लेऊं ?

(और) अलौकिक (जो में=अलौकिक स्वरूप भावना को) वस्तु के संग (श्रीआचार्यजी के यहां) गई ॥ सेवा बिना में लौकिक हों ॥ सो लौकिक सों निर्वाह करुंगी ॥ या प्रकार स्त्रीने हू देह छोडि दियो ॥ क्रिया कर्म सब दामोदरदास के संग भयो ॥

इति प्र. ९ समाप्त.

---

* ॥ लोंडीकी वार्ता लिख्यते ॥

ओर वह लोंडी बडी भगवदीय हती ताकी वार्ता (विस्तार पूर्वक) नांहि लिखी ("वार्ता में") सो यातें ॥ (जो वो) श्रीजमुनाजी की सखी हे ॥ लीलामें इनको नाम कृष्णावेसनि हे ॥ सदा कृष्ण के स्वरूप को आवेस रहतो ॥ सो द्वापर में विदुरजी की स्त्री यह लेंडी हती ॥ सो श्रीठाकुरजी में अत्यंत स्नेह ॥ (सो इन्हीके लिए श्रीठाकुरजी) विदुरजी के घर बिना बुलाए जाते ॥ सो अब दामोदरदास के इहां आई ॥ सो लेंडी दामोदरदास के ब्याहमें आई ॥ याको पुष्टिसंबंध भयो ॥ मानसी में मगन रहती ॥

एक दिना दामोदरदास (कुँ) सेवा करतमें मनमें आई ॥ जो नकास में जाइ घोडा खरीदिए ॥ ताही समय एक वैष्णव दामोदरदास कों मिलन कों आयो ॥ तब लोंडी ने कही नकास में घोडा खरीदन गए हें ॥ तब

---

* वैष्णव ४. लोंडीनुं स्वरूप निरोधलीलात्मक छे अने मानसी सिद्ध हती. ते सदेहे लीलामां गई ते वीर्य धर्म प्रकट कर्यो. एथी आ वार्ता वीर्यधर्मरूप जाणवी. ८६ वैष्णवमां आ चोथा वैष्णवनी वार्ता जाणवी.

वह वैष्णव चल्यो गयो ॥ पाछें यह बात काहूने दामोदरदास सों कही ॥ जो तुम सेवा में हते (तब) लोंडी ने एसे कही ॥ तब दामोदरदास लोंडी सों पूछि ॥ तब लोंडीने कही तिहारो मन वा समय कहां हतो ? जहां मन तहां देह जानियो ॥ तब दामोदरदास चुप होइ रहे ॥

सो जब नावमें सगरी सामग्री धरी ॥ तामें सामग्री सदृश लोंडी हू हे ॥ सो वह नाव पर श्रीद्वारकानाथजी के संग गइ ॥ तब श्रीआ-चार्यजी सों वैष्णव ने आइ कही ॥ महाराज श्रीद्वारकानाथजी वैभव सहित पधारे हें ॥ ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाडे हते ॥ (तब) श्रीगोपीनाथजी कहे लक्ष्मीसहित नारायण पधारे (हें) ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ वैभव ठाकुरको देखि के तिहारो मन प्रसन्न भयो हे ? ॥ (तब) श्रीगो-पीनाथजी कहे **तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजी की वस्तुमें अपनो मन करेगो ताको निरमूल नाश जाइगो** ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ **हमारो मारग तो एसोई हे** ॥ सो द्रव्य तें कछूक गोपीनाथजी प्रसन्न भए हते ॥ सो एक पुत्र भयो ॥ परंतु वंस नांही चल्यो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी वैष्णव सों आज्ञा कीए ॥ सगरि सामग्री श्रीजमुनाजी में पधराइ देउ ॥ श्रीद्वारिकानाथजी को हमारे घर पधराई लावो ॥ तब वह लोंडी हू सामग्री रूप हे ॥ सो देह सहित श्रीजमुनाजी पास चली गई ॥ सगरी सामग्री श्रीजमुनाजीमें पधराई ॥ श्रीद्वारकानाथजी श्रीआचार्यजी के घर बिराजे ॥ यह लोंडी की अलौकिक बात हती ॥ सो लोगनमें विरुद्ध सी लागी ॥ तातें श्रीगोकुलनाथजी प्रकास नांही कीए ॥ सामग्री रूप कहें * ॥

---

* શ્રીઆચાર્યજીના નિર્ગુણભક્તમાં આ લોંડીની ગણત્રી છે.

पाछें काहू वैष्णवने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी महाराज सामग्री तो दामोदरदास की स्त्री वैष्णव ने पठाई ॥ सो आप अंगिकारि क्यों नांहि किए? ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे जो बेटा म्लेच्छ हे ॥ मुनके आवे झगरो करे ॥ द्रव्य दुःखको मूल हे ॥ दामोदरदास की स्त्रीने पठायो ॥ श्रीमहारानीजी (कों) अंगीकार हू करायो ॥ लौकिक झगरो हू मिटायो ॥ पाछें काहू वैष्णवनें स्त्री ने हू देह छोडि इनकी बात कही ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे स्त्रीपुरुष भले वैष्णव टेक के हते ॥

॥ वैष्णव ३ ॥ (गिनती लौंडि समेत वैष्णव ४)

પદ્મનાભદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્યઃ–

આ સમગ્ર વાર્તામાં વીર્ય ધર્મનું નિરૂપણ છે. જેમ દેહમાં વીર્ય સાર છે તેમ પુષ્ટિધર્મમાં આ વાર્તા પુષ્ટિધર્મના સારરૂપ છે (જુઓ પ્ર૦ ૩ શ્રી હરિ૦ કૃત ભા. પ્રકાશ) પુષ્ટિજીવોનો ફક્ત એક જ ધર્મ છે. અને તે સર્વકાલમાં ભગવત્સુખાર્થે સેવા છે. પુષ્ટિસૃષ્ટિ કાયાથી ઉત્પન્ન થયેલી હોઈ તે ભગવત્સુખથી અતિરિક્ત કોઈ પણ ધર્મમાં પ્રવૃત્ત થાય જ નહિ. "आनंदमात्रकरपादमुखोदरादिः" પુષ્ટિપ્રભુનું જ્યાં સુધી સાંગોપાંગ સ્વરૂપ જાણવામાં ન આવે ત્યાં સુધી કોઈ પણ વ્યક્તિ તે પ્રભુને સુખ કયા પ્રકારે થાય તે સમજી નજ શકે. તેમજ તેને માટે કોઈ પણ પ્રકારનું આચરણ કરી શકે નહિ.

તે ભાવાત્મક આનંદરૂપ પ્રભુનાયે "સારભૂત" આધિદૈવિક સ્વરૂપનું સાંગોપાંગ જ્ઞાન આજ સુધીમાં ફક્ત ત્રણ જ ભક્તોને પ્રાપ્ત થયું છે. તે "આનંદસારભૂત" શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ દિવ્ય અને મહાન્ અલૌકિક છે. તે સ્વયં કૃપા કરી સ્વાનંદનું દાન કરે તોજ

તે અનુભવી શકાય તેમ છે. "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो:" એ શ્રુતિ અહિં પ્રમાણભૂત છે.

આ સ્વરૂપનો પૂર્ણ અનુભવ દામોદરદાસ હરસાની, પ્રભુદાસ જલોટા અને પદ્મનાભદાસને જ થયો છે. આ મહાન્ અલૌકિક "સુધા" સ્વરૂપના પાનમાં કોઈનો યે પ્રવેશ નથી.

પદ્મનાભદાસજી સ્વયં વર્ણન કરે છે કે;–"तहां प्रवेश द्वे भ्रमर को दामोदर प्रभुदास"

આ સ્વરૂપનો અનુભવ શ્રીમદાચાર્યચરણની પૂર્ણ કૃપાથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, અન્યથા નહિ જ.

જુઓ પદ્મનાભદાસજી કહે છે કે:--

दमला प्रभुदास बडभागी तिनको पुन पुन आप सिखावे ॥

યદ્યપિ પદ્મનાભદાસે પોતાને માટે કંઈ પણ વર્ણન નથી કર્યું તો પણ તેમના ૪૦ પદોથી આપણે જાણી શકીએ છીએ કે તેમને પણ આ સ્વરૂપનો અનુભવ હતો.

પદ્મનાભદાસના પદોમાં શ્રીઆચાર્યજીના સાતે સ્વરૂપ (જુઓ "વાર્તારહસ્ય") ની ઓતપ્રોતતા અને તેના પૂર્ણ અનુભવનું વર્ણન સ્પષ્ટ તરી આવે છે. તેની અત્યંત સૂક્ષ્મ ઝાંખી અહીં કંઈક કરાવીએ છીએ:--

પદ ૧ श्रीलक्ष्मनसुत ने कहू गावे ॥

दमला प्रभुदास बडभागी तिनकों पुन पुन आप सिखावे ॥
प्रेमविवश होइ श्रीवल्लभ प्रभु नेन सेनमें अर्थ जनावे ॥
प्रकट प्रसिद्ध यशोदानंदन रसिक शोभामय सकल जनावे ॥
वृंदावन रमणीक रमण अति उर संपुटकी कोउ न पावे ॥
पद्मनाभ गिरिधररसलीला वेणुनादकी बतियां भावे ॥

पंक्ति ૧ लक्ष्मनसुत ત્યાં આચાર્યસ્વરૂપનું વર્ણન છે.

„ ૨–૩ માં વલ્લભસ્વરૂપ (લીલામધ્યપાતી દાસ્યભાવનું શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ) નું વર્ણન છે. (જુઓ દામો૦ હર૦ ની વાર્તા પ્ર૦ ૧નું પરિ૦ રહસ્ય)

„ ૪ માં ભગવદ્દભાવરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે.

„ ૫ માં સ્વામિનીભાવ રૂપનું વર્ણન છે.

„ ૬ માં સુધાસ્વરૂપનું વર્ણન છે.

આ પુસ્તકમાં આપેલા "વાર્તા–રહસ્ય" અને શ્રીહરિરાયજીના ભાવાત્મક લેખનું મનન કરવાવાળાઓ ઉપર્યુક્ત સ્વરૂપોનો સહજમાં અનુભવ કરી શકે તેમ હોવાથી અહીં વિસ્તાર નથી કર્યો, જેમ ગંગાના ભૌતિક પ્રવાહસ્વરૂપમાં આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપની સ્થિતિ રહેલી છે (જુઓ "વાર્તા–રહસ્ય") તેમ આચાર્ય સ્વરૂપમાં જ આ સાતે સ્વરૂપોની સ્થિતિ છે, અને તે તદ્રૂપ છે. માટે શ્રીઆચાર્યચરણનો દેહ અલૌકિક અને આનંદરૂપ નિત્ય છે.

દૃષ્ટાંત રૂપેઃ—ભગવદ્દવિગ્રહ (મૂર્તિ–સ્વરૂપ) માં મર્યાદારૂપે (મંત્ર વિધિ આદિથી) અને પુષ્ટિ રૂપે (ભાવથી) સાક્ષાત્ પ્રભુનો આવિર્ભાવ રહે છે. તદ્વત્ અહીં સમજવું.

પદ ૨ श्रीमद्वल्लभरूप सुरंगे ।

अंग अंग प्रति भावनके भूषन वृंदावन संपति अंगअंगे ॥
चटक मटक गिरधरजूकी नांइ एन मेन व्रजराज उछंगे ॥
पद्मनाभ देखे बनि आवे सुधि रही रसाल भ्रुवभंगे ॥

આ પદમાં પ્રથમ બે પંક્તિઓમાં શ્રીઆચાર્યજીનું ભાવરૂપ વિપ્રયોગાત્મક શૃંગારરસ સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે–(જેને કૃષ્ણાસ્ય કહેવામાં આવે છે જુઓ "વાર્તા–રહસ્ય") અને નીચેની બે પંક્તિમાં

શ્રીઆચાર્યજીનું ભાવરૂપ સંયોગાત્મક શૃંગારરસસ્વરૂપનું વર્ણન છે.*
(જે ભગવદ્ભાવરૂપ આનંદમાત્રકરપાદમુખોદરાદિરસસ્વરૂપ છે)
અહિં સ્થલ સંકોચથી અન્ય પદો નથી આપતા.

આથી આપણે જાણી શકીએ છીએ કે:—પદ્મનાભદાસનો પણ "આનંદસારભૂત" શ્રીઆચાર્યજીના સુધા આદિ સાતે સ્વરૂપમાં પૂર્ણ પ્રવેશ છે. દામોદરદાસ અને પ્રભુદાસે આ સ્વરૂપને કેવલ હૃદયમાં જ અવગાહ્યું. જ્યારે પદ્મનાભદાસજી એ સ્વજનોના હિતાર્થે કીર્તનરૂપે બાહ્ય પ્રગટ કર્યું. પદ્મનાભદાસ શ્રીમથુરેશજીમાં શ્રીઆચાર્યજીના જ સ્વરૂપની ભાવના કરતા. (જુઓ પ્રસંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

જેવી રીતે પદ્મનાભદાસ પુષ્ટિપ્રભુના (આનંદરૂપના) સારભૂત આધિદૈવિક સ્વરૂપમાં મગ્ન હતા તેવી જ રીતે પુષ્ટિધર્મના પણ સારભૂત શ્રીઆચાર્યચરણના સુખમાં સદા નિમગ્ન રહેતા (જુઓ પ્રસંગ ૩)

આ રીતે આ વાર્તા વીર્યધર્મરૂપ કહી.

બીજા પ્રકારે આ પદ્મનાભદાસની વાર્તા પુષ્ટિના આશ્રયરૂપ છે. એટલે તે શ્રીઆચાર્યજીના આશ્રયરૂપ છે. એટલે તે શ્રીઆચાર્યજીના વામ શ્રીહસ્તસ્વરૂપ છે (જુઓ "વાર્તારહસ્ય") શ્રીઆચાર્યજીનું વામ અંગ ભાવાત્મક વિપ્રયોગરૂપ છે અને દક્ષિણ અંગ સંયોગાત્મક છે. (આ સંપ્રદાયની પરંપરાગત ભાવના છે) ગદાધરદાસની વાર્તા (પુષ્ટિ) ઊતિ સ્વરૂપ હોઇ શ્રીઆચાર્યજીના દક્ષિણ શ્રીહસ્તસ્વરૂપ છે તે તેમની વાર્તામાં સમજાવ્યું છે. પદ્મનાભદાસની વાર્તાનું આશ્રયસ્વરૂપ (વામ શ્રીહસ્તરૂપ) ગદાધરદાસની વાર્તામાં સમજાવ્યું છે.

---

* શ્રીઆચાર્યજીના રસ સ્વરૂપનું વિશેષ વર્ણન જોવું હોય તો જુઓ શ્રીહરિરાયજીકૃત "रसात्मकभावस्वरूपनिरूपणम्"

શ્રીઠાકુરજીમાં શ્રીઆચાર્યચરણ (વિપ્રયોગાત્મરૂપ)ની ભાવના કરી સેવા કરનાર ચોર્યાશી વૈષ્ણવોમાં પાંચ જ વૈષ્ણવો છે. ૧ પદ્મનાભદાસ, ૨ શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ૩ એક ડોકરી મહાવનની (જેને શ્રીજમનાજીમાંથી ચાર સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયાં તે) ૪ પ્રભુદાસ જલોટા ૫ અને મહાનુભાવ પરમ ભાગ્યવાન રજો ક્ષત્રાણી. આ પાંચે ભક્તોમાં પદ્મનાભદાસે પોતાનો અનુભવ પ્રકટ કર્યો. અન્ય ચારે ગુપ્ત અનુભવ્યો. શ્રીઠાકુરજીમાં શ્રીઆચાર્યચરણની ભાવનાથી સેવા કરવી તે આ વાર્તાનું રહસ્ય છે—(વિશેષ જુઓ પ્રસંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

ત્રીજા પ્રકારે આ વાર્તા પુષ્ટિના ધર્મી રૂપ છે. કારણ કે સર્વ ધર્મમાં વીર્યધર્મ મુખ્ય છે માટે આ વાર્તામાં છએ ધર્મોનું આ પ્રમાણે નિરૂપણ છેઃ—

પ્રસંગ ૧ માંઃ—**શ્રી ધર્મનું** નિરૂપણ.

સ્વામીની આજ્ઞાનો પૂર્ણ વિશ્વાસ તે શ્રી ધર્મ (જુઓ કૃષ્ણદાસ મેઘનની વાર્તા) “ **श्रियो हि परमा काष्ठा** ” इति वचनात्

તે પદ્મનાભદાસે શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞાને અનુસાર વૃત્ત્યર્થ ભાગવતની કથા જીવન પર્યંત ન કહી. અનેક કષ્ટ સહન કર્યાં. આવી રીતે સ્વામીની આજ્ઞાનો વિશ્વાસ.

પ્રસંગ ૨ માંઃ—**પુષ્ટિધર્મનું પણ તત્ત્વ શ્રીઆચાર્યજીનું સુખ વિચારવું** તે સ્પષ્ટ દેખાડયું. અહીં પણ **શ્રીધર્મ** (શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞાનો વિશ્વાસ) કહ્યો.

પુષ્ટિધર્મના સારભૂત શ્રીઆચાર્યજીનું સુખ વિચાર્યું, અને અકિંચન હોવા છતાં શ્રી જે લક્ષ્મી (૧૭૦૦૦ રૂપીઆ) વિના વિલંબે પ્રાપ્ત થઈ. અહિં પણ **શ્રીધર્મ** જાણવો. અને રાજાના પ્રસંગમાં **ઐશ્વર્ય** જાણવું. મૂઢ પુરુષોમાં પણ પોતાની વાણીના પ્રભાવથી રસ (વીરરસ) ની ઉત્પત્તિ કરી **મુગ્ધ કર્યા.**

પ્રસંગ ૪ માંઃ— **વીર્ય ધર્મનું નિરૂપણ.**

શ્રીપ્રભુમાં એવો દૃઢ સ્નેહ કે લોકવ્યવહાર અનેવેદધર્મનું ઉલ્લંઘન કર્યું. જાતિ બધી ઝખમારી રહી. (વિશેષ જુઓ તે પ્રસંગ નીચેની નોટ)

પ્રસંગ ૫ માં:--**યશ ધર્મનું નિરૂપણ**

પોતાના ચરણોદકથી પુત્ર આપ્યો.

પ્રસંગ ૬ માં:--**વૈરાગ્ય ધર્મનું નિરૂપણ**

શ્રીઠાકોરજીના લુંટમાં પધારવાથી સાત દિવસ સુધી દેહાધ્યાસનો ત્યાગ કર્યો. અન્ન જલ કંઈ પણ ન લીધું. અહીં **ઐશ્વર્ય** પણ નિરૂપેલું છે

મુગલાની જે પરધર્મી અને નિર્દય તેના હૃદયમાં પૂજ્યભાવ થવો તે ઐશ્વર્ય.

પ્રસંગ ૭ માં:--શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપનું **જ્ઞાન** છે (વિશેષ જુઓ પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

अब श्री आचार्यजी महाप्रभून के सेवक पद्मनाभदास कन्नोजिया ब्राह्मण कन्नोज में रहते तिनकी वार्ता ॥

वार्ता प्रसंग १

सो प्रथम पद्मनाभदास व्यासासन बेठते ॥ सो कन्नोज में आप अपने घर कथा कहते ॥ ऊंचे आसन बेठते ॥ काहूके घर जानो न परतो ॥ वृत्ति घर बेठे चली आवती ॥ या भांति रहते ॥ सो एक समय श्रीआचार्यजी आप कन्नोज पधारे ॥ तब पद्मनाभदास दरसन को आए ॥ तब पद्मनाभ-दासने श्रीआचार्यजी महाप्रभू के श्रीमुखतें भगवद्वार्ता को प्रसंग सुन्यो ॥ तब जानी जो ए साक्षात ईश्वर हें ॥ श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम यही हें ॥ सो पुरुषोत्तम जानि के पद्मनाभदास श्रीआचार्यजी की शरण आए ॥ नाम पायो ॥ पाछे समर्पन

करवायो ॥ पाछे उत्थापन के समें श्रीआचार्यजीने पोथी खोली ॥ तहां दामोदरदास संभरवारे के घर बिराजे हते ॥ सो पद्मनाभदास आपनें घर तें आये श्रीआचार्यजी को दंडवत करिके बेठे ॥ तब श्रीआचार्यजी नें निबंध को श्लोक कह्यो ॥ सो श्लोक ॥

"पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम् ।
वृत्त्यर्थं नैव युंजीत प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥१॥
तदभावे यथैव स्यात् तथा निर्वाहमाचरेत् ।
त्रयाणां येन केनापि भजन् कृष्णमवाप्नुयात् ॥२॥

यह श्लोक पढे ॥ सो पद्मनाभदासजी ने अंजुली भरि के संकल्प कीयो ॥ जो कथा कहि के वृत्ति न करूंगो ॥ एसे श्रीआचार्यजी के आगे संकल्प कीयो ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ जो श्रीभागवत वृत्त्यर्थ न कहनो ओर तो तुम्हारी वृत्ति हे ॥ तुम ब्राह्मण हो ॥ तातें ओर महाभारत इत्यादिक तो कहनो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज अब तो संकल्प कीयो सो तो कीयो ॥ ताते कछू न कहनो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही जो तुम तो गृहस्थ हो ॥ कोन भांति सो निर्वाह करोगे ? तब पद्मनाभदास नें श्रीआचार्यजी सों कह्यो ॥ जो श्रीभागवत वृत्त्यर्थ न कहूंगो ॥ ओर जिजमान के घर वृत्ति कर लाऊंगो ॥ तातें निर्वाह करूंगो ॥ पाछे जिजमान के घर वृत्त्यर्थ गए ॥ तिनने बहुत

आदर कीयो ॥ तब पद्मनाभदास के मनमें ग्लानी आई ॥ जो पहिले तो कबहू भिक्षा करी नाहीं ॥ अब वैष्णव भये पाछे भिक्षा मागन निकस्यो ॥ सो उचित नाहीं ॥ पहले तो उपवीत गरे में हतो ॥ ताकों तो उचित हे जो भिक्षावृत्ति करें ॥ परि अब तो गरेमें माला पहरी ॥ ताको तो यह भिक्षा वृत्ति उचित नाहीं ॥ तब फेरि संकल्प कीयो ॥ जो भिक्षावृत्ति न करूंगो* ॥ तब फेरि श्रीआचार्यजी ने पूछी जो अब निर्वाह केसे करोगे ? ॥ तब पद्मनाभदास नें कही जो वैश्यवृत्ति करि निर्वाह करूंगो ॥ पाछें कोडी बेचते लकडी ले आवते ॥ परि ओर बात न विचारी ॥ या भांति देहादि पर्यंत सेवा कीनो ॥ एसे टेकी ॥

इति प्र. १ समाप्त ॥

---

*તે વખતે પદ્મનાભદાસે આ પદ ગાયું:—

जाचों जाय कोनके घरपें श्रीवल्लभसे पाय धनो।

× + × ×

છેલ્લી લીટી पद्मनाभप्रभु विलोक वागधीश मिट गये रबि सुत त्रास रनी ॥

નોંધ:—કવચિત્ આ પદના અંતે કુંભનદાસની છાપ પણ જોવામાં આવે છે. પરંતુ વાક્યરચનાભાવ અને સંગતિ પદ્મનાભદાસનાં અન્ય પદો સાથે ચોક્કસ મળતી હોવાથી આ પદ્મનાભદાસ કૃત પદ છે તેમાં જરાય સંશય રહેતો નથી.

પદ્મનાભદાસનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ:—

પદ્મનાભદાસનો જન્મ સંવત ૧૫૨૦ માં કન્નોજ ગામમાં એક કનોજીયા બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો. પદ્મનાભદાસના પિતા એક સુપ્રસિદ્ધ ભાગવતકથાકાર હતા. તેઓ ભાગવતને પોતાના ઇષ્ટદેવ તરીકે ગણી, નિત્ય શ્રીમદ્ભાગવતનું પૂજન કરતા, ભોગ ધરતા અને પ્રેમપૂર્વક આરતી ઉતારતા. પદ્મનાભદાસના પિતા લગભગ ૪૦ વર્ષના થયા ત્યાં સુધી તેઓને કોઈ સંતતિ ન હતી.

એક સમય તેઓ "નૈમિષારણ્ય"માં ગયેલા, ત્યાં તેઓને રાત્રે સ્વપ્નમાં ભગવદાજ્ઞા થઈ કે અહીં તમે દુગ્ધપાન કરી એક શ્રીમદ્ભાગવતની સપ્તાહ કરો. તમારે ત્યાં એક હરિભક્ત પુત્ર થશે. આજ્ઞાનુસાર તેઓએ એક સપ્તાહ કરી. પછી તેઓ કન્નોજ આવ્યા. ત્યાં તેઓને સમયાનુસાર એક સુંદર પુત્રરત્નની પ્રાપ્તિ થઈ. અને તે પુત્રનું નામ તેઓએ "પદ્મનાભ" રાખ્યું.

પદ્મનાભ બહુ જ સુંદર તેજસ્વી અને અત્યંત તીવ્ર બુદ્ધિના હતા. નાનપણથીજ તેઓ અન્ય રમત ગમતને ત્યજી શાસ્ત્રના અભ્યાસમાંજ મગ્ન રહેતા.

લગભગ ૧૫૪૦ સુધીમાં તો તેઓએ મોટી મોટી સભાઓમાં જઈ શાસ્ત્રાર્થ કરવા શરૂ કર્યા. અને થોડાજ સમયમાં અત્યંત પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. તેઓ એટલા બધા પ્રસિદ્ધ થયા કે મોટાં મોટાં રાજ્યોમાં તેઓનું આદર સન્માન થવા લાગ્યું.

જ્યારે તેમના પિતા હરિશરણ થયા. ત્યારે તેઓએ પિતાનું સુપ્રસિદ્ધ વ્યાસાસન સંભાળ્યું. અને ત્યારથી તેઓ કથા કહેવા લાગ્યા. તેઓની કથા કહેવાની શૈલી એટલી સુંદર હતી કે અનેક ગામોના લોકો દૂર દૂરથી સાંભળવા આવતા અને મુગ્ધ થતા. જેથી તેમનો પૂર્ણ યશ સર્વત્ર પ્રસરી ગયો. આથી તેમને આજીવિકા ઘેર બેઠે આવતી. વળી તેઓને એક નિયમ એવો હતો કે અધિક માસમાં

પૂર્ણ ભક્તિથી કેવળ દુગ્ધપાન કરીનેજ શ્રીમદ્‌ભાગવતનું પારાયણ કરતા. આ પ્રકારે કેટલાંક વર્ષો તેઓએ વ્યતીત કર્યાં.

સંવત ૧૫૫૨ લગભગ શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધાર્યા તે અરસામાં પદ્મનાભદાસ શ્રીઆચાર્યજીના દિગ્વિજયનો યશ સાંભળી દામોદરદાસને ત્યાં દર્શનાર્થે ગયા. ત્યાં પદ્મનાભદાસે શ્રીઆચાર્યજીના શ્રીમુખથી શ્રીમદ્‌ભાગવતના કેટલાએક પ્રસંગો શ્રવણ કર્યા. તરતજ તેમને શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપનું જ્ઞાન થયું, અને તેઓ સહકુટુંબ સેવક થયા. (પછીનો બધો પ્રસંગ વાર્તામાં જુઓ.)

પછી શ્રીઆચાર્યજી સાથે તેઓ વ્રજમાં આવ્યા ત્યાં સં. ૧૫૫૬ ના ફાગણ સુદ ૭ ના દિવસે કર્ણાવલમાં શ્રીમથુરેશજીને પધરાવી પાછા કન્નોજ આવ્યા. ત્યાં માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વક સેવા કરવા લાગ્યા. તે વખતે તેમને શ્રીઠાકુરજી સાનુભાવ થયા. તેમની કવિત્વશક્તિ પાછલથી આવિર્ભાવ પામી તેમણે અનેક પદો શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીઠાકુરજીનાં કર્યાં છે.

તેમનાં રચેલાં ૪૦ પદો વિદ્વાનોના અભિમાનને પૂર્ણતયા ચૂર્ણ કરે એવાં છે. ભગવત્કૃપા વિના સમજમાં આવે તેમ નથીજ. તે પદોદ્વારા સારી રીતે સમજી શકાય છે કે યદિ શ્રીઆચાર્યજીનું નિગૂઢ ભાવાત્મક સ્વરૂપ દામોદરદાસ અને પ્રભુદાસથી અતિરિક્ત કોઈએ પૂર્ણતયા જાણ્યું હોય તો એક પદ્મનાભદાસે જ અને "निगूढहृदयोनन्यभक्तेषु ज्ञापिताशयः ।" આ શ્રીઆચાર્યજીનું નામ પણ અહિંજ (આ વાર્તામાં) વિશેષતયા સાર્થક દેખાય છે.

પદ્મનાભદાસજીની ભૂતલસ્થિતિ તેમના આ પદથી ચોક્કસ થઈ શકે છે:—

मधुर व्रजदेश वश मधुर कीनो ।

मधुर गोकुल गाम मधुर वल्लभनाम मधुर विट्ठल भजन दान दीनो ॥

मधुर गिरिधर आदि सप्ततनु वेणुनाद सप्त रंध्रन मधुररूप लीनो ।

मधुर फलफलित अति ललित **पद्मनाभप्रभु** मधुर अलि गावत सरस रंग भीनो ॥ (બીજું પણ સાત બાલકોના નામનું એક પદ છે) એથી સ્પષ્ટ છે કે સાતે બાલકોના પ્રાકટ્ય સુધી પદ્મનાભદાસ વિદ્યમાન હતા. અને સાતમા બાલક શ્રીઘનશ્યામજીનું પ્રાકટ્ય ૧૬૨૭માં છે. (सह कृष्ण तेरस रविज रिक्ष शत कला श्रीविट्ठल भूप के (मूल पुरुष) એટલે પદ્મનાભદાસની સ્થિતિ ૧૬૩૦ સુધી ચોક્કસ છેજ એ નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે. પદ્મનાભદાસનો કાવ્યરચનાકાલ લગભગ સંવત ૧૬૦૦ નો અનુમાન થઈ શકે છે.

सो पद्मनाभदास चंपकलता सखि हे ॥ श्रीस्वामिनीजीकी ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैविक स्वरूप (जन्म ३) प्र० १ पें भावप्रकाश ओर

श्रीमथुरेशजीके प्रागट्यको प्रकार

जब पद्मनाभदासने श्रीआचार्यजीसों बिनती करी जो हम ब्राह्मण हे॥ भिक्षावृत्ति करेंगे ॥ यह टेक देखि श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भए ॥ (ओर कह्यो) **जो वैष्णवको टेक हि बडो धर्म हे ॥**

पाछें पद्मनाभदासके सगरे कुटुंबको (जब) अंगीकार कीए ॥ तब पद्मनाभदासने कही महाराज हमकों कहा कर्तव्य हे ? ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे भगवद्सेवा करो ॥ तब पद्मनाभदासने कही ॥ महाराज मेंने तो पुराण महाभारत आदि शास्त्र बहोत देखे हें ॥ सो मोकों श्रीठाकुरजीके स्वरूपमें विश्वास आवनो कठिन हे ॥ जो स्वरूपको माहात्म्य प्रगट होतही देखूं तब मेरो विश्वास दृढ होइ ॥ काहेतें विश्वासही फलरूप हे ॥ (विश्वासः फलदायकः) तब श्रीआचार्यजी कहें

हमारे संग व्रज चलो ॥ तुमकों (माहात्म्य) दिखावेंगे ॥ तब पद्मनाभदास व्रजकूं चले ॥ सो महावन के पास रमनस्थल हे ॥ तहां श्रीजमुनाजी के किनारे (सामने पार कर्णावलमें) श्रीआचार्यजी बिराजे हते ॥ प्रातःकाल समय हे ॥ ओर श्रीजमुनाजीको कराडो टूट्यो ॥ तामेंते एक भगवत्स्वरूप जेसें ताडको वृक्ष (होय) इतने बडे, श्रीआचार्यजी के आगें आइ कहें ॥ मेरो सेवा करो* तब श्रीआचार्यजो कहे ॥ महाराज या कालमें वैष्णवकी सामर्थ्य नांही ॥ जो आपुकी सेवा श्रृंगार करे ॥ सेवा कराइवे को मनोरथ होइ तो भक्तनसों पधराए जाय (एसे) गोदसें बेठो ॥ तब सेवा होई ॥ तब छोटो स्वरूप करि श्रीआचार्यजी के चिबुकसों मस्तक ठाकुरजो को लग्यो ॥ इतने बडे भए ॥ सो स्वरूप श्रीयमुनाजो गिरिराज सखा सखी गांऊ कुंज चोरासी कोस सगरो स्वरूपात्मक चिह्न सहित हे ॥ तातें श्रीआ-चार्यजीने श्रीमथुरानाथजी नाम करे ॥ (ओर) पद्मनाभदासकों कहे ॥ क्यों तेरो मनोरथ भयो ? तब पद्मनाभदास प्रेममें विह्वल होइ कहें ॥ महाराज आपु सरिखे मेरे धनी हो ॥ आपकी कृपातें कहा न होई ? ॥

---

* શ્રીમથુરાનાથજીનું પ્રાકટ્ય સં. ૧૫૫૬ ફાગણ સુદ ૭નું છે. આથી એ પણ અનુમાન સ્પષ્ટ થાય છે કે શ્રીઆચાર્યજી સંવત્ ૧૫૫૦ થી ૧૫૫૫ ની વચ્ચે કન્નોજ પધારેલા હોવા જોઈએ. અને પદ્મનાભદાસજી દામોદરદાસને ત્યાં શરણે આવેલા છે. તેથી દામોદર-દાસને શરણે લઈ આપ દામોદરદાસને ત્યાં થોડા દિવસ બિરાજ્યા અને માર્ગની સેવા પરિપાટી આદિ બતાવી તેજ સમયમાં ભગવત્કથા સાંભળી પદ્મનાભદાસ પણ શરણે આવેલા છે.

तब श्रीआचार्यजी कहे **"यथा लाभ संतोष"** × करि भावपूर्वक सेवा करियो ॥ तब आज्ञा मांगी श्रीमथुरानाथजी कों कन्नोज में अपने घर पधराइ लाए ॥ प्रीतिपूर्वक सेवा करन लागे ॥ (पहले) भिक्षावृत्ति करतें ॥ तब पद्मनाभदास के मनमें आई जो में वैष्णव कहाईके भीख मांगो ? ॥ श्रीआचार्यजी यथालाभ संतोष सों कहे हें ॥ ओर उत्तम पक्ष यही हे ॥ "अन्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः" ॥२॥ या प्रकार अन्यावृत्तको नेंम ले सेवा मन लगाईके करन लागे ॥

॥ इति मथुरेशप्राकट्य प्रकार ॥

—: समस्त लीलाप्रकरण :—

पद्मनाभदास चंपकलता सखी को प्राकट्य हे ।

તેમના ધ્યાનનું કોષ્ટક આ પ્રમાણે છે:—

પિતાનું નામ	માતાનું નામ	વર્ણ=રંગ	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	ગાદ્ય	રાગ
ચંદ્રભાનુ	ચંદ્રકલા	કૃષ્ણ વર્ણ શ્વેત ઝાંઈ	હર્યો	કલાનિપુણ	રવાવ	કાન્હરા

ચંપકલતાજીને ત્યાં સત્તર લાખ ૧૭૦૦૦૦૦ ગાય છે. શ્રીચંદ્રાવલીજીના ભાવને મળે છે અને પરસ્પર સહવાસી છે. તેથીજ અહીં

× શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞા "યથાલાભ સંતોષ"ની નિબંધમાં પણ છે. અને તેને અનુસરીને શ્રીહરિરાયજી પણ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે.

"वैराग्यं परितोषं च लीलाभावाय भावयेत्" ॥ ६४३ ॥

(स्व० मा० श० स० से० नि०)

"श्रीकृष्णं पूजयेद्भक्त्या यथालब्धोपचारकैः" (निबंध)

પણ શ્રીગુસાંઈજીના પ્રાકટ્યના સહાયભૂત પદ્મનાભદાસ થયા. અને શ્રીગુસાંઈજીના સ્વરૂપનો (વેણુસ્વરૂપનો) અનુભવ પણ છે. તે ૪૦ પદમાં વર્ણવ્યો છે.

वार्ता प्रसंग २

*एक समे श्रीआचार्यजी प्रयाग में हते ॥ तहां पद्मनाभदास पास हैं ॥ तब रात्र प्रहर एक गई हती ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजीनें कह्यो ॥ जो श्रीअक्काजी पार हैं ॥ सो पार तें पधराय लाओ ॥ सो इतनो सुनि कें उठि चले ॥ तब पांच सात वैष्णव उहां सोये हते ॥ सो कहन लागे ॥ जो ब्राह्मण बावरो भयो हे ॥ या समें कहां जायगो ? ॥ नाव सब बंधी हे ॥ घटवारे सब घर गए हैं ॥ तातें या बिरियां जायवेकी नाहीं ॥ परि याको (पद्मनाभदास को) श्रीआचार्यजी महाप्रभून की आज्ञा को विश्वास हे ॥ जो यह बात अवश्य होईगी ॥ सो घाट उपर आये ॥ तब इत उत देखन लागे ॥ इतनेमें ही अकस्मात् एक लरिका एक डोंगी लेके आयो ॥ तब वाने पद्मनाभदास सों पूछी जो तु पार जाइगो ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो जो हां हां जाउंगो ॥ सो उन पार उतार दीनो ॥ पाछें फेरि पूछ्यो जो तू फेरि आवेगो ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो घडी दो में आऊंगो ॥ तब उन लरिकाने कह्यो जो डोंगी राखत हों, बेग आईयो ॥ पाछें अडेल

---

* સંવત ૧૫૭૧ ના વ્રજ ચૈત્ર વદ ૯ ની રાત્રે.

में आइके श्रीअक्काजी को पधराइ ल्याए * ॥ वाही डोंगी में बेठारि पार उतरे ॥ तब पाछें फेरि देखे तो डोंगी नांही ॥ ओर लरिका हू नांही ॥ पाछे श्रीअक्काजी को पधराय के लाये ॥ तब श्रीआचार्यजी पद्मनाभदास को आज्ञा दीनी ॥ जो जाउ सोइ रहो ॥ तब पद्मनाभदास जहां वैष्णव सब जाइ के सोए हते ॥ तहां आए ॥ तब वैष्णव पूछन लागे ॥ जो तूम कहा करि आए ? ॥

तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो एसे श्रीअक्काजी को पधराय लायो हूं ॥ तब सब वैष्णव नें कह्यो जो तुमने श्रीठाकुरजी को श्रम बहुत करायो ॥ पाछें उन वैष्णवननें (जब) श्री आचार्यजी सों कह्यो जो महाराज पद्मनाभदास ने श्रीठाकुरजी को श्रम बहुत करवायो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो ॥ (जो) यह जो कछू भयो हे ॥ सो मेरी इच्छा सों भयो हे ॥ तातें तुम इन पद्मनाभदास सों कछु मति कहो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

यह वार्तामें यह सिद्धांत भयो जो गुरुके कार्यार्थ प्रभुकों कष्ट (श्रम) करावे तो वैष्णवकों बाधक नांही ॥ गुरुके प्रसन्न भए सब कार्य सिद्ध होइ ॥+ (दूसरो अभिप्राय) ओर उह रात्रि श्रीगुसांईजी के प्रागट्यके गर्भ स्थितिको मुहूरत हतो ॥ तातें श्रीआचार्यजी आज्ञा कीए ॥ श्रीठाकुरजी डोंगी लाए ॥ तातें यह

* શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઈજીના સમયમાં પડદાની પ્રથા નહિં હતી. પડદાની પ્રથા સાત બાલકોના સમયમાં શ્રીનાથજીની.

जताए जो श्रीगुसांईजीके लिए सगरो कार्य करें यामें कहा कहनों ? ॥

આજ્ઞાથી ચાલુ થઈ છે. વિશેષ તે સંબંધી ઇતિહાસ પ્રસંગોપાત આગલ ઉપર લખીશું.

+સરખાવો શ્રીહરિરાયજીનાં આ વાકયોઃ—

यथाकथञ्चित्स्वस्वामिसन्तोषोत्पादनं हितम् ।
तस्मिंस्तुष्टे फलं सर्वं सिद्धमेव न संशयः ॥२०॥ (स्व०मा०म०नि०)

વિશેષ ગુરુના સ્વરૂપજ્ઞાનને માટે શ્રીહરિરાયજીએ "गुरुदेवाष्टक" રચ્યું છે તે વાંચો. ગુરુની અપેક્ષિતા અને મુખ્યતા ક્રિશ્ચીયન, મોહમેદન, બૌદ્ધ, જૈન, શાંકર આદિ ધર્મોમાં પણ ખૂબજ કહી છે. વ્યવહારથી પણ મનુષ્ય માત્ર જન્મે ત્યારથી મરે ત્યાં સુધી ગુરુની (કોઇપણરૂપે) અપેક્ષા છેજ. ગુરુ વિના કોઈ પણ પ્રકારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતું નથી. તેમજ દરેક કાર્યમાં (લોક અને વેદમાં) ગુરુની અપેક્ષા છેજ.

માટેજ દરેક ધર્મમાં ગુરુને ઇશ્વરથી પણ અધિક માનવામાં આવ્યા છે. (અન્ય માર્ગ અને આ માર્ગના ગુરૂમાં શો તફાવત છે તે જાણવા માટે નીચે વાંચો.)

गुरु के प्रसन्न भए सब कार्य सिद्ध होई ॥

આ શ્રીહરિરાયજીના મતને ભાવનાવાળા શ્રીદ્વારકેશજી પણ અનુસરે છે તે આ પ્રમાણેઃ—

या भावना तब सिद्ध होइ जब गुरु प्रसन्न होय । तातें गुरु को प्रसन्न राखिये । गुरु हे सो हृदयांधकार के निवर्तक हे । 'गुशब्दस्त्वंधकारे स्यात् रुशब्दस्तन्निवर्तकः । अंधकारनिवृत्तत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते' इति, हरि जब अप्रसन्न होइ तब गुरु रक्षा करे । जब गुरु अप्रसन्न होइ तब कोउ रक्षक नहिं । यातें तनुजा वित्तजा सेवा करिकें गुरुको प्रसन्न करिये । 'हरौ रुष्टे गुरु स्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत्' । तहां मुख्य गुरु तो श्रीआचार्यजी तथा श्रीगुसांइजी । ता पीछे इनको कुल गुरु हे । श्रीकृष्णज्ञानदः, या पद करिके

श्रीमहाप्रभुजी गुरु हे। ओर श्रीगुसांइजी में (श्रीआचार्यजीने) शेषमाहात्म्य तथा अशेष माहात्म्य यह दोउ माहात्म्य को स्थापित किये हें। या तें गुरु हे। 'श्रीविट्ठलेशे ह्यखिलमाहात्म्यस्थापकाय नमः'। ओर कुलमें तो 'अस्मत्कुलं निष्कलंकं श्रीकृष्णेनात्मसात्कृतं'। या वाक्य तें कुल हें सो गुरु हे। यथा देहे तथा देवे, यथा देवे तथा गुरौ'। इंद्रियव्रत करिकें देह पोषन करिये। **तो प्रान पोषन सेवा होइ**। जेसें प्राणसेवा करनी तेसें देव सेवा करनी। प्राण सेवा करे तो इंद्रिय देहभावको प्राप्त होइ। 'आसन्यस्य हरेर्वापि सेवया देवभावतः'। आसन्य सो प्राण। हरिसेवा करे तो व्यापि वैकुंठकी प्राप्ति तब होइ जब गुरु सेवा करे। जेसी हरि सेवा तेसी गुरु सेवा। 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।'

देहसेवा तथा देवसेवा, गुरुसेवा, यह तीनों सेवा नित्य करनी ताको प्रकार। तहां देहसेवा तो याको जो पदार्थ अपेक्षित हे सो सिद्ध करत हे। तेसे देवसेवा जो पदार्थ अपेक्षित हे सोउ सिद्ध करत हे। दोइ सेवा तो भई। गुरुसेवा तो शेष रही। **यह सेवा होइ तो पहेली दोउ सेवा सिद्ध होइ।** (भावभावना)

પુષ્ટિમાર્ગીય ગુરુની શ્રેષ્ઠતા:—

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी, श्रीगुसांईजी साक्षात् ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम इनकी शरण गये। ओर मारग में गुरु जीव हे, सेवा ईश्वरकी। या पुष्टिमारग में गुरु ही पूर्णपुरुषोत्तम, सेवाहू पूर्णपुरुषोत्तम की। सेवोपयोगी पदार्थ हू निर्दोष हे।

(श्रीद्वारकेशजी भावनावारे)

જે લોકો શ્રી આચાર્યજીએ નિબંધમાં કહેલાં લક્ષણો આજના ગોસ્વામી બાલકોમાં નથી એવા પ્રકારનો આક્ષેપ કરી અજ્ઞાની જનોને પુષ્ટિમાર્ગીય દીક્ષાથી રહિત કરી ઉંધે રસ્તે દોરે છે તે લોકોને શ્રીહરિરાયજીનાં આ વચનો સમજવાં જોઈએ:—

अभिप्राय) ओर पद्मनाभदासकों पूरन विश्वास दिखाए ॥ जो श्रीआचार्य-जीके बचन खाली कबहूं न जाइ ॥ सर्वथा कार्य सिद्ध होयगो ॥

॥ इति प्रसंग २ समाप्त ॥

वार्ता प्रसंग ३

बहुरि एक समें श्रीआचार्यजी महाप्रभू श्रीगोकुल तें अडेल को जात हते ॥ तब एक व्योपारी क्षत्री कछुक वस्तु लेके साथ में चल्यो सो कन्नोज के उरे रह्यो ॥ श्रीआचार्यजो तो कन्नोज बीच पधारे ॥ व्योपारी पाछे रह्यो सो ताके ऊपर चोर परे ॥ वस्तु सब लुटि लीनी* ॥ श्रीआ-

---

अथाधुनिकतीर्थानामतथाभूततोऽपिहि ॥ पू० ॥
उपदेशस्तथाभूतगुरोरिव फलिष्यति ।
यदि दुःसङ्गदोषेण नान्यथा चेद् भवेन्मतिः ॥ ५१ ॥

(स्व० मा० श० स० से० नि०)

ભાવાર્થઃ—હવે જો આધુનિક તીર્થરૂપ ગુરુઓ ઉપર જણાવેલા ગુરુ જેવા નથી, તો પણ તેઓ જે ઉપદેશ આપે છે, તે તો પહેલાં વર્ણવેલા સદ્‌ગુરુએ જ કહેલો ઉપદેશ આપે છે, માટે હાલના ગુરુઓ તેવા ન હોવા છતાં પણ તેમની પાસેથી જો ઉપદેશ લેવામાં આવે તો તે ઉપદેશ, જો દુઃસંગરૂપી દોષથી બુદ્ધિ ભ્રમિત થઇ નહિ હોય તો, પહેલાં બતાવેલા મુખ્ય સદ્‌ગુરૂના ઉપદેશની પેઠે જ ફળશે. આજ મત લેખવાળા શ્રીપુરુષોત્તમજીનો છે. તેમજ સમગ્ર ગોસ્વામીબાલકોનો છે. કેટલાએક બાલકોના મુખારવિન્દથી સાંભળ્યું છે કે **"અમે જીવને શરણે લઇ શ્રીમહાપ્રભુજીને સોંપીએ છીએ"**

*શ્રીઆચાર્યજીના ચરણારવિંદ જે છોડે છે તે આ લોક અને પરલોક બન્નેમાં વાસ્તવિક લુટાય છે જ, તે આ દૃષ્ટાંતથી સિદ્ધ થાય છે.

चार्यजी आप रसोई करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्प्यो इतनेमेंही पाछेंते ब्योपारी रोवत पीटत आयो तब पूछी जो श्रीआचार्यजी कहा करत हैं ? तब पद्मनाभदास नें कह्यो जो भोजन करत होइँगे ॥ तब ब्योपारी ने कह्यो जो हमारो माल सगरो लुटि गयो है ॥ ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप भोजन करत हैं ॥ तब पद्मनाभदास ने मनमें बिचार्यो ॥ जो यह बात श्रीआचार्यजी सुनेंगे तो भोजन न करेंगे ॥ तातें आप सुने नहीं (एसें करनो)॥

तब पद्मनाभदास वा ब्योपारी की बांह पकरि के बाहिर ले आये ॥ तब पूछि जो साँच कहे ॥ तेरो माल कितनो गयो है ? तब उन ब्योपारी नें बतायो ॥ तब वा ब्योपारीकी बांह पकरि के पद्मनाभदास एक साह की दूकान पें ले गये ॥ ता साहनें पद्मनाभदास की वहुत आगतासागता करी ॥ पाछे वा साह ने कह्यो जो आग्या करो केसे पधारे हो ॥ तव पद्मनाभदास नें साहसों कह्यो ॥ जो या ब्योपारी को इतनो द्रव्य देनो चाहिये ॥ या द्रव्य को खतपत्र ब्याज हम लिखि देइंगे ॥ तब वा साहनें कही जो पद्मनाभदासजी तुम कों जितनो द्रव्य चहिए तितनो द्रव्य लेउ ॥ खतपत्र की कहा बात हे ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो ॥ जो पहिले तो खतपत्र लिखूंगो ॥ ओर पाछें द्रव्य लेऊंगो विना खतपत्र लिखे तो में लेउंगो नांही ॥ तब साह ने कही ॥ जो तुमारी इच्छा ॥ पाछें पद्मनाभदास ने खतपत्र ब्याज लिखि अपनो धरम

गहने लिखि दीनो * ॥ पाछें ब्योपारी तो द्रव्य लेके अपने घर गयो ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तू कहां गयो हो ॥ तब पद्मनाभदास नें कह्यो जो महाराज एक काम हो तहां गयो हो ॥ सो श्रीआचार्यजी आपु तो ईश्वर हें ॥ तत्काल बात को जानि गए ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजी नें कह्यो ॥ जो हमको वा ब्योपारी के संग कछू बिसावनो हतो कहा ? जो वाको माल देते ? वह पाछें रह्यो तो हम कहा करें ? ॥ परि तेने बुरी करी ॥ जो रिन काढि के पैसा दीनो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज रिन तो कालि देऊंगो ॥ यह कितनीक बात हे ॥ परि वह ब्योपारी पुकारतो तो राज भोजन घडी दोय अवेरो करते ॥ तो मेरो सगरो जन्मारो वृथा होय जातो ॥ तब श्रीआचार्यजी नें कह्यो ॥ जो तेने धर्म गहने लिखि दीनो सो कहा हे ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज एसे गाढो लिखे बिना दियो न जाइ पाछें श्रीआचार्यजी आप तो अडेल पधारे ॥ पाछे पद्मनाभदास एक राजा हतो ॥ ताके पास गये ॥ पाछें राजाने कह्यो जो मोकों कृपा करि के कथा सुनावो ॥ तब पद्मनाभदास नें कह्यो ॥ जो राजा श्रीभागवत तो न कहूंगो ॥ कहो तो महाभारत सुनावों ॥ तव राजा नें कह्यो जो भलो

---

* તે સમયમાં ધર્મની કેટલી કીંમત સર્વ સામાન્યમાં પણ હતી તેનું સૂક્ષ્મ અવલોકન અહીં થાય છે. તે સમયના પુરુષો સત્યવચની અને ધર્મ ઉપર અપૂર્વ શ્રદ્ધાવાળા હતા.

महाभारत ही सुनावो ॥ तब महाभारत कहन लागे ॥ सो जब युद्ध को प्रसंग आयो ॥ तब सबन के हथियार छुडाइ धरे ॥ तब आगे कहन लागे ॥ सो कथा में कोऊ (एसो) वीररस उपज्यो सो आपुस में लात मुक्किन सों लरन लागे * ॥ पाछें केतेक दिनमें महाभारत समाप्त भयो ॥ तब राजा बहुत दक्षिणा देन लाग्यो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो ॥ जो इतनो द्रव्य नांहि लेऊंगो ॥ मेरे माथे रिन हे ॥ सो तितनो लेऊंगो ॥ पाछे वा साहको जितनो मूल व्याज देनो हतो तितनो लीनो ॥ बाकी सब फेरि डार्यो ॥ सो वे पद्मनाभदास एसे भगवदीय हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

तब व्योपारीने कह्यो जो हमारो माल सब लुटि गयो ॥ आपु भोजनको पधारे हें ? ॥ यह कह्यो ताको कारन यह जो आपु दयाल व्हेके जीव दुःखि जानिके भोजन केसें करत हें ? ॥ जो दयाल हे सो परायो दुःख दूरि करिकें भोजन करत हे ॥ [तब पद्मनाभदास वह व्योपारीकी बांह पकरिके बाहर लाय पूछे ॥ जो साँच कहियो तेरो माल कितनेको गयो हे ? ॥ तब उन व्योपारीनें कही ॥ जो पंद्रह हजारको माल हतो ॥ बेचेंतें सतरे हजारको होतो] ॥ × × × जब पद्मनाभदास व्योपारीको द्रव्य दिवायके घर आये तब श्रीआचार्यजीने कही (जो तेने) व्योपारीको द्रव्य क्यों दिवायो ? ॥ रीन काढिके ॥ कछू हम वीमा कीयो हतो ? पाछें रह्यो लुटि गयो ॥ तें

---

*ऐश्वर्य धर्म जुओ। पद्म०नी वार्तानुं २५० अने रहस्य

[ ] आटली वात १७५२ ना पुस्तकमां विशेष प्राप्त थाय छे.

बुरी करी ॥ ताको कारन यह जो रिनहत्या माथें लीनी ॥ सो बुरी करी-सरीर को कहा भरोसो हे ? ॥ देह छूटि जाइ तो रिन माथे रहे ॥

तब पद्मनाभदासने कही ॥ वा व्योपारिको रुदन सुन घरी दोय आपु भोजन अवेरो करते ॥ मेरो जन्म वृथा होइ जातो ॥ (ताको अभिप्राय) सेवकके आगें स्वामीको कछू श्रम होइ ॥ सेवक श्रम दूरि न करें ॥ तो धर्म जाइ ॥ पाछें धिक्कार वह सेवककों जीवे सो वृथा हे ॥ ओर रिणकी केतिक बात हे ? ॥ अब चुकाई देऊंगो ॥ ताको कारन यह जो कालकी कहा सामर्थ्य हे॥ आपुकी कृपातें बाधक न होइगो ॥× ओर धरम गहने धर्यो तामें एक भाव यह हे ॥ (जो) अपनो वैदिक ब्राह्मणको धर्म गहने धर्यो होइगो वह गौन भाव हे ॥ काहेतें श्रीआचार्यजीकी सरन आए॥ तब (सब) समर्पन कीए॥ जो वैदिक धर्म न्यारो रहे ॥ तो पुन्यको फल स्वर्ग भोगनो परे ॥ तातें इनने तो सर्व समर्पन करि एक पुष्टि भक्तरूप धर्म राखे हे ॥ ताहितें श्रीआचार्यजी हू पूछ्यो (जो) एसो धर्म साहके इहां गहने धर्यो ? ॥ परंतु पद्मनाभदासकों श्रीआचार्यजीको स्वरूप हृदयारुढ हतो ॥ **श्रीआचार्यजीके सुखके लिए ॥ धर्महूकी अपेक्षा राखें नाही ॥**+ गहने धरे॥ ओर ब्योपारिको द्रव्य देके बहोत मनमें प्रसन्न भए ॥ भली भई (ब्योपारी) इहां आयो ॥

× " તેને કાલ કર્મ નવ બાંધેરે યમ તે શિર ધનુષ્ય ન સાંધેરે એવો મારગ શ્રીવલ્લભવરનોરે, જહાં નહિ પ્રવેશ વિધિ હરનોરે, " (વલ્લભાખ્યાન)

+ પુષ્ટિ ધર્મનાયે સારરૂપ (જુઓ પદ્મનાભદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય.)

जो चल्यो जातो तो जहां तहां देसमें निंदा करतो ॥ (एसी उत्तम दृष्टि पुष्टि भक्तनकूँ चाहिए) जो में श्रीआचार्यजीकी संग लुटि गयो ॥ काहेतें लौकिक राजाके संग लुटयो न जाइ तो एसे ईश्वरके संग लुटि गयो ? ॥ सो पद्मनाभदास कहे ॥ मेरे धर्मकी परीक्षा अर्थ लुटयो गयो ॥ सो व्योपारीको द्रव्य दीयो ॥ अब जहां जाइगो तहां श्रीआचार्यजीकी बडाई करेगो ॥ मोकों नफा सहित द्रव्य दीए ॥ या भावसों पद्मनाभदासकी श्रीआचार्यजीमें अनिर्वचनीय प्रीति हे ॥ × × ×

ओर राजा जादा द्रव्य देन लाग्यो सो आप (पद्मनाभदास) यातें न लीए ॥ जो इनको अव्यावृतको नेम हे ॥ वृत्तिके अर्थ कथा नांही कहनी ॥ यह संकल्प हे ॥ यह सगरो काम श्रीआचार्यजीके सुखके अर्थ किए॥ सो साह को रुपैया दिवाइ धर्म को कागद लिखे हते सो ले आए॥ पाछें घर आय सेवा करन लागे ॥

॥ **इति प्रसंग ३ समाप्त** ॥

નોંધઃ--દાસ અને સેવકમાં નીચે પ્રમાણેનો ભેદ જાણવોઃ—

દાસ હોય તે સ્વામીની આજ્ઞાની રાહ જોતો નથી તેમજ સ્વામીની આજ્ઞાને પૂર્ણપણે જાણીને જ તેનું ઉચિત પાલન કરે છે. સ્વામીને સુખ કયા પ્રકારે થાય ? તેજ વિચારમાં દાસ નિમગ્ન સદૈવ હોય છે. અને તે ગુપ્તપણે પરોક્ષરૂપે સદૈવ સ્વામીના સુખના કાર્યમાં તત્પર રહે છે. સ્વામીને પોતાના કાર્યની જાણ ન થાય તેની બહૂ જ સાવધાની રાખે છે. આ દરેક વસ્તુ પદ્મનાભદાસે આ પ્રસંગમાં કરી દેખાડી છે. સેવક હોય છે તે સ્વામીની આજ્ઞાની રાહ જુએ છે. આજ્ઞાને અનુ-સાર (ઉચિત અથવા અનુચિતનો વિચાર કર્યા વિના) ધર્મ સમજી

ओर पद्मनाभदास के घर बेटी कुमारी हती ॥ ताके निमित्त एक बर श्रीआचार्यजी को सेवक चहियत हतो ॥ सो वैष्णव सों पूछन लागे ॥ तब वैष्णव नें कह्यो ॥ जो एक वर

वार्ता प्रसंग ४

श्रीआचार्यजी को सेवक हे ॥ परि सनोढिया ब्राह्मण हे ॥ सो पद्मनाभदास को सेवक सुनत ही लौकिक व्यवहार की तो सुधि नाहीं आई ॥ वैष्णव नें कह्यो जो भलो वैष्णव हें ॥ याको कन्या दीजिये ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो भलो ॥ तब पद्मनाभदास ने वा वैष्णव को कुंकुम मगाई तिलक कीयो ओर कह्यो में बेटी तुमकों दे चुक्यो ॥ लगन को दिन तुम पूछो ता दिन व्याह करूं ॥ विवाह सही करि प्रसन्न होइ अपने घर आए ॥ तब बडी बेटी एक तुलसां हती सो व्याह होत ही विधवा भई ॥ लौकिक पति को मुख नांहि देख्यो ॥ सो श्रीमथुरानाथजी की सेवा में तत्पर हती तासों कह्यो जो अपनी बेटी को विवाह अमुके वैष्णव सों सही करि आयो हूं ॥ तब तुलसांने कह्यो जो वह तो सनोढिया ब्राह्मण हे ॥ हम कन्नोजिया ब्राह्मण हे ॥ सो

કાર્ય કરે જાય છે. એટલે સ્વામીના હાર્દને જાણતો નથી. સ્વામીનું સુખ શેમાં છે તે પણ વિચાર કરતો નથી. દાસ ધર્મનું સ્વરૂપ વ્રજભક્તોએ (રાસ સમયે), શ્રીઆચાર્યચરણે (બન્ને ભગવદ્ આજ્ઞા સમયે) અને દામોદર પદ્મનાભ તથા રજો આદિ પરમ મહાનુભાવ ભગવદીયોએ કૃતીદ્વારા જીવોને સમજાવ્યું છે એ દાસ્ય ધર્મ એજ પુષ્ટિમાર્ગ અને તે ફલાત્મક ધર્મ હોઇ ભગવત્સ્વરૂપ જ છે. (મર્યાદા દાસ્યધર્મ જે હનુમાનજીમાં હતો તે નહિં.)

एसे केसे होइ ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो अब तो भई सो भई ॥ तब तुलसां ने कही जो सगाई फेरो ॥ तब पद्मनाभदास ने कही ॥ जो छूरी लाओ ॥ अंगूठा काटो ॥ जा अंगूठा करि तिलक कीयो हे ॥ तब तुलसां ने कह्यो ॥ जो अंगूठा केसे काटिए ॥ तब पद्मनाभदास ने कही तो सगाई केसे फेरिए ? ॥ अंगूठा कटे तो सगाई फिरे ॥ पाछें पद्मनाभदास ने विवाह करि दीनो ॥ जाति के सब झख मारि रहे ॥ वैष्णव के कहेको एसो विश्वास ॥ तातें सगाई न फेरी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

जब तुलसांने कह्यो ॥ अंगूठा केसे काट्यो जाय ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो ॥ श्रीआचार्यजी के सेवक पर तन मन धन न्योछावरि करिए+ ॥ सो सगाई केसें फेरि जाइ ? ॥

+ આ શ્રીહરિરાયજીની ગદ્ય વાણીને શ્રીહરિરાયજીની પદ્ય વાણી સાથે રાખવોઃ--

वारूं तनमन वल्लभियन पर।
मेरे तन को करूं बिछोना शीश धरूं इनके चरनन तर ॥

× × ×

છેલ્લી લીટી

दास रसिक बलैया लेले वल्लभीयनकी चरन रज अनुसर ॥

ક્યાં આ સર્વોત્તમ વૈષ્ણવ પ્રત્યેનો શુદ્ધ પ્રેમ ? અને ક્યાં આજકાલના આક્ષેપ કર્તાઓનાં મલિન હૃદય ?

(આ મારગમાં તો શું ? પરંતુ સર્વત્ર જગતમાં વ્યવહારથી લઈને છેક ભક્તિ સુધીની સિદ્ધી સુધી ભક્તોનો મહિમા પ્રત્યક્ષ કે અપ્રત્યક્ષ રૂપે સર્વને માનવો પડે છે જ.)

સરખાવો પરમાનંદદાસનું (અષ્ટસખાનું) પદ

आये मेरे नंदनंदन के प्यारे ।

(અષ્ટસખા) સૂરદાસજીનાં પદઃ—

गिरिधर जब अपनो करि जाने। ताको मन भक्तन की सेवा भक्त चरनरज सदा लुभाने ॥

(२) प्रभु जन पर प्रसन्न जब होहीं।

तब वैष्णवजन दर्शन पावे पाप रहे नहिं कोई॥

हरि लीला उर आवे ताके सकल वासना नासे ।

सूरदास निश्चे विचार करि हरि स्वरूप जब भासे ॥

(અષ્ટસખા) કૃષ્ણુદાસનું પદઃ—

ताहीको शिर नाइये जो श्रीवल्लभसुत पदरज रति होय ।

× × ×

(અષ્ટસખા) છીત સ્વામીનું પદઃ—

मोहि बल हे दोउ ठोर को।

एक भरोसो हरिभक्तन को दूजो नंदकिशोर को ॥

× × ×

શ્રીવલ્લભજી મહારાજનું પદઃ—

आये मेरे श्रीवल्लभ के दास।

ताकी सरवर नहि त्रिभुवन में सुनो वेद इतिहास ॥ १ ॥

× × ×

ताकी महिमा को कवि बरनत सकुचत सरस्वती व्यास।

तीर्थन को अति तीर्थ करियत पद रज गंध सुवास ॥

ભક્ત કહો સાધુ કહો સંત કહો પરોપકારી કહો કે વૈષ્ણવ કહો તેની મહિમા સર્વ સંપ્રદાયોમાં સર્વ જગતમાં સર્વ ગ્રન્થોમાં (બાઇબલમાં પણ) પાને પાને પ્રત્યક્ષ કે અપ્રત્યક્ષ રૂપે રહેલી છે. અહીં વિશેષ ન કહેતાં આગલ અન્ય પ્રસંગોમાં વર્ણન કરીશું.

या प्रकार तुलसाकौं **मारग को अभिप्राय बताए*** ॥ ता दिन तें तुलसाको प्रेम वैष्णवमें पद्मनाभदासके संगतें भयो ॥ सो श्रीठाकुरजी तुलसाहूको अनुभव जतावन लागे ॥ पाछें प्रसन्न होई के

---

*२ સરખાવો શ્રીકાકા વલ્લભજીનું ૧૪ મું વચનામૃત (તેમાં આપેલો પ્રસંગ)

મારગનું મૂલ વૈષ્ણુવ જ છે. વૈષ્ણુવની સેવા એ સર્વોપરિ વસ્તુ છે. તે વૈષ્ણુવ કોટિમાં વ્રજ ભક્તો, શ્રીઆચાર્યચરણ (શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ), શ્રીગુસાંઇજી, સમસ્ત વલ્લભકુલ, દમલા, પદ્મનાભદાસ અને રાજા આશકરણ જેવાને સમાવેશ થાય છે. આ ભકતોનાં સ્વરૂપ **पुष्टि प्रवाह मर्यादा** ગ્રન્થમાં શ્રીઆચાર્યચરણે કહેલા "**स्वरूपेणावतारेण**" એ શ્લોક અનુસાર જાણુવા. તેથી જ શ્રીગુસાંઇજીની આજ્ઞાથી સત્ય-ભામાજીએ રાજા આશકરણને રાજભોગના થારની સામગ્રી લેવડાવી. શ્રીમહાપ્રભુજીએ અડેલમાં કૃષ્ણુચૈતન્યને અનોસરના સમયમાં વિના સમર્પેલી સામગ્રી લેવડાવી અને અક્કાજીને આજ્ઞા કરી કે તેમના હૃદયમાં સાક્ષાત્ પ્રભુ બિરાજમાન છે. માટે તેમની આગલ સામગ્રી ધરવામાં કાંઈ વાંધો નથી (જુઓ પ્રદીપ) તેજ પ્રમાણે શ્રીહરિરા-યજીના સમયમાં એક વિરકત વૈષ્ણુવ (રાજા આશકરણના સમાન) ને શ્રીહરિરાયનીની આજ્ઞાથી એક ડોકરીએ વિના સમર્પેલો ખીરનો ડબરો ધર્યો. શ્રીહરિરાયજીએ સર્વ સમક્ષ કહ્યું કે મારગનો સિદ્ધાંત એ ડોકરીએજ જાણ્યો. એ વૈષ્ણુવને સંદેહ થયો. ત્યારે સંદેહ નિવા-રણાર્થ તે ડોકરીની પાસે અનોસરના સમયમાં તે વૈષ્ણુવને મોકલ્યો. ત્યાં તે વૈષ્ણુવ જુએ છે તો ખીરનો ડબરો લઈ શ્રીઠાકોરજી ડોકરીની છાતી ઉપર ખેલી રહ્યા છે—

શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઇજીનું, આચાર્ય કોટિ, ભકત કોટી અને ઈશ્વર કોટી એમ ત્રણે કોટિમાં પ્રાધાન્યત્વ છે. અને ત્રણે કોટિમાં

वैष्णवकों अपनि बेटि ब्याहि दिए ॥ जाति सगरि झखि मारि रही ॥ ताको कारन यह हे ॥ (जो) जहां तांई द्रढ स्नेह नांहि ॥ तहां तांई लौकिक वैदिकको डर हे ॥ जब द्रढ स्नेह प्रभूमें भयो ॥ तब सगरी चिंता मिटी ॥ लौकिक वैदिक बाधा हूं न करि सके+ ॥ एसे एक वैष्गव पद्मनाभदास भए ॥

॥ इति प्रसंग ४ समाप्त ॥

પણ ભકત કોટિ સર્વોપરિ છે. તે શ્રીમદ્‌ભાગવત આદિથી સિદ્ધ છે. શ્રીઆચાર્યજી સ્વયં ત્રણે કોટિને સ્વીકારે છે જુઓ:--

"इति श्रीकृष्णदासस्य" અહિં ભકત કોટિ

"नहिविभुर्वैश्वानराद्वाक्पतेः" અહિં ઈશ્વર કોટિ

"इति श्रीवल्लभाचार्य विरचितं" અહિં આચાર્ય કોટિ

માટે પુષ્ટિમાર્ગમાં વૈષ્ણવોની સેવા મુખ્ય છે. તેમાં શેષ બન્ને સેવાનો સમાવેશ રહેલો છે. (હરિ અને ગુરુની સેવાનો.) વિષયાંધ હૃદય આ વસ્તુ કયાંથી સમજી શકે?

+ સરખાવો નારદભક્તિ સૂત્ર :—

સૂત્ર ૧૨ भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्र रक्षणं ।

અર્થ:—દ્રઢ નિશ્ચય થયા પહેલાં શાસ્ત્ર રક્ષણ (શાસ્ત્રોક્ત કર્મોનું અનુષ્ઠાન) હોય.

૧૩ अन्यथा पातित्याशंकया। અર્થ:—અન્યથા પતિત થવાની શંકા છે.

૧૪ लोकोपि तावदेव किंतु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि ।

લોક (લોક વ્યવહાર) પણ ત્યાં સુધી (દ્રઢ નિશ્ચય થયા પૂર્વતક) છે. કિન્તુ ભોજનાદિ વ્યાપાર તો જ્યાં સુધી શરીર છે, ત્યાં સુધી છે.

સારાંશ કે જ્યાં સુધી ઇશ્વરમાં નિરોધરૂપા ભક્તિ દ્રઢ ન થાય ત્યાં સુધી શાસ્ત્રોક્ત કર્મ પાલન અવશ્ય છે. નહિ તો પતિત

ओर एक क्षत्राणी पद्मनाभदासके घर नित्य आवती ॥ तब पद्मनाभदासकी बेटी तुलसांने एक

वार्ता प्रसंग ५

दिन वासों कह्यो ॥ जो क्षत्राणी तूं नित्य क्यों आवत हे ? तब वा क्षत्राणीनें कही जो ए महापुरुष हें ॥ बडे भगवदीय हें ॥ ओर मेरे संतति नांही होति हे ॥ तातें आवति हों ॥ तुम मेरी बिनती पद्मनाभ-दासजीसों करियो ॥ तब एक दिन तुलसांने पद्मनाभदाससों कह्यो जो या क्षत्राणीके संतति नांही ॥ ताके लिए तुमसों बिनती करत हे ॥ तब पद्मनाभदासने तुलसांसों कह्यो जो जल लाउ ॥ तब तुलसांने जल आगे लाइ धर्यो ॥ तब वह जल लेके चरणोदक करि वा क्षत्राणीको दीयो ॥ ओर कह्यो जो जा तेरे पुत्र होइगो* ॥ ताको नाम मथुरादास धरियो ॥ पाछें वाके पुत्र भयो ॥ (ताको) नाम मथुरादास धर्यो ॥

થવાની શંકા રહે છે. અને લોક વ્યવહાર પણ દૃઢ ભક્તિ ન થાય ત્યાં સુધી જ છે. ઈશ્વરમાં દૃઢ ભક્તિ થયા પછી લોક અને વેદ બન્નેનો ત્યાગ છે. કેટલાક એવો કુતર્ક કરે છે કે પહેલા ખાવુંપીવું છોડી દો ત્યારે લોક વેદનો ત્યાગ કર્યો ઉચિત કહેવાય, પરંતુ ઉપ-રોક્ત સૂત્રથી સિદ્ધ થાય છે કે ભોજનાદિ વ્યવહાર તો શરીર જ્યાં સુધી છે ત્યાં સુધી છે. તેનું વિશેષ વિવેચન રજોની વાર્તામાં આપ્યું છે ત્યાં જુઓ.

* શ્રીઆચાર્યજીના સેવકો પણ શ્રીઆચાર્યજીની માફક પૂર્ણ-સામર્થ્યયુક્ત છે. દૃષ્ટાંતરૂપેઃ—પ્રભુદાસે અહીરનીને મુક્તિ આપી ગદાધરદાસે માધવદાસને ભક્તિ આપી. જે ભક્તિ આપવાને બ્રહ્માદિક

अपनो चरणोदक क्यों दीए ?॥ भगवदीय अपनी बडाई तो करावत नांही॥ तातें श्रीठाकुरजीको चरनोदक दीयो होयगो ॥ तहां कहत हें ॥ जो पद्मनाभदासनें बिचारी जो तुच्छ कामना पुत्रादिककी हे ॥ याके लिए श्रीठाकुरजी को चरनोदक कहा ? श्रीठाकुरजीको श्रम काहेकों कराऊं ?॥ तातें अपनो चरणोदक दिए॥ परंतु पद्मनाभदास सदा श्रीआचार्यजी के स्वरूप में मगन रहत हें॥ (देखो पद्मनाभदास कृत ४० पद) सो जल ले श्रीआचार्यजी के भाव तें दिए॥ ओर इनको कछू कामना की बडाई की अपेक्षा नांही है ॥ भगवदीय को आश्रय करें ॥ सो सगरो मनोरथ वाको पूरन होइ ॥ यह पुत्र की कहा बात हे ? ताकों (क्षत्राणीकों) पुत्रकामना हती सो पुत्र दीए ॥ परंतु बाधक नांही ॥ जो अपने कीए को अहंकार नांहि ॥ ता समय जो बुद्धि की प्रेरणा भई ॥ सो भगवद् इच्छा तें कार्य करत हैं ॥ अपनो कीयो जानत नांहीं हें । श्रीगुसांईजी लिखे हें "बुद्धि प्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु" जो कार्य होत हे। जेसी ताकी बुद्धि प्रेरक होई करत हे सो कार्य सब कृष्णही को जाननो ॥ जो अपनो ओर को जाने सोई संसार समुद्र में भ्रमत हे ॥ तातें पद्मनाभदास ने अपनो चरणोदक दिए ॥ परंतु यह भाव नांहि जो मेरे चरनोदकसों पुत्र होइगो ॥ भगवदइच्छा तें सब होत हे ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

इति प्र. ५ समाप्त.

પણ અસમર્થ છે. તેવીજ રીતે પદ્મનાભદાસે પુત્ર આપ્યો. તેમાં જરાય આશ્ચર્ય નજ હોય. સેવક સેવ્યના ચિંતવનથી તદ્રૂપતાને પ્રાપ્ત થાય છે. લોકમાં કીટ ભ્રમર ન્યાય પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંતરૂપ છે.

ओर एक समें बडे रामदासजी अपने सेव्य श्रीठाकुरजी कों पद्मनाभदास के घर पधराइ के श्रीनाथजी-

वार्ता प्रसंग ६

के दरसन कों गए ॥ सो श्रीनाथजी की सेवामें श्रीआचार्यजी की आज्ञा तें रहे ओर श्रीनाथजी की सेवा करन लागे ॥ श्रीनाथजी के भीतरिया*भए ॥ तब पद्मनाभदास श्रीठाकुरजी की सेवा करन लागे ॥ सो कितनेक दिन पाछे मुगल की फौज आई ॥ सो तानें गाम लूट्यो+ सो श्रीठाकुरजीकों एक मुगल ले गयो ॥ तब पद्मनाभदास वा मुगलके साथ दिन सातलों रहे ॥ जल पान हू न कर्यो ॥ तब आठमे दिन मुगलसें मुगलानीने कह्यो ॥ जो यह ब्राह्मण जलपान नाहिं करत हे ॥ याको सात दिन भए हें ॥ अन्नजल छोडे ॥ सो जो यह मरेगो तो तेरे माथे हत्या चढेगी× ॥ तातें याको देवता हे ॥ सो वाकों दे ॥ तब मुगल ने श्रीठाकुरजी पद्मनाभदास कों दीए ॥ सो लेके पद्मनाभदास अपने घर आए ॥ ता पाछे आप स्नान करि श्रीठाकुरजी को पंचामृत स्नान करवायो ॥ अंग वस्त्र करि श्रृंगार कर्यो ॥ रसोई करि भोग समर्प्यो ॥ पाछें समयानुसार भोग सराय अनोसर करि पाछें

---

* શ્રીમહાપ્રભુજીના સમયમાં મુખ્યાજીનેજ ભીતરીયા કહીને સંબોધતા.

+ ઐતિહાસિક તત્ત્વ. ‘ લૌકિક ભાષા ’ (રહસ્ય ભાષાને ઉપયોગી હોવાથી સૂક્ષ્મરૂપે આપી છે)

× સાચું આત્મબલ આનું નામ કે જેનાથી એક દુષ્ટાત્માના હૃદયમાં પણ સદ્‌વિચાર આવ્યા. અહીં ઐશ્વર્ય કહ્યું છે.

वैष्णवन कों महाप्रसाद लिवायो ॥ पाछें आप महाप्रसाद लियो ॥ ओर जा दिन श्रीठाकुरजी कन्नोज में मुगल के हाथ परे ॥ ता दिन बडे रामदासजी ने हू यह बात जानी ॥ सो ता दिन तें बडे रामदासजी ने हू सात दिनलों भोजन नांहि कियो ॥ परि श्रीनाथजी की सेवा सावधानतासों करत रहे ॥ यह बात पद्मनाभदासजी ने अपने घर बेठे जानी॥ जो रामदासजी ने हू या बात के उपर बहोत दुःख पायो ॥ यह जानि पद्मनाभदास श्रीनाथजी के दरसन कों तथा रामदासजी के मिलिवे कों श्रीनाथजीद्वार (गिरिराज–जतिपुरा) गये ॥ सो श्रीनाथजी के दरसन कीये ॥ पाछें रामदासजी कों मिले ॥ तब रामदासजी सों पद्मनाभदासजी नें कह्यो ॥ जो होंतो दुःख पायो सो तो न्याव हे ॥ जो तुम मेरे माथे सेवा पधराय आए ॥ परि तुमने दिन सातलों प्रसाद न लियो ॥ सो काहेते ? तब रामदासजी ने कह्यो जो तुम कहत हो सो तो साँच परि मेंहूं तो बहोत दिनलों सेवा करी हे ॥ तातें इतनो संबंध तो चाहिए ॥ पाछें कितनेक दिन रहिके पद्मनाभदास श्रीनाथजी सों तथा रामदासजी सों बिदा होइके अपने घर कन्नोज आए ॥ पाछें फेरि सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

या वार्तामें यह सिद्धांत दिखाए ॥ जो पुष्टिमार्गीय वैष्णव के ठाकुर अपने घर पधारे ॥ तो भिन्न भाव न राखनो+ ॥ श्रीआचार्यजी के संबंधी जानि माथे पधारे

+સંપ્રદાયની પરિપાટીનું જ્ઞાન આ પ્રસંગમાં સમાયેલું છે.

जानि सेवा करनी ॥ ओर रामदासजी के भावमें यह जताए जो अपने सेव्य (सेवाके) ठाकुर कहूं पधराइ निश्चिंत न होइ ॥ उनके दुःखतें दुःखि होई ॥ उनके सुख तें सुख पावे ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥

॥ इति प्रसंग ६ समाप्त ॥

वार्ता प्रसंग ७

बहुरि एक समय पद्मनाभदास ने बिचारी जो श्रीठाकुरजी सहित कुटुंब सहित श्रीआचार्यजी के दरसन करिए ॥ श्रीमुख के वचनामृत सूनिए ॥ सो श्रीठाकुरजी सहित कुटुम्ब सहित अडेल में आए ॥ सो कछुक दिन रहे ॥ परि द्रव्य को संकोच बहुत हतो ॥ तातें श्रीठाकुरजी को भोग समर्पे ॥ सो छोला तलि के समर्पै ॥ सो छोला आछी रीति सों बीनि के पहले दिन भिजोइ राखे दूसरे दिन नीकी भांति सो तलि के समर्पै ॥ सो या भांति पातरि में एक मूठि दारि की भावना करते ॥ एक मूठि भात की ॥ एक मूठि खीर की ॥ साकादिक सब को नाम ले न्यारि न्यारि मूठि धरतें ॥ सो श्रीठाकुरजी सगरी सामग्री के भावसें आरोगते ॥ या प्रकार नित्य करें ॥ पाछें एक दिन एक वैष्णव श्रीआचार्यजी सों यह सब प्रकार कहे, जो महाराज पद्मनाभदास श्रीठाकुरजी कों

या भांति छोला समर्पत हे ॥ सो एक दिना श्रीआचार्यजी भोग समर्पवे की बिरियां पद्मनाभदास के घर पधारे ॥ सो पद्मनाभदास सों पूछे जो यह ढेरि न्यारि न्यारि क्यों हे ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही यह दारि हे यह भात हे ॥ यह खीर हे ॥ यह कढि हें ॥ यह साकादिक हे ॥ या प्रकार सब ढेरि कों सामग्री बताए ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभून को हृदय भरि आयो ॥ और जान्यो जो याके द्रव्यको संकोच हे तातें यों करत हे ॥ परंतु द्रव्य को उपाय नांहि करत हे। बडो धैर्य हे ॥ तातें याके उपर श्रीठाकुरजी बडे प्रसन्न हे ॥ पाछे श्रीआचार्यजी घर पधारे भोजन कीए ॥ और श्रीअक्काजी सों कहे ॥ जो पद्मनाभदास के घर द्रव्य को बहोत संकोच हे ॥ सो छोला नित्य श्रीठाकुरजी कों धरत हें ॥ तब श्रीअक्काजी ने संझा समय सगरी सामग्री सिद्ध करि (चुनबीन फटकके) एक वैष्णव के हाथ पठाई ॥ तब तुलसां ने पद्मनाभदास सों कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी के इहां सों सामग्री आई हे तब पद्मनाभदास ने कह्यो हम जांने अब हमको काढिवे को उपाइ किए हे ॥ जतन सों धरि राखो ॥ तब तुलसां ने धरि राखी ॥ पाछे दूसरे दिन फेरि सामग्रि सांझ कों श्रीअक्काजी ने पठाई ॥ तब तुलसां ने फेरि पद्मनाभदास सों कही ॥ तब पद्मनाभदास ने कही हमकों बेगि बिदा दिए ॥ तातें सवेरे चलेंगे ॥ अब यह धरि राखो ॥ पाछें प्रातःकाल भयो ॥ तब श्रीठाकुरजी

कों बेगि ही राजभोग सों पहोंचि ॥ श्रीमथुरानाथजी सों पूछे जो महाराज आपकों श्रीआचार्यजी के घर पधारिवे की इच्छा होइ ॥ तो उहां नाना प्रकार की सामग्री हे ॥ मेरे इहां तो जो समय जेसो प्राप्त होइ ॥ तेसों धरुंगो ॥ तब श्रीमथुरानाथजी ने कही मोकों तेरो कीयो भावत हे ॥ तातें जो धरेगो ॥ सो प्रीति तें अरोगूंगो ॥ तब अनोसर कराइ ॥ एक नाव भाडे करि लाए ॥ तुलसां सो कहे ॥ दोउ दिन को सीधो सामग्री हे ॥ सो श्रीअक्काजी को दे आव ॥ तब तुलसां सारी सामग्री श्रीआचार्यजी के यहां दे आई ॥

पाछें सगरी वस्तू नाव पर धरि श्रीमथुरानाथजी कों नाव पर पधराई श्रीआचार्यजी के पास बिदा होंन आए* ॥ ओर

---

*અહીં સાંપ્રદાયિક પરિપાટીનું જ્ઞાન થાય છે. અને તે આજ પણ પ્રાયઃ ગોસ્વામિ બાલકોમાં અવશ્ય જોવામાં આવે છે. તેમજ કેટલાક મહાનુભાવ વૈષ્ણવોમાં પણ આ પરિપાટી જોવામાં આવે છે, કોઈપણ બાલક અથવા વૈષ્ણવ અન્યત્ર પધારે ત્યારે પોતાના ઠાકોરજી અથવા જે સ્થલે રહેતા હોય ત્યાંના મુખ્ય સ્વરૂપો (શ્રીનાથજી આદિ) સ્વગુરુ અથવા કોઈપણ વલ્લભકુલ જે પોતાના ગામમાં બિરાજતા હોય તેમનાથી વિદાય થઈ (ભેટ આદિથી સન્મુખ થઈ) પછી પરદેશ જાય છે. કાંકરોલીના ઘરમાં આ રીત હજુ સુધી બહુજ સારી રીતે સચવાઈ રહી છે. જ્યારે કાંકરોલીના બાલકો પરદેશ પધારે છે ત્યારે પોતાના સેવ્ય શ્રીદ્વારકાનાથજી ઉપરાંત શ્રીનાથદ્વાર પધારી શ્રીનાથજી આદિ સર્વે સ્વરૂપોને સન્મુખ થઈ વિદા થઈ પછી પર-દેશ પધારે છે.

दंडवत करि बिनती कीनी जो महाराज आज्ञा होइ तो घर जाय ।। तब श्रीआचार्यजी पूछे ।। जो श्रीठाकुरजी कहां हें ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही महाराज नाव पर पधारे हें ॥ तब श्रीआचार्यजी बिदा कीये । (ओर) मनमें बिचारे ॥ जो ओंचको पद्मनाभदास क्यों गयो ? तब श्रीअक्काजी ने कही दोय दिन सिधा पठायो सो फेरि दे गए ।! तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो सीधो पठवायो तातें गयो ॥ नांही तो न जातो ॥ एसे श्रीआचार्यजी ने श्रीमुख तें कह्यो !!

पाछें पद्मनाभदास घर जाय सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

या वार्ता में यह जताए ।। जो गुरु द्रव्य श्रीठाकुरजी के द्रव्य तें हू भारी हे ।। तातें श्रीभागवत में (स्कं. ११ अ. १७ श्लोक २८) कहे हें ।। भिक्षा मांगि के लाई गुरु के आगे धरिए ॥ जो गुरु आज्ञा देई तो खाई ॥ नांहि तो भूख्यो रहि जाइ ॥ परंतु मांगे नांहि ॥ जो मांगि भिक्षा हू आज्ञा बिना नहि लीनी जाय तो गुरुको (द्रव्य) केसे लियो जाइ ? ॥ तातें श्रीआचार्यजी विवेकधैर्याश्रय में लिखे हैं ॥ जो "त्रिदु:ख सहनं धैर्य" ॥

जब मुगल ठाकुर ले गयो तब पद्मनाभदास चाहे तो भस्म करि डारें परि पद्मनाभदास (कष्ट) सहे ॥ आप सात दिन भूखे रहे ॥ वासों कछू न कहे ॥ (यह अलौकिक दु:ख कह्यो) यह लौकिक दू:ख जो बेटी परज्ञातकों दिनी ॥ यह ज्ञातमें निंदा सो सहे ॥ खानपानादिक को दु:ख

सो सहे ॥ परंतु धर्म न छोडे ॥ तातें श्रीगोकुलनाथजी श्रीसर्वोत्तमकी टीकामें लिखेहें ॥ कोटिन वैष्णवनमें दूर्लभ पद्मनाभदास सारिखे हें ॥ सो श्रीआचार्यजी के मारगको **श्रीआचार्यजीके स्वरूपको जानत हे** ॥×

॥ इति प्रसंग ७ समाप्त ॥

सो उन पद्मनाभदास की उपर श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सदा प्रसन्न रहते, तातें इनकी वार्ताको पार नांहि ॥ सो कहां तांई लिखिये ?

॥ वार्ता ४ ॥ **(वैष्णव ५)**

પ્રસંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્યઃ—

આ પ્રસંગ સં. ૧૫૮૩માં બનેલો છે. અને પદ્મનાભદાસને પણ આજ સમયમાં શ્રીઆચાર્યજીના નિગૂઢ સ્વરૂપનું જ્ઞાન પૂર્ણરૂપે થયું હોય એમ નીચેની પંક્તિઓથી જણાય છે.

श्री मुख के वचनामृत सुनिए। અહિં સુધાનું આકર્ષણ છે.

सो या भांति पातरि में एक मुट्ठी दारि की भावना करते।

× + ×

અહિં ભાવની સિદ્ધિ સ્પષ્ટ જણાય છે. કારણ કે તે તે ભાવનાની વસ્તુ તાદૃશ્ય થતી એમ આ વાકયથી સમજાય છે:—

सा श्रीठाकुरजी सगरी सामग्री के भावसों अरोगते ।

જ્યાં સુધી ભાવની પૂર્ણ સિદ્ધિ નથી થતી ત્યાં સુધી ત્રણે પ્રકારના દુઃખને સહન કરવાની શક્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી. જે પદ્મનાભદાસમાં પુત્ર આપવા તેમજ ૧૭૦૦૦ રૂપીઆ સહેજે

× શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપ (ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક)નું જ્ઞાનથયેલું છે. વિશેષ જુઓ પ્ર. ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય—

પ્રાપ્ત કરવાની શક્તિ હોય તે આવું કષ્ટ શું કામ વેઠે? મુગલને ત્યાં પણ અસહ્ય કષ્ટ વેઠયું, તે ધૈર્યની પરકાષ્ઠા છે. પરંતુ આ કષ્ટ જુદા પ્રકારનું છે. અહિંઆં તો શ્રીમથુરેશજીમાં શ્રીઆચાર્યજીની ભાવના તેમજ છોલામાં પણ ભાવાત્મક સામગ્રીની ભાવના એ, સમગ્ર ભાવાત્મક સ્વરૂપની પદ્મનાભદાસમાં સ્થિતિ સુદૃઢ છે તે સમજાય છે. (ભાવતું સ્વરૂપ જુઓ વાર્તા રહસ્ય) અને એ ભાવની પ્રાપ્તિ થયા પછી સ્વરૂપની બાહ્ય અપેક્ષા રહેતી નથી માટેજ પદ્મનાભદાસે શ્રી મથુરેશજીને પૂછ્યું **महाराज आपकों श्रीआचार्यजी के घर पधारिवे की इच्छा होई तो उहां नाना प्रकारकी सामग्री हे ॥**

જે ભાવમાં બાહ્ય સ્વરૂપની અપેક્ષા નથી, તે ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રૂપ જાણવો. (જુઓ દામો૦ હર૦ની વાર્તાના પ્ર. ૧૦નું પરિ. રહસ્ય) તે અહીં પદ્મનાભદાસને સિદ્ધ થયો. અને આ ધર્મી વિપ્રયોત્મક સ્વરૂપ ભાવરૂપ શ્રીઆચાર્યજી (કૃષ્ણાસ્ય) મહાન કષ્ટથી અનુભવાય છે. (જુઓ "વાર્તા-રહસ્ય" તથા શ્રીહરિ૦ કૃત૦ ભાવના) તેથી જ પદ્મનાભદાસ ત્રણે પ્રકારના દુઃખને સહન કરી શકયા. પરંતુ પદ્મનાભદાસને હજુ ભૂતલમાં સ્થિત રાખવાના હોવાથી શ્રીમથુરેશજી તેમની પાસેજ રહ્યા. ત્યાર પછીનો કેટલોક પ્રસંગ "ભાવસિંધુ" માં છે તે અવશ્ય જોવો તેમાં પદ્મનાભદાસની વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય સહેજે જણાઈ આવે છે.

તુલસાંની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ—

આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયરૂપ નિરોધાત્મક લીલાના યશ સ્વરૂપ છે. તેમાં વિશેષ કહેવું વ્યર્થ છે. કારણ કે યશનું સ્વરૂપ ત્યારેજ પ્રકટે છે જ્યારે કોઈ અસાધારણ કાર્ય સિદ્ધ થાય છે. તેજ પ્રકારે તુલસાંદ્વારા શ્રીઆચાર્યચરણના ભાવાત્મક પ્રભુ શ્રીગોપીજનવલ્લભે લોકવેદાતીત સ્વતંત્ર શરણમાર્ગરૂપ ભક્તિને આ વાર્તામાં

પ્રકટ કરી (જુઓ પ્રસંગ ૧નું રહસ્ય) અને તે અસાધારણ લોકવેદ વિરૂદ્ધ કાર્યની સિદ્ધી તેજ આ વાર્તાના યશ સ્વરૂપનું નિરૂપણ છે. લોક અને વેદમાં વિરૂદ્ધાચરણથી અપયશની પ્રાપ્તિ છે. કિંતુ આ સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગમાં લોક વેદ વિરૂદ્ધ આચાર હોવા છતાં યશ સ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણની સ્થિતિ હોવાથી તે સ્વયં (સ્વતંત્ર ભક્તિ) યશ સ્વરૂપ છે. અને તે આ વાર્તામાં નિરૂપેલી છે. માટેજ આ વાર્તા યશ સ્વરૂપ છે.

તુલસાંનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ—

પદ્મનાભદાસનું લગ્ન સં. ૧૫૩૪ માં એક કન્નોજીયા બ્રાહ્મણની કન્યા સાથે થયું હતું. પદ્મનાભદાસની સ્ત્રીની ઉમર તે વખતે બાર વર્ષની હતી જ્યારે પદ્મનાભદાસની ઉમર વર્ષ ૧૪ ની હતી. જ્યારે પદ્મનાભદાસ વર્ષ ૧૮ ના થયા ત્યારે સંવત ૧૫૩૮ માં તેમને ત્યાં એક પુત્રીનો જન્મ થયો. અને તેનું નામ પદ્મનાભદાસે તુલસાં રાખ્યું. આ તુલસાં રૂપ ગુણ અને શીલથી ખરેખર અદ્દ્ભુત હતી. તે નાનપણથી જ સ્વભાવે શાંત અને વિશ્વાસુ હતી. વળી તે ધર્મપરાયણ પણ હતી. તેની અત્યંત સાત્વિક વૃત્તિ જોઇને પદ્મનાભદાસ તેના ઉપર ખૂબ મમતા રાખતા. તુલસાં ઉપર પદ્મનાભદાસનો પ્રભાવ સારો હતો. તુલસાં પદ્મનાભદાસની આજ્ઞામાં સદૈવ રહેતી. અને પિતાના વાકયને ઈશ્વરવાકય સમજી તેનું સંપૂર્ણ પાલન કરતી. સં. ૧૫૪૯ માં તુલસાંનું લગ્ન જાતિના એક છોકરા સાથે કરવામાં આવેલું પરંતુ તે થોડાજ મહિનામાં હરિશરણ થઈ જવાથી તુલસાં બાલ વિધવા થઈ. તુલસાંને સંસારનું મુદ્દલે જ્ઞાન ન હતું. શ્રીભાગવત અહર્નિશ શ્રવણ કરતી. અને તેમાં જ તે નિમગ્ન રહેતી. સં. ૧૫૫૨ માં પદ્મનાભદાસ શ્રીઆચાર્યજીની શરણે આવ્યા તે વખતે પદ્મનાભદાસે પોતાના સમગ્ર કુટુંબને પણ સમર્પણ કરાવ્યું. તેજ સમયે તુલસાં પણ શરણે આવી. પછી સં. ૧૫૫૬ માં જ્યારે શ્રીમથુરેશજીને પદ્મ-

નાભદાસે ઘરમાં પધરાવ્યા જ્યારે તુલસાં પણ ભગવત્સેવામાં ધીરે ધીરે અનુકૂળ થઈ. થોડા સમયમાં તો તુલસાંની શ્રીમથુરેશજીમાં પૂર્ણ આસકિત થઈ. અને મથુરેશજીને જ પોતાનું સર્વસ્વ માનવા લાગી.

એક સમય તુલસાં અનોસરમાં શ્રીમથુરેશજીના સ્વરૂપનું સાંગોપાંગ ધ્યાન કરવા લાગી. જ્યારે તે શ્રીમથુરેશજીના સ્વરૂપ સુધાનું પૂર્ણ પાન હૃદયમાં એક ધ્યાનાવસ્થિત પણે કરી રહી હતી તે સમયે જોત જોતાંમાં શ્રીમથુરેશજી ધ્યાનમાંથી અંતર્ધ્યાન થયા. ત્યારે તુલસાંને મહાન્ વિરહ ભગવત્સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ અર્થે થયો. તે વિરહથી તુલસાંના હૃદયમાં સ્થિત શ્રીમથુરેશજીનું સ્વરૂપ બહાર આવિર્ભાવ પામ્યું.* અને તે સ્વરૂપે તેને સાક્ષાત્ થઈ દર્શન આપ્યું. તે સ્વરૂપ " છોટા મથુરેશજી " તરીકે ઓળખાય છે અને હાલ તે કોટામાં બિરાજે છે. પછી તુલસાં આ સ્વરૂપની સેવા કરવા લાગી.

(વ્રજ) સંવત ૧૫૮૨ માં શ્રીઆચાર્યજી વ્રજમાંથી અડેલ પધારતી સમયે કનોજ પધાર્યા ત્યારે આ સ્વરૂપને પુષ્ટ કરી તુલસાંને પધરાવી આપ્યું. તુલસાંએ ઘણા વર્ષ સુધી આ સ્વરૂપની સેવા કરી. સંવત ૧૬૩૦ માં જ્યારે પદ્મનાભદાસ લીલામાં પ્રાપ્ત થયા ત્યારે શ્રીગુસાંઈજી કનોજ પધાર્યા અને તુલસાંને ત્યાં મુકામ કર્યો. (જુઓ પ્ર. ૨) તુલસાં તે વખતે ૯૨ વર્ષની હતી. છતાં શ્રીઠાકોરજીની અને શ્રીગુસાંઈજીની સેવા પૂર્ણ ઉત્સાહ અને દૈન્ય યુકત પ્રેમથી કરતી. જેથી શ્રીગુસાંઈજી તેનો પ્રેમ અને દીનતા જોઈ ગદ્ગદ થઈ તુલસાંની ભૂરિ ભૂરિ પ્રસંશા કરતા. (વિશેષ જુઓ વાર્તા) તુલસાં લગભગ ૧૬૩૨ માં ભગવદ્ચરણારવિંદને પ્રાપ્ત થઇ.

---

* સરખાવો શ્રીઆચાર્યજીનો સિદ્ધાંતઃ—

क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ (निरोध० ल०)

अब श्री आचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास की बेटी तुलसां तिनकी वार्ता ओर ताको भाव लिख्यते ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैविक स्वरुप

ए लीलामें पद्मनाभदास की सखी हे ॥ पद्मनाभदास तो चंपकलता अष्टसखीनमें ॥ ओर चंपकलताकी सखी मणिकुंडला ॥ जेसें मणिकी ज्योतिकी कुंडाली चारो ओर फूले ॥ सो (यह) तुलसां सात्विक भक्त हे ॥ पद्मनाभदास की आज्ञामें तत्पर हे ॥

वार्ता प्रसंग १

एक दिन तुलसां के घर वैष्णव आयो ॥ सो श्रीआचार्य जी को सेवक हतो ॥ सो श्रीमथुरानाथजी के दरशन राजभोग आरती के किये ॥ तब तुलसां ने उह वैष्णव सें कह्यो ॥ जो उठो स्नान करो ॥ महाप्रसाद लेउ ॥ तब उह वैष्णव ने कह्यो जो हौंतो घर जाइ स्नान करूंगो ॥ तब तुलसां चुप करि रही ॥ पाछे वह वैष्णव उठि के अपने घर गयो ॥ तूलसां के मनमे बहोत खेद भयो ॥ जो मेरे घर तें वैष्णव भूख्यो गयो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको कारन यह महाप्रसादकी नांहि करी ॥ जोर ज्ञात व्योहारके लिए लीयो नांहीं ॥ सो तुलसां समज गई ॥ तातें आग्रह नांहीं कियो ॥ यह गौड ब्राह्मण हतो ओर लीलामें ललिताजीकी सखि हे ॥ सौरभा इनको नाम हे ॥ इनके अंगते अत्तर गुलाबकी सुगंध आवती ॥ यह वैष्णव ललिताजीकी सखि हे ॥ ओर

तुलसां चंपकलताकी सखि है ॥ ओर तुलसांके बस श्रीमथुरानाथजी हैं ॥ तातें यह वैष्णवनें महाप्रसाद न लियो ॥

जो ललिताजीकी आज्ञा बिना केसें लेउ ? ॥ तातें यह वैष्णव अपने घर चल्यो गयो ॥ तब तुलसांके मनमें खेद भयो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

तब मनमें आई जो ज्ञाति व्योहार के लिये सखडी न लीनी होइगी ॥ तो भलो परि सबेरे पूरी प्रसाद लिवाऊंगी ॥ पाछे मेदा छानि सिद्ध करि राख्यो ॥ पाछे सोइ रहो ॥ ता दिन तुलसां ने महाप्रसाद नांहि लियो ॥

पाछे रात्रिकों श्रीमथुरानाथजी ने तुलसां सों स्वप्न में कह्यो ॥ जो सवारे वा वैष्णव को महाप्रसाद लिवाइयो ॥ वह वैष्णव अपने घर महाप्रसाद न लेइगो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यामें यह जताए जो कालि उह वैष्णव महाप्रसाद लेइगो ॥ तू चिंता मति करे ॥ पाछें श्रीठाकुरजी नें उह वैष्णव को जताए ॥ जो तुलसां के इहां महाप्रसाद क्यों न लियो ? ॥ सवेरे लीजियो ॥ ललिताजी की हू आज्ञा है ॥ सो (तब) ललिताजी हू कहे ॥ तूलसां के इहां महाप्रसाद लीजो ॥ हमारे उनके भावमें भेद नांहि ॥

पाछे प्रातःकाल तुलसांने पूरी करी ॥ श्रीठाकुरजी कूँ जगाए ॥ सेवा सिंगार करन लागी ॥

वार्ता प्रसंग १ इतनेही में उह वैष्णव सवारे नहाय गुरु के श्रीठाकुरजी की सेवासें पहोंचि तुलसां के घर आयो । जब तुलसां भोग समर्पि के बाहर आई ॥ तब वा वैष्णवसों जय श्रीकृष्ण कीयो ॥ ओर तुलसां ने कह्यो ॥ जो उठो स्नान करो भगवद्स्मरण करो ॥ तब वा वैष्णवने कही मे स्नान करि अपरसहि में आयो हूं ॥ (तथा कहुं वार्ता मे यहू हे जो स्नान करि तिलक मुद्रा करि भगवद्स्मरण कीयो) समय भए तुलसांने राजभोग सरायो आरती करि ॥ वैष्णव ने दरसन कीयो॥ पाछे तुलसां श्रीठाकुरजी को अनोसर करि बाहर आई ॥ ओर वा वैष्णव को प्रसाद की पातर धरी ॥ तामें पुरी बुरा दहींकरा ? (दहींथरा) संधानो धर्यो ॥ ओर कह्यो जो प्रसाद लेउ ॥ तब वा वैष्णव ने कही जो यह नाहि लेऊंगो ॥ सखडी महाप्रसाद धरो,लेऊंगो ॥ तब तुलसां,ने कह्यो कछू संकोच मति करो यह तो ज्ञाति को व्योहार हे ॥ तब वैष्णवने कह्यो जो सो तो साँच ॥ पहले तो मेरे मनमें एसी ही ॥ परि अब तो आज्ञा भइ हे ॥ तातें अब तो सखडी महाप्रसाद लेऊंगो ॥ तब तुलसां(ने)सखरी अनसखरी दोऊ धरि वैष्णव के आगे, पाछे वा वैष्णव ने सखडी प्रसाद लीयो ॥ प्रसाद ले वह वैष्णव अपने घर गयो ॥ तब तुलसां मनमें बहोत प्रसन्न भई ॥

यामें यह जताए ॥ वैष्गव घर आवे ॥ तिनको यथाशक्ति सन्मान

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

करनो ॥ काहे ते श्रीभागवतमें कहे हे ॥ जा घरमें जलादिकनको हू सन्मान नांहि हे ॥ वाको घर सर्पको बिला सो जाननो ॥ सो तुलसांको वैष्णव पर एसो ममत्व हतो ॥

॥ इति प्रसंग १ समाप्त ॥

પ્રસંગ ૧નું સમાધાન અને રહસ્યઃ—

પૂર્વપક્ષીઃ—આ પ્રસંગથી કેટલોક મર્યાદી વર્ગ પંક્તિ ભેદ તોડતો હોય એમ અમને લાગે છે. કારણ કે આમાં તુલસાં અને આગંતુક વૈષ્ણવ બન્ને એક જ્ઞાતિના નહિં હોવા છતાં તેઓએ પંક્તિ-ભેદ તોડી સખડી મહાપ્રસાદ લીધો એ આ પ્રસંગમાં સ્પષ્ટ જ છે.

સિદ્ધાન્તીઃ—આપનું કહેવું યથાર્થ છે કે ઉપર્યુક્ત, બન્ને વૈષ્ણવો એ પંક્તિ-ભેદ તોડી સખડી મહાપ્રસાદ લીધો. પરંતુ સખડી મહા-પ્રસાદ ક્યારે અને કેમ લીધો તે પણ આ પ્રસંગમાં સ્પષ્ટ જ છે. જુઓ :—तब तुलसांने कह्या कछू संकोच मति करो ॥ यह तो ज्ञाति को ब्योहार हे ॥ (અહીં સ્વયં તુલસાં જ્ઞાતિ વ્યવહારનું સમર્થન કરે છે ઉલ્લંઘન કરતી નથીજ) तव वैष्णवने कह्यो जो सो तो साँच ॥ पहेले तो मेरे मनमें एसी ही ॥ (અહીં આગંતુક વૈષ્ણવે પણ જ્ઞાતિ વ્યવહારને માન્ય કરેલો સ્પષ્ટજ છે) परि अब तो आज्ञा भई हे ॥ (અહીં સખડી મહાપ્રસાદ લેવાનું કારણ બતાવ્યું અને ભગ-વદાજ્ઞા લોક વ્યવહારથી શ્રેષ્ઠ છે તે સિદ્ધ કર્યું છે) तातें अब तो सखडी महाप्रसाद लेउंगो ॥

આ પંક્તિઓથી આપ જાણી શકો છો કે આહિં તુલસાં અને આગંતુક વૈષ્ણવની જ્ઞાતિ વ્યવહાર તોડવાની કે મર્યાદા ઉલ્લંઘન કરવાની મુદ્દલે ઇચ્છા ન હતી. પરંતુ કેવલ ભગવદાજ્ઞાથી જ તેઓએ વ્યવહારને તોડયો. આ જ્ઞાતિ વ્યવહાર લોક સિદ્ધજ હતો. વેદસિદ્ધ પણ ન હતો. કારણ કે બન્ને બ્રાહ્મણ જ હતાં. ફક્ત આચાર વિચારને લઇને જ તેઓમાં ભિન્નતા છે. એટલે ભગવદાજ્ઞા આગલ આ લોકવ્યવહાર ટકી શકે નહિ જ. જ્યાં પ્રત્યક્ષ રૂપે (કોઈ પણ રીતે) વિશેષ પ્રકારની ભગવદાજ્ઞા થાય ત્યાં પરોક્ષાત્મક સામાન્ય પ્રકારની વેદ આજ્ઞા, અને અન્ય સર્વ (મર્યાદા) નો ત્યાગ કહેલો છે ત્યાં બિચારા લોકવ્યવહારનું મહત્ત્વ તો હોયજ કયાંથી? જુઓ શ્રીઆચાર્યચરણ શી આજ્ઞા કરે છે?

“सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया।” (नवरत्न)

“विशेषतश्चेदाज्ञा स्याद् अंतःकरणगोचरः॥

तदा विशेष गत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दैहिकात्’ (वि० धै० आ०)

પુષ્ટિમાર્ગમાં ભગવદાજ્ઞા જ મુખ્ય પ્રમાણ રૂપ (प्रमाणंभगवद्वाक्यैः) માનેલી છે. તેના અભાવમાં ગુરૂએ બતાવેલી સેવાની મર્યાદા (રીત) મુખ્ય છે.

આ સેવાની મર્યાદામાં યથાધિકાર લોક વેદનો સમાવેશ થઇ જ જાય છે.

પૂર્વપક્ષી:—આવા પ્રકારની ભગવદાજ્ઞા થવાનું કારણ શું?

સિદ્ધાન્તી:—આવા પ્રકારની ભગવદાજ્ઞામાં તુલસાંનો શુદ્ધ પ્રેમજ એક માત્ર કારણભૂત છે. લોક અને વેદમાં પણ એ સ્પષ્ટજ છે કે ભોજનના સમયે યદિ કોઈ અતિથી પોતાના ઘરે આવે તો તેને યથાશક્તિ સત્કાર અવશ્ય કરવો, એ ગૃહસ્થાશ્રમી માત્રનું કર્તવ્ય છે, અન્યથા તે ગૃહસ્થાશ્રમી (યદિ વિરક્ત પુરૂષ પણ ઘર કરીને રહેતો હોય તો તેને પણ ગૃહસ્થિત હોવાથી આ ધર્મ લાગુ પડે છે) પતિત થાય છે.

આવા પ્રકારે તુલસાં ગૃહસ્થિત ઉપરાંત વૈષ્ણવો ઉપર પરમ પ્રેમ રાખતી હતી. અને તે પ્રેમમાં પદ્મનાભદાસની કૃપાજ કારણભૂત હતી (જુઓ પદ્મનાભદાસની વાર્તા પ્રસંગ ૪)

સર્વેશ્વર સર્વાત્મા પ્રભુ ઉપર પરમ વિશુદ્ધ નિષ્કામ અને પૂર્ણ પ્રેમ થયો ત્યારે જ જાણવો જ્યારે પ્રભુના સંબંધવાળી તમામ વસ્તુ (વેષ, ચિહ્ન, ભાષા, સેવોપયોગી પદાર્થ અને સેવકો આદિ) ઉપર પ્રભુવત્ સ્નેહ સહજ થાય.* (બનાવટી અથવા કથન માત્ર નહિ) તો વૈષ્ણવો ઉપર પ્રેમ હોય તેમાં આશ્ચર્ય શું?

માટેજ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ પણ વૈષ્ણવોમાં પોતાપણાનું મમત્વ કરવું તેને માટે આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે:—

स्वकीयता तदीयेषु तद्भिन्ने भिन्नता मता ॥ १८ ॥ (शि० १)

વળી વૈષ્ણવો ઉપર કેવો ભાવ હોવો જોઇએ તે માટે આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે:—

तदीयेषु च तद्बुद्ध्या **वरः स्थाप्योविशेषतः** ।
यथा दूतीषु भवति विषयिणां मतिस्तथा ॥ १९ ॥ (शि० १)

આવાં તો ઘણાં વાક્યો સર્વ ભક્તિમાર્ગના ગ્રન્થોમાં **સિદ્ધાન્ત રૂપે** પ્રાપ્ત છે (તે અમે દયા ભવૈયાની અને અન્ય વાર્તાઓમાં આપીશું) એટલે દરેક વૈષ્ણવોનું સહજ કર્તવ્ય છે કે પોતાને ત્યાં સમય ઉપર આવેલા વૈષ્ણવનું (વેશધારી યા નામધારીનું પણ) યથા શક્તિ સાદર શ્રદ્ધાપૂર્વક સન્માન કરેજ (કિંતુ સંગ તો વિચારીને જ કરવો) તે સિદ્ધાંતમાં નિચોડરૂપ એક દોહો અત્યંત ઉપયોગી હોવાથી અહિં આપ્યો છે:—

हरिजन आवे द्वारपें हसि नमावे शीश ।
वाके मन की वे जाने मेरे मन जगदीश ॥ (तुलसी)

---

* લોકોમાં પણ એક ક્ષુદ્ર વસ્તુના પ્રેમનું દ્રષ્ટાંત મોજુદ છે. અને તે મજનું નું. મજનું લોકમાં એટલો ઉત્કૃષ્ટ પ્રેમી થયો કે લેલાંના ગામના કુત્તા ઉપર પણ લેલાંવત્ પ્યાર કર્યો. એ શુદ્ધ પ્રેમની સહજ નિશાની છે.

જ્યારે આ કર્તવ્ય સર્વ સામાન્ય ને માટે પણ છે તો પરમ ભાગવત શુદ્ધ અને નિર્દોષ બ્રહ્મ દ્રષ્ટિવાળી પુર્ણ પ્રેમી તુલસાંને માટે હોય તેમાં આશ્ચર્ય શું ?

આથી જ્યારે આગંતુક વૈષ્ણવ સમય ઉપર (અનસખડી નહિ હોવાના કારણુથી) પોતાના ઘરમાંથી વિમુખ ગયો ત્યારે તુલસાંને અત્યંત ક્લેશ થયો. અને તે સ્વાભાવિક છે. “ भक्त विरह कातर करुणामय डोलत पाछें लागे ” (सूर०) એવા કારૂણીક પ્રભુથી તે ક્લેશ સહ્યો ન ગયો. જેથી બન્નેને આજ્ઞા કરી. ભગવદાજ્ઞા થવાનું આ કારણ છે.

પૂર્વપક્ષીઃ—સખડી મહાપ્રસાદ જ લેવાની ભગવદાજ્ઞા થવાનું કારણ શું ? અનસખડી પ્રસાદથી પણ વૈષ્ણવનું સન્માન થઈ શકતું હતું. અને તેથી લોકવ્યવહાર પણ સચવાતો હતો.

સિદ્ધાન્તીઃ—આપનું કહેવું ઉચિત છે. પરંતુ સ્વયં શ્રીકૃષ્ણે પ્રકટાવેલા લોકવેદાતીત નિર્ગુણ ભક્તિમાર્ગનું સ્વરૂપ સમજાવવાને અને લોકમાં પણ તેની ઉત્કૃષ્ટતા સિદ્ધ કરવાને અર્થેજ આવા પ્રકારની (લોકવેદ વિરૂદ્ધ) સ્વતંત્ર આજ્ઞાઓ ભક્તોના ચરિત્રામાં તેમજ ભક્તિમાર્ગના સિદ્ધાન્તાત્મક પ્રસ્થાન ચતુષ્ટય આદિ ગ્રન્થોમાં પણ જોવામાં આવે છે.

દ્દષ્ટાંત રૂપેઃ—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥ (गीता)

ગીતામાં શ્રીકૃષ્ણે બે પ્રકારના શરણ માર્ગ અર્જુન પ્રતિ કહેલા છે. એકથી ચાર અધ્યાય સુધીમાં જ્યાં જ્યાં શરણનું વર્ણન છે, ત્યાં ત્યાં વેદોક્ત શરણનો પ્રકાર કહેલો છે. અને પાંચમા અધ્યાયથી જેમ જેમ અર્જુનને શ્રીકૃષ્ણ પ્રતિ દ્રઢ વિશ્વાસ થતો ગયો તેમ તેમ તેને સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક શરણ માર્ગનો ઉપદેશ કરેલો છે. વેદોક્ત

શરણમાર્ગ એ પ્રમાણુ સ્વરૂપ છે અને તેની શક્તિ પણ મર્યાદિત છે. જ્યારે સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક (જેમાં શ્રીકૃષ્ણજ સ્વયં શરણ રૂપ હોય તે) શરણમાર્ગ પૂર્ણ સામર્થ્ય યુક્ત અને અમર્યાદિત છે. આ પ્રમેયાત્મક શરણમાર્ગ સ્વયં ફલ સ્વરૂપ છે. અને તે શ્રીમદાચાર્યચરણે શ્રીકૃષ્ણના હાર્દને જાણી આ વિપરીત આચાર વિચાર યુક્ત કલિકાલના જીવોના ઉદ્ધારાર્થે તેનો ઉપદેશ કર્યો. તેથી શ્રીગુસાંઈજીએ શ્રીઆચાર્યજીનું નામ સર્વોત્તમસ્તોત્રમાં "पृथक् शरण मार्गोपदेष्टा" યોજ્યું છે. (વિશેષ આ પ્રસંગ શ્લોકો દ્વારા સમજાવીને આગલ ઉપર વિવેચન કરીશું)

ઉપર્યુક્ત શ્લોકમાં શ્રીકૃષ્ણે પૂર્ણ રૂપે સ્વતંત્ર શરણમાર્ગ અર્જુન આગલ પ્રકટ કરી દીધો છે. તે આ પ્રકારેઃ--

સર્વ ધર્મો (લોકવેદાદિના) ને છોડવાથી થતું જે પાપ તેમાંથી હું તને (અર્જુનને) મુક્ત કરીશ. અહીં પોતાના સ્વરૂપ બલનો પ્રયોગ બતાવ્યો છે. એટલે કર્તું અકર્તું અન્યથા કર્તુંમ્ સર્વ સામર્થ્યવાન શ્રીકૃષ્ણના શરણસ્થ જીવને લોકવેદાદીનાં શાસનો લાગુ પડતાં જ નથી. એટલે ત્યાં (સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક શરણમાર્ગમાં) તેમાં (વેદાદિમાં) કહેલા દોષોની જરા પણ સંભાવના રહેતી નથી જ. આનું નામજ પુષ્ટિ (સ્વતંત્ર) શરણ માર્ગ છે. જેમાં શ્રીકૃષ્ણજ એક માત્ર રક્ષક છે. આ માર્ગમાં દ્રઢતાપૂર્વક જેઓ સ્થિર છે, અથવા પ્રભુ જેને સ્વયં લોક અને વેદમાં અસ્વાસ્થ્ય પ્રાપ્ત કરાવીને સ્થિત કરે છે, તેને વેદાદિના શાસનની જરાય અપેક્ષા રહેતી નથી જ (જે પુરૂષો પુષ્ટિ ભક્તિમાં દ્રઢ નિશ્ચયવાળા નથી તેઓ માટે વેદાદિમાં કહેલા સાધન ધર્મોની અત્યંત અપેક્ષા છે. એ નિશ્ચે સમજવું) ઉપરોક્ત સિદ્ધાંતને નારદ ભક્તિ સૂત્રોની પણ પુષ્ટિ છે. (જુઓ સૂત્ર ૧૪ મું પદ્મનાભદાસની વાર્તાના પ્રસંગ ૪ ની નોંધ)

આવો સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક ભક્તિમાર્ગ લોકમાં પ્રકટ કરી તેની

ઉત્કૃષ્ટતા જણાવવાને અર્થેંજ આવા પ્રકારની (લોકવેદ વિરૂદ્ધ) આજ્ઞા સ્વતંત્ર રૂપે શ્રીહરિએ કરી.

હવે આ પ્રસંગનું સૂક્ષ્મ રહસ્ય નિરૂપીએ છીએઃ—

આ પ્રસંગમાં લોકવ્યવહાર સાચવીને તેથી (પ્રતિબંધાદિથી) ઉત્પન્ન થતા ભગવદ્‌વિષયક તાપકલેશનું અનુસરણ કેવી રીતે (દૈન્યતાપૂર્વક) કરવું ? તે તુલસાંએ સ્વયં દૈવીજનોના હિતાર્થ કરી બતાવ્યું છે.

જ્ઞાતિ વ્યવહારનો વિચાર કરીને જ તુલસાંએ તે વૈષ્ણવને જરાયે પ્રસાદ લેવાનો આગ્રહ ન કર્યો. પરંતુ તેથી (આજ કાલની માફક) હૃદયમાં સંતોષ કરી તુલસાં બેસી પણ ન રહી. પોતાના ઘરમાં સમય ઉપર આવેલા પોતાના પરમ પ્રિય પ્રભુના સંબંધવાળા વૈષ્ણવનો પોતાના તરફથી સત્કાર ન થયો તેનો તુલસાંને અત્યંત તાપ થયો. તેના ફલ સ્વરૂપ શ્રીપ્રભુએ તેની આર્તિ પૂર્ણ કરી.

એટલે તાપાત્મક સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીની ધારણા માત્રથી જ શ્રીઠાકુરજી લીલા પરિકર સહિત તુલસાંને સાધન રૂપ થયા (આનું નામજ પુષ્ટિમાર્ગ અથવા સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગ, આ માર્ગમાં શ્રીકૃષ્ણજ પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલરૂપ હોવાથી વેદાદિ પ્રમાણોની અપેક્ષા હોતી નથીજ.) અને તે તાપાત્મક શ્રીવલ્લભ લીલામધ્યપાતી હોવાથી સર્વ લીલા આપોઆપ સાનુકૂળ બને છે.

આવા સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગમાં શ્રીહરિ પણ બાધ કરવાને સમર્થ નથી તો વેદાદિ તો બાધ કેમ જ કરી શકે ? (हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ॥)

આ પ્રકારે આ પ્રસંગમાં સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગનું નિરૂપણ કર્યું. આ પ્રસંગમાં શ્રીઆચાર્યજીનું તાપાત્મક સ્વરૂપ કહ્યું. (જુઓ " વાર્તા–રહસ્ય. ")

बहुरि एक समे× तुलसां के घर श्रीगुसांईजी पधारे ॥ तब तुलसां ने बहुत भली भांति सों सेवा कीनी ॥ श्रीठाकुरजी तें अधिक जानि के सेवा कीनी ॥ तब श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न भए ॥ ओर एक दिन श्रीगुसांईजी भोजन करि के पोढे हते ॥ तुलसां भगवद्वार्ता करि श्रीगुसांईजीकों प्रसन्न कीए ॥ तब तुलसां सों अति प्रसन्नता में भगवद्वार्ता करत में श्रीगुसांईजी ने श्रीमुख सों कह्यो ॥ जो पद्मनाभदास की संतति एसीही चाहिए ॥

वार्ता प्रसंग २

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

याको अर्थ यह जो लीलामें सखी हे ॥ एसी क्यों न होई ॥ तहां श्रीगुसांईजी चंद्रावलीजी रूप हे ॥ सो इनको परकीया भाव श्रीठाकुरजी सों हे ॥ तातें हास्य बहोत प्रिय हे ॥ सो कटाक्ष के वचन पूछे जो श्रीठाकुरजी अपने स्वरूपानंद को अनुभव जतावत हे ? तुम हू तो सखी हो ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा करि के बस कीए ॥ तातें हमारे साझेमें तुमहू हो ॥ या प्रकार व्यंगके वचन कहे ॥ परंतु तुलसां शुद्ध सात्विक हे ॥ इनकों कटाक्ष बहोत नांहि हे ॥ सुधी हे ॥

पाछे श्रीगुसांईजी ने तुलसां सों पूछी जो श्रीठाकुरजी सानुभावता जतावत हें ? ॥ तब तुलसांने कह्यो ॥ जो महाराज अ[illegible] तो (हम) पेट भरि खइयत हें ओर नींद

वार्ता प्र. २ शुरु

× संवत १६३०-३१मां जुओ। तुलसां नो शेष भौतिक इतिहास.

भरि सोइयत हें । परि श्री आचार्यजी के ग्रन्थ को पाठ नित्य करियत हें ॥ तब श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पेट भरिके खइयत हें ॥ नींद भरिके सोइयत हें ॥ सो यह जो जितनो रस हमारे पेटमें समात हे ॥ जेसें हम पात्र हें ॥ तितनो श्रीठाकुरजी अनुभव जतावत हें ॥ तातें श्रीठाकुरजीकी संग नींद-भरि सोइयत हें ॥ काहेते हमारो स्वकीया भाव हे ॥ तातें सखी हें ॥ चिंता नांहि हे ॥ मुख्य अर्थ यह ॥

ओर गुरु भावसों यह अर्थ जो महाराज हम अनेक जन्म श्रीठाकु-रजीसों बिछुरिके पायो ॥ परंतु काहू योनिमें पेट नांहि भर्यो ॥ ओर सुख सों नींद नांहि आई ॥ अब आपु कृपा करिके सरन लिए ॥ सो अबके जनममें पेट हू भर्यो ॥ ओर श्रीठाकुरजीको एक आश्रय करिकें सोएहू ॥ सगरे जनम अविद्या करि दुःखमें बिताए ॥ एक अर्थ यह ॥

ओर दैन्य पक्षमें यह जो हमकों कहा अनुभव करावें ॥ पेट भरिके खइयत हें ॥ नींद भरिके सोइयत हें ॥ जेसे पशुको खाइवेको ओर सोइ-वेको काम ॥ ओर काम परवसतें कोई लादे जो मारे तब करे ॥ तेसें हमहू प्रीति खानपानमें हे ॥ सेवा लोगनकी निंदा भए ते है ॥ जो बडे पद्मनाभदासकी संतति सेवा नांहि करत ॥ या प्रकार लोगनकी प्रतिष्ठा अर्थ ॥ तातें हमकों कहा अनुभव जतावें ? ॥ श्रीसूरदासजीनें गायो हे ॥ "सूर अधमकी कोन चलावें उदर भरे अरु सोये" ॥ एसे अधम जो हे ॥ तिनकी बात नांहि करनी ॥ जो सरीरको सुख चाहत हे ॥ या प्रकारके हम हें ॥ परंतु श्रीआचार्यजी के ग्रन्थको पाठ सदा करियत हें ॥

ताको भाव यह जो एसेहू अधमको श्रीआचार्यजीके ग्रन्थ मात्र कहे ॥ भावहू न जानत होइ तो पाठहीके किए ते श्रीठाकुरजी सगरो अनुभव जतावे ॥ तातें यह कहि अपनो पुरुषारथ नाहिं कहे ॥ श्रीआचार्यजीको प्रताप कहे ॥ जो उनके ग्रन्थके पाटतें कृपा प्रभू करत हें ॥ या प्रकार प्रेममें लपेटे वचन तुलसांके सुनिके श्रीगुसांइजीको हृदय भरि आयो ॥

॥ इति प्रसंग २ समाप्त ॥

एसी भगवदीय तुलसां हती ॥ जिनके उपर श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते ॥ तातें इनकी वार्ताको पार नांही ॥ सो कहां तांई लिखिये ॥

यह वार्ता ४की अन्तर्गत हे तातें वार्ता ४ (९६ मध्ये । वैष्णव ७ भए ॥) (६ठे वैष्णव जिनने तुलसांके यहां प्रसाद लीयो सो)

પારવતીની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ-

આ વાર્તા શ્રીધર્મરૂપ છે.

શ્રીનું સ્વરૂપ આગળ કહ્યા પ્રમાણે (જુઓ કૃષ્ણદાસ મેઘન અને પદ્મનાભદાસની વાર્તા) “ श्रियोहि परमाकाष्ठा ” इति वचनात् સ્વામીની આજ્ઞા ઉપર પરમ વિશ્વાસ છે.

અહીં પણ પારવતીએ શ્રીગુસાંઈજીની આજ્ઞા ઉપર પૂર્ણ વિશ્વાસ રાખી શ્વેતકુષ્ઠથી થતી ગ્લાનીને સર્વાંશે ત્યાગ કર્યો અને તે ભગવત્ સેવામાં સ્થિત રહી. જુઓ વાર્તાના આ શબ્દોઃ—

जो प्रभूनकी (श्रीगुसांईजी की) आज्ञा प्रमाण चलती ।

પારવતી ને શ્રીગુસાંઈજી ઉપર દૃઢ વિશ્વાસ હતો માટે અન્ય ઔષધિ આદિ કોઈ પણ ઉપાય ન કરતાં શ્રીગુસાંઈજી ઉપરજ

વિશ્વાસ રાખી શ્રીગુસાંઇજીને પત્રદ્વારા પોતાની ગ્લાનીનું નિવેદન કર્યું (રોગનું નહીં)

જુઓ આ શબ્દો:—

मेरी बिनती तुम श्रीगुसांइजी सों करियो ॥ मेरी देहको यह प्रकार भयो है ॥ तातें मोकों सेवा करत पाक करत बहुत ग्लानि आवत हें ॥

અને શ્રીગુસાંઇજીની કૃપાથીજ હું સારી થઈ છું. એવો દ્રઢ વિશ્વાસ પારવતીને હતો.

જુઓ આ શબ્દો:—तामें लिखि जो महाराज के प्रतापतें नीकी भई हों ॥

આ બધા શબ્દોથી એ સિદ્ધ થાય છે કે પારવતી ને શ્રીગુસાંઇજી ઉપર અતુલીત શ્રદ્ધા હતી. અને તે સ્વામી પ્રત્યેની શ્રદ્ધા-વિશ્વાસ જ–શ્રીધર્મરૂપ છે.

પૂર્વપક્ષીઃ—

તુલસાં, પારવતી, અને રઘુનાથદાસ ત્રણે શ્રીઆચાર્યજીના સેવકો હોવા છતાં શ્રીગુસાંઇજી દ્વારા તેમના ઉપર ભગવત્કૃપા કેમ થઈ ?

સિદ્ધાન્તીઃ—પ્રશ્ન યથાર્થ છે. આ ત્રણે ભક્તો સ્વકીય ભાવવાળા છે, એટલે શ્રીઆચાર્યજીએ તેમને શરણે લીધા. પરન્તુ તેઓ ક્રિયા પ્રાધાન્ય બાહ્ય ધર્મરૂપ સંયોગ રસવાળા હોવાથી સગુણ છે. (જુઓ નિર્ગુણ–સગુણ ભેદ "વાર્તા માહાત્મ્ય") એટલે તેઓને પરકીય ભાવદ્વારા સ્વકીયત્વની વૃદ્ધી છે. તેથી શ્રીગુસાંઇજી પરકીય ભાવરૂપ શ્રીચંદ્રાવલીજીનું સ્વરૂપ હોવાથી તેમના દ્વારા આ ભક્તોના ભાવનું પોષણ છે. (વિશેષ શ્રીગુસાંઇજીના સ્વરૂપનો પ્રકાર વાર્તા ભાગરમાં આપવામાં આવશે ત્યાં જોવું.)

પારવતીનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ-

પદ્મનાભદાસ ને કુલ ત્રણ સંતતી ક્રમશઃ તુલસાં, જનાર્દન, અને નાની પુત્રી યમુના હતી. જનાર્દનનો જન્મ સં. ૧૫૪૦માં તુલસાંના જન્મથી બે વર્ષ પછી થયો હતો. અને નાની પુત્રી યમુનાનો જન્મ સંવત ૧૫૪૬માં થયો હતો.

જનાર્દન જ્યારે અગ્યાર વર્ષનો થયો ત્યારે તેનું લગ્ન એક જ્ઞાતિની દસ વર્ષની સુન્દર રૂપવતી પારવતી નામની કન્યા સાથે પદ્મનાભદાસે કર્યું.

જનાર્દન સંવત ૧૫૬૦માં વીસ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને ત્યાં એક રઘુનાથ નામક પુત્રનો જન્મ થયો. તે પુત્ર પાછળથી ઘણોજ વિદ્વાન અને સુપ્રસિદ્ધ થયો. (જુઓ વાર્તા)

ભાગ્યવશાત્ જનાર્દન સં૦ ૧૫૬૩માં હરિશરણ થયો. તે વખતે રઘુનાથદાસનું લાલન પાલન તેની માતા પારવતી પૂર્ણ પ્રેમથી કરતી.

પારવતી એક દ્રવ્યવાન પિતાની પુત્રી હોવાથી તેણીને દ્રવ્યની મુસ્કેલી નડી નહિં. તેણીએ રઘુનાથદાસને કાશી મોકલી ભણાવ્યો.

પારવતી પદ્મનાભદાસના હરિશરણ થયા પછી ભગવદ્‌સેવામાં તુલસાંને અનુકૂળ થઈ. અને શ્રીમથુરેશજીની સેવા અત્યંત પ્રેમથી કરવા લાગી. જેના પરિણામે શ્રીમથુરેશજી એને સાનુભાવ થયા. શ્રીમથુરેશજીએ તુલસાંની ભગવદ્‌લીલા પ્રાપ્તિ પછી લગભગ ૩ વર્ષ પારવતી પાસે સ્વતંત્રરૂપે સેવા કરાવી. સં. ૧૬૩૫ લગભગ પારવતીની દેહ છુટી.

अब पद्मनाभदास के बेटा ताकी बहू पारवती तिनकी वार्ता ॥ ओर ताको भाव ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैविक स्वरुप

ए राजसी भक्त हे ॥ पद्मनाभदास तो चंपकलता अष्ट सखीन में तिनकी सखी सुचरिता सो इहां पुरुषोत्तमदास मेहरा क्षत्री भए॥ सो सुन्दर चरित्र सबकों सुखरूप कार्य के करता हें ॥ ए ओर सुचरिता की सखी रुपविलासिनी हे ॥ सो यहां पारवती भई ॥ सो लीला में पारवती को रूप बहोत सुन्दर हतो ॥ सो राजसी हे ॥ अपनो रूप बहोत संवारती ॥ सो रूंप के गर्व तें लीला सें गिरी*

वार्ता प्रसंग १

सो पारवती श्रीठाकुरजीकी सेवा नीकी भांति सों करती ॥ पुरुषोत्तमदास मेहरा इनको नीकी भांति सों जानते सो जब कन्नोज जातें तब याके घर उतरते ॥ सो एक समें पुरुषोत्तमदास मेहरा कन्नोज आइ अडेल श्रीगुसांईजी के दरशन कों गए ॥ (लीला के गर्व की निवृत्ती के अर्थ) यहां पारवती के हाथ पांच सुफेद भए ॥ तब ग्लानि दैन्यता भई ॥ तब अपने पूर्व स्वरूपकी हू (लीला के स्वरूप की) खबरि

* પારવતી પુષ્ટપુષ્ટિ જીવ છે. એટલે તેની ગણત્રી મિશ્રપુષ્ટિમાં છે તે જીવો (મિશ્રપુષ્ટિ) શ્રાપાદિકથી ભૂતલમાં આવે છે. " आसक्तो भगवानेव शापं दापयति " (પુષ્ટિ પ્રવાહ મર્યાદા.)

परी ॥ जो में पुरुषोत्तमदास की सखी हों ॥ मेरो काम इन-द्वारा होयगो ॥ तब पत्र पुरुषोत्तमदास कों लिख्यो जो मेरी बिनती तुम श्रीगुसांईजी सों करियो ॥ मेरी देह को यह प्रकार भयो हे ॥ तातें मोकों सेवा करत पाक करत बहुत ग्लानि आवति हें ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको आशय यह हे जो में श्रीठाकुरजी सों रूप को गर्व कीयो (लीला में) ताको फल पायो ॥ अब कब कृपा करेंगे सो श्रीगुसांईजी सों बिनती करि लिखियो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

यह पत्र पठायो ॥ एक मोहर श्रीगुसांईजी कों भेट पठाई ॥ सो पत्र पुरुषोत्तमदास ने श्रीगुसांईजी को बांचि सुनायो ॥ मोहोर आगे राखी ॥ बिनती कीनी ॥ तब श्रीगुसांईजी पुरुषोत्तमदास कों कहे ॥ जो दिन दोई चारि में कहूंगो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो याते जो लीला में रूप को गर्व ता अपराध तें (यह) भयो ॥ तथा ओरहू कोई अपराध न होइ ॥ सो बिचारे ॥ तब ओर अपराध नाहिं देखे ॥

---

* पुष्टया विमिश्राः सर्वज्ञाः (श्रीआचार्यचरण.)

फेर तीन दिन पाछे श्रीगुसांईजी ने पुरुषोत्तमदास सों कही ॥ जो पारवती को पत्र लिखो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु जो थोरे दिन में शरीर को भोग निवृत्त होइगो ॥

सेवा में ग्लानि मति करियो ॥ श्रीठाकुरजी थोरेसे दिन में तेरो रोग निवृत्त करेंगे ॥ तब पुरुषोत्तमदास मेहरा ने पारवती को पत्र लिख्यो ॥

तामें श्रीगुसांईजी के श्रीमुख के बचन कहे सो लिखि पठाए ॥ सो पत्र पारवती के पास पहोंच्यो॥ सो पत्र बांचि के पारवती प्रसन्नता सों सेवा करन लागी ॥ सेवा करत ग्लानि मनमें न लावे ॥ पाछे महिना तीन चारि में हाथ पांव नीके भए॥

तब पारवती बहोत प्रसन्नतासों सेवा करन लागी ॥ तब फेर श्रीगुसांईजी कों पत्र लिखि, पुरुषोत्तमदास मेहरा की पास पठायो ॥ तामें लिखी जो महाराज के प्रतापतें नीकी भई हों ॥ ओर भेट पठाई ॥ सो पुरुषोत्तमदास मेहराने श्रीगुसांईजी को बांचि सुनायो ॥ तब श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भए॥ सो पारवती एसी भगवदीय हती ॥ जो प्रभून की आज्ञा प्रमाण चलती+ तातें श्रीगुसांईजी सदा इनके उपर प्रसन्न रहते ॥ तातें इनकी वार्ता को पार नांही ॥ सो कहां तांई लिखिये ॥

यह वार्ता ४ की अन्तर्गत हे तातें वार्ता ४ (९६ मध्ये। वैष्णव ९ भये) (पुरुषोत्तमदास मेहरा समेत)

+ श्री धर्म देखो पारवतीकी वार्ताको रहस्य.

રઘુનાથદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ–

આ વાર્તા જ્ઞાન ધર્મ રૂપ છે.

પુષ્ટિ ધર્મના જ્ઞાનરૂપ મારગની પ્રણાલીકા, સિદ્ધાન્તરહસ્ય, કૃષ્ણાશ્રય, નવરત્ન, અને સેવાફલ છે. આમાં સમગ્ર પુષ્ટિમાર્ગના ફલાત્મક જ્ઞાનનું નિરૂપણ છે અને તે શ્રીગુસાંઈજીએ રઘુનાથદાસના હૃદયમાં સ્થાપ્યું. (જુઓ વાર્તા)

જ્ઞાની પુરૂષો સેવા કરી શકતા નથી તેમ અહિં પણ રઘુનાથદાસથી (ક્રિયાત્મક) સેવા થઈ શકી નહિ.

જ્ઞાનધર્મરૂપ શ્રી યદુનાથજીની માફક રઘુનાથદાસે પણ સ્વતંત્ર પણે સેવા કરી નથી.

રઘુનાથદાસ શાસ્ત્ર અને સાંપ્રદાયિક સિદ્ધાંતોના અવલોકનમાં જ જીવન પર્યંત મગ્ન રહ્યા.

રઘુનાથદાસ નો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ–

રઘુનાથદાસના પિતાનું નામ જનાર્દન અને માતાનું નામ પારવતી હતું. તેનો જન્મ ૧૫૬૦માં થયો હતો. પારવતી એ નાનપણથી જ પાલનપોષણ કરી તેને મોટો કર્યો હતો. તેનો પિતા જનાર્દન રઘુનાથદાસને બહુ જ નાની ઉમરનો છોડી પરલોક વાસી થયો હતો. જ્યારે રઘુનાથદાસ વીસ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને વિશેષ શાસ્ત્રીય અભ્યાસાર્થે પારવતીએ તેના મામાની સાથે કાશી મોકલ્યો. ત્યાં તે લગભગ વીસેક વર્ષ રહ્યો અને શાસ્ત્રનું ખૂબ અધ્યયન કર્યું. સર્વે શાસ્ત્રનો પારંગત થયો. પારવતી દ્રવ્યવાન પિતાની પુત્રી હોવાથી રઘુનાથદાસને દ્રવ્ય સંબંધી કોઈ પણ પ્રકારની આપત્તિ પડી નહિ.

પછી રઘુનાથદાસ ઘર આવી પોતાની વિદ્યાના અનુભવાર્થે પંડિતોની સભામાં જવા લાગ્યો. સર્વે જગ્યાએ તેની ખ્યાતિ અત્યંત થઈ.

રઘુનાથદાસને પદ્મનાભદાસે જ શ્રીઆચાર્યજી પાસે બ્રહ્મસંબંધ લેવડાવ્યું હતું. (પછીનો પ્રસંગ વાર્તામાં) રઘુનાથદાસનું અવસાન સંવત ૧૬૩૮ લગભગ થયું,પછી શ્રીમથુરાનાથજી શ્રીગુસાંઈજીને ત્યાં પધાર્યા.

अब श्रीआचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास के नाती पारवती को बेटा रघुनाथदास तिनकी वार्ता आर ताको भाव ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैनिक स्वरुप

पारवती लीला में रूपविलासिनी राजसी भक्त* ओर रघुनाथदासको नाम गुनाभिरान्या ॥ इन में गुन बहोत जो कोई ओरसें एक दिन में काम होइ सो एक घरि में यह करें ॥ सो ए तामसी हे ॥ सो दोऊ सुचरिता की सखि बरावरि की हें ॥ पुरुषोत्तमदास मेहरा की दोऊ आज्ञाकारिनी हें ॥

वार्ता प्रसंग १

सो रघुनाथदास कासी गए ॥ तहां बहोत शास्त्र पढि के श्रीगोकुल आए ॥ श्रीगुसांईजी के दरसन कीए ॥ दंडोत करी ॥ तब श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी के सेवक जानि (के) बहोत आदर सन्मान किए ॥ आप कथा सुबोधिनीजी की कहते ॥ तब रघुनाथदास कों आगे बेठावते ॥ सो एक दिन परमानंद सोनी ने रघुनाथदास सों पूछी ॥ जो तू तो कासीमें बहोत शास्त्र पढ्यो हे ॥ सो आज श्रीगुसांईजी ने कहा कथा कही हे ॥ सो कहो ॥

---

* મિશ્ર પુષ્ટિજીવ

श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास की सखी जानि रघुनाथदास को बहोत आदर करते ॥ ओर परमानंददास को नाम लीला में चंद्रका हे ॥ चंद्रमा की उजियारी वत इन की देह की कांति हे ॥ श्रीगुसांईजी (श्रीचंद्रावलीजी) अनेक चंद्रमारुप तिनकी अंतरंगिनि यह हे ॥ तातें रघुनाथदास सों कटाक्ष के वचन कहे ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैनीक स्वरुप

तब रघुनाथदासने परमानंद सोनीसों कह्यो जो तुम सांच पूछो तो में कछू समझत नांही ॥ श्रीआचार्यजी के मारग की परिपाटी ओर मारग की बात नांहि जानत हों रघुनाथदास को मान (विद्या को मद) सब मर्दन व्हे गयो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

यामें यह जताए जो शास्त्रादिक वेद पुरान के पढे तें श्रीआचार्यजी के ग्रन्थको सिद्धान्त जान्यो न जाइ ॥ कृपाहि को मारग हे ॥ सो कृपाहि तें जान्यो जाइ ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पाछे परमानंद सोनी ने श्रीगुसांईजी सों कही जो महाराज रघुनाथदास तो कछू समझत नांहि ॥ तब श्रीगुसांईजी ने रघुनाथदास कों चारि ग्रन्थ अर्थ सहित पढाए (ओर) मारग की प्रणालिका कही ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

(चार ग्रन्थ के नाम) १ सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थ में सगरे मारग को सिद्धान्त बताए ॥ २ कृष्णाश्रय ग्रन्थ में एक आश्रय दृढ करि दिए ॥ ३ नवरत्न ग्रन्थ में लौकिक वैदिक चिंता दूर करि दीनी ॥ ४ सेवाफल में सेवा को फल बताइ दिए ॥ पाछे रघुनाथदास समुझन लागे ॥ श्रीगुसांईजी की कथा को भेद लीला को प्रकार सब जानन लागे ॥ बडे पंडित भए ॥

इति प्र. १ समाप्त.

वार्ता प्रसंग २

सो केतेक दिन पाछे कन्नोज में अपने घर आज्ञा मांगि के आए ॥ भगवत्सेवा में ममत्व बढ्यो ॥ तब माता पारबति सों कह्यो । जो हौंतो न्यारो होउंगो ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा करोंगो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यह कहेवे में अभिप्राय यह हे ॥ जो पारवती ओर रघुनाथदास बराबरि की सखी हे ॥ तामें पारवती राजसी हे ॥ ओर रघुनाथदास तामसी भक्त हे ॥ सो पारवती ने श्रीठाकुरजी बस कीए हें, सेवा करि के ॥ सो भेद रघुनाथदास ने देख्यो ॥ सो एऊ बराबरि के ॥ तामसि सो सह्यो न गयो ॥ जो मेरे

श्रीठाकुरजी इननें मन लगाइ के वस किये हें सो अब में बस करों ॥
तातें पारवति तें कहें ॥ में न्यारो होइ के सेवा करूंगो ॥

तब पारवती ने कही जो भलेही सेवा करि ॥ प्रीति काहू के बांटे में नांहि ॥ श्रीआचार्यजी की

वार्ता प्रसंग २ गुरु कृपा ते होइगी ॥ पाछे रघुनाथदास न्यारे भये ॥ सो वाकी माता पारवती जल भरि लावे ॥ पात्र मांजे ॥ श्रीठाकुरजी की परचारगी सब करि पाछे अपने न्यारे घरमें आय अकेली लीटी करिके भावसों भोग धरे ॥ पाछे जलके घूंट सों उतार के लेइ ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा शृंगार बिना सगरो राजस खानपान देह सुख सब त्याग कीयो ॥ या भांति सों करत दिन द्वे चारि बीते ॥ पाछे श्रीमथुरानाथजीने कह्यो ॥ तू धन्य हे मेरी सेवा नांहि छोडे ॥ अपनो सुख सब छोडे ॥ मनमें तापहू बहोत कीए ॥ अब तू कबहू तो दारि करि ॥ मेरो गरो अकेली लीटी× लेत खरखरात हे ॥ तब पारवती ने कह्यो जो महाराज तुम तो रघुनाथदास के इहां दारि भात खीरि आदि सब सालन्न सामग्री नित्य अरोगत हो ॥ गरो क्यों खरखरात हे ? ॥ तब श्रीठाकुरजीने पारवती सों कह्यो ॥ जो मोकों तो तेरो कीयो भावत हे । तातें लीटी अकेली अरोगत हो ॥

× કવચિત બાટીનો પણ ઉલ્લેખ છે.

यह कहि (यह) जताए जो प्रीति की लीटि मोकों प्रिय हे॥
अहंकार करि छप्पनभोग प्रिय नांहि हे॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

रघुनाथदास के इहांहू अरोगत हों॥ श्रीआचार्यजी की कान तें॥ परंतु तेरो कीयो बहोत भावत हे॥ यह कहि यह जताए॥ जो भक्तजन सुख लेइ श्रीठाकुरजी लीए जानिए॥ ओर इतनो कहे पारवती सों॥ सो पारवती के लिए जो में अपने गरे को नाम लेउंगो॥ तब यह सगरी सामग्री करेगी॥ पाछें प्रसाद लेइगी॥ तब मोकों सुख होइगो॥

या प्रकार पारवती को सुख बिचारे॥ तब पारवती सगरो सामग्री अपने घर करन कों

वार्ता प्रसंग २ शुरु

दोरी आवती॥ दार भात सालन सब करती॥ पारवती ने बिचार्यो जो श्री-ठाकुरजी सुखी होइ सो करनो॥

पाछे रघुनाथदास कछूक दिन सेवा करि॥ पाछे ज्ञान भयो जो पारवती की सेवा अहंकार करि छुडाइ॥ तातें प्रभू मो पर अप्रसन्न हे॥ तातें भगवदीय सों मिलि के चलूंगो॥ तो श्रीठाकुरजी प्रसन्न होइंगे॥ अहंकार कीए मेरी यहू सेवा जाइगी॥ यह ज्ञान श्रीगुसांईजीने मारग को सिद्धान्त बतायो हतो, तातें उनकी कृपा तें भयो॥ तब रघुनाथदास पारवती सों कहे॥ माता अब तुमही सेवा करो॥ तुम आज्ञा करो सो में करूं॥ में चूक्यो॥ तब पारवती कों कछू ईरसा तो नांही॥

शुद्ध भक्त हे ॥ सो प्रसन्न होइ रसोई करन लागी ॥ रघुनाथदास सों शृंगारादि करावे ॥ या प्रकार ऐसें करत पारवती के संग करि रघुनाथदास कों प्रीति भई ॥ तब दोउन को बराबरि अनुभव होन लाग्यो ॥ या प्रकार पद्मनाभदास को परिवार अलौकिक भयो ॥ या प्रकार (८४ मध्ये) वैष्णव सात भए ॥ परंतु पद्मनाभदास के कुटुंब सहित वार्ता एक जाननी तातें वैष्णव ४ भए ॥ (९६ मध्ये वै. १० भए)

રજોબાઈની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્યઃ-

આ વાર્તા વૈરાગ્ય ધર્મ રૂપ છે.

પુષ્ટિમાર્ગનો વૈરાગ્ય એ વિરહ રૂપ છે. અને તે વિરહનો અનુભવ રજો ને છે. માટે આ વાર્તા પુષ્ટિના વૈરાગ્ય રૂપ કહી છે. "विरहानुभवैकार्थसर्वत्यागोपदेशकः" એ શ્રીઆચાર્યજીનું નામ અહિં સાર્થક છે. રજોને શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો અનુભવ છે તેથી તેઓ સર્વ પ્રકારની લૌકીકાસક્તિનો સર્વાંશે ત્યાગ કરી આપશ્રીના ચરણમાં સ્થિત છે. "संत्यज्यसर्वविषयांस्तवपादमूलम्" એ શ્રી-ગોપીજનોના વાક્યનો અનુભવ રજો કરે છે. શ્રીઆચાર્યજીના અર્થે સર્વ પ્રકારના સુખનો ત્યાગ કર્યો છે.

શ્રીગોકુલનાથજી (ચતુર્થપુત્ર) સર્વોત્તમ ઉપરની પોતાની સ્વતંત્ર ટીકામાં "दासदासीप्रियः" ત્યાં દામોદરદાસને દાસ અને રજોને દાસીમાં અગ્રગણ્ય ગણે છે એટલે આ રજો દામોદરદાસની સમાન કોટીનાં છે.

રજોને પરમાનંદરૂપ વિપ્રયોગાત્મક સ્વામિની સ્વરૂપનો અનુભવ છે. (જુઓ "વાર્તા-રહસ્ય")

રજોનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ-

કાશીમાં એક ક્ષત્રી રહેતો હતો. તે ગંગાજીનો પૂર્ણ ભક્ત હતો તેમજ તે દ્રવ્યસંપન્ન પણ હતો. તેને કોઈ સંતાન નહતું. જ્યારે તે લગભગ ૫૦ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને સંતાનની આશા છોડી દીધી. અને પોતાના દ્રવ્યનો ઉપયોગ દાનપુણ્યમાં કરવાનો નિશ્ચય કર્યો. એજ રાત્રે શ્રીગંગાજીએ તેને સ્વપ્નમાં આજ્ઞા કરી કે હે ક્ષત્રી! તું શોચ ન કર, તારે ત્યાં એક અદ્ભૂત કન્યાનું પ્રાકટ્ય થશે. તેથી તે ક્ષત્રીએ શ્રીગંગાજીના વચન ઉપર વિશ્વાસ રાખી કેટલોક સમય ધાર્મિક કૃત્યોમાં વિતાવ્યો. થોડા સમય બાદ તેને ત્યાં એક પુત્રીનું પ્રાગટ્ય થયું તેનું નામ તેને રજો રાખ્યું. રજો એક અતિ અદ્ભૂત સ્વરૂપવાન હતી તેના લલાટમાં પૂર્ણ ભગવદ્‌તેજ ઝળહળતું હતું. તે એટલી બધી સ્વરૂપવાન હતી કે તેની પરછાંઈ ધરતી ઉપર પડતી. છતાં તે પૂર્ણ વૈરાગ્યયુક્ત હતી. નાનપણથી જ નિત્ય તે શ્રીગંગાજીનું પૂજન કરવા શ્રીમહાલક્ષ્મી (શ્રીઆચાર્યજીનાં પત્ની) સાથે જતી. જ્યારે તે દસ વર્ષની થઈ ત્યારે તેનું લગ્ન એક જ્ઞાતિના છોકરા સાથે કરવામાં આવ્યું. રજોના પિતાનું ઘર શ્રીમહાલક્ષ્મીજીના પિતા ભટ્ટ જેકીસનજી સાથે જ હોવાથી તે બન્નેમાં અત્યંત પ્રેમ હતો. શ્રીમહાલક્ષ્મીજીના લગ્નનું સમગ્ર ખર્ચ રજોના પિતાએ કર્યું હતું. જ્યારે શ્રીમહાલક્ષ્મીજી શ્રીઆચાર્યચરણ સાથે અડેલમાં કાયમ રહેવા લાગ્યાં ત્યારે રજો પણ પોતાના પતિ અને પિતા સાથે અડેલમાં જ રહેવા ગઈ. રજોનો શ્રીમહાલક્ષ્મી સાથેનો પ્રેમ અત્યંત ગાઢો હતો. શ્રીમહાલક્ષ્મીજી વિના એક ક્ષણ પણ અલગ રજો રહેતી ન હતી. રજો સ્વભાવથી જ પૂર્ણ વૈરાગ્યવાન હતી. તે અહર્નીશ ભગવત્સેવામાં જ પોતાનો સમય વ્યતીત કરતી. શ્રીઆચાર્યચરણે રજોને માથે એક ભગવત્સ્વરૂપ (શ્રીબાલકૃષ્ણજી) પધરાવી આપ્યું હતું. તેની તે અહર્નીશ સેવા કરતી. શ્રીઆચાર્યચરણ ઉપર તેની અતુલીત શ્રદ્ધા હોવાથી તે ભગવત્સ્વરૂપમાં શ્રીઆચાર્યચરણનીજ ભાવના કરતી. અને તેની ભાવનાને અનુસાર શ્રીઆચાર્યચરણ રજોને

અનુભવ કરાવતા. રજો નો વૈષ્ણવો ઉપર પણ અત્યંત પ્રેમ હતો. આવ્યા ગયા વૈષ્ણવોનું નિત્ય મહાપ્રસાદ આદિથી સમાધાન કરતી. દામોદરદાસ હરસાની અને શ્યામદાસ સુતારની તે પૂર્ણ કાળજી રાખતી. સમય ઉપર પ્રસાદ લેવડાવતી. રજોનો જન્મ અનુમાનતઃ સં.૧૫૪૦ લગભગ મનાય છે અને તિરોધાન સં.૧૫૮૭-૮૮નું માનવામાં આવે છે.

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभून के सेवक रजो क्षत्राणी तिनकी वार्ता ओर–ताको भाव ॥

सो रजो क्षत्राणी लीला में ललिताजी की सखी हें ॥ इनको नाम रतिकला हें ॥ रति जो प्रीति ताकी कला ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

अथवा रति जो विहार ताकी कला जो जिनको श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी को विहार सिद्ध होइ ॥ यही भाव में मगन हें ॥ ओर जानत ही नांही ॥ श्रीस्वामिनीजी के लिए नाना प्रकार की सामग्री करनी ॥ निकुंजादिक में रात्रि को दूधादिक अरोगावनो ॥ यह ललिताजी की सेवा हे ॥ तातें यहांहू रजो कें यह नेम जो रात्र की सामग्री नित्य नेम सों श्रीआचार्यजी कों आरोगावनो ॥ सो लीला में रतिकला को बहोत ताप हतो ॥ जो श्रीस्वामिनीजी कों परोसों (एसो) भाग्य मेरो कब होय ? ॥ काहेतें (जो) अरोगावनो सो ललिताजी की सेवा हे ॥ सो केसें मिले ? ॥ ललिताजी तो अत्यंत प्रिय मध्याजी हे ॥ सगरी लीला की सिद्धि करता ॥ सो ताप रतिकला के हृदय को हे ॥ (सो) अब श्रीआचार्यजी (श्रीस्वामिनीजी) मनोरथ पूरन करें, ताप मिटाए ॥ काहेतें ? ॥ नारायणदास ब्रह्मचारी ब्राह्मण हते ॥ तिनकी करी खीरि श्रीगोकुलचंद्रमाजी खीरि लेवे कों श्रीआचार्यजी सों कहे ॥ तब श्रीआ-

र्यजी कहे ॥ पाक केसें लियो जाइ ? ॥ पाछे श्रीगोकुलचंद्रमाजी के ग्रन्थ (वाक्य) तें लीए ॥

ओर इहां रजो क्षत्राणी हती ॥ ताकी अनसखडी आप नित्य नेम सों लेते ॥ सो लीला संबंध को भाव बिचारि के ॥ तथा रजो एकांगी अनन्य भक्त के बस होइके, सो प्रेमके भरतें मर्यादा छूटि जाय ॥ यामें रजो को प्रेम जताए ॥ रजो के प्रेमतें मर्यादा स्वरुप को तिरोधान होइ जातो ॥ लीला रस में मगन होइ सामग्री अंगीकार करें ॥

वार्ता प्रसंग १

सो रजो नित्य पकवान सामग्री करि रात्रकों ले आवति ॥ सो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आरोगते ॥ वाके नेम हतो ॥

सो एक दिन लक्ष्मन भट को श्राद्ध दिन हतो ॥ सो श्रीआचार्यजीने ब्राह्मण भोजन कों बुलाए हते ॥ तहां घृत थोरो सो चहियत हतो ॥ तब श्रीआचार्यजीने एक वैष्णव सों कह्यो जो रजो के इहां ते घृत ले आवो ॥ सो एक वैष्णव जाइ के रजो सों कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजीने घृत मंगायो हे ॥ तब रजोने वा वैष्णव सों कह्यो जो घृत काहेको मंगायो हे ? ॥ तब वा वैष्णवने कह्यो, जो लक्ष्मण भट्टजी को श्राद्ध दिन आज हे ॥ सो ब्राह्मण भोजन कों बुलाए हे तहां घृत घट्यो हे ॥ सो तातें मंगायो हे ॥ तब रजो ने कह्यो जो घृत मेरे नांही हे, जाय कहीयो ॥ तब वैष्णव फिरि आयो ॥ ओर श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो महाराज रजो के घृत नांहि हे ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ जो एकबार तू फेरि जा ॥ खीज़ि के कहियो जो घृत दे ॥ तब वह वैष्णव फेरि आयो ॥ रजो सों

कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी खीझत हें ।। तातें घी देउ ॥ तोहू रजोने घृत दीनो नाहीं ।। कह्यो मेरे घृत नांहीं हे ॥ कहां ते देऊं ? तब वैष्णव फिरि आय श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो महाराज रजो घृत नांही देत ॥ पाछे और ठोरते घी मगाई काम चलायो ।। पाछे रात्र भई ।। तब रजो सामग्री सिद्ध करि श्रीआचार्यजी पास आई ।। तब श्रीआचार्यजी पीठि दे बेठे ।। तव रजोने कह्यो ॥ जो महाराज, जीव तो दोष ते भर्यो हे.।। अपराध कहा जो आप दरसन नांहि देत ।। तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो आज लक्ष्मण भट्टजी को श्राद्ध हतो ।। सो तेंने घृत क्यों नाहि दीनो ? तब रजोने कही मेरे घी नांहि हतो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही सामग्री कहां ते करि लाई ? ।। तब रजोने कही महाराज आपु के घरमें हू घी हतो क्यों नाहीं लीए ?।। तब श्रीआचार्यजी कहे उह तो श्रीठाकुरजी को हतो ।। वामें ते केसें लीयो जाई ? ।। तव रजोने कही मेरे घरमें कोन हे ? ।। श्रीठाकुरजी तें अधिक आपको स्वरूप हे । सो आपकी लीला संबंधी सामग्री में ते श्राद्ध में कैसे दऊं? ॥ ओर में लक्ष्मन भट्ट की लोंडी नांहि हों ॥ में तो आपकी लोंडी हों आप मेरी परीक्षा लेन अर्थ घी मगायो, सो पहले वैष्णव पठायो तब तो लौकिक आवेस सों घी घटयो ।। तब आपु कहे रजो सो ले आवो ॥ यह लौकिक प्रवाह आज्ञा जानि के मेंने घी की नांहि करि ।। सो पाछें आपु यह मनमें बिचारे जो श्राद्ध के लिये ब्राह्मण भोजन में बेगे चाहिए ।।

फेरि जो उह वैष्णव आईकें कह्यो ॥ जो खीजि के कहे घी देहू ॥ तब मैं मर्यादा जानी ॥ जो पुष्टि कार्य में क्रोध को प्रयोजन हे नांहि ॥ काहेतें भावही सों सगरी वस्तु सिद्ध हे ॥ ओर मर्यादा में तो वेउ वस्तु विना कर्मको नास होइ ॥ (वस्तु तें) पूरनता हें ॥ तातें वस्तु के लिये क्रोध हे ॥ जो वह वस्तु आवश्यक चाहिए ॥ तातें मर्यादाकी आज्ञा हु नांहि माने ॥ ओर मर्यादा के कार्यार्थ घी हू नांहि दीयो ॥ पाछें तीसरे पुष्टि के आवेश ते मांगते तो में घी देती ॥ ओर आपुको घी मंगावनो हतो ॥ (तो) इतनो उह वैष्णव सों कहि देते ॥ जो रजो सो कहियो ॥ तेरे पुष्टि धर्म में हांनि नांहि हे, घी दीजो ॥ तो में काहेको फेरती ॥ ओर महाराज जानि बूझि के कूवा में केसे परूं ? ॥ आपुकी कृपा तें इतनो ज्ञान भयो तब मैं घी नांहि दीयो ॥ आपु तो बुद्धि प्रेरक हो ॥ मेरे हृदय में बेठि के घी देवे की नांहि कहे ॥ उहां के घी मगाए ॥ सो में बिना मोल की दासी हों ॥ आपु कृपा करिए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

याहि तें शिक्षापत्र में कह्यो हें * श्रीठाकुरजी की आज्ञा तीन प्रकार की हे ॥ लौकिक आज्ञा प्रवाहसें के करन अर्थ ॥ याहि तें श्रीभागवत में लौकिक आदि कार्य यह तीन ही बरनन हें ॥ अलौकिक कार्य में श्रीठाकुरजी को आश्रय ओर भगवदीयको संग ॥ वैदिक कार्य में तीर्थ देव पूजा कर्मादि ॥ लौकिक में कुटुंब पालनों खानपान शरीर को सुख ॥ सो तीन्यों फलहू न्यारे न्यारे कहे

* જુઓ શિ. ૬ શ્લોક ૪-૫

हें ॥ लौकिक तें संसार ॥ वैदिक तें स्वर्गादिक ॥ अलौकिक तें भगवद् प्राप्ति ॥ या प्रकार के भेदसों घी नांहि दीयो ॥

वार्ता प्रसंग १

शुरु

तब श्री आचार्यजी प्रसन्न होइ के दरसन दिए ॥ तब रजो नें सामग्री श्रीआचार्यजी के आगे राखि ॥ ओर कह्यो जो अरोगो ॥ तब श्रीआचार्यजीने रजो सों कह्यो जो आजु श्राद्ध दिन हे ॥ सो दूसरी बेर लेनो नांहीं ॥ तब रजो ने कह्यो ॥ जो महाराज घर की होइ सो लोगन के मर्यादा के लीए मति लेहू ॥ यह तो लीयो चाहिए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको अर्थ यह जो लीला के भाव सों **अपने निज स्वरुप सों अरोगो** ॥ अब मर्यादा को आवेश कहां राखोगे ॥ लीला के आवेश में मन दीजे ॥ भक्तन को मनोरथ पूरन करो ॥ इतनो सुनत ही **आप (में) पुष्टि लीला को आवेश व्हे गयो॥**

मर्यादा की आज्ञा सब जात रही ॥ सामग्री अरोगे ॥ जेसे परमानंदजी गाए ॥ "हरि तेरी लीला की सुधि आवे" ॥ इतनो सुनत ही तीन दिनलें शरीरको अनुसंधान न रह्यो ॥ एसे लीला में आवेस होइ ॥ रजो को मनोरथ पूरन कीए ॥ तातें रजो एकांगी भगवदीय हे ॥

तब रजो के आग्रह तें श्रीआचार्यजी ताहू दिन सामग्री अरोगे ॥ सो वह रजो क्षत्राणी श्रीआचार्यजी महाप्रभून की एसी कृपापात्र भगवदीय ही ॥ ताते इनकी वार्ता को पार नांही ॥ सो कहां तांई लिखिये ॥ (९६ मध्ये वै. ११ भये)

८४ मध्ये वैष्णव ५

वार्ता समाप्त ॥

શંકા સમાધાન અને રહસ્ય:—

પૂર્વપક્ષી:—આ વાર્તામાં વર્ણાશ્રમ ધર્મનો સ્પષ્ટ વિરોધ કહેલો છે. અને શ્રીઆચાર્યચરણ વર્ણાશ્રમ ધર્મના અત્યંત પક્ષપાતી છે માટે આ વાર્તા સંશોધ્ય છે.

સિદ્ધાન્તી:—આપ પુષ્ટિમાર્ગના જ્ઞાનથી પૂર્ણ પરિચિત નથી તેમ અમને આ પ્રશ્નથી સહજ જણાઇ આવે છે. બીજા પ્રકારે સ્પષ્ટ કહીએ તો આપ લોક અને શાસ્ત્રના જ્ઞાનમાં પણ અર્ધદગ્ધ છો એટલે જ આપને આવા પ્રકારના કુતર્કો આવી નિર્દોષ સર્વોત્કૃષ્ટ દશાને સમજાવનારી વાર્તામાં થાય છે.

આપ વર્ણાશ્રમ ધર્મનું સ્વરૂપ જાણો છો? વર્ણાશ્રમનો ધર્મ કયા પ્રકારનો, કેવો અને કેટલો બલિષ્ઠ છે તે જાણો છો? તેમજ પુષ્ટિ ભક્તિનું સ્વરૂપ આપ જાણો છો?

પૂર્વપક્ષી:—મારા જ્ઞાનથી હું એટલું કહી શકું છું કે વર્ણાશ્રમ ધર્મનું સ્વરૂપ સ્મૃતી પ્રતિપાદ્ય આચાર વિચારનું છે. અને તે વર્ણાશ્રમ ધર્મ એ દેહનો ધર્મ છે અને તેનું બલ પણ મર્યાદીત છે.

જ્યારે પુષ્ટિ ભક્તિ એક સ્વતંત્ર અમર્યાદિત અને પ્રમેયબલ વાળી હોઇ આત્માના ધર્મ રૂપ છે. વળી વર્ણાશ્રમ ધર્મ કાલાધીન અને પરિવર્તનીય છે જ્યારે પુષ્ટિ ભક્તિ રૂપી ધર્મ ત્રિકાલાબાધિત અને સર્વ સમયમાં સર્વ સ્થલે સર્વ પ્રકારથી અપરિવર્તનીય છે. મારી સમજ પ્રમાણે આ ઉપરોક્ત શાસ્ત્ર સિદ્ધ વાત વિદ્વાનોને માન્ય છે.

સિદ્ધાન્તી:—યદિ આપ ઉપરોક્ત કથનને સ્વીકારો છો તો આપના મુખથી જ આપ કહી શકશો કે પુષ્ટિ ભક્તિ રૂપી પ્રમેયબલયુક્ત ત્રિકાલાબાધિત ધર્મ આગળ વર્ણાશ્રમ ધર્મ ક્ષુદ્ર અને નિસ્તેજ છે તેથી વર્ણાશ્રમ ધર્મ આશ્રયને યોગ્ય નથી જ.

પૂર્વપક્ષી:—હા, તે તો અમે સ્વીકારીએ છીએ જ કે વર્ણાશ્રમ ધર્મ ભક્તિમાર્ગીય જીવો ને માટે આશ્રયરૂપ નથી કારણ કે તે દેહ

ધર્મ છે તેમજ આ કલિયુગમાં તેનું વિશુદ્ધ રૂપમાં સાંગોપાંગ અસ્તિત્વ પણ નથી છતાં તે ત્યાજ્ય પણ નથી જ.

સિદ્ધાન્તી:—અમારો એ સિદ્ધાન્ત જ નથી કે વર્ણાશ્રમનો હરેક મનુષ્યે ત્યાગ કરવો. કારણ કે તેના ત્યાગથી પાખંડીત્વ અને અશુદ્ધતા પ્રાપ્ત થાય છે. માટે શ્રીમદ્દાચાર્યચરણના કથનાનુસાર જેવા સ્વરૂપમાં તે ધર્મ પ્રાપ્ત થતો હોય તેવા સ્વરૂપમાં તેનું પાલન અવશ્ય કરવું. પરંતુ તે કેવી રીતે ? ભક્તિરૂપી આત્મધર્મમાં જે વખતે જેટલી આવશ્યકતા તેની હોય તેટલા જ પ્રમાણમાં અને તે પણ કપટ રૂપથી જ એટલે મનરહિતપણે.

વળી આ સર્વ પ્રકાર સાધન દશાના ભક્તોને માટે છે. જેમને ભક્તિ પૂર્ણ રૂપે પ્રાપ્ત થઈ નથી તેમને માટે જ.

જ્યારે વૈદિક કર્મોમાં અને જ્ઞાનમાં પણ વર્ણાશ્રમનો ત્યાગ કેટલીય જગ્યાએ કરવાનો સ્વયં શાસ્ત્ર આજ્ઞા કરે છે જેવાં કે:— બ્રહ્મચર્ય અવસ્થામાં, સંન્યાસ અવસ્થામાં, તો પછી ભક્તિમાં તેનો ત્યાગ હોય તેમાં કહેવું જ શું ?

એક વિપ્રને બ્રહ્મચર્ય અવસ્થામાં વૃદ્ધિ સૂતક આદિ કંઈપણ શાસ્ત્ર રીતીથી લાગતું નથી. તેવી જ રીતે સન્યાસમાં પણ છે.

જ્યારે કર્મ જ્ઞાનાદિની સન્યાસાદિ અવસ્થામાં આવા પ્રકારના ત્યાગો રહેલા છે તો ભક્તિની ઉત્કૃષ્ટ દશામાં (ભક્તિના સન્યાસરૂપ વિરહદશામાં) વર્ણાશ્રમ તો સહજ ત્યાગ થઈ જાય તેમાં સંદેહ હોય જ કેમ ? ભક્તિનું સ્વરૂપ જ માહાત્મ્ય જ્ઞાનપૂર્વક સુદ્રઢ સ્નેહનું છે. એટલે તે સિદ્ધ થયા પછી (સુદઢ પ્રેમ પ્રભુમાં થયા પછી) તેને માટે શાસ્ત્રીય વિધિ નિષેધનું સ્થાન જ હોતું નથી. સૂરદાસજી પણ એજ સમજાવે છે કે सूरदास जाके नेम धरम व्रत सो प्रेमी कोडी को તે પ્રેમનું સ્વરૂપ

જ એવું છે જેમાં લોક અને વેદના રાગનો અને જ્ઞાનનો પૂર્ણ અભાવ છે. તો તેનું અસ્તિત્વ તો હોય જ ક્યાંથી ?*

હવે એ પ્રેમમાં પણ વિપ્રયોગની કોટી સ્વતંત્રરૂપ હોવાથી મુખ્ય છે. એટલે ધર્મી વિપ્રયોગવાળા ભક્તોને પોતાના સ્નેહી તરફના સુખની મુદ્દલે અપેક્ષા રહેતી નથી જ. તેમજ સ્વરૂપ તકની અપેક્ષા રહેતી નથી. આટલી નિઃષ્કામભક્તિ અને પૂર્ણ સુખનો ત્યાગ કેવલ આ ધર્મીવિપ્રયોગ દશામાં જ છે. તે ભક્તો કેવલ પોતાના સ્વતંત્ર ભાવમાં જ વિલસે છે.

યદ્યપિ પ્રેમમાં સ્વયં લોકવેદના રાગનો અભાવ હોવાથી તે ભક્તિના સન્યાસરૂપ છે. તદપિ તે સન્યાસરૂપ પ્રેમની પણ આંતરીક સન્યાસ અવસ્થા તે આ ધર્મીવિપ્રયોગ અવસ્થા છે. એટલે તે અવસ્થામાં બાહ્યક્રિયાત્મક ભાવ (કામભાવ)ની **તેમજ સ્વરૂપની પણ અપેક્ષા નથી હોતી તો બિચારા વર્ણાશ્રમ ધર્મની અપેક્ષા તો હોય જ કેમ ?**

આ ધર્મીવિપ્રયોગવાળા ભક્તો સ્વતંત્ર ભક્તો છે. અને તે આંતરીક સન્યાસ અવસ્થાવાળા છે. ત્યાં વેષ ક્રિયા આદિની અપેક્ષા નથી. કેવલ ભાવમાં જ વિલસનારા ભાવાત્મક ભક્તોની તે કોટી છે.

તે ભક્તિનું સ્વરૂપ નારદજી પોતાના ભક્તિસૂત્રમાં આ પ્રમાણે સમજાવે છે:—

૨ ૐ सा कस्मै परमप्रेमरुपा । તે ભક્તિ ઇશ્વરમાં પરમ પ્રેમરૂપા છે.

૩ ૐ अमृतस्वरूपा च । અને તે અમૃત સ્વરૂપા છે.

૪ ૐ यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतीभवति तृप्तोभवति । જેને પ્રાપ્ત કરીને મનુષ્ય સિદ્ધ થાય છે અને અમૃત થાય છે અને તૃપ્ત થાય છે.

---

* સરખાવો અષ્ટ સખાની વાણી:—

केसें कीजे वेद कह्यो विधि निषेध को नाहिन ठोर रह्यो ।
दु:ख को मूल सनेह सखीरी सो उर पेठ रह्यो ।
परमानंद प्रेम सागरमें पर्यो सो लीन भयो ।

૫ ॐ यत्प्राप्य न किंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति। જેને પામી (મનુષ્ય) પછી ન કોઇને ચાહે છે અથવા શોક કરે છે અથવા દ્વેષ કરે છે અથવા (કોઇમાં) રમે છે અથવા (કોઈ વિષયનો) ઉત્સાહ કરે છે.

૬ ॐ यज्ज्ञानान्मत्तोभवति स्तब्धोभवत्यात्मारामोभवति। જેને જાણીને પાગલ થઈ જાય છે સ્તબ્ધ થઈ જાય છે અને **આત્મારામ થઈ જાય છે.**

૭ ॐ सा न कामयमाना निरोधरूपात्। તે (ભક્તિ) કામના ને અર્થે નથી થતી કારણ કે (આ) નિરોધરૂપ છે.

હવે નિરોધનું સ્વરૂપ સમજાવે છે.

૮ ॐ निरोधस्तु लोकवेदव्यापारसंन्यासः। નિરોધ તો લોક વેદ વ્યાપારનો ત્યાગ કરવો તે છે.

૯ ॐ तस्मै अनन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च। અને એમાં અનન્યતા અને તેના વિરોધિયો ઉપર ઉદાસીનતા પણ નિરોધ છે.

૧૦ ॐ अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता। અન્ય આશ્રયોનો ત્યાગ કરવો તે અનન્યતા છે.

૧૧ ॐ लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता। લોક અને વેદમાં શ્રીમદ્‌ભગવદનુકુલાચરણ કરવું એજ તદ્વિરોધિષુદાસીનતા છે. એટલે લોક અને વેદમાં કેવળ **પ્રેમપાત્રના અનુકૂલ આચરણ કરવાથી** તે અનન્યતાના વિરોધી કર્મોમાં ઉદાસીનતા આપોઆપ થાય છે.

૧૨ ॐ भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणं। નિશ્ચય દૃઢ થયા પહેલાં શાસ્ત્ર રક્ષણ હોય। (અર્થાત્ શાસ્ત્રના કહેલા કર્મોનું અનુષ્ઠાન ભક્તિના દૃઢ નિશ્ચય થયા પહેલાં સુધી જ છે.

૧૩ ॐ अन्यथा पातित्याशंकया। **અન્યથા પતિત થવાની શંકા છે.** (જ્યાં સુધી પુષ્ટિ ભક્તિમાં દૃઢ નિશ્ચય નથી ત્યાં સુધી વર્ણાશ્રમ ધર્મની પૂર્ણ આવશ્યકતા છે. આશ્રયરૂપે નહિ કિંતુ કર્તવ્યરૂપે) અન્યથા તે જીવ પતિત થાય એમ શંકા રહે છે.

૧૪ ॐ लोकोपि तावदेव किंतु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीरधारणा-

વધિ। લોક (લોકવ્યવહાર) પણ ત્યાં સુધીજ (અર્થાત નિશ્ચય થયા પૂર્વતક) છે કિંતુ **ભોજનાદિ વ્યાપાર તો જ્યાં સુધી શરીર છે ત્યાં સુધી છે.**

હવે આપ જાણી શકશો કે આમાં બતાવેલું નિરોધનું સ્વરૂપ (સૂત્ર ૮ અને ૯માં) શ્રીઆચાર્યચરણ અને રજો બન્નેને સિદ્ધ થયેલું છે. જુઓ શ્રીઆચાર્યચરણ સ્વયં આજ્ઞા કહે છે કેઃ—**अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः । ९ ॥** (નિ૦લ૦)

હું રોધ વડે નિરૂદ્ધ છું અને નિરોધની પદવીને પામેલ છું. તેવી જ રીતે રજો પણ નિરોધ ને સારી રીતે પ્રાપ્ત થયેલાં છે તે ભાવસિંધુ, વાર્તા આદિમાં રજોના પ્રસંગથી સ્પષ્ટ થાય છે. જેવી રીતે વ્રજભક્તો એ પંચાધ્યાઈ સમયે જ્યારે શ્રીઠાકોરજીએ ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો ત્યારે સામે પ્રતિઉત્તર આપીને પોતાની અચલ ભક્તિથી શ્રીઠાકોરજીમાં રહેલા અનિરૂદ્ધ (ધર્મોપદેશક) વ્યુહનું નિવારણ કર્યું. તેવી રીતે રજોએ પણ શ્રીઆચાર્યચરણમાં રહેલા મર્યાદા આવેશને પોતાની અચલ ભક્તિયુક્ત પ્રાર્થનાથી દૂર કર્યો. અને કેવલ શુદ્ધ પુષ્ટિસ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરી સામગ્રી અરોગાવી (જુઓ વાર્તા) એટલે શ્રીઆચાર્યચરણ અને પરમભક્ત રજો બન્નેનાં સ્વરૂપ શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તિરૂપ* હોવાથી સૂત્ર ૧૨ માં કહ્યા અનુસાર વેદની મર્યાદાની

---

* સર્વાત્મભાવ યુક્ત (વિશેષ જુઓ શ્રીહરિ૦ કૃત **सर्वात्मभाव निरुपणम्**) જેઓ સર્વભાવથી ભજન કરે છે તેને લૌકીક વૈદિકની શી અપેક્ષા રહે ? નજ રહે " ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकै वदिकैरपि " " લોકવૈદિક ત્યાગ શરણ ગોપી શકો. "

सर्वत्यागस्तु सहजो यत्र लौकिकवेदयोः।

नैरोक्ष्यं स भावस्तु सर्वभावो निगद्यते ॥ १३ ॥ (શિ૦ ૩૪)

મર્યાદામાં બ્રહ્મભાવ તેવીજ રીતે પુષ્ટિની ઉત્કૃષ્ટ દશામાં સર્વાત્મભાવ છે.

દ્રષ્ટાંતરૂપેઃ-નાભાજી, (કુતરામાં પણ બ્રહ્મના દર્શન કર્યાં અને રોટી લઈ ગયું ત્યારે ઘી ચોપડવા દોડયા) તેવીજ રીતે અહિં પણ તે દશામાં લૌકીક વૈદિકની દૃષ્ટિ સહજ અને સ્વતઃ નષ્ટ થઈ જાય છે.

રજો આવાં સર્વાત્મભાવવાળાં ભક્ત છે.

તેઓને અપેક્ષા મુદ્દલે હોયજ નહિ. તે ભક્તિનું સ્વરૂપ એવું છે કે તેને પ્રાપ્ત કરીને ભક્ત ભક્તિમાં પાગલ થઈ જાય છે, નિરક્ષેપ થઇ જાય છે. લોકવેદાતીત થઈ સ્વયં આત્મારામ થઇ જાય છે. (જુઓ ૪-૫-૬ સૂત્ર) હવે આવી દશામાં બિચારો ક્ષૂદ્ર બાહ્ય ધર્મરૂપ દેહધર્મ (વર્ણાશ્રમ) ટકી જ ક્યાં શકે ?

આવી ભક્તિમાં સૂરદાસજીના કથનાનુસાર "वेद पुरान ज्योतीष बडे ठग जानत फांसी जीको ।" એનો વસ્તુતઃ અનુભવ થાય છે. આ ભક્તિ-માર્ગની સન્યાસરૂપ વિપ્રયોગ અવસ્થામાં ન વેદની સ્થિતિ છે ન લોકની. કારણુ કે તે ભક્તિ પ્રાપ્ત થવાથી તે ભક્ત સ્વયં લોકવેદાતીત થઈ જાય છે.

વળી શ્રીહરિના સમાન રૂપ, ગુણ અને શીલવાળા વૈષ્ણવોમાં જ્ઞાતિબુદ્ધિ રાખવાથી મહાન દોષ થાય છે તેવું શાસ્ત્ર કહે છે. (જુઓ ભાર-તેંદુનું નારદ ભક્તિસૂત્ર ઉપરનું ભાષ્ય; તેમાં અનેક પ્રમાણોનો સંગ્રહ છે)

नयस्यजन्मकर्मीभ्यांन वर्णाश्रमजातिभिः ।
सज्जतेस्मिन्नहंभावो देहेवै सहरेः प्रियः ॥

આવા વૈષ્ણવોમાં જાતિબુદ્ધિ કરવી તે ૬૪ અપરાધોમાંનો એક અપરાધ છે.

ॐ नास्तितेषुजातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः (ना०भ०सू०७२)

અર્થઃ—એવા (ભક્તો)માં જાતિ, વિદ્યા, રૂપ, કુલ, ધન અને ક્રિયા આદિનો ભેદ નથી.

ॐ यतस्तदीयाः । (७३)

અર્થઃ—કેમકે એ (ભક્તો) એના છે.

એજ પ્રમાણે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ પણ શિક્ષાપત્રમાં કહ્યું છે.

આતો થઈ શાસ્ત્રીય વાત. હવે આપણે સાંપ્રદાયિક વાત કરીએ આ વાર્તાના શબ્દો જોવાથી આપણે એ સ્પષ્ટ સમજી શકીએ છીએ

કે આચાર્યચરણે મર્યાદા રૂપથી (આચાર્ય રૂપથી) આ સામગ્રી અંગીકાર કરી નથીજ. પરંતુ લીલાના નિજસ્વરૂપ શ્રીસ્વામિની રૂપથીજ. જુઓ આ શબ્દોઃ-

ओर इहां रजो क्षत्रानी हती॥ ताकि अनसरवडी आपु नित्य नेम सों लेते **सो लीला संबंध को भाव विचारि के × ×× लीला रस में मगन व्हे सामग्री अंगीकार करे** × × + ताको अर्थ यह जो लीला के भावसों **अपने निज स्वरुपसों आरोगो** (શ્રી હરિ૦) એટલે એ સ્પષ્ટ છે કે શ્રીઆચાર્યચરણ શ્રીસ્વામિની રૂપથી સામગ્રી આરોગતા માટે અહિં વર્ણાશ્રમ ધર્મનો પ્રશ્નજ રહેતો નથી.

શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ શ્રી ગુસાંઇજી "વસ્તુતઃકૃષ્ણ એવ" એમ કહે છે. એટલે નિજ વિવિધ પ્રકારના સ્વરૂપોનો અનુભવ શ્રી આચાર્યચરણ ભક્તોને પોતપોતાની ભાવના અનુસાર કરાવે તેમાં જરાય આશ્ચર્ય હોયજ નહિ. અને તેથીજ કૃષ્ણદાસજીએ (અષ્ટસખા) ગાયું છે કે कोऊ कहे विप्र, कोऊ विविध पंडित कहे, कोऊ कहे अंश, कोऊ आत्मारामी। **स्वकीयजन एक, मन निश्चे निरधार कीयो वस्तुतः कृष्ण जे बंधे दामी** એટલે નિજજનો ને તો શ્રીઆચાર્યચરણે પોતાના દામોદર સ્વરૂપનોજ અનુભવ કરાવ્યો છે.

आचार्यवान् पुरूषोवेद। आचार्यमाम् विजानीयात्। આવાં અનેક શાસ્ત્રીય વાક્યોથી પણ શ્રીઆચાર્યચરણનું ઇશ્વરત્વ સિદ્ધ છે.તેથી આચાર્ય-

---

કોટાના સુપ્રસિદ્ધ વિદ્વાન અને સંપ્રદાયના મર્મજ્ઞ શ્રીયુત ગોકુલદાસજી મુખીયાજી (શ્રીમથુરેશજીના) આ પ્રસંગ માટે આ પ્રમાણે લખે છે :—

जीन पुस्तकमें अनसखडी अरोगने का लिखा है उनही पुस्तक में यह बात स्पष्ट की गई है कि श्रीआचार्यचरण स्वामिनी रुप से सामग्री अरोगते। इस लीए इस वार्ता से वर्णाश्रम धर्म में कीसी भी प्रकार की हानी नहिं होती है।

માં પ્રમેયબલ રહેલું છે, અને તે પ્રમેયબલથી યદિ લોકમાં કોઈપણ આચાર્ય કવચિત્ કોઈ લોકવેદ વિરૂદ્ધ સાહસ કરે તો તે તેમના ઇશ્વર-ત્વના સ્પષ્ટીકરણ રૂપ છે. તેથી પણ આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યચરણના પ્રમેયબલને દેખાડનારી છે—અને આવાં ચરિત્રો શંકરાચાર્ય આદિ અન્ય આચાર્યોમાં પણ સ્પષ્ટ થએલાં છે.

શ્રીગોપીજનોની માફક રજોને ભક્તિ પ્રાપ્ત થયેલી હોવાથી તે લૌકિક સ્ત્રી નહિં હતી કિંતુ શ્રુતીઓના પણ ભાવરૂપ હતી- આથી આ વાર્તામાં લૌકીક દષ્ટીને સ્થાન નથી જેને સ્વતંત્ર ભક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે તે આત્મારૂપ થાય છે તે ન તો સ્ત્રી રહે છે ન પુરૂષ. તેમાંથી સ્ત્રી અને પું બન્ને ભાવ નષ્ટ થઈ જાય છે—

પૂર્વપક્ષી:—આપનો ઉત્તર સપ્રમાણ અને યથાર્થ છે એટલે હવે અમને એ શંકા રહેતી નથી કે શ્રીઆચાર્યચરણે આમાં વર્ણાશ્રમ ધર્મનું ઉલ્લંઘન કર્યું છે. અથવા તો આ વાર્તા કલ્પિત છે. કિંતુ હવે અમે એમ કહી શકીએ છીએ કે આ વાર્તા શુદ્ધ ભક્તિની પરમોત્કૃષ્ટ દશાની સ્થિતિનું સુનિપૂણ પ્રતિપાદન કર્તા હોઈ અવશ્ય મનનીય છે.

પરન્તુ આ વાર્તાને ન સમજી અન્ય સામાન્ય લોકો આ સિદ્ધાં-તનો દુરૂપયોગ કરે (એટલે વર્ણાશ્રમ ધર્મનો ત્યાગ કરે) તો તેની જવાબદારી આ વાર્તા પ્રગટ કરનારને માથે છે કે નહિં?

સિદ્ધાન્તી:—ત્યાં પણ આપની ભૂલ થાય છે દષ્ટાંત તરીકે શ્રીમદ્ભાગવતમાં વ્રતચર્યા રાસાદિ પ્રસંગોનું શ્રી શુકે વર્ણન કર્યું છે. અને તેના રહસ્યને અજ્ઞાની પુરૂષ ન સમજી વિરૂદ્ધાચરણ કરે અથવા ટીકા કરે તો શું તેની જવાબદારી શ્રીશુક ઉપર રહે છે કે?

શ્રીશુકે તો એવી પરમ પુનિત શ્રીકૃષ્ણની નિર્દોષ લીલાઓનું વર્ણન કર્યું છે કે જેના શ્રવણથી જ મનુષ્ય કૃતકૃત્ય થાય છે. અભાગ્ય વશ કોઈ ઉંધે રસ્તે જાય તો તેની જવાબદારી તેની અજ્ઞાનતાની જ છે શ્રીશુકની નહિ. તેજ પ્રમાણે અહીં સમજવું.

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदनम्

अस्ति महनीयमहिम्नो मेदपाटमहीमण्डलस्य मण्डनायितायां पावनप्रतोल्यां पुरि कांकरोल्यां मणीवासमसुषमासन्निवेशा कांकरोलीश्वराध्यक्षत्वसुस्था विद्याविभागाभिधैका संस्था। यस्यां सुविशालकलेवरस्य सरस्वती भण्डारसदभिधस्य विविधविषयकप्राचीनतमलिखितग्रन्थसंग्रहस्य विराजतेतमां महती सत्ता।

सौभाग्येन तद्व्यवस्थापनकार्यनियोजितः शुद्धाद्वैतसंप्रदायसंस्कृत ग्रन्थेषु व्यलोकयं छन्दोमय्यां सुरसरस्वत्यामवतारितं सपदि पुष्टिभक्तिमार्गरहस्यावबोधनचतुरं चतुरशीतिवैष्णववार्तामालाख्यं सद्ग्रन्थम्। शुद्धाद्वैततत्त्वजिज्ञासुभिरपि गीर्वाणवाणीप्रणयिभिर्मनीषिभिरद्यावध्यपि अनधिगमितसमुचितसम्मानं सम्प्रति च संस्कृतगिरा परिवर्तितत्वेन तेषामेव सत्क्रियापात्रत्वयोग्यममुमवलोक्य स्वान्तं नितान्तममोदत, समभवच्च समुद्गतोत्कलिकं साहित्यक्षेत्रे प्रकाशमुपगतस्य सुन्दरवेषेण विचरतस्तस्य प्रेक्षणाय।

भगवतः श्रीनिकेतनस्याकम्पयानुकम्पया समायात एवासौ सुसमयोऽमुं प्रकाशमानेतुम्; येन विद्याविभागसंचालकाः पण्डितप्रवरकण्ठमणि शास्त्रिणोऽमुं प्रकाशयितुमैच्छन्, साम्प्रदायिकसाहित्यसेवनधर्मा परिखोपाह्वद्वारकादाससद्वैष्णवस्तत्प्रकाशनव्ययमुपार्ज्य दातुं स्वोत्साहं प्रादर्शयत्, विद्याविभागाध्यक्षमहानुभावाः सदुदारविचारविद्योतमानमानसाः श्रीगो. १०८ श्रीव्रजभूषणलालजीमहाराजचरणाश्च तममुं सदध्यवसायमन्वमन्यन्त। तदैव च यद्यपि सुरभारतीविभारतेभ्यः कोविदेभ्यस्तु संस्कृतानुवादमयस्य तद्-

ग्रन्थस्य स्वातन्त्र्येण साकल्येन च प्रकाशनमेवाभ्यरोचेत; किन्तु तथा प्रकाशितस्तु स केवलं विद्वत्समाजस्यैव सम्मानपात्रमभिनन्दनीयश्च स्यात्, न तु संस्कृतभाषासम्बन्धिस्वल्पज्ञानं धृतवतो जनसाधारणस्यापि, तेन वाञ्छितस्य संस्कृतवार्ताप्रचारस्याभावः कदाचित्सम्मुखमापतेत्; अतः "ग्रन्थोऽसौ मूलेन (भाषावार्तारूपेण), तदुपरि श्रीहरिरायमहानुभावचरणप्रकाशितेन भावप्रकाशेन, तत्सम्बन्धिटिप्पणान्तरेण च सह प्रकाशितः सर्वोपयोगितामावहन् भूयांसं प्रचारमधिगमिष्यतीति दृष्ट्या मूलादिभिः सहैव यथासुविधं खण्डश एव प्रकाशमानेतुं निरचीयत । अस्तु !

तस्यैव ग्रन्थरत्नस्य प्राथमिकं वार्ताष्टकं प्रारम्भिकभागरूपेण प्रकाशमुपनतस्तत्रभवतां भवतां करयुगलीमलंकरोति । एतदवलोकनेन विदितं स्याद् यत्—साकल्येन प्रकाशमुपनतेनानेन भक्तिमार्गीयसंस्कृतसाहित्यं विकलतां विजहद् भृशं भ्राजिष्यते । यतो हि भक्तिमार्गसाहित्ये भाष्यनिबन्धादिग्रन्थानां बाहुल्ये सत्यपि चरित्रग्रन्थानां तु नितान्तमभाव एव । भाष्यनिबन्धेषु संप्रदायस्य सिद्धान्तानां रहस्यानां च विद्यमानेऽपि विशदस्वरूपे तेभ्योऽमुमनाकलयतां संसारव्यवहारमाचरतामपि भक्तिमार्गीयत्वाभिमानिनामनधिगतशास्त्रशाणोत्तेजितसुशेमुषीकाणां मन्दाधिकारिणां हृदयेषु सरलया गिरा पुष्टिभक्तिमार्गरहस्यानि प्रवेशयतः संस्कृत भाषाभाषिणां मनीषिणामपि शास्त्रकान्तारसततपरिभ्रमणपरिश्रान्तायां मतौ च ऋते क्लेशादेव शुद्धाद्वैतसिद्धान्तानवतारयतोऽस्य ग्रन्थस्य साम्प्रदायिक साहित्ये महद् गौरवम्, प्रपूर्यते चानेन संस्कृतसाम्प्रदायिकसाहित्यक्षेत्रे रिक्तमतिमहनीयं चरित्रग्रन्थस्थानम् ।

ग्रन्थोऽयं हिन्दीभाषायां राजमानानां चतुरशीतिवैष्णववार्ताणां

श्रीनाथदेवकृतः संस्कृतानुवादः। अनुवादत्वादेव यथास्थानं निवेशयितुं शक्यत्वेऽप्यलंकाराणां नास्त्यस्मिन् सन्निवेशः। अनुवादस्यानुवादत्वं तु तत एव सिद्ध्यति, यदा कस्यांचिदेकस्यां भाषायां सालंकारो निरलंकारो वा समुपलभ्यमानः कोऽप्यर्थो भाषान्तरशब्दैस्तथैवोपस्थाप्येत। शब्दालंकारा यद्यनुवादग्रन्थे प्रयासमन्तरा स्वयमेव निविष्टाः स्युस्तर्हि न ते कदाचिदपि तदनुवादत्वविघातकाः। यतो हि कीदृशा अपि स्युर्नाम शब्दाः, अर्थोपस्थापनं तु कैश्चिदपि करणीयमेव भवेत्; यदि कुत्रापि अश्रव्यादिशब्दानां स्थाने सुभाष्याणि श्रवणमधुराणि मनोहराणि च पदानि प्रयुज्येरन्, तदा को नाम दोषो भवेच्छब्दालंकाराणाम्। किन्तु त एव यदि श्रममङ्गीकृत्यापि निर्बन्धेन निबद्धा भवेयुस्तर्हि पाठकानां मनः क्षणं प्रतिपाद्यविषयादाक्षिप्य स्वशोभानिरीक्षणाभिमुखीकरणेन, सातत्यप्रयोजितत्वादरुचिजनकत्वेन, कविकौतुकमाकलयतां तत्त्वान्वेषिणां वैराग्यवतां कदाचिदश्रद्धेयतोद्भावकत्वेन तेषां दोष एव। अतो नास्ति निर्बन्धप्रयोजितानां शब्दालङ्काराणां कुत्राप्यावश्यकता, विशेषतोऽनुवादग्रन्थे, तत्रापि च भक्तिमार्गीये चरित्रग्रन्थे। अर्थालङ्कारास्तु सर्वथैवानुवादग्रन्थे अप्रयोज्या एव भवन्ति। यतो हि अर्थस्यालङ्करणेऽर्थान्तरस्यैवावश्यकता निश्चिता, तद्यद्यनुवाद्यग्रन्थेऽनुपलभ्यमानं पाण्डित्यप्रचिकाशयिषुणाऽनुवादग्रन्थे निवेश्येत, तर्हि सोऽनुवाद एव नास्ति, किन्तु वस्त्वन्तरम्; अनुवादस्तु स एव नाम यत्—केषुचिच्छब्देषु यथोपलब्धस्य वस्तुनोऽन्यूनानधिकीकृतस्य तथैव शब्दान्तरैरुपस्थापनम्। कस्यचिद्वस्तुनो रूपकोपमादिभिरलंकारैः परिवर्द्धनं स्फुटमेव तस्य स्वरूपान्तरकरणम्। अतोऽर्थालंकाराणामनुवादग्रन्थेषु सर्वथा नास्त्येवावश्यकता। ततो यदुच्यते कैश्चिन्महाशयैः "अस्य ग्रन्थस्यालंकारिकी

सुश्लाघ्या नास्ति भाषेति" तदनवधेयम्। अनुवादस्य सकलत्वं सफलत्वं च भाषान्तरे प्रसिद्धस्य वस्तुनो याथातथ्येन स्वेष्टभाषयोपस्थापने सत्येव-भवति, तदस्मिन् ग्रन्थे पर्याप्ततयावलोक्यते। अहं तु विश्वसिमि यत्—सरलयाप्यर्थगम्भीरया, संक्षिप्तयापि विशदस्वरूपया समासव्यासादिप्रौढि गुणवत्या गिरा मूलार्थं यथातथमनुवदन् भट्टः श्रीमान् श्रीनाथदेवः स्वकीयं भूयस्तरां पाण्डित्यं प्राचीकटत्, महतामप्यन्येषां कृते कार्यमेतन्न सुकरं स्यादिति।

विद्याविभागसंचालकैः पं. कण्ठमणिशास्त्रिभिः स्नेहवशंवदत्वेन विशनगरवास्तव्यैः पं. पुरुषोत्तमशास्त्रिभिश्च कार्यान्तरव्यासक्तत्वेन यद् आदर्शपुस्तकान्तररहितस्य प्रतिपदं प्रायोऽशुद्धस्यास्य ग्रन्थस्य कठिनतमं संशोधनकार्यं स्वल्पकेऽ मपि न्यधायि, तच्चिरायुष्मतामाचार्य कुमारश्रीयदुनाथलालजीशर्मणामध्यापनकार्यं कुर्वन्नपि यथामति कथंचित् परिपूर्य कम्पमानेन हृदा तेषामेव पुरः स्थापये; प्रार्थये च चक्षुर्दोषेण मतिभ्रमेण वा संभाव्यमाना यदि काश्चित् संशोधनत्रुटयो जागरिताः स्युः साम्प्रतमपि, तर्हि प्रथमप्रयासे समुदात्तचित्तैः क्षमावित्तैर्भवद्भिः क्षन्तव्या इति।

अनावश्यकविस्तरमचिकीर्षुर्ग्रन्थस्यास्य समुचितसम्मानाय सुधीसमुदायं सम्प्रार्थ्य, अवशिष्टांशप्रकाशने विघ्नविहर्तिं कार्यकर्तॄणां शक्त्युत्साहाभिवृद्धिं च श्रीपतिपदारविन्दयोरभ्यर्थयमानः समुपैमि विरामम्।

श्री शु. सं. तृ. पोठेश्वरैःसह
हालोलस्थितौ
द्वि. श्रा. कृ. ५ सं. १९९६

विनीतनिवेदकः—
पु. लक्ष्मीनारायणशास्त्री
साहित्यभूषणः

श्री हरिः

अथ श्रीनाथदेव कृता

संस्कृत वार्ता मणिमाला

वार्ता १

जयत्यनन्तलीलः श्रीगोवर्द्धनधरः प्रभुः ॥
व्रजनागरिकः कृष्णः साङ्गोपाङ्गः सुपार्षदः ॥१॥
अथासीद्दक्षिणे देशे खंभंकाकरसंज्ञके ॥
यज्ञनारायणो भट्टस्तैलङ्गो याज्ञिको द्विजः ॥२॥
सभारद्वाजगोत्रोग्न्यस्तैत्तिरीययजुःकृती ॥
वेदादिसर्वशास्त्रज्ञो विष्णुस्वामिमतानुगः ॥३॥
तत्सुतोऽभूत्सोमयाजी गंगाधर इति श्रुतः ॥
तस्य सूनुर्गणपतिस्तस्य श्रीवल्लभः सुतः ॥४॥
तस्य श्रीलक्ष्मणो यज्वेल्लम्मगारुपतिर्महान् ॥
तस्य पुत्रा रामकृष्णश्रीश्रीवल्लभकेशवाः ॥५॥
तेषां मध्येऽभवद्यः श्रीवल्लभःसोग्निरेव हि ॥
आचार्यो भगवान्साक्षादाज्ञया श्रीहरेरिह ॥६॥
महालक्ष्म्यां तस्य गोपीनाथो ज्येष्ठः सुतो बलः ॥
यस्यैक आसीत्तनयः पुरुषोत्तम इत्यलम् ॥७॥
कृष्णोऽभूच्छ्रीवल्लभस्य कनिष्ठो विट्ठलः सुतः ॥
आचार्यरत्नं स महान्यतो गिरिधरादयः ॥८॥
गिरिधरश्च गोविन्दो बालकृष्णश्च वल्लभः ॥
रघुनाथो यदुपतिर्घनश्याम इति क्रमात् ॥९॥

रुक्मिण्यां षट् सुता जाताः पद्मावत्यां तु सप्तमः ॥
यत्संततिरिहाद्यापि राजते श्रेयसे नृणाम् ॥१०॥
तान्नौमि, श्रीमदाचार्यान् श्रीवल्लभविभावसून् ॥
विधूँश्च श्रीविट्ठलेशान्यान्प्रपन्ना हरिं गताः ॥११॥
चतुरशीतिकलक्षवियोनितः समनु कृष्णरतान्हरिरात्मनि ॥
समनुगृह्य यथा समशेषतां तदनु वृत्तमथेह तथोच्यते ॥१२॥
श्रीमदाचार्यगोस्वामिसेवकानां हरिं जुषाम् ॥
वर्णानामिह लिख्यन्ते वार्ताः स्त्रीणां तथा नृणाम् ॥१३॥
गोकुले गोविन्दघट्टे वेद्यामाचार्यसूरयः ॥
आसीना विश्रमंतस्ते क्वचिद्दिव्यं स्म चिन्तयन् ॥१४॥
महाप्रभोरिति ह्याज्ञा वचनं यदिह त्वया ॥
जीवानां ब्रह्मसम्बन्धः कार्यः स च कथं भवेत् ॥१५॥
जीवाः स्वभावतो दुष्टाः कलिकाले विशेषतः ॥
इति चिन्तातुरेष्वाराच्छ्रीगोपीजनवल्लभः ॥१६॥
आविर्भूयार्यानपृच्छत्कुतश्चिन्तातुराः स्थ भोः ॥
श्रुत्वेत्यार्याः प्रोचुरहो जीवा दुष्टा इति स्वयम् ॥१७॥
भवता चेदसम्बन्धो ब्रह्मणस्ते कथं घटेत् ॥
इत्याकर्ण्याथ विभुनाचार्यान्प्रत्युक्तमादरात् ॥१८॥
जीवानां ब्रह्मसम्बन्धबोधनं कार्यमार्यकाः ॥
तानहं स्वीकरिष्यामि भवन्नामोपदेशतः ॥१९॥
निवृत्तसर्वात्मदोषानिति श्रावण शुक्लके ॥
एकादश्यामर्धरात्रे पवित्राद्वादशीयुजि ॥२०॥

साक्षाद्भगवता प्रोक्तं पवित्रं श्रीप्रभोर्गले ॥
तस्मिन्कालेऽर्पितं त्वार्यैः सिता खण्डीकृतापि च ॥२१॥
तदक्षरश आचार्यैः स्वानुभूतं निरूपितम् ॥
स्वसिद्धान्तरहस्याख्ये ग्रन्थे समवधार्यताम् ॥२२॥
अथ कस्मिंश्चन पुरे श्रीमदाचार्यसेवकः ॥
श्रीदामोदरदासाख्यो हरसानीति विश्रुतः ॥२३॥
क्षत्री समर्पितस्वात्मा श्रीवल्लभपदानुगः ॥
दमलेति च संबोध्य वल्लभाचार्यदीक्षिताः ॥२४॥
प्रीत्या यस्याग्र इत्याहुरेष पुष्टिपथस्तव ।
हितार्थं वै प्रकटितस्तथा भागवतीं कथाम् ॥२५॥
रसभावभृतां नित्यं कथयन्ति स्म ते रहः ॥
किंच वार्ता भगवतो न भवेद्वा यदा क्वचित् ॥२६॥
तदेति कथयन्तिस्म दमलाऽजनि भोश्चिरम् ॥
प्रभोर्वार्ता नहि कृता क्रियतामधुनेति यत् ॥२७॥
स तादृगन्तरङ्गोभूद्येन गोपीपतेः श्रुतम् ॥
श्रीवल्लभाचार्यवर्यब्रह्मसम्बन्धवोचनम् ॥ ॥२८॥
तदनु श्रीमदाचार्यैर्दामोदर किमु श्रुतम् ॥
त्वया भगवता प्रोक्तमिति पृष्टो जगाद सः ॥२९॥
श्रुतं भगवता प्रोक्तं न तु बुद्धं मयेति किम् ॥
तदा श्रीवल्लभचार्यैः सूचितं भोः प्रभोर्मयि ॥३०॥
ब्रह्मसम्बन्धवचनं प्रोक्तं जीवहिताय हि ॥
तद्द्वाराङ्गीकृतिर्विष्णोः सर्वदोषनिवृत्तितः ॥३१॥

तदाज्ञाय स तुष्टोऽभूदात्मानं सततं मुदा ॥
कृतार्थं भुवि मन्वानः कृपयाचार्यपादयोः ॥३२॥
जात्वन्तिके भगवतः स्वाचार्यैः प्रार्थितं हृदा ॥
मा दामोदरदासस्य संस्था भूत्पुरतो मम ॥३३॥
भगवञ् श्रौतमार्गे च माप्नोत्विति विषादतः ॥
तदोमिति प्रदायैव ह्यार्येभ्योऽन्तर्हितो हरिः ॥३४॥
एकदा श्रीविठ्ठलेशा गोस्वामिचरणाः स्थितम् ॥
श्रीदामोदरदासाख्यं पृष्टवन्तः स्वसेवकम् ॥३५॥
भो दामोदरदास त्वं श्रीमदाचार्यदीक्षितान् ॥
किं स्वरूपान्विजानासि वदेति स ततोऽवदत् ॥३६॥
यो ह्यत्र जगदीशोऽस्ति सर्वैर्गीतो महान् प्रभुः ॥
ततोपि ह्यधिकान् जाने स्वाचार्यान् वल्लभाभिधान् ॥३७॥
इत्याकर्ण्यैव गोस्वामिश्रीविठ्ठलमहाशयाः ॥
उक्तवन्तः कथमिदमीश्वरादपितेऽधिकाः ॥३८॥
ततो दामोदरः प्राह भो श्रीमद्विठ्ठलेश्वराः ॥
देयं गुर्वथवा दातेत्येतदेव विचिन्त्यताम् ॥३९॥
पार्श्वेधिकं धनं यस्य यदि राति न कर्हिचित् ॥
तर्हिस्वित्तस्य किं कोर्थो यो ददाति स वै गुरुः ॥४०॥
श्रीशाख्यं यद्धनं सर्वस्वमाचार्या ददुर्यदि ॥
अस्मादृशेषु जीवेषु ततस्तेऽभ्यधिका मताः ॥४१॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य श्रीविठ्ठलमहाशयाः ॥
संतुष्टहृदयाः स्वीयमनुगृह्णन्ति ते स्म तम् ॥४२॥

किं चैकदा श्रीगोस्वामिश्रीमदाचार्यसूनवः ॥
स्वैरं स्थिता रमन्ते स्म पार्श्वे कुम्भनदासकः ॥४३॥
गोविन्दस्वामिनामान्ये तथा द्वित्राश्च सेवकाः ॥
उपविष्टा रहस्यग्रे हसन्तो हासयन्ति च ॥४४॥
तदैव दामोदराख्यमालोक्यागतमन्तिके ॥
उत्थिताः श्रीविट्ठलेशाः श्रीगोस्वामिमहौजसः ॥४५॥
तत्रोपवेशयामासुः स्वान्तिके तं महादरात् ॥
तदा दामोदरेणोक्तं श्रीगोस्वामिपुरः स्वतः ॥४६॥
महाराज न मार्गोयं सुनिश्चिन्ततया मतः ॥
किन्तु कृच्छ्रेणोपगते हरौ चिन्तात्मभावतः ॥४७॥
तदा गोस्वामिभिः प्रोक्तं सत्यमुक्तं त्वयानघ ॥
परन्तु श्रीमदाचार्यकृपा यत्र यदा तदा ॥४८॥
हरौ जनस्यार्तिचिन्ता भवित्रीत्यवसीयते ॥
विनैतच्छ्रीमदाचार्यानुग्रहान्नेति मे मतिः ॥४९॥
तदा दामोदरेणोक्तं दण्डवत्प्रणिपाततः ॥
महाराज बताऽस्माकं धर्मो विज्ञापनं सकृत् ॥५०॥
अग्रे तु श्रीभवन्तो हि गुरवः शुभकारिणः ॥
परमेतादृशो मार्ग इत्याचार्यमुखाच्छ्रुतम् ॥५१॥
इत्याश्रुत्य प्रसन्नाः श्रीगोस्वामिचरणाः सदा ॥
ऊचुर्दामोदरेह स्वां वार्तां प्रायस्तवास्यतः ॥५२॥
प्राहुर्मे श्रीमदाचार्याः कृपयेति विनिश्चितम् ॥
भवानेवं न चेद्ब्रूयादाप्तः कः कथयेदिति ॥५३॥

किंच दामोदर त्वां हि यदा पश्यामि मे मनः ॥
तदा संतुष्यति भृशं श्रीमदाचार्यसेवक ॥५४॥
नान्यस्त्वत्तो हिततम इति मन्ये न संशयः ॥
इत्येवं वल्लभाचार्यात्मजाः श्रीविठ्ठलेश्वराः ॥५५॥
यच्छिक्षां मानयामासुः सोऽभूद् दामोदरो महान् ॥
अथैकदा भगवतः समक्षमिति याचितम् ॥५६॥
त्रिवारं श्रीमदाचार्यैर्दामोदररतात्मभिः ॥
मदग्रे भगवन्दामोदरदासस्य मा स्म भूत् ॥५७॥
देहत्यागोन्यथा कोऽत्र मार्गरीतिं वदिष्यति ॥
सेवोत्सवप्रकारं त्वं श्रीगोपीनाथसंज्ञके ॥५८॥
बाले ममात्मजे गूढं विठ्ठले चेति भावतः ॥
काश्यां पूर्वप्रतिज्ञार्थं मयि सन्यस्य गच्छति ॥५९॥
तदेतदादिकार्यार्थमयमुद्धववन् मम ॥
चिरं श्रीभगवन्मार्गं ज्ञात्वा भुवि स तिष्ठतु ॥६०॥
एतादृशे निजे तस्मिन्सेवके सेवनाध्वनः ॥
धुरं न्यस्य गता काश्यां सन्यस्याचार्यसूरयः ॥६१॥
अथो कियद्दिनान्ते हि श्रीगोस्वामिमहात्मभिः ॥
अक्कापृष्टा महालक्ष्मीः कच्चिन्मातार्भभावतः ॥६२॥
अम्ब श्रीतातचरणैराचार्यैर्दर्शितेऽध्वनि ॥
कथं सेवोत्सवविधिः को भाव इति कथ्यताम् ॥६३॥
न जानीमो बालधियः शास्त्रतः को वदिष्यति ॥
इत्युक्ता सा ऽब्रवीद्वत्स स्वे दामोदरसंज्ञके ॥६४॥

निवेदितः स्वमार्गीयसिद्धान्तः श्रीमदार्यकैः ॥
स वेत्ति सर्वभावेन स्वमार्गोत्सवपद्धतिम् ॥ ॥६५॥
जिज्ञासया स पृष्टो हि सम्यगेव वदिष्यति ॥
इत्यावेदितहार्दास्ते श्रीगोस्वामिमहाशयाः ॥६६॥
गता दामोदरगृहं तत्त्वजिज्ञासया तदा ॥
दामोदरः पितृश्राद्धं कुर्वाणो दृष्टवान् प्रभून् ॥६७॥
श्रीमदाचार्यतनुजानुत्थाय प्रणनाम ह ॥
निवेशयामास च तानासने संमुखः स्थितः ॥६८॥
तदा गोस्वामिभिः प्रोक्तं श्रीदामोदरदास भोः॥
कारयिष्यामि त्वां श्राद्धमित्यथो कारयन्मुदा ॥६९॥
श्राद्धकर्मोत्तरं प्रोक्तं श्रीगोस्वामिभिरुत्स्मितम् ॥
भो दामोदरदासाद्य देहि मे श्राद्धदक्षिणाम् ॥७०॥
तदा दामोदरेणोक्तं ज्ञातहार्देन केवलम् ॥
वक्ष्यामि दक्षिणास्थाने मार्गवार्त्तां पुरोऽद्य वः ॥७१॥
तदा गोस्वामिभिस्तूष्णीमनुमोद्य स्मितं कृतम् ॥
ततो दामोदरेण श्रीगोस्वामिषु महात्मसु ॥७२॥
मार्गप्रणालिका सर्वा प्रतिपाद्य निवेदिता ॥
तदाप्रभृति गोस्वामिचरणैस्तातततत्त्वदः ॥७३॥
श्रीदामोदरदासाख्यः स्वप्रणामैककर्मणि ॥
हठात्स्वचरणाब्जाम्बुपाने च प्रतिबोधितः ॥७४॥
तदनु श्रीमदाचार्यैः स्वात्मा सन्दर्शितो बहिः ॥
अपूर्वं च वचः प्रोक्तं दामोदरपुरः क्वचित् ॥७५॥

मत्सूनुविट्ठलाधीश चरणोदकमाज्ञया ॥
ग्राह्यमार्येण भवता लोकान् वै संजिघृक्षता ॥७६॥
इत्याधाय शिरस्याज्ञां प्रातर्गोस्वामिनां गतः ॥
निकटेऽर्थितवान् दामोदरस्तच्चरणोदकम् ॥७७॥
प्रतिषिद्धस्तदा तैश्च प्रोक्तवाननुशासनम् ॥
मेऽभूत्पूर्वैर्गुराचार्यशासनं नान्यथा तु यत् ॥७८॥
तदाज्ञाय ददुः श्रीमदाचार्यप्रभुसूनवः ॥
तदाप्रभृति गोस्वामिचरणाश्चरणोदकम् ॥७९॥
यस्मै दामोदराख्याय तृतीये तृतीयेऽहनि ॥
स्वात्मानं दर्शयन्ति स्म श्रीमदाचार्यदीक्षिताः ॥८०॥
स्वमार्गवार्त्तामाहुश्च कृपापात्राय भाविताः ॥
कदाचिच्चेद् दर्शयेयुर्न स्वमाचार्यसूरयः ॥८१॥
तदास्यात्तद्दिने शूलव्यथा तस्योदरेऽधिका ॥
यदात्मानं दर्शयेयुः साऽथ शांता तदा भवेत् ॥८२॥
इत्याचार्यावलोकातिमुदितात्मा स वैष्णवः ॥
श्रीदामोदरदासाख्यः कियत्संवत्सरावधि ॥८३॥
अवदद्भगवद्वार्तां गूढां गोस्वामिनः प्रति ॥
अहर्निशं भागवतप्रक्रियां च स्वमार्गतः ॥८४॥
इत्थं यस्याधिकां बोधशक्तिं वीक्ष्य विलक्षणाम् ॥
गोस्वामिपादाः प्रणतिं प्रत्याचेरुर्हि तद्दिनात् ॥८५॥
वैष्णवानामथान्येषामाहुः स्म पुरतः क्वचित् ॥
अहो दामोदरस्यान्तराचार्याः सम्प्रतिष्ठिताः ॥८६॥

त एवोपदिशन्तीति ततो दामोदरस्य ताः ॥
वार्ता अगाधा भूयस्य इति प्रोक्ताः समासतः ॥८७॥
यावच्छ्रीवल्लभार्याणां मार्गस्येह स्थितिः कलौ ॥
तावद्दामोदरस्यास्य भवित्री जन्मभिर्मुहुः ॥८८॥

इति वैष्णव वार्ताया मालायां प्रथमो मणिः

वार्ता २

अथान्यो वैष्णवः श्रीमदाचार्यपदसेवकः ॥
मेघनश्रीकृष्णदासस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥८९॥
यदा श्रीवल्लभाचार्या, पृथ्वीप्रक्रमणे गताः ॥
तदा सार्थे कृष्णदासोऽनुयाति स्म पदानुगः ॥९०॥
उदीच्यां बदरीनारायणस्थानोत्तरं गिरेः ॥
कर्णिकाख्यस्य महतः शिखरात्पतितां शिलाम् ॥९१॥
स्तम्भयामास हस्तेनेत्यालोक्याचार्यवर्यकाः ॥
तुष्टा वरं वृण्विति तं त्रिवाचा समुदैरयन् ॥९२॥
तदा तेन पुरस्तेषां याचितं हि वरत्रयम् ॥
आद्यो मुखरतादोषनिवृत्तिर्मेऽस्त्विति स्वतः ॥९३॥
आयातु हरिसिद्धान्तः स्वमार्गस्येति चाऽपरः ॥
तृतीयो मद्गुरुगृहे पदधारणमित्युत ॥९४॥
तदाकर्ण्याचार्यवर्या ददुस्तद्वद् वरद्वयम् ॥
गुरुगृहे पदन्यासं नाऽङ्गीचक्रुर्महाशयाः ॥९५॥
अथो बदर्याश्रमतोऽप्यग्रे प्रचलितैः पुनः ॥
अमर्त्यगम्ये प्रदेशे श्रीमदाचार्यवर्यकैः ॥९६॥

प्रतिषिद्धोनुगः कृष्णदासोऽत्र स्थेयमेव ते ॥
नाऽऽगन्तव्यमितश्चेति स्वयं त्वेकाकिभिर्गतम् ॥९७॥
दिनत्रयावधि स्थाने स्थितं तेन च तत्र हि ॥
तृतीय दिवसान्ते तु स्वाचार्यैः सुसमागतैः ॥९८॥
उक्तस्तदेतो न गतः परावृत्य कथं भवान् ॥
तदातेनोक्तमाचार्याः क यामि भवतामहम् ॥९९॥
मुक्त्वा वो पादयुगलं शरणं मम नेतरत् ॥
श्रुत्वेति श्रीमदाचार्या भूयस्तुष्टास्तमब्रुवन् ॥१००॥
वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीति सेवकम् ॥
भूयोपि तत्तेन वृतं प्राक्तनं हि वरत्रयम् ॥१०१॥
पूर्ववत्तद्द्वयं दत्तमाचार्यैर्न तृतीयकः ॥
एकदा श्रीमदाचार्यान् गङ्गासागरसैकते ॥१०२॥
सुप्तान् यथासुखं रात्रौ कृष्णदासो विलोक्य सः
पाद संवाहनं मन्दं कुर्वाणोऽवोचदादरात् ॥ ॥१०३॥
भो महाप्रभवः किञ्चिद् बुभुक्षाचेत्तदेर्यताम् ॥
इत्याश्रुत्योक्तमाचार्यैर्धानापृथुकतन्दुलाः ॥१०४॥
भर्जिता मुदुला लभ्याश्चेत्स्युस्तानद्म्यहन्त्विति ॥
श्रुतवान्स समाज्ञाय स्वाचार्यान् शयिताञ् शनैः ॥१०५॥
कृष्णदासः समुत्थाय गङ्गां तीर्त्वा पुरे गतः ॥
तत्र भ्राष्ट्रे भर्जयित्वा क्रीतान् पृथुकतन्दुलान् ॥१०६॥

आनिनाय पुनर्मन्दं पादसंवाहमाचरत् ॥
अथाचार्यान्सम्प्रबुद्धानुत्थितानवलोक्य सः ॥१०७॥
कृष्णदासोऽग्रतस्तेषामर्पयामास तान्मृदून् ॥
तदा तानवलोक्योक्तमाचार्यैः कुत आहृताः ॥१०८॥
इति पृष्टः स्म स प्राह यथावद्वृत्तमात्मनः॥
श्रुत्वा भूयः प्रसन्नैस्तैरुक्तं भो वृणु मद्वरम् ॥१०९॥
ततस्तदेव तेनापि प्रार्थितं प्राग्वरत्रयम् ॥
ओमिति श्रीमदाचार्यैरभ्युपेत्य ह्युदीरितम् ॥११०॥
किमपि प्रार्थितुं शक्तो जीवोऽल्पोऽयं न मद्वरम् ॥
यदेतत्समये तेन प्रार्थितं देयमेव तत् ॥१११॥
यद्वा कदाचिद्भगवत्स्वरूपं प्रार्थितं भवेत् ॥
तदप्यस्मै दातुमर्हं वाग्बद्धेन मयेत्यथ ॥११२॥
प्रयातं श्रीमदाचार्यैरुत्थितैः शूकरस्थले ॥
तत्र श्रीकृष्णदासेन कृतं विज्ञापनं पुरः ॥११३॥
अत्रास्ते मे गुरुः कश्चिदानये तं पुरोऽद्य वः ॥
तद्विज्ञापनमाकर्ण्यप्रोक्तमाचार्यपण्डितैः ॥११४॥
तदन्तिके याहि परं दुःखं ते भवितेति वै ॥
तदा श्रीकृष्णदासस्तु मुदाविष्टस्ततोगतः ॥११५॥
प्रणम्याह गुरुं शीते तपन्तं वह्निनाऽऽसने ॥
भोः प्राप्ताः श्रीवल्लभार्यास्तत्पार्श्वे गम्यतां गुरो ॥११६॥
श्रुत्वोक्तं तेन सरुषा कृतः किमपरो गुरुः ॥
त्वं मे गुरुः परं युष्मत्प्रसादात्पुरुषोत्तमः ॥११७॥

लब्धो मयेश्वरः साक्षादिति सत्यं ब्रवीमि भोः ॥
तदोक्तं गुरुणा त्वेतत्कथं शक्येत वेदितुम् ॥११८॥
यदीश्वरः सत्यमिति साक्षात्स पुरुषोत्तमः ॥
तदैव कृष्णदासेन ज्वलतोऽग्नेर्गुरोः पुरः ॥११९॥
अङ्गारानञ्जलौ कृत्वा मुहूर्तान्तं समास्थितम् ॥
उक्तं च सत्यवचसाऽऽन्यथा भावोऽत्र चेदणुः ॥१२०॥
मे तदास्तां करौ दग्धाविति भीतो विलोक्य सः ॥
गुरुराह स्म करतो निःक्षिपेति पुनः पुनः ॥१२१॥
तथापि तेन ते नैव क्षिप्ता अङ्गारकाः करात् ॥
तदातेनैव गुरुणा हस्ताभ्यामात्मनो द्रुतम् ॥१२२॥
धृत्वा श्रीकृष्णदासस्याञ्जलितस्ते निपातिताः ॥
आः सत्यं तेऽभिविज्ञातं सन्ति ते पुरुषोत्तमाः ॥१२३॥
अतोऽहमपि तेषां वै शरणं यामि नान्यथा ॥
इत्यन्तर्गूढनिर्वेदः स तेषां शरणं गतः ॥१२४॥
कालान्तरे तत्कृपया सिद्धिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥
अथ श्रीकृष्णदासस्तु गुरुक्षोभसुदुःखभाक् ॥१२५॥
आगत्य श्रीमदाचार्यसमीपे तद्यथाऽब्रवीत् ॥
सर्वं जातं भवत्प्रोक्तं नान्यथेति कृपाबलात् ॥१२६॥
श्रीमदाचार्यपादानां मार्गसिद्धान्त आहितः ॥
बहिर्मुखरतादोषः कृष्णस्य सुविनिर्गतः ॥१२७॥
पुनः कदाचिदाचार्या गोप्यवार्तां स्म कुर्वते ॥
रसभावभृतां विष्णोः कृष्णदासाय धीमते ॥१२८॥

स च हर्षेण महता वैष्णवेष्ववदत्क्वचित् ॥
तस्योक्तं वृत्तमाचार्यसमीपे वैष्णवैः क्वचित् ॥१२९॥
प्रकाशयत्यं राजश्रीमदाचार्यवर्यकाः ॥
भवदुक्तां गोप्यवार्तां वैष्णवेष्विति चासकृत् ॥१३०॥
तदैव श्रीमदाचार्यैः स पृष्टः कृष्णदासकः ॥
किमहो कृष्णदास त्वं गोप्यवार्तां वदस्यलम् ॥१३१॥
मदीरितां वैष्णवानामग्र एते वदन्ति हि ॥
तदोक्तं कृष्णदासेन महाराजा महाशयैः ॥१३२॥
ते पृष्टव्याः समाहूय भवद्भिर्वैष्णवाः खलु ॥
कृष्णदासेन का गोप्यवार्ता प्रोक्ता भवत्स्विति ॥१३३॥
तदैव श्रीमदाचार्यैराहूता वैष्णवास्तु ते ॥
प्राप्ताः प्रणम्योपासीनाः पृष्टा गोप्यकथास्मृतौ ॥१३४॥
तदोक्तं तैर्महाचार्याः कृष्णदासमुखाच्छ्रुताः ॥
गोप्यवार्ताः परं नाप्ताः स्मृतिगोचरतामिति ॥१३५॥
तदा तूष्णीं स्थितं श्रीमदाचार्यैः सस्मिताननैः ॥
सर्वेषां मिषतां मध्ये कृष्णदास उवाच ह ॥१३६॥
भो महाप्रभवो गोप्या वैष्णवैर्यदि वा श्रुताः ॥
ता वार्तास्तर्हि किं जातं हृदि न स्थिरतामिताः ॥१३७॥
तत्स्थैर्यं दानसापेक्षं दानं दातृवशं यतः ॥
तद्दानं तु महाचार्या भवन्तः कुर्यु रेव चेत् ॥१३८॥
तास्तद्धृदिस्था भवन्ति नान्यथेति मतिर्मम ॥
इत्युक्त्वा विररामाथ सर्वे निःसंशयास्तदा ॥१३९॥

यथागतं गताः सर्वे श्रीमदाचार्यसेवकाः ॥
एतादृशः कृष्णदासो बभूवान्वर्थनामभाक् ॥१४०॥
श्रीवल्लभाचार्यवर्यकृपापात्रं स वैष्णवः ॥
एकदा कृष्णदासेन पृष्टमाचार्यकान्प्रति ॥१४१॥
आर्याः प्रभोः प्रियं किंस्विदप्रियं ब्रूत शास्त्रतः ॥
श्रुत्वेत्यार्याः प्राहुरहो प्रभुरुत्तमवस्तुभुक् ॥१४२॥
परन्तु गोरसस्यातिभोक्ता नो भक्तवत्सलः ॥
विद्ध्यप्रियं हरेर्धर्मं भक्तिमार्गविरोधि यत् ॥१४३॥
इत्याकर्ण्य प्रमुदितः क्वचिदित्थं स पृष्टवान् ॥
रघुनाथः कोशलाः स्वाः प्रजा आदाय जग्मिवान् ॥१४४॥
स्वधामाथ स्वरनयद्रामो दशरथं कुतः ॥
तत्र प्रत्यूचुराचार्या भो दयालुः स राघवः ॥१४५॥
तं तादृशं स्वरनयत्पितरं कैकयीवशम् ॥
यः स्ववाक्यमृतं कर्तुं विपिने राममत्यजत् ॥१४६॥
श्रुत्वेति पुनरापृच्छदार्या भक्तोपि सन्न यः ॥
प्रभोर्लीला यथारूपसम्बन्धं भावयत्यसौ ॥१४७॥
विधिवत्तत्कथमिति संशयो मे निवार्यताम् ॥
तत्र प्रोचुर्भूय आर्या रे करोति प्रभुः स्वतः ॥१४८॥
अनाचन्रतो यथावदेते भक्ता अपि स्वयम् ॥
स्युः कथं वा नु भविनो भक्तसङ्गतिवर्जिताः ॥१४९॥
सद्भक्तसङ्गिनः स्युश्चेत्प्रभोर्लीलाविदस्तदा ॥
स्वरूपयोग्यमात्मानं जानन्तो नाचरन्ति तत् ॥१५०॥

आचरन्ति च केऽप्यन्ये नान्तःकरणपूर्वकम् ॥
ततो विभोरूपलीलाभेदं नानुभवन्ति ते ॥१५१॥
सङ्गादुत्तमभक्तानां श्रीभागवतभावनात् ॥
पृष्ट्वा वा भावमारूढो भगवद्भावमाप्नुयात् ॥१५२॥
कृष्णो व्रजस्थानां सङ्गे सदैव स्थितवान्यथा ॥
सेवायां स तथारुद्ध इति निश्चयवान् भवेत् ॥१५३॥
यत्रैतन्मार्गीयजना येषां हृदि हरिः सदा ॥
ते वैष्णवाः सानुभवास्तेषां सङ्गः फलावहः ॥१५४॥
यथेह गर्जनाद्याः स्युर्भावतः सेवया सिताः ॥
तेषां सर्वेऽत्राभिलाषाः सिद्धा आसन् भवन्ति च ॥१५५॥
लीलानां व्रजभक्तानां भावमेवानुचिन्तयेत् ॥
सेवाप्रकारमेतस्य वैष्णवसङ्गतश्चरेत् ॥१५६॥
यः पृष्ट्वा सर्वभावेन स कृष्णानुभवी भवेत् ॥
इत्याश्रुत्य स गम्भीरं शास्त्रार्थं मुखतः सतः ॥१५७॥
आर्याणां सेवकः कृष्णदासो निःसंशयोऽभवत् ॥
एकदा श्रीमदाचार्यैर्गतः सह स वैष्णवः ॥१५८॥
बदर्यां श्रीमदाचार्याः फलाहारं समाचरन् ॥
तत्र क्वापि फलाहारकरणार्थं फलान्यपि ॥१५९॥
न लेभे कृष्णदासोऽथ बदरीशोऽप्यमार्गयत् ॥
क्वचिन्न लेभे सोऽपीशः कृष्णदासश्च तावुभौ ॥१६०॥
ऊचतुः श्रीमदाचार्यसमक्षं खिन्नचेतसौ ॥
भो महार्याः फलाहारकृते वोऽत्र फलान्यपि ॥१६१॥

क्वचिन्न लब्धान्यावाभ्यां ज्ञाप्यतां करवाव किम् ।
तथालोक्याचार्यवर्याः स्वान्तः खिन्नहृदोऽब्रुवन् ॥१६२॥
अहो मदर्थं बदरीनाथोऽपि श्रममाचरत् ॥
इत्युत्थाय स्वयं पाकमाचरन्नार्यसत्तमाः ॥१६३॥
समर्प्य तद्भोगमस्मै बुभुजुस्तं प्रसादितुम् ॥
इत्येतद्वृत्तमालक्ष्य वैष्णवाश्चावदन् प्रियम् ॥१६४॥
हंहो श्रममिमं तं श्रीबदरीशः कुतोऽकरोत् ॥
तदाकर्ण्याब्रवीत्कृष्णदासो रे विकलाःस्थ किम् ॥१६५॥
आचायार्थं श्रमं साक्षाद्गोवर्द्धनधरः प्रभुः ॥
कुरुते किमुतैषोऽत्र बदरीपतिरित्यलम् ॥१६६॥
कदाचित्ते महाचार्या बदरीविपिने घने ॥
विचरन्तः स्वीयकृष्णदासमर्वाग् जनस्थले ॥१६७॥
अवस्थाप्यावदन्नेवं त्वमिह तिष्ठ मेऽनुग ॥
अहमेकः प्रतिष्ठामि प्रभोर्मन्दिरसंमुखम् ॥१६८॥
इत्याज्ञाप्य गतास्त्वार्याः स्वालयं बदरीपतेः ॥
तदन्तिके व्यासमुनेराश्रमं स्वयमभ्यगुः ॥१६९॥
तत्रासीनं व्यासदेवं वीक्ष्योचुर्विनयान्विताः ॥
जयश्रीकृष्णेति मुदा व्यासोऽभ्यागत्य सोऽब्रवीत्॥१७०॥
भो वागीशाचार्यवर्याः श्रीमद्भागवतेऽखिले ॥
टीका कृताऽऽस्ते भवद्भिरिति श्रुत्वाऽथ तेऽब्रुवन् ॥१७१॥
कृष्णद्वैपायन विभो कृता सेह मयेत्यृतम् ॥
तन्निशम्याऽथ स मुनिर्महामाश्राव्यतां तु सा ॥१७२॥

तदोमित्यभ्युपेत्यार्याः टीकां स्वेन कृतां मुदा ॥
वामबाहुकृतेत्यत्र व्याचख्युर्नैकधा बुधाः ॥१७३॥
तदाकर्ण्याब्रवीद्व्यासोऽवधर्त्तुं न क्षमोस्म्यहो ॥
एतावताऽलं गम्भीरश्रीभागवतभावुकाः ॥१७४॥
तमापृच्छंस्तदाचार्या मुने भ्रमरगीतके ॥
व्रजौकसामभिमुखोद्धवप्रस्थापनोत्सवे ॥१७५॥
पद्यं पतितमाभाति तद्देयमपरत्र च ॥
ज्ञाप्यं न्यूनं यदधिकं पाठं भिन्नं समाहितम् ॥१७६॥
तच्छृण्वानः कृष्णमुनिरङ्गीकृत्येत्यवाचयत् ॥
आत्मत्वाद्भक्तवश्यत्वात्सत्यवाक्त्वात् स्वभावतः ॥१७७॥
इत्याद्युपरि टीकान्तेऽनन्तरं चक्रुरादरात् ॥
ततो द्वितीयेऽह्न्याचार्या बदरीशं व्यलोकयन् ॥१७८॥
तद्दिने वामनद्वादश्युपोषणपरान्स तान् ॥
बदरीपतिराहेति भो महार्या मया वने ॥ ॥१७९॥
सर्वत्र फलमन्विष्टं फलाहाराय निर्जने ॥
आतिथ्यार्थं च भवतामुपलब्धं न कुत्रचित् ॥१८०॥
तद्भुज्यतां प्रसादान्नमुत्सवान्ते च पारणम् ॥
ततः प्रभृति केषांचिदस्मन्मार्गानुवर्त्तिनाम् ॥१८१॥
कृताकृतं श्रीवामनद्वादशीव्रतमुच्यते ॥
ततस्त्वार्या बदरिकाधीश्वरेण विसर्जिताः ॥१८२॥
तत्र सन्तं कृष्णदासं समेतास्त्रिदिनेन तम् ॥
तिष्ठन्तमेकपादेन दृष्ट्वात्यर्थमभर्त्सयन् ॥ ॥१८३॥

अहो त्वामहमास्थाप्य गतवान्स भवानिह ॥
उपविष्टः कथं नात्र कृष्णदास यथासुखम् ॥१८४॥
तदाकर्ण्योक्तवान्कृष्णदासो भो मे महाशयाः ॥
एवमेवानुशास्तिर्वो यदत्र स्थीयतामिति ॥१८५॥
ततोऽहं स्थितवानेवं न त्वत्रासितवानिति ॥
आश्रुत्य श्रीमदाचार्यास्तुष्टा मुमुदिरे भृशम् ॥१८६॥
सेवकस्य तु धर्मोऽयं यथाज्ञावचनं सताम् ॥
तथैवानुविधातव्यमिति धर्मविदो विदुः ॥१८७॥
इति वैष्णववार्तामालायां द्वितीयोमणिः

वार्ता ३

श्रीदामोदरदासोन्यः कान्यकुब्जे बभूव ह ॥
क्षत्री शंभरवालाख्यस्तस्यवार्ता निरूप्यते ॥१८८॥
तेन दामोदरेणाऽत्तं ताम्रपत्रं क्वचिद् भुवि ॥
तस्मै केनचिदित्युक्तं स्वप्ने येनाक्षराणि भोः ॥१८९॥
ताम्रपत्रगतान्यग्रे वाचितानि भवन्ति हि ॥
तस्य त्वं शरणं याहि सर्वथेति प्रबुद्धवान् ॥१९०॥
बहूनां स पुरः पत्रं दर्शयामास वैश्यराट् ॥
अस्पष्टवर्णं तत्पत्रं नैव केनापि वाचितम् ॥१९१॥
ततः कतिपयाहानुपदमाचार्यपण्डिताः ॥
तत्र याता उपघनस्थले समुषिताः पुरे ॥१९२॥
प्रेषयामासुरामान्नानयने कृष्णदासकम् ॥
न ज्ञापनीयोऽस्मि पुरः कस्यापीति प्रबोध्य तम् ॥१९३॥

यद्दामोदरदासः स्वयमायास्यति पथिस्व आचार्याः ॥
जीवोद्धारणमुदितं भावि स्वतएव तदिति हृदा ॥१९४॥
गतस्स कृष्णदासोऽपि ततो ग्रामे तदाज्ञया ॥
आमान्नानयने दामोदरदासोऽमिलत्तदा ॥१९५॥
प्रत्यभ्यजानात्तं कृष्णदासं दर्शनमात्रतः ॥
मध्येमार्गं नृपद्वारादश्वारूढः समागतः ॥१९६॥
दामोदरः पृष्टवान् भोः किमाचार्याः समागताः ॥
तदोक्तं कृष्णदासेन न मे तदनुशासनम् ॥१९४॥
यद्ब्रूयामधिकां वार्तामामान्नानयनात्पराम् ॥
इत्यावेद्य तदामान्नं कृष्णदासः समाययौ ॥१९८॥
तस्यानुपदमायातः स च दामोदरः स्वतः ॥
आगत्यान्तःस्थितान् गेहे श्रीमदाचार्यपण्डितान् ॥१९९॥
प्रणम्य दण्डवद्दामोदरदासोऽग्रतः स्थितः ॥
दृष्ट्वा तमारात् पप्रच्छुः कृष्णदास कथं त्वया ॥२००॥
ज्ञापितोऽहमिति श्रुत्वा कृष्णदास उवाचह ॥
न मया वेदितः श्रीमदागमोऽस्यानुवर्त्तिनः ॥२०१॥
तावद्दामोदरेणोक्तं महाराजा धिया मयि ॥
अनेन नैवाभिहितं श्रीमदागमनं स्मृतम् ॥२०२॥
परं दृष्टवता चैनं मयानुपदमागतम् ॥
इति सत्यं समाकर्ण्य श्रीमदाचार्यसूरयः ॥२०३॥
दामोदरं तं प्रत्यूचुरहो पत्रं समानय ॥
तदोक्तं तेन भो प्राज्ञाः किं पत्रेण प्रयोजनम् ॥२०४॥

प्रपन्नं मां सानुबन्धमङ्गीकुरुत किंकरम् ॥
तथापि तैः प्रसिद्ध्यर्थमीरितः स समानयत् ॥२०५॥
ताम्रपत्रं तदाचार्यचरणाग्रे न्यवेदयत् ॥
विलोक्य पत्रमाचार्या वाचयामासुरादरात् ॥२०६॥
ज्ञात्वाऽऽभिप्रायमखिलमङ्गीचक्रुर्हरीच्छया ॥
तं दामोदरदासं तत्पत्नीं चापि पतिव्रताम् ॥२०७॥
शरणात्मकमन्त्रेण गद्यपञ्चाक्षरेण च ॥
हरौ निवेदयामासुरात्माद्यर्पणपूर्वकम् ॥२०८॥
ततस्ताभ्यां दम्पतिभ्यां परमादरपूर्वकम् ॥
स्वगृहे श्रीमदाचार्याः समानीता निवासिताः ॥२०९॥
तदन्वाभ्यां जम्पतिभ्यां विज्ञाप्याञ्जलिपूर्वकम् ॥
प्रोक्तं भोः प्रभवो नित्यमावाभ्यां कार्यमत्र किम् ॥२१०॥
तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैर्भो युवाभ्यां प्रभुर्हरिः ॥
भजनीयः कलौ मूर्त्या प्रेमसेवाप्रकारतः ॥२११॥
तदान्विष्याचार्यवर्यैः स्वर्णकारस्य कस्यचित् ॥
गृहे विप्रन्यासभूतो मूर्तिमान् द्वारिकेश्वरः ॥२१२॥
चतुर्भुजः श्यामतनुः प्रदाय धनमाहृतः ॥
दामोदरस्य स गृहे लिप्ते समुपवेशितः ॥२१३॥
आदितो नूतनैः पात्रैर्मृन्मयैरपि चाम्बरैः ॥
समं संभृत्य सम्भारं शय्यासिंहासनादिकम् ॥२१४॥
आगत्य श्रीमदाचार्यैर्मन्त्रपूर्वकमादरात् ॥
पञ्चामृतेनाभिषिक्तः प्रभुः श्रीद्वारिकेश्वरः ॥२१५॥

वस्त्रभूषालंकृतश्च स्थापितः पीठके शुभे ॥
भोगारार्तिसुगीताद्यैरुत्सवः सुमहान्कृतः ॥२१६॥
दामोदरण विप्राद्या वैष्णवाश्च विशेषतः ॥
भोजिताः परमान्नेन सपत्नीकेन तेन हि ॥२१७॥
ततःप्रभृति नित्यं स प्रेम्णा सेवां समाचरत् ॥
नागवल्लीदलानि श्रीद्वारिकेशार्थमेकदा ॥२१८॥
आनीतानि श्यामलानि दृष्ट्वाचार्यैः प्रबोधितः ॥
भो दामोदरदासेत्थं नागवल्लीदलानि ते ॥२१९॥
श्यामानि नार्पणीयानि ह्युत्तमोत्तमभोजिने ॥
नूतनं वस्तु परममर्प्यमन्यानिवेदितम् ॥२२०॥
यद्यदिष्टतमं लोकेयच्चातिप्रियमात्मनः ॥
भोज्यं भक्ष्यं रम्यवस्त्रं सुगंधिद्रव्यमेव च ॥२२१॥
अथ ग्राह्यमर्पणीयन्तत्प्रसादीकृतं स्वयम् ॥
इत्येवं भगवन्मार्गविधिं श्रुतवता हृदि ॥२२२॥
श्रीमदाचार्योक्तशिक्षावचनं तेन धारितम् ॥
श्रीदामोदरदासेन सपत्नीकेन नित्यदा ॥२२३॥
सेवापरेण स्वविभोर्जलानयनकारिणा ॥
आहरन्तं जलमिमं वीक्ष्याह श्वशुरः क्वचित् ॥२२४॥
आनेतव्यं जलं दास्या ज्ञातयोऽत्र हसन्ति नः ॥
श्रुत्वेति तेनोमित्युक्तं परेद्युर्दम्पती गतौ ॥२२५॥
प्रत्येकं घटमादाय तस्यापणसमीपतः ॥
तथोभौ प्रेक्ष्य स ह्रीणो गृहे तस्याऽपतत्पदोः ॥२२६॥

क्षम्यतां पूर्वं तत्कार्यं स्वयं कुर्यास्तथा नहि ॥
श्रुत्वेति स्वयमेवैको जलमाहरदुत्तमः ॥२२७॥
एवं जुषं तु तं साक्षाद्याचते भाषते प्रभुः ॥
एकदा श्रीमदाचार्यैरुक्तं तत्परिचर्यया ॥२२८॥
दृष्ट्वा तयोर्मेदभावं दम्पत्योर्भिषतां सतम् ॥
हं हो न दृष्टो यै राजाम्बरीषो वैष्णवः श्रुतः ॥२२९॥
तैरयं दृश्यतां दामोदरदासः स्त्रिया सह ॥
सचाम्बरीषो मर्यादामार्गीयो वैष्णवोऽभवत् ॥२३०॥
अयं तु पुष्टिमार्गीय इति भावविवेकतः ॥
एवं सेवां स कुर्वाणः पत्न्या सह महामतिः ॥२३१॥
मन्दिरे श्रीद्वारिकेशं शाययित्वोर्ध्वमेकदा ॥
स्वयं सुप्वापोष्णकाले चतुर्द्वारि सुवातके ॥२३२॥
तदहोरात्रमूष्मापि भूय एवाभ्यजायत ॥
अधः सुप्तां गृहे दासीमेकां संप्रतिबोध्य च ॥२३३॥
श्रीद्वारिकेशः संप्राह कपाटोद्घाटनं कुरु ॥
तदाश्रुत्य तु दास्या तत्कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥२३४॥
कृत्वा तु सुप्ता सामूढा निद्रयोपहतेन्द्रिया ॥
जाते प्रभातेऽथ दामोदरदासः समुत्थितः ॥२३५॥
चैत्यं ददर्श पत्नीं तदुद्घाटितकपाटकम् ॥
ससंभ्रमधियाऽपृच्छत्कपाटोद्घाटनं कथम् ॥२३६॥
कृतं केन विशङ्केन जनेनेह निगद्यताम् ॥
तदाकर्ण्य भिया दास्या गदितं भो मया निशि ॥२३७॥

द्वारिकेशेनेरितया कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥
इत्याश्रुतवता तेन सरुषोक्तं सतर्जनम् ॥२३८॥
त्वया किमिति रे दासि कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥
ततस्त्वसौ सेवनार्थं मन्दिरे गतवाँस्त्वयम् ॥२३९॥
तत्र प्रबोधयामास प्रभुं स्वं द्वारिकेश्वरम् ॥
तदोक्तं द्वारिकेशेन कथं दामोदर त्वया ॥२४०॥
भर्त्सिता वर्जिता दासी सा मयैवेरिता खलु ॥
कपाटोद्घाटनं चैत्यद्वारः कृतवती सती ॥२४१॥
त्वं तु गत्वोपरिगृहे सुप्तो वातायने निशि ॥
मां शाययित्वान्तर्गेहे स्वयमूष्मातिकातरः ॥२४२॥
इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं तत्र दामोदरः स्वयम् ॥
संकल्पं कृतवान्नव्यं कारयित्वैव मन्दिरम् ॥२४३॥
वातायनमथान्नं हि भोक्ष्यामीतिप्रतिज्ञया ॥
तदा स्त्रियोक्तं प्रतिज्ञा कथं ते निर्वहेदहो ॥२४४॥
अनल्पकालसाध्यत्वात् प्रभुमन्दिरनिर्मितेः ॥
विना प्रसादान्नभुक्तिं चिरं कथमवस्थितिः ॥२४५॥
इत्युक्ते स पुनः प्राह तर्हि रन्धितमन्नकम् ॥
नात्स्यामि तु फलाहारं करिष्यामीति निश्चितम् ॥२४६॥
इति सत्यप्रतिज्ञेन फलाहारं प्रकुर्वता ॥
श्रीदामोदरदासेन मन्दिरं कारितं शुभम् ॥२४७॥
शुभे मुहूर्त्ते तत्रात्मप्रभुः समुपवेशितः ॥
नित्यं सेवां चकारासौ सपत्नीको मुदान्वितः ॥२४८॥

एकदापुनरात्मीयंप्रभोर्भोगोत्तरं मुदा ॥
शय्यां मार्जयता तेन मन्दिरे तल्पकान्तिके ॥२४९॥
स्वास्तृते स्वासने दृष्ट्वा मार्जार्योच्चरितं मलम् ॥
उक्तं हंहो भगवता स्वशय्यापि न रक्ष्यते ॥२५०॥
तदनु स्वजनेनाथ तन्निःसार्य विलिप्य च ॥
सेवाकर्मण्याप्रृतोऽभूत् राजभोगसमर्पणे ॥२५१॥
समर्प्य सूपोदनकस्थालं शाकादिवेष्टितम् ॥
यावद्बहिः समासीत तावत् स्वप्रभुणा रुषा ॥२५२॥
पदा निःक्षिप्य तत् स्थालमुक्तं रे सेवकोऽत्र कः ॥
त्वं वाऽहं वेति रक्षां कः कुर्यात्सर्वस्य वस्तुनः ॥२५३॥
इत्याकर्ण्य तदा दामोदरेण च सह स्त्रिया ॥
अनुनीतश्चाटुवाक्यैर्द्वारिकेशोऽनुतापिना ॥२५४॥
पूर्णनूतनपाकेन राजभोगेन भोजितः ॥
तथापि मासद्वितयं द्वारिकेशो न चावदत् ॥२५५॥
ततो बहुविधैर्वाक्यैरनुनीतः स्वयं प्रभुः ॥
चिरादवददाचार्यानुगं दामोदरं प्रति ॥२५६॥
एकदा हरसान्याख्यः श्रीदामोदरदासकः ॥
गृहं शंभलवालस्य गतो दामोदरस्य ह ॥२५७॥
श्रीदामोदरदासेन शंभलग्रामवासिना ॥
संमानितो बहुविधं पंचसप्तदिनं स्थितः ॥२५८॥
ततोऽरिल्लग्राममितः स्वाचार्यान् दृष्टवान्नतः ॥
पृष्टोऽथ श्रीमदाचार्यैः स्वागतं भद्रमस्तु ते ॥२५९॥

दामोदरगृहे स्थानं सुकृतं बत ते कृतम् ॥
प्रसदान्नं किं गृहीतं तत्र स्थितवतेति भोः ॥२६०॥
अवदत् सत्यमेवाऽग्रे तेषां दामोदरोऽनुगः ॥
महाचार्या मया तत्र प्रसादान्नं न रन्धितम् ॥२६१॥
भुक्तं चिरं स्थितवता दामोदरगृहे सता ॥
तदाकर्ण्याचार्यवर्यैरुषोक्तं करुणाकरैः ॥२६२॥
अहो मदन्तरङ्गाय सेवकाय गृहे प्रभोः ॥
सेवकेन मदीयेन तेन नाऽवेदितं कुतः ॥२६३॥
रन्धितं तत्प्रसादान्नमुच्छेषमधरामृतम् ॥
इत्यस्फुरद् गृहे दामोदरशम्भलवासिनः ॥२६४॥
प्रायो रुष्टा ममाचार्या यामि कान्ते हरिं जुष ॥
श्रीमदाचार्याभिमुखमित्युक्त्वा निःसृतो गृहात् ॥२६५॥
अरिल्लग्राममागत्य स च स्वाचार्यपादयोः ॥
पतितो दण्डवन्मूर्ध्ना साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ॥२६६॥
तमालोक्याचार्यवर्या न तत्संमुखमास्थिताः ॥
इत्यकस्मात्क्रुधो बीजमन्विष्यन्स विसिस्मिये ॥२६७॥
विज्ञप्तिं कृतवान्नीचैर्महाराजा महाशयाः ॥
कोऽपराधोस्तिऽमे दृष्टो न तं जानामि बोध्यताम् ॥२६८॥
तदोक्तं श्रीमदाचार्यैः कथं तस्मै त्वया प्रभोः ॥
प्रसादान्नं स्थितवते रन्धितं नोपभोजितम् ॥२६९॥
तदाश्रुत्योदितं दामोदरदासेन कम्पता ॥
महाराजधिया दामोदरः पृष्टव्य एव वः ॥२७०॥

रन्धितं तत्प्रसादान्नं कथं नात्तं त्वयेति सः ॥
तदाहूय स तैः पृष्टः श्रीमदाचार्यपण्डितैः ॥२७१॥
यथातथं समवदन्महाराजा मयोषसि ॥
बालभोगाप्तसामग्रीप्रसादान्नं प्रभोस्तुयत् ॥२७२॥
तदेव भुक्त्वा सुप्रीतं मेवापक्वान्नमेवच ॥
रन्धितान्नं रुच्यभावान्न गृहीतमिति स्वतः ॥२७३॥
तच्छ्रुत्वा श्रीमदाचार्यैरुक्तं भो यद्यपि त्वया ॥
न स्वेच्छया रन्धितान्नं भुक्तं मे तु ततोऽपि रुट् ॥२७४॥
अस्मिन्दामोदरे जातेत्याचार्यास्तदनु स्वयम् ॥
समाधाय तदा दामोदरदासं स्वसेवकम् ॥२७५॥
बहु शंभलवालं तं मुदा विससृजुर्गृहे ॥
अथ वार्तेतरा दामोदरदासस्य रूप्यते ॥२७६॥
ख्याता शंभलवालस्य श्रीमदाचार्यसेविनः ॥
कान्यकुब्जे निवसतो गृहे गत्वा समेत्य हि ॥२७७॥
श्रीनन्दवासिनो लोका यान्त्यग्रे वैष्णवाः खलु ॥
श्रीमदाचार्यचरणदर्शनार्थं समुत्सुकाः ॥२७८॥
तदा दामोदरोऽप्येषां प्रत्येकं स्वर्णमुद्रया ॥
हस्तेसमुपहारार्थं प्रतिपादितयात्मनः ॥२७९॥
श्रीमदाचार्यपादेषु नतिसंदेशमावदत् ॥
रिक्तपाणिः कथमिति ब्रूयां प्रणतिवाचिकम् ॥२८०॥
तादृक्स्वभावो यो भावोद्गारिवर्णश्च निर्ममः ॥
दामोदरः सदामोदी पटुः प्रभुनिषेवणे ॥२८१॥

शतं यच्छ्वशुरेणोरुधनार्धेनेह दासिकाः ॥
कन्यकोद्वाहसमये पारिबर्हे प्रयोजिताः ॥२८२॥
सुखस्थितां मम सुतामेताः परिचरन्त्विति ॥
तथापि दामोदरस्य तस्य पत्नी हरिप्रिया ॥२८३॥
परिचर्याकर्म हरेः स्वयमेव चकार ह ॥
पादौसंवाहयन्तं स्वं दामोदरमथ क्वचित् ॥२८४॥
गृहे शयानाः स्वाचार्याः पप्रच्छुरिदमादरात् ॥
रे कश्चित्तेऽभिलाषोऽस्ति श्रुत्वेत्याह स मे नहि ॥२८५॥
स्त्रियं पृच्छेति सच तामपृच्छत्साऽर्थयत्सुतम् ॥
तत्काममावेदयत्ताँस्ते चाऽहुर्भविता सुतः ॥२८६॥
इत्युक्त्वाऽथगतास्ते श्रीद्वारं सा सत्ववत्यभूत् ॥
एकदा गर्भवत्यान्तः कुर्वत्या परिचारणम् ॥२८७॥
पार्श्ववर्त्तिगृहस्त्रीभिर्द्वारापृष्टः स्व (भडली) ॥
प्राह ते भविता पुत्र इत्यन्याश्रयदोषतः ॥२८८॥
तस्य भावात्सुतं श्रुत्वा प्राप्तैराचार्यकैः क्वचित् ॥
अस्पर्शयद्भिः स्वौ पादौ पुरो दामोदरस्य ह ॥२८९॥
प्रोक्तं भावी म्लेच्छ इति जातो नीतोऽम्बिकाम्बया ॥
बभूव म्लेच्छसंसर्गान्म्लेच्छो देशान्तरं गतः ॥२९०॥
तद्दुःखपरितप्तौ तावनपत्यौ च दंपती ॥
अतिचक्रमतुः कालं भूयांसं हरिसेवया ॥२९१॥
श्रीदामोदरदासस्य देहत्यागो यदाभवत् ॥
तदा पत्न्या तथाभूतो गोपितो न प्रकाशितः ॥२९२॥

वैष्णवेभ्यः शनैरुक्तं नौरानेया सुमूल्यतः ॥
इतीरितैस्तैरानीता नौर्घट्टे कान्यकुब्जके ॥२९३॥
तत्र नावि धृतः श्रीमान् द्वारिकेशः प्रभुः स्त्रिया ॥
धनवस्त्रादिसामग्रीसहितः सपरिच्छदः ॥२९४॥
उक्तं भो वैष्णवा एतदरिल्लग्राममाप्यताम् ॥
श्रीमदाचार्यनिकट इति तैस्तत्तथा कृतम् ॥२९५॥
त्रिंशत्क्रोशगतायां तु नौकायां गाङ्गवारिणि ॥
दामोदरः स्त्रिया संस्थामितः पश्चात्प्रकाशितः ॥२९६॥
श्रुत्वा मृतं समायाता वैष्णवाः सुहृदस्तदा ॥
तस्य देहस्य संस्कारमकुर्वन् विधिवत्पुरः ॥२९७॥
श्रुत्वाऽऽगतः सुतो म्लेच्छो जातो दामोदरस्य यः ॥
गृहे किमपि नाऽऽप्तमासीद्द्रव्यं पितुर्हियत् ॥२९८॥
शिर आहतवानुक्तवृत्तान्तः केनचित् खलः ॥
नौकामनुगतोप्येको न प्रापाऽसौ दिगंतरम् ॥२९९॥
अथकैदोक्तमागत्य वैष्णवैर्हितमीप्सुभिः ॥
श्रीदामोदरदासस्य श्वसुरादिभिरागतैः ॥३००॥
पुत्रिके भक्ष्यमप्यास्ते धान्यं नेह किमत्स्यसि ॥
तयोक्तं यद्भवद्भिर्हि देयं भोक्ष्यामि नान्यथा ॥३०१॥
इत्यभिप्रेत्य करुणैर्यद्दत्तं भक्षणं हि तैः ॥
तेनैवाऽऽमृति निर्वाहं कुर्वाणाऽगाद्धरेः पदम् ॥३०२॥

इतिश्री वैष्णववार्त्तामालायां तृतीयवार्तामणिः

वार्ता ४

पद्मनाभः कान्यकुब्जजातीयः कोपि ब्राह्मणः ॥
श्रीमदाचार्यशरणस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥३०३॥
कान्यकुब्जः पद्मनाभो व्यासासनसमास्थितः ॥
कथां कथयति स्माऽग्रे श्रोतॄणां वृत्तिमाँस्ततः ॥३०४॥
प्रष्टुमार्यानतो जानँस्तत्राप्तान्पुरुषोत्तमान् ॥
प्रपन्नः शरणं तेषां भक्तः स्वात्मसमर्पणी ॥३०५॥
उत्थापनक्षणे श्रीमदाचार्याः स्वासने स्थिताः ॥
कथां भागवतीं वक्तुं दामोदरसखान्प्रति ॥३०६॥
प्रथमं स्वनिबन्धं सत्पद्यं प्रोचुर्हितार्थिनः ॥
" पठनीयं प्रयत्नेन श्रीभागवतमादरात् ॥३०७॥
वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कण्ठगतैरपि " ॥
श्रुत्वेति सोऽम्भोञ्जलिना संकल्पं कृतवानिमम् ॥३०८॥
वृत्त्यर्थं नैतत्कर्तेति तमाचार्यास्तदाब्रुवन् ॥
वृत्त्यर्थं नैतदायोज्यं तदा तेनोक्तमीश्वराः ॥३०९॥
संकल्पो मे कृतः किंचिन्नकार्यमिति वै गतः ॥
स्वीयानां यजमानानां गृहे तैरादृतो बहु ॥३१०॥
इतस्तु ग्लानिमाप्तो न वैष्णवस्य ममोचितम् ॥
उक्तश्चार्यैस्तव कथं निर्वाहो भविता बत ॥३११॥
तदोक्तवान् पद्मनाभो वैश्यवृत्त्येति निश्चितः ॥
एकदा श्रीमदाचार्यैः प्रयागे सुशयालुभिः ॥३१२॥
निशीथार्द्धे पद्मनाभदास आज्ञापितः सकृत् ॥
आनयस्व गृहादर्कामिति सत्वरमुत्थितः ॥३१३॥

प्रतिषिद्धोपि बहुभिर्वैष्णवैर्भोः क यास्यसि ॥
निशीथार्द्धेऽत्र नौर्बद्धा सुप्ताः कर्णधरा इति ॥३१४॥
गुरूणामविचार्याज्ञेत्येकवाक्येन चोदितः ॥
वेणीतीरं समासाद्य नाऽपश्यत्कमपि क्वचित् ॥३१५॥
स एतर्ह्येव कमपि ह्यकस्माद्बालमागतम् ॥
दशार्द्धवयसं धृत्वा प्लवमेकं ददर्श ह ॥३१६॥
बालेन पृष्टः किमहो पारमस्या यियासिसि ॥
तदोक्तवान् पद्मनाभो हंहो पारं यियासितम् ॥३१७॥
तेन प्लवे स आरोह्य पारमुत्तारितः क्षणात् ॥
पृष्टोऽप्येष्यसि किं भूय इति श्रुत्वाऽवदत्स तम् ॥३१८॥
आयास्ये घटिकामध्ये तेनोक्तं त्वरयत्विति ॥
ततस्तु पद्मनाभोऽपि गत्वा प्रागन्तरालयम् ॥ ३१९॥
विज्ञप्तिपूर्वमक्कां स्वामानिन्ये बालकप्लवे ॥
बालेन प्रेरिते देवीमारुढां पारमानयत् ॥३२०॥
उत्तीर्य पश्चान्नाऽपश्यत् प्लवं नैव च बालकम् ॥
विस्मितः स समावेद्य तामक्कामोगतां पुरः ॥३२१॥
श्रीमदाचार्यपादानां प्रणतः साञ्जलिः स्थितः ॥
दृष्ट्वा तु श्रीमदाचार्यैराज्ञप्तस्तुष्टमानसैः ॥३२२॥
शयस्व साम्प्रतं नक्तमिति सुष्वाप नोदितः ॥
वैष्णवानां तदा तेषां मध्ये तैः पृष्ट आदरात् ॥३२३॥
किं विधाय गतोसीति तेन सर्वं तदीरितम् ॥
तदोक्तं वैष्णवैर्मित्र प्रभुस्ते प्रापितः श्रमम् ॥३२४॥

आयातो बालरूपेण प्लवं धृत्वा निशीथके ॥
इत्याकर्ण्याऽभवत्तूष्णींभूतः सुप्तः स निद्रया ॥३२५॥
प्रातः समुत्थितैरस्य वैष्णवैरीरितं पुनः ॥
श्रीमदाचार्यपुरतः पद्मनाभविचेष्टितम् ॥३२६॥
स्वप्रभोः श्रमदानादि श्रुत्वाचार्यैस्तदीरितम् ॥
सत्यमेतत्परमिदं मदिच्छातोऽस्यनाऽग्रहात् ॥३२७॥
नाऽधुना प्रतिदेष्टव्यो भवद्भिर्वैष्णवैः क्वचित् ॥
एकदा श्रीमदाचार्याश्चलिता व्रजगोकुलात् ॥३२८॥
अरिल्लं स्वमार्गमध्ये सङ्गताः क्षत्रियेण ह ॥
व्यापारिणा केनचित्संद्वाणिज्यपरिवारिणा ॥३२९॥
कान्यकुब्जदिशं मन्दं चलता सार्थभारिणा ॥
निरपेक्षास्तदाचार्या अग्रतो दूरमुज्झिताः ॥३३०॥
पश्चात्स्थितः स च शठैश्चोरैः पथि विलुण्ठितः ॥
श्रीमदाचार्यपादास्तु कान्यकुब्जपुरङ्गताः ॥३३१॥
स्वदामोदरदासस्य गृहे समुषिता मुदा ॥
प्रणताः सत्कृतास्तेन सकुटुम्बेन चात्मवत् ॥३३२॥
तत्रान्नं रन्धितं कृत्वाऽर्पयामासुः प्रभोः पुरः ॥
एतावता क्षत्रियः स क्रन्दमानः समागतः ॥३३३॥
पप्रच्छान्यान्वताचार्याः किं कुर्वन्तः क्वचाऽसते ॥
तदाश्रुत्य पद्मनाभदासेन हृदि चिन्तितम् ॥३३४॥
भोजने ह्यत्राऽऽचार्याणां वैयग्र्यं भवितेत्यतः ॥
उत्थितः पाणिना धृत्वा व्यापारिणमथाऽनयत् ॥३३५॥

बहिः प्रदेशे दूरेण पृच्छति स्म स तं शनैः ॥
भ्रातर्हृतं कियद्द्रव्यं चोरैस्तत्ते ददाम्यहम् ॥३३६॥
मा शुचो दैवविहितं यदीश्वरवशं जगत् ॥
तदा व्यापारिणा प्रोक्तमियद् द्रव्यं गतं मम ॥३३७॥
तदाश्रुतवता पद्मनाभदासेन वै करे ॥
गृहीत्वा श्रेष्ठिनः साधोः स नीतः कस्यचिद् गृहे ॥३३८॥
आराद् दृष्ट्वा पद्मनाभदासं स श्रेष्ठिसंज्ञकः ॥
स्वागतं पृष्टवानाज्ञा दीयतां कथमागतिः ॥३३९॥
तदा प्रोक्तं पद्मनाभदासेन श्रेष्ठिसत्पते ॥
अस्मै व्यापारिणे देयमियद् द्रव्यं गिरा मम ॥३४०॥
तावद् द्रव्यस्यास्य पत्रं मूलवृद्धियुतं लिख ॥
तन्निशम्येरितं साधु श्रेष्ठिना लिखितेन किम् ॥३४१॥
यद् द्रव्यं वाञ्छितं यावद् गृह्यतां तावदेव तत् ॥
तत्रोक्तं पद्मनाभेन नाऽदास्ये लिखितं विना ॥३४२॥
तदोक्तं श्रेष्ठिना द्रव्यमेवं ग्राह्यं निजेच्छया ॥
लिखित्वा तु तदा पत्रं पद्मनाभेन हस्ततः ॥३४३॥
विन्यस्य धर्मं तद्द्रव्यग्रहणे श्रेष्ठिकोन्वितः ॥
प्रदाप्याऽभीप्सितं द्रव्यं व्यापारी क्षत्रियोऽपि सः ॥३४४॥
विसर्जितः पद्मनाभदासोऽथाऽचार्यवर्यकैः ॥
भुक्तवद्भिर्बुधैः पृष्टः किमर्थं गतवान् क्व भोः ॥३४५॥
स तदा साञ्जलिः प्राह बहिः किंचित्कृते गतः ॥
तथापि श्रीमदाचार्यैरीश्वरैर्विदितं हि तत् ॥३४६॥

आक्षिप्योक्तमहो किंवा वयं तत्सार्थरक्षकाः ॥
तद्द्यापारप्रसक्ता वा यद्द्रव्यंदेयमेव नः ॥३४७॥
पश्चात्किमर्थं रहितो भारवाही स बाहुजः ॥
यच्चोरैर्लुण्ठितोऽकस्मादिति कुर्मो वयं हि किम् ॥३४८॥
त्वया चैतद्धत महत्कृतं दुश्चेष्टितं वृथा ॥
ऋणं कृत्वा धनं दत्तं लिखित्वा पत्रमात्मना ॥३४९॥
तदाकर्ण्येरितं पद्मनाभदासेन धीमता ॥
महाराजधिया भोक्तुमुद्यतेषु भवत्स्विह ॥३५०॥
क्रन्दमानः समायातः क्षत्रबन्धुः स लुण्ठितः ॥
तथा दृष्टो भुञ्जतां हि वैयग्र्ये हेतुरित्यतः ॥३५१॥
समाधाय बहिर्नीतोऽन्यथा मे जन्म वै वृथा ॥
ऋणं कृतं यत्तद्देयं परेद्युरपि संभवेत् ॥३५२॥
तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैस्तर्हि पत्रे त्वया कुतः ॥
धर्मो विन्यस्य लिखितः परस्वार्थं वदेति मे ॥३५३॥
स चोक्तवान्महाचार्या गाढलेखं विना क्वचित् ॥
न दातुं संभवेत् द्रव्यमृणनिर्मुक्तिपूर्वकम् ॥३५४॥
इत्याकर्ण्य प्रसन्नैस्तैर्ज्ञातहार्दैर्महाशयैः ॥
प्रस्थितं श्रीमदाचार्यैररिल्लग्रामसंमुखे ॥३५५॥
पद्मनाभो गतो विप्रो राजानं क्वचिदेकदा ॥
वीक्ष्यैनमागतं राजा प्रत्युत्थायाऽभिवन्द्य च ॥३५६॥
उवाच मह्यं भो ब्रह्मन् कथां श्रावय वैष्णवीम् ॥
तदावोचत्पद्मनाभः कथां भागवतीं तु न ॥३५७॥

भारतीं श्रावयिष्यामि चेद्राजन् श्रोतुमिच्छसि ॥
तदोवाच महान् राजा बाढं श्रोष्यामि भारतम् ॥३५८॥
इत्यामन्त्र्यैव नृपतिरेकदा सुमुहूर्तके ॥
वाचयामास स कथां भारतीं पद्मनाभतः ॥३५९॥
पद्मनाभो महान् वक्ता वाचयामास भारतीम् ॥
कथां नित्यं नियमतो राजलोकस्य संसदि ॥३६०॥
कथां वाचयता नित्यं यदा युद्धप्रसङ्गकः ॥
आगतस्तेन वै प्रोक्तं सर्वेषां शृण्वतां पुरः ॥३६१॥
अद्य शस्त्रायुधानीह सर्वैर्मुक्त्वा निशम्यताम् ॥
तदाज्ञया राजलोकैर्मुक्त्वा शस्त्रायुधानि तैः ॥३६२॥
उपविष्टं श्रोतुमेकचेतसा भारतीं कथाम् ॥
भारतं युद्धमाश्रुत्य पद्मनाभेन वाचितम् ॥३६३॥
तदैवात्यद्भुतो वीररसः प्रादुर्बभूव यत् ॥
अन्तस्तेषां मिथः स्वेषां मुष्टामुष्टि पदापदम् ॥३६४॥
युद्धमासीत्कियत्कालं प्रशशाम स्वतः क्षणात् ॥
यावद्युद्धप्रसंगीयकथा तावदभूदिति ॥३६५॥
कियद्दिनावसानेन समाप्तां भारतीं कथाम् ॥
श्रुतवान्पूजयामास पुस्तकं वाचकं नृपः ॥३६६॥
ददाति स्म बहु द्रव्यं दक्षिणां वाचकाय सः ॥
तदोक्तवान् पद्मनाभदासो राजानमादरात् ॥३६७॥
राजन् भारं धनस्येमं न गृहीष्यामि ते वृथा ॥
अपेक्षितं गृहीष्येऽहमृणनिर्मुक्तिहेतवे ॥३६८॥

राज्ञोक्तं बाढमस्त्वेवमिति दत्तं धनं मुदा ॥
तदा स्वापेक्षितं पद्मनाभस्त्वादाय जग्मिवान् ॥३६९॥
तस्यैव श्रेष्ठिनो हस्ते तत् द्रव्यं दत्तवान् स्वयम् ॥
वृद्धिमूल्युतं लेखपत्रं पाटितवाँस्ततः ॥३७०॥
मन्वानः स्वं सुकृतिनं पद्मनाभस्ततो महान् ॥
किं च श्रीपद्मनाभस्य कान्यकुब्जद्विजन्मनः ॥३७१॥
गृहे पुत्री कुमार्येका तदर्थं वर उत्तमः ॥
श्रीमदाचार्यसंसेवी विप्रः संनाहमोचकः ॥३७२॥
विचारितः कृष्णभक्तिमधुमत्तहृदा क्वचित् ॥
पद्मनाभो विस्मृतस्वव्यवहारो दिने शुभे ॥३७३॥
वरस्य वैष्णवैः साकमलिके तिलकं व्यधात् ॥
स्वहस्तेन समाजे स ततः स्वगृहमागतः ॥३७४॥
अवदत्तुलसाख्याया ज्येष्ठाया दुहितुः पुरः ॥
पुत्रिके ते कनीयस्या स्वसुरुद्वाहयोजनम् ॥३७५॥
वरेण तेन विप्रेण सममद्य मया कृतम् ॥
तदोक्तं तुलसानाम्न्या हंहो किमिति ते कृतम् ॥३७६॥
संनाहमोचको विप्रो परो ह्यभिमतः कथम् ॥
तदा ध्यात्वा पद्मनाभदासेनोक्तमहो सुते ॥३७७॥
जातं यदधुना जातं संभवेत्तत्कथं मृषा ॥
तदा प्रोक्तं तुलसया संबन्धः परिवर्त्यताम् ॥३७८॥
श्रुत्वेदं पद्मनाभेन प्रोक्तं तर्हि सुतेऽधुना ॥
छुरिकामानयस्वेह छिन्द्यामङ्गुष्ठकं यतः ॥३७९॥

तिलकं रचितं तस्य भाले सर्वसमक्षतः ॥
तदा पुनस्तुलसया प्रोक्तमङ्गुष्टकं त्वया ॥३८०॥
किमति च्छिद्यते तात ततस्तेनेरितंपुनः ॥
दुहितुः कृतसंबन्धः परिवृत्येत वै कथम् ॥३८१॥
इत्युक्त्वोपरराराथ तथा तामुद्वाहयत् ॥
कालान्तरे पद्मनाभो वैष्णवः सत्यवाग् द्विजः ॥३८२॥
अन्यवैष्णववाक्यैकविश्वासभरयन्त्रितः ॥
भगवत्प्रेममत्तश्च चकार न ततोऽन्यथा ॥३८३॥
किंचास्य क्षत्रियाण्येका पद्मनाभस्य वै गृहे ॥
आयान्ती प्रत्यहं दृष्टा पृष्टा तुलसया क्वचित् ॥३८४॥
किमित्यायासि हे नित्यमिति पृष्टा जगाद सा ॥
अयं महाँस्त्रिकालज्ञस्तव तातोऽत्र वैष्णवः ॥३८५॥
संततिर्न ममेत्यर्थमायामि प्रत्यहं त्विह ॥
पुत्रि त्वं मे तदेवास्य विज्ञापय पुरः क्वचित् ॥३८६॥
तच्छ्रुत्वाऽग्रे तुलसया पितुर्विज्ञापितं क्वचित् ॥
तन्निशम्याज्ञसमग्रे तद्यानिय जलं मम ॥३८७॥
तदानीतं जलं स्वस्य पदा स्पृष्टं ददौ तदा ॥
क्षत्रियाण्यै पद्मनाभः प्रोक्तवाँस्त्रिः पिबेति वै ॥३८८॥
पुत्रस्ते भविता भद्रे मथुरादासनामतः ॥
आकारणीयो भक्त्या स बन्धुभिर्याहि ते गृहम् ॥३८९॥
इत्युक्ता सा लब्धवरा गृह्णन्ती चरणोदकम् ॥
तथैव गृहमागत्य कृतवत्यचिरेण ह ॥३९०॥

तथा प्राप्तवती पुत्रं मथुरादासनामकम् ॥
यत्प्रसादात्क्षत्रियाणी स्वभूत्सिद्धमनोरथा ॥३९१॥
स वैष्णवः पद्मनाभदासः स्वाचार्य सेवकः ॥
गोवर्द्धनेशाभ्यन्तर्यसेविनो वैष्णवस्य सः ॥३९२॥
रामदासस्य विप्रस्य पद्मनाभः पुराऽभजत् ॥
सेव्यं प्रभुं नित्यदा हि ब्राह्मणे ब्राह्मणो गतिः ॥३९३॥
एकदा तत्र वै देशे यवनो मौनसंज्ञितः ॥
आगतो ग्राममारुध्य सर्वं लुण्ठितवान् खलः ॥३९४॥
रामदासनिषेव्यं तं प्रभुं मौनो गृहीतवान् ॥
दृष्ट्वा तथा हृतं तेन प्रभुं मोनेन मौनतः ॥३९५॥
अन्वियाय शनैः पद्मनाभदासोऽपि दूरतः ॥
नाम्भोऽपि पीतवान्सप्तदिनावधि विना प्रभुम् ॥३९६॥
मौनद्वारस्थितो दीनो हीनोऽप्यनशनव्रती ॥
अष्टमेह्नि यवन्योक्तो यवनः सामवाक्यतः ॥३९७॥
अन्वायातो द्विजः कश्चित् द्वार्येकोऽनशनः स्थितः ॥
निरम्बुपानः सहसा यतोऽग्रेऽयं मरिष्यति ॥३९८॥
हत्या तव शिरस्येषा मा भूद् देहीति तत्प्रभुम् ॥
तदाकर्ण्यैव यवनः प्रभुं तस्मै न्यवेदयत् ॥३९९॥
स पद्मनाभदासोऽपि व्सासो पिहितमम्बरे ॥
रामदासप्रभुं देवमादाय गृहमागतः ॥४००॥
पञ्चामृतेन मन्त्रेण स्नापयित्वा शुभासने ॥
तं प्रतिष्ठापयामास वासोभूषाद्यलंकृतम् ॥४०१॥

भोगमावेद्य नैवेद्यं ततो व्यासोऽपि भुक्तवान् ॥
इति ज्ञातं रामदासेनात्माभ्यन्तरसेविना ॥४०२॥
तस्मिन्नेव दिने श्रीशपुरे गोपालके स्वतः ॥
हाहाकारं कृतवता तेन सप्तदिनावधि ॥४०३॥
नोपभुक्तं प्रसादान्नं स्वसेव्यदुरवग्रहात् ॥
परन्तु गोवर्द्धनेशसेवां स्वीकुर्वता स्थितम् ॥४०४॥
इति वृत्तं श्रुतवता पद्मनाभेन वै क्वचित् ॥
आगतं श्रीनाथदेवं द्रष्टुं गोपालके पुरे ॥४०५॥
संगतो रामदासेन पृष्टो वै पद्मनाभकः ॥
अहो कष्टमुरु प्राप्तो यवनप्रभुनोद्यतम् ॥४०६॥
तदा व्यासः पद्मनाभः प्रोक्तवान् रामदासकम् ॥
यल्लभ्येत मया दुःखं तद्युक्तं यत्प्रभुस्त्वया ॥४०७॥
सेव्यो मे शिरसि न्यस्तः सदसच्चोपयाजितम् ॥
प्रसादान्नं न सप्ताहं भवतात्तं किमित्यहो ॥४०८॥
तदोक्तं रामदासेन व्यास सत्यं त्वयोदितम् ॥
तथापि तु चिरं सेवा कृता सेव्यस्य यन्मया ॥४०९॥
तत्संबन्धेऽक्षये तावत्कृतं युक्तं विचार्यताम् ॥
किं च व्यासः पद्मनाभः प्रभुं श्रीमथुराधिपम् ॥४१०॥
स्वसेव्यमेकदादाय सकुटुम्बश्च निर्धनः ॥
अरिल्लग्राममेयाय स्वाचार्यान्त्यालये स्थितः ॥४११॥
नित्यं श्रीमथुरानाथप्रभोः सेवां समाचरत् ॥
घृतपक्वैर्नव्यहरिच्चणकैर्भोगमार्पयत् ॥४१२॥

हरित्पालाशपत्रेषु पुटकेषु च राशितः ॥
मुद्गा एते भक्तमेतद् व्यञ्जनं पायसं घृतम् ॥४१३॥
वटकाः कथितावोघः शर्करा मुष्टिभिः पृथक् ॥
तत्तत्समग्रसामग्रीनामभिर्व्याहरत्पुरः ॥४१४॥
तथा भावत एवास्य प्रभुर्नैवेद्यमश्नुते ॥
तदूहितं वैष्णवेन केनचित् ज्ञापितं पुरः ॥४१५॥
श्रीमदाचार्यपादानां चणकोरुविधार्पणम् ॥
कदाचित्स्वेच्छयाऽऽचार्याः प्रभोर्भोगसमर्पणे ॥४१६॥
समागताः पद्मनाभदासेनोपहृतं नवैः ॥
नित्यवच्चणकैरेव सर्वसामग्र्युपायनम् ॥४१७॥
पृथक् पप्रच्छुरालोक्य पद्मनाभ महामते ॥
पुटकेषु च पत्राल्यां का एता राशयः कृताः ॥४१८॥
तदाऽवोचत्पद्मनाभो महाराजा इमे पृथक्
राशयः सर्वसामग्र्यो दध्यदः पायसं घृतम् ॥४१९॥
शर्करेयं शिखरिणी व्यञ्जनं मुद्गभक्तकम् ॥
इत्यादयोऽर्पिता एते हरिद्विश्चणकैः कृताः ॥४२०॥
इत्याकर्ण्याऽऽचार्यवर्यैस्ततः क्लिन्नहृदेरितम् ॥
ज्ञातं हा द्रव्यसंकोचादित्थं भोगोऽर्प्यतेऽमुना ॥४२१॥
तत आगत्यात्मगृहमकां प्रत्युक्तमार्यकैः ॥
अकिंचनस्य भोः पद्मनाभदासस्य वै गृहे ॥४२२॥
भोगार्थमत्र सामग्री प्रत्यहं प्रेष्यतामिति ॥
अक्कयोमित्युरीकृत्य द्वितीयदिवसात्ततः ॥४२३॥

प्रेषिताऽमान्नसामग्री पद्मनाभगृहे प्रभोः ॥
वीक्ष्याऽमां तां तुलसया पद्मनाभं प्रतीरितम् ॥४२४॥
प्रायोऽस्मान्प्रभुरस्माकं निर्वासयितुमुद्यतः ॥
आचार्या धान्यभारेण दीनान् स्वान् परिपीडयन् ॥४२५॥
इत्याकर्ण्योद्विग्नमनाः पद्मनाभः कथंचन ॥
अर्थं व्ययार्थं संगृह्य गन्तुकामो परत्र च ॥४२६॥
नाव्येकस्यां स्वमारोप्य मथुरेशं कुटुम्बकम् ॥
समागतः प्रणामार्थमाचार्यचरणान्तिकम् ॥४२७॥
तं सज्जितं क्वापि यातुं प्रेक्ष्याऽथाऽचार्यपण्डिताः ॥
पृष्टवन्तः पद्मनाभ सेव्यः काऽस्ते तव प्रभुः ॥४२८॥
तदोक्तवान् पद्मनाभः प्रस्थितो नावि मे प्रभुः ॥
नौश्चास्माच्चलिता ग्रामादित्यवेत्य विसर्जितः ॥४२९॥
पद्मनाभो द्वित्रदिनप्रापितामान्नसंचयम् ॥
प्रापय्य श्रीमदाचार्यभाण्डागारे परोक्षतः ॥४३०॥
जगाम नावमारूढो देशान्तरमकिंचनः ॥
विसर्जनानन्तरं हि भाण्डागारे परोक्षतः ॥४३१॥
श्रीमदाचार्यनिकटे प्रोक्तं यत्प्रापितं गृहे ॥
भाण्डागारे स्वमामान्नं पद्मनाभेन तत्समम् ॥४३२॥
इत्याश्रुत्योक्तमाचार्यैः सोऽन्नसंकोचतो गतः ॥
हन्त ग्रामादितोऽस्माकमावासात्सेवकः खलु ॥४३३॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां चतुर्थवार्तामणिः

वार्ता ८

पद्मनाभस्य या पुत्री तुलसी कीर्तिता पुरा ॥
तस्या भगवदीयाया भव्या वार्ता निरूप्यते ॥४३४॥
श्रीमदाचार्यचरणसेवकः कोऽपि वैष्णवः ॥
आयातस्तुलसागेहे कृतवान् दर्शनं प्रभोः ॥४३५॥
तदा तुलसया प्रोक्तं स्नातव्यं वैष्णव त्वया ॥
वैष्णवेनेरितं गत्वा स्नास्यामि स्थानके स्वके ॥४३६॥
तदा तुलसया तूष्णींभूय स्थितमधोदृशा ॥
उक्तं हा वैष्णवो यातो मम गेहादभोजितः ॥४३७॥
ज्ञातं ज्ञातं गतो ज्ञात्वा सामग्री रन्धितेति ते ॥
शुचयो ब्राह्मणा अन्यजातीया व्यवहारतः ॥४३८॥
बाढं भूयः प्रातरहमरन्धितमुदारतः ॥
घृतपक्कं प्रसादान्नं चित्रधा रचितं प्रभोः ॥४३९॥
भोजयामीति मिष्ठान्नसारं गोधूमपिष्टजम् ॥
सुष्वाप तुलसा स्वप्ने मथुरेश उवाच तौ ॥४४०॥
वैष्णवात्तं प्रसादान्नं तुलस्या न कथं गृहे ॥
अद्य गत्वोपभोक्तव्यं वैष्णव्या सत्कृतेन रे ॥४४१॥
तुलसे वैष्णवं तं त्वं प्रसादान्नेन तर्पय ॥
स सत्कृतस्त्वया भद्रे भोक्ष्यते नात्मगेहजम् ॥४४२॥
इत्याकर्ण्य प्रबुद्धा सा प्रातः स्नात्वा चकार ह ॥
पक्वान्नं पूरिकामिष्टमथ श्रीमथुराधिपम् ॥४४३॥
प्रबोध्य स्नापयित्वा तु यावच्छृङ्गारयेत् प्रभुम् ॥
तावत्समागतः सोऽपि वैष्णवो हरिनोदितः ॥४४४॥

प्रातस्तुलस्याः सदने दर्शनं कृतवान्प्रभोः ॥
समर्प्याथो राजभोगं तुलसा बहिरागता ॥४४५॥
उपविष्टं वैष्णवं तं स्नानार्थमपि चैरयत् ॥
तदोक्तं तेन भो भद्रे प्रातः स्नातं पुनर्मया ॥४४६॥
स्नातव्यमित्येवमुक्त्वा भूयः स्नातः स वैष्णवः ॥
अस्मरच्छरणं कृष्णो ममेति च वदन्मुहुः ॥४४७॥
एतावता तुलसया राजभोगोऽपि सारितः ॥
राजभोगारार्त्तिकं श्रीदर्शनं कृतवान्प्रभोः ॥४४८॥
कृत्वाऽनवसरं प्रागात्तुलसा बहिरादरात् ॥
इहासितव्यमिति सा निवेश्य शुचिमानयत् ॥४४९॥
अरन्धितं प्रसादान्नं धृतपक्वाः सुपूरिकाः ॥
वटका मिष्टमित्यग्रे पत्राल्यां परिवेषितम् ॥४५०॥
भोक्तव्यं वैष्णव मुदेत्युक्तं तुलसया तदा ॥
श्रुत्वेरितं वैष्णवेन भोक्ष्ये नेदं हि केवलम् ॥४५१॥
अहं तु रन्धितं भोक्ष्ये तुलसे तत्समानय ॥
तदेरितं तुलसया संकोचः क्रियतां न भोः ॥४५२॥
भवता विसजातीयव्यवहारो विचारितः ॥
तदोक्तं वैष्णवेनेत्थं सत्यं प्राक् हृदि मे स्थितम् ॥४५३॥
परन्तु जातं मे स्वप्ने मथुरेशानुशासनम् ॥
तेन भोक्ष्ये रन्धितं श्रीप्रसादान्नं च नान्यथा ॥४५४॥
इत्यावेदितवृत्तान्तो वैष्णवस्तुलसार्पितम् ॥
रन्धितं तत्प्रसादान्नं वैष्णवो बुभुजे प्रभोः ॥४५५॥
भोजयित्री प्रसादस्य तुलसी वैष्णवश्च भुक् ॥
प्रसीदतो मिथश्चोभौ मथुरेशानुमोदितौ ॥४५६॥

कचिद् गोस्वामिभिर्यातं तुलसाया गृहे मुदा ॥
तत्रैव भोजनं कृत्वा सुप्तमुत्थापनावधि ॥४५७॥

स्वासनेऽथोपविष्टैस्तैस्तां प्रत्युदितमादरात् ॥
कृष्णवार्तानन्तरं भोः पद्मनाभस्य संततिः ॥४५८॥

एवंविधैवोचितेति तुलसे वः प्रभुः क्वचित् ॥
दर्शयत्यनुभावं स्वमिति पृष्टा जगाद सा ॥४५९॥

संशेमहे महाराजाः सम्प्रत्यब्भो, भृतोदरम्
श्रुत्वेति तुष्टास्ते प्रोचुर्वैष्णवस्य प्रभुस्त्वहो
आर्तिं न सहते जातु दयालुरिति मे मतिः ॥ ॥४६०॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां पञ्चमवार्तामणिः

वार्ता ६

किंच पूर्वोक्तस्य तस्य पद्मनाभस्य वै स्नुषा ॥
विधवावीरसूः प्रीत्या प्रभोः सेवां सदाचरत् ॥४६१॥

पुरुषोत्तमदासश्च मेघराट् वैष्णवः क्वचित् ॥
प्रीत्या वैष्णवतारीत्या प्रपुनाति स्म यद्गृहम् ॥४६२॥

कियद्दिनोत्तरं साध्वी पार्वती तस्य सा स्नुषा ॥
श्वित्रेण श्वेततां याता रोगेण करपादयोः ॥४६३॥

नानाविधान्नसामग्रीं प्रभोः सेवां करादिना ॥
तथाविधेन कुर्वन्ती मनसि ग्लानिमानयत् ॥४६४॥

लिखित्वात्मसमाचारान् पत्रं सा पुरुषोत्तमे ॥
प्रेषयामास दीनारं स्वाचार्यार्थमुपायनम् ॥४६५॥

वाचयामास तत्पत्रं पुरुषोत्तमदासकः ॥
यत्त्वमाचार्यनिकटे पृच्छ मे श्वित्रकं कथम् ॥४६६॥

निवर्त्तेताशु संभूतमति पृष्ठाङ्घ्रिहस्तयोः ॥
अङ्गसेवां पाकसेवां कुर्वन्त्या ग्लानिरेति मे ॥४६७॥
ततोऽत्र कुर्यां किमिति पत्रमादाय सोऽगमत् ॥
श्रीमदाचार्यवर्याणामन्तिके स तदाज्ञया ॥४६८॥
श्रावयामास पत्रस्थान् समाचारान् व्यजिज्ञपत् ॥
पार्वत्योपहृतां स्वर्णमुद्रामग्रे न्यवेदयत् ॥४६९॥
तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैः पश्चाद्वक्ष्ये प्रतिक्रियाम् ॥
दिनद्वयोत्तरं भूय आचार्यैरेव वेदितम् ॥४७०॥
पुरुषोत्तमदासाग्रे तस्याः पत्रे विलिख्यताम् ॥
सुखेन पाकाङ्गसेवां कुर्वत्याग्लानिरण्व्यपि ॥४७१॥
त्वया न कार्या मनसि प्रभुः क्षेमं विधास्यति ॥
रोगं निवृत्तमचिरादिति तैः स विसर्जितः ॥४७२॥
पुरुषोत्तमदासोऽपि समायातो निजे गृहे ॥
श्रीमदाचार्योक्तरीत्या प्राहिगोल्लिखितं दलम् ॥४७३॥
पार्वत्या अपि हस्ताङ्घ्री मासत्रिचतुरान्तरे ॥
विनिवृत्तश्वित्ररुजौ सेवया परया प्रभोः ॥४७४॥
तुष्टा प्रभुं भजन्ती स्वं पार्वती प्रकृतिं गता ॥
भूयः पत्रं स्वर्णमुद्रां प्राहिणोद्वो विभूत्तमाः ॥४७५॥
भवत्प्रसादाद्विरुजा भजामीति विलिख्य सा ॥
तच्छ्रुत्वा श्रीमदाचार्यास्तुष्टा ऊचुर्महत्सुखम् ॥
जातं प्रभुः स्वया वृत्त्या साहाय्यं कृतवानिति ॥४७६॥
इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां षष्ठो वार्तामणिः

वार्ता ७

पार्वत्याश्चसुतो नाम्ना रघुनाथ इतीरितः ॥
पद्मनाभस्य पौत्रः स गतो वाराणसीं चिरात् ॥४७७॥
तत्र शास्त्रमधीत्योरु श्रीगोकुलमिहागतः ॥
प्रणतः श्रीविठ्ठलेशान्दण्डवत् पूर्ववैष्णवः ॥४७८॥
श्रीमदाचार्यचर्याङ्गीकृतवंश्यानुरोधतः ॥
गोस्वामिपादाः सुकथां कथयन्ति स्म यत्पुरः ॥४७९॥
रघुनाथः शृणोति स्म वाच्यमानां कथांसुधीः ॥
एकदा परमानन्दस्वर्णकारेण चादरात् ॥४८०॥
पृष्टो भो रघुनाथ त्वं वाराणस्यामधीतवान् ॥
कथां किमनुसंधत्से श्रीगोस्वामिसमीरिताम् ॥४८१॥
तर्हि तां कथयास्माकं श्रोतॄणामविदां पुरः ॥
तदोक्तं रघुनाथेन सत्यं वेद्मि न पद्धतिम् ॥४८२॥
तेन मे बुद्धिविषया न कथेयमिति ध्रुवम् ॥
निशम्य परमानन्दस्वर्णकारेण तत्पुनः ॥४८३॥
श्रीगोस्वाम्यन्तिके प्रोक्तं महाराजधिया खलु ॥
श्रोता न रघुनाथोऽनुसंधत्तेऽण्वपि वः कथाम् ॥४८४॥
इति स्माकर्ण्य गोस्वामिपादास्तं रघुनाथकम् ॥
द्वित्रानध्याप्य स्वाचार्यग्रन्थानाहुः प्रणालिकाम् ॥४८५॥
ततस्तु सर्वं बुबुधे प्रकारं भक्तिवर्त्मनः ॥
शास्त्ररीत्या बुधो जातु कान्यकुब्जे समागतः ॥४८६॥
मातरं पार्वतीं प्राह भविष्यामि पृथक् गृही ॥
प्रभोः सेवां करिष्यामि श्रुत्वेत्थं तं जगाद सा ॥४८७॥

बाढं कुर्वित्यथाऽप्येषा प्रभुं पर्यचरद्बहिः ॥
प्रत्यहं नीरमानिन्ये प्रातः पात्राण्यमार्जयत् ॥४८८॥
परिचारक्रियां कृत्वा राजभोगोत्तरं गृहे ॥
गत्वात्मनः पृथक् कृत्वा लीटिकाः प्रार्पयद्द्रुदा ॥४८९॥
प्रत्यहं प्रभवे तस्मै भुङ्क्तेऽस्यास्तु प्रसादतः ॥
पञ्चसप्तदिनान्ते श्रीमथुरेशेन सेरिता ॥४९०॥
वधु पार्वति मेत्यन्तं कण्ठः खरखरायते ॥
लीटिका भोजिताः शुष्का नित्यं, सूपं क्वचित् कुरु ॥४९१॥
तदाकर्ण्येति पार्वत्या प्रोक्तं भो भवता प्रभो ॥
भुज्यन्ते वै बहुविधाः सामग्र्योऽस्य गृहे सदा ॥४९२॥
कोऽयं हि तव निर्बन्धः शुष्कलोटीप्रभोजने ॥
तदोक्तं प्रभुणा भद्रे त्वद्धस्तकृतमद्म्यहम् ॥४९३॥
इति श्रुत्वा प्रभोर्वाक्यं तद्धितार्थाय पार्वती ॥
सूपौदनं शाकमपि कृत्वा प्रार्पयदन्वहम् ॥४९४॥
ततोऽचिरादेव तेन पुत्रेणोक्ता च पार्वती ॥
त्वमेव तु प्रभोः पाकसेवां कुर्विति चासकृत् ॥४९५॥
तदा पुनः पाकसेवां कुर्वाणा पार्वती प्रभोः ॥
वत्सला वत्सलस्येव जननी सुखमन्वभूत् ॥४९६॥
इतिश्रीमद् वैष्णवकथासुमालायां सप्तमवार्तामणिः ॥

वार्ता ८

किंचासीत् क्षत्रियाण्येका रज्जोनाम्नीति विश्रुता ॥
श्रीवल्लभाचार्यवर्यसेविका शरणं गता ॥४९७॥

नित्यं पक्वान्नसामग्रीं नूतनां विरचय्य सा ॥
नक्तं निवेदितवती श्रीमदाचार्यभुक्तये ॥४९८॥

तां भुञ्जते स्म ते नित्यं प्रीत्या तद्विनिवेदिताम् ॥
आचार्यास्तन्नियमतः कृतया सेवया वशाः ॥४९९॥

एकदाचार्यकैस्तात लक्ष्मणस्य क्षयाहनि ॥
श्राद्धे विप्रा यथाशक्ति भोजनार्थं निवेशिताः ॥५००॥

मानतः सर्वसामग्रीं पूर्णां प्रेक्ष्य घृतं विना ॥
तत्रोक्तमाचार्यवर्यैर्भगवान्प्रति किंकरान् ॥५०१॥

हंहो रज्जोक्षत्रियाण्या घृतमानयताऽऽशु भोः ॥
ततो निशम्याऽऽशु गतस्तदर्थं ह्येकवैष्णवः ॥५०२॥

रज्जो देवि शृणु श्रीमदाचार्यैरर्थ्यते घृतम् ॥
तदाकर्ण्योक्तं च तया किमर्थं घृतमर्थ्यते ॥५०३॥

तेनोक्तं श्रीमदाचार्यैर्भोज्यन्ते ब्राह्मणाः सति ॥
विहितस्वपितृश्राद्धैस्तदर्थं प्रेषितोऽस्म्यहम् ॥५०४॥

तदा तयोक्तं न घृतं मेस्तीति प्रतिवर्त्तितः ॥
वैष्णवः स तदाऽगत्य स्वाचार्येषु व्यजिज्ञपत् ॥५०५॥

आकर्ण्य पुनराचार्यै रे वाच्या साऽथ मद्गिरा ॥
घृतं देयमिति क्षिप्रं वैष्णवः प्रहितः पुनः ॥५०६॥

स आगतस्तदा रज्जोदेवीमित्यवदत्स्फुटम् ॥
भो भद्रे भर्त्सयित्वोक्तमाचार्यैर्देहि त्वं घृतम् ॥५०७॥

तदा तयोक्तं नहि मे घृतमस्तीति किं पुनः ॥
प्रत्याख्यातः समायातो यथावत्तेषु सोऽवदत् ॥५०८॥

तदाकर्ण्याऽचार्यवर्यैस्तूर्णीभूतैर्जनान्तरात् ॥
घृतमानाय्य ते विप्रा भोजिताः परमादरात् ॥५०९॥

रात्रौ रज्जोक्षत्रियाणी नित्यसेवापरायणा ॥
प्राप्ता पक्वान्नसामग्रीमादायाचार्यसंमुखम् ॥५१०॥
तां दृष्ट्वा श्रीमदाचार्याः पृष्ठं कृत्वाऽत्मनः स्थिताः
इत्यद्भुतं च सा प्रेक्ष्य विज्ञप्तिं कृतवत्यभूत् ॥५११॥
महाराजाः कोऽपराधो ममेति विनिरूप्यताम् ॥
तदोक्तं श्रीमदाचार्यैः शृणु मे प्रियकारिणि ॥५१२॥
पितृलक्ष्मणभट्टस्य क्षयश्राद्धेऽद्य भोजिताः
विप्रास्तदर्थं हि मया घृतं त्वद्गृहतोऽर्थितम् ॥५१३॥
तत्त्वया न कथं दत्तमिति क्षिप्ताऽथ साऽवदत् ॥
नाऽस्मि लक्ष्मणभट्टस्य दासिका भवतामहम् ॥५१४॥
दद्यां यच्छ्राद्धभुग्विप्रभोजनार्थं घृतं प्रभो ॥
भवतां किं गृहे तन्न हरेश्चेद्वः समो विधिः ॥५१५॥
इत्थं तद्वचनं श्रुत्वाऽऽचार्यास्तूष्णीं तदाऽभवन् ॥
ततस्तया पुरोन्यस्तां सामग्रीं नित्यवन् मुदा ॥५१६॥
वीक्ष्याचार्यैर्वचः प्रोक्तमद्य श्राद्धदिने मया ॥
भोक्तव्यं न पुनर्भद्रे द्विर्न भोज्यमिति स्मृतेः ॥५१७॥
तदाकर्ण्य तया प्रोक्तमाचार्याः सत्यमुच्यते ॥
वर्ज्यं पुनर्भोजनं तु स्वगेहजमिति स्मृतेः ॥५१८॥
व्यवस्थितिं विचार्याऽर्या भक्ष्यं ग्राह्यमिदं हि वः ॥
इत्याकर्ण्य ज्ञातहार्दैराचार्यै स्तत्सदाग्रहात् ॥५१९॥
भुक्तं प्रभोः प्रसादात्तं पक्वान्नं घृतपाचितम् ॥
एतादृक् श्रीमदाचार्यकृपापात्रं बभूव सा ॥
रज्जोनाम्नी क्षत्रियाणी कृष्णसेवा परायणा ॥५२०॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालायामष्टमवार्तामणिः

श्रीद्वारकेशो जयति

[श्रीद्वा. ग्र. माला का पुष्प १३]

प्राचीन वार्ता-रहस्य

द्वितीय भाग

अष्ट-छाप

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश, (व्रजभाषा)
मूल वार्ता एवं प्रासंगिक ऐतिहासिक
विवेचन (गुजराती) सहित, सचित्र-

सम्पादक—प्रकाशक

द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख
श्रीविद्याविभाग—कांकरोली

वि. सं. १९९८ श्रीसूर शरणागति संवत ४३१ श्रीवल्लभाब्द ४६३
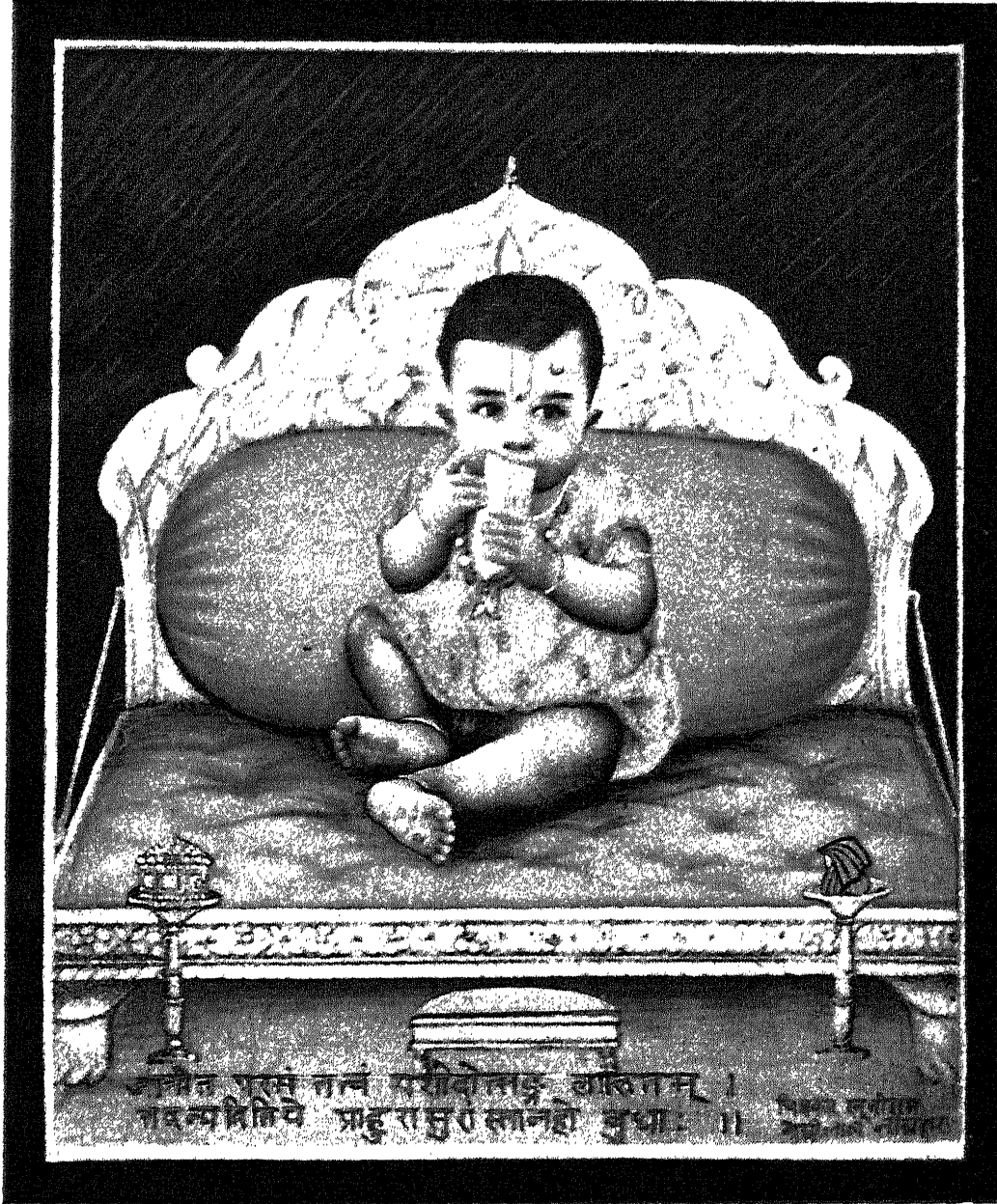
गो० श्रीव्रजभूषणात्मज

चि० श्रीगिरिधरगोपाल

गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

विषय-सूचिका

संख्या	वार्ता	पृष्ठ
१	सूरदासजी … … … …	१ से ५७
२	परमानन्ददासजी (तथा कपूरक्षत्री) …	५८ से १००
३	कुंभनदासजी (तथा तत्पुत्र कृष्णदास) …	१०१ से १७५
४	कृष्णदासजी (तथा अद्भूतदास)… …	१७६ से २४६
५	छीतस्वामी … … …	२४७ से २६३
६	गोविन्दस्वामी … … …	२६४ से २८९
७	चतुर्भुजदास (तथा तत्पुत्र राघवदास) …	२९० से ३२५
८	नन्ददास… … … …	३२६ से ३५२

गुजराती विभाग-ऐतिहासिक विवरण-

१	श्रीसूर … … … …	१ से ५२
२	परमानन्ददासजी … … …	५३ से ६८
३	कुंभनदासजी … … …	६९ से ८०
४	कृष्णदासजी … … …	८१ से ९०*
५	छीतस्वामी … … …	९१ से ९३
६	गोविन्दस्वामी … … …	९४ से ९६
७	चत्रभुजदास … … …	९७ से ९८
८	नन्ददास … … … …	९९ से ११७

* प्रेस की असावधानी से कृष्णदासजी की 'काव्यसुधा ऊपर एक दृष्टि' और चरित्र-विवरण पत्र ११८-१९ पर दिया जा सका है।

—सम्पादक।

श्रीद्वारकेशो जयति।

वक्तव्य—

श्रीद्वारकेश प्रभु के अनुग्रह बलसे प्रेरित होकर आज हम फिर 'प्राचीन वार्ता—रहस्य का द्वितीय भाग 'अष्टछाप' के नामसे साहित्य-सेवियों के आगे उपस्थित कर रहे हैं। आज से लगभग १॥ वर्ष पूर्व प्रथम भाग को प्रकाशित कर जिस सत्प्रयत्न में हाथ लगाया गया था, आज वही अपने अग्रिम रूपमें पुष्पित हो रहा है, जिसके लिये हम श्रीप्रभुकी आन्तरिक प्रेरणा ही कारणरूप मानते हैं।

प्रथम भाग में चोरासी वार्ताओं की आदि की आठ वार्ताए श्री हरिरायजी के 'भाव—प्रकाश' के साथ प्रकाशित की गईं थी, और परिशिष्ट में 'श्रीनाथदेव' कृत संस्कृतवार्ता—मणिमाला (जो अन्यत्र अप्राप्त थी) यथामति संशोधित कर छपाई गई थीं। यद्यपि नियमानु-सार उसके आगेकी अन्य वार्ताए प्रकाशित करना उपयुक्त था, पर एसा न करने के लिये दो कारणों से बाध्य होना पडा है—

१ 'आधुनिक पुष्टिमार्गीय भाषा—साहित्य नी शोच्यस्थिति' नामक गुजराती पुस्तक में उपलब्ध वार्ता—संस्करणों के आधार पर उसका आन्तरिक रहस्य और उससे प्राप्त होनेवाली शिक्षा की ओर ध्यान न देकर अष्टसखाओं में से अन्यतम कृष्णदासजी और नन्ददासजी की वार्ता पर आक्षेप किया गया था। जिसका स्पष्टीकरण और समाधान प्राचीन वार्ता की लेखन—शैली तथा उस पर लिखे गये श्रीहरिरायजी के 'भावप्रकाश' से ही होता है। अतः सर्वप्रथम उसका प्रकाशन करना अत्यावश्यक समझा गया।

२ वर्तमान हिन्दी साहित्य—जगतमें आज एक एसा भी स्वयंभू समालोचक समुदाय उत्पन्न हो गया है जो—प्राचीन साहित्य के साथ

जहां आंख मिचौनी खेलता है, वहां उसे विकृत कर देने में भी अपना परम पुरुषार्थ समझता है। इसी का परिणाम है कि–प्राचीन समय से सुव्यवस्थित अष्टसखाओं के जीवन चरित्र पर भी समालोचना और गवेषणा के नाम पर मनमाना लिखा जा रहा है, जिसका आज नहीं तो कल की भावी सन्तान पर बुरा प्रभाव पड़ने की संभावना है। इस दूषित मनोवृत्ति एवं अन्वेषण की मिथ्या ख्याति–लोभ ने सत्य पर पड़दा डालने की कुचेष्टा की है। इस वृथा जलताडन से जहां वृथा साहित्यिक श्रम हुआ है, वहां उन महानुभावों के प्रति भी अन्याय हुआ है जो– हमारे साहित्य के उज्वल रत्न थे। क्या इस साहित्यिक पापाचरण से उन लोगों की मुक्ति हो सकती है? जो व्रज–भारती की आत्मा का हनन करते हैं!

संक्षेप में कहाजाय तो हमारी साहित्य के प्रकाशन में अभी वही मनोवृत्ति काम कर रही है जो– एक सोंठ कों लेकर पसारी कहलाने वाले की होती है। अनन्त एवं अप्रकाशित साहित्य आज भी अनन्त अज्ञात रहस्य को अपने भीतर छिपाये हुए हैं, इस सत्यकी हठाग्रही व्यक्ति ही उपेक्षा कर सकता है।

वास्तव में ऐतिहासिक वृत्तान्तों के लिये तात्कालीन अथवा निकटवर्ती व्यक्ति का लेख जितना प्रामाणिक ठहर सकता है, उतना वर्तमान कालिक का नहीं. हमें यह कहते हुए आत्मसन्तोष एवं गौरव होता है कि–वार्ता रचना के समसामयिक विद्वान लेखक श्रीहरिरायजीने हमारे उन बहुत से अन्धतम प्रश्नों को दूरीकरण अपने 'भाव–प्रकाश' द्वारा कर दिया है जो– साहित्य– सेवियों के

---

* देखो 'साहित्य–सन्देश' (आगरा) वर्ष १९९७ अंक आषाढ, ११ पृष्ठ ४२५ 'सूरदासजी किसके शिष्य थे' (चुनीलाल शेषका लेख).

आगे चरित्रान्वेषण में विकट पहेली बने हुए हैं, और जिसका प्रस्तुत प्रकाशन किया जा रहा है।

प्रसंगोपात्त वार्ता के रचना-काल के सम्बन्ध में भी हम दो शब्द कहकर बहुत समयसे उलझे हुए इस प्रश्न को सुलझा देना चाहते हैं, जिस पर साहित्यिक महारथियों ने अपने २ तीर तरकसों का अस्थाने प्रयोग किया है।

हिन्दी साहित्य में जब भी गद्यसाहित्यका इतिहास लिखा जाता है, उसके धीरबुद्धि लेखक ८४ और २५२ वैष्णवों की वार्ता-लेखक के नाम पर श्रीगोकुलनाथजी का नाम लिखा करते हैं, जो श्रीवल्लभाचार्य के पौत्र और श्रीगुसांइजीके चतुर्थ पुत्र थे इनका समय सं. १६०८ से १६९७ के अंत तक है।

वल्लभाचार्य के चोराशी वैष्णवों के चरित्रात्मक प्रसंग श्रीगोकुलनाथजी के जन्म के पूर्व भी सम्प्रदाय-साहित्य में स्थान पा चुके थे, जिसका सर्वप्रथम दर्शन 'सम्प्रदाय प्रदीप' (रचना काल सं. १६१०) मे संक्षिप्त रूप में होता है। इसके अनन्तर श्रीगोकुलनाथजीने कथा-शैली में उनको प्रसंगात्मक रूप दिया, जिसका उल्लेख उनके अनुज रघुनाथजी के पुत्र देवकीनंदनजी, स्वरचित 'प्रभु-चरित्र चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ मे इस प्रकार करते हैं-

'तदपि भगवत्सेवापरैः श्रीगोकुलनाथैः शयनभोग-सेवोत्तरलब्ध-गाथावसरैः, सुबोधिन्यादिना श्रीभागवतकथा-कथनानतरं श्रीमदाचार्य-तदात्मज-चरितकथापि नियमेन परिगृहीता वक्तुम् ×

× देखो विद्याविभाग कांकरोली द्वारा शिघ्र प्रकाशित होनेवाला 'श्रीविठ्ठलेश चरितामृत' तथा 'प्रभुचरित्र चिंतामणि' नामक ग्रन्थ।

इस से यह विदित होता है कि–श्रीगोकुलनाथजी कथा प्रवचनों में श्रीवल्लभाचार्य और श्रीगुसांईजी के, प्रचलित निजवार्ता, बेठक चरित्र, घरुवार्ता और सेवकों से संबंध रखने वाले चरित्र (वार्ता के प्रसंग) वर्णन करते थे। यही समय है, जब वार्ताए कथानकरूप में वैष्णवों के समक्ष उपस्थित हुई। आदर्श तथा शिक्षा के लिये इसी समय से वार्ताए वैष्णव–समाज में व्यापकरूप धारण करतीं गईं। इसके कुछ समय बाद संग्रह की साहजिक मानवीय लिप्सा वृत्तिने उन्हे सुरक्षित रखने की आवश्यकता का अनुभव किया। जिसके कारण वे अव्यवस्थित्त रूप में लिखी जाने लगी।

श्रीगोकुलनाथजी श्रीगुसांईजी के यद्यपि चतुर्थ पुत्र थे, पर वे अपने अन्य छै भाइयों की अपेक्षा अधिक समय (सं. १६९७ फाल्गुन कृष्ण ९) तक विद्यमान रहे। इसी कारग वे तत्समय में शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य और नियामक पद पर प्रतिष्ठित रहे। एसी अवस्था में उनके द्वारा प्रवचन रूप में कही जानेवाली वार्ताओं के संरक्षग की आवश्यकता प्रतीत हुई और वे उन्ही की विद्यमानता एवंच उन्ही के तत्वाधान में उन्हीं के शिष्य श्रीहरिरायजी के द्वारा व्यवस्थित रूपमें संग्रहीत की गईं। इस प्रकार वार्ता–साहित्य के रचयिता श्रीगोकुलनाथजी सिद्ध होते हैं।

यह तो निर्विवाद है कि–उस समय किसी भी ग्रन्थ की लिपि हो जाने पर क्रमशः उसकी प्रतिलिपियों में परिवर्द्धन होना प्रारंभ हो जाता था, जिसका फल आज हमारे सामने यह है कि–मूल रूप में रचनाकाल की वार्ताए उपलब्ध नहीं होती। फिर भी यह तो छाती ठोक कर कहा जा सकता है कि–श्रीगोकुलनाथजी के समय वार्ता का जो रूप था, वह बहुत

थोडे परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के साथ हमे उसकी रचनाकाल के थोडे ही समय के बाद की प्रतिलिपि से मिल जाता है।

इस प्रकार मूल वार्ताओं का मौखिक प्रवचन समय सं. १६४२ से १६४५ तक निर्धारित होता है। जब श्रीगुसांईजी का तिरोधान हो जाता है और श्रीगोकुलनाथजी की उत्कृष्टता का समय आता है।

कांकरोली-विद्याविभाग 'सरस्वती भंडार' में ८४ वैष्णव की वार्ता की एक प्रति मिलती है जिसका लेखनकाल सं. १६९७ चैत्र सुदी ५, स्थान श्रीगोकुल है, और जिसका ब्लॉक हम इस के साथ छाप रहे हैं। इस को हम सम्प्रदाय की सब से प्राचीन वार्ता की पुस्तक तब तक कह सकते हैं जब तक अन्य और कोई प्राचीनतम पुस्तक नहीं मिल जाती। जहां तक ध्यान है इससे प्राचीन और उसी स्थान की लिखित पुस्तक-जहां उन दिनों श्रीगोकुलनाथजी का निवास था-अन्यत्र है भी नहीं। अतएव इस ग्रन्थ को हम पूर्ण प्रामाणिक मानने को विवश है, और यह इसलिये भी कि-श्रीगोकुलनाथजी के तिरो-धान के ११ मास पहिले हीं यह लिखी गई है।

यहसंभव नहीं है कि-यह ग्रन्थ श्रीगोकुलनाथजी के दृष्टिपथ में न आया हो। यह पुस्तक श्रीद्वारकाधीश प्रभु के 'सरस्वती-भंडार' के साथ गोकुल से कांकरोली में आई थी।*

अतः यह कहना प्रासंगिक होगा कि-कम से कम सं. १६९७ तक वार्ता की पुस्तकों का लिपिबद्ध संस्करण हो चुका था, और वे पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने लगी थीं। इन वार्ताओं के आन्तरिक रहस्य और तात्कालीन परिज्ञान इतिहास को प्रकाश में लाने का श्रेय श्रीहरिराय महाप्रभु (सं. १६४७ से १७७२) को है। यह

दीर्घजीवी और सम्प्रदाय के अन्यतम ख्यातनामा विद्वान आचार्य थे। उन्होंने वार्ता के ऊपर 'भाव-प्रकाश' नामक टिप्पण किया, जिससे जहां उनके बहुत कुछ संदेहों का निरस हो गया वहां वार्ता का एक स्थितरूप भी निर्धारित हो गया। इसी कारण से उनके बाद वार्ताए प्रायः एक ही रूपमें लिखी मिलती है।

इन सब कारणों को देख कर हम यह कह सकते है कि वार्ता के कितने लिखित संस्करण हुए—

प्रथम संस्करण—श्रीगोकुलनाथजी के कथा प्रवचन के समय का मूलरूप जो उनके हास्य प्रसंगो के समान वचनामृत रूप में प्राप्त होता है। न तो इस में ८४ और २५२ का वर्गीकरण ही हुआ है और न सभी वैष्णवों की वार्ताए ही इस में लिखी गई है। इसे हम संग्रहात्मक वार्ता साहित्य कह सकते हैं।

इसकी कई प्रतियां कांकरोली विद्याविभाग में और अन्यत्र भी उपलब्ध होती हैं। इसी का अर्द्ध गुजरातीभाषा मिश्रित व्रजभाषात्मक रूपान्तर भी प्राप्त होता है, जो गुजरात में प्रचलित अथच उसी देश के लेखकों द्वारा लिखी जाने से इस रूप में जहां तहां मिलता है। संभवतः इसी रूपान्तरवाली वार्ता को ग्रन्थ स्व. रामचन्द्रजी शुक्ल को प्राप्त हुआ होगा जिसके कारण वे वार्ताको प्रमाण कोटि में रखने से हिचकिचाते थे। और उसे गुजराती रचयिता की रचना मानकर बिचक गये थे। यद्यपि कई विद्वान लेखक वार्ताओं को प्रमाण मानते हैं और उनके द्वारा बहुत कुछ उलझी हुई चरित्रसम्बन्धिनी समस्याओं का हल निकालते हैं। पर हमारे शुक्लजी इससे कन्नी काटते रहे हैं।

---

* इस संग्रहालय में १४ वीं शताब्दि तक के लिखित कई ग्रन्थ विद्यमान हैं-एक प्रतिलिपि तो ग्यारहवीं शताब्दी की भी उपलब्ध होती है।

इसका समय सं. १६४५ से सं. १६९० तक माना जा सकता है।

द्वितीय संस्करण—श्रीगोकुलनाथजी के समय और तत्वावधान में श्रीहरिरायजी के द्वारा हुआ। इस समय वार्ताओंका वर्गीकरण और संकलन करते हुए 'चौरासी' तथा 'दोसौ बावन' वैष्णव संख्या का क्रम रक्खा गया × इस समय की वार्ताओं में प्रसंग आने पर 'श्रीगोकुलनाथजी' के नामका निर्देश होने लगा, जो श्रीहरिरायजीने अपनी ओर से संनिविष्ट किया है। उसी कारण कई इतिहास लेखकों को भ्रम हो गया है कि—"वार्ता में श्रीगोकुलनाथजी कानाम आनेसे–वह उनकी रचित नहीं है। यदि वार्ताए श्रीगोकुलनाथजी रचित होतीं तो वे अपने नाम के स्थान पर 'अस्मद' शब्द का व्यवहार करते। अस्तु।

इस संस्कारणका समय सं. १६९४ से सं. १७३५ तक माना जा सकता है। इस समय की उल्लिखित एक पुस्तक हमारे यहां सं. १६९७ की लिखि विद्यमान है। इस द्वितीय संस्करण के समय हरिरायजी की वय लगभग ४३ वर्ष की थी जो उनकी प्रौढता की द्योतक है।

तृतीय संस्करण—श्रीगोकुलनाथजी के अनन्तर और श्रीहरिरायजी के समय इसका संकलन हुआ। इस समय वार्ता में एसे आवश्यक प्रसंग वाक्य भी सम्मलित हो गये, जिनके विना प्रसंग की अपूर्णता विदित होती थी। अथवा जो आवश्यक स्पष्टीकरण के लिये उपयुक्त जचते थे। इसी समय में श्रीहरिरायजीने अपना 'भावप्रकाश'

× सं. कल्पद्रुम पत्र १४७ दोहाः–" भाषा शिक्षापत्र किय, **चौरासी नृपमान** ! ७१। संख्या का रहस्य भी श्रीहरिरायजी ने ही अपने भाव प्रकाश में बतलाया है। (दिखो प्राचीनवार्तारहस्य प्रथम भाग पत्र. १५–१६)

नामक टिप्पण लिखा, जो वार्ता के हार्द को विशेषता के साथ समझाने में समर्थ है*

इस संस्करण का समय सं. १७३५ के अनन्तर सं. १७८० तक आता है। इस प्रकार १३५ वर्षों के बीच में लगभग प्रति ४५ वर्ष पर होनेवाले संस्करणवाली विविध वार्ताओं के अध्ययन से स्पष्टतया विदित होता है कि–वार्ताओं में उत्तरोत्तर वाक्य बिन्यास बढता चला गया है, और प्राय: स्पष्टीकरण के साथ उस के कथानक को समझाने की चेष्टाए की गई हैं। एसा होने पर भी उनका मूल अंश जहां का तहां सुरक्षित रक्खा गया है। अतएव उसका वास्तविक रूप विकृत हो गया है, इस प्रकार का आक्षेप करना केवल अज्ञान–विजृंभण है।

इस के प्रमाण में द्वितीय और तृतीय संस्करण के रूपान्तर वाली वार्ता में से नंददासजी के कुछ प्रारंभिक प्रसंग को उट्टंकित कर देना उचित प्रतीत होता है—

१ सं.१६९७ की वार्ता–जिसका चित्र दिया गया है–में लिखा है–

"अब श्रीगुसांईजी के सेवक नंददास सनोढ़िया ब्राह्मण तिनके पद गाइयत हैं, सो वे पूर्व में रहते तिनकी वार्ता। सो वे नंददास और तुलसीदास दोउ भाइ हते। तामें बडे तो तुलसीदास, छोटे नंददास।

---

* भावप्रकाश की रचना के बाद होने वाली वार्ता की प्रति लिपियों में लेखकों की असावधानीता से भावप्रकाश का बहुत कुछ अंश वार्ता के रूप में सम्मिलित हो कर प्रचलित हो गया। जिसके परिणाम स्वरूप दोनों का सम्मिश्रण हो गया है। यह विना अध्ययन और परिश्रम के समझा नहीं जा सकता। चलती पंक्ति में विना स्थान छोडे बराबर लिखते जाना भी इसका द्वितीय कारण हो सकता है।

सो वे नंददास पढे बहुत हते। और तुलसीदास तो रामानंद के सेवक हते"।

२ सं. १७५२ की 'भावप्रकाश' वाली पुस्तक—जिसके आधार पर यह पुस्तक प्रकाशित की गई है—में लिखा है—

"अब श्रीगुसांईजी के सेवक नंददासजी सनाढय ब्राह्मण, रामपुर में रहते, जिनके पद अष्टछाप में गाइयत हैं, तिनकी वार्ता। सो वे तुलसीदासजी के भाई सनोढिया ब्राह्मग हते। सो तुलसीदासजी तो बडे भाई और छोटे भाई नंददासजी हे। सो वे नंददासजी पढे बहुत हते। और तुलसीदास तो रामानंदीन के सेवक हते।"

विद्वान समालोचक देखें कि—दोनो संस्करणों में मूल वार्ता का रूप बिगडा नहीं है, प्रत्युत वह अर्वाचीन पुस्तक में विशेष स्पष्टीकरण के साथ दिया गया है। शब्दों का रूपान्तर जैसे बहुत का बहोत, गई का गयी, और नाम के साथ 'जी' का प्रयोग आदि दोनों संस्कारणों के स्पष्टतः विभाजक हैं। प्रसंगों की संख्या की न्यूनता और वृद्धि भी इसी प्रकार का एक अन्यतम विभाजक है। जिससे प्रथम की अपेक्षा दूसरे संस्करण का रूप विशाल हो गया है।

जैसा कि—प्रथम भाग प्रकाशित किया गया है और ग्रन्थ के नाम स्वरूप से अवगत होता है, वार्ताओं के रहस्य को प्रकाशित कर उस पर आनेवाले आक्षेपों का परिहार करना हमारा उद्देश्य है।

इस प्रकार का सदनुष्ठान श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश से ही संभव है। उन्होंने अनेक यात्राए कर बहुत कुछ उन उन स्थानों में अन्वेषण किया था, जहां चौरासी और दोसौ बावन वैष्णवों का निवास था। उनकी इसी खोज के बल पर आज नहीं तो कल इतिहास प्रेमी उन ऐतिहासिक अंश को सत्य सिद्ध होते देखेंगे जो—साहित्य जगत में आज विवादास्पद हो रहे हैं।

इसी प्रकार एक विवाद का विषय नंददासजी और तुलसीदासजी का भ्रातृत्वभाव है। उक्त दोनों महानुभाव चाहे चचेरे भाई हों चाहे सोदर, पर थे वे भाई ही; उनके भ्रातृत्व का सर्वथा लोप नहीं किया जा सकता। उनका पारस्परिक भ्रातृत्व–साम्मुख्य ६३ के समान ही है ३६ के समान नहीं। एसा ही एक प्रश्न उनके सरयूपारीण अथवा सनाढय ब्राह्मण होने का है। आज जहां प्रस्तुत संशयापनोदन के लिये प्राचीन ग्रन्थ और उनके प्रमाण प्रकाशित किये जा रहे हैं, वहां हमारे यहां की सं. १६९७ की वार्ता उसका स्पष्ट निर्देश कर देती है।

तुलसीदासजी का अन्तिम समय सं. १६८० निर्धारित है। इसके १७ वर्ष बाद उक्त वार्ता का लेखनकाल (सं. १६९७) आता है। इस वार्ता के लेखन समय में तुलसीदासजी के समसामयिक इस वार्ता का लेखक चुन्नीलाल ब्राह्मण, श्रीहरिरायजी महानुभाव और शु. सम्प्रदाय के आचार्य श्रीगोकुलनाथजी यह तीन व्यक्ति तो अवश्य ही विद्यमान थे, जिन्हे किसी जाति विशेष से कोई ममत्व न था। इस स्वल्प समय में (१७ वर्ष के भीतर) ही तुलसीदासजी और नन्ददासजी के भ्रातृत्व और जाति के विषय में अंधाधुन्वी फैल जाना, किंवा उनके सम्बन्ध में इतनी अपरिचितता हो जाना इस बात को हठाग्रही के सिवाय स्थितप्रज्ञ विद्वान तो मानने को तयार नहीं होगा। अस्तु,

इस कथन से हमारा तात्पर्य वार्ता की उस प्रामाणिकता की ओर है जिस पर बिना देखे भाले कलम उठाई जाती है। वार्ता की इस प्रामाणिकता की सिद्धि बाद में लिखे गये श्रीहरिरायजी के भावप्रकाश से और भी होती है।

एसी अवस्था में प्राचीनता अथच लोकप्रियता के नाते सं. १६९७ की पुस्तक के आधार पर प्रस्तुत द्वि. भाग प्रकाशित करना यद्यपि उपयुक्त था परन्तु एसा करने में हमारे सन्मुख कुछ कठिनाइयाँ थी और प्रस्तावित आयोजना में व्यतिक्रम हो जाने की संभावना भी। हां तो सबसे बड़ी कठिन समस्या हमारे उद्दिष्ट आयोजन की पूर्ति में यह है कि—हम उस सं. १६९७ की लिखित प्राचीन वार्ता को यथावत् रूप में इसलिये प्रकाशित नहीं कर सके, क्योंकि इस के ऊपर भावप्रकाश नहीं मिलता है, और जिस सं. १७५२ वाली प्रति पर भावप्रकाश मिलता है, उसके प्रसंग उस प्राचीन प्रति के क्रम से मेल नहीं खाते। इस कारण हमें सं. १७५२ की प्रति को ही प्रकाशित करने में विवश होना पडा है। इससे एक यह बात भी विदित होती है कि भावप्रकाश की रचना सं. १७३५ के आसपास हुई है।*

जैसा कि प्रसिद्ध एवं निश्चित है, वार्ताओं के रचयिता श्रीगोकुलनाथजी और उसके सम्पादक श्रीहरिरायजी हैं। कहने का तात्पर्य यह कि—वार्ताओं का रचयिता गोस्वामि वंशोद्भव कोइ समर्थ विद्वान् एवं सेवाशृंगार—प्रणाली का अतिशय विज्ञ और सम्प्रदाय का नियामक व्यक्ति ही हो सकता है।

नीचे लिखी बातों पर ध्यान देने से हमारे कथन की सत्यता सिद्ध हो सकती है:—

१ वार्ताओं का अतिशय प्रचार और उनकी मान्यता।

श्रीवल्लभाचार्य के सम्प्रदायानुयायियों के लिये यह प्रसिद्ध है कि—

---

* संप्रदाय कल्पद्रुम—जिसकी रचना सं. १७२९ में हरिरायजी के शिष्य विट्ठलनाथ भट्टने की है—में हरिरायजी के रचित ग्रन्थों की सूची में 'भावप्रकाश' का नाम नहीं दिया है।

वे अन्य सब प्रमाणों की अपेक्षा अपने गुरुवाक्य पर अधिक श्रद्धा रखते हैं. वार्ताओं का जितना प्रचलन और मान्यता है उतनी श्रीवल्लभाचार्य रचित षोडश ग्रन्थों के सिवाय अन्य किसी सांप्रदायिक ग्रन्थ को नहीं है। किसी गोस्वामिमहानुभाव के सिवाय अन्य वैष्णव द्वारा रचित ग्रन्थ का इतना प्रचलन सर्वथा असंभव है। आज वार्ताओं को न केवल वैष्णवसमाज ही मानता है अपितु गोस्वामिवंशजभी उसको उतनी ही मान्यता प्रदान करता है, जितना आचार्यवाणी को। किसी वैष्णव की रची हुई वार्ताए सम्प्रदाय में इतनी लोक-प्रिय नहीं हो सकतीं.

२ वार्ताओं में सम्प्रदाय के सिद्धान्त की सूक्ष्म विवेचना और सेवाप्रणाली की आन्तरिक रहस्यमय विचारशैली की विद्यमानता।

वार्ताओं मे जिस सूक्ष्म सेवाप्रणाली और आन्तरिक रहस्यमय सिद्धान्तो का वर्णन है, गोस्वामिवंशज के सिवाय अन्य का उनका परिज्ञान होना सर्वथा असंभव है, कोई साधारण वैष्णव उनका वर्णन नहीं कर सकता। इसी प्रकार समय समय पर गाये जाने वाले कीर्तन जिन्हें अष्टछाप के कवियो ने तत्तत्समय बना कर गाया है, सेवा में रहने वाला व्यक्ति ही जान सकता है। यह सर्व विदित है कि-श्रीनाथजी की सेवा श्रीगुसांइजी और उनके सातों पुत्र एवं उनके वंशज ही किया करते थे।

एसी अवस्था में यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि-वार्ताओं के रचयिता श्रीगोकुलनाथजी ही थे. वार्ता के कई इतिहास-लेखक यह शंका उठाया करते हैं कि-वार्ताओं की रचना श्रीगोकुलनाथजी के किसी सेवक ने की है, इसका कारण यह दिया जाता है कि-स्थान स्थान पर गोकुलनाथजी की प्रशंसा के वाक्य मिलते हैं। पर यह कथन

ठीक नही हैं । वार्ताओं के सतत अभ्यासी से यह छिपा नहीं रहेगा कि–वार्ता मे गोकुलनाथजी की अपेक्षा गुसांइजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजी की कहीं अधिक प्रशंसा की गई है. ×

गोकुलनाथजी के शिष्य अपने गुरु की प्रशंसा करने के लिये सबसे अधिक प्रख्यात हैं, यहां तक कि–वे उन्हें श्रीप्रभु से कुछ कम नहीं मानते । एसी अवस्था में उनका कोइ सेवक यदि वार्ता लिखता तो वह या तो श्रीगिरिधरजी के प्रशंसापरक कई प्रसंगों को उडाहीं जाता, अथवा वह उसे इस रूप मे लिखता जिससे गिरिधरजी की कक्षा से गोकुलनाथजी को न्यून न बतलाना पडता । वास्तव मे गोकुलनाथजी के सेवकों रचित अन्य ग्रन्थ देखे जावें तो उससे गिरिधरजी की निन्दा ही मालुम पडेगी। अतः यह कहना कि गुरु की प्रशंसा लिखी होने के कारण गोकुलनाथजी के किसी गुजराती शिष्य ने वार्ता की रचना की है, अपरिपक्वबुद्धिका निदर्शन होगा ।

हरिरायजी जिन्होने वार्ता पर भाव–प्रकाश लिखा है, किसी साधारण बैष्णव की रचित वार्ता पर अपनी कलम नहीं उठा सकते थे, एसा तो वे उसी महानुभाव की वाणी के लिये कर सकते थे जिसके प्रति उनकी श्रद्धाभक्ति थी। अतःसिद्ध होता है कि वार्ताकी रचना गोकुलनाथजी ने ही की है, और बाद में उसके यथासमय संस्करण होते गये हैं जैसा कि ऊपर कहा जाचुका है ।+

× देखो चतुर्भुजदासजी वार्ता

+ श्रीहरिरायजी अपने भावप्रकाश मे इस का स्पष्ट उल्लेख करते है कि 'श्रीगोकुलनाथजी' चोराशी वैष्णव की वार्ता कहते थे। इसी की पुष्टि प्रभुचरित्र चिन्तामणि के उस अंश से होती है जिसका संकेत पहिले किया

प्रस्तुत ग्रन्थका प्रथम भाग जिस शैली से निकाला गया था, उससे इस द्वितीय भाग के पाठकों को विभिन्नता दृष्टि गोचर होगी। उसके शब्दो के स्वरूप, लेखनशैली पर अधिकांश तया प्राचीनता का ध्यान रखा गया था, अर्थात् इसके सम्पादक ने जिस ग्रन्थ से उसकी प्रतिलिपि प्रैस कापी, की थी प्रकाशन में उसका ही अनुसरण किया गया था।

उस समय वर्तमान कालके अनुरूप प्रकाशन पद्धति के अभाव में मैने सम्पादन सम्बन्धी संशोधन की न्यूनता तथा त्रुटि के लिये प्र. भागके प्रास्ताविक पत्र ९ में हिचकिचाहट व्यक्त की थी, परन्तु कई महानुभाव उसका अर्थ वार्ता–संपादन की ओर ले गये अर्थात उन्होने यह कह देने का साहस किया कि वार्ताका सम्पादन यथावस्थित नहीं हुआ है, जिसे प्रकाशक (संचालक विद्याविभाग) भी स्वयं स्वीकार करते है आदि परन्तु मेरा तात्पर्य केवल इसी से था और है कि—उस समय हम प्रथम भाग को जिस नवीन रंगढंग अथवा शैली से निकालना चाहते थे, नहीं निकाल पाये। इसका कारण सम्पादक (श्रीद्वारका-दासजी) का और प्रकाशक (मेरा) का एकत्र सहवास का अभाव एवं कार्यान्तर की व्यस्तता भी थी।

प्रस्तुत भाग को प्रेसकापी वार्तासाहित्य—सम्पादक ने सं. १७५२ की लिखित और सिद्धपुर और पाटन मे विद्यमान प्रतिलिपि के सम्वाद से तैयार की है। जिसमेंसें यहां यथावस्थित प्रसंग दिये गये हैं और शब्दोका रूप भी प्रायः वही रखा गया है। यद्यपि लेखक की त्रुटि से रह

जा चुका हैं. देखो प्राचीन वार्तारहस्य प्रथमभाग (वार्ता पत्र १६). " यह भाव तें चोरासी वैष्णव श्रीआचार्यजी के हैं, सो एक दिन श्री गोकुलनाथजी चोरासी वैष्णव की वार्ता करत कल्याणभट्ट आदि वैष्णव के संग रसमग्न होइ गये, सो श्रीसुबोधिनीजी की कथा कहन की हू सुधि नांहीं."

जानेवाली ह्रस्व दीर्घ की त्रुटियों को दूर कर दिया गया है, फिर भी गुजराती प्रेस कम्पोजीटरों के अनुग्रह से यत्रतत्र दृष्टिगोचर हुए बीना न रहेगी। नीरक्षीर विवेकी पाठक उसका स्वयं संशोधन कर लेने की कृपा करें ।

प्रस्तुत द्वितीयभाग मे सम्पादक ने गुजराती भाषा भाषियों के लिये अष्ट सखाओं का ऐतिहासिक विवरण एवं वार्ता की प्रामाणिकताका विवेचन बडे परिश्रम से तयार किया है–जो साहित्य के लिये एक नई देन है और जिसकी ओर हिन्दीसाहित्यज्ञों का ध्यान अवश्यही जाना चाहिये। किसी स्वतन्त्र लेख और "पुष्टिमार्गीय भक्तकवि" नामक आगे चल कर प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ में हिन्दी में भी इस विषय की सप्रमाण चर्चा चलाइ जायगी जिससे साहित्य जगत में अच्छा प्रकाश पडने की संभावना है।

पुस्तक की सुचारुता और आवश्यकता की पूर्ति के लिये इसमें यथास्थान निम्नलिखित चित्र भी दिये जा रहे हैं:—

१. श्रीगिरिधर गोपाल–जिनके स्मारक में प्रस्तुत वार्तासाहित्य का प्रकाशन हो रहा है ।

२. श्रीचि० व्रजेश कुमार–जो श्रीगिरिधर गोपाल के ही अपरावतार हैं, और जिन्हें यह भाग समर्पित किया गया है ।

३. श्रीहरिरायजी महाप्रभु–जो वार्तासाहित्य ही नहीं प्रत्युत संस्कृत, गुजराती और व्रजभाषा के भक्तिमार्गीय गद्यपद्यात्मक साहित्य के रचयिता, विवरणकर्ता और उन्नायक होने के साथ साथ अपने काल के एक महान् प्रतिभाशाली विज्ञ नियामक और अप्रतिम प्रचारक हुए हैं, जों विविध संकेतात्मक 'हरिधन' 'हरिदास' 'रसिक' 'हरिराय' आदि अनेक उपनामों के कारण सम्प्रदायेतर व्यक्तियों के लिये अपरिचित से बने हुए हैं ।

४. अष्टछाप की स्थापना—जिसमें* श्रीविट्ठलेश्वर प्रभुचरण और अष्टसखा उपस्थित है।

५. महानुभाव श्रीसूरदासजी का अन्तिम समय।

६. सं. १६९७ की वार्ता की पुष्पिका

उपर के चार चित्र त्रिरंगी और अन्तिम चित्र एक रंगी है।

इस प्रकार जहां तक हो सका है पुस्तक को आवश्यक सजावट के साथ उपादेय भी बनाया गया है। इसके प्रकाशन में जो त्रुटियां रह गई हैं उनके लिये हम क्षमायाचना करते हैं। इसके मुद्रण में जिन उदाराशय दानी महानुभावों ने अपने द्रव्य का सदुपयोग किया है, उनका उपकार-स्मरण गुजराती भूमिका में किया गया है। इसी प्रकार यदि कोई महानुभाव, अथवा ट्रस्ट फंड इस ओर ध्यान दे तो हम अष्टसखाओं के उस साहित्य को प्रकाशित करने का भी आयोजन करेंगे जो—विद्याविभाग कांकरोली में विद्यमान ओर अप्रकाशित है। यह कथन यद्यपि एक अप्रिय कटु सत्य होगा कि—अधिकांश द्रव्य उन्हीं व्यक्तियों को मिल जाता है, जो—अनुत्तर दायित्व ढंगसे चाहे जैसा साहित्य प्रकाशित किया करते हैं और जो येन केन उपायों से धनसंग्रह कर साहित्य प्रकाशन की सेवा भावना के पुण्यभागी बन जाने में प्रथम हो जाना चाहते हैं। अस्तु।

विद्याविभाग तो श्रीद्वारकेश प्रभु के अनुग्रह का अभिलाषी है, जिनकी इच्छा से सभी अवस्थाओं में ग्रन्थों का प्रकाशन होता जा रहा है, और जिसके फलस्वरूप श्रीद्वा. ग्रन्थमाला में अब तक

---

* श्रीगुसांईजी का चित्र द्वा. चित्रशाला कांकरोली और श्रीसूरदासजी का चित्र कृष्णगढ के राज्यसंग्रहालय के चित्र के आधार पर तयार कराया गया है। अन्य सात सखाओं के स्वरूप प्राचीन पुस्तको में से एकत्रित कराकर नविन रूपसे तयार कराया गया है।

कई ग्रन्थ मुद्रित कराये जा चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ द्वा० ग्र० माला के विगत १३ वें पुष्प का द्वितीय भाग है। इसके अग्रिम भाग इसी पुष्प में यथासमय प्रकाशित किये जावेंगे।

प्रथम भाग में 'श्रीनाथ देव रचित संस्कृतवार्ता मणिमाला' का समावेश किया गया था, पर उक्त ग्रन्थ में अष्टछाप की वार्ताएं हमारे यहां पूर्ण नहीं हैं अतः उन्हें यथास्थान प्रकाशित नहीं किया जा सका जिसका हमें पश्चात्ताप है।

अष्टसखाओं के जीवन चरित्र सम्बन्ध में प्रस्तुत भाग, और हमारे यहां से प्रकाशित 'कांकरोली के इतिहास' में इन महानुभावों के प्रासंगिक चरित्रों से जो ऐतिहासिक नाम, संवत, मिती का विभेद विदित होगा उसका अन्य अर्थ नहीं लिया जाना चाहिये। प्रस्तुत सम्बन्ध में जैसी जैसी गवेषणा होती गई है, उसी प्रकार उसका संशोधन भी अगले ग्रन्थों में किया गया है।

पुस्तक की उपादेयता अनुपादेयता के विषय में हम कुछ न कह कर पाठकों की सम्मतिपर ही उसे छोडते हैं। हां इतना कह देना आवश्यक समझते है कि—यदि इसी प्रकार प्रभु का अनुग्रह प्राप्त होता रहा तो क्रमशः सम्पूर्ण वार्ता 'भावप्रकाश' के साथ प्रकाशित करते रहने का आयोजन होता रहेगा। इस बीच में अन्य आवश्यक ग्रन्थ भी प्रकाशित करते रहने की शुभ कामना लिये हुए अपने इस वक्तव्य से विराम लेते हैं।

कांकरोली
श्रीमदाचार्य प्राकट्योत्सव
वै. कृ. ११

विधेय....
पो. कण्ठमणि शास्त्री
संचालक विद्याविभाग, **कांकरोली**

अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण*

(१) सूरदास

जीवनी के आधार—

आत्मचारित्रिक उल्लेख—साहित्य-लहरी के दृष्ट-कूट पदों में एक पद सूरदास के जीवन चरित्रसे सम्बन्ध रखता है। उससे निम्न लिखित बातें ज्ञात होती हैं कि-(१) सूरदास चंद के वंशज, जगात वंशी थे। (२) वे सात भाई थे जिनमें से ६ युद्ध में मारे गये। (३) सातवें, सूरजदास जन्मान्ध थे, भगवानने कृपा करके उनको दर्शन दिये, तभी से वे कृष्ण-भक्त हो गये। श्रीगुसांईजीने उनकी गणना अष्टछाप में की।

इस पद को वार्तासे विरुद्ध होनेके कारण हम प्रमाणिक नहीं मानते।

साहित्य-लहरी में उसका रचना काल कविने संवत १६०७ दिया है।
'मुनि पुनि रस न के रस लेख, दसन गोरी नन्दको लिखि सुबल संवत पेख'

सूर सारावली—इस ग्रन्थ के रचनाकाल के समय कविने अपनी आयु ६७ वर्षकी दी है।

'गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।'

कई पदों में उन्होंने अपने अन्धे होने तथा श्रीवल्लभाचार्यजी के दीक्षागुरु होने का उल्लेख किया है।

---

* विद्याविभाग, कांकरोली द्वारा किये गये अन्वेषण के आधार पर.

अन्य प्रचलित बाह्य आधार—

१. भक्तमाल—यह सूरदास के समय का लिखा ग्रन्थ है इसमें कवि की भक्ति और काव्य की प्रशंसा की गई है। यह ग्रन्थ प्रमाणिक है।

२. चौरासी वार्ता—संवत १७५२ की हरिरायजी के भावप्रकाशवाली ८४ वार्ता का इस लेखमें हमने प्रयोग किया है। यह ग्रन्थ प्रमाणिक है।

३. आईने अकबरी—यह बताती है कि सूरदासजी अकबर के दरबार के गवैये, रामदास के पुत्र थे। और वे भी रामदास के साथ अकबरके यहां जाया करते थे।

यह वृतान्त अष्टछापी सूरदासका नहीं है।

४. मुन्शियान अबुलफज़ल—यह अकबर के समय के पत्रों का संग्रह है। इसमें बादशाह अकबर की आज्ञासे अबुलफज़ल का सूरदास के नाम एक पत्रका उल्लेख है और अकबरसे सूरदास के मिलनेका भी उल्लेख है।

यह वृतान्त अष्टछाप वाले सूरदासका नहीं है। अनुमानसे यह वृतान्त मदनमोहन सूरदास का हो सकता है।

५. गोसाईं चरित—इस ग्रन्थ को हम प्रमाणिक नहीं मानते हैं।

साहित्य क्षेत्र में तीन सूरदास हुए हैं।

१. बिल्वमंगल सूरदास—एक रूपवती स्त्री के रूपको आसक्तिसे इन को ज्ञान मिला था, और आंख फोड़ कर अंधे हो गये थे। ये भी भक्त कवि थे।

इनकी भाषा में गुजराती शब्दोंका प्रयोग अधिक हुआ है।

इस चरित्र को लोगोंने भूलसे अष्टछापी कवि सूरदास के साथ जोड़ दिया है।

२. सूरदास मदनमोहन—ये लखनउ के पास संडीला स्थान के दीवान थे। ये अकबर के एक राजकर्मचारी के पुत्र थे। अकबरी दरबारसे इन्हीं सूरदासका सम्बन्ध था।

३. सूरदास अष्टछाप वाले—हिन्दी ब्रजभाषा साहित्य के 'सूर्य'और वल्लभ सम्प्रदायके 'सागर' और 'जहाज' ये ही कहे जाते हैं।

हरिरायजीकृत भावप्रकाशवाली वार्ता तथा अन्य प्रमाणों के आधारसे—

जन्मस्थान-दिल्ली के पास सीहीं ग्राम में इनका जन्म हुआ था। प्रमाण—हरिरायजीकृत भावप्रकाश।

जन्मकाल--संवत् १५३५ प्रमाण–निजवार्ता में उल्लेख है कि सूरदासजी और श्रीवल्लभाचार्यजी का जन्म एक ही संवत मेंहै। सम्प्रदायमें यह बात भी प्रचलित है कि सूरदासजी आचार्यजीसे दस दिन छोटे थे। सुना है कि श्रीद्वारिकेशजी के भाव–संग्रह में भी यही लेख है।

कांकरौली की सं. १८५१ की निजवार्ता की प्रति में तथा छपी हुई निजवार्ता में भी लिखा है कि "सो सूरदासजी जब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन को प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है।" आचार्यजी का जन्म सं. १५३५ में हुआ था।

जाति—सारस्वत ब्राह्मण। प्रमाण–१६९७ की ८४ वार्ता तथा हरिरायजीका भावप्रकाश।

माता, पिता, कुटुम्ब--इनके मातापिता निर्धन ब्राह्मण थे।

इनसे तीन बड़े भाई और थे। ये अन्धे थे। इसलिये माबाप की उनकी ओरसे उदासीनता रहती थी। घरकी उपेक्षा और निर्धनता के कारण इन्होंने घर छोड़ दिया। इनके विवाहका कहीं उल्लेख नहीं है।

शिक्षा—सूरदासने साधु संगति से ज्ञान प्राप्त किया। ये गान्धर्व विद्यामें निपुण थे, और पद रचना भी करते थे। तथा इनको वाक्सिद्धि भी थी। इसलिये वल्लभसंप्रदाय में आने के पहले इनके बहुतसे शिष्य हो गये थे। उस समय ये भगवान की उपासना दासभावसे करते थे।

निवासस्थान—१८ वर्ष की उम्र तक ये अपने गांवसे चार कोस दूर एक तालाव के किनारे के एक स्थान पर रहे। उसके बाद ये मथुरा चले गये। वहांसे आकर आगरा और मथुरा के बीच गऊ घाट पर आचार्यजी की शरण आने के समय तक रहे। जबतक गऊघाट पर इनकी कुटी इनके शिष्योंने नहीं बनाई तबतक सूरदासजी 'रुनकता' गांव में रहते थे। सम्भव है इसी आधार से लोगोंने उनका जन्मस्थान 'रुनकता' मान लिया हो। वल्लभसंप्रदायमें आनेके बाद ये श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवा में पहुंचे। वहां ये गोवर्द्धन के पास चंद्र-सरोवर परासोली में रहा करते थे।

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश—सं. १५६७ में गऊघाट पर श्रीआचार्यजीकी शरण आये। प्रमाण—८४ वार्ता तथा वल्लभदिग्विजय। तीसरी पृथ्वी-प्रदक्षिणा की पूर्ति के समय वार्ता के अनुसार दक्षिण दिग्विजय सं. १५६६ के अनन्तर (अडेल से व्रज आते समय) आचार्यजीने सूरदास को शरण में लिया। आचार्यजीने तीसरी प्रदक्षिणा

सं. १५६७ में समाप्त की थी। सूरदासजी आचार्यजी के विवाह बाद शरण आये इस बात का अनुमान वार्ता के एक कथन से होता है। सूरदासजी की वार्ता में लिखा है कि गऊघाट पर आचार्यजी "गादी ऊपर बिराजे।" आचार्यजीने विवाह बाद ही गादी के ऊपर बैठना आरम्भ कियाथा। उससे पहले वे ब्रह्मचर्य व्रतसे आसन पर ही बैठते थे।

अन्त समय—सूरदासजी की वार्ता के प्रसंग में लिखा है कि "सो बीचबीच में जब कुंभनदास, परमानंददासजी के कीर्तन के ओसरा आवते तब सूरदासजी श्रीगोकुल में नवनीतप्रियजी के दरशनकुं आवते।" सूर का नवनीतप्रियजी के दर्शनों को जाना और नवनीतप्रियजी के नग्न शृंगार पर पद गाना ये कार्य सं. १६२८ के बाद होने चाहिये। क्योंकि गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी का गोकुल में स्थायी निवास सं. १६२८ में हुआथा। इससे सिद्ध है कि सूरदास लगभग १६३० तक तो जीवित थे।

८४ वार्ता के भावप्रकाशमें सूरदास के अन्त समय के वृतान्त में लिखा है कि जैसे कृष्णने पहले यादवों का अंतर्धान किया और फिर स्वयं अंतर्धान हुए उसी प्रकार गुसांईजी का श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम का प्राकटय है। "आचार्यजीने आप अन्तर्धान लीला की और गुसांईजी को अंतर्धान लीला करनी है, सो पहले भगवदीयन कूं नित्यलीला में स्थापन करके आपु पधारेंगे।" इससे अनुमान होता है कि गुसांईजी की मृत्यु के कुछ साल पहले ही (अनुमानतः दो चार साल) सूरदासजी का निधन हुआ था। गुसांईजी का निधन सं. १६४२ में हुआ। श्रीद्वारिकादासजी कांकरोली

की सम्मति है कि सूरदासजीका निधन सं. १६४० में हुआ। बाबू राधाकृष्णदासने भी सं. १६४० का ही अनुमान लगाया है।

मृत्युस्थान—परासौलीग्राम।

लीलात्मक स्वरूप—कृष्णसखा, चंपकलता सखी।

रचना—

सूरसागर—इसके अंतर्गत अनेक लीलाए आ जाती हैं।

सूरसारावली—६७ वर्षकी अवस्था सं. १६०२ में।

साहित्य लहरी—सं. १६०७ में।

---

(२) परमानन्ददास—

जीवनी के आधार—१ भक्तमाल। २ सं. १६९७ की ८४ वार्ता तथा श्रीहरिरायजी कृत ८४ वार्ता पर भावप्रकाश।

आत्मचारित्रिक उल्लेख—उपलब्ध पदों के देखने से ज्ञात होता है कि उन पदों में कविने अपने विषय में कुछ नहीं कहा। पदों में भक्तिभाव संबन्धी उल्लेख हैं। **जन्मस्थान**—कन्नोज, **जन्मकाल**—सं. १५५०।

प्रमाण—वल्लभसम्प्रदाय में यह प्रचलित है कि परमानंददासजी आचार्यजीसे १५ वर्ष छोटे थे।

जाति—कान्यकुब्ज ब्राह्मण। प्रमाण—चौरासी वार्ता।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके मातापिता निर्धन ब्राह्मण थे, परन्तु इनके जन्मदिन इनके पिता को बहुत सा द्रव्य मिला। इनका यज्ञोपवित बड़े समारोह के साथ हुआ। एकवार कन्नोज के हाकिमने इनके पिता का सब द्रव्य लूट लिया। तब इनके पिता फिर निर्धन हो

गये। इस समय परमानंददास बड़े हो गये थे। पिताने इनका विवाह करनेका आग्रह किया, परन्तु इन्होंने मना कर दी और फिर बाद को भी इन्होंने अपना विवाह नहीं किया। इनके पिताने इनसे धनोपार्जन के लिए आग्रह किया, परन्तु इनकी रुचि अब त्याग और वैराग्य की ओर हो चली थी। इनके मातापिता धनोपार्जन के लिये विदेश चले गये, परन्तु ये कन्नोज में ही रहे।

शिक्षा—परमानंददासजी की शिक्षा कन्नोज में ही हुई। इनके शिक्षागुरु कौन थे, इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। वल्लभसम्प्रदाय में आनेसे पहिले ही गायन और कीर्तन में इनकी ख्याति हो गई थी। वार्ताकार कहता है कि ये बड़े योग्य व्यक्ति और कवीश्वर थे। गाना सीखने तथा कीर्तन में भाग लेने के लिये इनके पास बहुत लोग आते थे। इसीलिये ये स्वामी कहलाते थे।

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश—सं. १५७७ ज्येष्ठ शुक्ल १२ प्रयाग के पास अड़ेल में। प्रमाण—चौरासी वार्ता, बेठकचरित्र एवं वल्लभदिग्विजय।

अन्त समय—परमानंददासजी ने गुसाईं विठ्ठलनाथजी के सातों बालकों की बधाई गाई है। सातवें पुत्र श्रीघनश्यामजी का जन्म सं. १६२८ में हुआ। इससे सिद्र होता है कि परमानंददासजी सं. १६२८ तक तो जीवित ही थे। सात बालकों की बधाई के एक अन्तिम समय गाये हुए पद में इन्होंने श्रीघनश्यामजी के विषय में इस प्रकार लिखा है—"**श्रीघनश्याम, पूरण काम पोथी में ध्यान।**" श्रीघनश्यामजी को विद्याध्ययन करते देखा इससे उस समय घनश्यामजी की आयु लगभग बारह वर्ष की अवश्य रही होगी! 'पूरन काम' विशेषण से भी इसी बातकी

पुष्टि होती है। इससे सिद्ध होता है कि वे लगभग सं. १६४०,४१ तक विद्यमान थे। वार्ता से अनुमान होता है कि इनकी मृत्य कुंभनदासजी के निधन के बाद हुई, जिनका मृत्यु सं. हमने लगभग १६४० माना है। अतः इनका अन्त समय हम सं. १६४०–१६४१ के बीच का मान सकते हैं।

स्थायी निबासस्थान–सुरभी कुंड, वार्ता के अनुसार परमानन्ददासजीने भादों वदी नौमी को मध्यान्ह के समय देह छोड़ी।

लीलात्मक स्वरूप–तोक सखा और चन्द्रभागा सखी,

रचना—परमानंद सागर। वार्ता में परमानंद सागर का उल्लेख है।इस सागर को कई प्रतियां कांकरोली में विद्यमान हैं। सबमें मिलाकर लगभग २००० पद होंगे। हमने इनकी पदरचनाओं का अध्ययन कांकरोली से प्राप्त परमानंददासजी के कीर्तनों से किया है। इन्होने ब्रज कृष्ण की बाल लीलाओं से लेकर द्वारिकागमन लीला तक पद लिखे हैं। इन लीलाओं के कथाभाग की ओर इन्होंने ध्यान नहीं दिया। भक्तिभाव और काव्य दोनों की दृष्टि से इनके विरहके पद उत्कृष्ट हैं।

---

(३) कुंभनदास–

जन्मस्थान–गोवर्धन से कुछ दूर जमुनावतौ ग्राम।

जन्मतिथि–सं. १५२५। प्रमाण–गोवर्धननाथजी की प्राकटय की वार्ता में लिखा है कि जब श्रीनाथजी प्रकट हुए (सं. १५३५) उस समय कुंभनदासजी की आयु दस वर्षकी थी। वल्लभ सम्प्रदाय में किंवदन्ती है कि कुंभनदासजी के पिता एकवार कुंभस्नान करने गये

वहां उन्हें एक महात्मा की सेवा के फलरूप पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद मिला। उसी की स्मृति में कुंभनदास नाम रक्खा गया।

जाति—गोरवा क्षत्रिय ।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके पिता का नाम अज्ञात है। इनके चाचा का नाम धर्मदास था। कुंभनदासजी का कुटम्ब बहुत बड़ा था। इनके सात पुत्र और सात ही पुत्रवधुए थी। इनके एक पुत्र कृष्ण-दासको सिंहने मारडाला था। पांच बड़े पुत्र इन्होंने अलग कर दिये, केवल सबसे छोटे पुत्र, चतुर्भुजदासजी, जो इनकी तरह भक्त कवि थे, इनके साथ रहते थे। इनके यहां धन का सदैव अभाव रहता था। इनका व्यवसाय केवल खेती करना था। निर्धनी होकर भी ये त्यागी थे। एक-बार राजा मानसिंहने इन्हें द्रव्य दिया परन्तु इन्होंने नहीं लिया। बादशाह अकबरकी भी उन्होंने उपेक्षा करदी थी। कांकरोली राज्य के एक कर्मचारी श्रीनरेन्द्रवर्मा, इन्हीं के वंशज हैं जो बड़े विद्यानुरागी और कवि हैं।

शिक्षा—ये गानविद्यामें बहुत निपुण थे। श्रीवल्लभाचार्यजी के संसर्ग से इन्होंने भक्ति—ज्ञान प्राप्त किया था।

वल्लभसम्प्रदाय में प्रवेश—सं. १५५६।

प्रमाण—श्रीगोवर्धननाथजी के प्राकट्य की वार्तासे विदित है कि श्रीवल्लभाचार्यजीने सं. १५५६ बैसाख शुक्ल तीजको श्रीनाथजी को गोवर्धन पर छोटे मंदिर में पधराया, और वहीं कुंभनदासजी को स्त्री सहित शरण लिया था।

अन्त समय—कुंभनदासने भी श्रीगो० विठ्ठलनाथजी के सात बालकों की वधाई गाई है। इससे सिद्ध है कि वे सं. १६२८ (घन-

श्यामजीके जन्म—समय) में जीवित थे । गोस्वामी विट्ठलनाथजीने ब्रजसे गुजरात की दो यात्राए को, एक संवत १६३१ में और दूसरी संवत १६३८ में । गुसांईजी की प्रथम यात्रा के समय इनको, ८४ वार्ता के अनुसार, श्रीनाथजीका विरह हुआ था । इससे सिद्ध है कि ये संवत १६३१ तक तो अवश्य जीवित थे । हमारा अनुमान है कि फतहपुर सीकरी में अकबर बादशाह से कुंभनदासजी सं. १६३८ में मिलेहोंगे, क्योंकि श्रीओझाजीके लिखे हुए उदयपुरके इतिहास पृ. ४५९ मे अकबर के दरबार का उल्लेख सं. १६३८ माघसुद ६ में होने का है । उसी समय बादशाहने कुंभनदासको फतहपुर सीकरी बुलाया होगा । वार्ता से यहभी विदित है कि सूरदासजी की मृत्यु के समय ये जीवित थे । इसलिये हम इनका मृत्यु समय भी लगभग सं. १६४० मान सकते हैं ।

निबास स्थान—व्रजमें जमुनावतौ ।

मृत्युस्थान—आन्योर के पास संकर्षणकुंड

लीलात्मक स्वरूप—अर्जुन सखा और विशाखा सखी ।

रचना—कुंभनदासजी के लगभग २०० पद कांकरौली में संग्रहीत हैं । इनके पद गोचारण और गोदोहन लीला के उत्कृष्ट हैं । कृष्ण की किशोर लीला पर भी इन्होंने बहुत पद लिखे हैं ।

---

(४) कृष्णदास अधिकारी-

जन्मस्थान—चिलौतर गुजरात में । **जाति**—कुनबी पटेल (शूद्र)

जन्मतिथि—लगभग सं. १५५४ । प्रमाण—८४ वार्ता हरिरायजी के भावप्रकाशवालीमें, लिखा है कि कृष्णदास तेरह वर्ष की अवस्था में आचार्यजी की शरण आये । इनका शरण समय सं. १५६७ है ।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके पिता गांव के मुखिया थे, परन्तु वे एक धनलोलुप व्यक्ति थे, और अपने असत्याचरण से भी धनोपार्जन करते थे। कृष्णदास का स्वभाव बाल्यकाल ही से सत्य-प्रिय था। अपने पिता के असत्य आचरण के कारण ये १३ वर्ष की अवस्था में ही तीर्थयात्रा को निकल पड़े। इन्होंने अपना विवाह नहीं किया।

शिक्षा—इनकी आरम्भिक गुजराती भाषा की शिक्षा बाल्यकाल में चिलौतरा में ही हुई होगी, बाद में श्रीआचार्यजी की शरण आने पर इनकी शिक्षा वल्लभसम्प्रदाय में ही हुई और वहीं पर इन्होंने व्रज भाषा सीखी। व्यवहार में ये बहुत कुशल थे। और हिसाब किताब में प्रवीण थे, इसी लिये गुसाईंजीने इन्हें श्रीनाथजी के मंदिरका अधिकारी बनाया था।

वल्लभ-सम्प्रदाय में प्रवेश—

वल्लभ-दिग्विजय में लिखा है कि आचार्यजी सूरदास को शरण ले कर जब मथुरा विश्रान्तघाटपर आये तभी उन्होंने कृष्णदास को शरण लिया। सूरदास को आचार्यजीने सं. १५६७ में शरण लिया था। अतः यही वर्ष इनके शरणागतिका निकलता है।

सं. १५९० में गोस्वामी विठ्ठलनाथजीने इनको मंदिरका अधि-कार दिया। नाथद्वार में मंदिर के कृष्ण भंडारका नाम इन्हीं के नाम के आधार पर अब तक चला जाता है। और वहां अब भी अधिकारी का नाम कृष्णदासजी ही लिखा जाता है।

अंत समय—इन्होंने भी गुसाईंजी के सातों बालकों की वधाई गाई है। इस लिए सातवें पुत्र धनश्यामजी के जन्मसमय सं. १६२८

तक ये जीवित थे। इन पदों में से एक में इन्होने श्रीधनश्यामजी की बालक्रीडाका इस प्रकार वर्णन किया है:-

" श्री वल्लभ-कुल मंडन प्रगटे श्रीविट्ठलनाथ

× × ×

श्रीघनस्याम लाल बल अविचल केलिकलोल

कुंचित केस कमल मुख जानो मधुपन के टोल।"

इस पद रचना के समय घनस्यामजो की आयु हम ४ वर्ष की मान सकते है। इस हिसाब से कृष्णदास की स्थिति सं. १६३१ तक सिद्ध होती है।

कृष्णदास के बाद श्रीनाथजी के मंदिर के, चांपाभाई अधिकारी हुए, जो पहिले गोस्वामी विट्ठलनाथजी की विदेश यात्राओं में उनके साथ भंडारी रहा करते थे। गुसांईजी के यात्राविवरण से पता चलता है कि उनकी, ब्रजसे गुजरात की सं. १६३१ की-प्रथम यात्रा में चांपाभाई उनके साथ थे, परन्तु उनकी दूसरी यात्रा (सं. १६३८) के विवरण में चांपाभाईका उल्लेख नहीं है। इससे अनुमान होता है कि इस दूसरी यात्रा से पहले कृष्णदासजी का निधन हो चुका था और चांपा भाई उनकी जगह अधिकारी बनादिये गये थे। इसीसे वे गुजरात यात्रा में गुसाईंजी के साथ नहीं गये। इस आधार से अनुमान है कि कृष्णदासका निधन सं. १६३१ के बाद और सं. १६३८ से पहेल हुआ था।

स्थायी निवास--बिलछूकुंड.

मृत्यु स्थान--पूंछरी के पास। कुए में गिर कर इनकी मृत्यु

हुई । यह कुआ अभीभी विद्यमान है और 'कृष्णदासका कुआ' इस नामसे आज भी प्रसिद्ध है ।

लीलात्मक स्वरूप—ऋषभ सखा और श्रीललिता सखी ।

रचना—कृष्णदासजो के ६७६ पदोंका संग्रह कांकरोली में है । हमने इनके काव्यका अध्ययन इन्हीं पदों के आधार से किया है । इसमें राधा कृष्ण अनुराग के शृंगारादिक पद अधिक हैं और उन्हीं शृंगारात्मक दम्पति--लीला वर्णन में इनकी काव्यपटुता का स्रोत बहा है ।

—o—

(५) छीतस्वामी

जन्मस्थान—मथुरा.

जन्म संवत—श्रीद्वारिकादासजी, कांकरौली, इनका जन्म संवत १५७२ मानते है ।

जाति—चतुर्वेदी ब्राह्मण और बीरबल के पुरोहित थे ।

माता, पिता, कुटुम्ब—इनके मातापिता के विषय में विशेष वृतान्त ज्ञात नहीं । वार्तासे अनुमान होता है कि ये गृहस्थी थे ।

शिक्षा और स्वभाव—वल्लभसम्प्रदायमें आनेसे पहेले ये एक लम्पट प्रकृति के पुरुष थे । वार्तासे यह भी अनुमान होता है कि ये शरण में आने से पहिले कविता भी करते थे । गोस्वामी विट्ठल-नाथजी के प्रभावसे उनके चित्त की वृत्ति लौकिक विषयोंसे हट कर एकदम परमार्थ की ओर लग गई और उस के बाद श्रीनाथजी की कीर्तन सेवामें रहकर इन्होंने अष्टछाप में स्थान पाया ।

वल्लभसंप्रदायमें प्रवेश—

सम्प्रदाय कल्पद्रुम पृ. ५५ के लेख के अनुसार ये सं. १५९२ में गुसाईंजी की शरण आये।

स्थायी निवास—गिरिराज पर पूंछरी स्थान।

लीलात्मक स्वरुप—सुबल सखा और पद्मा सखी।

रचना—अभी तक हमारे देखने में इनके करीब २०० पद आये है। इनके पदों की भाषा सरल और सीधी है।

अन्त समय—संवत् १६४२.

श्रीगिरिधरलालजी के १२० बचनामृत में लिखा है कि जब श्री गुसांईजी का गोलोक वास हो गया, तब इस दुःखद समाचार को सुन कर छीतस्वामीको मूर्छा आ गई। उसी समय श्रीनाथजीने इन्हे दर्शन दिये और आज्ञा की कि अब तक तो मैं दो रूप से अनुभव कराताथा पर अब मैं सात रूपों द्वारा अनुभव कराऊंगा। इसी समय छीतस्वामीने गुसांईजी के सात बालकों का " विहरत सातोंरूप धरे " यह पद गाया और देह त्याग कर दी।

---

(६) गोविन्दस्वामी

जन्मस्थान—भरतपुर राज्य के अंतर्गत आंतरी ग्राम।

जाति—सनाढ्य ब्राह्मण।

जन्म तिथि—अनुमानसे सं. १५६२.

माता, पिता कुटुम्ब—इनके माता पिता के विषयमें कोई वृतान्त

ज्ञात नहीं है । वार्ता से ज्ञात होता है कि ये वल्लभसम्प्रदायमें आने से पहले गृहस्थ थे और इनके एक लड़की भी थी । परन्तु शरणमें आने के पहलेही इन्होने घरका मोह छोड़ दिया था। उनके एक बहन भी थी जो इनके साथ गोस्वामी विट्ठलनाथजो की शिष्या हो गई थी, और इन्हीं के साथ गोकुल महाबनमें रहती थी।

शिक्षा—वार्ता से ज्ञात होता है कि शरण में आनेसे पहले ये एक उच्च कोटिके कवि और गवैये थे। गानविद्या के ये एक बडे आचार्य समझे जाते थे। इसलिये इनके बहुतसे शिष्य भी हो गये थे। इसी से ये स्वामी कहलाये थे। अकबर के दरबारके नवरत्नों में से एक रत्न तानसेनजी जो स्वामी हरिदासजी के शिष्य थे इनसे गाना सीखने के लिये इनके कथनानुसार श्रीगुसांइजीके शिष्य हुए थे।

वल्लभसंप्रदाय में प्रवेश—संवत १५९२ सम्प्रदाय–कल्पद्रुम पृ. ५५ के आधारसे। वार्ता से ज्ञात होता है कि, कुछ समय गृहस्थ आश्रम भोगने के बाद इनके चित्तमें भगवत्–प्राप्ति की इच्छा हुई उस समय तक इनकी ख्याति गाने और लिखने में हो चुकी थी, जिसके कारण बहुत से लोग इनके सेवक हो गये थे, और उस समय ये स्वामी कहलाते थे। भगवत्प्राप्ति की प्रेरणासे ये घर छोड कर व्रजमे आये और महावन में रहने लगे। वहां पर भी ये पद बना कर कीर्तन करते थे। हमारे अनुमानसे इस समय इनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष की अवश्य रही होगी। इसके बाद ये गोस्वामीजो की शरण में आये।

स्थायी निवास—ये गोकुल और महाबन के टीला पर बैठकर बहुधा पद गाया करते थे। गिरिराजकी कदमखंडी पर इनका निवास

स्थान था। ये स्थान गोविंदस्वामी की कदमखंडीके नामसे अब भी प्रसिद्ध है।

अंत समय——सं. १६४२। गोविंदस्वामीने भी गुसाईजी के सात बालकों की वधाई गाई है, इस लिये इनकी स्थिति सं. १६२८ तकतो सिद्धही है। श्रीगिरिधरलालजी के १२० वचनामृत नामक ग्रन्थमें लिखा है कि जब सं. १६४२ में गोस्वामी विट्ठलनाथजी लीला में पधारे तभी गोविंदस्वामीने भी देह सहित गोवर्द्धनकी कंदरामें प्रवेश किया और वे नित्यलीला में पहुंच गये।

मृत्युस्थान——गोंवर्धन की कंदरा।

लीलात्मक स्वरूपः——श्री दामा सखा और भामा सखी।

रचना——इनके दोसौ बावन पद सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है इनके २५२ पदों के दो संग्रह कांकरौली में हैं। २५२ पदोंका एक संग्रह हमारे पास भी है जिसका मिलान हमने कांकरौली वाली प्रतियों से कर लिखा है। तीनो प्रतियों में कुछ थोडे पाठ भेद से एकसे पद हैं। इन २५२ पदों के अतिरिक्त इनके कुछ फुट कर पद भी कीर्तन संग्रहों में हैं। २५२ पदों का विषय मुख्यतः राधा कृष्ण की श्रृंगारात्मक अनुरागी लीलाएं हैं।

(७) चतुर्भुजदास

जन्मस्थान——जमुनावतो गोंवर्धन के पास।

जन्म तिथि——सम्प्रदाय कल्पद्रुम अनुसार सं० १५९७।

जाति——गोरवा क्षत्रिय।

माता, पिता, कुटुम्ब—अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि और भक्त कुंभनदासजी इनके पिता थे। इनके ६ भाई इनसे बड़े थे। एक स्त्री के देहान्त के बाद इन्होंने अपनी जातिप्रथानुसार 'धरेजा' किया था। इन के राघोंदास नामक एक पुत्र भी था।

वल्लभसंप्रदायमें प्रवेश—सम्प्रदाय कल्पद्रुम के पृष्ठ ५७ में लिखा है कि सं. १५९७ में गिरिधरजी के प्राकट्य के बाद गोस्वामी विट्ठलनाथजी नंदमहोत्सव करके ब्रजमें आये, तभी चतुर्भुजदासको उन्होंने शरण में लिया। वार्ता से विदित होता है कि चतुर्भुजदास को इकतालीसवें दिन इनके पिताने गुसांईजी की शरण में दिया था।

शिक्षा—इनकी शिक्षा वल्लभसम्प्रदाय में रह कर ही हुई। इनके पदों से ज्ञात होता है कि इनको संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। गानविद्या और कविताशक्ति का उपार्जन इन्होंने अपने पिता के द्वारा किया था।

अन्त समय—संवत १६४२ गोस्वामी विट्ठलनाथजी के गोलोक-वास के बाद ही।

प्रमाण—गोस्वामी विट्ठलनाथजी के सात बालकों की बधाई इन्होंने भी गाई है इसलिए सं. १६२८ तक इनकी स्थिति सिद्ध है। संवत् १६९७ की, गुसांईजी के चार सेवकन की वार्ता में लिखा है कि गोस्वामी विट्ठलनाथजी के परलोकवास पर इनको बहुत विरह हुआ। इस विरहमें इन्होंने गुसांईजी की प्रशंसा और स्मृति के पद गाये और फिर देह छोड़ दी। गुसांईजी की स्मृति में लिखे हुए इनके पद

इस बातका प्रमाण देते हैं कि इनका देहान्त गोस्वामीजी के परलोक-वास के बाद हुआ।

स्थायी निवासस्थान—जमुनावतो।

मृत्युस्थान—रुद्रकुंड ऊपर इमली के वृक्ष के नीचे।

लीलात्मक स्वरूप—विशाल सखा और विमला सखी।

रचना—पद कीर्तन। इनके लगभग २०० पदों का संग्रह हमने कांकरौली विद्याविभाग में देखा है और उन्ही पदों के आधार पर हमने इनके काव्य का अध्ययन किया है। इन्होंने अपने पदों में ब्रज कृष्ण की सभी भावात्मक लीलाओं का चित्रण किया है। कृष्ण जन्म के समय के पदों से लेकर गोपीविरह तक के पद उन्होंने लिखे हैं। इनके पदों से इनका पांडित्य और उच्चकोटि की कविताशक्ति प्रगट होती है।

---

(८) नंददास

जन्म स्थान—रामपुर।

जन्म संवत्—सं. १५९४ अनुमान सिद्ध। श्रीद्वारिकादासजी कांकरौली का अनुमान है कि इनका जन्मसंवत १५९० है।

जाति—सनाढ्य ब्राह्मण। प्रमाण—सं. १६९७ की गुसांईजी के चार सेवकन की वार्ता।

माता, पिता, कुटुम्ब—वार्ता में इनके माता, पिता का कोई उल्लेख नहीं है। सं. १६९७ की वार्ता में तुलसीदास को इनका भाई लिखा है। सोरों में प्राप्त ग्रन्थों के आधारसे इनके पिताका नाम जीवाराम था, जो एक धर्मात्मा और विद्वान पुरुष थे। इनके पिताका देहान्त इनके बाल्यकाल में हो गया था। इनका विवाह हुआ और इनके संतान भी थी। सोरों की सामग्री के अनुसार इनके कृष्णदास नामक एक पुत्र भी था।

शिक्षा—वार्ता में लिखा है कि इनको गान विद्याका बड़ा शौक था और ये बहुत पढ़े हुए थे। इनके ग्रन्थों में कुछ उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि इनको संस्कृत भाषाका अच्छा ज्ञान था। वल्लभसम्प्रदाय में आने से पहिले ये कविता भी करते थे, और ये रामानन्दी सम्प्रदाय के किसी महात्मा के शिष्य थे। सोरों में प्राप्त ग्रन्थो में इनके शिक्षागुरु का नाम पं० नरसिंह सूकरक्षेत्र-निवासी दिया हुआ है।

वल्लभसंप्रदायमें प्रवेश—वार्ता से ज्ञात होता है कि पहले ये बहुत विलासी थे। एक स्त्री के रूप पर मोहित होने के बाद इनके मनकी लौकिक वृत्ति पलटी और गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी के प्रभाव से ये परम भक्त बने। हमने अपने एक लेख में अनुमान किया था कि इनकी शरणागतिका समय लगभग सं. १६२८ है। परन्तु कांकरौली के श्री द्वारिकादासजी वार्तासाहित्य के विशेषज्ञ का कहना है कि ये सं. १६०६ में गोस्वामीजी की शरण आये और सूरदासजी के भविष्यदर्शी आग्रहसे

फिर ग्रहस्थ हो गए, वहां उनके संतान हुई और फिर लगभग सं. १६२४ अथवा इसके कुछ बाद वापिस श्रीनाथजी की सेवा में आए। वार्ता में लिखा है कि शरणागति के बाद गुसांईजीने इन्हें सूरदासकी संगति में रक्खा।

"नन्दनन्दनदास–हित साहित्यलहरी कीन" सूरदास के इस कथन के अनुसार श्रीद्वारिकादासजी यह मानते हैं कि 'नंद नंदनदास' शब्द नंददासके लिये प्रयुक्त हुआ है और सूरदासने साहित्यलहरी की रचना सं. १६०७ में नंददास के लिये ही की थी।*

अन्त समय—वार्तासे विदित है कि नंददास की मृत्यु बादशाह अकबर और बीरबल के समक्ष हुई। बीरबल की मृत्यु सं. १६४७ में हुई। इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास की मृत्यु सं. १६४७ से पहिले हुई होगी। वार्ता में यह भी लिखा है कि नन्ददासकी मृत्यु के समय गोस्वामी विट्ठलनाथजी जीवित थे। गोस्वामीजीका गोलोकवास सं. १६४२ में हुआ। इस लिए नन्ददासजीका परलोकवास सं. १६४२ से भी पहिले होना चाहिए। हमारा अनुमान है कि इनकी मृत्यु लगभग सं. १६४० में हुई। कदाचित अकबर बादशाह बीरबलके साथ व्रजमें मानसी गंगा पर इसी समय आया था।

स्थायी निवास—गोवर्धन मानसी गंगा।

मृत्यु स्थान—गोवर्धन मानसी गंगा।

लीलात्मक स्वरूप—भोज सखा और चंद्रेरेखा सखी।

रचना—नन्ददासने सूरदासजी की तरह छंद और पद दोनों शैलियों में रचनाए की हैं। इनकी छन्दरचनाए अधिकतर बहुत छोटे

---

*विशेष देखिये उनके गुजराती अष्टछाप विभाग में.

आकार की हैं। कृष्णलीला के इनके कुछ लम्बे पदों को ही लोगोने इनके ग्रन्थरूपमें गगना कर ली है। हमने इनके निम्न लिखित उपलब्ध ग्रन्थ प्रमाणिक माने हैं। १. रास पंचाध्यायी २. सिद्धान्त पंचाध्यायी ३. भ्रमर गीत ४. पंचमंजरी (विरहमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, अनेकार्थमंजरी और मानमंजरी) ५. दशम स्कन्ध भाषा २८ अध्याय ६. रुक्मिणी मंगल ७. श्यामसगाई ८. सुदामा चरित ९. गोवर्धन लीला।

इनके लगभग ४०० पद हमारे देखने में आये हैं। नन्ददासके रास और राधाकृष्णके अनुराग के शृंगारिक पद काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। रोला लिखने में नन्ददास सिद्धहस्त हैं। इनकी व्रजभाषा बहुत श्रुतिमधुर है इसी लिए इनके विषय में कहावत प्रसिद्ध है "और सब गढ़िया नंददास जड़िया।"

नोट—नन्ददास की जीवनी के विषय में सोरों वाली सामग्री को एक बार हम देख चुके हैं। हमारा विचार फिरसे इस सामग्री को प्रमाणिकताको जांचने का है।

दीनदयालु गुप्त
एम. ए. एल. एल. बी.
हिन्दी लेक्चरर, **लखनऊ**-विश्वविद्यालय.

८४ और २५२ वैष्णव की वार्ता की प्रामाणिकता

वल्लभसम्प्रदायी कवियों की जीवनी का मुख्य सूत्र चौरासी वैष्णव तथा २५२ वैष्णवन की वार्ता और अष्टसखान की वार्ता है। इन वार्ताओं को मुख्य सूत्र मान कर अष्टछाप कवियों के जीवन वृत्त देने से पहले उक्त वार्तासाहित्य की प्रमाणिकता तथा उसके रचना काल के विषय में विचार करना उचित होगा।

उक्त वार्ताओं के विषय में जो प्रश्न उठते हैं उन को हम इस प्रकार रख सकते हैं।

(१) ये वार्ताए श्रीगोकुलनाथजी कृत हैं अथवा नहीं?

(२) इन वार्ताओं का रचनाकाल क्या है? क्या ८४ वार्ता, २५२ वार्ता तथा अलग से अष्टसखाओं की वार्ता एक ही समय की लिखी है, अथवा किसी अन्तर से लिखी गई हैं?

(३) इन में दिये हुए वृतान्त कहां तक प्रमाण कोटि में गिने जा सकते हैं?

पहले हम प्रथम प्रश्न को ही लेते हैं। वल्लभसम्प्रदायी वार्तासाहित्य तथा अन्य ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि यद्यपि श्रीवल्लभाचार्य के चरित्र सम्बन्धी प्रसंग श्रीगोकुलनाथजी के अल्पकालमें प्रचलित हो गए थे, फिर भी श्रीगोकुलनाथजीने ही—जो गोस्वामी विठ्ठलनाथजी के चौथे पुत्र थे—इनको लिखित रूप दिलाया। ये मौखिक रूप से अपने सम्प्रदायी भावों को आचार्यजी के ८४ और अपने पिता श्रीगुसांईजी के शिष्यों को चारित्रिक कथाए सुनाया करते थे, जो बाद में उनके जीवनकाल में ही लिपि

बद्धकरली गईं, इस के एक नहीं, अनेक प्रमाण हमें मिलते हैं।

श्रीकण्ठमणिशास्त्रीजीने प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना में वार्तासाहित्य के तीन संस्करण माने हैं–

प्रथम संस्करण–श्रीगोकुलनाथजी के कथा प्रवचन के समय का मूल रूप जो उनके हास्यप्रसंगों के समान बचनामृत रूपमें प्राप्त होता है। इसमें ८४ और २५२ का वर्गीकरण नहीं हुआ है"। शास्त्रीजीने इसको संग्रहात्मक वार्तासाहित्य कहा है।

द्वितीय संस्करण–" श्रीगोकुलनाथजी के समय में ही गो० श्रीहरिरायजी (समय सं. १६४७ से सं १७७२) द्वारा वर्गीकरण। इसी समयसे इन लिपिबद्ध वार्ताओं पर " श्रीगोकुलनाथजी कृत " इन शब्दोंका प्रयोग होने लगा। शास्त्रीजीने इस संस्करण का **समय** सं. १६९४ से सं. १७३५ तक माना है। कांकरौली में सं. १६९७ चैत्र सुदी ५ की एक हस्तलिखित ८४ तथा गुसांईजीके चार अष्ट-छापी सेवकों की वार्ता विद्यमान है। उसमें हरिरायजी का भावप्रकाश नहीं है। यह ग्रन्थ जैसा कि उसकी पुष्पिका से विदित है गोकुल में लिखा गया था, यह किसी और भी प्राचीन ग्रंथ की **संक्षिप्त** प्रतिलिपि है, क्योंकि वीच बीच में वार्ताओं के भीतर अमुक पंक्तियां छोड़ दी गई हैं जिनकों लिखिया मूल प्रति से वांच नहीं पाया है। हमारे देखने में भी इससे अधिक प्राचीन ८४ वार्ता तथा गुसांईजी के चार अष्टछापी सेवकों की वार्ता नहीं आई।

तृतीय संस्करण–श्रीगोकुलनाथजी के बाद, श्रीहरिरायजीने ८४ तथा २५२ वार्ताओं पर कुछ प्रसंग बढ़ा कर स्पष्टीकरण किया

जो गोस्वामी हरिरायजी की भावना की वार्ताए हैं ।

भावप्रकाशवाली ८४ तथा अष्टसखानकी वार्ता को एक प्रति सं. १७५२ की है, जो कांकरौली विद्याविभाग को पाटन से प्राप्र हुई थी और जिसके आधार पर प्रस्तुत अष्टछाप का संकलन किया हुआ है। भावप्रकाशवाली ८४ बार्ता की एक सचित्र प्राचीन प्रति हमने गोकुल में मोरवाले मंदिर के मुखिया श्रीगोरीलाल साचीहरजी के पास देखी है, जिसमेंसे हमने सूरदास की वार्ता भी उतार ली है। इसके आदि में इस प्रकार लिखा है:—"श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजन वल्लभाय नमः अथ चौरासी वैष्णवन की वार्ता श्रीगोकुलनाथजी प्रगटि कीए ताको श्रीहरिरायजी भाव कहत हैं"। इसी की सं. १८५७ की एक प्रति हमारे पास भी है।

श्रीहरीरायजी के भावप्रकाश, ८४ तथा अष्टसखान की वार्ता पर तो देखने में आए हैं परन्तु २५२ वार्ता पर अभी तक हमने कोई भावप्रकाश नहीं देखा । कहा जाता है कि २५२ की वार्ता पर भी हरिरायजीका भावप्रकाश है, परन्तु यहां हमारा प्रयोजन केवल अष्टछाप के चारित्रिक वृतान्तों से है । उस पर हरिरायजी का भाव प्रकाश मिलता ही है ।

छापे में आने वाली ८४ और २५२ वार्ताओं के वृतान्त और भाषा में बड़ा वैषम्य देखने में आता है। इसका कारण लिखियाओं की असावधानी तथा वैष्णव प्रेसवालों की स्वच्छन्दता है । इस बातका प्रमाण वैष्णव सूरदास ठाकुरदास द्वारा बम्बईसे सम्पादित २५२ वार्ता की प्रस्तावनाका लेख है । सूरदास ठाकुरदास वाली वार्ताओं के आधारसे

ही बाद में इन वार्ताओंके संस्करण हिन्दी, गुजराती में छपे। इस प्रस्तावना का कुछ उद्धरण हम यहां देते हैं—

" सर्व भगवदीय वैष्णवनकुं हाथ जोड़ के बीनती करूं हूं, मैंने २५२ वैष्णवन की वार्ता अल्प बुद्धिसुं सोधि के छपाई है........... ....और सब में विस्तार बहुत है परन्तु वो विस्तार कैसो है जो बांचि के वैष्णवन की वृत्ति स्थिर होवे और चित्त की वृत्ति श्रीप्रभुन में लगे सो वा विस्तारमें यह गुण नहीं है, सो ऐसो विस्तार काढ के संकोच करके लिखी है।"

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि अब तक छापे में आनेवाली वार्ताओं के बहुत से चारित्रिक, और विशेष रूप से ऐतिहासिक प्रसंग जो साम्प्रदायिक दृष्टि से भक्तिपक्ष में महत्त्वपूर्ण नहीं है, छोड़ दिये गए हैं। उदाहरणके लिए नंददास वाली वार्ता में, छपी प्रतियों में नंददास की जाति नहीं लिखी परन्तु प्रत्येक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में तथा पीछे कही हुई संवत १६९७ वाली प्रति में भी नंददास को सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है।

इन वार्ताओं के विषय में जैसा कि श्रीकंठमणि शास्त्रीजीने अपने वक्तव्य में कहा है, हम निश्चयपूर्वक कह सकते है कि ये वार्ताएं मूल रूप में श्रीगोकुलनाथजी द्वारा ही कथित हैं और ये वार्ताएं उनके जीवनकाल में ही लिपिबद्ध हो गईं थीं, जिनमें से ८४ और अष्टसखान की वार्ता तो गोकुलनाथजी के समयकी मिल चुकी है। २५२ की वार्ता भी खोज करने से अवश्य मिलनी चाहिये।

हिन्दी के कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस वार्ता—साहित्य का

किसी वैष्णवने साम्प्रदायिक गौरव बढाने के लिये पीछेसे गोकुलनाथजीके नामसे लिख कर प्रचार कर दिया है। वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। वार्ताए श्रीगोकुलनाथजी द्वारा ही कथित हैं। इतना अवश्य है कि इनको उन्होंने लिखा नहीं था। इस बात के प्रमाणों को हम संक्षिप्त में नीचे देते हैं।

१. हस्तलिखित प्राप्त होनेवाली अधिकांश वार्ताओं में इन्हें श्री गोकुलनाथजी कृत लिखा है।

२. जैसा कि श्रीकंठमणि शास्त्रीजीने अपने वक्तव्य में कहा है, श्रीगोकुलनाथजी के समसामयिक श्रीदेवकीनन्दनजी रचित 'प्रभु चरित्र चिन्तामणि' नामक ग्रन्थमें भी श्रीगोकुलनाथजी द्वारा कही हुई वार्ताओं का सूक्ष्म उल्लेख है।

३. जैसा कि पीछे कहा गया है श्रीगोकुलनाथजी के शिष्य और उनके समसामयिक गो. श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाशवाली वार्ताओं में इन वार्ताओं को गोकुलनाथजीकृत लिखा है।

४. श्रीहरिरायजी के शिष्य श्रीविट्ठलनाथ भट्ट द्वारा रचित सम्प्रदाय कल्पद्रुम में—जिसका रचनाकाल इसी ग्रन्थ में संवत् १७२९ दिया है और जो वेंकटेश्वर प्रेस बम्बईसे सं. १९५० में प्रकाशित हुआ था, पृष्ठ १४१ पर—श्रीगोकुलनाथजी के बनाए ग्रन्थोंका उल्लेख है। वहां लेखक कहता है—

" बचनामृत चौबीस किय, दैवी जन सुख दान।
वल्लभ विट्ठल वारता, प्रगट कीन नृप मान "

इसमें श्रीवल्लभाचार्य और श्रीविट्ठलनाथजी दोनों की वार्ताओं का उल्लेख है।

६. "निजवार्ता घरूवार्ता और चौरासी बैठक के चरित्र" नामक छपे हुए ग्रन्थ के पृष्ठ ६३ पर श्रीगोकुलनाथजी के भक्तों की चारित्रिक वार्ताओं का मौखिक रूपसे कहने का इस प्रकार उल्लेख है।

"श्री गोकुलनाथजी आप भगवदीयनतें इतनी कथा कहि विराम करत भए, तब भगवदीयनने बीनती कीनी, महाराज! आपने श्री आचार्यजी महाप्रभुकी तीन पृथ्वी परिक्रमा के चरित्र संक्षेप में सुनाए। परि या चरित्रामृत में हमकों तृप्ति नांहि होत। तातें और हू श्रीआचार्यजी के चरित्र सुनाइवेकी कृपा करोगे। तब श्रीगोकुलनाथजी आज्ञा करत भए जो श्रीआचार्यजी महाप्रभुके चरित्र तो अनन्त हैं पर और हू संक्षेप सों तुमकों सुनावत हों। ऐसे कहिके आप और हू चरितामृत अपने भगवदीयन को पान करावत भए।"

इसके बाद मे ८४ वार्ताओं का उल्लेख है।

७. इन वार्ताओं के प्रचारका ध्येय भक्तों के चारित्रिक उदाहरणों को उपस्थित करके भक्ति भावका हृदय में उद्रेक करना है। गोकुलनाथजी इसी विचारसे इन वार्ताओं को कथारूप से कहते थे। जगदीश्वर प्रेस से सं. १९५१ में छपी चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृ. २९१ के लेख से तथा कांकरोली में श्रीद्वारिकादासजी के पास रक्षित निजवार्ताकी एक प्राचीन (सं. १८५१ की) प्रतिलिपि से भी इसकी पुष्टि होती है।

"और श्रीगोकुलनाथजी आप कथा कहते सो एक दिन श्री गोकुलनाथजी आप दामोदरदास संभरवारे की वार्ता करत हुते, तब एक वैष्णवने पूछ्यो जो महाराज, आज कथा न कहोगे। तब श्रीगोकुल-

नाथजी आप श्रीमुखतें कह्यो जो आज तो कथा को फल कहत हैं। ताते भगवदीयन को अवश्य चौरासी वार्ता कहनी और सुननी, **जातें भगवद्भक्ति हॉय और श्रीठाकुरजीके चरणारविंद में स्नेह होय और श्रीनाथजी प्रसन्न होय।"**

उपर्युक्त कथनसे यह सिद्ध है कि वार्ताएं श्रीगोकुलनाथजी द्वारा ही कथित हैं, इसीलिए वे इनके कर्ता कहे गए हैं। वास्तव में गोकुलनाथजीने इन वार्ताओं को अपने हाथसे नहीं लिखा। इनके सम्पादक श्रीहरिरायजी हैं।

दूसरा प्रश्न है ८४ और २५२ वार्ता का रचनाकाल।

कंठमणि शास्त्रीजी के वर्गीकरण से वार्तासाहित्य के इतिहासका परिचय मिलता है। पीछे कहे प्रमाणों से पाठक यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ८४ वार्ता तथा अष्टसखान की वार्ता २५२ वार्ता से अधिक पुरानी है। वास्तव में २५२ की हमें ८४ वार्ता के समान प्राचीन प्रति देखने को नहीं मिली। कहा जाता है कि कामबन में बहुत प्राचीन प्रति विद्यमान है। २५२ वार्ता की, लगभग १२० वर्ष पुरानी प्रतियां हमने गोकुल और मथुरा मे देखी हैं। उनमें के बहुत से प्रसंग छपी हुई २५२ में छोड़ दिये गए हैं। अप्रेल सन् १९३२ में ब्रज-भाषा के विशेषज्ञ प्रो. डा. धीरेन्द्र वर्माजीने 'हिन्दुस्तानी' में एक लेख इन वार्ताओं पर लिखा था। डा. वर्माने भाषा की दृष्टि से चोरासी वैष्णवन की वार्ता को दोसौ बावन वार्ता की अपेक्षा अधिक पुराना बताया है। अनुमान हमारा भी यही कहता है कि श्रीगोकुलनाथजीके ८४ वार्ता वाले बचनों का संकलन पहले हुआ और २५२ वार्ताका

बाद मे, परन्तु दोनों का संकलन हरिरायजी के सं. १७२६ में गोकुल छोड़ने से पहिले ही हो गया था। सं. १७२६ में औरंगज़ेब के अत्याचारसे वैष्णव, श्रीनाथजीको उनके सम्पूर्ण वैभव सहित गोवर्धनसे बाहर ले गए और दो वर्ष बाद सं. १७२८ में उनको नाथद्वारमें विराजमान किया। उनके साथ श्रीहरिरायजी भी आए थे। ज्ञात होता है कि श्रीहरिरायजीने अपने उत्तर जीवनकालमें वार्ता पर अपना भाव-प्रकाश लिखा होगा।

२५२ वार्ता में अजबकुंवर, गंगाबाई, लाड़बाई और धारबाई के चरित्रों में कुछ प्रसंग ऐसे आते हैं जिनमें औरंगजेब के मंदिर तोड़नेका जिक्र है। इसी वार्ता में श्रीगोकुलनाथजी का नाम आदर प्रदर्शक शब्दों में प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार के वृतान्त स्वभावतः पाठकों के हृदय में शंका उत्पन्न कर सकते हैं कि यह २५२ वार्ता ग्रन्थ गोकुलनाथजी कृत नहीं हो सकता क्यों कि ये घटनाएं श्रीगोकुलनाथजी के समय के बाद की हैं। किन्तु इन प्रसंगों का समावेश प्रथम श्रीहरिरायजीने किया है, जो औरंगज़ेबके मंदिर तोड़ने के बहुत समय बाद तक जीवित रहे थे। गोकुलनाथजी के कहे हुए प्रसंगों को उनके अनेक शिष्यों ने लिखा है, विशेष रूप से श्रीहरिरायजीने*। २५२ वार्ता में हरिरायजीके बहुत

---

* भावप्रकाश में हरिरायजीने ऐतिह्य साधनोंका भी संग्रह किया था जैसा कि सूरदास, परमानन्द आदि की प्रस्तुत ग्रन्थकी भावप्रकाश वाली वार्ताओंमें विद्यमान है। इससे यह भी निश्चित है कि वार्ता के तृतीय संस्करणके समय जो कि सं. क. के आधारसे सं. १७२९ के बाद हुआ है, श्रीहरिरायजीने लाडबाई, धारबाई. अजबकुंवर और उस समय तक विद्यमान गंगा क्षत्रानी आदिके श्रीगोकुलनाथजी द्वारा प्रकटित अपूर्ण प्रसंगों को

समय बाद वैष्णवोंने अब वार्ताओंको छपवाया, उस समय उन्होंनें मन मानी घटा बढी कर ली, जैसा कि सूरदास ठाकुरदासके कथनसे सिद्ध होता है। २५२ वार्ता को प्रस्तावना में वैष्णव सूरदास ठाकुरदास आगे लिखते हैं, " २५२ वैष्णवन की वार्ता सम्पूर्ण मिली नहीं, जासु मैंने वल्लभकुलके बालकन के मुखसों और प्राचीन वैष्णवन के मुख सूं सुनी है सो वार्ता मिलायके २५२ वार्ता संपूर्ण करी है। "

अब प्रश्न है कि इन वार्ताओं में दिए हुए वृतान्त कहां तक प्रमाण कोटिमें गिने जा सकते हैं। हिन्दी के कई बिद्वानोंने कहीं तो यह कहकर ८४ और २५२ को अप्रमाणिक कह दिया है कि ये साम्प्रदायिक गौरव बढानेके लिए गढ़ी हुई कपोल कल्पनाएं हैं। और कहीं कुछ विद्वानों ने छपी वार्ताओंमें श्रीगोकुलनाथजी के समय के बाद दो एक घटनाओं का समावेश तथा भाषा संबन्धी रूपान्तर देख कर सम्पूर्ण वार्ता को अप्रमाणिक सिद्ध कर दिया है।

पहले कथन की सहमति में हम इतना मानते हैं कि भक्तों के आध्यात्मिक चरित्रों में अलौकिक घटनाओं का समावेश किसी हद तक अवश्य हुआ है, वैसे भक्तो की दृष्टिसे यही अलौकिक घटनाएं अधिक महत्त्वकी हैं, परन्तु वार्ताके भौतिक चरित्र–प्रसंगो में घटा बढी से सम्प्रदाय का कोई गौरव नहीं बढता। चाहे कोई भक्त क्षत्रिय हो और चाहे ब्राह्मण। वैसे आचार्यजी और गुसांईजी के शिष्यों में चूहड़ जाति

पूर्ण किया है, और इसी अरसे में श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता की भी रचना की है जिसका उल्लेख गंगाबाईकी वार्ता में मिलता है।

से लेकर ब्राह्मण तक, सभी जाति के लोगों का समावेश है। मेरे विचारसे भक्तों के चरित्रो में अलौकिक चरित्र के कारण प्रसंगो में ऐतिहासिक महत्ता अग्राह्य नहीं होनी चाहिए। विशेष रूप से वहां, जहां अन्य विश्वस्त प्रमाणों का अभाव है।

दूसरे आक्षेप पर हम पहले ही कह चुके हैं कि वास्तवमें चौरासी वार्ता अष्टसखाओं की वार्ता, २५२ वार्ता तथा अन्य कई ग्रन्थ श्री गोकुलनाथजी के हाथ के लिखे हुए नहीं हैं। भाषा का रूपान्तर ८४ और २५२ वार्ताओं में अवश्य है। परन्तु यह रूपान्तर हमें केवल चौरासी में भी जिसको डा. धीरेन्द्र वर्मा और रामकुमार वर्माने भी प्रामाणिक माना है, भिन्न भिन्न समय की प्रतिलिपियों में बहुत मिलता है। प्रतिलिपिकारों का तथा प्रतिलिपि कराने वाले वैष्णवों का ध्यान भाषा की शुद्धता की ओर नहीं रहा। उनका ध्यान केवल वृतान्त के भाव की ओर रहा है, इसी लिये लिखियाओंने अपने अपने प्रान्त और अपनी अपनी शिक्षा बुद्धि के अनुसार भाषा का रूपान्तर कर मारा है। इसलिए जिस वैष्णव ग्रन्थ में जो तिथि दी हो हम केवल उसी समय की भाषा का अनुमान उस ग्रन्थसे लगा सकते है। इस प्रकार भाषा के आधारसे साधारण लोगों की नवीन प्रतिलिपियों को महत्त्व पूर्ण नहीं समझना चाहिये।

हम पहले कह चुके हैं कि ये वृतान्त श्रीहरिरायजीने संगृहीत किये हैं और उन्होंने अपनी टिप्पणीयोंसे उनको स्पष्ट किया है। हरि-रायजी सम्प्रदाय के बहुत विद्वान; बडे भारी लेखक और उन्नायक हुए

हैं, उन्होने बहुत सी यात्राएंकी थीं। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह हमारा अनुमान है अधिकांश में विश्वस्त सूत्र से सूचना लेकर लिखा होगा। अष्टछाप कवियों पर हरिरायजी की अलग से भावना है। इस लिये हम अष्टकवियों की जीवन सामग्री के लिए भावनावाली ८४ और अष्ट वार्ताओं की प्रतियों को कांकरोली की १६९७ की प्रतिको प्रामाणिक मानते हैं। २५२ वार्ता की भावनावाली प्रति मिले तो उसकी प्रामाणिकताका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायगा अन्यथा अष्ट कवियों की जीवनी के प्रमाण स्वरूप तो उपर्युक्त ग्र-थ उस समय तक पर्याप्त है जब तक लोगों को कोई अन्य अधिक विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता।

कांकरोली
ता. २५।६।१९४१

दीनदयालु गुप्त
एम. ए. एल. एल. बी.
हीन्दी लेक्चरर **लखनउ** विश्वविद्यालय

—⊂⊃—

विद्याविभाग कांकरोलीद्वारा प्रकाशित—

अष्टछाप पर अभिप्राय

हिन्दी साहित्यमें व्रजभाषा के अष्टछाप कवि एक विशेष महत्व का स्थान रखते हैं। इन कवियों की जीवनियों का अधिकांश में विश्वस्त आधार '८४ वैष्णवन की वार्ता' तथा '२५२ वैष्णवन की वार्ता है।

सन १९१९ में हिन्दी के प्रोफेसर, आचार्य डा० धीरेन्द्रवर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय, ने डाकौरजी से सं. १९६० में प्रकाशित ८४ और २५२ वार्त्ताओं के आधार पर अष्टछाप कवियों की वार्ताओं का, 'अष्टछाप' नाम से संकलन किया था। प्रस्तावना में उन्होंने इन वार्ताओं की ऐतिहासिक तथा भाषा सम्बन्धी महत्ता पर प्रकाश डाला है। श्री वर्माजी का यह संग्रह विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं में हिन्दी गद्यसाहित्य की पाठ्य पुस्तक रूप में पढ़ाया जाता है। हिन्दीसाहित्य के इतिहासकारों ने 'अष्टछाप' कवियों का वृत्तान्त अधिकांश में इन वार्ताओं के सहारे पर ही दिया है।

वल्लभसंप्रदायी साहित्य-संग्रहालयों में तथा वैष्णव घरों में वार्ता के उपर्युक्त वृत्तान्त के अतिरिक्त, इन वार्ताओं पर गो० हरिरायजी (समय सं. १६४७ से सं. १७७२ तक) कृत 'भावप्रकाश' भी मिलता है, जिनमें पुष्टिमार्गीय भक्तों के वृत्तान्त कुछ विशेष सूचना के साथ दिये हुए हैं। गो० हरिरायजी के 'भावप्रकाश' की सूचना का सबसे प्रथम प्रसार सं. १९९६ में कांकरोली से प्रकाशित 'प्राचीन वार्ता

रहस्य' प्रथम भाग नामक पुस्तक से हिन्दी-संसार में हुआ। अष्टभक्त कवि के भावप्रकाश वाले वृत्तान्त की सूचना जब कुछ विद्वानोंने पत्रिकाओं निकलवाई तो हिन्दी संसार का ध्यान इस 'भावप्रकाश' की ओर विशे रूप से आकृष्ट हुआ। हरिरायजी की भावनावाली ८४ वार्ता (सं. १८५७ की प्रतिलिपि) तथा २५२ वार्ता के चार 'अष्टछाप वाले कवियों की वार्ता की हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे भी गोकुल पिछले वर्ष प्राप्त हुई थी। मैंने उन्हे डा० वर्मा तथा अन्य हिन्द प्रेमियों को दिखाया तो उन्होंने मुझे उनके 'अष्टछाप' सम्बन्ध वृत्तान्त को, अलग से छपवाने की सम्मति दी। अष्टछाप पर नवीन सामग्री की मांग का अनुभव कांकरौली विद्याविभागने भी किया।

कांकरोली विद्याविभाग में वल्लभ–सम्प्रदायी तथा अन्य प्राचीन हस्तलिखित साहित्य का, एक बृहत और सुव्यवस्थित संग्रह सुरक्षित है। जिसका अवलोकन आजकल मैं कांकरौली में रहकर कर रहा हूँ। विद्वद्वर श्रीकण्ठमणि शास्त्री इस विभाग के संचालक हैं और इस बहुमूल्य संचित निधि का उपयोग अपनी लेखनी द्वारा कर रहे हैं। उन्होंने तथा साम्प्रदायिक साहित्य और सेवाविधि के विशेषज्ञ श्रीद्वारिकादासजीने बडी योग्यता पूर्वक गो० हरिरायजी कृत 'भाव-प्रकाश' के साथ प्रस्तुत 'अष्टछाप' वार्ता का संकलन किया है। उन्होंने अपने इस कार्य से वास्तव में हिन्दी साहित्य की एक आवश्य-कता की पूर्ति की है।

उक्त संकलनका आधार, जैसा कि ग्रन्थ की प्रस्तावना में सूचित है, सं. १७५२ का 'अष्टसखान को वार्ता' पर गो० हरिरायजी का

भावप्रकाश है। अष्टसखा तथा ८४ वार्ता की सं. १६९७ की लिखी एक प्रति कांकरौली विद्याविभाग में विद्यमान है। इस प्रति का मैंने निरीक्षण किया है और इस की प्राचीनता पर मुझे संदेह नहीं है। यह वार्त्ता गो० गोकुलनाथजी के समय की ही लिखी हुई है। सं. १६९७ की यह वार्ता और सं. १७५२ की प्रस्तुत वार्ता भाषा की दृष्टि से बहुत कुछ मिलती जुलती है।

प्रस्तुत ग्रन्थकी प्रस्तावना श्रीकण्ठमणि शास्त्रीजी ने बड़ी खोज के साथ लिखी है, जिससे संस्कृत और साम्प्रदायिक साहित्य के विद्वान शास्त्रीजी के हार्दिक हिन्दी साहित्यानुराग और विद्वत्ता का परिचय मिलता है। शास्त्रीजी प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक, श्रीद्वारिकादासजी के सहयोग से अष्टछाप कवियों के काव्य का तथा अन्य वल्लभ-सम्प्रदायी कवियों का, उनके परिचय सहित संग्रह निकालने वाले है। मैं, उनके इस विचार और कार्यकी हृदय से प्रशंसा करता हूं। प्रस्तुत 'अष्टछाप' के संकलन और प्रकाशन के लिये कांकरौली विद्याविभाग हिन्दी संसार की प्रशंसा का भागी है। मुझे ज्ञात हुआ है कि इस साम्प्रदायिक साहित्य के प्रकाशन में कांकरौली के विद्या और कलाके प्रेमी महाराजश्री गो० व्रजभूषणलालजी तथा उनके अनुज गो० श्री विठ्ठलनाथजी विशेष प्रोत्साहन दे रहे हैं। श्रीमहाराजों का यह कार्य वास्तव में स्तुत्य है

दीनदयालु गुप्त

एम, ए. एल. एल. बी.

हिन्दी लेक्चरर, **लखनऊ** विश्वविद्यालय.

शुद्धि-पत्रक

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ-पंक्ति	
करनफूल कछु	करनफूल और कछु	२१	१२
सूरस्याम पके	सूरस्याम छापके	४५	१५
सूरजदास	सूरज	५६	९
भगवद् वर्णन	भगवद्जश वर्णन	७३	१७
नन्द खेलत	नन्द के खेलत	७५	१०
१६०५	१६२५	९३	२१
औरे सब	औरे तो	९५	२
करन	करनफूल	१२४.	१९
करत नहीं	नहीं करते	१२८	२१
श्रीअक्रूरजी	श्रीकृष्णजी	१८६	२२
गाय सों	गाय वा सों	२०६	१७
होयकी	होयवे की	२१७	२०
कछू	जो कछू	२२४	२
पहिची	पहोंचि	२२९	७
सब बालकन सहित	×	२५५	२०
ब्राह्मण	ब्राह्मण जाके पद अष्टछापमें गाइयत हैं	२६४	३
रहे जो	रहे और विचारे जो-जो	२६४	१४
लोगन सों	लोगन ने	२६९	१
आज और......	सुभग सिंगार आज......	३०३	४
उहनो	उराहनो	३१८	२१
पढै	पठे	३२३	२१
तुम	तू	३२६	१९
जब	तब	३२७	१६

श्रीहरिराय महाप्रभु.

प्राकट्य संवत् १६४७ भाद्रपद वदी ५

સનેયા આર્ટ પ્રીન્ટરી, અમદાવાદ.

अष्टछाप

(१) महानुभाव श्रीसूर

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सूरदासजी सारस्वत ब्राह्मण, दिल्ली के पास सींहीं[1] गाम है तहां रहते, तिन की वार्ता–

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश–

सो ये सूरदासजी लीला में श्रीठाकुरजी के अष्टसखा हैं, सो तिन में ये 'कृष्ण सखा' को प्राकट्य हैं। तहां यह संदेह होय जो– निकुंज **आधिदैविक** लीला में तो सखीजनन को अनुभव है, जो **मूलस्वरूप** सखा तहां नाही हैं। सो सूरदासजीने रहस्य-लीला, विना अनुभव कैसे गाई ?

तहां कहत है जो श्रीभागवत में कहे हैं जो–जब श्रीठाकुरजी आप वन में गोचारन लीला में सखान के संग पधारत हैं, सो सगरी गोपी-जन लीला को अनुभव करत हैं। सो घर में सगरी लीला वन की गान

---

१. સીંહીં ગામને સીહોરા અને શેરગઢના નામથી પણ કેટલાક પ્રાચીન ગ્રન્થોમાં લખ્યું છે.

करत हैं। ता पाछें जब श्रीठाकुरजी संध्या समय वन ते घरकूं आवत हैं, ता पाछें रात्रिकों गोपीजन सों निकुंज में लीला करत हैं। सो ता अंतरंगी सखान कों विरह होत है, तब वे निकुंजलीला को गान करत हैं,* अनुभव करत हैं। सो काहेतें? कुंज में सखीजन हैं सो तिन के दोय स्वरूप हैं, सो कहत हैं:—पुंभाव के सखा और स्त्री भाव के सखी। सो दिन में सखा द्वारा अनुभव और रात्रि कों सखी द्वारा अनुभव है। सो काहेतें? जो वेद की ऋचा हैं सो गोपी हैं। और वेद के जो मंत्र हैं सो सखा हैं। परंतु गोपीजन देखिवे मात्र स्त्री है, सो इनके पति हैं, परंतु ये स्त्री नांही हैं। सो एसे—(जैसे) भुज्यो अन्न होय सो धरती में बीज नाही ऊगे। तेसेही इनको लौकिक विषय नांही है। सो यहां तो रसरूपलीला सदा सर्वदा एक रस हैं। सो तेसेही अंतरंगी सखा श्रीठाकुरजी के अंगरूप हैं। सो सखी रूप, सखा रूप दोउ रूप सों रात्रदिन लीलारस करत हैं.

सो तासों सूरदास 'कृष्ण सखा' को प्राकट्य हैं। और कृष्ण सखा को दूसरो स्वरूप सखी है, सो लीला कुंज में है तिनको नाम चंपकलता है। सो तासों सूरदास को सगरी लीला को अनुभव श्री आचार्यजी महाप्रभुन की कृपा ते होयगो।

सो प्रकार कहत हैं। तहां यह संदेह होय, जो— लीला संबंधी है सो पहले तें अनुभव क्यों नाही भयो। सो इन कों मोह क्यों भयो? तहां कहत हैं जो— श्रीठाकुरजी भूमि के ऊपर प्रकट होय के लौकिक

---

* જુઓ શ્રીમદ્‌ભાગવત દશમસ્કંધના વેણુગીત ઉપરની કારિકા ૧–૨, અને શ્રીમતી ટિપ્પણી.

की नांई लीला करत हैं, सो जस प्रकट करनार्थ। सा लीला गाइ जगत में लौकिक जीव कृतार्थ होत हैं। तैसेई श्रीठाकुरजी के भक्त हू जगत में लौकिक लीला करि अलौकिक दिखावत हैं। जैसें श्रीरुक्मिनीजी साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी को स्वरूप हैं, परंतु जब जन्मी तब देवी पूजि के वर मांग्यो। फेरि श्रीठाकुरजी के पास ब्राह्मण ब्याह के लिये पठायो। सो यह जग में लीला प्रकट करणार्थ। जैसे कालिंद्रीजी सूर्यद्वारा प्रकट होय के श्रीयमुनाजी में मंदिर करि तपस्या करि, अर्जुन सों कही जो— मैं श्रीठाकुरजी कों बरूंगी। तब श्रीठाकुरजी आपु विवाह कियो। सो ये लीलामात्र, (क्यों जो) ये सदा श्रीठाकुरजी की प्रिया हैं। सो व्रजमें श्रीस्वामिनीजी और श्रीठाकुरजी आपु ये दोउ एक रूप हैं, परंतु व्रजलीला प्रकट करिवे के लिये श्रीठाकुरजी श्रीनंदरायजी के घर प्रकटे और श्रीस्वामिनीजी श्रीवृषभानजी के घर प्रकट होय के अनेक उपाय मिलिवे कों रात्रदिन किये। सो यह लीला (केवल) जगत में प्रकट करिवे के लिये (ही)। (नातर) ये तो सदा एक रस लीला करत हैं।

सो तैसेई सूरदासजी श्रीआचार्यजी के सेवक होय के भगवल्लीला गाये। सो यामें स्वामी को जस बढै। सो जिन के सेवक सूरदास एसे भगवदीय, तिन के स्वामी श्रीआचार्यजी आपु तिन की सरन जैये। सो या प्रकार जगत में लीला करि जस प्रकट किये, सो आगे लौकिक जीव को गान करि भगवत्प्राप्ति होय। सो सूरदासजी जगत पर अब ही प्रकटे, परंतु लीला को ज्ञान नांही है।

सो सूरदासजी दिल्ली के पास चारि कोस ऊरे में एक सीहीं गाम

है, जहां राजा परीक्षित के बेटा जन्मेजय ने सर्प यज्ञ कियो है। सो गाम में एक सारस्वत* ब्राह्मण के यहां प्रकटे

सूरदासजी का पूर्व चरित्र

सो सूरदासजी के जन्मत ही सों नेत्र नाही हैं और नेत्रन को आकार गठेला कछू नाह ऊपर भोंह मात्र है। सो या भांति सों सूरदास को स्वरूप है। सो तीन बेटा या सारस्वत ब्राह्मण के आगे के हत

+ ઉક્ત રામદાસને સીંહી ગામના દરિદ્ર બ્રાહ્મણ તરીકે અહં વર્ણવ્યા છે. જ્યારે 'આઇનિઅકબરી'વાળા ' રામદાસ ગ્વાલેરી ' સંબંધ મિષ્ટર બ્લૉકમૈન સાહેબ પોતાના ' આઇનિઅકબરી 'ના અનુવાદમ ' બાબા રામદાસ ' સંબંધી નોટ કરતાં આ પ્રમાણે લખે છે—

" Note—Badaoni (II 42) Says Ramdas came from Lakhnau. He appears to have been with Bairamkhan during his rebellion and he received once from him one lakh of tankahas, empty as Bairam's treasure chest was. He was first at the court of Islamshah and is looked upon as second only to Tansen. His son Surdas is mentioned below."

આ લેખથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે ' બાવા રામદાસ ' પહેલાં દિલ્હીના બાદશાહ ઇસિલામશાહ કે જે સન ૧૫૪૫ ઇસ્વીમાં ગાદી ઉપર બેઠો હતો, અને સન ૧૫૫૩ ઇસ્વીમાં મરી ગયો. (સં. ૧૬૦૨ થી ૧૬૧૦) તેના દરબારમાં હતા. પછી બાદશાહ હુમાયુના રાજ્ય-કાળમાં એના વજીર બેરામખાંની પાસે તે રહેવા લાગ્યા, અને વિ. સં. ૧૬૧૬–૧૭ માં બેરામખાં હુમાયુના બેટા અકબરથી બંડ

और घर में बहोत निष्किंचन हतो। वा सारस्वत ब्राह्मण के घर चौथे सूरदासजी प्रकटे। सो तब इनके नेत्र न देखे, आकार (हू) नांही। सो या प्रकार देखि के वा ब्राह्मण ने अपने मनमें बहोत सोच कियो, और दुःख पायो।

जो देखो—एक तो विधाता ने हमकों निष्कंचन कियो, और दूसरे घर में एसो पुत्र जन्म्यो। जो अब याकी कौन तो टहल करेगो? और कौन याकी लाठी पकरेगो? सो या प्रकार ब्राह्मण नेअपने मन में बहोत दुःख पायो। सो काहेतें जो— जन्मे पाछे नेत्र जांय तिनको आंधरा कहिये, सूर न कहिये। और ये तो सूर हैं, सो मातापिता घर के सब

કરી લડ્યો ત્યારે તે વખતે તેઓ સાથે હતા. આ રામદાસ **લખનૌથી** આવેલા હતા.

હવે સાંપ્રદાયિક ઈતિહાસ તરફ દષ્ટિપાત કરતાં એ વિસ્પષ્ટ છે કે જ્યારે ચોથા પુત્ર તરીકે શ્રીસૂરનો જન્મ સં. ૧૫૩૫ માં છે ત્યારે તેમના પિતા એક દરિદ્ર બ્રાહ્મણ સારસ્વત રામદાસનો જન્મ ઓછામાં ઓછો સં. ૧૫૧૫ ના લગભગ હોવો જોઇએ. એ હિસાબે ઉક્ત ઇતિહાસને મેળવો તો ૧૬૨૦ થી શરૂ થતા અકબરના દરબારમાં આ રામદાસ જો આવ્યા હોય તો તે વખત તેમની ઉમર સો વર્ષથી પણ ઉપરની હોવી જોઈએ.

એ તદ્દન અસંભવિત છે કે એટલી ઉમરનો એક પ્રાકૃત મનુષ્ય તાનસેન આદિ મહા ગવૈયાઓમાં બીજા નંબરે હોઈ શકે! કેમકે તે ઉમરે રાગ, કંઠ આદિ સુમધુર એક સરખાં ગાવાને યોગ્ય રહેતાં નથી. વળી અકબર બાદશાહને ત્યાં રહેવાથી તેઓ દરિદ્ર પણ સંભવે નહી તે આપણે પ્રત્યક્ષ જોઈ શકીએ છીએ. તેથી અહિં આઇનેઅકબરી-વાળા રામદાસ કોઈ બીજાજ હોવા જોઈએ.

—સમ્પાદક

कोई इनसों प्रीति करें नांहीं। जानें, जो– नेत्र बिना को पुत्र कह तासों इनसों कोई बोलतो नाहीं।

सो एसे करत सूरदासजी वरस छह के भये। तब पिता वा गाम के एक द्रव्यपात्र क्षत्री जजमान ने दोय मोहोर दान में दीनी तब यह ब्राह्मग उन मोहोरन को ले के अपने घर आयो, और अप मन में बहोत प्रसन्न भयो, और स्त्री तथा घर में देह संबंधी बेटा बे हते सो तिन सबनसों कही जो– भगवान ने दोय मोहोर दीनी हैं : कालि इनको बटाय के सीधो सामान लाऊंगो। तातें अपने घर में दो चार महीना को काम चलेगो। सो या प्रकार सबन को वे दोय मोहे दिखाई। ता पाछें रात्रिकों एक कपडा में बांधि के ताक में धरि व सोयो। तब रात्रि को दोय मोहोरन कों मूसा ले गये, सो घर क छांतिन में भिल्ले में धरि दीनी।

तब सवारे उठि के देखे तो मोहोर नाही है। सो तब तो सूरदास के माता पिता छाती कूटन लागे, और रोवन लागे, और अपने मन मे अति कलेश करन लागे। सो बा दिन खानपान नांही कियो। सो य भांति सों घनो विलाप करन लागे। सो देखि के सूरदासजी मातापित सों बोले जो– तुम एसो दुख विलाप क्यों करत हो? जो श्रीभगवान को भजन सुमिरन करो तासों सब भलो होय। सो या भांति सूर-दास उनसों बोले। तब मातापितान ने सूरदास सों कही जो– तू एसी घडी को सूर जनम्यो है, सो हम कों वाही दिन सों दुख ही मे जनम बीतत है। जो हम कों काहू दिन सुख नाही भयो, और हमकों भरपेट अन्नहू नाही मिलत है। जो श्रीभगवानने हमकों दोय मोहोरो दीनी हती सोहू योंही गई।

तब सूरदासजी बोले जो– तुम मोकों घर में न राखो तो मैं अब ही तिहारी मोहोर बताय देउं। परि पाछे मोकों घर में राखियो मति और तुम मेरे पीछे मति परियो। तब यह सुनि के मातापिता ने सूरदास सों कह्यो जो– और हमकों कहा चहियत है? जो तू हमकों मोहोर बताय देउ, और हमारी मोहोर पावे फेरि तेरे मन में आवे तहां तू जाइयो। हम तोकों बरजेंगे नांही। तब सूरदास बोले जो– छांति में भिह्लो है सो भिह्ले के मोहोडे पर धरी है। तब वह ब्राह्मण खोदि के मोहोर पाये।

तब सूरदासजी घरमें ते चलन लागे। मातापिता कों मोह उत्पन्न भयो। जो देखो, या सूरदास को सगुन बहोत आछो भयो। याके कहे प्रमान मोकों तुरत ही मोहोर मिली है। सो यह बिचारि के मातापिता ने सूरदासजी सो कह्यो– जो सूरदास! अव तुम घरतें क्यों जात हो? अब तो यह मोहोर पाय गई है, तातें जहां तांई यह मोहोरन को अनाज रहै तहां तांई तुमहू खावो, पाछैं जहां जानो होय तहां तुम जैयो। तब सूरदास बोले जो– मोकों अब तुम घर में मति राखो, जो मोकों घर में राखोगे तो तिहारी मोहोर फेरि जायगी. और तुम दुख पावोगे।

यह सुनि के माता पिता कछु बोले नाही, और सूरदासजी तो हाथ में एक लाठि लेकें घर सें निकसे। सो सौंही तें चले, सो चार कोस ऊपर एक गाम हतो, तहां एक तलाव गाम बाहिर हतो। सो वहां एक पीपर के वृक्ष नीचे सूरदासजी आय बैठे और वा तलाव को जल पियो। तहां दोय चार घडी दिन पाछलो रह्यो हतो, तब ता गाम को ब्राह्मण जमींदार तहां आय के सूरदासजी कों पहचान के कहन लाग्यो जो– मेरी १० गाय तीन दिनतें मिलत नाही, कोई बतावे तो दो गाय वाको दऊं।

देयगो, ताईं तहां मै तुमकों लाउंगो, और सवेरे या तलाव पर तथा गाम में जहां तुम कहोगे तहां छापरा डार दऊंगो.

पाछे सवेरो भयो, तब यह जमींदारने आय के कह्यो– जो तिहारो मन कहां रहेवोको है ? तब सूरदासने कही– जो अब तो याही तलाव पर पीपरा नीचे कछुक दिन रहवे को मन है । तब वा जमींदारने वहां एक झोंपडो छवाय दीनी और टहल करिवेकुं एक चाकर राखि दियो ।

ता पाछें वा जमींदारने दसपांच जनेके आगे बात करी– जो फलानेको । बेटा सूरदास बडो ज्ञानी है । हमारी गाय खोय गई हती सो बताय दीनी सो वह सगुन में आछो जाने है । सो मै वाकों तलाव के उपर पीपरके नीचे झोंपरी छवाय, वाके पास एक चाकर राखि दियो है । और नित्य पूरी दहीं दूध पठावत हूं, सो तासों काहूकों सगुन पूछनो होय तो वाकूं जाय के पूछि आइयो ।

यह सुनि के सब लोग गाम के आवन लागे । सो जो कोइ पूछे तिनकों सगुन बतावे सो होई । तब सूरदास की बडी पूजा चली, भीर लगी रहै । खानपान भली भांति सों आवन लाग्यो । सो तब कछुक दिनमें सूरदास कों रहिवे के लिये एक बडो घर तलाव पर बनाय दियो, और वह झोंपरी हू दूरि कीनी । और वस्त्र द्रव्य बहोत वैभव भेलो भयो । सो सूरदास स्वामी कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये । जाके कंठी बांधनी होय सो सूरदास को सेवक होय । सो सूरदास विरह के पद सेवकनकों सुनावते । सो सब गायवे के बाजे को सरंजाम सब भेलो होय गयो.

या प्रकार सूरदास तलाव पे पीपर के वृक्ष नीचे वरस अठारे के भये । सो एक दिन रात्रिको सोवत हते, ता समय सूरदास को

तब सूरदासजी ने कही जो— मोकों तेरी गाय कहा करनी है? पर तू पूछत है तब कहत हूं जो— यहां सों कोस ऊपर एक गाम है। सो वा गाम के जमींदार के मनुष्य रात्रि कों आय के तेरी १० गाय ले गये हैं। वा जमींदार के घर के भीतर एक दूसरो घर है, सो तहां जमींदार के घोडा बंधे हैं, सो उन घोडान के पास तेरी गाय बंधी हैं। तब वे जमींदार दस आदमी संग ले जाइ देखे तो गाय सब बंधी हैं, सो ले आय के सूरदासजी सों कह्यो जो— सूरदास? तिहारे कहे प्रमान मेरी दस गाय पाय गई हैं, सो येदोय गाय तुम राखो। तब सूरदासजी ने कही जो— मैं अपनो ही घर छोडि के श्री ठाकुरजी को आश्रय करि के बेठो हूं सो मैं तेरी गाय काहेको लेऊं।

तब वह जमींदार सूरदास कों बालक जानि कें शिक्षा की बात करन लाग्यो, जो अरे! तू फलाने सारस्वत को बेटा है, और नेत्र तेरे हैं नाही, और कोऊ मनुष्य हू तेरे पास नाहीं है, सो तू अपने घर कों छोडि के रूठि के यहां क्यों बेठ्यो है? नेत्र हैं नाही, कैसे दिन कटेंगे?

तब सूरदासने कह्यो जो— मैं तेरे ऊपर तो घर छोड्यो नाहीं। मैं तो नारायण के ऊपर घर छोड्यो है, सो वे सगरे जगत को पालन करत हैं, सो मेरो हू करेंगे। और जो होनहार होयगी सो होयगी।

तब जमींदार ने कही, मैं हू ब्राह्मण हों, दारि रोटी मेरे घर भई है, कहे तो लाउं। तब सूरदास ने कही जो— मैं तो गैल की चली रोटी नाही खात। तब वह जमींदार अपुने घर जाइ पूरी कराइ और दूध ले जाइ सूरदास कों जल भरि दे के कह्यो जो— सूरदास! तुम कोई बात को दुःख मति पाइयो। जो जहां तांई भगवान मोकों खायवेकों

देयगो, ताई तहां भै तुमकों लाउंगो, और सवेरे या तलाव पर तथा गाम में जहां तुम कहोगे तहां छापरा डार दऊंगो.

पाछे सवेरो भयो, तब यह जमींदारने आय के कह्यो– जो तिहारो मन कहां रहेवोको है? तब सूरदासने कही– जो अब तो याही तलाव पर पीपरा नीचे कछुक दिन रहवे को मन है। तब वा जमींदारने वहां एक झोंपडो छवाय दीनी और टहल करिवेकुं एक चाकर राखि दियो।

ता पाछें वा जमींदारने दसपांच जनेके आगे बात करी– जो फलानेको। बेटा सूरदास बडो ज्ञानी है। हमारी गाय खोय गई हती सो बताय दीनी सो वह सगुन में आछो जाने है। सो मै वाको तलाव के उपर पीपरके नीचे झोंपरी छवाय, वाके पास एक चाकर राखि दियो है। और नित्य पूरी दहीं दूध पठावत हूं, सो तासों काहूको सगुन पूछनो होय तो वाकूं जाय के पूछि आइयो।

यह सुनि के सब लोग गाम के आवन लागे। सो जो कोइ पूछे तिनकों सगुन बतावे सो होई। तब सूरदास की बडी पूजा चली, भीर लगी रहै। खानपान भली भांति सें आवन लाग्यो। सो तब कछुक दिनमें सूरदास को रहिवे के लिये एक बडो घर तलाव पर बनाय दियो, और वह झोंपरी हू दूरि कीनी। और वस्त्र द्रव्य बहोत वैभव भेलो भयो। सो सूरदास स्वामी कहवाये, बहोत मनुष्य इनके सेवक भये। जाके कंठी बांधनी होय सो सूरदास को सेवक होय। सो सूरदास विरह के पद सेवकनको सुनावते। सो सब गायवे के बाजे को सरंजाम सब भेलो होय गयो.

या प्रकार सूरदास तलाव पे पीपर के वृक्ष नीचे वरस अठारे के भये। सो एक दिन रात्रिको सोवत हते, ता समय सूरदास को

वैराग्य आयो। तब सूरदासजी अपने मनमें बिचारे जो– देखो, मैं श्री भगवान के मिलन अर्थ वैराग्य करि के घरसों निकस्यो हतो, सो यहां माया ने ग्रसि लियो। मोकूं अपनो जस काहेको बढावनोह तो? जो मैं श्रीप्रभुको जस बढावतो तो आछो। और यामें तो मेरो बिगार भयो, तासों अब कब सवारो होय और मैं यहां सों कूंच करूं।

सो एसे करत सवारो भयो। तब एक सेवकको पठाय मातापिता को बुलाय सब घर उनकों सोंपि दियो। पाछें सूरदास एक वस्त्र पहरिके लाठी ले के उहां ते कूंच किये। सो तब जो सेवक माया के जंजाल में हते, सो संसारमें लपटे और उहांई रहे। और कितनेक सेवक जो संसार सों रहित हते, सो सूरदास की संग ही चले। सो सूरदास मनमें बिचारे जो–व्रज है सो श्रीभगवानको धाम है, सो उहाँ चलिये। तब सूरदास उहां तें चले, सो श्रीमथुराजी में आये। तहां विश्रांतघाटपे रहिके सूरदासने विचार कियो जो– मैं मथुराजीमें रहूंगो सो यहां हू मेरो माहात्म्य बढेगो और यह श्रीकृष्णकी पुरी है, सो यहां मोकों अपनो माहात्म्य प्रकट करनो नाही। और संसारमें अनेक लोग सुख दुख पावें हैं सो सब पूंछिवे आवेंगे। और यहां मथुरिया चौबे हैं सो यहां माहात्म्य बढेगो तो ये दुख पावेंगे, तासों यहां रहनो ठीक नाही।

सो यह बिचारि के सूरदास मथुरा के और आगरेके बीचोंबीच गउघाट है, तहां आयके श्रीयमुनाजी के तीर स्थल बनायकें रहे।

सूरदासको कंठ बहोत सुन्दर हतो। सो गान विद्यामें चतुर, और सगुन बतायवे में चतुर। सो उहां हू बहोत लोग सूरदासजी के पास आवते। उहां हूं सेवक बहोत भये सो सूरदास जगत में प्रसिद्ध भये।

वार्ता प्रसंग-१

सो गऊघाट ऊपर सूरदास रहते, तब कितनेक दिन पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभु आपु अडेल तें ब्रजकूं पधारत हते। सो कछूक दिनमें श्रीआचार्यजी आप गऊघाट पधारे। ता समय श्रीआचार्यजी के संग सेवकन को वहोत समाज हतो। सो सब वैष्णव सहित श्रीआचार्यजी आपु श्रीयमुनाजी में स्नान किये। ता पाछें संध्यावंदन करि पाक करन कों पधारे और सेवक हू सब अपनी अपनी रसोई करन लगे। ता समय एक सेवक सूरदास को तहां आयो। सो वाने जायके सूरदास कों खबरि करी जो--सूरदासजी! आज यहां श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं। जो जिनने काशीमें तथा दक्षिन में मायावाद खंडन कियो है, और भक्तिमार्ग स्थापन कियो है।

तब यह सुनि के सूरदास ने अपने सेवक सों कह्यो जो-जब श्रीवल्लभाचार्यजी भोजन करिकें निश्चिंतता सों गादी तकियान के ऊपर विराजें ता समय तू हमकों खबरि करियो। जो-मैं श्रीवल्लभचार्यजी के दर्शन कों चलूंगो। तब वह सेवक दूरि आय के बैठि रह्यो। सो जब श्रीआचार्यजी आपु भोजन करि के गादी तकियान पे बिराजे, और सेवक हू सब आसपास आय बैठे, तब वा सेवक ने जाय के खबरि करी। तब सूरदास वाही समय अपने संग सगरे सेवकन कों लेकें श्रीआचार्यजी के दरशन कों आये। सो तब आयके श्रीआचार्यजी को साष्टांग दंडवत करी।

तब श्रीआचार्यजी श्रीमुख सों कहे जो– सूर! कछू भगवत्‌जस वर्णन करो। तब सूरदासने श्रीआचार्यजी को दंडवत करि कह्यो जो– महाराज! जो आज्ञा। ता पाछें सूरदास ने यह पद श्रीआचार्यजी आगें गायो। सो पदः—

। राग धनाश्री ।

हौं हरि सब पतितन को नायक+।

फेरि दूसरो पद गायो, सो पदः—

'प्रभु हौं सब पतितन को टीको'+

सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु सूरदास सों कहे, जो– सूर है कें एसो घिघियात काहे को है? सो तासों कछु भगवल्लीला वर्णन कर।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

ताको आशय यह है जो– जीव श्रीभगवान सो बिछुरयो, सो तब पतित तो भयो। सो ताकों बहोत कहा कहनो, तासों भगवल्लीला गावो, जासों शुद्ध होय।

तब सूरदास ने श्रीआचार्यजी सों बिनती कोनी जो– महाराज! मैं कछू भगवल्लीला समुझत नांही हूं। तब श्रीआचार्यजी श्रीमुख तें कहे जो– सूर! श्रीयमुनाजी में स्नान करि आवो, जो हम तुम कों समुझाय देंगे। तब सूरदास प्रसन्न होय कें श्रीयमुनाजी में स्नान करि के अपरस ही में श्रीआचार्यजी पास आये। तब श्रीआचार्यजो ने कृपा करि

+ વિસ્તાર ભયથી આ પ્રસિદ્ધ પદો અહીં સમ્પૂર્ણ આપ્યાં નથી.

कें सूरदास कों नाम सुनायो, तापाछें समर्पन करवायो। पाछें आप दसम स्कंध की अनुक्रमणिका करी हती सो सूरदास को सुनाये।

श्रीहरिराय कृत भावप्रकाश

अष्टाक्षर मंत्र सुनायो तासों सूरदास के सगरे जनम के दोष मिटाये, और सात भक्ति भई। पाछें ब्रह्मसंबंध करवायो, तासों सात भक्ति और नवधा भक्ति की सिद्धि भई। सो रही प्रेमलक्षणा, सो दसम स्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाये। तब संपूरन पुरुषोत्तम की लीला सूरदास के हृदय में स्थापन भई, सो प्रेमलक्षणा भक्ति सिद्धि भई।

सो सगरी श्रीसुबोधिनीजी को ज्ञान श्रीआचार्यजीने सूरदास के हृदय में स्थापन कियो। तब भगवल्लीला जस बर्णन करिवे को सामर्थ्य भयो। तब अनुक्रमणिका तें सगरी लीला हृदय में स्फुरी। सो कैसे जानिये? जो श्रीआचार्यजी आप दसम स्कन्ध की सुबोधिनीजी में मंगलाचरण की प्रथम कारिका किये हैं, सो कारिका कहत हैं। श्लोकः—

" नमामि हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धि–शायिनं।
लक्ष्मीसहस्र--लीलाभि; सेव्यमानं कलानिधिम्॥ "

सो या मंगलाचरण के अनुसार सूरदासने श्रीआचार्यजी के आगे यह पद करिके गायो। सो पदः—

राग बिलावल :--

'चकईरी ! चल चरणसरोवर जहां नहिं प्रेम वियोग'
सो यह पद दसमस्कंध की कारिका के अनुसार किये हैं ।

'लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिं ।' जैसे श्लोक में कह्यो है, तैसेही सूरदासने या पदमें कही जो-

"जहां श्रीसहस्र सहित नित क्रीडत शोभित सूरजदास ।"

सो यामें कहे । तामें जानि परी जो- सूरदास कों सगरी लीला श्रीसुबोधिनीजी की स्फुरी ।

सो सुनिके श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भये । और जाने जो- अब लीला को अभ्यास भयो । सो तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख तें सूरदास सो आज्ञा किये जो- सूर ! कछू नंदालय की लीला गावो । तब सूरदासनें नंदमहोत्सव को कीर्तन वर्णन करिके गायो । सो पद :—

राग देवगंधार :—

'व्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी ।'

सो यह बडी बधाई गाई । सो श्रीनंदरायजी के घरको वर्णन किये, तहां तांई तो श्रीआचार्यजी आप सुने । ता पाछे गोपीजन के घर को वरणन करन लागे तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख तें सूरदास सों कहे जो-

'सुन सूर सबन की यह गति जो हरि-चरन भजे ।'

सो या भोग की तुक आपु कहि कें सूरदास कों चुप करि दिये ।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो यातें जो व्रजभक्तन को आनंद है सो भगवदीयन के हृद-यमें अनुभव-योग्य है। सो बाहिर प्रकाश होय तासों सूरदास को थांमि दिये। और सूरदासजी के हृदय में यह भी आयो हतो, जो मैने सेवक किये हैं तिन की कहा गति होयगी? तब श्री आचार्यजीने कही:-' सुन सूर! सबन की यह गति जो हरिचरन भजे.'

तब श्रीआचार्यजी आप प्रसन्न होय के कहे, जो- मानों सूर नंदालय की लीला में निकट ही ठाडे हैं। सो एसो कीर्तन गायो।

तापाछे श्रीआचार्यजीने सूरदास कूं 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायो। तब सगरे श्रीभागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी। सो सूरदासने प्रथम स्कंध श्रीभागवत सों द्वादश स्कंध पर्यंत कीर्तन वर्णन किये। तामें अनेक दानलीला, मानलीला आदि वर्णन किये हैं।

तापाछें गऊघाट ऊपर श्रीआचार्यजी आप तीन दिन रहे। सो तब सूरदासने जितने सेवक किये हते, सो सब श्रीआचार्यजी के सेवक कराये। तापाछें श्रीआचार्यजी आप व्रजमें पधारे। तब सूरदास हू श्रीआचार्यजी के संग व्रज में आये।

सो प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप गोकुल पधारे। तब श्रीआचार्यजीने श्रीमुख सों कह्यो जो- सूर! श्रीगोकुल

को दरशन करो। तब सूरदासजी ने श्रीगोकुल कों साष्टांग दंडवत किये। सो दंडवत करत ही श्रीगोकुल की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी।

तब सूरदासजी अपने मनमें विचारे, जो-श्रीगोकुल की लीला मैं बरनन कसैं करौं। सो काहे तें- जो श्रीआचार्यजी को मन श्रीनवनीतप्रियाजी के स्वरूप के ऊपर आसक्त है, सो श्रीनवनीतप्रियाजी को कीर्तन श्री गोकुल की बाललीला को वरनन, एसो पद सूरदासजी ने गायो। सो पदः—

राग विलावलः-

'शोभित कर नवनीत लिये'।

सो यह पद सुनिके श्रीआचार्यजी आप सूरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। सो तापाछें सूरदासने और हू पद बाल-लीला के श्रीआचार्यजी कों सुनाये। ता पाछें श्रीआचार्यजी ने विचारयो- जो श्रीगोवर्द्धननाथजी को मंदिर तो समरायो, और सेवा हू को मंडान भयो। तातें सूरदास कूं श्रीनाथजी के पास राखिये। तब समे समे के सगरे कीरतन को मंडान और भयो चाहिये। सो आगे वैष्णवजन सूरदास के पद गाय के कृतार्थ बहोत होंयगे।

तब यह विचारि के सूरदास कूं संग लेके श्रीआचार्यजी

आप श्रीगोवर्द्धन पधारे, सो ऊपर पधारके श्रीनाथजी के दर्शन किये। तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख सों सूरदास सों कहे जो–'सूर! श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करो और कीर्तन गावो'। तब सूरदासजी ने श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये। तापाछें सूरदासजी ने प्रथम विज्ञप्ति को पद दैन्यता सहित गायो। सो पदः—

राग धनाश्रीः—

'अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल'

× × ×

सूरदास की सबै अविद्या दूर करहु नंदलाल!

सो यह पद सूरदासजी ने श्रीनाथजी कों सुनायो। सो सुनिके श्रीआचार्यजी आप सूरदास सों कहे जो–सूरदास! अब तो तिहारे मन में कछू अविद्या रही नांही, जो तिहारी अविद्या तो प्रथम ही श्रीनाथजी ने दूरि कीनी है। तासों अब तुम भगवल्लीला गावो जामें माहात्म्य पूर्वक स्नेह होय।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

परंतु भगवदीय जितने हैं सो तितनेन की यही बोली है जो-अपुने को हीन कहत हैं। सो यह भगवदीयन को लक्षण है। और जो कोई अपने को आछो कहै और आपुनी बडाई करे, सो भगवान तें सदा बहिर्मुख है।

तब श्रीआचार्यजी के और श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे सूरदासजी ने माहात्म्य स्नेह युक्त कीर्तन किये। सो पदः—

राग गोरीः-

'कौन सुकृत इन व्रजबासिन को वदत विरंचि शिव शेष'

सो यह पद सुनिकें श्रीआचार्यजी आप बहोत प्रसन्न भये।

क्यों जो-जैसो श्रीआचार्यजी आपु पुष्टिमार्ग प्रकट किये, **श्रीहरिरायजी कृत** ताही अनुसार सूरदासजी ने यह कीर्तन **भावप्रकाश** गायो।

सो श्रीआचार्यजी के मारग को कहा स्वरूप है? जो माहात्म्य ज्ञान पूर्वक दृढ स्नेह सो सर्वोपरि है, सो श्रीठाकुरजी कों बहोत प्रिय हैं। परन्तु जीव माहात्म्य राखे। सो काहेतें? जो माहात्म्य बिना अपराध को भय मिटि जाय। तासों प्रथम दशा में माहात्म्य युक्त स्नेह आवश्यक चहिये। और व्रजभक्तन को स्नेह है सो सर्वोपरि है। तासों भक्तन के स्नेह के आगे श्रीठाकुरजी को माहात्म्य रहत नांही। सो श्रीठाकुरजी स्नेह के वस होय भक्तन के पाछें २ डोलत हैं। **सो जहां तांई एसो स्नेह नांही होय तहां तांई माहात्म्य राखनो। सो जब स्नेह को नाम ले के माहात्म्य छोडे और श्रीठाकुरजी के आगे बैठे, बात करे और पीठि देय तो भ्रष्ट होय जाय। तासों माहात्म्य बिचारे, और अपराध सों डरपे × तो कृपा होय। और जब (सर्वोपरि) स्नेह होयगो तब आपही तें। स्नेह एसो पदार्थ है जो-माहात्म्य कूं छुडाय देयगो।**

सो दसम स्कंध में वरनन है—

+ देखो श्रीहरिरायजी कृत शिक्षापत्र.

जो श्रीभगवान वारंवार माहात्म्य व्रजभक्तन कों और श्रीयशोदाजी कों दिखायो। सो पूतना वध करि, सकट, तृनावर्त करि, यमलार्जुन करि, बकासुर, धेनुक, कालीदमन करिकें लीला में माहात्म्य दिखायो। परंतु **व्रजभक्तन को स्नेह** परम अद्भुत अनिर्वचनीय है। तासों माहात्म्य तथा ईश्वरभाव न भयो। सो एसो स्नेह प्रभु कृपा करि दान करें ताकों आपही तें माहात्म्य छूटि जायगो। और जाको स्नेह पति, पुत्र, स्त्री, कुटुंब में तथा द्रव्य में है, और अपने देह सुख में है सो **भगवान को माहात्म्य छोडि लौकिक रीति करे तो श्रीभगवान को अपराधी होय। तासों वेद मर्यादा सहित श्रीठाकुरजी के भय सहित सेवा करे, और सावधान रहे। सो यह श्रीआचार्यजी महाप्रभु के मारग की रीत है।** तासों माहात्म्य पूर्वक स्नेह करिये। और माहात्म्य पूर्वक स्नेह यह जो– **समय समय ऋतु अनुसार सेवा में सावधान रहै,** ताको नाम माहात्म्य पूर्वक स्नेह कहिये।

पाछे श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–सूर! तुमकों पुष्टिमारग को सिद्धांत फलित भयो है, तासों अब तुम श्रीगोवर्द्धनधर के यहां समय समय के कीर्तन करो। ता समय सेन भोग सरि चुक्यो हतो, सो तब मान के कीर्तन सूरदासने गाये। सो पदः–

राग बिहागरोः–

'बोलत काहे न नागर बैना'। २ 'सुखद सेज में पोढे रसिकवर'। ३ 'पोढे लाल राधिका उर लाय'।

सो पाछें या प्रकारसों कीर्तन सूरदासजी नें नित्य प्रातःकाल के जगायवे तें लेके सेन पर्यंत के हजारन किये।

वार्ता प्रसंग—२.

और एक समय सूरदासजी पांच सात वैष्णवन के संग मारग में चले जात हते। सो तहां दस पांच जने चोपडि खेलत हते। सो चोपडि के खेल में एसे लीन भये हते सो मारग में गैल में काहू आवते जाते मनुष्य की कछू खबरि नांही।

सो या प्रकार उनकों मगन देखिकें सूरदासजी ने अपने संग के वैष्णवन के आगे एक पद गायो। और उन वैष्णवन सों सूरदासजी ने कह्यो जो— देखो, यह प्रानी मनुष्य-जन्म वृथा खोवत है। जो श्रीभगवान ने मनुष्य—देह अपने भजन करिवेके लिये दीनी है। सो या देह सों यह प्राणी वृथा हाड कूटत है। सो यामें लौकिक में तो निंदा है जो— यह जुवारी है। और अलौकिक में भगवान सो बहिर्मुखता है। तासों भगवान ने तो एसी इनकों मनुष्य—देह दीनी है, तिनको एसी चोपडि खेली चाहिये। सो तासमय सूरदास-जीनें यह पद करि के संग के वैष्णव हते, तिन को सुनायो। सो पदः—

राग केदारो—

मन! तू समझ सोच विचार।
भक्ति विना भगवान दुर्लभ कहत निगम पुकार॥

साधु संगत डार पासा फेरि रसना सार।
दाव अब के पर्यो पूरो, उतरि पहली पार ॥
छांडि सत्रह सुन अठारे, पंचही को मार।
दूरि तें तज तीन का ने चमक चोंक बिचार॥
काम क्रोध मद लोभ भूल्यो ठग्यो ठगिनी नार।
सूर हरि के पद भजन बिन चल्यो दोउ कर झार ॥

सो सुनिके उन वैष्णवननें सूरदास सों कह्यो जो- सूरदासजी! या पदमें समुझ नांही परी है। तासों हमकों अर्थ करिके समुझावो, सो तब समुझ्यो जाय।

तब सूरदासजी उन वैष्णवन सों कहे, जो- तीन वस्तु चोपडि में चाहियें, समुझ, सोच और बिचार। सो ये तीन्यो वस्तु भगवान के भजन में हू चहिये (क्यों?) जो- जैसे पहले समुझे तब चोपडि खेलेगो, सो तैसे ही भगवान कों जानेगो तो भजन करेगो। और चोपडि में सोच होय जो-एसो फांसा परे तो मैं जीतूं। सो तैसे ही या जीव कों काल को सोच होय, तब यह जीव प्रभु की सरन जाय। और (तीसरी वस्तु जो) बिचार, सो यह जो- विचारके गोट कों फांसा के दावकूं चले जो- यहां नांही मारी जायगी इत्यादि। सो तैसेही विचार वैष्णव को होय, जो- यह कार्य मैं करत हूं सो आछो है, के बुरो है? तब यह जीव बुरो काम छोडिकें भगवत्धरम की चाल में चले। और चोपडि में फांसा के दाव परें तब दोऊ ओर के मनुष्य पुकारत हैं। सो तेसे ही जगत में निगम जो

वेद, पुराण सो पुकारिके कहत हैं जो–भक्ति बिना भगवान दुर्लभ हैं, सो तासों कोटि साधन करो। और चोपडि में दूसरो संग मिले तब चोपडि खेली जाय, सो तैसे ही भगवान की भक्ति में भगवदीय वैष्णव की संगति होय तब भक्ति बढे। और चोपडि खेलिवेवारे के मन में (जैसे) अपने दाव को सुमिरन रहत है जो– यह दाव परे तो मैं जीतूं, सो तेसे ही रसना सों यह जीव भगवद्वार्ता में मन लगायके सब रस को सार रूप (एसो भगवन्नाम) कह्यो करे । और (जेसे) चोपडि में सुंदर पूरो दाव परे तब गोट पार जाय, और तब उतरि के घर में आवे, और मरिवे को भय मिटे। सो तेसे ही मनुष्य देह संसार सों पार उतरिवेकों पूरो दाव बडी पुन्याई सों मिले है, सो तो या देह सों भगवदाश्रय करि संसार तें पार उतरि जाय। 'राखि सत्रे सुनि अठारे' चोपड में सत्रे अठारे बडे दाव हैं, सो तैसे ही जगत में सब पुरान हैं, सो तिनही कों राखि, सुनि अठारे जो– श्रीभागवत सुनन को (और) पुरान हू को धरि राख। और पांचों जो इन्द्रिय, पंचपत्री अत्रिग्रा है, सो इनकूं मार। सो काहेतें ? जो शास्त्र के वचन हैं सो–

पतंग–मातंग–कुरंग–भृंग–मीना हताः पंचभिरेव पंच ।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पंच ॥१॥

१ पतंग–नेत्र विषय तें दीपक में परे। २ हाथी– स्पर्श विषय करि मरे। ३ कुरंग–श्रवन विषय तें मरे। ४ भृंग– गंध नासिका विषय तें मरे, ५ मीन– जिभ्या विषय तें मरे।

सो एक एक विषय तें मरि परै, तो मनुष्य तो पांचन को सेवन करत है, सो निश्चय काल इनको भक्षन करे।

तासों नाद पांचो मारि। सो जेसे चोपडि में गोट मारत हैं। और चोपडि में सब तें छोटो दाव तीनि काने हैं, सो कोऊ नाही चाहत है। तैसे ही तू तीन–तामस, राजस, सात्त्विक यह माया के गुण हैं, सो सगरो संसार सोइ चोक है, सो यामें चतुराई सों डार। चतुराई यह जो–इनकों डारि पाछे इनकी ओर देखे मति। सो जेसे चोपडि में सब की सुध बुध भूलि जात हैं, सो तब ठग्यो गयो। सो तेसे काम क्रोधादि जंजाल है, और स्त्रीरूप भगवद्माया है। सो यह सगरे जगत को ठगेगी। सो जैसे चोपडि खेलि के हारिकें सब दोऊ हाथ झारि के उठें, सो तेसे ही श्रीठाकुरजी के पदकमल के भजन बिना दोऊ हाथ झारिके या मनुष्यने देह खोई। जो कछु भलो परोपकार संग नाहीं कियो।

सो या प्रकार वैष्णव सुनि के सूरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये।

वार्ता प्रसंग–३

और सूरदास कों जब श्रीआचार्यजी देखते तब कहते जो– आवो सूरसागर! सो ताको आशय यह है, जो–समुद्र में सगरो पदार्थ होत है। तेसे ही सूरदासने सहस्रावधि पद किये हैं। तामें ज्ञान वैराग्य के न्यारे न्यारे भक्ति भेद, अनेक भगवद् अवतार, सो तिन सबन की लीला को वरनन कियो है।

पाछे उनके पद जहां तहां लोग सीखि के गावन लागे। सो तब (एक समय) तानसेनने एक पद सूरदास को सीखिके अकबर पात्शाह के आगे गायो। सो पदः-

राग नट-'यह सब जानो भक्त के लक्षन'

यह सुनि देशाधिपति अकबरने कह्यो जो- एसे लक्षन बारे भक्तन सों मिलाप होय तो कहा कहिये ? सो तानसेनने कही जो- जिननें यह कीर्त्तन कियो है सो व्रज में रहत हैं ? और सूरदासजी उनको नाम है।

यह सुनि देशाधिपति के मन में आई जो- कोई उपाय करि के सूरदाससों मिलिये। पाछें देशाधिपति दिल्ली तें आगरा आयो। तब अपने हलकारान सों कह्यो जो- व्रज में सूरदासजी श्रीनाथजी के पद गावत है, सो तिनकी ठीक पारिके मोकों श्रीमथुराजी में खबरि दीजियों, और (जो) यह बात सूरदास जानें नांहीं।

तब उन हलकाराननें श्रीनाथजीद्वार में आयके खबरि काढी। तब सुनी जो- सूरदासजी तो मथुराजी गये हैं। सो तब वे हलकारा श्रीमथुरा में आयके सूरदास कों नजरि में राखे, जो- या समय यहां बैठे हैं। तब उन हलकाराननें देशाधिपति कों खबरि करी जो-अजी साहब ! सूरदासजी तो मथुराजी में हैं।

तब सूरदासकूं अकबर पात्शाहने दस पांच मनुष्य बुलायवेकों पठाये। सो सूरदासजी देशाधिपति के पास आये। तब देशाधिपतिने उनको बहोत आदर सन्मान कियो। पाछे

सूरदासजी सों देशाधिपतिने कह्यो जो–सूरदासजी! तुमने विष्णु-पद बहोत किये हैं, सो तुम मोकों कछु सुनावो।

तब सूरदासनें अकबर पातसाह आगे यह पद गायो। सो पदः–राग बिलावलः–'मनारे तू कर माधो सों प्रीत'।+

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो यह पद केसो है, जो या पद को सुमिरन रहै तब भगवत् अनुग्रह होय, और मनकूं बोध होय। और संसार सों वैराग्य होय और श्रीभगवान के चरणारविंद में मन लगे। तब दुःसंग सों भय होय, सत्संग में मन लगे। सो देहादिक में ते स्नेह घटे, और लौकिक आसक्ति छूटे। जो भगवान को प्रेम है, सो अलौकिक है। सो ताके उपर प्रीति बढे।

यह सुनि देशाधिपति बहोत प्रसन्न भयो। पाछे देशाधिपति के मन में आई जो–सूरदासजी की परीक्षा देखूं। सो भगवान् को आश्रय होयगो, तो ये मेरो जस गावेगो नांही।

सो यह विचारके देशाधिपतिनें सूरदास सों कही जो–श्रीभगवानने मोकों राज्य दियो है, सो सगरे गुनीजन मेरो जस गावत हैं, सो तिनकों मैं अनेक द्रव्यादिक देत हौं। तासों तुमहू गुनी हो, सो तुमहू मेरो कछु जस गावो। सो तिहारे मन में जो इच्छा होय सो मांगि लेहु।

सो यह देशाधिपति ने कह्यो। तब सूरदासजी ने यह पद गायो। सो पद—

+ यह पद 'सूरपच्चीसी' नाम से प्रसिद्ध है।

राग केदारो :–'नाहिन रह्यो मन में ठौर'

सो यह पद सुनिके देशाधिपति ने अपने मन में विचारयो जो– ये मेरो जस काहेको गावेंगे? जो इनकों कछु लेवे को लालच होय तो ये मेरो जस गावें। ये तो परमेश्वर के जन हैं, सो ये तो ईश्वर को जस गावेंगे।

सो सूरदासजी या कीर्त्तन में पिछले चरन में कहे हैं, जो– 'सूर! एसे दरसकों ये मरत लोचन प्यास'

सो देशाधिपति ने सूरदास सों कह्यो जो–सूरदास! तुमारे तो नेत्र हैं नाही, सो प्यासे कैसे मरत हैं? सो यह तुम कहा कहे? तब सूरदासजीने कही जो– या बात की तुमकों कहा खबरि है? जो ये लोचन तो सब के हैं, परंतु भगवान के दरसन की प्यास काहूकों है? जो श्रीभगवान के दरसन के जे प्यासे नेत्र हैं, सो तो सदा भगवान के पास ही रहत हैं। सो स्वरूपानंद को रसपान छिन छिन में करत हैं, और सदा प्यासे मरत हैं।

यह सुनि अकबर पात्साह ने कही जो– इनके नेत्र तो परमेश्वर के पास हैं, सो परमेश्वर को देखत हैं, औरकों देखत नांही।

तब पात्शाहने सूरदास के समाधान की इच्छा कीनी। दोय चारि गाम तथा द्रव्य बहोत देन लाग्यो, सो सूरदासने कछु नांही लियो। तब अकबर पातशाह सूरदासजी सों कहे, जो–बावा साहिब! कछु तो मोकों आज्ञा करिये।

तब सूरदासजीने कही जो- आज पाछे हमकों कबहू फेरि मति बुलाइयो, और मोसों कबहू मिलियो मति ।

सो अकबर पातशाह विवेकी हतो । सो काहेतें ? जो ये योगभ्रष्ट तें म्लेच्छ भयो है । सो पहले जन्ममें ये बालमुकुंद ब्रह्मचारी+ हतो सो एक दिन ये बिना छाने दूध पान कियो, तामें एक गाय को रोम पेट में गयो। सो ता अपराध तें यह म्लेच्छ भयो है ।

+श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो सूरदास कों दंडवत करि के समाधान करि के बिदा किये ।

वार्ता प्रसंग-४

तापाछे सूरदास श्रीनाथजीद्वार आये । पाछे देशाधिपतिने आगरे में आयके सूरदास के पदन की तलास कीनी। जो कोऊ सूरदासजी के पद लावे तिनकूं रुपैया और मोहोर देय। सो वे पद फारसी× में लिखायके बांचे । सो मोहोर के लालच सों पंडित कवीश्वर हू सूरदास के पद बनाय के लाये। तब अकबर पातसाह ने उनसों कह्यो जो- यह पद सूरदासजी को नांही । सो ये पैसा के लिये पद की चोरी करत हैं ।

तब पंडित कवीश्वरन ने कही, जो- तुम कैसे जाने जो यह सूरदास को पद नांही ? जो यह तो सूरदास को ही पद है ।

× જુઓ નાગરીપ્રચારિણી પ્રકાશિત અકબરી દરબાર પેજ ૧૬૪.

तब पातसाह ने अपने पास सों सूरदास को पद अपने कागद के ऊपर लिखायो । और वे पंडित कवीश्वर सूरदास को भोग (छाप) को बनाय के लाये सो दोऊ कागद जल में धरिके कह्यों जो–ईश्वर सांचे होय तो या बात को न्याव करि दीजो ।

सो यह कहि जल में डारि दिये। सो उन पंडित जोतसीन को पद बनायो हतो सो कागद् गलिके जल में भीजि गयो; और सूरदास को पद हतो सो कागद जल में नांही भींज्यो ।

सो या भांति सों, जो–जिन भगवदीयन कों भगवान मिले श्रीहरिरायजीकृत हैं, उनके पदजो गायगो सो संसार सों तरेगो ।
भावप्रकाश– और चतुराई करि लौकिक मनुष्य के काव्य के कीर्तन कवित्तजो गावेगो, सो या प्रकार सों संसार में डूबेगो।

तब सगरे पंडित कवीश्वर लज्जा पायके नीचो माथो करिके अपने घरकों गये ।

सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी के एसे परम कृपापात्र भगवदीय हत ।

સંભવ છે કે આ પ્રવૃત્તિના અંગે શ્રીસૂરની શુદ્ધ વ્રજભાષામાં 'મહેલાત' આદિ ફારસી શબ્દોનું સંમિશ્રણ થયા ઉપરાંત ફારસીમાં તેની અનુવાદાત્મક રચના પણ થઈ હોય. જે હાલ પ્રાપ્ત છે–

वार्ता प्रसंग–५

सो इन सूरदासजी नें श्रीनाथजी के कीर्तन की सेवा बहोत दिन तांई करी। सो बीच बीच में जब कुंभनदासजी, परमानंददासजी के कीर्तन के ओसरा आवते, तब सूरदासजी श्रीगोकुल में श्रीनवनीतप्रियाजी के दरशन कूं आवते।

सो एक दिन सूरदासजी श्रीगोकुल आये हते, सो बाललीला के पद बहोत गाये। सो सुनिकें श्रीगुसांईजी आप बहोत प्रसन्न भये।

तब श्रीगुसांईजी आप एक पलना कों कीर्तन करिकें संस्कृत में सूरदासजी कों सिखायो। सो तासमय श्रीनवनीतप्रियाजी पालने में बिराजे, तब सूरदासने श्रीगुसांईजीकृत यह पलना गायो। सो पद–

राग रामकलीः– 'प्रेंख पर्यंक शयनं'.

सो यह पद सूरदासने श्रीनवनीतप्रियाजी के आगे गयो। पाछे या पद के अनुसार सूरदासजीने बहुत पद करिके गाये। सो पद–

'प्रेंख पर्यंक गिरिधरन सोहैं'

सो यह पलना को कीर्तन सूरदासजीने गायो। पाछे बाललीला के पद बहोत गाये। तापाछे यह पद गाये। सो पद–

राग बिलावलः– १ 'देख सखी इक अद्भुत रूप'
२ सोभा आज भली बनि आई'

इत्यादिक पद सूरदासजीने श्रीनवनीतप्रियाजी के

आगे गाये। तब श्रीगुसांईजी और श्रीगिरधरजी आदि सब बालक कहन लागे जो– हम जा प्रकार श्रीनवनीतप्रियाजी को सिंगार करत हैं, सो ताही प्रकारके कीर्तन सूरदासजी गावत हैं। तातें इन सूरदास के ऊपर बहोत ही कृपा है।

वार्ता प्रसंग–६

तापाछें श्रीगुसांईजी आप तो श्रीनाथजीद्वार पधारे। सो सूरदासजीने हू श्रीनाथजीद्वार जाइवे को विचार कियो। तब श्रीगिरधरजी आदि सब बालकन ने कह्यो,जो –सूरदासजी! दोय दिन श्रीनवनीतप्रियाजी कों और हू कीर्तन सुनावो, पाछे तुम जाइयो। तब सूरदासजी श्रीगोकुल में रहे।

सो तब श्रीगिरधरजी सों श्रीगोविंदरायजी, श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी ये तीनों भाई कहे जो– ये सूरदासजी, जेसा श्रृंगार श्रीनवनीतप्रियाजी को होत है, तेसेही वस्त्र आभूषण वरणन करत हैं। सो एक दिन अद्भुत अनोखो श्रृंगार करो, और सूरदासजी कों जनावो मति। सो देखें, ये कीर्तन केसो करत हैं?

तब श्रीगिरधरजीने कह्यो जो– ये सूरदासजी भगवदीय हैं, सो इनके हृदयमें स्वरूपानंदको अनुभव है। तासों जेसो तुम श्रृंगार करोगे, सो तेसोही पद सूरदासजी वरणन करिके गावेंगे। तासों भगवदीय की परीक्षा नांही करनी।

तब उन तीनों बालकनने श्री गिरधरजी सों कही जो–हमारो मन है, सो यामें कछु बाधा नांही है। तब श्रीगिरधरजी कहे जो– सवारे श्रीनवनीतप्रियाजी को शृंगार करेगें सो अद्भुत शृंगार करेंगे।

तापाछे सवारे श्रीगिरिधरजी तीनों बालकन सहित श्रीनवनीतप्रियाजी के मंदिर में पधारे, और सेवा में न्हाये।

पाछें श्रीनवनीतप्रियाजी कों जगाये, तापाछें मंगल भोग धर्यो। फेरि न्हवाय के शृंगार धरावन लागे। सो अषाढ के दिन हते तातें गरमी बहोत। सो श्रीनवनीतप्रियाजी कों कछु वस्त्र नांही धराए। सो मोतीन के दोय लर मस्तक पर, मोती के बाजू पोहोंची, कटि–किंकिनी, नूपुर, हार, सब मोतिन के, तिलक नकवेसर करनफूल कछु नांही।

सो सूरदासजी जगमोहन में बेठे हते, सो इनके हृदय में अनुभव भयो। तब सूरदासजी अपने मन में बिचारे जो– आजु तो श्रीनवनीतप्रियाजी को अद्भुत शृंगार कियो है। एसो शृंगार तो मैंनें कबहू देख्यो नांही, और सुन्योहू नांही, जो केवल मोती धराए हैं, और वस्त्र तो कछु धराए हैं नांही। तासों आज मोकों कीर्त्तन हू अद्भुत गायो चहिये।

जब शृंगार के दर्शन खुले, तब श्रीगिरिधरजीने सूरदासजी कों बुलाये, और कह्यो जो–सूरदासजी! दरशन करो, और कीर्त्तन गाओ। तब सूरदासजी ने बिलावल में यह

कीर्त्तन करिके श्रीनवनीतप्रियाजी कों सुनायो। सो पद–
'देखेरी हरि नंगम नंगा'

सो सुनिके श्रीगिरधरजी आदि सगरे बालक अपने मन में बहोत प्रसन्न भये। और सूरदास सों कहन लागे जो– सूरदासजी! यह तुम कहा गाये? तब सूरदासजीने विनती कीनी, जो– महाराज! जेसो आपने अद्भुत शृंगार कियो, तेसो ही मैं अद्भुत कीर्त्तन गायो है।

तब सगरे बालक यह सुनिकें सूरदासजी के ऊपर बहोत प्रसन्न भये।

सो ये सूरदासजी श्रीआचार्यजी महाप्रभु के एसे परम कृपा पात्र भगवदीय हते, सो इनकों श्रीठाकुरजी नित्य हृदय में अनुभव करावते।

तापाछे श्रीगिरिधरजी आप सूरदासजी को संग लेके श्रीनाथजीद्वार आये। तब श्रीगिरिधरजी ने सब समाचार श्रीगुसांईजी सों कहे जो–या प्रकार अद्भुत शृंगार श्रीनवनीतप्रियाजी को सगरे बालकन के मनोरथ सों कियो। सो सूरदासजी ने एसो ही कीर्तन कियो। सो इनके हृदय में अनुभव है।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगिरिधरजी सों कहे–जो सूरदासजी की कहा बात है? जो– ये पुष्टिमार्ग के जहाज है। सो भगवल्लीला को अनुभव इनकों अष्टप्रहर हैं। सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–७

और सूरदासजी के पास एक व्रजवासी को लरिका हतो, सो सब कामकाज सूरदासजी को करतो। ताको नाम गोपाल हतो। सो एक दिन सूरदासजी महाप्रसाद लेन को बैठे, तब वा गोपाल सों सूरदासजी कहे जो– मोकूं तू लोटी में जल भरि दीजो। तब गोपाल व्रजवासी ने कह्यो जो– तुम महाप्रसाद लेनको बेठो जा मैं जल भरि देऊंगो।

सो यह कहिके गोपाल तो गोबर लेन कों गयो। सो तहां दोय चारि वैष्णव हते सो तिनसों बात करन लाग्यो, तब सूरदास कों जल देनो भूलि गयो। और सूरदासजी तो महाप्रसाद लेन बैठे, सो गरे में कोर अटक्यो। तब बांये हाथ सों लोटा इतउत देखन लागे, सो पायो नांही। तब गरे में कोर अटक्यो सो बोल्यो न जाय। तब सूरदास व्याकुल भये। सो इतने में श्रीनाथजी सूरदासजी के पास आयके अपनी झारी धरि आए। तब सूरदासजीने झारी में ते जल पियो।

तब गोपाल व्रजवासी कों सुधि आई, जो– सूरदासजी कों मैं जल नांही भरि आयो हूं। सो दोर्‍यो आयो। इतने में सूरदास महाप्रसाद लेकें आये। तब गोपाल व्रजवासीने आयके सूरदास सों कह्यो जो–सूरदासजी ! तुम महाप्रसाद ले उठे ? सो तुमने जल कहांते पियो ? जो मैं तो गोबर लेन गयो

हतो, सो वैष्णव के संग बात करतमें भूलि गयो। तासो अब मैं दोरयो आयो हूं।

तब सूरदासने व्रजवासी सों कह्यो जो– तेंने गोपाल नाम काहेकों धरायो? जो गोपाल तो एक श्रीनाथजी हैं। सो तासों आज मेरी रक्षा करी। नातर गरे में एसो कोर अटक्यो हतो, सो जल बिना बोल निकसे नांही। तब मैं व्याकुल भयो, तब हाथ में जल की झारी आई, सो म जल पान कियो। तासों मैने जान्यो जो तेने धरयो होयगो। और अब तू आइके कहत है– जो मैं नांही हतो। सो तातें मंदिर वारो गोपाल होयगो। जो देखि तो झारी केसी है?

तब गोपाल व्रजवासी जहां सूरदासजी महाप्रसाद लिये हते तहां आय के देखें तो सोने की झारी है। सो उठाय के गोपाल सूरदासजी के पास आय के कह्यो जो– ये झारी तो मंदिर की है। सो तब सूरदासने वा गोपाल व्रजवासी सों कह्यो जो– तेनें बहोत बुरो काम कियो, जो श्रीठाकुरजी को इतनो श्रम करवायो। जो मेरे लिये झारी लेकें श्रीठाकुरजी कों आनो परयो।

सो या प्रकार सूरदासजीने अपने मन में बहोत पश्चात्ताप कियो। तापाछे सूरदासजीने गोपालदास सों कह्यो जो– ये झारी तू जतन सों राखियो। और जब श्रीगुसांईजी आपु पोंढि के उठें तब उन कों सोंपि आइयो। तब गोपालदासने झारी

लेके श्रीगुसांईजी के पास आय, दंडवत करि आगे राखी। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे– ये झारी तेरे पास केसे आई? जो ये झारी तो श्रीगोवर्द्धनधर की है। तब गोपालदासने श्री गुसांईजी सों विनती कीनी जो– महाराज! यह अपराध मोसों पर्यो है। पाछें सब बात कही।

तब यह बात सुनिके श्रीगुसांईजी आप तत्काल स्नान करिकें झारी को मंजवाय दूसरो वस्त्र लपेटिकें मंदिर में बेगि ही झारी लेके पधारे। पाछे श्रीगोवर्द्धनधरकूं जलपान कराइके कहे जो– आज तो सूरदास की बडी रक्षा कीनी। सो तुम बिना कोन वैष्णव की रक्षा करे? तब श्रीनाथजीने कही जो– सूरदास के गरे में कोर अटक्यो सो व्याकुल भये, तासों झारी धरि आयो।

श्री हरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो काहेते? जो सूरदास व्याकुल भये, सो मैं ही व्याकुल भयो। जो भगवदीय है सो मेरो स्वरूप है।

तापाछे उत्थापन के किंवाड खोले। सो सूरदासजी आइ के उत्थापन के दर्शन किये। सो उत्थापन समे को भोग श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीकों धरि सूरदास के पास आइके कहे जो–आज गोपालने तिहारे ऊपर बडी कृपा करी है। तब सूरदासजीने कह्यो जो– महाराज! यह सब आप की कृपा है। नांहि तो श्रीनाथजी मो सरीखे पतितन कों कहा जानें? जो सब श्रीआचार्यजी की कानि तें अंगीकार करत हैं।

तब यह वचन सुनिके बनिया अपने मन में बहोत ही खिस्यानो हाय गयो, और वह बनिया सूरदास सों बोल्यो जो– सूरदासजी ! तुम यह बात और काहू के आगे मति कहियो। जो मैं यासों दरशन कों नाहि आवत हों, जो हाट छोडि दरसन कों जाऊं तो यहां वैष्णव सोदाकों फिरि जाय, जो और की हाट सों लेन लागें, तब मैं खाऊं कहांते ? और कोऊ मेरे पास एसो मनुष्य नांहि है, जो जा समय दरशन के किंवाड खुलें ता समय मोकों आय के खबर करे, जातें मैं बेगि ही दोरिके दरशन करि आऊं

तब वा बनियातें सूरदासने कहो जो– मैं जा समय आइकें खबरि करूं सो ता समय तू चलेगो? तब वा बनियाने कही जो– तुम आइके खबरि करियो, जो– मैं चलूंगो। जो मेरे मन में दरशन की बहोत है।

तब सूरदासजी कहे जो– मैं उत्थापन के समय आऊंगो। सो यह कहिके सूरदासजी तो गये। पाछे जब उत्थापन को समय भयो तब शंखनाद भये, तब सूरदासजीने आइके वा बनियासों कही जो– अब शंखनाद भये हैं, तासों दरशन को समय है, सो अब चलो। तब वा बनियाने सूरदासजी सों कह्यो जो– या समय गांव के लोग सोदा लेन आवत हैं, सो भोग के किंवाड खुलें ता समय तुम मोकों खबरि करियो.

तब सूरदासजीने पर्वत ऊपर आइके श्रीनाथजी के दर्शन किये, और कीर्तन किये। तापाछे श्रीनाथजी के भोग के दरशन

को समय भयो, तब सूरदासजी परवत सों नीचे उतरिके वा बनिया सों कहे जो– दरशन को समय है, तासों अब तो दरशन कों चल। तब वा बनियाने सूरदास सों कह्यो जो– सूरदासजी! अब तो वनतें गाय आइवे को समय भयो है, तासों मंदिर में चलूं तो गाय आइके मेरो सगरो अनाज खाय जॉय। तासों अब तुम सेन आरती के समय जताइयो सो तहां तांई गाय सब अपने २ घर जाँयगी।

तब सूरदासजी फेरि भोग के समय जाइके दरशन किये। तापाछें संध्या के दरशन किये। पाछें सेन आरती के दरशन को समय भयो, तब सूरदासजीने आइके बनिया कों खबरि कीनी जो–चल अब सेन आरती के दरशन को समय है।

तब वा बनियाने सूरदास सों कही जो– सूरदासजी! आज तुम कों बहोत श्रम भयो है। परंतु अब दीवा बारिवे को समय है, सो काहेतें जो– अब या समय लक्ष्मी आवत है, तासों दीवा न होय तो लक्ष्मी पाछी फिरि जाय। और कोई मेरी हाटतें अन्न चुराय लेय तो मैं कहा करूं? तासों अब मैं सवारे प्रातःकाल दरशन करि ता पाछें हाट खोलूंगो। तासों मोकों मंगला के समय आइके खबरि करियो। आज मैनें तुम सों बहोत फेरा खवाये।

तब सूरदासजी मंदिर में आइके श्रीनाथजी के दरशन किये। तापाछें सेन समय कीर्तन गाये

पाछें प्रातःकाल भयो, तब न्हाइके सूरदासजीने आइ-के वा बनिया सों कही जो– मंगला को समय है, सो अब तो चल। तब वा बनियाने कही जो– सूरदासजी ! अब ही तो हाट बुहारि के मांडनी है। तासों बोहनी के समय कोई गाहक फिरि जाय तो सगरो दिन खाली जाय। तासों हाट लगायके शृंगार के दरशन कों चलूंगो। तासों शृंगार के समय कहियो।

तब सूरदासजीने मंगला आरती के दरशन किये। पाछें सूरदासजी शृंगार के समय फेरि आये। तब वा बनियाने कही जो– अब ही मैं आछी काहू की बोहनी कीनी नांही है, और गाय डोलत हैं। तासों अब राजभोग के दरशन अवश्य करूंगो। सो देखो तुम कालि तें मेरे लिये बहोत फिरत हो, जो तुम बडे भगवदीय हो।

सो सूरदासजी फेरि श्रीनाथजी के दरशन कों परवत पर आए। तब श्रीनाथजी के शृंगार के दर्शन किये कीर्तन किये। ता पाछें राजभोग आरती को समय भयो। तब सूरदासजीने वा बनिया सों कह्यो जो– अब चलोगे ? तब वा बनियाने कह्यो जो– या समय मैं केसे चलूं ? जो अब वैष्णव राजभोग के दरशन करि के नीचे आवेंगे। सो सब या समय सीधा सामग्री लेत हैं। जो मैं बूढो, कब आऊं परवत सों उतरि कें, केसे बेगि आयो जाय ? और याही वखत विक्री को समय है। जो याही समय कछु मिले सो मिले। तासों उत्थापन के समय दरशन करूंगो।

या प्रकार सूरदासजी वा बनिया के साथ तीन दिन तांई रहे। परंतु वह बनिया एसो लोभी सो दरशन कों नांहि गयो। ता पाछे चोथे दिन न्हायके सूरदासजी प्रातःकाल मंगला के दरशन कों चले। तब सूरदासजी अपने मन में बिचारे– जो देखो या बनिया कों तीन दिन भये, परंतु दरशन कों नांही गयो। तासों आज जो यह न चले, तो याको भय दिखावनो, और दरसन करावनो।

यह बिचारिके सूरदासजी वा बनिया की पास आय के कह्यो– जो तीन दिन बीति चुके मोकों फिरते, परि तू दरशन को नांही चल्यो। जो आज तो चल। तब वा बनियानें कह्यो– जो कछु बोहिनी करि शृंगार के दरशन करूंगो। तब सूरदासजीने वा बनिया सों कही– जो अब तो मैं तेरी बात सगरे वैष्णवन में प्रकट करूंगो। जो यह बनिया झूठो बहोत है, सो कबहू याने श्रीनाथजी को दरशन नांही कियो। और यह वैष्णव हू नांही है। अब तेरे पास कोई वैष्णव सोदा लेंन आवेगो तो मैं तेरे दोहा, चोपाई, पद कुटिलता के करिके वैष्णवन कों सुनाऊंगो। सो या भांति कहिके भैरव राग में एक पद गायो। सो पदः–राग भैरव।

'आज काम कालि काम परसों काम करनो'०

सो यह पद सूरदासजीनें वा बनिया को वाही समय करिके सुनायो, सो तब तो वा बनिया अपने मन में डरप्यो। पाछें सूरदासजीके पावन परि वा बनियाने बिनती

कीनी– जो तुम मेरे दोहा कबित्त कछु बरनन मति करो, और तुम मेरी बात कोई सों प्रकट मति करो। जो मैं अब ही तिहारे संग चलूंगो।

पाछे वह बनिया सूरदासजी के संग आयो। तब मंगला के किंवाड खुले, तब सूरदासजीनें श्रीनाथजी सों कह्यो जो– महाराज! यह बनिया दैवी जीव है, सो तासों अब याके मनको आकर्षन करिके याको उद्धार करो। सो काहेते? जो यह तिहारी ध्वजा के नीचे रहत है। तब श्रीनाथजी कहे जो--मेरे पास रहत है, सो कहा मोकों जानत है? तुम सब भगवदीयन की कृपा होय सो तब ही मोकों पावे।

हरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो काहेते? जो गंगा यमुना में अनेक जीव हैं सो कहा कृतार्थ हैं? जो माखी मच्छर चेंटी आदि श्रीप्रभु के बहोत जीव हैं, सो कहा कृतार्थ हैं? जो भगवदीयन को संग होय तब ही कृतार्थ होय। सो तब ही श्रीप्रभून कों पावे। भगवदीयन के संग सों दासभाव होय तब ही कृपा होय।

पाछे श्रीनाथजीने वा बनिया कों एसो दरशन दियो, सो वाको मन हरिलीनो। सो जब मंगला के दरशन होय चुके तब वा बनियाने सूरदासजी के चरन पकरि के वीनती कीनी जो–महाराज! मेरो जनम सगरो वृथा गयो द्रव्य जोरवे में, मेरे पास द्रव्य बहोत हैं, सो अब तुम चाहो तहां या द्रव्य को खरच करो। और मोकों श्रीगुसांईजी को सेवक करायके वैष्णव करो।

तब सूरदासजीने वा बनिया सों कह्यो– जो तू न्हायके काहू को छुइयो मति, यहां आय बैठियो। सो इतने में श्रीगुसांईजी आपु शृंगार करि चुके, तब सूरदासजीनें श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी जो–महाराज! या बनिया कों शरण लीजिये।

तब श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख सों सूरदासजी सों कहे जो– सूरदासजी! तुमने भलो साठि वरस को बूढो बेल नाथ्यो। तुम बिना या बनिया को सगरो जनम योंही जातो।

पाछे श्रीगुसांईजी आप वा बनिया को बुलाय कें श्रीनाथजी के सन्निधान बेठायके नाम–ब्रह्मसंबंध करवायो। सो वा बनिया की बुद्धि निरमल होय गई। सो तब सगरे दरसन नित्य नेमसों करन लाग्यो। और वा बनिया नें श्रीगुसांईजी कों बहोत भेट करी। और श्रीनाथजी के वागा वस्त्र सामग्री कराय आभूषण कराये, और अंगीकार कराये।

ता पाछे एक दिन वा बनिया ने सूरदासजी सों कही जो– सूरदासजी! तिहारी कृपातें मैं श्रीगोवर्धननाथजी के दरसन पायो, और वैष्णव भयो। तासों अब एसी कृपा करो, जो– याही जनम में मेरो अंगीकार करैं, और मोकों संसार को दुख सुख बाधा न करे।

तब सूरदासजीने एक पद करि के वा बनिया को सिखायो। सो पद। राग बिलावल :–

'कृष्ण सुमिर तन पावन कीजे'।[१]

---

१ આ પદ સૂરસાઠીના નામથી પ્રસિદ્ધ છે.

तब वा बनिया कों दृढ भक्ति भई। लौकिक की बासना सब दूरि भई। सो ज्ञान वैराग्य सर्वोपरि भक्ति भई। सो श्रीनाथजी के चरण कमल में द्रढ आसक्ति और स्वरूपानंद को अनुभव भयो। तब रस में मगन होय गयो।

सो या प्रकार सूरदासजी के संगतें एसो लोभी बनियाहू कृतार्थ भयो। सो वे सूरदासजी एसे भगवदीय हते।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो काहे तें ? जो—मूल में दैवी जीव है। सो श्रीललिताजी की सखी है। सो लीला में याको नाम 'विरजा' है। सो सूरदास को संग पायके लीला को अनुभव भयो। तातें भगवदीयन को संग सर्वोपरि है।

वार्ता प्रसंग–९

और एक समय श्रीगोकुल तें परमानंद आदि सब वैष्णव दस पंद्रह सूरदासजी सों मिलवेकों और श्रीगोवर्धननाथजी के दर्शन कों आये। सो सेनआरती के दरशन करि सूरदासजी के पास आये। तब सूरदासजी ने सगरे वैष्णवन को बहोत आदर सन्मान कियो और ताही समय कीर्तन गाये।

राग कान्हरोः—

१ 'हरिजन संग छिनक जो होई' २ 'प्रभु जन पर प्रसन्न जब होई'। ३ 'हरि के जन की अति ठकुराई'
राग हमीरः— ४ 'जा दिन संत पाहुने आयें'

सो या प्रकार सूरदासजी ने अनेक पद वैष्णवन कों सुनाये। तब सब वैष्णव बहोत प्रसन्न भये। पाछे सूरदासजीने

उन वैष्णवन सों कह्यो जो- कछू मो पर कृपा करिके आज्ञा करिये । तब सब वैष्णवन ने सूरदासजी सों कह्यो जो- ज्ञान, योग, परमतत्व और श्रीठाकुरजी को प्रेम, स्नेह को स्वरूप सुनाओ । तब सूरदासजीने यह कीर्तन सुनायो । सो पद । राग बिहागरोः-

'जोग सों कोउ नांही हरि पाये'

सो या भांति अनेक कीर्तन करि वैष्णवन कों समुझाये । तब सगरे वैष्णव प्रसन्न होयकें कहे, जो- सूरदासजी के ऊपर बडी भगवत् कृपा है । ता पाछें सवारे भये सगरे वैष्णवन ने श्रीनाथजी के दर्शन किये । ता पाछें सूरदासजीसों विदा होय के श्रीगोकुल आये । सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी के एसे परम कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग-१०

सो या प्रकार सूरदासजी नें बहोत दिन तांई भगवत्
'सूरश्याम' पके सेवा कीनी । ता पाछें जानें जो-
२५ हजार पद भगवद् इच्छा मोकों बुलायवे की है ।
सो काहेते? जो प्रभुन की यह रीति है, जो जब वैकुंठ सों
श्रीहरिरायजीकृत भूमि पर प्रकट होयवे की इच्छा करत हैं,
भावप्रकाश तब वैकुंठवासी जो भक्त हैं, सो पहले भूमि पर प्रकट करत हैं । ता पाछें आपु श्रीभगवान प्रकट होय भक्तन के संग लीला करत हैं । पाछें अपुने भक्तन को या जगत सों तिरोधान होय ता पाछें वैकुंठमें लीला करत हैं । सो जैसें नंद, जसोदा,

गोपीजन, सखा, वसुदेव, देवकी, यादव, सब प्रकट पहले ही किये। ता पाछे आप प्रकट होयकें लीला भूमि पर करिके पाछे जादवनकूं मूसल द्वारा अंतर्ध्यान करि लीला किये। सो श्रीनंदरायजी, श्रीजसोदाजी, गोपीजन कों अंतर्ध्यान लौकिक लीला नांहि दिखायें। सो तैसेही श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी श्रीपूर्णपुरुषोत्तम को प्राकट्य है। सो लीला–संबंधी वैष्णव प्रकट किये। अब श्रीआचार्यजी आप अंतर्ध्यान लीला किये। **और श्रीगुसांईजी कों करनो है।*** सो पहले भगवदीयन कूं नित्यलीला में स्थापन करिके आपु पधारेंगे। सो भगवदीयन को (अपनी) लौकिक अंतर्ध्यानलीला दिखावत नांही। सो जैसें चाचा हरिवंशजी सों कहे जो–तुम गुजरात जावो। सो या प्रकार गुजरात पठाय के अंतर्ध्यान लीला किये। सो सूरदासजी कूं नित्यलीला में बुलायवे की इच्छा श्रीगोवर्धनधर की है।

सो तब सूरदासजी मन में विचारे जो –मैं तो अपने मन में सवा लाख कीर्तन प्रकट करिवेंको संकल्प कियो है, सो तामेतें लाख कीर्तन तो प्रकट भये हैं। सो भगवद् इच्छा तें पचीस हजार कीर्तन और प्रकट करने। ता पाछे यह देह छोडि के अंतर्धान होय जानो।

सो या प्रकार सूरदासजी अपने मनमें विचार करत हते। वाही समय श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु प्रकट होयके दरशन दे के कह्यो जो– सूरदासजी! तुमने जो सवा लाख कीर्तन को मन

---

* આ શબ્દોમાં સૂરદાસજીનો લીલાપ્રવેશ ૧૬૪૦ નો ૨૫૯ જણાય છે. જે ઇતિહાસની દૃષ્ટિથી સિદ્ધ છે.

में मनोरथ कियो है, सो तो पूरन होय चुक्यो है, जो पचीस हजार कीर्तन मैंने पूरन करि दिये हैं। तासों तुम अपनो कीर्तन को चोपडा देखो.

तब सूरदासजीने एक वैष्णव सों कह्यो जो– तुम मेरे कीर्तन के चोपडा देखो। सो तब वह वैष्णव देखे तो सूरदासजी के कीर्तन के बीच बीच में 'सूरश्याम' को भोग (छाप) है। सो एसे कीर्तन सगरी लीला में है। सो पचीस हजार हैं सो बात वा वैष्णवने सूरदास सों कही जो –काल तक तो 'सूर-श्याम' के कीर्तन हते नांही, और आज सगरी लीला की बीच में है।

तब सूरदासजी श्रीनाथजी को दंडवत करिके कहे जो– अब मेरो मनोरथ आप की कृपातें पूरन भयो। तासों अब आपु आज्ञा देउ सो करों।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो–अब तुम मेरी लीला में आयके लीलारस को अनुभव करो। सो यह आज्ञा करिके श्रीनाथजी अंतर्धान भये।

तब सूरदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत करिके मन में बहोत प्रसन्न भये। परंतु पास दोय वैष्णव साधारन हते, सो जाने नाहीं जो–श्रीठाकुरजी आपु सूरदासजी के पास पधारे, और कहा आज्ञा दीनी। सो काहेतें जो–श्रीठाकुरजी के स्वरूप को अनुभव भगवदीय विना और काहू को नांहि।

वार्ताप्रसंग-११

सूरदास का अंतिम समय

सो तब सूरदासजी अपने मन में यह विचार करिके परासोली आये। सो तहां अखंड रासलीला ब्रह्मरात्र करि भगवानने रासपंचाध्याई की सगरी लीला उहां करी है। सो जहां उडुराज चंद्रमा प्रकट्यो है। सो तहां चंद्रसरोवर है, एसे अलौकिक स्थल में आये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

जो ये अष्टसखा हैं। सो श्रीगिरिराज में आठ द्वार हैं। सो तहां के ये अधिकारी हैं। तासों आठों सखा अपने अपने द्वार पर श्रीगिरिराज में ही देह छोडी है। और अलौकिक देह धरिके सदा सर्वदा लीला में विराजमान हैं। (१)सो गोविंदकुंड ऊपर एक द्वार है। ताके सन्मुख परासोली चंद्रसरोवर है, तहां सूरदासजी सेवा में मुखिया हैं। (२) और अप्सराकुंड ऊपर एक द्वार है, तहां सेवामें छीतस्वामी मुखिया हैं। (३) सुरभीकुंड ऊपर द्वार है, सो तहां परमानंददास सेवा में मुखिया हैं। (४) और गोविंदस्वामी की कदमखंडो पास एक द्वार है, तहां गोविंदस्वामी मुखिया हैं। (५) और रुद्रकुंड के पास एक द्वार है तहां चत्रभुजदास सेवा में मुखिया हैं। (६) बिलछू सन्मुख एक बारी है, सो जा मारग होय के रासलीला कों पधारत हैं सो तहां की सेवा के कृष्णदास अधिकारी मुखिया हैं। (७) और मानसी गंगा के पास एक द्वार है सो तहां की सेवा में नंददास मुखिया हैं। (८) और आन्योर के सन्मुख

एक द्वार है, सो तहां जमुनावतो गाम है, सो ता द्वार के मुखिया कुंभनदास हैं।

या प्रकार श्रीगिरिराज में नित्य निकुंज-लीला है। सो ता निकुंजलीला के आठ द्वार हैं। तहां के आठ सखा सखी रूप हैं, सो सेवा में सदा तत्पर हैं। तासों सूरदासजी को ठिकानो परासोली है।

सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की ध्वजा कों साष्टांग दंडवत् करि के ध्वजा के सन्मुख मुख करिके सूरदासजी सोये, परंतु मन में यह आई जो- श्रीआचार्यजी और श्रीगुसांईजी आपु मेरे ऊपर बडी कृपा करी है। श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीला को याही देह सों अनुभव कराये। परंतु या समय एकवार श्रीगुसांईजी आपु मेरे ऊपर कृपा करिके दरशन देंय, तो मेरे बडे भाग्य हैं। श्रीगुसांईजी को नाम कृपासिंधु हैं, सो भक्तनको मनोरथ पूरन कर्ता हैं, सो पूरन करेंगे।

सो या प्रकार सूरदासजी श्रीगुसांइजीके स्वरूप को चिंतवन करत हते, और यहां श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी को शृंगार करत हते। सो वा दिन श्रीगुसांईजीने सूरदासजी कों जगमोहन में बैठे कीर्तन करत न देखे। सो ता समय श्री-गुसांईजी आपु सेवकन सों पूछे जो- सूरदासजी कहां है?

तब एक वैष्णवनें श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी जो- महाराज! सूरदासजी तो आज मंगला आरती के दरशन करिके परासोली में सगरे सेवकन सों भगवत्-स्मरन करिके गये हैं।

तब श्रीगुसांईजी आप जाने जो—भगवद् इच्छा सूरदासजी कों बुलायवे की भई है, तासों आज सूरदासजी परासोली कों गये हैं। सो तब श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख सों सगरे वैष्णवन सों यह आज्ञा किये जो—'पुष्टिमारग को जहाज जात है सो जाकों कछू लेनो होय सो लेऊ, और उहां जायके सूरदासजी कों देखो। सो या भांति सों जो राजभोग आरती उपरांत रहत हैं तो मैं हू आवत हों।' सो तब सगरे वैष्णव सूरदासजी की पास आये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो यहां 'जहाज' कहिवे को आशय यह है जो—जैसे कोई जहाज में काहू ब्योपारीने ब्योपार अर्थ अनेक वस्तु जहाज में भरी है, सो तैसे ही सूरदासजी के हृदय में अलौकिक वस्तु नाना प्रकारकी भरी है।

ता समय सूरदासजीने श्रीगुसांईजी के और श्रीगोवर्द्धननाथजी के स्वरूप में मन लगायके बोलिवो छोडि दियो सो तब श्रीगुसांईजीने पंद्रह व्रजवासी दोराये। जो घडी २ में हमसों सूरदासजी के समाचार आय कहियो। तब वे व्रजवासी आयके श्रीगुसांईजी सों कहे जो—महाराज! अब तो सूरदासजी काहू सों बोलत नांही हैं। सो एसे करत २ राजभोग आरती को समय भयो। सो राजभोग आरती श्रीगोवर्द्धननाथजी की करिके श्रीगुसांईजी आपु परासोली में जहां सूरदासजी हते तहां पधारे।
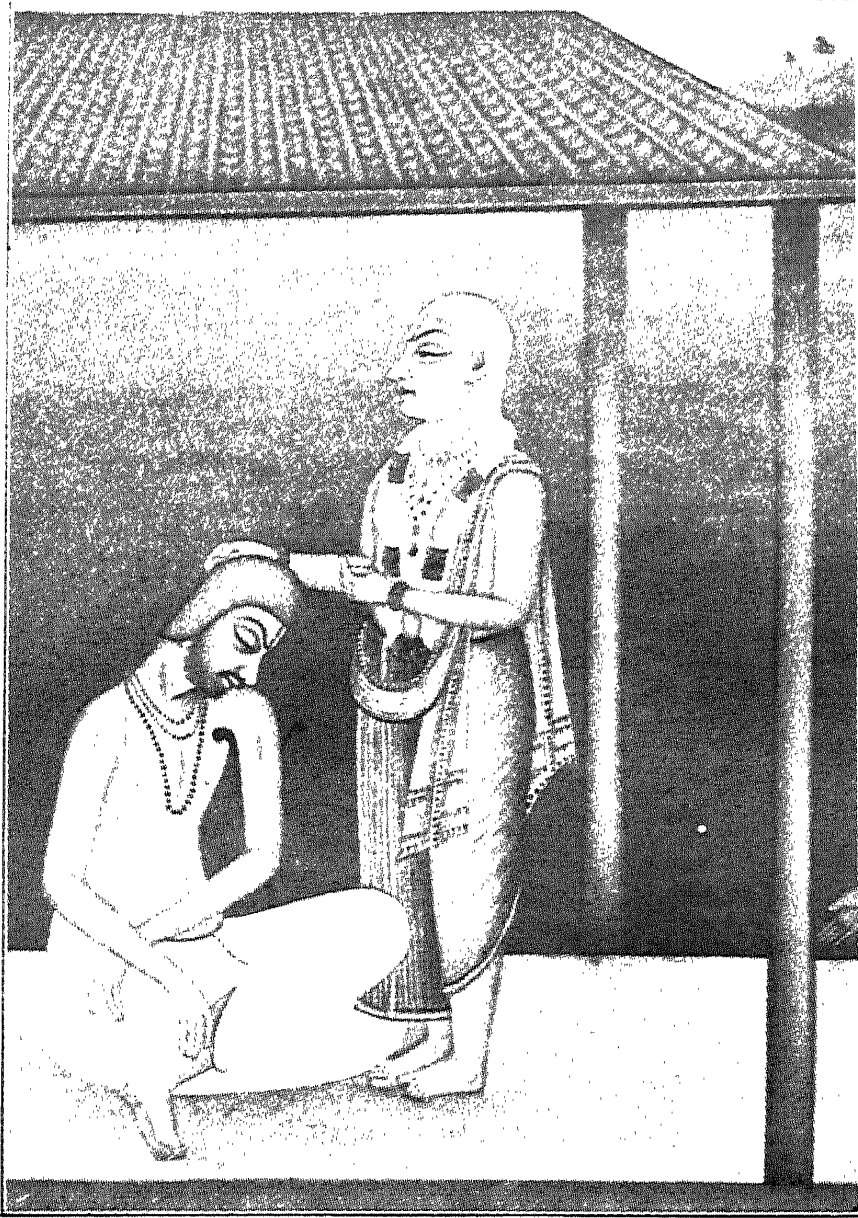
श्रीसूरका अंतिम समय
सं० १६४०

रघुनाथ, पालीवाल
नाथद्वारा

तब श्रीगुसांईजी के संग रामदास, कुंभनदास, गोविंद-स्वामी, चत्रभुजदास आदि सगरे वैष्णव सूरदासजी के पास आये। तब देखे तो सूरदासजी अचेत होय रहे हैं, कछू देहको अनुसंधान नांही है।

सो तब श्रीगुसांईजी आप सूरदासजी को हाथ पकरिके कहे जो– सूरदासजी ? कैसे हो ? तब सूरदासजी तत्काल उठिके दंडवत् करिके कहे जो–बावा! आये? जो मैं आपु की वाट ही देखत हतो। या समय आपने बडी कृपा करिके दरशन दियो। जो महाराज! मैं आप के स्वरूप को ही चिंतन करत हतो।

ताही समय सूरदासजीने यह कीर्तन सारंग राग में गायो। सो पद–

‘ देखो देखो हरिजू को एक सुभाव ’.

यह पद सूरदासजीने श्रीगुसांईजी के आगे गायो। तब श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीमुख सों कहे जो– या प्रकार श्रीठाकुरजी आपु अपने भगवदीयन कों दीनता को दान करत हैं, सो ताकों पूरन कृपा जानिये। सो दैन्यतारस के पात्र यही हैं।

सो ता समय सगरे वैष्णव श्रीगुसांईजी के पास ठाडे हते। उनमें ते चत्रभुजदासने कह्यो जो–सूरदासजी परम भगवदीय हैं, और सूरदासजीने श्रीठाकुरजी के लक्षावधि पद किये हैं।

परंतु सूरदासजीनें श्रीआचार्यजी महाप्रभुन को जस वरनन नांही कियो ।+

यह सुनिके सूरदासजी कहे जो– मैं तो सगरो जस श्री-आचार्यजी को ही वरनन कियो है, जो मैं कछु न्यारो देखतो तो न्यारो करतो । परि तेने मोसों पूछी है, सो मैं तेरे पास कहत हों, सो या कीर्तन के अनुसार सगरे कीर्तन जानियो । सो पद—

राग बिहागरो–'भरोसो दृढ इन चरणन केरो'०।

सो या कीर्तन में सूरदासजीने अपने हृदय को भाव खोलि दियो।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश. जो भरोसो सो जीव को विश्वास, दृढ चरण के शरण को। सो मोकों (सूरदासकों) दृढता श्री-आचार्यजी के शरण की है। सो श्रीआचार्यजी के नख जो दसों चरणा-रविंद के अलौकिक मणिरूप नख को प्रकाश, सो ता बिना सगरे त्रिलोकी में अंध्यारो दीखे है। सो तब भरोसो दृढ जानिये। सो या कलि में श्रीआचार्यजी के चरण के आश्रय विना और उपाय फलसिद्धि को नांही है। तासों मैं न्यारो कहा वर्णन करों? जो श्रीगोवर्द्धनधर में और श्रीआचार्यजी के स्वरूप में भिन्न, जो द्विविध तामें तो मैं अंध हों।

सो जैसे श्रीकृष्ण और श्रीस्वामिनीजी में न्यारो स्वरूप जाने सो अज्ञानी। सो तैसें श्रीगोवर्द्धनधर और श्रीआचार्यजी हैं। सो तिनको मैं

+ સૂરની છાપનાં શ્રીમહાપ્રભુજીના જે પદો પ્રચલિત છે તે અષ્ટછાપના શ્રીસૂરનાં નથી. વિશેષ જુઓ અમારા તરફથી પ્રકટ થતો 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તકવિ' નામક ગ્રન્થ.

बिना मोल को चेरो हों। सो बिना मोल कहा ? जो केवल भाव करि के। जैसें रासपंचाध्याई में व्रजभक्त गोपिकागीत में कहे हैं जो– 'शुल्क दासिका' सो बिना मोल की दासी, अलौकिक, जाको मोल नांही। सो काहे ते ? जो भक्ति करिके प्रभुन सों (अर्थ) चाहै, सो सगरे, मोल के दास कहिये। उनकी भक्ति श्रेष्ठ नांही। तासों निष्काम भक्ति सर्वोपरि है। सो ताकों अमोलिक दास कहिये। ता भाव के प्रभु वस होंय। सो जैसें पंचाध्याई में श्रीभगवान कहे हैं जो–तिहारो भजन एसो है, जो मोसों पलटो दियो न जाय। जो मैं सदा तिहारो रिनियाँ रहूंगो। सो यह अमोलिक दास के लक्षन हैं। सो यह पद गायो।

सो यह पद कैसो है ? जो या कीर्तन के भाव तें, सवा लाख कीर्तन सूरदासजी ने किये हैं, सो सब को पाठ होय।

तब चत्रभुजदास प्रसन्न भये। पाछें सगरे वैष्णव और श्रीगुसांईजी आपु कहे जो– सूरदासजी के हृदय को महा अलौकिक भाव है, तासों श्रीआचार्यजी आपु सूरदासजी सों 'सागर' कहते। जैसे समुद्र अगाध है, तैसे सूरदासजी को हृदय अगाध है। सो तब चत्रभुजदास कहे जो–सूरदासजी ! तुम विना अलौकिक भाव कोन दिखावे ? जो अब थोरे में, श्रीआचार्यजी को यह पुष्टिभक्ति मारग है, ताको स्वरूप सुनावो। सो कोन प्रकार सों पुष्टिमारग के रस को अनुभव करिये।

तब वा समय सूरदासजीने यह पद गायो। सो पद– राग सारंग–' भज सखी भाव भाविक देव'०

सो पद सूरदासजीने सगरे वैष्णवन कों सुनायो ।

श्रीहरिरायजीकृत

भावप्रकाश

सो या पद में यह जताये–जो गोपीजन के भाव सों जो प्रभु को भजे । सो तिनके भाविक जो–श्रीगोवर्द्धनधर, सो तिनको गोपीन के भाव करि सखीभाव सों भजिये । कुंजलीला में सखीजन को अधिकार है। तासों (यहां) सखी कहे । और कोटि साधन वेदके करो, परंतु एक हू सेवा नांही मानत हैं। ताको दृष्टांत :–जो सोलह हजार अग्निकुमारिका ऋचा हैं । 'धूम्र–केतु' एसी जो अग्नि ताके पुत्र जो सोलह हजार ऋषि, सो वे रामचंद्रजी के स्वरूप ऊपर मोहित होय दंडकारण्य में कहे जो–हमसों विहार करो । तब उनसों श्रीरामचंद्रजी यह आज्ञा किये जो–व्रज में तुम स्त्री होय प्रकटोगी तब तिहारो मनोरथ पूरन होयगो ।

तासों स्त्री को वेद कर्म में अधिकार नांही है । और श्रीपूर्णपुरुषोत्तम की लीला में मुख्य स्त्रीभाव को अधिकार है । यह भक्तिमारग की वेद सों उलटी रीत है । जेसें रास पंचाध्याई में व्रजभक्त उलटे आभूषन वस्त्र धारन करे, सो लोक में उनसों 'बावरो' कहें, सो स्नेह में सर्वोपरि कहिये । जैसे जा छाप में उलटे अक्षर होंय सो शरीर में सूधे आछे अक्षर होंय, तैसे या जगत में अज्ञानी, प्रभु की लीला में चतुर होय सो प्रपंच भूले, सो ताको प्रेम कहिये । मुख्य भक्ति-रस में वेदविधिको नेम नांही है । तासों एसो जो प्रेम होय सो श्रीठाकुरजी को वस करे, जैसे गोपीजनननें श्रीठाकुरजी वस किये । सो श्रीठाकुरजी कैसें हैं, जो सबही कों मोहि डारें । और सूर है, सो काहूसों जीते जाय नाहीं । और वेही चतुर शिरोमणि हैं, सो काहू के वस होय

नांही, तोऊ प्रेम के वस हैं। सबकूं भूलि जाय। यह पुष्टिमारग की भक्ति और पुष्टिमारग को स्वरूप है। सो या भांति सों सूरदासजी कहे।

सो तब चत्रभुजदास आदि सगरे वैष्णव सूरदासजी कों धन्य धन्य कहे जो– इनके ऊपर बडी भगवत् कृपा है, तब सूरदासजी चुप होय रहे।

तब श्रीगुसांईजी आप सूरदासजी सों पूछो जो –सूरदासजी ! अब या समय चित्त की वृत्ति कहां है ? तब वाही समय सूरदासजीने एक पद गायो। सो पद—

'बलि २ हौं कुंवर राधिका नंदसुवन जासों रति मानी०'.

पाछें दूसरो यह पद गायो–

राग बिहागरो– खंजन नैन रूप रस माते०'.

सो यह पद सूरदासजीने गायो। पाछे सूरदासजी जुगल स्वरूप को ध्यान करिके यह लौकिक शरीर छोडि लीला में जाय प्राप्त भये।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आप तो गोपालपुर पधारे। तब सगरे वैष्णवननें मिलिके सूरदासजी की देह को अग्निसंस्कार कियो। ता पाछे सगरे वैष्णव श्रीगुसांईजी की पास आये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो इन सूरदासजी के चारि नाम हैं। श्रीआचार्यजी आप तो 'सूर' कहते। जैसे सूर होय सो रणमें सो पाछो पांव नांहि देय, जो सबसें आगे चले। तैसेई सूरदासजी की भक्ति दिन दिन चढती दिशा भई। तासों श्रीआचार्यजी आप 'सूर' कहते।

और श्रीगुसांईजी आप 'सूरदास' कहते। सो दासभाव में कबहू घटे नांही। ज्यों ज्यों अनुभव अधिक भयो, त्यों त्यों सूरदासजी कों दीनता अधिक भई। सो सूरदासजी कों कबहूं अहंकार मद नांही भयो। सो 'सूरदासजी' इन को नाम कहे।

और तीसरो इन को नाम 'सूरजदास' है। जो श्रीस्वामिनीजी के ७ हजार पद सूरदासजीने किये हैं, तामें अलौकिक भाव वर्णन किये है। तासों श्रीस्वामिनीजी कहते जो ये 'सूरज' हैं। जैसे सूरज सों जगत में प्रकास होय, सो या प्रकार स्वरूप को प्रकास कियो। सो जब श्रीस्वामिनीजीने 'सूरजदास' नाम धरचो, तब सूरदासजीने वहोत कीर्तननमें 'सूरज' भोग धरे।

और श्रीगोवर्द्धननाथजीने पचीस हजार कीर्तन आपु सूरदासजी कों करि दिये। तामें 'सूरश्याम' नाम धरे। सो या प्रकार सूरदास-जी के चारि नाम प्रकट भये। सो सूरदासजी के कीर्तन में ये चारो 'भोग' कहे हैं।

या प्रकार सूरदासजी मानसी सेवा में सदा मग्न रहते। तातें इनके माथे श्रीआचार्यजीने भगवत् सेवा नांही पधाराये×। सो काहेतें? जो—सूरदासजी कों मानसी सेवा में फल रूप अनुभव है। सो ये सदा लीलारस में मगन रहत हैं।

×चापासेनीमें विराजमान श्रीश्याममनोहरजी ठाकुरजी सूरदासजी के कहे जाते हैं, पर इस वार्ता के उल्लेख से वे किसी अन्य सूरदासजी के होना चाहिये। क्या इस पर कोई प्रकाश डालेगा? —सम्पादक.

सो सूरदासजी की वार्ता में यह सर्वोपरि सिद्धांत है, जो–दैन्यता समान और पदारथ कोई नांही हैं, और परोपकार समान दूसरो धर्म नांही है। जो वा बनिया के लिये सूरदासजीने इतनो श्रम कियो। परि वाको अंगीकार करवाय वाको उद्धार करि दियो।

तासों श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी आपु और सगरे वैष्णव जीवमात्र सूरदासजी के ऊपर बहोत प्रसन्न रहते। सो जो सूरदासजी सों आयके पूछतो, तिनकों प्रीति सों मारग को सिद्धांत बतावते, और उनको मन प्रभुन में लगाय देते। तासों सूरदासजी सरीखे भगवदीय कोटिन में दुर्लभ हैं।

सो वे सूरदासजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के एसे कृपापात्र भगवदीय हते। तातें इनकी वार्ता को पार नाहीं सो कहां तांई लिखिये।

(२) श्रीपरमानन्ददासजी

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक परमानंदस्वामी, कनोजिया ब्राह्मण कनौज में रहते, जिनके पद गाइयत हैं अष्टछापमें, तिनकी वार्ता—

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश—

सो ये परमानंददासजी लीला में अष्टसखान में 'तोक' सखा को प्राकटय हैं। सो तोक सखा को दूसरो स्वरूप निकुंज में सखीरूप है। ता स्वरूप को नाम 'चंद्रभागा' है। सो सुरभीकुंड के पास श्रीगिरिराज के एक द्वार+ है ताके मुखिया हैं।

आधिदैविक मूल स्वरूप

सो ये कनौज में कनोजिया ब्राह्मण के यहां जन्मे। जा दिन परमानंददासजी जन्मे, वा दिन उनके पिता कों एक सेठ ने बहोत द्रव्य दान दियो। तब वा ब्राह्मण ने बहोत प्रसन्न होय के कह्यो जो—श्रीठाकुरजी ने मोकों पुत्र दियो, और धन हू बहोत दियो। तासों यह पुत्र बडो भाग्यवान है, जाके जनमत ही मोकों परम आनंद भयो है। सो मैं या पुत्र को नाम 'परमानंददास' ही धरूंगो।

+ श्यामतमाल वृक्ष के नीचे है।

पाछे जब नाम करन लागे तब वा ब्राह्मण ने कही जो– नाम तो मैं पहले ही या पुत्र को 'परमानंद' बिचारि चुक्यो हों। तब सब ब्राह्मण बोले जो–तुमने बिचारचो है सोइ नाम जन्मपत्रिका में आयो है। तब तो वह ब्राह्मण बहोत ही प्रसन्न भयो। पाछे वा ब्राह्मणने जातकर्म करि दान बहुत ही कियो। एसे करत परमानंददास बडे भये। तब पिताने बडो उत्सब कियो। और इनको यज्ञोपवीत कियो।

सो ये परमानंददास बडे कृपापात्र भगवदीय हैं, लीलामध्यपाती श्री-ठाकुरजी के अत्यंत (अतरंग) सखा हैं। सो जब श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्धननाथजी की आज्ञातें दैवी जीवन के उद्धारार्थ भूतल पर प्रकट भये, तेसेही श्रीठाकुरजी सहित सगरो परिकर प्रकट भयो। सो दैवी जीव अनेक देशांतर में प्रकट भये।

सो गोपालदासजी वल्लभाख्यान में गाये हैं जो–' अनेक जीवने कृपा करवा देशांतर प्रवेश '० सो कनौज में परमानंददासजी बहोत ही प्रसन्न बालपने तें रहते।

पाछें ये बडे योग्य भये, और कवीश्वर हू भये। वे अनेक पद बनायके गावते। सो ' स्वामी ' कहावते और सेवक हू करते। सो परमानंददास के साथ समाज बहोत, अनेक गुनीजन संग रहते।

एक समय कनौज में अकाल परचो सो हाकिम की बुद्धि बिगरी। सो गाममें सों दंड लियो और परमानंददास के पिता को सब द्रव्य लूटि लियो। तब मातापिता बहोत दुःख पाय के परमानंददास

सों कहे जो – हम तेरो ब्याह हू न करन पाये, और सब द्रव्य योंही गयो, तासों अब तू कमायवे को उपाय कर। सो काहेतें ? जो–तू गुनी और तेरे द्रव्य बहोत आवत है। सो तू वा द्रव्य कों इकठोरे करे तो हम तेरो ब्याह करें।

तब परमानंददासने मातापिता सों कह्यो जो– मेरे तो ब्याह करनो नांहीं है, और तुमने इतनो द्रव्य भेलो करिके कहा पुरुषारथ कियो ? सगरो द्रव्य योंही गयो। तासों द्रव्य आये को फल यही है जो– वैष्णव ब्राह्मण कों खवावनो। तासों मैं तो द्रव्य को संग्रह कबहू नांही करूंगो। और तुम खायवे लायक मोसों नित्य अन्न लेहू, और बेठे २ श्रीठाकुरजी को नाम लियो करो। जो अब निर्धन भये हो तासों अब तो धन को मोह छोडो।

तब पिताने परमानंददास सों कह्यो जो– तू तो वेरागो भयो। तेरी संगति वेरागीन की है, तासें तेरी एसी बुद्धि भई। और हमतो गृहस्थी हैं। तासें हमारे धन जोरे बिना कैसे चले ? जो कुटुंब में ज्ञाति में खरचें, तब हमारी बडाई होय।

पाछें पिता धन के लिये पूरव को गयो। तहां जीविका न मिली तब दक्षिन कों गयो, और तहां द्रव्य मिल्यो सो तहां रह्यो। और परमानंददासने अपने घर कीर्तन को समाज कियो। सो गाम गाम में प्रसिद्ध भये। सो परमानंददास गान–विद्या में परम चतुर हते।

वार्ता प्रसंग–१

सो एक समय+ परमानंददास कनौज तें मकरस्नान कों प्रयाग में आये, सो तहां रहे। और कीर्तन को समाज नित्य करैं, सो बहोत लोग इनके कीर्तन सुनिवे कों आवते।

सो पार अडेल में श्रीआचार्यजी बिराजत हते। अडेल तें लोग कछू कार्यार्थ गाममें आवते। सो परमानंददास के कीर्तन सुनिके अडेल में जायके श्रीआचार्यजी सों कहते जो–एक परमानंददास कनौज तें आयो है, सो कीर्तन बहोत आछो गावत है।

तब श्रीआचार्यजी कहे जो–परमानंददास दैवी जीव है, जो इनको गुन होय सो उचित ही है।

सो श्रीआचार्यजी को सेवक एक 'कपूर क्षत्री' जलघरिया हतो, वाकी राग ऊपर बहोत आसक्ति हती। सो यह बात सुनि के वाके मनमें आई जो–मैं श्रीआचार्यजी न जानें एसे परमानंदस्वामी को गान सुनूं। काहेतें जो–श्रीआचार्यजी आपु सुनेंगे तो खीजेंगे, जो–तू सेवा छोडिके क्यों गयो? तासों प्रयाग न जाय सके। परंतु वा जलघरिया 'क्षत्री कपूर' को मन परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनिवे कों बहोत हतो।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश — सो काहेतें? जो इनको पूर्व को संबंध है। जो लीला में यह क्षत्री परमानंददास की सखी है, सो ये चंद्रभागा को सखी 'सोनजुही' याको नाम है।

+ सं. १५७७ में। (देखो श्रीविठ्ठलेश्वर चरितामृत)

सो यह क्षत्री सुदामापुरी में एक क्षत्री के घर प्रकटे,

क्षत्री कपूर का प्रसंग

इन को पिता महाविषयी हतो । सो जहां तहां परस्त्री को संग करतो । और द्रव्य बहोत हतो, सो सब विषय में खोयो । ता पाछें गाम के राजाने सगरो घर लूटि लियो। सो या क्षत्री के मातापिता पुत्र सहित बंदीखाने में दिये । तब याको पिता एक सिपाई का कछू देकें रात्रिकों स्त्रीपुरुष और या पुत्र सहित बंदीखाने में सों भाजे। सो दिन दोय तीन तांई भाजे, सो तहां एक बन में जाय निकसे । तहां नाहरने याके माता-पिता कों मार्यो, और यह पुत्र वरस चौदह को बच्यो । सो वन में बेठ्यो रुदन करे, सो भूख्यो प्यासो चल्यो न जाय ।

सो भागिजोग तें पृथ्वीपरिक्रमा करत श्रीआचार्यजी गहवरवन(सघन वन) में आये । तब या क्षत्री सों पूछी जो– तू कौन है ? जो अकेलो वनमें रुदन करत है । तब इनने दंडवत करिके अपनो सब वृत्तांत कह्यो ।

तब श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास मेघन सों कहे–जो कछू महाप्रसाद होय तो याकों खवायके बेगि जलपान करावो, जो याके प्राण बचें । तब कृष्णदास मेघन के पास प्रसाद हतो, सो या क्षत्री कों न्हवायके खवायके जल पिवायो । तब या क्षत्री को मन ठिकाने आयो । तब या क्षत्रीनें श्री-आचार्यजी सो विनति कीनी जो– महाराज ! मोकों आप पास राखों । जो मैं जनम भरि आप को गुलाम रहूंगो । अब मेरे मातापिता भगवान आपु हो ।

तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख सों कहे जो-तू चिंता मति करे, और तू हमारे संग ही रहियो। तब यह क्षत्री श्रीआचार्यजी के संग ही रह्यो। ता पाछें दूसरे दिन श्रीआचार्यजी आपु वा क्षत्री को नाम ब्रह्मसंबंध करवायो, और जल लायवे की सेवा याकों दिये।

पाछे कछूक दिन में श्रीआचार्यजी आपु अडेल पधारे तब, वह क्षत्री श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन करिके अपने मनमें बहोत प्रसन्न भयो। और कह्यो जो- मैं अनाथ हतो, सो श्रीआचार्यजी आपु मोकों कृपा करिके शरण लेके संग लाये, सो मोकों साक्षात् श्रीयशोदोत्संगलालित श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन भये। तब वा क्षत्री कपूर जलघरिया कों मन श्रीनवनीतप्रियजी के स्वरूप में लगि गयो।

सो तब या क्षत्रीने अपने मन में बिचारी जो-अब मोकों श्रीनवनीतप्रियजी की सेवा कछू मिले, तब मैं सदा सेवा करूं और दरशन करूं। सो श्रीआचार्यजी आप तो साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, सो या क्षत्री के मन की जानि याकों पास बुलाय के कह्यो जो- तेरे मन में सेवा की आई, सो तेरे बडे भाग्य हैं। तासों अब तू श्रीनवनीतप्रियजी के जलघरा की सेवा कियो कर।

तब वा क्षत्रीने प्रसन्न होयकें श्रीआचार्यजी कों दंडवत करिकें बिनती कीनी-जो महाराज! मेरे हू मन में एसें हती, सो आपु तो परम कृपालु हो, तासों मेरो सर्व मनोरथ पूरन कियो।

ता पाछें अति प्रीति सों वह क्षत्री वैष्णव प्रसन्न होयके खारो तथा मीठो जल भरन लाग्यो। सो कछुक दिन में श्री-नवनीतप्रियजी आपु सानुभावता जतावन लागे। परंतु सेवा में अवकाश नांही, जो ये परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनिवे कों जाय।+

सो एक दिन एकादशी को दिन हतो। ता दिन प्रयाग सों एक वैष्णव श्रीआचार्यजी के दर्शन कों अडेल में आयो। तब वा क्षत्री जलघरियाने वा वैष्णव सों परमानंद-स्वामी के समाचार पूछे। तब वा वैष्णवनें कह्यो जो-नित्य तो चारि घडी तथा पहर को समाज होत है रात्रि के समे और आज तो एकादशी है, जो सगरी रात्रि परमानंदस्वामी के यहां जागरन होयगो।

सो ये बचन सुनिके वह क्षत्री वैष्णव अपने मन में बहोत प्रसन्न भयो, और विचार कियो जो-आजु परमानंद-स्वामी के कीर्तन सुनिवे को दाव लग्यो है। तासों जब श्री-आचार्यजी आपु रात्रि कों पोढेंगे तब मैं रात्रि कों प्रयाग में जायके परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनूंगो।

ता पाछें रात्रि भई। तब वह क्षत्री कपूर जलघरिया अपनी सेवा सों पहोंचिके श्रीआचार्यजी के श्रीमुख तें कथा सुनिके रात्रि प्रहर डेढ़ गई, ताही समय अडेल सों प्रयाग कों

+ क्षत्री कपूर जलघरिया का प्रसंग हरिरायजीकृत भावप्रकाश का है, वार्ता का नहीं है।

चल्यो । तब अपने मन में विचार्यो जो-या समय घाट ऊपर तो नाव मिलनी नांही है, तासों पैरिके जाऊं ।

सो वे पेरिवे में बडे निपुन हते । पाछे घाट ऊपर आय परदनी एक छोटीसी पहरिके, धोती उपरना माथे सों बांधे । सो उष्णकाल गरमी के दिन हते सो पैरिके परमानंदस्वामी कीर्तन करत हते तहां आये ।

सो इनको पहलें परमानंदस्वामी सों मिलाप तो कब हू भयो न हतो, तासों दूरि बैठि गये । उहां श्रीआ-चार्यजी के सेवक प्रयाग के वैष्णव बैठे हते सो इन कों जानत हते । सो तहां अपने पास ही इन क्षत्री कपूर को बेठारि लिये । सो वे जहां परमानंदस्वामी बैठे हते तिनके पास जाय बैठे । और और गुनीन ने पद गाये पाछें परमानंद-स्वामीने गायवे को आरंभ कियो । सो परमानंदस्वामी विरह के पद गावते ।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो काहेतें ? जो ऊपर इनको स्वरूप कहि आये हैं जो-ये परमानंददास लीला में सों बिछुरे हैं, सो अबही श्रीआचार्यजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन भये नांहि हैं । सो जब श्रीआचार्यजी श्रीनाथजी को दर्शन करावेंगे तब परमानंददास कों लीला को ज्ञान होयगो । श्रीआचार्यजी के मारग को यह सिद्धांत है जो-भगवदीयन को संग होय तब श्रीठाकुरजी कृपा करें । ताके लिये श्रीआचार्यजी परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा करन के अर्थ अपने कृपापात्र भगवदीय क्षत्री कपूर जलघरिया कों पठाये ।

सो क्षत्री कपूर जलघरिया कैसे हते जो–जिनकों श्रीठाकुरजी एक क्ष
हू नांही छोडत हैं, जो सदा वैष्णव के संग ही रहत हैं ।

तासों सूरदासजी गाये हैं–' जो भक्तविरहकातर करुणाम
डोलत पाछें लागें०' और ऊपर जगन्नाथजोषी की वार्ता* में कहि आ
हैं जो– जब वा रजपूत नें तरवार काढी तब श्रीठाकुरजी आपु पाछे
आयके तरवार सहित हाथ ऊपर ही थांभि दीयो, सो हाथ चलन न दियो

तासों श्रीभागवत में सब ठौर वरणन है जो– भगवदी
वैष्णव के संगही श्रीठाकुरजी डोलत हैं । सो परमानंददास कों अबह
वियोग है । तासों विरह के कीर्तन नित्य गावते।

सो विरह के पद परमानंददासने गाये । सो पद :–

राग बिहागरो । १ 'व्रजके विरही लोग बिचारे०
२ 'गोकुल सब गोपाल उपासी०' ।

राग कान्हरो–३ 'कोन रसिक है इन बातनको'।

राग सोरठ–४ 'माइरी ! को मिलिवे नंदकिशोरै'

इत्यादि बहोत कीर्तन परमानंददास नें गाये सगरी रात्रि
ता पाछें चार घडी रात्रि रही तब कीर्तन राखे। सो जो को
जागरन में आये हते वे सब अपने अपने घर कों गये । पाछे
यह जलघरिया क्षत्री कपूर परमानंदस्वामी सों भगवत्स्मरन
करिके उठिके तहांते चल्यो । सो परमानंदस्वामी के
कीर्तन सुनिके अपने मनमें बहोत प्रसन्न होयके कह्यो जो–
जैसो परमानंदस्वामी को गुन सुनत हते सो तैसेई हैं ।

---

* चौरासी वैष्णवन की वार्ता सं. ३१

सो या प्रकार परमानंदस्वामी की सराहना करत करत वह क्षत्री कपूर श्रीयमुनाजी के तट आइके वाही प्रकारसों पैरिकें पार आय, धोवती उपरना परदनी सहित न्हायके अपरसही में आये। ताही समय श्रीआचार्यजी आपु पोंढिके उठे हते, सो श्रीआचार्यजी के दरशन करि, दंडवत करि अपने जलघरा की सेवा में तत्पर भये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश.

सो या प्रकार ये क्षत्री कपूर परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा करिवे के अर्थ परमानंदस्वामी के पास गये। नांही तो इनको श्रीठाकुरजी आप सानुभाव हते, सो एसे भगवदीय काहेकों काहू के घर जांय? परंतु परमानंदस्वामी के ऊपर कृपा होनहार है, तासों श्रीनवनीतप्रियजी वा क्षत्री कपूर जल-घरिया को मन प्रेरिकें याके संग आपुही पधारि, याही की गोद में बैठिके परमानंदस्वामी के कीर्तन सुने।

सो या प्रकार वह क्षत्री जलघरिया परमानंदस्वामी के कीर्तन सुनि जब प्रयाग सों अडेल कों चले, सो तब परमा-नंदस्वामी सगरी रात्रि के श्रमित हते, सो येहू सोये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो तहां यह संदेह होय जो— परमानंदस्वामी सगरी रात्रि जाग-रण करिकें चारि घडी पिछली रात्रि रही तब सोये। सो सोये तें जागरन को फल जात रहत है। जो परमानंदस्वामी तो सुज्ञान हैं, और चतुर हैं। तासों

वे क्यों सोये ? तहां कहत हैं जो- परमानंदस्वामी लीला संबंधी पुष्टि
जीव हैं। सो एक श्रीठाकुरजीकों चाहत हैं और जागरन के फल क
चाहत नांही हैं।

सो ये परमानंद स्वामी एकादसी के जागरन को मिस मात्र ले
भगवन्नाम अधिक लियो जाय ताके लिये जागरन करत हते। स
इनकों विधि रीति सों कछू जागरन करिवे के फल कों कारन नांह
है। तासों परमानंददास चारि घडी रात्रि पिछली रही तब सोये। स
यातें जो-जागरन को फल जायगो, परंतु भगवन्नाम लियो, सो गुन त
कोई काल में जायगो नांही। तासों भगवन्नाम लेंयवेके अर्थ चारि घ
रात्रि पाछिली कों सोये। सो काहे तें? जो- सोवें नांही तो द्वादसी
दिन आलस शरीर में रहे। फेरि द्वादशी की रात्रि कों डेढ पहर रा
तांई कीरतन करने हैं। तासों जागरन को आश्रय छोडिकें भगवन्ना
को आश्रय करिकें सोये।

सो नींद आवत ही परमानंदस्वामी कों स्वप्न आयो। स
स्वप्नमें देखे तो श्रीआचार्यजी के सेवक क्षत्री जागरन में बे
हैं। और इनकी गोद में श्रीनवनीतप्रियजी बैठे देखे। और श्र
नवनीतप्रियजी स्वप्न में मुसिक्याय के परमानंदस्वामी क
आज्ञा कीये जो-आज मैंने तेरे कीर्तन सुने हैं। सो श्रीआ
चार्यजी के कृपापात्र सेवक कपूर क्षत्री जलघरिया तेरे यह
रात्रि कों जागरन में आये। तासों इनके साथ मैंहू आयो। स
इतने दिनन में आजु तेरे कीर्तन सुन्यो हों।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो यह कहे, तहां यह संदेह होय जो–श्रीठाकुरजी तो सदा सुनत हैं, और सब ठोर व्यापक हैं। सो कहे जो–'आज मैं सुन्यो' ताको कारन कहा? तहां कहत हैं–जो इतने दिन सों अंगीकार में ढील हती, सो अंतर्यामी साक्षिरूप सों सुने। तासों अब अंगीकार करनो है और कृपा करनी है, सो बेगि कृपा करन को लक्षण बताये। तासों कहे जो–आजु मैं तेरे कीर्तन सुन्यो हों सो आज मैं तोपर पूरन कृपा करी। तासों अब बेगि मोकों पावोगे। सो यह आशय जाननो।

तब परमानंदस्वामी की नींद खुली। सो नेत्रन में श्रीनवनीतप्रियजी को स्वरूप कोटिकंदर्पलावण्य, जो स्वप्न में दर्शन भयो। तासों नेत्रन में हृदय में ज्ञान भयो। तब परमानंदस्वामी के मनमें बड़ी चटपटी लगी, और आर्ति भई, जो–अब मैं कब श्रीनवनीतप्रियजी को दरशन करों?

ता पाछें परमानंदस्वामीने अपने मनमें विचार कियो जो–मैं इतने दिन तें जागरन कियो और कीर्तन हू गाये, परंतु मोकों एसा दर्शन कबहू न भयो। जो आज भयो है सो–श्री आचार्यजी को सेवक जलघरिया क्षत्री कपूर आयो, तासों उनकी गोद में भयो। क्षत्री कपूर बिना श्रीनवनीतप्रियजी को दरशन न होयगो, तासों उनके पास चलिये, और उनसों मिलिये तब अपनो कार्य सिद्ध होय।

सो यह बिचार मनमें करिके परमानंदस्वामी तत्काल उठि

के अड़ेलकों चले। इतने में प्रातःकाल भयो। सो श्रीयमुना
के तीर पे आये, सो प्रथम ही नाव पार चली, तामें बैठि
परमानंदस्वामी पार आये।

ता समय श्रीआचार्यजी श्रीयमुनाजी में स्नान करि
प्रातःकाल की संध्या करत हते। सो परमानंदस्वामी कों
आचार्यजी के दरसन अत्यद्भुत अलौकिक साक्षात् श्रीकृष्
के स्वरूप सों भयो। सो जैसो श्रीगुसांईजी श्रीवल्लभाष्ट
में वर्णन किये है जो– ' वस्तुतः कृष्ण एव० '

एसो दर्शन करिके परमानंदस्वामी चकित होय रहे
सो कछु बोल न निकस्यो। तब परमानंदस्वामीनें अपने म
में बिचार कियो जो– श्रीआचार्यजी के सेवक कपूरक्षत्री
गोदमें बैठिके श्रीनवनीतप्रियजी मेरे कीर्तन क्यों न सुनें
जिनके माथे श्रीआचार्यजी आपु एसे धनी बिराजत हैं
तासों मैं हू इनको सेवक होऊंगो। परि मेरो सामर्थ्य नांही है
जो–मैं इनसों सेवक होंन की बिनती करों। तासों वह क्षत्र
फेर मिले तो उनसों सगरी बात कहिके सेवक होंन क
बिनती करों।

यह बिचार परमानंदस्वामी अपने मनमें करत हते, इतने
में श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुखतें परमानंदस्वामी सों आज्ञ
किये जो–परमानंददास! कछु भगवल्लीला गावो। तब पर-
नंददासजीने श्रीआचार्यजी कों साष्टांग दंडवत करिके यह
पद गायो :–

राग सारंग—१ कौन बेर भई चलेरी। गोपालें०'।२ जियकी साध जियही रही री०' । ३ 'वह बात कमलदलनैन की०' ।
४ 'सुधि करत कमलदलनैन की०' ।

या भांति सो परमानंददास ने विरह के पद श्रीआचार्यजी के आगे गाये । सो सुनिके श्रीआचार्यजी श्रीमुख सों कहे जो–परमानंददास ! कछु बाललीला के पद गावो । तब परमानंददास ने हाथ जोरिके श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो–महाराज ! मैं बाललीला में कछु समुझत नांही हों ।

तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुख सों परमानंददास सों आज्ञा किये जो– तुम श्रीयमुनाजी में स्नान करि आवो; जो हम तुमकों समुझाय देयगें ।

पाछें परमानंददासने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो– महाराज ! आपुको सेवक क्षत्री कपूर कहां है ? सो तब श्रीआचार्यजी आप कहे जो– कछु सेवा टहल में होयगो । तब परमानंददास श्रीयमुनाजी में स्नान करनकों चले, और श्री आचार्यजी तो सेवा को समय हतो सो वेगिही उहां ते मंदिर में पधारे । × और श्रीनवनीतप्रियजा कों जगाये ।

+ इस प्रसंग से यह स्पष्ट है कि–आचार्यश्री के समय से प्रातः संध्या के अनन्तर भगत्सेवा करनेकी मर्यादा थी । आजभी बहुतसे गोस्वामि बालक इसी मर्यादानुसार चलते हैं किंतु भगवत्सेवा के समय के पूर्वही आचार्यश्री प्रातःसंध्या कर लेतेथे, जिससे श्रीठाकुरजी के सेवासमय का अतिक्रम एवं परिश्रम न हो। यह बात खास लक्ष्य में रखने की है।

इतने ही में वह क्षत्री जलघरिया श्रीयमुनाजल भरिवे कों गागर लेके श्रीयमुनाजीके पार आयो। सो उनकों देखि के परमानंदस्वामी परम आनंद सों दोऊ हाथ जोरिके भगवत् स्मरन करिके कह्यो, जो– रात्रि कों तुम कृपा करकें जागरन में पधारे हते, सो नवनीतप्रियजीने तिहारी गोदि में बैठिके मेरे कीर्तन सुने। सो मैं सोयो तब श्रीनवनीतप्रियजीने दरशन दीयो, और कृपा करिके आज्ञा किये जो–आज मैं तेरे कीर्तन सुन्यो हूं। तासों तुमने मेरे ऊपर बडी कृपा करी। सो अब तिहारे दर्शन कों आयो हों। तासों अब आप जा प्रकार श्रीआचार्यजी आपु मोकों शरण लेंय और श्रीठाकुरजी कृपा करिके मोकों नित्य दरशन देंय, सो प्रकार कृपा करिके बतावो। और मोकों श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके श्री कृष्णजी के स्वरूपको दरशन दियो है, सो यह तिहारे सत्संग को प्रताप हैं।

तब यह बात सुनिके क्षत्री कपूरनें उनसों कह्यो जो– तिहारी ऊपर श्रीआचार्यजी की कृपा भई है। तासों तुमको एसो दरसन भयो हैं। और तुमसों आपने आज्ञा करी है, शरण लेवे के लिये, सो जासों तुम वेगिही न्हायके अपरस ही में श्रीआचार्यजी के पास चलो। सो तुमकों प्रभु कृपा करिके शरण लेंयगे, तब तिहारो सब मनोरथ सिद्धि होयगो। और रात्रि कों मैं जागरन में तिहारे पास गयो, सो बात तुम

श्रीआचार्यजीके आगें मति करियो। नांहि तो आपु मेरे ऊपर खीजेंगे जो- तू सेवा छोडिके क्यों गयो हता?

यह वचन परमानंदस्वामी सों कहिके वा क्षत्री वैष्णव ने तो श्रीयमुनाजलकी गागर भरी, और परमानंददास स्नान करिके अपरसही में श्रीआचार्यजी के पास उन जलघरिया क्षत्री के पाछे पाछे आये। ता समय श्रीआचार्यजी श्रीनवनीतप्रियजी को शृंगार करिके श्रीगोपीबल्लभ भोग धरिकें बिराजे हते।

ता समय परमानंददास न्हाय के आये। तब श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सों कहे जो- परमानंददास! बेठो। तब परमानंददास श्रीआचार्यजी कों साष्टांग दंडवत करिके बेठे। पाछें श्रीआचार्यजी आपु भीतर पधारि भोग सरायके परमानंददास कों बुलायके श्रीनवनीतप्रियजी की सन्निधान कृपा करिके नाम सुनायो, ता पाछे ब्रह्मसंबंध करवायो। पाछें श्रीभागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाये।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो ताको हेतु यह है जो- प्रथम परमानंददास सों श्रीआचार्यजीने कह्यो जो-कछु भगवद् वर्णन करो। तब परमानंददासने विरह के पद गाये। पाछें श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास कों कहे जो- बाललीला गावो। सो ताको हेतु यह है जो- बाललीला श्रीनंदरायजी के घर की लीला है, सो संयोग रस है। सो एकवार संयोग होय ता पाछे विरह फलरूप होय। सो काहेतें

जो– रासपंचाध्यायी में व्रजभक्तन कों बुलायके लीला किये । ता पाछें अंतरध्यान में विरह फलरूप भयो। तासों भगवान कहे–'यथाऽधनो लब्ध धने विनष्टे तच्चिन्तया०'

जैसे धन पायके धन जाय, तब धन को चिंतन बहोत होय। सो पहले श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–बाललीला गावो। क्यो ? जो–अनुभव करिके विरह को गान वेगि फले। परि परमानंददासने विनती कीनी जो– महाराज ! मैं कछू समुझत नांही हों।

ताको आशय यह है जो– संयोग रस अब ही है नांही। जो मूल लीला में हतो सो विस्मृत भयो है। परि लीला में तें बिछुरे हैं, और दैवी जीव हैं, तासों विरह जनम ही तें गाये। सो अब नाम समर्पन करायके अज्ञान प्रतिबंध दूरि कियो, ता पाछें श्रीभागवत दसस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाये। सो तब साक्षात् श्रीनवनीतप्रियजी के स्वरूप को अनुभव भयो और दशम की सगरी लीला स्फुरी।

परमानंददास कों दसम की अनुक्रमणिका सुनाये ताको कारण यह है जो– सर्वोत्तम ग्रन्थ श्रीगुसांईजी प्रकट किये हैं। तामें श्रीआचार्यजी को नाम कहे हैं जो– 'श्रीभागवत पीयूषसमुद्र–मथन क्षम:'। सो श्रीभागवतको श्रीगुसांईजी अमृत को समुद्र करिके वर्णन किये, सो श्री-आचार्यजी आपु अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवतरूपी समुद्र परमानंददास के हृदय में स्थापन कियो। सो तैसे ही प्रथम सूरदास के हृदय में अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवतरूपी समुद्र स्थापन कियो हतो। तासों वैष्णव तो अनेक श्रीआचार्यजी के कृपापात्र हैं, परंतु सूरदास और

परमानंददास ये दोऊ 'सागर' भये। इन दोउन के कीर्तन की संख्या नांही, सो दोऊ सागर* कहवाये।

सो श्रीआचार्यजीने आज्ञा करी जो– बाललीला गावो। अब संयोग रस को अनुभव भयो।

तब परमानंददासजीने श्रीआचार्यजी के आगे बाल-लीला के पद गाये। सो पद–

राग आसावरी–१ 'माइरी! कमलनैन श्यामसुंदर झूलत हैं पलना०'

राग बिलावल–२ 'जसोदा तेरे भाग की कही न जाइ०।' ३ मणिमय आंगन नंद खेलत दोऊ भैया०'

राग कान्हरो–४ 'प्यारे को जस गावत गोपांगना०'

सो एसे पद परमानंददासने बाललीला के बहोत ही गाये। सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत ही प्रसन्न भये। ता पाछें परमानंददास अडेल में श्रीआचार्यजी के पास रहे। तब श्रीआचार्यजी परमानंददास सों कहें जो–अब समय समय के पद नित्य श्रीनवनीतप्रियजी कों सुनायो करो, सो यह सेवा तुम कों दीनी।

तब परमानंददास नित्य नये पद करिके समय समय के श्रीनवनीतप्रियजी कों सुनावते। और जब श्रीनवनी-

---

* परमानंदसागर की हस्तलिखित ३ प्रतियां कांकरोली विद्याविभाग में विद्यमान हैं।

तप्रियजी कों अनोसर होय, तब परमानंददास श्रीआचार्यजी के आगे अनेक व्रजलीला के कीर्तन करते । और श्रीआचार्यजी आपु श्रीसुबोधिनीजी की कथा कहते । सो जा समय (जा) प्रसंग की कथा श्रीआचार्यजी के श्रीमुखते सुनते ताही प्रसंग के कीर्तन कथा भये पीछे परमानंददास श्रीआचार्यजी कों सुनावते×

वार्ता प्रसंग–२

एक दिन परमानंददासनें श्रीठाकुरजी के चरणारविंद को माहात्म्य कथा में श्रीआचार्यजी के श्रीमुखतें सुन्यो । सो ता समय परमानंददासने श्रीठाकुरजी के चरणारविंद को माहात्म्य सहित कीर्तन श्रीआचार्यजी के आगे गायो । सो पद–

राग कान्हरो–'चरणकमल वंदों जगदीस०'

ता पाछे श्रीआचार्यजी के आगे प्रार्थना को पद गायो। सो पद–

राग कान्हरो–'यह मागों गोपीजन वल्लभ०'

सो यह पद परमानंददासने गायो सो सुनिके श्रीआचार्यजी महाप्रभु आपु जाने, जो या पदमें व्रज के दरशन की प्रार्थना

× इस से ज्यादा कीर्तन की प्रामाणिकता क्या हो सकती है ? इससे दो बात स्पष्ट होती हैं। एक यह जो–कीर्तन में कल्पितता का आरोप नहीं आ सकता है। और दूसरा उस समय जो भी कुछ सांप्रदायिक भाषारूप साहित्य प्रकट होता था, आचार्य के निवेदित होकर ही उसका प्रचार होता था ।

कीनी है। तासों परमानंददास कों व्रज के दरशन अवश्य करवावने। तब *श्रीआचार्यजी आपु व्रजमें पधारिवे को उद्यम किये।

सो तब दामोदरदास हरसानी, कृष्णदास मेघन, परमानंददास, और यादवेन्द्रदास आदि सब वैष्णवनकों संग लेके श्रीआचार्यजी आपु अडेलतें व्रज कों पधारे।

सो व्रज कों आवत मारग में परमानंददास को गाम कनौज आयो। तब परमानंददासने श्रीआचार्यजी सों विनती करि अपने घर पधराये।

पाछे परमानंददास अपने भाग्य मानिके परम प्रीति सों अपने घर पधरायकें सब सामग्री बजारतें लाये। और जो वैष्णव हते सो तिनसों बहोत बिनती दैन्यता करिके सबन कों सीधो सामान देके रसोई करवाई। पाछे श्रीआचार्यजी आपु सखडी अनसखडी पाक सामग्री सिद्ध करिके श्रीठाकुरजी कों भोग धरि भोग सराय आपु भोजन किये। ता पाछे परमानंददास आदि सब वैष्णव कों महाप्रसाद देकें आपु गादी तकीयान के ऊपर बिराजे। पाछे परमानंददास महाप्रसाद ले आचार्यजी के पास आय दंडवत करिके बैठे। तब आपु आज्ञा किये जो परमानंददास! कछू भगवद्‌जस गावो।

तब परमानंददास अपने मनमें बिचारे जो—या समय श्री आचार्यजी को मन तो व्रजलीला में श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास

---

* सं. १८८२ के लगभग

है। तासों विरह को पद गाऊं, जामें एक एक क्षण कल्प समान जाय। सो पद–

राग सोरठ–'हरि तेरी लीला की सुधि आवै०'।

यह पद परमानंददासने गायो। सो यामें यह कहें जो– 'हरि तेरी लीला की सुधि आवे०'। सो ताही समय श्रीआचार्यजी आपु लीला में मग्न होय गये।

सो तहां श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी को स्वरूप श्रीवल्लभाष्टक में श्रीहरिरायजीकृत वरणन कियो है जो–'श्रीमद् वृंदावनेंदु प्रकटित भावप्रकाश रसिकानन्द सन्दोहरूप–स्फूर्जद्रासादिलीलामृत० एसे रस सों भरे हैं। और सर्वोत्तम में श्रीगुसांईजी आचार्यजी को नाम कहे–'रासलीलैकतात्पर्याय नमः'। सो श्रीआचार्यजी को कार्य कहियत हैं, जो जो ग्रन्थ किये सो तामें रासलीला ही तात्पर्य है। और कछु काहू बात में आपु को तात्पर्य नांही है। सो तासों रासलीला में मगन होय गये।

सो ऊपर सरीर को–देह को–अनुसंधान हू रह्यो नांही। सो तीन दिनलों श्रीआचार्यजी कों मूर्छा रही। सो नेत्र मूदि के गादी तकियान पें बिराजे हते, और दामोदरदास हरसानी आदि वैष्णव (जो) श्रीमहाप्रभुजी के स्वरूप कों जानत हतें सो जाने। सो कोई वैष्णव बोले नांही। बैठें बैठे चुप होय के श्रीआचार्यजी को दरशन कियो करें।

सो काहेतें ? जो जैसें श्रीआचार्यजी आप पूरन पुरुषोत्तम हैं सो इनको शरीरधर्म बाधक नांही । जो मनुष्य देह धारण किये तासों मनुष्य की क्रिया जगत में दिखावत हैं, परि इनकों देह को धर्म बाधक नांही है । तासों सब सेवक तीन दिनलों बैठे रहे ।

सो पाछें चौथे दिन सावधान होयकें श्रीआचार्यजीने नेत्र खोले, तब सब वैष्णव प्रसन्न भये ।

सो तहां यह पूर्व पक्ष होय जो—रासादिक लीला में मगन तीन दिन तांई क्यों रहे ? सो तहां कहत हैं जो—रासादिक लीला में तीन ही ठोर मुख्य हैं । जो श्री गिरिराज, श्रीवृंदावन और श्रीयमुनाजी । १ श्रीगिरिराज स्वरूप होय सगरी लीला की सामग्री सिद्धि करत हैं । २ श्रीवृंदावनकी लीला रसात्मक कुंजविहार में । ३ और श्रीयमुनाजी सब रास को मूल.

या प्रकार जल स्थल की लीला हैं । सो एक दिन श्रीगिरिराज संबंधी लीला रस को अनुभव किये, जो कंदरा में नाना प्रकार के विलास, चत्रभुजदासजी गाये हैं—'श्रीगोवर्द्धनगिरि सघन कंदरा० ' आदि । दूसरे दिन वृंदावन लीला, और तीसरे दिन श्रीयमुनाजी की पुलिन (में) रास जलविहारादि । या प्रकार तीन दिनलों तीनों रस को अनुभव किये । ता पाछे भूमि पर भक्तिमारग प्रकट करिकें अनेक जीवन कों सरन लेकें लीलारस को अनुभव करवावनो है, सो चौथे दिन श्रीआचार्यजी आपु नेत्र खोलि के सावधान भये ।

तब परमानंददासजी अपने मनमें डरपे, जो–एसो पद फेरि कबहूं नांही गाऊंगो।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो परमानंददासजी यासों डरपे जो–श्रीआचार्यजी आपु रस को अनुभव करिके कदाचित् लीलारस में मगन होइ जांय। सो भूमि पर पधारिवे को मन न करें तो यह दैवीजीवन को उद्धार कौन भांति सों होयगो? तासों परमानंददासने अपुने मन में बिचार कियो जो–अब मैं फेरि विरह को पद आचार्यजी आगे नांही गाऊंगो।

सो काहेते? जो–श्रीआचार्यजी आपु विरहात्मक स्वरूप हैं सर्वोत्तम में श्रीगुसांईजी आपु श्रीआचार्यजी को नाम कहे हैं 'जो विरहानुभवैकार्थ सर्वत्यागोपदेशकः' सो विरहरस के अनुभव के अर्थ सर्व लौकिक में त्याग किये, सो उपदेश करत हैं। यामें विरह को स्वरूप जताये। विरह दशा में लौकिक वैदिक की कछू सुधि न रहे, सो तब विरह भयो जानिये।

ता पाछें परमानंददासने सूधे पद गाये। सो पद–

राग रामकली–'माईरी! हौं आनंद मंगल गाऊं०'।

ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु भोजन करिके पोढे, तब सब वैष्णव महाप्रसाद लिये। ता पाछें परमानंददास महाप्रसाद लेके श्रीआचार्यजी आगे यह पद गायो–

राग गोरी–१ 'विमल जस वृंदावन के चंदको०'।

ता पाछे परमानंददासने यह पद गायो। सो पद–

राग सारंग–'चल सखी! नंदगाम जाय बसिये०'।

यह पद सुनिके श्रीआचार्यजी आपु कहे जो– अब व्रजकों चलिये।

पाछें परमानंददासने जो सेवक किये हते, तिन सबन कों श्रीआचार्यजी के पास लाय बिनती कीनी जो– महाराज! इन जीवन कों अंगीकार करिये। तब श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सों कहे जो–इनकों तुम नाम सुनाय के सेवक किये हैं, तातें अब हम पास तुम इनकों सेवक क्यों करावत हो?

तब परमानंददास कहे जो– महाराज! यह तो पहली दशा में स्वामीपनो हतो, तासों सेवक किये हते। और अब तो मैं आपु को दास हों। 'स्वामीपद' तो जो स्वामी हैं तिनही को सोहत है। दास होय स्वामीपद चाहे सो मूरख है। तासों मैं अज्ञान दशा में सेवक किये, सो अब आप इनकों शरन लेके उद्धार करिये।

तब सबन कों श्रीआचार्यजीने नाम सुनाय सेवक किये। ता पाछे सब वैष्णवन को संग ले कनौज सो व्रज में पधारे। कछूक दिन में श्रीगोकुल में पधारे। सो गोविंदघाट ऊपर स्नान करिके छोंकर के नीचे श्रीआचार्यजी आपु अपनी बेठक में आय बिराजे। सो एक भीतर बेठक श्रीद्वारकानाथजी के मंदिर के पास है, तहां रात्रि कों श्रीआचार्यजी के विश्राम करिवे की ठोर है। सो आपु जब श्रीगोकुल पधारते, तब आपु उहां

उतरते। सो यह भीतर की बेठक है। सो श्रीआचार्यजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों पालने झुलाय दधिकांदो जन्माष्टमी को उत्सव किये हैं। सो ऊपर गज्जनधावन की वार्ता में वरणन करि आये हैं।

सो श्रीआचार्यजी आपु स्नान करि छोंकर के नीचे अपनी बेठक में बिराजे हते। तब सब वैष्णव परमानंददास सहित स्नान करि प्रभुन के (श्रीआचार्यजी के) पास बैठे हते। पाछें श्रीआचार्यजीने श्रीयमुनाष्टक को पाठ परमानंददासको सिखाये। तब परमानंददास के हृदय में यमुनाजी को स्वरूप स्फुरयो। सो श्रीयमुनाजी को जस वर्णन कियो। सो पद–

राग रामकली–१ 'श्रीयमुनाजी यह प्रसाद हौं पाओं०'। २ 'श्रीयमुनाजी दीन जान मोहि दीजे०'। ३ 'कालिंदी कलि कल्मष–हरनी०'।

एसे पद परमानंददासनें श्रीआचार्यजी के आगे श्री यमुनाजी के तटपे गाये। तब श्रीआचार्यजी आपु प्रसन्न होय के परमानंददास कों श्रीगोकुल की बाललीला के दरशन कर-वाये। सो बाललीला विशिष्ट परमानंददास कों एसे दर्शन भये जो–व्रजभक्त श्रीयमुनाजल भरत हैं, और श्रीठाकुरजी आपु व्रजभक्तन सों नाना प्रकारकें ख्याल लीला करि सुख देत हैं। सो परमानंददास लीला के दरशन करि एसे ही पद श्रीआचार्यजी के आगे गाये। सो पद—

राग बिलावल-१ 'श्रीयमुनाजल घट भरि ले चली श्री चंद्रावलि नारी०'।

राग सारंग-२ 'लाल नेक टेको मेरी बहियां०'।

ता पाछे परमानंददासने श्रीगोकुल की बाललीला के पद बहोत किये। सो जामें श्रीगोकुल को स्वरूप जान्यो परे, सो पद-

राग कान्हरो-१ 'गावत गोपी मधु मृदु बानी०' २ 'रानी जसुमति गृह आवत गोपीजन०'।

राग हमीर-३ 'गिरधर सब ही अंग को बांको०'

या भांति परमानंददासने बहोत कीर्तन किये। सो श्री गोकुल के दरशन करिके परमानंददास कों श्रीगोकुल पे बहोत आसक्ति भई। तब श्रीआचार्यजी के आगे एसे प्रार्थना के पद गाये जो-मोकों श्रीगोकुल में आप के चरणारविंद के पास राखो, जासों नित्य श्रीठाकुरजी के दरशन करों, और सगरी लीला को अनुभव होय। सो पद-

राग सारंग-१ 'यह मागौं जसोदानंदन०'।

राग कान्हरो-२ 'यह मागों संकर्षन वीर०'।

सो एसे कीर्तन परमानंददासने प्रार्थना के गाये सो सुनि के श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये।

वार्ता प्रसंग-३

पाछे श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास सहित सब वैष्णव समाज लेके श्रीगोकुल तें गोवर्द्धन पधारे। सो उत्थापन के समय श्रीआचार्यजी आपु गिरिराज पधारे। तहां स्नान करि

श्रीआचार्यजी श्रीगिरिराज ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर पधारे। तब परमानंददास न्हायके श्रीगिरिराज कों साष्टांग दंडवत करिके पर्वत के ऊपर मंदिर में आय, उत्थापन के दर्शन किये। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करत ही परमानंददास आसक्त होय रहे। तब श्रीआचार्यजी आपु श्रीमुखतें परमानंददास सों कहे जो–परमानंददास! कछू भगवल्लीला के कीर्तन श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सुनावो।

तब परमानंददास अपने मन में विचार किये जो–मैं कहा गाऊं? क्यों जो रसना तो एक है, और श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्वरूप तो अपार है, और इनकी लीला हू अपार है। जो वस्तु स्मरन करों सो ताही में बुद्धि विक्षिप्त होय जात है। परंतु श्रीआचार्यजी की आज्ञा है, तासों कछू गावनो तो सही। सो एसो पद गाऊं जामें प्रथम तो अवतार–लीला, पाछें कुंज–लीला, पाछें चरणाविंद की वंदना, पाछें स्वरूप को वर्णन, ता पाछे माहात्म्य सहित श्रीठाकुरजी की लीला होय। सो एसो पद गायो। सो पद–

राग बिलाबल–१ 'मोहन नंदरायकुमार०'।

सो यह प्रार्थनाको पद गायके पाछे आसक्ति को पद गायो।

राग आसावरी–२ 'माई मेरो माधो सों मन मान्यो०'।

राग गोरी–३ 'मैं अपुनो मन हरि सों जोरयो०'।

राग कान्हरो–४ 'तिहारी बात मोही भावत लाल०'।

ता पाछे श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन-आरती किये। ता समय परमानंददासने यह पद गायो। सो पद–

राग केदारो-१ 'पोढे रंग महल गोविंद०'

सो एसे पद परमानंददासजीने बहोत गाये, सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये। ता पाछे श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों पोढायके अनोसर करि पर्वत नीचे पधारे। तब श्रीआचार्यजीने रामदास भीतरिया सों कह्यो जो—परमानंददास कों प्रसादी दूध पठाय दीजो। तब रामदासने वह प्रसादी दूध पठायो। परमानंददास प्रसादी-दूध लेंन लागे, सो तातो लाग्यो। तब सीरो करिके लियो।

पाछे परमानंददास श्रीआचार्यजी पास आय दंडवत करिके बैठे। तब श्रीआचार्यजी आप परमानंददास सों पूछे जो—परमानंददास! महाप्रसादी दूध लियो सो कैसो हतो? तब परमानंददासनें श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो—महाराज! दूध तो तातो हो। तब श्रीआचार्यजीने सब भीतरियान सों बुलाय के पूछ्यो, जो- दूध तातो क्यों भोग धरत हो? सो आछो सुहातो होय तब भोग धरनो। तब सगरे भीतरियानने कही जो- महाराज! अब तें सुहातो सीरो करिके भोग धरेंगे।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो परमानंददास कों श्रीआचार्यजी आपु प्रसादी दूध यासों दिवायो, जो—श्रीठाकुरजी कों दूध बहोत प्रिय है। तासों सेवक कों दूध निकुंज—लीला संबंधी रस के दान करन कों, और सामग्री बिगरी सुधरी वैष्णव द्वारा श्रीठाकुरजी कहत हैं। जो—सामग्री वैष्णव सराहें तब जानिये जो—श्रीठाकुरजी भली भांति सों अनुभव किये। सो या भावतें दूध पिये।

ता पाछें परमानंददास कों दूध अधरामृत पिये तें सगरी रात्रि लीला-रस को अनुभव भयो। तब रात्रि की लीला में मगन होय के ये पद गाये। सो पद-

राग कान्हरो-१ 'आनंदसिंधु बढ्यो हरि तन में०'। २ 'पिय मुख देखत ही रहिये०'।

राग गोरी-३ 'कौन रस गोपिन लीनो घूंट०'। ४ 'यातें माई! भवन छांडि बन जइये०'।

राग हमीर-'५ अमृत निचोइ कियो इकठोर०'।

राग बिहागरो-६ 'यह तन नवलकुंवर पर वारों०'।

सो या भांति परमानंददासने सगरी रात्रि लीला को अनुभव कियो, सो बहुत कीर्तन गाये। ता पाछे प्रातःकाल भयो, तब श्रीआचार्यजी आपु स्नान करिके पर्वत ऊपर पधारे, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी कों जगाये। तब परमानंददास ने यह पद गायो। सो पद-

राग रामकली-१ 'जागो गोपाललाल! देखों मुख तेरो०'। २ 'लाल को मुख देखन कों आई०'। ३ 'ग्वालिन पिछवारे व्है बोल सुनायो०'।

सो या प्रकार के पद परमानंददासने बहोत गाये। ता पाछे श्रीआचार्यजीने परमानंददास कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के कीर्तन की सेवा दीनी। सो नित्य नये पद करिके परमानंददास श्रीनाथजी कों सुनावते।

वार्ता प्रसंग–४

एक दिन* एक राजा अपनी रानी को संग लेके व्रज में यात्रा करिवे आयो। वह राजा श्रीआचार्यजी को सेवक हतो। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करिके डेरान में आयके वा राजानें अपनी रानी सों कह्यो जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी को दर्शन बहुत सुंदर है, सो तू श्रीगिरिराज पर जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करिआव।

तब रानीनें राजा सों कह्यो जो–जैसे हमारी रीत है सो परदान में दर्शन होय तो मैं करूं। तब राजा नें रानी सों कही जो–ये व्रज के ठाकुर हैं सो श्रीठाकुरजी के दर्शन में परदा को कहा काम है? सो ये ठाकुर व्रज के हैं सो काहूको परदा राखत नांही।

या प्रकार राजाने रानी कों बहोत समझाई, पर रानीने राजा को कह्यो मान्यो नांही।

तब राजाने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी जो–महाराज! मैनें रानी कों बहोत समुझायो, परंतु वह मानत नांही, जो वह परदा में दर्शन कियो चाहत है।

तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–वाको परदा में ही ले आव, जो सबतें पहले दर्शन करवाय देंगे। तब रानी परदान में आई और श्रीनाथजी के दर्शन करन लागी। तब श्रीनाथजी (भक्तोद्धारक स्वरूप सों) सिंहासन सों उठिके सिंहपोरि के

* सं. १५८५ के लगभग।

किंवाड खोलि दिये, सो भीड वा रानी के ऊपर परी। सो वाके देह के सब वस्त्र निकसि गये। तब रानी बहुत लज्जित भई। जब राजा सों रानी ने डेरान में आयके सब समाचार कहे। तब राजाने रानी सों कही जो–मैं तोसों पहले ही कह्यो हतो, जो–ये श्रीनाथजी व्रज के ठाकुर हैं, सो इनने काहूको परदा राख्यो नांही है।

ता समय परमानंददास यह पद गावत हते, सो वाकी एक तुक कही हती। सो पद :—'कोन यह खेलिवे की बान, मदनगोपाललाल काहूकी राखत नांहिन कान०।'

सो यह सुनिके श्रीआचार्यजी परमानंददास कों बरजे जो– एसे न कहिये, यासों एसे कहो जो– 'भली यह खेलिवे की बान'।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो काहेतें? जो अब ही परमानंददास कों दास पदवी दिये हैं। सो दासभाव सों रहे, और बोले, तो प्रभु आगे कृपा करें। जब परम भाव दृढ होय, तब बराबरी सों वार्ता होय। **तासों बिना अधिकार अधिक भाव नांही है। जो करे तो नीचे गिरे।** सो जब श्रीठाकुरजी सरल भाव को दान करें, तब ही बने।

दूसरो आशय–श्रीआचार्यजी आपु अपनो स्नेह श्रीगोवर्द्धननाथजी में राखे सो सर्वोपरि दिखाये, जो–स्नेही सों एसे न बोले। जो कार्य सनेही प्रीति सों न करे सो तासों हू कहिये जो– भलो कार्य किये। एसी सनेह की रीति है।

तासों श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास को बरजे–'कौन यह खेलिवे की बान०' या भांति सों कबहू न कहिये। कहिवे, बरजिवे लायक तो व्रजभक्त हैं, सो तासों चाहैं तैसें बोलें। तासों तुम एसे कहो जो–'भली यह खेलिवे की बान०'

तब परमानंददासने एसै ही पद गाये। सो पद—

राग सारंग– 'भली यह खेलिवे की बान०'।

सो यह पद सुनिकें श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये।

या प्रकार सहस्त्रावधि कीर्तन परमानंददासने किये। तासों परमानंददास के पदन में बाललीला भाव, (और) रहस्य हू झलकत है। सो जा लीला को अनुभव परमानंददास को भयो, ताही लीला के पद परमानंददास गाये। परंतु श्रीआचार्यजी आपु परमानंददास कों बाललीला रस कों दान हृदय में कियो है, तासों बाललीला गूढ पदन में हू झलकत है।

वार्ता प्रसंग–९

और एक दिन सगरे भगवदीय सूरदासजी, कुंभनदासजी तथा रामदास आदि सब बैष्णव मिलिके जहां परमानंददास रहत हते तहां इनके घर आये। सो सब भगवदीय कों अपने घर आये देखिके परमानंददास अपने मन में बहोत प्रसन्न भये जो–आज मेरो बडो भाग्य है। सो सब भगवदीय मेरे ऊपर कृपा करिके पधारे, ये भगवदीय कैसे हैं जो–साक्षात श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्वरूप ही हैं। तासों आज मो ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजीनें बडी कृपा करी है।

सो काहेतें ? जो—अनेकरूप होयके श्रीठाकुरजी मेरे घर पधारे हैं।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश सो भगवदीय के हृदय में श्रीठाकुरजी आपु बिराजत हैं, तासों मेरे बडे भाग्य हैं। अब मैं कृतकृत्य होय गयो, जो सब भगवदीय कृपा किये हैं। सो प्रथम तो इन भगवदीयन की न्योछावरि करी चाहिये। सो एसी कहा वस्तु है ? जासों सब भगवदीयन की न्योछावर होंय।

पाछे परमानंददासने भगवदीय वैष्णवन सों मिलिके ऊंचे आसन बेठारिके यह पद गायो। सो पद—

राग बिहागरो— १ 'आये मेरे नंदनंदन के प्यारे०'।

ता पाछें दूसरो पद गायो। सो पद—

राग बिहागरो— २ 'हरिजन-संग छिनक जो होई'।

सो एसे पद परमानंददासने गाये। सो सुनिके सब भगवदीय परमानंददास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। तब परमानंददासने सब बैष्णवन सों बिनती कीनी, जो—आजु कृपा करिके मेरे घर पधारे सो कछू आज्ञा करिये। तब रामदासजीने पूछी, जो—परमानंददास ! व्रज में सगरो प्रेम व्रजभक्तन को हैं, सो श्रीनंदरायजी, गोपीजन, ग्वाल, सखान को। तामें सब तें श्रेष्ठ प्रेम किन को है ?

सो काहेते ? जो—तिहारी बाललीला में लगन बहुत है। ओर

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश तुम कृपापात्र भगवदीय हो, तासों यह संदेह है सो दूरि करो। सो या प्रकार रामदासजीने परमानंददास सों यों पूछी जो—श्री आचार्यजीके अभिप्रायमें

तो गोपीजनको प्रेम बहोत है । और परमानंददासने नंदालय की लीला और बाललीला बहोत वर्णन किये हैं, तासों श्रीआचार्यजी के हृदय के अभिप्राय की खबरि परी के नांही? तासों परमानंददास की परीक्षा लेनी।

ता समय परमानंददासने यह पद गायो। सो पद—

राग नायकी–१ 'गोपी प्रेमकी ध्वजा०'।

राग कान्हरो–२ 'व्रजजन सम धर पर कोउ नांही०'।

सो यह पद परमानंददासने गाये। तब सगरे वैष्णव कहे जो–परमानंददास! तुम धन्य हो।

या प्रकार सगरे वैष्णव प्रसन्न होयके परमानंददास की सराहना करत बिदा होय अपने घर आये। ता पाछे परमानंददासने बहोत दिन तांई श्रीगोवर्द्धननाथजी के कीर्तन की सेवा कीनी।

वार्ता प्रसंग–६

ता पाछे एक दिन परमानंददास श्रीगुसांईजी के और श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शनकों गोपालपुर तें श्रीगोकुल आये, सो दर्शन करिके रात्रि तहां रहे।

पाछे प्रातःकाल श्रीगुसांईजी स्नान करिके श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में पधारे तब परमानंददासकों बुलाये। तब परमानंददास आगे आय दंडवत किये। सो तब श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास सों कहे जो–श्रीठाकुरजी कों सगरी लीला व्रज की बहोत प्रिय है। सो नित्यलीला व्रज की श्रीठाकुरजी कों सुनावे, सो तो कोई काल में हू पार पावे नांही। सो काहेतें?

जो–एक लीला को पार पैये, तो सगरी लीला कोन गावे। परंतु मै एक कीर्तन करि देत हों, तामें सगरी व्रज की लीला को अनुभव है। सो तुम या समय नित्य गाईयो।

तब परमानंददास कहे जो–महाराज! वह पद कृपा करि के बताइये। सो श्रीगुसांईजी तो मारग के चलायवे वारे हैं सो भाषा के पद करे नांही*। तासों संस्कृत में कीर्तन गायो। सो पद—

१ 'मंगल मंगलं व्रजभुवि मंगलम्'०।

सो यह पद श्रीगुसांईजी आपु गायके परमानंददास कों गवाये। सो परमानंददास 'मंगल मंगलं०' गाये। तब मंगलरूप परमानंददास ने और हू पद गाये। सो पद—

राग भैरव—१ 'मंगल माधो नाम उच्चार'०।

सो यह पद परमानंददासने गायो, ता पाछें श्रीगुसांईजी आपु मंगल भोग सरायके मंगला आरती किये। ता समय परमानंददासने यह पद गायो। सो पद—

राग भैरव—'मंगल आरती करि मन मोर०'

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी कृत 'मंगल मंगलं०' के अनुसार परमानंददासने बहोत कीर्तन किये, और श्रीगुसांईजी कृत मंगल मंगलं० पद नित्य गावते।

---

* इस विषयमें देखो 'पुष्टिमार्गीय भक्तकवि' नामक ग्रन्थ। विद्याविभाग कांकरोली।

यामें सगरी व्रजलीला है, सो ठाकुरजीको नित्य सुनावत हैं, । और

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

मंगल मंगलं० के पाठतें व्रजलीला को सब पाठ होय । सो तहां मंगला को पद परमानंददासने कियो सो तामें कहे—'मंगल तन वसुदेवकुमार०' । सो तहां यह संदेह होय जो—परमानंददास तो नंदनंदनके उपासक हैं । सो वसुदेवकुमार व्रजलीलामें कहे, ताको कारन कहा ?

तहां कहत है, जो—वेणुगीत और युगलगीत में 'देवकीसुत' गोपिकान ने कहे, सो ये कुमारिकाके भावतें । सो काहेतें ? जो—कुमारिका श्रीयशोदाजी कों माता कहते, तासों श्रीठाकुरजी में पतिभाव है । याही सों वसुदेव—सुत कहि पतिभाव दृढ करत हैं । जो यशोदा सुत कहें, तो भाइ बहन को भाव होय ।

पाछे परमानंददास श्रीगोवर्द्धनधर के दर्शन कों श्रीगोकुल तें श्रीगिरिराज आये । सो तहां मंगला आरती पहलें 'मंगल मंगलं०' पद परमानंददासनें गायो । सो तब तें* श्रीगोवर्द्धनधर के यहां 'मंगल मंगलं०' की रीत भई । सो वे परमानंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग—७

और जब जन्माष्टमी आवती तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी को पंचामृत स्नान करवायके शृंगार करि श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर पधारिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के

---

* सं. १६०५ के आसपास में

शृंगार करते । ता पाछे राजभोग सों पहोंचिके फेरि श्री गिरिराज तें श्रीगोकुल आवते । सो तहां श्रीनवनीतप्रियजी कों मध्यरात्रि कों जन्म की रीति करिके पलना झुलाय श्री नाथजी के यहां नंदमहोत्सव करते ।

सो जब जन्माष्टमी आई, तब श्रीगुसांईजी आप परमानंददासजी को संग लेय के श्रीगिरिराज सों श्रीगोकुल पधारे । सो जन्माष्टमी के दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों अभ्यंग कराये । ता समय परमानंददासने यह वधाई गाई । सो वधाई—

राग धनाश्री– १ 'मिलि मंगल गावो माई०'

ता पाछे श्रीगुसांईजीने श्रीनवनीतप्रीयजी के शृंगार करिके तिलक कियो, ता समय परमानंददासने यह पद गायो । सो पद–

राग सारंग– १ 'आज बधाई को दिन नीको०'।
२ 'घरघरतें ग्वाल देत है हेरी०'।

या प्रकार परमानंददासने बहोत पद गाये । ता पाछे अर्द्धरात्रिके समय श्रीगुसांईजी आपु जन्म करायके श्रीनवनीतप्रियजी कों पालने में पधरायके श्रीनंदरायजी श्रीयशोदाजी, गोपी ग्वाल को भेष धराये । ता समय परमानंददासने यह पद गायो । सो पद–

राग धनाश्री– १ 'सोवन फूलन फूली जसोदा०'।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो या पदमें परमानंददासजी यह कहे जो–'एसे दशक होय जो औरे सब कोऊ सुख पावे'। सो भगवदीयनके वचन सत्य करिवे के लिये श्रीगुसांईजी के बालक सातों और श्रीगुसांईजी तथा श्रीआचार्यजी तथा श्रीगोवर्द्धननाथजी सो ये दस स्वरूप प्रकट होयके सबको सुख दिये हैं। सो 'सब' माने सगरे दैवी पुष्टिमार्गीय। सो या प्रकारसों भाव सहित परमानंददासजीनें कीर्तन गाये।

पाछें श्रीनंदरायजी और गोपी ग्वाल वैष्णवनके जूथ अपने लालजी सब (कों) लेके दधिकांदो किये। तब परमानंददास को चित्त आनंद में विक्षिप्त होय गयो। वा समय परमानंददास नाचन लागे और यह पद गायो। सो वा प्रेम में परमानंददास रागको हू क्रम भूलि गये। सो रात्रिको तो समय और सारंग में गाये। सो पद–

राग सारंग– 'आजु नंदराय के आनंद भयो०'

यह पद गाये पाछे परमानंददास प्रेम में मूर्छा खायके भूमि में गिरि पडे। तब श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीहस्तकमल सों परमानंददास कों उठायके अंजुलि में जल लेके वेदमंत्र पढिके आपु परमानंददास के ऊपर छिरके। सो तब उच्छलित प्रेम जो विकल करतो, सो हृदय में स्थिर भयो। सो परमानंददास सगरी लीला को अनुभव किये, और गान किये।

या प्रकार परमानंददास के उपर श्रीगुसांईजीनें कृपा करी। ता पाछे यह पद पलना को परमानंददासने गायो। सो पद–

राग बिलावल– १ 'हालरो हुलरावत माता०'।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो या भांति सों 'अखिल भुवनपति गरुडगामी' एसे परमानंदजीने कह्यो। सो अखिल भुवन–पति यातें जो श्रीभगवान गरुड प विराजमान सो (तो) सब जगतके पति है, और नंदसुवन सबन के ठाकुर, सो परमानंददासने कही, जो–ये मेरे स्वामी हैं।

सो यह कीर्तन सुनिके श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास की उपर बहोत प्रसन्न भये। ता पाछे परमानंददासने यह पद कान्हरो राग में करिके गायो। सो प्रेम में राग को क्रम नांही, लीला को क्रम। सो जेसी लीला करी, सो स्फुरी। सो तैसी परमानंददास गाये। सो पद–

राग कान्हरो– १ 'रानी तिहारो घर सुबस बसो०'

सो यह असीस को पद परमानंददासने गायो। तब श्रीगुसांईजी आपु अपने पुत्र श्रीगिरधरजी कों श्रीनवनीतप्रियजी के पास राखिके दधिकांदों किये।

ता पाछे परमानंददास को संग लेके श्रीगुसांईजी आपु

श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये। सो दधिकांदों देखिके परमानंददास लीलारस में मग्न होय गये।

ता पाछें श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धनाथजी कों राजभोग धरिके बाहिर आये। तब श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास की अलौकिक दशा देखिके कहे जो—जैसे कुंभनदास को किशोर लीला में निरोध भयो, सो तैसे बाललीला में परमानंददास को निरोध भयो है।

पाछे परमानंददास श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि, पर्वत तें नीचे उतरे सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की ध्वजा कों दंडवत करि, सुरभीकुंड ऊपर आयके अपने ठिकाने कुटीमें आय बोलिबो छोडि दियो। सो नंद-महोत्सव के रस मेंमग्न होयके परमानंददास अपनी देह छोडिवे को बिचार करि के सुरभीकुंड ऊपर आयके सोये। और यहां श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की राजभोग आरती करिके अनोसर करवाये।

अंतिम समय

पाछे श्रीगुसांईजी आपु सेवकन सो पूछे जो—आज राजभोग आरती के समय परमानंददास को नांही देखे, सो कहां गये?

तब एक वैष्णवने श्रीगुसांईजी सों आय बिनती कीनी जो—महाराज! परमानंददासजी तो आजु विकल से दीसत हैं, और काहू सों बोलत नांही, और सुरभीकुंड पें जायके

सोये हैं। तब श्रीगुसांईजी आपु वा वैष्णव को संग ले सुरभी कुंड ऊपर पधारिके परमानंददास के पास आये। सो पर-नंददास के माथे पर श्रीहस्त फेरिके श्रीगुसांईजी आपु परमानंद-दास सों कहे जो–परमानंददास! हम तिहारे मनकी जानत हैं। जो अब तिहारो दरसन दुर्लभ भयो। तब परमानंददास उठिके श्रीगुसांईजी कों साष्टांग दंडवत किये। ता समय यह पद परमानंददासने गायो। सो पद–

राग सारंग—'प्रीति तो श्रीनंदनंदन सों कीजे०'।

सो यह पद परमानंददासने श्रीगुसांईजी को सुनायो।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो परमानंददासजीने या पदमें श्रीगुसांईजीसों प्रार्थना कीनी, जो–प्रीति हू तुमसों करनो सो सदा कृपा एक रस करो। सो परम कृपालु, अपने हस्त कमलकी छायातें जनकों राखत हैं। या समय हू मोकों दरशन देय मेरे मस्तक ऊपर श्रीहस्तकमल धरे। सो मेरे अंतःकरणमें जो मेरो मनोरथ हतो सो पूरन किये। सो वेद पुरान सबही कहत है जो–सदा भक्तनको भायो करि भक्तनको आनंद दिये हैं।

जैसे एक समें इन्द्रकी पदवी लायक जीव कोई न देखे तब भग-वान ही इन्द्र होयके इन्द्रको कार्य चलाये। सो प्रसाद वैष्णव सुदामा भक्त कों दिये। तामें सुदामा को वैभव पाये हू मोह न भयो। सो तेसें आपु जो व्रज में लीला करत हैं सो–परमानंदरूप सों कृपा करिके

गोकों दान दिये। सो आपके गुन मैं कहां तई कहौं। सो एसी प्रार्थना परमानंददासजी श्रीगुसांइजो सों किये।

यह पद सुनिके श्रीगुसांईजी आपु बहोत प्रसन्न भये। ता समय एक वैष्णव नें परमानंददास सों कह्यो, जो मोकों कछू साधन बताबो सो मैं करों। तातें श्रीठाकुरजी आपु मेरे ऊपर प्रसन्न होयके कृपा करें।

तब परमानंददास वा वैष्णव सों प्रसन्न होयके कहे जो—तुम मन लगाय के सुनो। जो सुगम उपाय है सो मैं कहूं। या बात को मन लगायके सुनोगे तो फलसिद्धि होयगी। सो या प्रकार प्रीति सों समाधान करिके परमानंददासने एक पद वा वैष्णव कों सुनायो। सो पद—

राग भैरव—'प्रात समे उठि करिये श्रीलक्ष्मनसुत गान०'

सो या प्रकार यह कीर्तन परमानंददासनें गायो। यह सुनिके श्रीगुसांईजी और सगरे वैष्णव प्रसन्न भये।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु परमानंददास सों पूछे जो—परमानंददास! अब तिहारो मन कहां है? तब परमानंददासने यह कीर्तन सारंग राग में गायो। सो पद—

राग सारंग—१ 'राधे बेठी तिलक संमारति०'।

सो या प्रकार जुगल स्वरूप की लीला में मन लगायके परमानंददास देह छोडिके श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीला में जायके प्राप्त भये।

पाछे श्रीगुसांईजी गोपालपुर में आयके स्नान करि पर्वत के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी को उत्थापन कराये। पाछे से पर्यंत सेवा सों पहोंचिके अनोसर करवाय पर्वत तें उत अपनी बैठक में आय बिराजे। तब सब वैष्णवननें परमानंदद की देह कों अग्निसंस्कार कियो और पाछे गोपालपुर में अ के श्रीगुसांईजी के आगे बहोत बडाई करन लागे।

सो ता समय श्रीगुसांईजी आपु उन वैष्णवन के अ यह वचन श्रीमुख सों कहे, जो–ये पुष्टिमार्ग में दोइ 'साग भये। एक तो सूरदास और दूसरे परमानंददास। सो ति कों हृदय अगाध रस, भगवल्लीला रूप जहां रत्न भरे हैं सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों परमानंददास व सराहना किये।

सो वे परमानंददासजी श्रीआचार्यजी के एसे कृपाप भगवदीय हते। जिन के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी सदा प्रस रहते। तातें इनकी वार्ता को पार नांही सो अनिर्वचनीय सो कहां तांई कहिये।

(३) श्रीकुंभनदासजी

अब श्रीआचार्यजीमहाप्रभुन के सेवक कुंभनदासजी गोरवा क्षत्री, जमुनावते में रहते, तिनकी वार्ता—

—⊃⊂—

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश–

ये कुंभनदासजी लीला में श्रीठाकुरजी के 'अर्जुन' सखा अंतरंग तिनको प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो अर्जुन सखा है और रात्रि की लीला में विशाखा सखी हैं, सो श्रीस्वामिनीजी की। सों तिनको (विशाखाजीको) दूसरो स्वरूप कृष्णदास मेघन, सदा पृथ्वीपरिक्रमा में श्रीआचार्यजी के संग रहते, और कुंभनदासजी सदा श्रीगोवर्द्धननाथजी के संग रहते। सो या भावतें कुंभनदासजी सखाभावमें अर्जुन सखारूप, और सखीभावमें विशाखारूप हैं। सों गिरिराज में आठ द्वार हैं। तामें एक द्वार आन्योर पास है। सो तहां की सेवा के ये मुखिया हैं।

आधिदैविक मूल स्वरुप

और गाम को नाम 'जमुनावता' यासों कहत हैं, जो—श्रीयमुनाजीके प्रवाह, सारस्वत कल्पमें दोय हते। एक तो जमुनावता होय कें आगरे

के पास जात हतो, और एक चीरघाट होय श्रीगोकुल होय कें। अ
दोऊ धारा एक मिलि सारस्वत कल्प में बहती।×

और ता समय आगरा आदि गाम नांही हतो। दोऊ धारा एक मिलि
आगे कों गई हती। सों चीरघाट तें धारा होयके गिरिराज आवत
तासों पंचाध्याई को रास 'परासोली' में चंद्रसरोवर ऊपर किये।
व्रजभक्त, अंतरध्यान के समय चंद्रसरोवर सों द्रुमलतान सों पूछ
चली। सो गोविंदकुंड के पास होयके अप्सराकुंड ऊपर आय
श्रीठाकुरजी के चरणारविंद के दर्शन भये। तासों अप्सराकुंड ऊ
चरनचिन्ह हैं।

तहां ते आगे चलिके राधा सहचरी की बेनी गुही, सो सिंदु
काजर सगरो शृंगार+ कियो तासों वहां सिंदूर, कजली और बाजनी सिल
है। ता पाछे जब रुद्रकुंड ऊपर आयके राधा सहचरी को मान भय
सो श्रीठाकुरजी सों कह्यो जो—मोसों तो चल्यो नांही जात है। त
श्रीठाकुरजी के कांधे चढन के मिष वृक्ष तरे ही अंतर्ध्यान भये। तब
राधा सहचरी रुदन कियो, जो—

× गो. ति. श्रीगोवर्द्धनलालजी महाराज आज्ञा करते थे, कि—लीला में श्रीयमुनाजी की सौ धारा है और श्रीगोवर्द्धन पर्वत के शिखर भी सौ है। परंतु अब पृथ्वी पर तीन ही शिखर प्रकट दर्शन देते हैं। एसे श्रीयमुनाकी धारा भी एक ही विद्यमान हैं।

+ यह स्थल आज भी 'शृंगार स्थल' के नाम से प्रसिद्ध है जहां लीलास्थ गोस्वामिबालकों के तुलसीक्यारा और समाधियाँ हैं।

'हा नाथ रमणप्रेष्ठ क्वासि २ महाभुज !
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्' ।

तासों वा कुंड को नाम 'रुद्रकुंड' हे । सो अब तांई लोग वासों रुद्रकुंड कहत है । पाछें तहां सब गोपी आय मिली । पाछे आगे चलि के 'जान' 'अजान' वृक्ष सों पूछते पूछते जमुनावता श्रीजमुनाजी की पुलिन में गोपिका गीत ('जयति तेऽधिकं') गाय के सब भक्तनने रुदन कियो ।÷ तब श्रीठाकुरजी आपु प्रकट होय के फेरि 'परासोली' चंद्रसरोवर पें रास किये, सो श्रम भयो । तब श्रीयमुनाजी के जल में जलविहार किये । सो या प्रकार सारस्वतकल्प की पंचाध्याई को रास श्रीगिरिराज के पास है ।*

ओर व्रजभक्त ढूंढत २ श्रीठाकुरजी के मिलनार्थ दूरि गई । **सामई ओर श्यामढाक** सो अंधियारो देखि के उहांते फिरे ।
'तमः प्रविष्टमालक्ष्यततो निववृतु र्हरेः' । । इति ।

सो यह अंधियारो श्यामढाक के आगे 'सामई' गाम हैं । सो तहां स्यामवन है, सो महासघन । ताते वहां पंचाध्याई के अनुसार सगरे स्थल दर्शन देत हैं ।

÷ इसी भाव से आजभी गोस्वामिवालक व महानुभाव भक्तगण श्रीगिरिराजकी परिक्रमा करते हैं ।

*इस प्रसंग का श्रीवल्लभाचार्यजी कृत रासप्रकरण कीपंचाध्याय सुबोधिनी और नंददासजीकृत भाषा पंचाध्यायी से मिलान कीजिये ।

और कालीदह के घाट तें हू श्रीवृंदावन कहत हैं। तहां हू बंसीबट है। तहां अनेक श्वेतवाराह कल्प में पंचाध्याई को रास उहां ही किये हैं। और सारस्वतकल्प में शरद ऋतु किए सो 'परासोली' श्रीगिरिराज ऊपर किये। पाछें वसंत चैत्र वैशाख को रास केसीघाट पास बंसीबट नीचे किये।+ सो या प्रकार रास दोऊ ठिकाने। परंतु मुख्य पंचाध्याई सारस्वत कल्प को रास गिरिराज को।

या प्रकार लीला के भेद हैं। तासों 'जमनावता' में एक धारा श्रीयमुनाजी की सारस्वतकल्प में वहती, तासों वा गाम को नाम 'जमुनावता' है। सो नंदगाम बरसाने के मध्य संकेत पास धारा होयके श्रीयमुनावता आई। तासों संकेत के पास श्रीयमुनाजी के पधारिवे को चिन्ह हैं।×

सो या प्रकार यातें कह्यो जो—अबके जीव को विश्वास दृढ होत नांही है। सो सब चिन्हनकों देखे, सुने तब विश्वास होय। और जब फल सिद्ध होय, तब भाव बढे, तासों खोलिके कहे।

वार्ता प्रसंग—१

सो जमुनावता में कुंभनदास रहते। सो परासोली चंद्रसरोवर के ऊपर कुंभनदास के बापदादान के खेत हते* तहां

+ इसीसे दोनो स्थलों में श्रीआचार्यजी विराजते थे।

× श्रीयमुनाजी के पधारने का एसाही चिन्ह 'पूछरी' परभी अभीतक विद्यमान है।

* अबभी ये खेत और पेड़ विद्यमान है जहां श्रीनाथजी खेलते थे। ये खेत चंद्रसरोवर से कुछ दूर श्रीनाथजी के बगीचा के पास हैं।

कुंभनदास खेती करते। सो परासोली में कुंभनदास खेत अर्थ बहोत रहते हते। उन कुंभनदास कों बालपने तें गृहासक्ति नांही, और झूठ बोलते नांही, और पापादिक कर्म नांही करते। सूधे व्रजवासी की रीति सों रहते।

सो जब कुंभनदास× बडे भये। तब 'जेत' (गांव) के पास बहुलावन है तहां कुंभनदास को ब्याह भयो, सो स्त्री साधारन आई, लीला–संबंधी तो नांही। परंतु कुंभनदासजी सरिखे वैष्णव भगवदीयन कों संग निष्फल जाय नांही, सो उद्धार होयगो। परंतु अब ही श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिराज ऊपर प्रकटे नांही। जब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिराज ऊपर प्रकट होयके श्री-आचार्यजी कों अपने पास बुलावेंगे, तब श्रीआचार्यजी आपु सरन लेयगें, और तब ये भगवदीय प्रसिद्ध होयगें।

सो एक समय श्रीआचार्यजी आपु पृथ्वी–परिक्रमा करत दक्षिन में झारखंड में पधारे। सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्री-आचार्यजी सों कहे जो-हम श्रीगोवर्द्धन में प्रकटे हैं, सो आपु यहां आयके हम कों बाहिर पधरायके हमारी सेवा जगत में प्रकट करि प्रकास करो।

तब श्रीआचार्यजी आपु पृथ्वीपरिक्रमा उहां झारखंडम राखिके सूधे व्रज कों पधारे। तब दामोदरदास हरसानी,

---

× कुंभनदासजी के काका का नाम धरमदास था। कुंभनदासजी का जन्म सं. १५२५ में हुआ था।

कृष्णदास मेघन, माधवभट्ट, नारायनदास और रामदास सिकंदरपुरवारे ये पांच सेवक श्रीआचार्यजी के संग हते। सो तब श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत के नीचे 'आन्योर' में 'सदूपांडे' के द्वारपे एक चोतरा हतो तापे आय बिराजे।

पाछें श्रीगोबर्द्धननाथजी के प्राकट्य को प्रकार श्रीआचार्यजी सदूपांडे, और उनके भाई माणिकचंद पांडे, नरो भवानी, ये सब सेवक भये हते तिन सों पूछ्यो। सो सब प्रकार ऊपर सदुपांडे की वार्ता में कहि आये हैं।

पाछें रामदास चौहान पूछरी के पास गुफा में रहते सो सेवक भये, तिन कों श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा सोंपी। सो रामदास व्रजवासी आदि औरहू सेवक भये। सो कुंभनदास 'जमुनावता' गाम में रहते। तहां ये समाचार सुने जो एक बडे महापुरुष 'अन्योर' में आये ह। सो श्रीगोबर्द्धननाथजी श्रीठाकुरजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत म सों प्रकट करे हैं, और सदूपांडे आदि व्रजवासी बहोत लोग सेवक भये है।

तब कुंभनदास सुनिके अपनी स्त्री सों कहे जो–'आन्योर में चलिके श्रीआचार्यजी के सेवक हूजिये, सो इनकी कृपातें श्रीठाकुरजी कृपा करेंगे। सो तब स्त्रीने कही, जो–म हू चलूंगी, जो मेरे कोई संतति बेटा नहीं है, सो वे महापुरुष देंय तो होय।

सो या प्रकार बिचार करिके दोऊ जनें श्रीआचार्यजी

के पास आयके दंडवत करी। सो तब श्रीआचार्यजी आपु पूछे जो-कुंभनदास! आये? सो तब कुंभनदासने दंडवत करि बिनती करी जो-महाराज! बहोत दिनतें भटकतो हतो, सो अब आपु मो ऊपर कृपा करो। सो कुंभनदास तो दैवीजीव हैं, सो श्रीआचार्यजी के दरशन करत ही श्रीआचार्यजी के स्वरूप को ज्ञान होय गयो।

तब श्रीआचार्यजी आपु कुंभनदास सों कहे जो-तुम स्त्री पुरुष दोउ जने न्हाय आवो। तब दोऊ जने संकर्षणकुंड में न्हायके श्रीआचार्यजी के पास आये। तब श्रीआचार्यजी आपु कुंभनदास और उनकी स्त्री कों नाम सुनायो।

तब वा स्त्रीने आचार्यजी सों बिनती करी जो-महाराज! आपु बडे महापुरुष हो, मेरे बेटा नांही है, तासों आपु कृपा करिके देऊ। तब श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके प्रसन्न होयके कहे जो-तेरे सात बेटा होयगें, तू चिंता मति करे। सो तब वह स्त्री अपने मन में बहोत प्रसन्न भई।

तब कुंभनदासन अपनी स्त्री सों कही जो-यह कहा तेनें श्रीआचार्यजी के पास मांग्यो। जो श्रीठाकुरजी मांगती तो श्रीठाकुरजी देते। तब वा स्त्रीने कही जो-मोकों चहियत हतो सो मने मांग्यो, और जो तुम को चाहिये सो तुम मांगि लेहु।

तब कुंभनदास चुप होय रहे। ता पाछें श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्द्धनधर को छोटो सो मंदिर बनवायके ता मंदिर

में श्रीगोवर्द्धनधर कों पधरायके रामदास चौहान कों सेवा की आज्ञा दीनी।

सो रामदास, सदूपांडे आदि व्रजवासी सब सीधो सामग्री ले आवते। सो दूध दही माखन श्रीगोवर्द्धननाथजी कों भोग धरिके ता महाप्रसाद सों रामदास निर्वाह करते। और व्रजवासी जो सेवक कुंभनदास आदि भक्त, तिन कों श्री आचार्यजीने आज्ञा दीनी जो–ये श्रीगोवर्द्धननाथजी हमारो सर्वस्व हैं, तासों इनकी सेवा में तुम तत्पर रहियो, और श्री गोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये बिना महाप्रसाद मति लीजियो। और श्रीगोवर्द्धनाथजी की सेवा सावधानी सों करियो।

सो कुंभनदास कीर्तन बहुत सुंदर गावते। कंठहू इनको वहोत सुंदर हतो। तासों कुंभनदास सों श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–तुम समय समय के कीर्तन नित्य श्रीगोवर्द्धन-नाथजी कों सुनाइयो।

सो प्रातःकाल श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धननाथजी कों जगायके कुंभनदास कों कहे जो–कछु भगवल्लीला वरणन करो। तब कुंभनदास श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत करिके पहले यह पद गायो। सो पद–

राग विलावल। 'सांझ के सांचे बोल तिहारे०'

सो यह कीर्तन कुंभनदास के मुखतें सुनिके श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–कुंभनदास! निकुंज–लीलासंबंधी रस को

अनुभव भयो'? तब कुंभनदासने दंडवत कीनी और कह्यो जो-महाराज! आपु की कृपातें। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो-तिहारे वडे भाग्य हैं। जो प्रथम प्रभु तुम कों प्रमेय बल को अनुभव बताये, तासों तुम सदा हरिरस में मगन रहोगे। तब कुंभनदासने विनती कीनी जो-महाराज! मोकों तो सर्वोपरि याही रस को अनुभव कृपा करिके कीजिये।

सो कुंभनदास सगरे कीर्तन जुगल स्वरूप संबंधी किये। सो वधाई, पलना, बाललीला गाई नांही। सो एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

या प्रकार कुंभनदासजी आदि वैष्णवन ऊपर कृपा करि श्री-आचार्यजी दक्षिन के झारखंड में पृथ्वी-परिक्रमा छोडिके पधारे हते, सो फेरि जीवन की ऊपर कृपा करन के अर्थ परि-क्रमा करन पधारे।

वार्ता प्रसंग-२

और यहां कुंभनदासजी नित्य सवारे 'जमुनावता' गाम तें श्रीगिरिराज ऊपर श्रीगोवर्द्धनाथजी के दरशन कों आवते, सो समय २ कीर्तन करते। श्रीगोवर्द्धनाथजी आपु कुंभ-नदास सों सानुभावता जनावते, सो संग खेलन लागे। और खेल की वार्ता करते।

पाछे कछुक दिनमें एक म्लेच्छ को उपद्रव भयो, सो सगरे गाम को लूटत मारत पश्चिमतें आयो। ताके डेरा श्री-गिरिराजतें पांच कोस आगे भये। तब सदूपांडे, माणिकचंद पांडे,

रामदासजी, कुंभनदासजी ये चारि वैष्णवननें अपने मनमें बिचार कियो जो–यह म्लेच्छ बुरो आयो है, जो–भगवद्धर्म को द्वेषी है। तासों कहा विचार करनो?

सो ये चारों वैष्णव श्रीनाथजी के अंतरंग हते, सो इन सों श्रीगोवर्द्धननाथजी वार्ता करते। तासों इन चार्यों वैष्णवन नें मंदिरमें जायके श्रीनाथजी सों पूछी जो–महाराज! अब कैसी करें? जो धर्म को द्वेषी म्लेच्छ लूटत आवत है। तासों आपु कृपा करिके आज्ञा करो सो करैं।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी यह आज्ञा किये जो–हमकों तुम टोड के घने में पधराय के ले चलो। हमारा मन वहां पधारिवे को है।

तब चार्यों वैष्णवनें बिनती कीनी जो–महाराज! या समय असवारी कहा चहियें? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, जो–सदूपांडे के घर भैंसा है, सोई ले आवो, तापे चढिके चलूंगो। पाछे सदूपांडे वा भैंसा को ले आये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी वा भैंसा पे चढिके पधारे।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश.

सो वह भैंसा दैवी जीव हतो। सो वह लीला में श्रीवृषभानजी के घर की मालिन है। सो नित्य फूलन की माला श्रीवृषभानजी के घर करिके ले आवती। सो लीला में 'वृंदा' याको नाम है। एक दिन श्रीस्वामिनीजी बगीची में पधारी। ता समय वृंदा के पास एक बेटी हती, सो ताको खवावती हती। सों याने उठिके न तो दंडवत कीनी ओर न समाधान कियो। तो भी श्रीस्वामिनीजीने यासों कछु कह्यो नांही।

ता पाछे श्रीस्वामीनीजीने वृंदा सों कही, जो—तू श्रीनंदरायजी के घर जायके श्रीठाकुरजी सों समस्या सों हमारो यहां पधारिवो कहियो। तब श्रीस्वामिनीजी के वचन सुनिके वृंदा ने कही, जो—अभी मेरे माला करिके श्रीवृषभानजी कों पठावनी है, तासो मैं तो जात नांही।

यह वचन सुनिके श्रीस्वामिनीजीने यासों कही जो—मैं यहां आई तब तेने उठिके सन्मान हू न कियो, और एक कार्य कह्यो सोऊ तोसों नांही बन्यो। तासों तू या बगीची में रहिवे योग्य नांही है। और तू यहां सो गिरिके भैंसा को जन्म लेहु।

सो यह श्राप श्रीस्वामिनीजीनें वा मालिन को दियो। तब तो यह मालिन श्रीस्वामिनीजी के चरणारविंद में जाय परी, और बहोत ही बीनती स्तुति करन लागी। और कही जो—अब एसी कृपा करो, जो फेरि में यहां आऊं।

तब श्रीस्वामिनीजीने यासों कही जो—जब तेरे ऊपर चढिके श्रीठाकुरजी वनमें पधारेंगे, तब तेरो अंगीकार होयगो। सो भैंसा को देह छोडिकें सखी—देह धरिके फेरि या बाग की मालिन होयगी। सो या प्रकार वह मालिन सदूपांडे के घर में भैंसा भई।

सो वाही भैंसा के ऊपर श्रीनाथजी आपु चढिके 'टोड' के घने में पधारे×, सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कों एक ओरतें रामदासजी पकडे चले, और एक ओरतें सदूपांडे पकडे रहे। और कुंभनदास और मानिकचंद पांडे बीच में थांभे जाय। सो

× मिति श्रावण शुक्ल १३ सं. १५६० के लगभग।

मारग में कांटा बहोत लागे, वस्त्र सब फाटि गये, बहोत दुःख पायो। मारग आछो न हतो।

सो वा 'टोड' के घना में बीच में एक निकुंज है। तहां नदी (?) है, सो कुंभनदास और मानिकचंद पांडे ये दोउ जने श्रीनाथजी के आगे मारग बतावें, लता कांटा टारत जांय। सो या प्रकार 'टोड' के घने में भीतर एक चोतरा है तहां छोटोसो सरोवर है, और एक गोल चोक मंडलाकार है। तहां रामदासजी और कुंभनदासजी श्रीनाथजी सों पूछे जो—आपु कहां विराजोगे? तब श्रीनाथजी आपु आज्ञा किये जो—याही चोंतरा पे विराजेंगें। सो तब श्रीनाथजी के नीचे भैंसा के ऊपर गादी डारे हते सो वही गादी चोंतरा ऊपर डारि बिछाई, तापें श्रीनाथजी कों पधराये।

पाछे श्रीनाथजी रामदासजी सों आज्ञा किये जो—तू कछु भोग धरिके न्यारे ठाडे होउ। तब रामदासजी तथा कुंभनदासजी मन में विचारे जो- कोई व्रजभक्तन के मनोरथ पूरन करिवे के लिये यहां लीला करी है। पाछें रामदासजी थोडी सामग्री भोग धरे। सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहें जो—सब सामग्री धरि देउ। सो रामदासजी उतावली में दोय सेर चून को सीरा कर लाये हते सो सगरो भोग धरे।+

+ कहते हैं कि इस समय विष्णुस्वामि—मतानुयायी नागाओं का महंत 'चतुरा' नामक एक व्यक्ति यहां पर रहता था. उसने उसी समय ककोडा ला दिये सो रामदासजीने सिद्ध करकें सीरा के संग भोग धरे, तब से संप्रदाय में श्रा. सु. १२, सीरा और कंकोडा के भोग के लिये प्रसिद्ध हुई।

पाछे रामदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी तें कहे जो–सगरी सामग्री भोग धरी, परि यहां रहनो होय तब कहा करेंगे? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, जो–यहां रहनो नांही है। जो इतनो ही काम हतो।

पाछे कुंभनदास सहित सदुपांडे मानिकचंदपांडे और रामदासजी ये चारों जन एक वृक्ष की ओट में जाय बैठे। सो तब निकुंज के भीतर श्रीस्वामिनीजी अपने हाथ सों मनोरथ की सामग्री करी हती सो लेके श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास पधारी। पाछे मिलिके भोजन करनो विचार कियो। सो सामग्री करत रंचक श्रीस्वामिनीजी को श्रम भयो। तासों श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु श्रीमुखतें कुंभनदास सो आज्ञा किये जो–कुंभनदास! तू कछु या समय कीर्तन गावे तो मन प्रसन्न होय। और मैं सामग्री अरोगत हौं, तासों तू कीर्तन गाउ।

सो कुंभनदास अपने मनमें बिचारे, जो–प्रभुन को मन कछु हास्य प्रसंग सुनिवेको है। और कुंभनदास आदि चारचों वैष्णव भूखे हते और कांटाहू लगे हते, सो ता समय कुंभनदासने एक पद गायो। सो पद–

राग सारंग। 'भावत है तोहि टोंड को घनो०'।+

+ 'टोंड के घने' का स्थान जतीपुरा सें गुलालकुंड हो कर नहर की पटली पटली सात फर्लांग पर है। वहां कोटास्थ गो. श्रीद्वारकेशलालजी महाराज की सम्मति ले कर प. भ. श्रीजदुनाथदासजीने श्रीनाथजी की बेठक उसी स्थल पर सं; १९८४ में वनवाई है, और छोटा सा कुंड

सो यह कीर्तन सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी और श्रीस्वामिनीजी वहोत प्रसन्न भये। और सब वैष्णव हू प्रसन्न भये। ता पाछे माला के समय कुंभनदासने यह पद गायो। सो पद–

राग मालकोस। १ 'बोलत स्याम मनोहर बैठे कमलखंड और कदम की छैंया०'।

यह पद कुंभनदासने गायो, सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु वहोत प्रसन्न भये।

तब श्रीस्वामिनीजीनें श्रीगोवर्द्धनधर सों पूछी जो–तुम कौन प्रकार पधारे? तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने कही जो–सदु पांडे के घर भैंसा हतो सो वा उपर चढिके पधारे हैं। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी के वचन सुनिके श्रीस्वामिनीजी आपु वा भैंसा की ओर देखिके कृपा करिके कहे जो–यह तो मेरे बाग की मालिन है, सो मेरी अवज्ञा तें भैंसा भई परंतु आज याने भली सेवा करी, तासों अब याको अपराध निवृत्त भयो।× सो या प्रकार कहि, नाना प्रकार की केलि टोड के घने में करिके श्रीस्वामिनीजी तो बरसाने में पधारे।

भी खुदवाया है। वहां गोलाकार मंडल चोक में अति प्राचीन श्यामतमाल, कदम आदि दर्शनीय वृक्ष हैं। जब से बेठक बनी है तब से प्रत्येक यात्रा का रास वहां होता है।

× सेवा का अपराध सेवा से ही निवृत्त होता है। देखो श्रीगोकुलनाथजी तथा श्रीदेवकीनन्दनजी के हास्यप्रसंग।

सो तहां कांटा बहोत हते, सो श्रीस्वामिनीजी ऊहां कैसे पधारे ?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

यह शंका होय तहां कहत हैं। जो–ये व्रज के वृक्ष परम स्वरूपात्मक हैं, सो जहां जैसी इच्छा होय सो तहां तैसी कुंज लता फल फूल होय जात हैं। सो कबहू सकल कांटा तो यह लौकिक लोगन को दीसत हैं। सो तहां कुंज में सब व्रजभक्तन सहित श्रीठाकुरजी आप लीला करत हैं। सो तहां गोपन को और मर्यादा वारेन को यह कांटन की आड होत है, (नातर) सघनवन होत है। सो व्रज के भक्त सदा सेवा में तत्पर रहत हैं, सो तासों यह संदेह नांही है।

और श्रीगोवर्द्धननाथजी भैंसा ऊपर चढिके टोड के घना में पधारे। सो ता समय चार वैष्णव संग हते। सो मारग में व्रजवासी लोग बहोत मिलते, सो श्रीगोवर्द्धनाथजी को देखे नांही, जाने जो– भैसा लिये चारि जन जात हैं। सो कांटा न होय तो सगरे व्रजवासी तहां आवें। या प्रकार केवल व्रजभक्तन को सुख देनार्थ श्रीठाकुरजी की लीला रस है। सो लौकिक में डरिके छिपिके पधारनो, सो यह रस है। ईश्वर-ताको भाव नांही बिचारनो है। ईश्वरतामें कहे तो भजनो कहा? डर, जहां माधुर्य रस में है सो प्रेमसों; ईश्वर तामें डरत नांही है। या प्रकार रसिक जन नेत्रन सों जो देखत हैं सो तिन को आनंद उपजत है, सो ज्ञाननेत्रन–अलौकिक नेत्रन–सों लीलारस को अनुभव होत है।

सो जब श्रीस्वामिनीजी बरसाने पधारे, तब चारयों भगवदीयन को श्रीगोवर्द्धननाथजीने अपने पास बुलाये।

सो तहां यह संदेह होय जो ये भगवदीय तो अंतरंग हैं। सो
श्रीहरिरायजीकृत जब लीला को अनुभव है तो फेरि श्रीगोवर्द्धन-
भावप्रकाश. नाथजी इन कों न्यारे ओट में क्यों विदा किये ?
तहां कहत हैं जो—ये भगवदीय जद्यपि सखीरूप सों लीला को दर्शन
करत हैं, तोऊ श्रीस्वामिनीजी कों अपने श्रीहस्त सों हास्यविनोद करत
आरोगावनो है, सो पास सखी होय तो लज्जा, संकोच रहे। सो ताही
सों निकुंज में जब स्वरूप लीला करत हैं, तब सखी सब जालरंध्र
व्हेके लतान की ओट लीला को सुख अवलोकन करत हैं। सो
तासों श्रीगोवर्द्धननाथजीने भगवदीयन को नेक ओट में बैठाये हते,
सो बुलाये।

सो जब चारयों वैष्णव आये, तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने
सदूपांडे सों कह्यो जो—अब देखो उपद्रव मिटयो ? तब सदूपांडे
टोंडके घने सों बाहिर आये, सो इतने में श्रीगोवर्द्धन सों
समाचार आये जो—वह म्लेच्छ की फौज आई हती सो पाछी
गई है। तब सदूपांडेने आयके श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो
जो—वह फौज तो म्लेच्छ की भाजि गई। तब श्रीगोवर्द्धनधर
कहे जो—अब तुम मोंको गिरिराज ऊपर मंदिर में पधरावो।
तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कों भैंसा ऊपर बेठाये। पाछे चारयों
वैष्णवननें श्रीनाथजी कों श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर मंदिर में
पधराये। तब भैंसा पर्वत सों उतरिके देह छोडके फेरि लीला
में प्राप्त भयो।

पाछे सगरे व्रजवासी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करिके बहोत हरषित भये, और कहन लागे जो–धन्य है, देवदमन! जो इनके प्रतापसों, एसो उपद्रव भयो हतो सो एक क्षण में मिटि गयो सो कछू जान्यो हू न पर्यो।

तब कुंभनदासने श्रीनाथजी के आगे यह पद गायो। सो पद—

राग श्रीराग। १ 'जयति २ श्रीहरिदासवर्यधरने०'। २ 'कृष्ण तरनि–तनया तीर रास मंडल रच्यो०'।

सो एसे कीर्तन कुंभनदासने श्रीगोवर्द्धननाथजी कों बहोत सुनाये। सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये। सो कुंभनदासजी के पद जगत में प्रसिद्ध भये।

वार्ता प्रसंग–३

सो कुंभनदासजीने बहोत पद बनाये, सो जहां तहां लोग गावन लागे। ता पाछे एक कलावतने एक पद कुंभनदासजी को सीख्यो, सो देशाधिपति के आगे गायो। सो सीकरी फतेपुर में देशाधिपति के डेरा हते सो तहां यह पद गायो। सो पद—

राग धनाश्री। 'देखिरी आवनि मदन गुपालकी०'।

सो यह कीर्तन सुनिके देशाधिपति को मन वा पद में

गडि गयो, सो माथो धुन्यो ओर कह्यो जो– एसे एसे महापुरुष भूमि पर होय गये, सो जिन को एसे दर्शन परमेश्वर के होते।

तब वा कलावतने देशाधिपति सों कही जो साहिब! वे महापुरुष पद के करिवे वारे यहां ही हैं। सो तब यह देशाधिपति वा कलावत के ऊपर बहोत प्रसन्न होयके पूछ्यो जो– वे महापुरुष कहां हैं? तब कलावतने कही जो– श्रीगोवर्द्धन के पास 'जमुनावतो' गाम है, सो तहां वे महापुरुष रहत हैं, और कुंभनदासजी उन को नाम है। तब देशाधिपति ने कही जो उन को यहां ही बुलावो जो– हम उन सों मिलेंगे।

पाछें देशाधिपतिने अपने मनुष्य ओर सब तरह की असवारी कुंभनदास कों लेवे कों पठाई। सो जमुनावता गाम में भेजी तब वे मनुष्य असवारी लिवाये जमुनावता गाम में आये। ता समय कुंभनदासजी तो जमुनावता में हते नांही, परासोली चंद्रसरोवरिसें अपने खेत ऊपर बैठे हते। सो तब उन मनुष्यनने जमुनावता में आयके पूछी। पाछे खबरि पायके गाम में ते एक मनुष्य को संग लेके वे लोग कुंभनदासजी के पास आये।

तब देशाधिपति के मनुष्यनने आयके कुंभनदास सों कह्यो जो– तुमको देशाधिपतिने बुलाये हैं। तब कुंभनदासने कही, जो–हमतो गरीब व्रजवासी हैं, सो काहूके चाकर नांही हैं। तासों हमारो देशाधिपति सों कहा काम है? जो मैं चलूं।

तब देशाधिपति के मनुष्यनने कह्यो जो– बावा साहिब!

हम तो कछु समुझत नांही हैं। सो हम कों तो देशाधिपति को हुकम है– जो तुम कुंभनदासजी कों ले आवो, सो ये घोडा पालकी तिहारी असवारी के लिये आये हैं। सो तिनके ऊपर तुम असवार होयके चलिये। हम आये हैं जो– देशाधिपतिने भेजे हैं, सो हम तुम कों लेके जायंगे। और जो हम न ले जांय तो देशाधिपति को हुकम टरें, तो देशापधिति हम कों मरवाय डारे। तासों आपु चलिये, ओर उन सों मिलिके चले आईये।

तब कुंभनदासनें अपने मन में बिचार कियो जो– यह आपदा जो आई है, तासों अब गये बिना चले नांही। तासों आपदा होय सोऊ भुगतनो।

सो कुंभनदास कों देशाधिपतिन असवारी पठाई हती, सो तिनके संग मनुष्य आये हते सो उनने कह्यो जो– बाबासाहिब! घोडा तथा पालकी पर चढिके बेगि चलिये। तब कुंभनदासने उन मनुष्यन सों कह्यो जो– मैं तो कबहू असवारी में बैठ्यो नांही। हम सों तुम कछू बोलो मति, जो हम जोडा पहरिके पायन चलेंगे। तब उन मनुष्यनने बहोत विनती कीनी, परि कुंभनदास तो असवारी में बैठे नांही, सो जोडा पहरि के पायन चले। सो फतेपुर सीकरी में देशाधिपति के डेरान की पास गये। तब देशाधिपति कों खबरि करवाई, जो कुंभनदासजी महापुरुष आये हैं।

तब देशाधिपतिने कुंभनदास को भीतर बुलवाये, तब भीतर गये। पाछे देशाधिपतिने कही जो– बाबा साहिब ! आगे आवो। तब कुंभनदासजी तनिया पहरे, फटी मेली पाग, पिछोरा, टूटे जोडा सहित देशाधिपति के आगे जाय ठाडे भये।

तब देशाधिपतिने कही जो– बाबा साहिब ! बैठो। सो तहां जडाउ रावटी ही, तामें मोतिन की झालरि लागि रही है, ओर सुगंध की लपट आवत है। परंतु कुंभनदासजी के मन में महादुख, जो–जीवते मानो नरक में बैठ्यो हूं। (ओर बिचारे जो) यासों तो मेरे व्रजके हींसन के रूख आछे हैं। जहां साक्षात श्रीगोवर्द्धनधर खेलत हैं।

सो या प्रकार कुंभनदासजी अपने मन में विचार करत हते. इतने में देशाधिपति बोल्यो जो– बाबा साहिब ! तुमने विष्णु-पद बहोत किये हैं। तासों तिहारे मुखतें मैं कछू विष्नु पद सुनूंगो तासों आप कोई विष्णु–पद गावो।

तब देशाधिपति के वचन सुनिके एक तो कुंभनदास मन में कुढि रहे हते, और दूसरे देशाधिपति ने गायवे की कही। तब कुंभनदास के मन में बहोत बुरी लगी। तब कुंभन-दास अपने मन में विचार कियो जो– गाये बिना छुटकारो होयगो नांही। और या म्लेच्छ के आगे तो श्रीठाकुरजी की लीला के पद गाये जाय नाही। सो तासों मैं कहा गाऊ ? जो

मेरी बानी के सुनिवे वारे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं, और या म्लेच्छने मोकों बुलायके श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिछोयो करायो है। तासों याको कछू एसो सुनाऊं जो- यह बुरो माने तो आछो। और बुरो मानि के मेरो कहा करेगो?

तब कुंभनदासजी के मन में यह बात आई-'जाको मनमोहन अंगीकार करें; एको केस खसै नही सिरतें जो जग बैर परे।

सो यह बिचारिके एक नयो पद करिके कुंभनदासने देशाधिपति के आगे गायो। सो पद-

राग सारंग-'भक्त कों कहा सीकरी काम। आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरिनाम०'॥

सो यह पद कुंभनदासने गायो सो सुनिके देशाधिपति अपने मन में बहोत कुढ्यो*।

सो पाछे उनने अपने मन में बिचारी, जो-इनकों कछू लेवे को लालच होय तो ये मेरी खुसामद करें। जो इनको तो अपने ईश्वर सो काम हैं।

यह बिचारिके अकबर पात्साहने कुंभनदास सों कह्यो जो-बाबासाहिब! मोकों कछु आज्ञा फरमावो सो मैं करूं। तब कुंभनदासने कही जो-आज पाछे मोकों कबहूं बुलाइयो मति। तब देशाधिपतिने कुंभनदास कों विदा किये।

---

* यहां अकबर बादशाह के पूर्व स्वरूप का वर्णन हैं जो सूरदासजी की वार्ता में आ जानेसे यहां नहीं दिया है। —सम्पादक

सो तब कुंभनदास ऊहां ते चले, सो मारग में आवत कुंभनदास के मनमें श्रीगोवर्द्धननाथजी को विरह कलेश (भयो) जो–अब मैं श्रीगोवर्द्धननाथजी को मुख कब देखौं ? सो एसें विचार करत मारग में आवत कुंभनदासने विरहको पद गायो। सो पद–

राग धनाश्री–'कब हौं देखि हौं इन नेनन०'

सो एसे पद मारग में गावत कुंभनदास श्रीगिरिराज ऊपर आय श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये। सो दोय प्रहर वीते सो कुंभनदास कों मानो दोय जुग वीते। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी को श्रीमुख देखत ही सगरो दुख बिसरि गयो। ता समय कुंभनदासने एक पद गायो। सो पद–

राग धनाश्री–१ 'नेन भरि देखौं नंदकुमार०'।
२ हिलगन कठिन है या मनकी०'

सो एसे पद कुंभनदासने बहोत ही गाये। सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कहे जो–कुंभनदास! तू धन्य है। जो–मेरे बिना एक छिन तोकों कल नाहीं है। तासो मोहूकों तो बिना कछु सुहात नांही है। सो या प्रकार कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी की परस्पर प्रीति हती।

वार्ताप्रसंग–४

और एक समय मानसिंह देसदेस में दिग्विजय करिके जीतिके आगरे में देशाधिपति के पास आयो। तब देशाधि-

पति सों सीख मांगिके अपने देस को चल्यो। तब राजा मानसिंहने अपने मन सों बिचारयो जो– बहोत दिन में आयो हूं, सो श्रीमथुराजीमें न्हायके अपने देश जाऊं तो आछो है।

सो राजा मानसिंह यह बिचारिके श्रीमथुराजी में आयो। तहां विश्रांत घाट ऊपर न्हायो। तब चोबेननने मिलिके कह्यो जो–श्रीकेसोरायजी ठाकुरजी के दरशन कों चलो। सो गरमी ज्येष्ठ मास के दिन और मथुरिया चोबेननने× राजा को आवत जानिके श्रीकेसोरायजी कों जरीकी ओढनी, वागा, पिछवाई, चंदोवा सब जरी के किये। सोने के आभूषण पहिराये। सो दरसन करिके राजा मानसिंहने अपने मन में कह्यो, जो–इनने मेरे दिखायवे के लिये श्रीठाकुरजी को इतनी जरी लपेटी है। पाछे भेट धरि के चले।

पाछे उनने कही जो–वृंदावन में श्रीठाकुरजी के मंदिर है, सो तहां दरशन कों चलेंगे। पाछे राजा मानसिंह श्री-वृंदावन में आयो। सो श्रीवृंदावन के संत महंतनने सुनिके मन में विचारी जो–यहां राजा मानसिंह दरशन को आवेगो। यह जानिके अपने श्रीठाकुरजी के लिये भारी भारी जरीके चीरा, वागा, पटका, सूथन जरी की ओढनी भारी भारी उढाई और सोने के आभूषन पहराये।

× इस समय (सं. १६२० से ३० लगभग) श्रीकेसोरायजी की सेवा मथुरिया चौबे करते थे।

पाछे राजा मानसिंह आयके दोय चार ठिकाने बडे २ मंदिरन में दरसन करि भेट किये। गरमी बहोत लगी सो डेरान पे आयो और कह्यो जो— ये मोकों दिखायवे के लिये कियो है।

ता पाछे राजा मानसिंह वृंदावन सों चल्यो, सो तीसरे प्रहर श्रीगोवर्द्धन में आयो। तब काहूने कही जो— श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के दर्शनको चलोगे ? तब राजा मानसिंहने कह्यो जो— श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन तो अवश्य करने हैं।

सो तब गोपालपुर में आय के दरशन को समय पूछ्यो, तब काहूने कही जो—उत्थापन के दरशन होय चुके है। और भोग के दर्शन की तैयारी है। तब यह सुनि के राजा मान-सिंह पर्वत की ऊपर चढ्यो, सो महा गरमी पडै। सो उघारे पांव राजा गरमी में व्याकुल होय ऊपर गयो। सो तब ही भोग के किंवाड खुले हते। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करत ही राजा मानसिंह के नेत्र सीरे होय गये। सो ऊन दिनन में श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा बडे वैभव सों होत ही। सो ऊष्णकाल के दिन हते, तातें गुलाब के जल सों छिरकाव भयो हतो, और अरगजा की लपट आवत है, और सुगंध आवत है, और दोहरो पंखा होत है। सुपेद पाग परदनी को श्रृंगार, श्रीकंठ में मोतीन की माला, और मोतीन के करन और मोतीन के सूक्ष्म आभूषन। सो सुगंध सहित सीरी ब्यारि लागी। सो राजा मानसिंह को रोम २ सीतल भयो। सेवा

रीति देखि के राजा मानसिंहने कह्यो जो– सेवा तो यहां है। जो श्रीठाकुरजी सुख सों बिराजे है। सो साक्षात् श्रीकृष्ण प्रकट भये सुने हते श्रीभागवत में। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी यही हैं। तासों आजु मेरे बडे भाग्य हैं जो– मेने एसो दरशन पायो है।

ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे कुंभनदासजी पद गावत हते। सो जैसे श्रीगोवर्द्धनधर कोटि कंदर्प लावण्य स्वरूप मन हरन, और तैसे ही रसरूप कुंभनदासजीने पद गाये। सो पद—

राग नट–१ 'रूप देखि नेनां पलक लगे नाही'। २ 'पूतरी पोरिया इनके भये माई'। राग गोरी–३ 'आवत गिरिधर मनजू हर्यो हो'।

सो एसे पद कुंभनदासजीने गाये। ता पाछे भोग को समय होय चुक्यो तब टेरा आयो। पाछे राजा मानसिंह दंडवत करि के अपने डेरान में आयो। ता पाछे सेनआरती की समे कुंभनदासजीने यह पद गायो। सो पद–

राग केदारो। 'लाल के वदन पर आरती वारों'।

सो या प्रकार सनेह के कीर्तन गाय अपनी सेवा सों पहोंचि के कुंभनदासजी अपने घर जमुनावता में आये। सो ऊहां राजा मानसिंह अपने डेरान में जाय के अपने मनुष्यन के आगे श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा श्रृंगार की वार्ता कहन

लाग्यो। और कह्यो जो–श्री गोवर्द्धननाथजी के आगे विष्णु पद गावत हते, सो कोन हतो? जो एसे पद गाये सो मनमें पेठि गये हैं। एसे पद आज तांई मैंने कबहू सुने नाही।

तब एक व्रजवासीने कह्यो जो–ए गोरवा हैं और कुंभनदासजी ईनको नाम हैं। जो अपनी खेती में अन्न होय सो ताही सों निर्वाह करत हैं। जो तुमने सुनेही होयगें जो आगे देशांधिपति ने बुलाये हते, परंतु कुंभनदासजी कछु लिये नांही। जो ये महापुरुष हैं।

सो तब राजा मानसिंहने कह्यो जो–आज तो रात्रि भई हैं यातें काल सवारे हमहू इनसो मिलेंगे। सो तब प्रातकाल राजा मानसिंह उठि के श्रीगिरिराज की परिक्रमा करत परासोली में आयो। सो परासोली में चंद्रसरोवर हैं। तहां कुंभनदासजी न्हाय के खेत ऊपर बैठे हते सो इतने ही में श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कुंभनदास के पास पधारे। सो श्रीमुख देखत ही कुंभनदासजी श्रीनाथजी सों कहे जो–बाबा! आगे आवो। तब श्रीनाथजी आपु कुंभनदासजी की गोद में बैठि के कहे जो–कुंभनदास! में तोसों एक बात कहन आयो हूं।

सो या प्रकार कहत हते, इतने में राजा मानसिंह कुंभनदास के पास आयो। सो ताही समय श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु भाजि के डरि के एक वृक्ष की ओट में जाय के ठाडे भये। सो ताही समय कुंभनदासजी की दृष्टि तो एक श्रीगोवर्द्धननाथजी

के संग गई। सो जहां श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाडे हते सो ताही और कों देख्यो करें। तब राजा मानसिंह कुंभनदास को प्रणाम करि के पास बेठयो, परंतु कुंभनदासजी तो राजा मानसिंह की और दृष्टि हू नाही किये।

सो कुंभनदासजी की एक भतीजी हती। सो जमुनावते सो बेझिरि को चूंन कठोटी में करि, लेके कुंभनदास को रसोई* करिवे के लिये लावत हती। सो या भतीजी सों एक व्रजवासीने कह्यो जो–तू बेगि जा। जो कुंभनदासजी की पास राजा गयो हैं सो वह कछु देवे तो तू लीजियो। क्यों, जो कुंभनदासजी तो छूवेंगे हू नाही। तब यह भतिजी बेगि ही कुंभनदासजी के पास आई। तब कुंभनदासजी की दृष्टि एक वृक्ष के और देखि के कहे जो–बाबा ? राजा बैठयो है। जो कछू इनको समाधान करो। तब कुंभनदासजी कहे जो–मैं कहा करू जो बैठयो हैं तो। जो कछू बात कहत हते सोऊ भाजि गये। सो अब बात कहेंगे के, नाही कहेंगे.

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु सेनही में कुंभनदासजी सों कहे, जो–में तिहारे ऊपर वहोत प्रसन्न हूं। जो मैं बात कहूंगो तू चिंता मति करे। तब कुंभनदासजी को चित्त ठिकाने आयो। सो कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी की वार्ता राजा आदि काहूने जानी नाही।

* इस से यह सिद्ध होता है कि कुंभनदासजी स्वयंपाकी थे। स्त्री साधारन होने के कारन उस के हाथ की भी रसोई नहीं लेते थे।

पाछे कुंभनदासजीने भतीजी सों कह्यो जो–बेटी! आसन और आरसी लावे+ तो मैं सिलक करि लेऊं। तब भतीजीने कह्यो जो–बावा! आसन (घासको) पडिया (भेंसकी पाडी) खाय के आरसी (कठोटी को जल) पी गई। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो–और आसन आरसी करि ले आऊ तो आछो।

यह बात सुनि के राजा मानसिंहने अपने मनमें कह्यो जो –आसन खाय के आरसी पडिया पी गई! (सो कहा?) सो इतने ही में भतीजी एक पूरा घास को और एक कठोटी में पानी भरि के ले आई। सो पूरा को आसन बिछाय दियो सो ता पूरा पर कुंभनदासजी बैठि के कठोटी में पानी में मुख देखि के तिलक करन लागे।

तब राजा मानसिंहने अपने मनमें जान्यो जो–कुंभनदासजी के द्रव्य को बहोत संकोच हैं, जो आसन आरसी तिलक करवे की नाही है। सो कुंभनदासजी त्यागी सुनत हते सो देखे। तब राजा मानसिंहने आरसी सोने की जडाऊ घर में जडी एसी मनुष्य सों मंगाई। और पाछे वह आरसी कुंभनदासजी के आगे धरि के कह्यो जो– बाबासाहिब! या मे मुख देखि के तिलक करिये। तब कुंभनदासजी कहे जो–अरे भैया! मं याकों धरुंगो कहां? हमारे तो यह छानि के घर हैं। जो यह आरसी

+ भगवदभक्त अपनी बानी में कभी हुकुमत के शब्दों का प्रयोग करत नहीं है। इससे यहां 'लावो' एसे न कह कर 'लावे तो' एसे शब्द को उपयोग कियो है।

हमारे घर में होय तो याके पीछे कोई हमारो जीव लेय, तासों हमारे नांही चहियत है। तब राजा मानसिंहने मनमें विचारी जो– ये आरसी लेके कहा करेंगे ? जो कहा याकों बेचन जांयगे ? यह तो इन के काम की नांही है। तासों कछू एसो द्रव्य देऊं जो जनमादि भरिके खायो करें। तब हजार मोहोर की थेली कुंभनदासजी के आगे धरी।

तब कुंभनदासजीने कही जो– यह हमारे काम की नांही है। हमारे तो खेती होत है, तामें जो धान उपजत है सो हम खात हैं। और कछू हम कों चहियत नांही।

तब राजा मानसिंहने कह्यो जो–तिहारो गाम जमुनावता है, सो ताको मैं तुम कों लिख्यो करि देऊं। तब कुंभनदासजीने राजा मानसिंह सों कह्यो जो–मैं ब्राह्मण तो नांही जो–तेरो उदक लेऊं। और जो– तेरे देनो होय तो और काहू ब्राह्मण कों दीजियो, मोकों तिहारो कछु नांही चहियत है।

तब राजा मानसिंहने कह्यो जो– तुम मोकों अपनो मोदी बतावो, सो ताके पास सों सीधो सामान लियो करो। तब कुंभनदासजीने कही जो– जैसे हम हैं सो तैसे ही हमारो मोदी है। तब राजा मानसिंहने कह्यो जो– बतावो तो सही, जो मैं वाको देऊंगो। तब कुंभनदासजीने एक करील को वृक्ष दिखायो, और एक बेर को वृक्ष दिखायके कह्यो जो– उष्ण-काल में तो मोदी करील है, सो फूल और टेंटी देत है। और

सीतकाल को मोदी बेर को झाड़ है, सो बेर बहोत देत है। सो एसे काम चल्यो जात है।*

तब राजा मानसिंहने कही जो- धन्य है। जिनके वृक्ष मोदी हैं, जो मैने आज तांई बडे २ त्यागी वैरागी देखे, परंतु ये गृहस्थ सो एसे त्यागी हैं। सो एसे धरती पर नांही हैं।

सो तब राजा मानसिंह कुंभनदासजी कों प्रणाम करिके कह्यो जो- बाबा साहेब! मोसों कछू तो आज्ञा करो। तब कुंभनदासजी कहे जो-हम कहेंगे सो करोगे? तब राजा मानसिंहने कही जो-तुम आज्ञा करो सोई में अपनो परम भाग्य मानिके करूंगो। तब कुंभनदासजीने कही जो- आज पाछे तुम हमारे पास कबहू मति आइयो ×, और हम सों कछु कहियो मति।

तब राजा मानसिंहने दंडवत करिके कही जो-तुम धन्य हो, माया के भक्त तो में सगरी पृथ्वी में फिर्‌यो, सो बहोत देखे, परंतु श्रीठाकुरजी के सांचे भक्त तो एक ही तुम देखे।

---

* मोदी के प्रसंग से यह सिद्धांत स्पष्ट होता है कि-भक्तजन कभी कोई वस्तु उधार नहीं लेते, ईश्वर सहज में जो दे देता है उसी पर निर्वाह करते हैं। इस प्रसंग में निस्पृहता, त्याग, तथा आश्रय भी स्पष्ट किया है। कुंभनदासजी का निर्वाह ईश्वर के ही आश्रय पर निर्भर है न कि किसी मोदी आदि के।

× कुंभनदासजीने यहां संप्रदाय का परमोत्कृष्ट सिद्धांत-जिस वस्तु से प्रभु के स्मरण ध्यान और सेवा आदि में विक्षेप पडे उस का संपूर्ण त्याग -'तत्त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः'-स्पष्ट किया है।

सो यह कहिके राजा मानसिंह चल्यो गयो। तब भतीजीने पास आयके कुंभनदासजी सों कही जो- घर में तो कछू हतो नांही, सो राजा देत हतो सो क्यों न लियो? तब कुंभनदासजी कहे जो-बैठि रांड ?* गोवर्द्धननाथजी सुनेगे तो खीजेंगे, जो- कुंभनदास की भतीजी बडी लोभिन है। तब भतीजीने कह्यो जो- मैने तो हसिके कह्यो हतो, जो- मोकों तो कछू नांही चहियत है। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो-बेटी! काहू सों लेवेकी वार्ता हांसी में हू कबहू न कहिये।

सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आयके कुंभनदासजी की गोद में बेठिके कहे जो-तू एक छिन में एसो क्यों होय गयो? तेरे मन में कहा है? सो तू मोसों कहे? तब कुंभनदासजीने यह पद गायो। सो पद-

राग सारंग-१ 'परमभावते जियके मोहन, नैनन तें मति टरो०'

सो यह कीर्तन कुंभनदासजी को सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी गरे सों लपटिके कहे जो-कुंभनदास! मैं तोसों एक बात कहन कों आयो हूं। तब कुंभनदासने कही, जो- कहिये। आपु वा समय बात कहत हते सो ता समय तो राजा अभागिया आय गयो, सो आपु भाजि गये। सो तब सों मेरो मन वा

---

* यह शब्द कुंभनदासजी का सहज प्रतीत होता है क्योंकि "कौन रांड ढेढिनी को जन्यो०" आदि कीर्तनों में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

बात में लागि रह्यो है, सो वह बात आपु कृपा करिके कहिये।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कुंभनदास सों कहे जो–कुंभनदास! आज सखान में होड परी है, जो भोजन सब के घर को न्यारो न्यारो देखिये। तामें सुन्दर कोन के घर को है? सो तुमहू कछु मनोरथ करोगे? सो मैं यह बात तोसों कहिवे आयो हूं। तब कुंभनदासजी पूछे जो–आप की रुचि काहे पे है?

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे–जो ज्वार की महेरी, दही, दूध, बेझरि की रोटी और टेंटी को साक संधानो*। तब कुंभनदासजी कहे जो–यह तो घर में सिद्ध है। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो– बेगि मंगावो। सो तब कुंभनदासजी भतीजी सों कहे जो–घरतें बेझरि को चून, टेंटी को साक, संधानो, दही, दूध बेगि ले आउ। तब भतीजीने कही जो– बेझरि को चून टेंटी को साक, संधानो, दही इतनो तो मैं ले आई हूं और दूध जमायवेके तांई तातो होत है। तब कुंभनदासजी कहे जो–आज दूध जमावे मति। दूध की हांडी और ज्वार घरतें दरिके ले आव सो तहां तांई में रसोई करत हौं। सो न्हायके

---

* श्रीनाथजीने कुंभनदासजी से यह इस लिये कहा कि–उनके यहां और कुछ नहीं था, यदि अन्य सामग्री का नाम लेते तो प्रभु की प्रसन्नता के अर्थ वे दुख उठाकर भी उद्यम करते और यदि वह सिद्ध न होता तो क्लेश पाते। पर प्रभु भक्त को प्रसन्न ही देखना चाहते हैं और प्रेम की वस्तु को अंगीकार करते है।

तो कुंभनदासजी बैठे ही हते। तासों वेझरि की रोटी लोंन डारिके ठीकरा पे किये। इतने में भतीजी जमुनावता गाम में जायके ज्वारि दरिके दूध की हांडी ले आई। तब कुंभनदासजी हांडी में पानी डारिके ज्वारकी सामग्री सिद्ध किये। इतने में घर घरतें सखान की छाक आई, सो कुंभनदास की सामग्री श्रीगोवर्द्धननाथजी पास राखे। पाछे घर के सखानको चखाय आपु आरोगे।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश. कुंभनदासजी की सामग्री विशाखाजीने दूध में मिश्री डारि श्रीस्वामिनीजी को आरोगाय अति मधुर कर दीनी। सो काहतें? जो– विशाखाजी को प्राकट्य कुंभनदासजी हैं।

और जब श्रीठाकुरजी कों कुंभनदासजी की सामग्री बहोत स्वाद लगी, ता समय कुंभनदासजीने ये कीर्तन गाये। सो पद–

राग सारंग–१ 'व्रजमें बडो मेवा एक टेंटी।' २ 'घरतें आई है छाक।*'

---

* घर तें आई है छाक॥ खाटे मीठे और सलोने विविध भांत के पाक॥ १॥ मंडल रचना करि जमुनातट सघन लता की छांहि। गोपी ग्वाल सकल मिलि जेमत मुख हि सराहत जांहि॥२॥ बांटत बल, मोहन दोउ भैया कर दोना अति सोहे। चाखत आपुन सखन मुखन दे के गोपीजन मन मोहे॥३॥ टेंटीं, साक, संधानो, रोटी, गोरस सरस महेरी। कुंभनदास गिरधर रसलंपट नाचत दे दे फेरी॥४॥

सो यह कुंभनदासजी अति आनंद पायके गाये। और अपने मन में कहे जो—श्रीगोवर्द्धननाथजीने भली एक बात कही, जो यामें या लीला को अनुभव भयो।

या प्रकार श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदासजी की ऊपर कृपा करते।

वा दिन कुंभनदासजी रस में मग्न होय गये। सो सांझ को सरीर की सुधि नांही। तब परासोली तें दोरे जो—आज में श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन नांही पायो। विरह मनमें उठि आयो सो सेन भोग सरत हतो ता समय कुंभनदासजी मंदिर में आये। मनमें यह जो—कब दरशन पाऊं।

इतने में सेन के किंवाड खुले। तब कुंभनदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करि नेत्र इकटक लगायके यह कीर्तन गाये। सो पद—

राग बिहागरो— १ 'लोचन मिलि गये जब चार्यों०'। २ 'नंदनंदन की बलि २ जइये०'। राग केदारो— ३ 'छिनु छिनु बानिक और ही और०'।

सो या प्रकार रस के कीर्तन कुंभनदासने बहोत गाये। सो वे कुंभनदासजी एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग—९

और एक समय* वृंदावन के संत महंत कुंभनदासजी सों मिलिवे कों श्रीगिरिराज पे आये। सो यासों आये जो— जाने जो इनसों श्रीठाकुरजी साक्षात् बोलत हैं। और कुंभनदासजी

---

* सं. १९१५ के अगहन मासमें (देखो—विठ्ठलेश्वर चरितामृत)

श्रीस्वामिनीजी की बधाई गाये हैं, तासों इनसों मिलिके पूछें जो-श्रीस्वामिनीजी को वर्णन हमहू किये हैं। और देखें जो- कुंभनदासजी कैसो वर्णन करत हैं ?

सो यह बिचारिके हरिवंश, हरिदास प्रभृति महंत, स्वामी आय कुंभनदासजी सों मिलिके पूछे जो-कुंभनदासजी ! तुमने जुगल स्वरूप के कीर्तन किये हैं, सो हमने तिहारे कीर्तन बहोत सुने, परि कोई श्रीस्वामिनीजी को कीर्तन नांही सुन्यो, तासों आपु कृपा करिके कोई पद श्री स्वामिनीजी को सुनावो।

तब कुंभनदासजीने श्रीस्वामिनीजी को एक पद करिके उनकों सुनायो। सो पद-

राग रामकली- १ 'कुंवरि राधिके ! तुव सकल सौभाग्य सीमा, या वदन पर कोटिशत चंद वारि डारों'।०

यह पद कुंभनदासजीने गायो सो सुनिके श्रीवृंदावन के संत महंत बहोत प्रसन्न भये। और कहे जो-हमने श्रीस्वामिनीजी के पद बहोत किये हैं, तामें चंद्रमा आदि की उपमा बहोत दी हैं। परि कुंभनदासजी ! तुमने तो शतकोटि चंद्रमा वारि डारें हैं। तासों कुंभनदासजी कों श्रीस्वामिनीजी आगे जगत में कोऊ उपमा देवे योग्य नांही। सो या प्रकार अद्भुत स्वरूप को वरणन किये हैं।

ता पाछे कुंभनदासजी सों बिदा होयके सिगरे वृंदावन में आये ।

सो ये कुंभनदासजी भावना, लीलारस में मग्न रहते । सो एसे कृपापात्र भगवदीय हैं ।

वार्ता प्रसंग–६

और एक समय÷ श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल में श्रीनवनीतप्रियजी सों बिदा मांगिके श्रीद्वारिकाजी पधारिवे को विचार किये सो परदेश में दैवी जीवन के उद्धारार्थ, श्रीगोकुल तें श्रीनाथजीद्वार आयके श्रीगोवर्द्धननाथजी के सेवा शृंगार किये । ता पाछे अनोसर करायके आपु भोजन करि के अपनी बैठक में गादी तकियान के ऊपर बिराजे हते, सो तहां सिगरे वैष्णव आयके पास बैठे हते । सो बात चलत में कुंभनदासजी की बात चली ।

तब काहू वैष्णवनें श्रीगुसांईजी के आगे यह बात कही जो–महाराज ! कुंभनदासजी के घर आजकाल द्रव्य को बहोत संकोच है, सो काहेतें ? जो घरमें परिवार बहोत है, जो सात बेटा हैं, और सातों बेटानकी बहू है । और आपु स्त्रीपुरुष और एक भतीजी । सो ताहूमें आये गये वैष्णवन को समाधान करत हैं, और आमदनी तो थोरीसी है । जो परासोली में खेती है, तामें निर्वाह टेंटी फूलन सों करत हैं ।

---

* सं. १६३१ के लगभग ।

यह वात सुनिके श्रीगुसांईजीने अपने मनमें राखी। ता पाछें (जब) कुंभनदासजी श्रीगुसांईजी के दरशन कूं आये, तब दंडवत करिके ठाडे होय रहे। तब श्रीगुसांईजी कहे जो- कुंभनदासजी! बैठो। तब कुंभनदासजी बेठे।

पाछे श्रीगुसांईजी सिगरे वैष्णवनकों विदा करिके कुंभनदाससों कहे, जो- कुंभनदासजी! हम श्रीद्वारिका के मिस परदेशकों जात हैं, तहां अनेक वैष्णवनसों मिलाप होयगो। सो वैष्णवननें बहोत विनती पत्र लिखे हैं, तासों अवश्य जानो है, सो तुम हमारे संग चलो। सो भगवदीयनको विरहको क्लेश बाधा न करे, और भगवदीयन को काल आछें व्यतीत होय। सो तिहारे संग तें कछू जान्यो न परे। और हमने सुन्यो है जो- तिहारे घर द्रव्यको संकोच है, सोऊ कार्य सिद्ध होयगो। तासों तुमकों सर्वथा चल्यो चहिये।

तब कुंभनदासजीने श्रीगुसांइजीसों विनती कीनी जो- महाराज! आपु के साम्हे हमसों बहोत बोल्यो नांही जात है, जो- आपु आज्ञा करो सोई हमकों करनो।

इतने में उत्थापन को समय भयो। तब श्रीगुसांईजी स्नान करिके, श्रीगोवर्द्धननाथजी कों उत्थापन करायकें, सेन पर्यंतकी सेवासों पहोंचिके आपु बैठकमें पधारे। तब श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदास सों कहे जो- अब तुम घर जाऊ, जो सवारे घर सों विदा होयके आइयो, राजभोग आरती पाछे परदेश कों चलेंगे।

पाछे कुंभनदासजी श्रीगुसांइजीकों दंडवत करिके अपुने घर जमुनावता में आये। ता पाछे सवारे घरतें श्रीगुसांईजी के पास आये।

तब श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिके परवत ऊपर पधारि के श्रीनाथजी कों जगाये। पाछे सेवाशृंगार करि राजभोग धरि समयानुसार भोग सरायके, राजभोग आरती करि श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिदा होय परवत सों नीचे पधारे।

सो अप्सराकुंड ऊपर डेरा अगाऊ भये हते। तब कुंभन-दाससों कहे जो– अब हम अप्सराकुंड ऊपर डेरान में जायकें सोवेंगे। सो तब सब वैष्णव तथा कुंभनदासजी अप्सराकुंड ऊपर आये। तब कुंभनदासजी अपने मनमें विचार करन लागे जो–हे मन! अब कहा करिये?

'कहिये कहा कहिवे की होय? माननाथ बिछुरन की बेदन जानत नांहि न कोय'॥ १ ॥

या प्रकार विचार करत श्रीगोवर्द्धननाथजी को बिरह हृदयमें बढ़ि गयो। तब श्रीगुसांइजी आपु डेरान के भीतर जागे। सो जब उत्थापन को समय भयो, तब कुंभनदासजी कों श्रीनाथजी के दरशन की सुधि आई× नेत्रनमें सों आंसुन

× प्रेम में जब कभी याद आती है, तब विव्हलता होती है। आसक्ति में समयानुसार याद आने पर विकलता प्राप्त होती है। और व्यसन में चोवीसों घंटा याद आने पर अस्वास्थ्य होते ही तन्मयता से एक रूपता

की धारा चली, सो सगरे सरीर में पुलकावली होंन लागी। पाछे कुंभनदासजी डेरान के पासही एक वृक्ष* तरें ठाड़े २ धीरे २ गावन लागे। सोपद–

राग सारंग–'कितेक दिन व्हे जु गये विनु देखे०'।

यह कीर्तन कुंभनदासजीनें अत्यंत विरह क्लेश सों गायो। सो श्रीगुसांईजी आपु डेरान के भीतर बेठिके कुंभनदासजीको सगरो कीर्तन सुने। सो कुंभनदासजी को क्लेश श्रीगुसांईजी आपु सही नांहो सके। सो आपु डेरानतें बाहिर पधारिके कुंभनदासजी की यह दशा देखे, जो– नेत्रन सों जल वह्यो जात है, महाविरह करिके दुखी होय रहे हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुखतें कुंभनदाससों कहे जो– कुंभनदास! तुम मंदिर में जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करो, जो तिहारो विदेश होय चुक्यो।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश.

सो काहेतें? जो जैसी तिहारी दशा यहां है, सो तैसी दशा उहां श्रीगोवर्द्धननाथजी की होयगी। सो कैसे जानिये? जो–जैसे 'गज्जनधावन' को श्रीअक्काजी ने पान लेवे कों पठायो सो गज्जन कों तो श्रीनवनीतप्रियजीके विरहको एक क्षन सह्यो

हो जाती है। इस प्रकार प्रेम की अवस्था यें हैं। कुंभनदासजीं कों आसक्ति थी जिससे उन्हें उत्थापन के समय सेवा का समय जानकर विकलता प्राप्त हुई।

* पूछरी पर रामदासजी की गुफाके सामने 'धों'के वृक्षके नीचे। यहां यदुनाथदासजीने एक चोंतरा सं. १९८१ में बनवा दिया है।

न जातो, सो पान लेवे कों द्वारसों वाहिर जात ही विरह ज्वर चढ़ सो द्वार पास ही दुकान में परि रह्यो मूर्च्छा खाइके। और यहां म में श्रीआचार्यजी श्रीनवनीतप्रियजी को राजभोग धरे। तब श्रीनवन प्रियजी ने महाप्रभुन सों कही जो—मेरो गज्जन आवेगो तब मैं आरोगूं

तब श्रीआचार्यजी सवनसों पूछे जो—गज्जन कहां गयो है?

तब श्रीअक्काजी कहे जो— पान न हते तासों गज्जन को पान पठायो है। तब श्रीआचार्यजी कहे जो—तुम जानत नांही जो—गज्ज बिना श्रीनवनीतप्रियजी एक छिन नांही रहत हैं? तासों गज्जन पान लेनको क्यों पठायो?।

ता पाछे गज्जन को बुलायेवे कों व्रजवासी पठायो, सो गज्जन बुलायके ले आयो। तब गज्जनने श्रीनवनीतप्रियजी की पास अ के कह्यो जो— बावा! आरोगो। तब श्रीनवनीतप्रियजी आरोगे। स गज्जन विना आपु विरह करिकें बैठि रहे।×

सो यह श्रीआचार्यजीके मार्ग की मर्यादा है। जो—जैसो सेवक एक चित्त सों स्वामी के ऊपर (अनन्य) भाव होय, तैसेही स्वामी क भाव दास विषे (विशेष) सेवक के ऊपर होय। तासों श्रीभगवान अर्जुन प्रति कहे हैं जो—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'।

तासों श्रीगुसांइजो आपु कुंभनदासजी सों कहे जो—जैसो तुम यह श्रीगोवर्द्धनाथजी के लिये विरह दुःख करत हो, तैसे उहां श्री-

---

× सं. १५७५ के लगभग।

गोवर्द्धननाथजी तिहारे लिये विरह दुःख करत हैं। तासो तुम बेगि जायकें श्रीगोवर्द्धनाथजी के दर्शन करो, तिहारो विदेस होय चुक्यो।

या प्रकार श्रीगुसांईजीने कुंभनदासकों आज्ञा दीनी। तब कुंभनदासको रोम रोम सीतल होय गयो। तब मनमें प्रसन्न होय श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि बेगि अप्सराकुंडतें दोरिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में आये।

ता समय उत्थापन के दरशन को समय हतो, सो किंवाड खुले। तब कुंभनदासजी ने यह पद गायो। सो पद–

राग नट–'जो पै चोंप मिलन की होय०'।

यह पद सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी प्रसन्न होयके कुंभनदास सों कहे जो– कुंभनदास! मैं तेरे मनकी बात जानत हूं। जो तू मेरे बिना रही नांहि सकत है। तैसें मैं हू तो विना रहि नांही सकत हों। तासों अब तू सदा मेरे पास ही रहेगो।

तब कुंभनदासजीने बहोत प्रसन्न होयके साष्टांग दंडवत कीनी, और हाथ जोरिके कुंभनदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों विनती कीनी जो– महाराज! मोकों यही चहियत हतो, और यही अभिलाषा हती, जो– तुमसों बिछोयो न होय।

सो कुंभनदासजी एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–७

और एक समय श्रीगुसांईजी के पास कुंभनदास बैठे हते, और सगरे वैष्णव हू बैठे हते। सो श्रीगुसांईजी

आपु हसिके कुंभनदासजी सों पूछे जो– कुंभनदास! तिह
बेटा कितने हैं। तब कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजी सों क
जो– महाराज! बेटा तो मेरे डेढ़ है।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो– हमने तों सात बेटा सुने
और तुम डेढ़ बेटा कहे, ताको कारन कहा? तब कुंभनदास
ने कह्यो जो– महाराज! यों तो सात बेटा हैं, तामें पांच
लौकिकासक्त हैं, जो वे बेटा काहे के हैं? और पूरो एक बे
तो चत्रभुजदास है। और आधो बेटा कृष्णदास है। सो श्रीगो
वर्द्धननाथजी की गायन की सेवा करत है।

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश.

सो तहां यह संदेह होय जो–गायन की सेवा तो सर्वोपरि है
और गायन की सेवा किये तें बहोत वैष्ण
श्रीठाकुरजी कों पाये हैं, और कुंभनदास
कृष्णदास कों आधो बेटा क्यों कहे?

तहां कहत हैं, जो– श्रीआचार्यजी आपु यह पुष्टिमार्ग प्रक
किये हैं। सो पुष्टिमार्ग व्रजजन को भावरूप मार्ग है। सो भगवदीय
गाये हैं जो–'सेवा रीति प्रीति व्रजजन की जनहित जग प्रकटाई'।

सो व्रजभक्तन की कहा रीति है? जो श्रीठाकुरजी के सन्निधान मे
तो सेवा करें, सो स्वरूपानंद को अनुभव करि संयोग रस में मग्न रहैं
और जब श्रीठाकुरजी गोचारन अर्थ व्रज में पधारें तब व्रजभक्त विरह
रस को अनुभव करि गान करें.

सो या प्रकार संयोग रस और विप्रयोग रस को अनुभव जाकों होय सो पूरो वैष्णव होय। और (जामे) एक न होय सो आधो वैष्णव है। सो कृष्णदास तो गायन की सेवा करत है। और श्रीगोवर्द्धन-नाथजी को दरशनहू होत है। परंतु व्रजभक्तन की रहस्य लीला को अनुभव नांही है। तासों ये आधो है। और चत्रभुजदास संयोग और विप्रयोग दोऊ रस के अनुभवयुक्त सेवा करत हैं, सो लीलासंबंधी कीर्तन हू गान करत हैं। तासों कुंभनदासजी चत्रभुजदास कों पूरो बेटा कहे।

यह कुंभनदासजी के बचन सुनिके श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके कहे, जो—कुंभनदास ! तुम सांची बात कही। जो भगवदीय है सोई बेटा है। और बहोत भये तो कौन काम के ?

सो चत्रभुजदासजी की वार्ता तो श्रीगुसांईजी के सेवकन में लिखी है, और अब कृष्णदास की वार्ता कहत हैं—

वार्ताप्रसंग—८

कृष्णदास ग्वाल की वार्ता

सो ये कृष्णदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के गायन की सेवा करते, सो गायन के ग्वाल हते। सो श्रीगुसांईजी आपु कृष्णदास कों गायन की सेवा दीनी हती। सो सगरे खिरक की सेवा करिकें आछें झारि बुहारिके ता पाछे गायन के संग वन में जाते, सो सगरे दिन गाय चरावते। सो संध्या समय गायन को घेरिके ले आवते

एक दिन कृष्णदास गाय चरायके घर आवत हते स
पूंछरी के पास आये। सो सगरी गाय तो खिरक में ग
और एक गाय बहुत बडी हती, ताको एन बहोत भा
हतो। सो दूध हू बहोत देती, और थन हू बडे हते। सो व
गाय हरुवे हरुवे चलती। वा गाय के पाछे कृष्णदा
आवत हते सो पूंछरी के पास श्रीगिरिराज की कंदरा में त
एक नाहर निकस्यो। सो वे सगरी गाय तो भाजिके खिरव
में आई। और वह गाय धीरे चलती, सो वा गाय के ऊपर
नाहर दौर्‌यो। तब कृष्णदासने नाहर सों ललकारिके कह्यो
जो– अरे अधर्मी ! यह श्रीगोवर्द्धननाथजी की गाय है, और
तू भूख्यो होय तो मेरे ऊपर आव।

सो नाहर की यह रीति है जो–ललकारे सो ताही पे आवे।
तब नाहर निकट आयो। सो जब कृष्णदासने वा गाय को
हांकी सो वह गाय डरपिके भाजी सो खिरक में आई, और
कृष्णदास कों नाहरनें मार्‌यो। और सब गाय भाजिके खिरक में
आई हती सो गायन कों गोपीनाथ आदि सब ग्वाल दुहन लागे।

गोपीनाथ ग्वाल बडे कृपापात्र भगवदीय हते। सो
देखे तो–श्रीगोवर्द्धननाथजी वा बडी गाय को दुहत हैं। और
कृष्णदास वा गाय को बछरा पकरें ठाड़े हैं, सो कुंभनदासजी
हू वहां ठाड़े हते। सो गाय बछराकों कों चाटत है। सो कुंभ-
नदासजी कों खिरिक में एसो दर्शन भयो।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी वा बडी गाय कों दुहिके आपु तो मंदिर में पधारे।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सेन भोग धरे। सो कुंभनदास हू खिरक में ते मंदिर में चले, सो दंडोती सिला के पास आये। इतने में सब समाचार आये, जो कृष्णदास ग्वाल कों नाहरने मार्यो।

तब कृष्णदास की बात काहूने कुंभनदास सों कही, जो- तिहारे बेटा कृष्णदास कों नाहरने मार्यो है। यह बात सुनिके कुंभनदासजी मूर्च्छा खाइके गिर पडे। सो एसे गिरे जो कछु देहानुसंधान न रह्यो। सो कुंभनदास कों व्रजवासी वैष्णव बहोतेरो बुलावें सो कुंभनदासजी बोले नांही।

तब ये समाचार काहूने श्रीगुसांईजी सों जायके कहे जो-महाराज! कुंभनदास को बेटा कृष्णदास ग्वाल नाहरने मार्यो है, और कृष्णदासने गाय बचाई। आपु नाहर के आडे परि देह छोडी, सो कृष्णदास पूंछरी की और परे हैं।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो-एसे मति कहो। क्यों? जो गाय कृष्णदास को कबहू छोडि आवे नांही। सो काहेतें जो- अंत समय गाय संकल्प करत है, सो ताकों गाय उत्तम लोक में ले जात है। और कृष्णदासने तो श्रीगोवर्द्धननाथजी की गाय बचाई है, सो श्री गोवर्द्धननाथजी की गाय कृष्णदास कों कबहू न छोड़ेगी।

तब श्रीगुसांईजी आप पूछे जो-कुंभनदासजी क
है ? तब काहू वैष्णवने विनती कीनी जो-महाराज
कुंभनदास कों तो पुत्र को सोक बहोत व्याप्यो है, सो दंडोत
सिला के पास मूर्च्छा खायके गिरपरे हैं। सो कितने
लोग पुकारत हैं, परि कुंभनदासजी काहू सों बोलत नांही। ज
अचेत परे हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की सेवासों पहोंचि
अनोसर कराय परवत तें नीचे पधारि दंडोती सिला के पा
कुंभनदासजी परे हते तहां पधारे। ता समय वैष्णवनने
सब समाचार कहे। सो श्रीगुसांईजी आपु देखें तो कुंभन
दासजी की पास सब लोग ठाड़े हैं। ता समय लोगननें कही
जो- महाराज! कुंभनदासजी बडे भगवदीय हैं, परंतु पु
को शोक महा बुरो होत है, सो या पीडा सों कोई बच्यो
नांही है।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो-इनकों पुत्र को शोक नांही
है, जो इनको और दुःख है। सो तुम कहा जानो ? इनको
यह दुख है जो-मृतक में श्रीनाथजी के दरशन कैसें होयगे।*
सो या दुःख सों गिरे है। सो अब तुमारो संदेह दूर होयगो

---

* एसे महानुभाव भी संप्रदाय की मर्यादा रखते थे इसके दो कारण हैं। एक तो देखादेखी अन्य साधारण जीव मर्यादा का अतिक्रम न करे, दूसरा सूतक के मिष विप्रयोग की सिद्धि। आजकल जो लोग सूतक में भी सेवा करते हैं, सो मर्यादा का अतिक्रम करते हैं, और विप्रयोग के परमोत्कृष्ट फल से भी विमुख होते हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु भगवदीयन को स्वरूप प्रकट करिवेके लिये कुंभनदासजी कों पुकारिके कहे जो—कुंभनदास! सवारे श्रीनाथजी के दर्शन कों आइयो, जो तुमकों श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करवावेंगे।

तब श्रीगुसांईजी के यह वचन सुनिके कुंभनदासजीने तत्काल उठिके श्रीगुसांईजी कों साष्टांग दंडवत कीनी, और विनती कीनी। जो—महाराज! आपु विना मेरे अंतःकरण की कोन जाने? तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—हम जानत हैं, तुमकों संसार संवंधी दुःख लगे नांही। जो कोई वैष्णव तिहारो एक क्षण संग करे तो वाकों लौकिक दुःख न लागे। तो तुम कों कहा? तासों जावो, जो कृष्णदास के शरीर को संस्कार करो। पाछे सवारे दरशन कों आइयो। तब कुंभनदासजी श्रीगुसांईजी को दंडवत करिके जायकें कृष्णदास के सरीर को क्रियाकर्म किये।

और श्रीगुसांईजी आप वेठक में जायके विराजे, तब सगरे वैष्णव बैठक में आयके वैठे। सो इतने में गोपीनाथदास ग्वाल (नें) आयके कह्यो जो—महाराज! कृष्णदास कों तो पूछरी पास नाहरने मार्‍यो, और मैं खिरक में गोदोहन करत हतो, सो ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु वा बडी गाय कों दुहत हते, और कृष्णदास वा गाय को वछरा थांभे हते। सो गाय बछरा कों चाटत हती। सो एसो दरशन खिरक में मोकों भयो।

तब श्रीगुसांईजी श्रीमुख सों कहे जो- यामें आश्चर्य कहा ? ये कृष्णदास एसे भगवदीय हैं जो आपु नाहर के आडे परे और श्रीगोवर्द्धननाथजी की गाय कों बचाई । सो कृष्णदास के ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु प्रसन्न होयके अपनी लीला में कृष्णदास कों प्राप्त किये । सो तुम भगवदीय हो, तासों तुमकों दर्शन भयो । ओर कों तो लीला के दर्शन दुर्लभ हैं ।

यह वात सुनिके सगरे वैष्णव व्रजवासी बहोत प्रसन्न भये, जो सेवा पदार्थ एसो है ।

ता पाछें प्रातःकाल कुंभनदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कों आये । तब श्रीगुसांईजीने सेवकन सों आज्ञा कीनी, जो—सबतें पहले कुंभनदासजी कों दरसन करवाय देउ, ता पाछे और सगरे लोग दरसन करेंगे । पाछें श्रीगुसांईजीने सबतें पहले कुंभनदासजी को दरसन करवाय दियो । सो या प्रकार कुंभनदासजी के ऊपर श्रीगुसांईजी आपु अनुग्रह किये ।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो काहेतें ? जो सूतकी को भगवत्—मंदिर में कोन आयवे देतो ! सो कुंभनदास कों सूतक में दरसन कराये । सो यह रीति वा दिन तें राखी । जो सूतक जाको होय सोहू दरशन पावे. ×

× आज भी प्रायः ग्वाल के समय श्रीनाथद्वार आदि स्थानो में सूतकियों कों दर्शन मिलते हैं ।

सो या प्रकार कुंभनदासजी की कृपातें सूतकीनको दरसन होंन लागे। सो यह रीति श्रीगुसांईजी आपु यासों किये जो–वैष्णव के हृदय में स्नेह है, सो आगे कोई जानेगो नांहो। तासों आगे के वैष्णवन कों दरसन की छुट्टी रहे। तब वैष्णव हू सुख पावें, और श्रीगोवर्द्धननाथजी हू सुख पावें। तासों आगे दरसन की छुट्टी राखे।

सो कुंभनदासजी भोग पर्यंत दरसन करि पाछे परासोली में जायके विरह के पद गावते। सो पद–

राग विहागरो– १ 'तिहारे मिलन विनु दुखित गोपाल'०। २–'अब दिन रात पहार से भये।'

राग केदारो–३ 'औरन के समीप विछुरनो आयो एक मेरे ही हीसा।'

सो या प्रकार विरह के पद गायके कुंभनदासजीनें सूतक के दिन व्यतीत किये। ता पाछे शुद्ध होयके कुंभनदासजी अपनी सेवा में आये, सो जैसे नित्य नेम सों सेवा करते ताही प्रकार सों करन लागे। सो या प्रकार को स्नेह कुंभनदासजी को श्रीगोवर्द्धननाथजी में हतो।

वार्ताप्रसंग-९

और एक दिन श्रीगोकुलनाथजी और श्रीबालकृष्णजी ये दोउ भाई मिलिके श्रीगुसांईजी सों कहे जो–कुंभनदासजी कबहू श्रीगोकुल नांही गये हैं। सो ये कोई प्रकार श्रीगोकुल तांई जांय तब श्रीनवनीतप्रियजी के दरसन कुंभनदासजी करें।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–कुंभनदासजी तो श्री-गोवर्द्धननाथजी की रहस्य लीला में मगन हैं, सो इनकों श्रीगोवर्द्धननाथजी किये हैं। तब श्रीगोकुलनाथजी कहे जो–इनको ले जायवे को उपाय तो करिये। पाछे न आवें तो भगवद् इच्छा। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–उपाय करो, परंतु कुंभनदासजी श्रीयमुनाजी पार कबहू न उतरेंगे।

पाछे कछूक दिन में श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल पधारे हते, और श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी श्रीनाथजी-द्वार में हते। सो वैशाख सुदि ११ के दिन श्रीगोकुलनाथजी श्रीबालकृष्णजी सों कहे जो–श्रीगोकुल में श्रीगुसांईजी हैं और आपुन दोउ जने यहां है। तासों कुंभनदासजी कों श्रीगोकुल ले चलिये।

तब श्रीबालकृष्णजीने कह्यो जो–कैसे ले चलोगे? जो कुंभनदासजी तो असवारी पर बैठत नांही हैं। सो तब श्रीगोकुल-नाथजीने कह्यो जो–कुंभनदासजी असवारी पें तो बैठेगें नांही, और दिन में श्रीगोवर्द्धनाथजी के दरशन छोडिके कहूं जांयगे नांही। तासों रात्रि उजियारी है, सो हमहू पावन सों चलेंगे सो या प्रकार सों चले चलेंगे। सो देखें कहा कौतुक होत है? जो कुंभनदासजी सरिखे भगवदीय को संग तो या मिष तें होयगो, सो यही बडो लाभ होयगो।

पाछे दोनो भाई श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन आरती तांई

सेवा सों पहोंचिके श्रीनाथजी कों पोंढाय अनोसर करवाय बाहिर आये और कुंभनदासजी को हाथ जोडिके भगवद् वार्ता लीला को भाव कहन लागे। सो कुंभनदासजी लीलारस में मगन होय गये, सो कछु सुधि न रही जो– हम कहां हैं ?

तब श्रीगोकुलनाथजी भगवद्वार्ता करत कुंभनदासजी को हाथ पकरिके अन्योर की ओर परवत सों उतरिकें श्रीगोकुल कों चले। सो रहस्य वार्ता में मगन हैं। और श्रीबालकृष्णजी दोय चारि वैष्णव संग चुपचाप होयके कुंभनदासजी की और श्रीगोकुलनाथजी की वार्ता सुनत श्रीगोकुल कों चले। तब मारग में श्रीगोकुलनाथजी वार्ता करिके कुंभनदासजी सों पूछे। जो–श्रीस्वामिनीजी को शृंगार कबहू श्रीगोवर्द्धनधर हू करत हैं ? तब कुंभनदासजी प्रेम में मगन होयके कहे जो–हां, हां, करत हैं।

जो–"एक दिन आश्विन महिना में श्रीनाथजी और श्रीस्वामिनीजी ललितादिक सखी संग रात्रि कों वन में फूल बीने। ता पाछे समाज सहित रासमंडल के पास सिंगार को चोतरा हैं सों ता ऊपर आपु विराजे। तब विसाखाजी सिंगार करन लागी। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो–आजु सिंगार मैं करूंगो।"

"सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीस्वामिनीजी के पास ठाडे भये। सो मुखादिक के दरशन विना रह्यो न जाय दोउन

सों। तब विसाखाजी परम चतुर दोउन के हृदय को अभिप्र
जानि श्रीस्वामिनीजी के आगे एक दर्पन धर्‍यो। तब वा द
में दोउन के श्रीमुख सन्मुख भये, सो अवलोकन लागे।
श्रीठाकुरजी बडे लंबे बार स्याम सचिकन श्रीहस्त में कांक
सों सम्हारि, एक एक बार में झीने मोती परम चतुराई
पिरोयके श्रीस्वामिनिजी के मुखचंद-शोभा दर्पन में देखि
प्रसन्न होय गये, सो हाथ सों केश छुटि गये। तब सग
मोती बार में सो निकसि श्रृंगार को चोतरा हैं रतन खचि
तहां फेलि गये। तब बडो हास्य भयो। जो इत
वारलों श्रृंगार किये सो एक छिन में बडो होय गयो। सो र
सखीनने कही।"

"तब श्रीठाकुरजीने विसाखाजी सों कह्यो जो-तुम बेन
पकरे रहो, मैं मोती पिरोऊं। तब श्रीविसाखाजीने बेन
पकरी। सो तब फेरि बेनी मोतीन सों श्रृंगार करि मोती
सों मांग संवारी। पाछे फूलन के आभूषन सखीजनने बनाय
के श्रीठाकुरजी कों दिये। सो श्रीठाकुरजी पहरावत जांय
और छिन छिन में मुखचंद की शोभा देखिके रोम रोम
आनंद पावें। सो या प्रकार सब शृंगार श्रीगोवर्द्धननाथजी
करिके काजर, बेंदी, तिलक और चरणमें महावर किये। पाछे
श्रीस्वामिनीजी श्रीगोवर्द्धनधर को शृंगार किये। ता पाछे
रासविलास आदि अनेक लीला करी"।

सो या प्रकार वार्ता करत २ श्रीगोकुल साम्हे श्रीयमुनाजी के तीरलों कुंभनदासजी आये। पाछे पार श्रीगोकुल तें नांव पर चढिके श्रीगुसांईजी आपु या पार आये*। सवारो हू भयो। सो कुंभनदासजी कों शरीर की सुधि नांही, लीलारस में मगन हते।

तब कुंभनदासजी सावधान होयके देखे तो सवारो भयो है। सो इतने में श्रीगुसांईजी कों देखिके श्रीगोकुलनाथजी सों हाथहू छूटि गयो। सो कुंभनदासजी महा उतावल सों भाजे जो श्रीगोवर्द्धननाथजी के यहां कीर्तन कोन करेगो? जो–हाय हाय मेरी सेवा गई।

सो या प्रकार मनमें कहत दोरे, सो अति बेगि दोरे। तब श्रीगोकुलनाथजी और श्रीबालकृष्णजी और सब वैष्णव कुंभनदासजी कों पकरिवे कों पीछे ते दौरे। सो कुंभनदास तो भाजे दोड़ेई गये। इन कोई कों पाये नांही। पाछे श्रीगुसांईजी की पास आये। तब श्रीगुसांईजी कहे जो–अब कहा कुंभनदास कों पावोगे? जो इनको यहां काहेकों ले आये हों? जो ये श्रीजमुना के पार कबहू न उतरेंगे। सो हमने तुमसों पहलेही कह्यो हतो।

तब श्रीगोकुलनाथजी श्रीगुसांईजी सों कहे जो–पार न उतरे तो कहा भयो? परंतु सगरी रात्रि भगवद्वार्ता के भावमें

* श्रीबालकृष्णजीने पहिले से वैष्णव द्वारा समाचार भेजाथा, उसे सुनकर।

महा अलौकिक सिद्धि मिले तें भई। सो वह बडो लाभ भ
है, जो भगवदीयन को सत्संग एक क्षण हू दुर्लभ हैं।

यह सुनिके श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—यह तो तुम ठ
कहे, परंतु अब या समय तो कुंभनदास को दोरनो पर्‍यो
और जहां तांई कुंभनदास श्रीगिरिराज ऊपर न जायंगे, त
तांई श्रीगोवर्द्धननाथजी जागेंगे नांही। जो कुंभनदास जगाय
के कीर्तन गावेंगे तब जागेंगे। सो एसे, भक्त के आधी
श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं। तासों तुमकों भगवद्वार्ता सुनन
होय तो परासोली में जमुनावता में जायके कुंभनदास स
पूछियो। सो तहां कुंभनदासजी तुम सों कहेंगे।

ता पाछे श्रीगोकुलनाथजी श्रीबालकृष्णजी सब वैष्ण
सहित श्रीगोकुल पधारे। सो श्रीगुसांईजीको घोड़ा जीन सहि
पार बंध्यो हतो, सो ता पर आप श्रीगुसांईजी बेगि ही असवा
होयके घोड़ा दोरायके चले। और कुंभनदासजी तो दोरे जा
हते, सो तहां आयके श्रीगुसांईजी कुंभनदासजी सों कहे जो-
तुमने कबहू यह मारग देख्यो नांही, सो तुम भूलि जाओगे
तासों घोड़ा के पीछे पीछे दोरे आवो।

तब कुंभनदासजी श्रीगुसांईजी के पीछे दोरे चले
जांय। सो यहां रामदास भीतरिया आदि जो न्हायके पर्व
ऊपर आवें सो (ये) छुप जांय। सो एसें करत चार घड़ी दिन
चढ्यो। तब श्रीगुसांईजी आपु गिरिराज पधारिके घोड़ा पर

तें उतरिके तत्काल स्नान करि पर्वत ऊपर मंदिरमें पधारे। तब देखे तो सगरे भीतरिया रामदास सहित न्हायके मंदिर में आये हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु पूछे जो—रामदास! आज इतनी अवार क्यों भई है? तब रामदासने वीनती कीनी जो—महाराज! आज न जानिये कहा भयो है? जो चारि बेर न्हाये और चारयों बेर सगरे भीतरिया छुवाने। सो अब पांचमी वार न्हायके आये हैं, सो कारन जान्यो न पर्‍यो।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—यह कुंभनदासजी के लिये श्रीगोवर्द्धननाथजी कौतुक किये हैं।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु शंखनाद करवायके श्रीगोवर्द्धननाथजी को जगाये। ता समय कुंभनदासजीने जगायवे के पद गाये। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी उठे। तब कुंभनदासजीने अपने मन में बहोत हरष मान्यो। जो—मेरी कीर्तन की सेवा मिली। ता पाछें राजभोग पर्यंत श्रीगुसांईजी सेवा सों पहोंचे। सवारे नृसिंह चतुर्दशी हती। सो केसरी पिछोडा कुलह सिद्ध कियो। ता पाछें सेन पर्यंत सेवा सों पहोंचे।

सो या प्रकार कुंभनदासजी कबहू श्रीगोकुल कों न गये। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की लीलारस में मगन रहते। सो वे कुंभनदासजी एसे परम कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–१०

और एक समय परासोली में कुंभनदासजी खेत ऊ
बैठे हते,–और श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदास के आगे खेत
खेलत हते। इतने में उत्थापन को समय भयो तब कुंभनदास
उठिके श्रीगिरिराज चलिवे को कियो। तब श्रीनाथजी
कुंभनदासजी सों कही जो–तू कहां जात है? सो त
इन (नें) कही जो–उत्थापन को समय भयो है, सो गिरिरा
ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन कों जात हों। तब श्रीगोवर्द्ध
नाथजी कहे जो– मैं तो तिहारे पास खेलत हों, तासों तू उ
क्यों जात है?

तब कुंभनदासजी ने कही जो– महाराज! यहां तु
खेलत हो और दर्शन देत हो सो तो अपनी ओर तें कृपा क
के, और अबही तुम भाजि जाव तो मेरी तुमसों कछू च
नांही। और मंदिर में तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के पधरा
हो सो उहां सों कहूं जावो नांही, और उहां सब को दर्शन दे
हो। और मंदिर में दर्शन की आसक्ति जो मोकों है, स
तासों तुम घर बेठेहू मोकों कृपा करि दर्शन देत हो। य
समय तुम कृपा करि दर्शन दे अनुभव जतावत हो सो मंदि
की सेवा दर्शन के प्रताप सों। तासों उहां गये बिन
न चले।*

---

* श्रीआचार्यजी के सेवक अलौकिकतामें भी कैसे अडग, निर्लोभी,
स्वतंत्र और श्रीआचार्यजी के संबंध को दृढता। पूर्वक धारण करने वाले थे सो

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी हसिके कहे जो- कुंभनदास! तेरो भाव महा अलौकिक है, तासों मैं तोकों एक छिन नांही छोडत हों।

ता पाछे श्रीनाथजी और कुंभनदासजी परासोली सों संग चले। सो गोविंदकुंड ऊपर आये तब शंखनाद भये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी मंदिर में आये, और कुंभनदासजी आन्योर तांई संग आये। सो तहां तें पर्वत ऊपर आप चढि मंदिर में श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन किये। सो कुंभनदासजी एसे भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-११

और एक दिन माली दोयसे आम बडे बडे महा सुंदर टोकरा में लेके परासोली चंद्रसरोवर है तहां आयो, पाछें टोकरा उतारि के कुंड के पास सगरे आम भूमि में धरि कें कपडा तें पोंछि पोंछि मेल छुडावन लाग्यो। ता समय कुंभनदासजी राजभोग आरती के दरशन करिके श्रीगिरिराज तें चले, सो चंद्रसरोवर ऊपर जल पीवन कों आये। सो आम बहुत सुंदर श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के लायक देखिके कुंभनदासजी वा माली सों पूछे

यहां प्रत्यक्ष है, एसे ही अन्यत्रभी यह पाठक प्रत्येक शब्दों के तल-स्पर्शी ज्ञान से जान सकते हैं। मर्यादा और पुष्टिभक्तों में इतनाही तार-तम्य है। मर्यादाभक्त भगवत् प्राप्ति से बिव्हल हो जाते हैं। और पुष्टि-स्थ भक्त भगवत्प्राप्ति होने पर भी उस आनंद को हृदय में सावधानता पूर्वक स्थापित कर आचार्य के कृपाबल का बिचार करते हैं।

जो–ये आम तूं कहां ले जायगो ? वा माली ने कह्यो जो
मथुरा ले जाऊंगो, वहां इनके दस रुपैया लेऊंगो।

सो कुंमनदास के पास तो कछू पैसाहू न हते। सो क
करें ? तब मनमें श्रीगोवर्द्धननाथजी को स्मरण करिकें क
जो–महाराज! यह सामग्री परम सुंदर है, और आपु ला
है, (क्यों?) जो उत्तम वस्तु के भोक्ता आपुही हो
तासों ये आम आपु आरोगो।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी सगरे आम आयकें आरोगे
सो वा माली कों खबरी नांहीं। सो यह माली टोकरामे उ
भरिके मथुरा गयो। सो सांझ होय गई।

सो एक रजपूत मांट गाम में ते मथुरा कछू कार्यार्थ आ
हतो, सो वाने आम देखिके कह्यो जो–कहा लेयगो ? तब माली
कही जो–दस रुपैया तें घाट न लेउंगो। तब वह रजपूत दस रुपै
देके आम सगरे लेके श्रीयमुनाजी के तट पर आयो।
वा रजपूत के संग एक सनोडीया ब्राह्मण हतो सो वाकों सौ आ
दिये। सो दोऊ जनेन ने पचास २ आम घर के लिये धरि
पचास २ आम दोउनने श्रीयमुनाजी के किनारे बैठिके चूसे
ता पाछे श्रीमथुरा में एक हाट ऊपर दोऊ जने सोये।
दोऊन को स्वप्न में श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन भये।
सो ये जागे

× महानुभाव भक्त के द्वारा अरोगाई हुई वस्तु कोई आदमी भूल से भ
के तो उसमें इसी प्रकार की कृपा होती है।

तब वा रजपूत ने कही जो– ब्राह्मणदेव ! तुमने कछू देख्यो । तब वा ब्राह्मणने कह्यो जो–श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाकुर को दर्शन भयो है । तब वा रजपूतने वा ब्रह्मण सों पूछी जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु कहां बिराजत हैं ? तब वा ब्राह्मण ने कही जो– यहां ते सात कोस ऊपर श्रीगोवर्द्धन पर्वत है, तहां विराजत हैं ।

तब वा रजपूतने ब्राह्मण सों कही जो– तू महा मूरख है, जो– एसे स्वरूप कों साक्षात दर्शन करि पाछें ओर ठोर क्यों भटकत है ? सो मैने स्वरूप के दर्शन स्वप्न में पाये। सो मोसों रह्यो नांही जात है । जो सवारे तू सगरे आम ले और मैं तोकों रुपैया पांच देऊंगो जो मोकों श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन कराय दे । तब वा ब्राह्मण ने कही जो–आछो ।

ता पाछें सवेरो भयो । तब वा रजपूतने पचास आम वा ब्राह्मण कों दीने । तब वह ब्राह्मण मथुराजी में अपने घर आयके अपने पास के हू आम सौ देके वा रजपूत के पास आय-के दोउ जने चले। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन आरती के दर्शन दोउ जनेन ने किये । सो श्रीनाथजीने वा रजपूत को मन हरलीनो ।

ता पाछे दर्शन होय चुके । तब रजपूत ने अपने हथियार कपडा पांच रुपैया वा ब्राह्मणको दिये, और दस रुपया और हते सो पास राखे । तब वह ब्राह्मणने कही जो–मैं घर जाऊंगो । सो वह ब्राह्मण तो मथुरा अपने घर आयो ।

पाछे वह रजपूत एक धोवती पहरे दंडोती सिला के प
ठाड़ो होय रह्यो। सो इतने ही में श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनो
करायके श्रीगुसांईजी आपु पर्वत तें नीचे पधारे। तब रज
नें दंडवत करिके कही जो-महाराज! मैं बहोत दिनन तें भ
कत हतो, सो मेरो अंगिकार करि मोकों अपने चरण प
राखिये। तब श्रीगुसांईजी कहे जो-तुम पर कुंभनदासजी
कृपा भई है, तासों तिहारी यह दशा है। जो तेरे
भाग्य हैं।

सो तब श्रीगुसांईजी आपु अपनी बेठकमें पधारि
रजपूत कों नाम सुनायो। तब वा रजपूत ने दस रुपैया श्री
गुसांईजीकी भेट किये। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो-तू अप
पास रहन दे। क्यों जो-तेरें पास खरची नांही हैं, (तेंने
सब वा ब्राह्मण को दीनी। तब वा रजपूतने दंडवत् करिके
वीनती कीनी जो-महाराज! अब मेरे रुपैयान सों कहा का
है? मैं तो अब आपुकी शरण हूं, जो टहल बतावोगे सो
करूंगो। पाछे वा रजपूतने विनती कीनी जो-महाराज! पू
जन्म को मैं कोन हूं, और कोन पुन्य तें मोकों आप को दर्शन
भयो है।

तब श्रीगुसांईजी आपु कृपा करि वासों कहे जो-तुम पहले
राजपूत का व्रजमें गोप हते। सो तुम शस्त्र बांधिके
मूलस्वरूप श्रीनंदरायजीकी गायन के संग जाते, सो
एक दिन तुमने सर्प मार्यो, सो अपराध तें तुमने या संसारमें
बहोत जन्म पाये।

पाछे ये आम कुंभनदासजीने देखे सो मन करिके श्री-गोवर्द्धननाथजी को समर्पन किये। सो वा माली के सगरे आम कुंभनदासजीने श्रीनाथजी को अंगीकार करवाये। ता पाछे वा माली के पासतें दस रुपैया देके तुमने आम लिये, सो पचास तुमने राखे। तुमने वे महाप्रसादी आम लिये, और तुम दैवी जीव हते, सो तिहारो मन फेरिके श्रीनाथजीने स्वप्न में दर्शन दियो। और वह ब्राह्मण दैवी जीव न हतो, सो वाकों स्वप्नमें श्रीनाथजीने दर्शन दियो, परंतु तो हू वाको ज्ञान न भयो। सो लीला में तेरो नाम 'नेना' हतो।

अब तुम श्रीनाथजीकी गायन के संग शस्त्र बांधिके जायो करो। और श्रीनाथजीकी रसोई में महाप्रसाद लेऊ। जो शस्त्र कपड़ा हम तुमकों देंयगे। और आज तुम व्रत करो, जो कालि तुमकों समर्पन करवावेंगे। तब वा रजपूतने दंडवत कीनी।

ता पाछे दूसरे दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी को शृंगार करि वा रजपूत को न्हवायके श्रीनाथजी के साम्हे ब्रह्मसंबंध करवाये। तब वा रजपूतकी बुद्धि निर्मल होय गई। ता पाछे वा रजपूत कों जूठनि की पातरि धरी पाछे शस्त्र दे के श्रीगुसांईजी आपु वाकों प्रसादी कपडा दिये, सो लेकें घोड़ा ऊपर चढिके गायन के संग गयो। सो वाको मन श्री-गोवर्द्धननाथजी के स्वरूप में लग्यो, सो कछूक दिन में श्री-नाथजी गायन में वा रजपूत कों दर्शन देन लागे। ता पाछे वह रजपूत बडो कृपापात्र भगवदीय भयो।

सो यामें यह जताये जो—कुंभनदासजी मानसी सेवा में भोग

श्रीहरिरायजीकृत सो श्रीगोवर्द्धननाथजी आरोगे। सो महाप्र

भावप्रकाश. आम लियेतें वा रजपूत के ऊपर भगवद्अ

भयो। तासों जो भगवदीय अपने हाथसों भोग धरत हैं, सो

सर्वथा ही श्रीठाकुरजी प्रीति सों आरोगत हैं। सो महाप्र

अलौकिक होय तामें कहा कहनो?

ता पाछे वा रजपूत के दोय बेटा हते, सो वा रज

के पास आये। तब वा रजपूतने अपने दोय बेटानसों क

जो—बेटा! आपुन तो सिपाई हैं। सो कहुं लराई में वृथा प्र

जाते, तासों मो पर प्रभु कृपा करी है, तासों अब

यह जानियो जो—मेरो पिता मरि गयो। तासों अब तुम ज

के अपनो घर सम्हारो, हमारी वाट मति देखियो। हम

नांही आवेंगे.

पाछे वा रजपूत के दोऊ बेटा अपने घर आये, अ

सब समाचार कहे जो—हमारो पिता वेरागी भयो है

तासों अब हमारो कहा काम है? पाछे सब घर के मो

छांड़िके बेठि रहे।

या प्रकार महाप्रसाद तथा भगवदीयन को दर्शन (जे

दैवी जीव होंय तिनकों फलित होय। सो यह सिद्धांत जताये

सो वे कुंभनदासजी एसे भगवदीय हैं जो सहज में आंबा

द्वारा रजपूत ऊपर कृपा किये। तासों भगवदीय जो कृ

करत हैं सो अलौकिक जानिये। क्यों? जो श्रीगोवर्द्धननाथजी भगवदीय के वश हैं।

और कुंभनदासजी की स्त्री और पांचो बेटा नाममात्र पाये। सो कुंभनदासजी के संग तें उद्धार भयो। और कुंभनदास की भतीजी, (जो) भाई की बेटी हती सो ब्याह होत ही विधवा भई। सो लौकिक संबंध यासों न भयो।

क्यों? जो मूल में दैवी जीव है। सो श्रीविशाखाजी की सखी श्रीहरिरायजी कृत है। सो लीला में याको नाम 'सरोवरि' है।

भावप्रकाश. याके मातापिता मरि गये यासों ये कुंभनदास के घर में रहती। लीला में बिशाखाजी की सखी है। सो यहां (हू) कुंभनदासजी की आज्ञा में तत्पर। सो श्रीआचार्यजी की कृपापात्र और कुंभनदासजी (जैसे) भगवदीय को संग। तातें भतीजी को हू श्रीगोवर्द्धननाथजी दर्शन देते, और सानुभाव जनावते।

वार्ता प्रसंग-१२

और एक समय श्रीगुसांईजी को जन्म दिवस आयो। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी अपने मनमें विचारे जो-मेरो जनम-दिवस श्रीगुसांईजी सब वैष्णवन सहित जगतमें प्रकट किये। तासों मैं हू अब श्रीगुसांईजी को जन्म दिवस प्रकट करूं।

सो यह बिचारिके जब पूस वदी ८ कूं रामदासजी श्रीनाथजी को श्रृंगार करत हते, ता समय कुंभनदासजी श्रृंगार के कीर्तन करत हते। और श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल में हते। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी रामदासजी सों कहे जो-मेरे

जनम-दिवस कों श्रीगुसांईजी आपु बडो उत्साह करत
तासों मोकों श्रीगुसांईजी को जनम-दिवस माननो है। सो
सगरे मिलिके श्रीगुसांईजी के जनम-दिन को मंडान क
जो मोकों सामग्री आरोगावो। सो कालि जनम-दिन है

तब रामदास ने विनती कीनी जो- महाराज! क
सामग्री करें? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो-जलेबी रस
करो। तब रामदास, कुंभनदासजी ने कह्यो जो-बहुत आछ

पाछे रामदासजी सेवा सों पहोंचिके सगरे सेवकन
भेले करिके कह्यो जो- सवारे श्रीगुसांईजीको जनम-दि
है, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सामग्री करनी। तब सदू
ने कही जो- घी चून चहिये इतनो मेरे घरसों लीजिय
पाछे कुंभनदासजी तत्काल घर आये। तब घरतो
हतो नांही, सो दोय पाडा और दोय पडिया एक व्र
वासी के पास बेचिके पांच रुपैया लायके कुंभनदासज
रामदासजी कों दिये। और सब सेवकनने एक रुपैया, कोई
दोय रुपैया एसे दिये, सो ताकी खांड मंगाये। और घी मे
सदूपांडे लाये। सो सगरी रात्रि जलेबी किये।

ता पाछे प्रातःकाल भयो। तब रामदास
अभ्यंग करायके केसरी पाग, केसरी वस्त्र, वा
कुल्ह, श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुलसों अपने श्रीहस्तसों सि
करिके पठाये हते सो धराये। पाछे भोग धरे।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कुंभनदासजी सों कहे जो–तुम श्रीगुसांईजीकी बधाई गावो। तब कुंभनदासजी वधाई गाये। सो पद—

राग देवगंधार–१ 'आजु बधाई श्रीवल्लभद्वार०'।

राग सारंग–२ प्रकट भये श्रीवल्लभ आय०'।

सो या भांति सों कुंभनदासजीने बहोत बधाई गाई, सो सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी बहोत प्रसन्न भये। और यहां श्री-गुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी कों अभ्यंग कराय, केसरी बागा कुलह× धराय, राजभोग धरिके श्रीनाथजीद्वार पधारे[1]।

तब रामदास कहे जो–राजभोग आये हैं। तब श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिके परवत के ऊपर मंदिरमें पधारे। तब समय भये भोग सरायवे जायके देखे तो जलेबी के अनेक टोकरा धरे हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु रामदासजी सों पूछे जो–आज कहा उत्सव है, जो यह सामग्री इतनी अरोगाये हो? तब रामदासजीने कही जो–आज आपु को जनम–दिन श्रीगोवर्द्धनधर माने हैं, और सब सेवकन सों सामग्री कराइ है। तब श्रीगुसां-

---

× कुलह का शृंगार श्रीगुसांईजीने प्रकट किया है। (देखो भावभावना).

१ श्रीगसांईजी खास भगवदुपयोगी कार्य बिना श्रीगिरिराज या गोकुल में लगातार तीन रात्रि उपरांत निवास नहीं करते थे। इसी लिये आप नित्य प्रति गोकुल से गोवर्द्धन और गोवर्द्धन से गोकुल सेवार्थ एक एक रात्रि व्यतीत कर पधारते थे।

ईजी आपु भोग सराय आरती किये। ता पाछें अनोसर कराय के आपु अपनी बेठकमें पधारे और बिराजे। तहां रामदासजी सों बुलायके श्रीगुसांईजी आपु पूछे जो-सामग्री बहोत है, और सेवक (मंदिर के) तो थोरे हैं और निष्कंचन हैं, सो सामग्री कौन प्रकार सों भई है?

तब रामदासजी कहे जो-महाराज! घी मेंदा तो सदू-पांडे दिये, और पांच रुपैया कुंभनदासजी दिये हैं। और ये वैष्णव कोई एक, कोई दोय, जो जासों बनि आयो सो दियो। सो एसे रुपैया २१) भये। ताकी खांड आई। सो श्री-प्रभुजीने अंगीकार कीनी।

इतने में कुंभनदासजीने आयके श्रीगुसांईजी कों दंडवत कीनी। तब कुंभनदासजी सों श्रीगुसांईजी पूछे जो- कुंभन-दास! तुम पांच रुपैया कहां सों लाये? जो-तिहारे घरकी बात तो हम सब जानत हैं। तब कुंभनदासजी कहे जो-महाराज! मेरो घर कहां है? मेरो घर तो आप के चरणारविंद में है, जो यह तो आप को है। दोय पाडा और दोय पडिया अधिक हती सो बेचि दीनी है। अपनो शरीर, प्राण, घर, स्त्री, पुत्र बेचिके आपके अर्थ लागे, तब वैष्णवधर्म सिद्ध होय। जो महाराज! हम संसारी गृहस्थ हैं, सो हमसों वैष्णवधर्म कहा बने? यह तो आपकी कृपा, दीन जानके करत हो।

सो यह कुंभनदासजी के वचन सुनिके श्रीगुसांईजी को हृदो भरि आयो। तब आपु कहे जो-श्रीआचार्यजी आप

जाकों कृपा करिके एसी दैन्यता देंय सो पावे। सो तब श्री-गोवर्द्धननाथजी सदा इनके वस रहें।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदासजी की वहोत सराहना करे। सो वे कुंभनदासजी एसे कृपापात्र हते।

वार्ता प्रसंग-१३.

और एक समय कुंभनदासजीने श्रीआचार्यजी सों पुष्टि-मारग को सिद्धान्त पूछ्यो। तब श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके चोरासी अपराध, राजसी, तामसी, सात्त्विकी भक्तनके लक्षण और प्रातःकालतें सेन पर्यंतकी सेवा को प्रकार कहे, बाल-लीला किशोरलीला को भाव कहे। पाछे कहे जो- जा पर श्रीगोवर्द्धननाथजी की कृपा होयगी सो या काल में पूछेंगे और करेंगे। जो तुम सरिखे भगवदीय पूछेंगे और करेंगे। आगे काल महाकठिन आवेगो, और न कोई पूछेगो और न कोई कहेगो। सो या प्रकार सों श्रीआचार्यजी आपु कुंभनदासजी सों कहे।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो काहेतें ? जो सिंघिनी को दूध सोने के पात्र विना रहे नांही। तैसे ही भगवद्लीला को भाव और भगवद्धर्म भगवदीय विना और के हृदय में रहे नांही।

वार्ता प्रसंग-१४

और एक दिन कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजी सों विनती कीनी जो-महाराज! मेरे घरमें स्त्री है और सात में तें पांच बेटा हैं, और सात बेटानकी वहू हैं। परंतु भगवद्भाव काहूको

दृढ़ नांही है। और एक मतीजी है सो ताको भगवद्भाव दृढ़, ताको कारन कहा ?

तब श्रीगुसांईजी आपु सगरे वैष्णवन कों सुनायके कुंभनदासजी सों कहे जो- कुंभनदास ! तुम मन लगायके सुनियो, जो सावधान होउ। मैं एक पुरान को इतिहास कहत हों। तब सगरे वैष्णव सावधान भये।

पाछे श्रीगुसांईजी कहे। जो-एक ब्राह्मण हतो ताके एक कन्या हती। सो जब वह कन्या ब्याह लायक भई तब ब्राह्मणने एक और ब्राह्मण कों बुलायके कह्यो जो-मेरी कन्या को वर ठीक करिके आछो ठिकानो देखिके सगाई करि आवो। तब वह ब्राह्मण तो सगाई करिवे कों गयो। ता पाछे दूसरो ब्राह्मण आयो, सो वाहूसों एसेही कह्यो। तब दूसरो ब्राह्मण हू सगाई करिवे कों गयो। पाछे तीसरो ब्राह्मण आयो, सो वाहूसों एसेही कह्यो। सो तीसरो हू ब्राह्मण सगाई करिवे गयो। पाछें चोथो ब्राह्मण आयो, सो वाहूसों एसेही कह्यो। सो तब चारों ब्राह्मण चार दिशान में भगवद् इच्छातें गये। सो दोय २ तीन २ कोस ऊपर एक गाम हतो, तहां न्यारे २ गामन में चारों ब्राह्मणने सगाई करी। सो एक महीना पीछे सगाई ठेराई। पाछे वरन कों तिलक करि के चारों ब्राह्मण या ब्राह्मण की आगे आयके कह्यो जो- सगाई करि तिलक करि आये हैं। सो एक महिना पीछे प्रातः- काल की लगन है। या प्रकार चारों ब्राह्मणनने कही।

तब बेटी के पिताने कह्यो जो- यह तुमने कहा कियो। जो बेटी तो मेरी एक है। सो तुम चारों जने चार वर करि आये सो कैसे बनेगी ? तब उन चारों ब्राह्मणनने कही जो- तेनें कह्यो तब हमने सगाई करी है। जो महीना पीछे बेटी को ब्याह न करेगो तो हम तेरे ऊपर जीव देंयगे। जो- हम तिलक करि सगाई करी सो कबहू छूटे नांही।

तब वा ब्राह्मणनें कह्यो, जो- भलो, महीना है सो ता वखत की दीखेगी, जो कहा होनहार है। तब चारों ब्राह्मणने कही जो- जब एक दिन ब्याह को रहेगो, सो तब हम ब्याह करावन आवेंगे। सो यह कहिके चारों ब्राह्मण अपने घरकों गये। पाछे या बेटी के पिता कों महा चिंता भई। जो-अब मैं कहां निकसि जाऊं ? जो प्रान छूटे तोऊ कन्या की खराबी है। तासों अब मैं कहा करूं ?

सो मारे चिंता के खानपान सब छूटि गयो, सो एसे चारि दिन भूखे गये। ता पाछे पांचमे दिन नदी ऊपर यह ब्राह्मण संध्यावंदन करत हतो सो एक भगवदीय फिरत २ आय निकस्यो, सो नदी में न्हायो। इतने ही में यह ब्राह्मण महादुःख सों पुकारिके रोयो। सो भगवद् भक्त को हृदय कोमल, सो वा ब्राह्मण को दुःख सही नांही सके। तब उन भगवद्- भक्तनने वा ब्राह्मण सों पूछी जो- ब्राह्मण ! तुमकों एसो कहा दुःख है ? जो तेने पुकारिके रुदन कियो है।

तब वा ब्राह्मणने अपनी सब बात कही। यह सुनिके वा भगवद्भक्तने कही जो– मैं तो एक ठिकाने रहत नांही हों, परंतु तेरे लिये या नदी पे बैठ्यो हूं। जो मोकों प्रकट मति करियो। और जा दिन को ब्याह होय तासों एक दिन पहलें मोकों आयके कहियो, जो ठाकुरजी भली करेंगे। और अब तुम घर जायके खानपान करो। तब वा ब्राह्मणने कह्यो जो– भलो।

पाछे जब ब्याह को एक दिन रह्यो, सो प्रातःकाल को समय हतो। तब वा ब्राह्मण वा भगवद्भक्त के पास आयो, और विनती कीनी जो– प्रातःकाल को ब्याह है, तातें अब कछु उपाय बतावो।

तब वा वैष्णवनं कही जो– संध्या कों आइयो। पाछे सांझकों ब्राह्मण वा भगवद्भक्त की पास गयो। तब वा भक्तने कही जो– तिहारे आगे जो पशु पक्षी आवें सों तिनको तुम पकरि लीजो। तब वह ब्राह्मण नदी के ऊपर बैठ्यो। सो बिलाड़ी आई सो पकरी। ता पाछे एक कुत्ती आई सो पकरी। पाछे एक गदही आई, सो पकरी। सो तब वा भक्तने कही जो– इन तीन्योंन को एक कोठामें मूंदि देऊ। सो कोठा में मूंदि दिये। तब वा भक्तने कही जो– तेरी बेटी सोय जाय तब वाहू कों यामें मूदी दीजियो। ता पाछे बेटी सोई, तब वा बेटी कों खाट सहित कोठा में मूंदिके ताला लगायके कहे जो– ब्याह की तैयारी करो।

सो तब प्रहर रात्रि गये चारों वर आये। पाछे सगाई करिवे वारे चारों ब्राह्मणने समाधान करिके उनकों बैठाए। इतने में ब्याह को समय भयो तब ब्राह्मणने भगवद्भक्त सों कही जो- अब ब्याह को समय भयो है। तब भक्तने कह्यो जो- कोठरी खोलिके चारों वरन कों चारों कन्या देऊ, और ब्याह करि देउ।

पाछे वह ब्राह्मण तालो खोलिके देखे तो चारों कन्या एक रूप, एक बय, बराबरी पहिचानि न परे। सो चारों कन्या चारों वरन कों ब्याह, बिदा करि दीनी।

पाछे चारों ब्राह्मण कों दक्षिणा दे बिदा किये। पाछे भगवद्भक्तने कही जो—हम चलेंगे। तब ब्राह्मणने पायन परि के कह्यो जो- तुमने मोकों जीवदान दियो है, सो यह घर तिहारो है। तातें आपकों जो चहिये सो लेउ। तब भक्तने कही जो—हम कों कछू चहियत नांही है। तेरो दुख श्री-ठाकुरजीने दूरि कियो है, सो यही बड़ी बात भई है।

तब वा ब्राह्मणने पूछी जो—चारों कन्या एक सरखी भई हैं, सो अब मोकों खबरि कैसे परे जो—मेरी बेटी कोनसे वरकों ब्याही है? सो वा बेटी को बुलावनी होय तो कैसें खबरि परेगी? तब वा भक्तने कही जो—तेरे चारों जमाई हैं सो उनही सों बेटीन के लक्षन पूछि लीजियो। तब तोकों खबरि परेगी। जो मनुष्य के लक्षन होय सोई तेरी बेटी जानियो। सो यह कहिके दूभगवभक्त तो चले गये।

तब ब्राह्मणने कछुक दिन पीछे चारों जमाईन को घर बुलाये, और चारों जमाईन कों रसोई करवाई। सो एक जने को भोजन कों बैठायो तब भोजन करत में वासों पूछी जो– मेरी बेटी अनुकूल है के नांही? वामें कैसे लक्षण हैं? तब उनने कही जो– सब गुन हैं परि कुत्ती की नांइ भूसत है। जो जीभ ठिकाने नांही, और आचार क्रिया नांही है, सो तासो प्रिय नांही है।

ता पाछे दूसरे जमाई कों बुलायो। वासो पूछी, जो– कहो, मेरी बेटी के लक्षन कैसें है? तब वाने कही जो– तिहारी बेटी में आछे लक्षण है परंतु चटोरी है, जो ठाकुर के लिये जो वस्तु लावे सोइ वह चोरिके खाय जाय। बिलाई की दशा है, जो–पांच घर को खाये बिना चेन नांही परे।

ता पाछे तीसरे जमाई कों बुलायके पूछी जो– मेरी बेटी के लक्षण कैसे हैं? तब वाने कही जो– तिहारी बेटी में सब लक्षन आछे हैं, परंतु घर में आवे जाय, तब गदही की नांई भूसे, सदा मलीन रहे। और जाकों ताकों तथा मोहू कों गदही की नांइ दोउ पावन सों लात मारे है।

पाछे चोथे जमाई को बुलायके पूछी जो–मेरी बेटीके लक्षण कहो। तब उनने कही जो– तिहारी बेटी की कहा बात है? जो मानो लक्ष्मी है, कोऊ देवता है। जो सब को प्रिय वचन, मीठो बोलनो, उत्तम क्रिया, आचार विचार, पति, गुरु, ठाकुर

और वैष्णव में प्रीति । सो तब ब्राह्मणनें जानी जो– यही मेरी बेटी है । ता पाछे वाही बेटी जमाई कों बुलावतो ।*

सो तासों कुंभनदास ! जा मनुष्य में वैष्णव के लक्षण हैं सोई मनुष्य है× । और कहा भयो जो मनुष्य देह भई ? जो– रावण कुंभकरण खोटी क्रियातें राक्षस कहाये । यासों जाकी जैसी क्रिया, सो वाको तैसो ही रूप जाननो । जो भतीजी बड़ी भगवदीय है सोई मनुष्य है । तासों तिहारे संगतें कृतार्थ होयगी ।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदासजी आदि सब वैष्णवन कों समुझाये । सो ये कुंभनदासजी श्रीआचार्यजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ताप्रसंग–१९

पाछे कुंभनदासजी की देह बहोत अशक्त भई । सो तहां आन्योर की पास संकर्षणकुंड ऊपर कुंभनदासजी आयके बैठि रहे । तब चत्रभुजदासने कही जो–गोदमें करिके तुम कों जमुनावता गाममें ले चलें । तब कुंभनदासजी कहे जो–अब तो दोय चार घड़ी में देह छूटेगी । तासों अब तो मैं इहांई रहूंगो ।

---

* एसी कितनीही प्राचीन गाथाओंके द्वारा श्रीआचार्यचरण, प्रभुचरण और श्रीगोपीनाथजी अपने सेवकोंको चारित्र्य संबंधी उपदेश देते थे । श्रीगोपीनाथजीकी ८ वार्ता विद्याविभाग में विद्यमान हैं ।

× देखो एक ब्राह्मण की वार्ता–जिनकों चाचाजीने उपरणा दिया था । (२५२ वै. की वार्ता ।)

तब चत्रभुजदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग आर्ति के दर्शन किये। तब श्रीगुसांईजी आपु चत्रभुजदास सों पूछे जो–कुंभनदास कैसे हैं? और कहां है? तब चत्रभुजदासने कही जो– संकर्षण कुंड ऊपर बैठे हैं। तब श्रीगुसांईजी आपु कुंभनदासजी के पास पधारे।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु पधारिके कुंभनदासजी सों कहे जो–कुंभनदास! या समय कौन लीला में मन है? सो कहो।

ता समय कुंभनदासजी सों उठ्यो तो गयो नांही, सो माथो नवाय मनसों दंडवत करि यह कीर्तन गाये। सो पद –

राग सारंग–१ 'बिसरि गयो लाल करत गो–दोहन।' २ 'लाल! तेरी चितवन चितही चुरावत'।

सो ये पद कुंभनदासजीने गाये। तब श्रीगुसांईजी आपु पूछे जो–कुंभनदास! यह लीला तुम सुनाये परि अंतःकरण को मन जहां है सो बतावो।

तब कुंभनदासजीने श्रीगुसांईजी के आगे यह पद गायो। सो पद–

राग बिहागरो–१ 'तोय मिलन कों बहोत करत है मोहन-लाल गोवर्द्धनधारी'। २ 'रसिकनी रस में रहत गड़ी'।

यह पद गायके कुंभनदासजी देह छोडि निकुंज लीलामें जायके प्राप्त भये।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु गोपालपुर में पधारे। सो चत्र-भुजदासजी आदि सब बेटानने कुंभनदासजीको संस्कार कियो। सो कुंभनदासजी लीलामें आन्योर के पास गाम है, तहां द्वार पर प्राप्त भये। पाछे श्रीगुसांईजी उत्थापन तें सेन पर्यंत की सेवा सों पोहोंचे। परंतु काहू वैष्णवसों बोले नांही, उदास रहे। तब रामदासजीने श्रीगुसांइजीसों कह्यो जो- महाराज! एसे क्यों हो? तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों कहे जो- एसे भगवदीय अंतर्ध्यान भये। अब भूमि में भक्तन को तिरोधान भयो।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी अपने श्रीमुखसों कुंभनदासजीकी सराहना किये। सो वे कुंभनदासजी श्रीआचार्यजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते, जिनके ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी तथा श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते। तातें इनकी वार्ता को पार नांही। इनकी वार्ता अनिर्वचनीय है, सो कहां तांई लिखिये।

(४) श्रीकृष्णदासजी
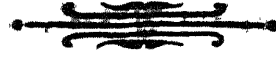
अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक कृष्णदास अधिकारी, सो ये अष्टछाप में हैं, जिनके पद गाईयत हैं। तिनकी वार्ता—

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश–

सो ये कृष्णदासजी लीलामें ऋषभसखा श्रीठाकुरजी के अंतरंग, **आधिदैविक** तिनको ये प्राकट्य हैं । सो दिनकी लीला में तो **मूल स्वरूप** ऋषभ सखा हैं, और रात्रि की लीला में श्रीललिताजी अंतरंग सखी हैं । सो ललिता हू चारि रूप, आपु तो मध्या और श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीस्वामिनीजी की लीलानिकुंज संबंधी अनुभव करें । और श्रीललिताजी को दूसरो स्वरूप ऋषभ सखा होयके बन में संग जांय, दिवस की लीला रस को अनुभव करें । और तीसरो स्वरूप दामोदरदास हरसानी होयके श्रीआचार्यजी के संग सदा रहते । तिनसों श्रीआचार्यजी आपु दमला कहते । सो तो दामोदरदासजी की वार्ता में भाव विस्तार करिके लिख्यो है । और ललिताजी को चोथो स्वरूप कृष्णदास । सो श्रीगोवर्द्धनधर के पास रहिके अधिकार किये । सो श्रीगिरिराज के आठ द्वार हैं तामें 'बिलछू' बरसाने सन्मुख द्वार एक बारी है । सो ता मारग होयके श्रीगोवर्द्धननाथजी रास करन कों पधारते । सो ता द्वार के मुखिया हैं ।

कृष्णदास का भौतिक इतिहास

सो ये कृष्णदास गुजरात में एक 'चिलोतरा' गांव है। तहां एक कुनबी के घर जन्मे। सो वह कुनबी वा गाम को मुखी हतो। सो वा गाम में हाकिमी करतो।

जा समय कृष्णदास या कुनबी पटेल के घर जन्मे, सो ता समय या कुनबीने अनेक पंडित ब्राह्मण गाम गाम मे तें बुलायके भेले करिं उनसों पूछ्यो, जो—मेरे यह बेटा भयो है, सो याके सगरे लक्षण कहो। और या बेटा की आरबल कहो, सो मैं वाकों जनम भरि में जीवों तहां तांई खरची देऊं.

तब सगरे ब्राह्मणन ने या कुनबी सों कह्यो जो—हमकों चाहे तू कछू देय, चाहे मति देय। जो यह तेरो बेटा तो श्रीभगवान को भक्त होयगो। जो कृष्णदास याको नाम होयगो और यह तिहारे घरमें न रहेगो।

यह सुनिके वह पटेल कुनबी बहोत उदास भयो। और दान पुन्य बहोत कियो और कृष्णदास नाम धर्यो।

पाछे कृष्णदास पांच बरस के भये तबही तें भगवद्वार्ता कथा में जान लगे। सो मातापिता न जान देंय तो रोवें, खानपान नांहीं करें। तब माता पिताने कहो जो—याको जान देऊ। जो यह अबही तें वेरागीन सों प्रीति करत है, सो यह वेरागी होयगो। जो मोसों ब्राह्मणनने आगे कह्यो हतो। तासों या बेटामें प्रीति करि मोह मति लगावो। सो यह सबकों दुःख देयगो। पाछे कृष्णदास जहां तहां कथा सुनते।

एसे करत कृष्णदास वरस बारह तेरह के भये। तब एक वनजारा एक दिन गाम के बाहिर आयके उतर्यो, सो किनारो माल सब

'चिलोतरा' गाममें बेचिके रुपैया चौदह हजार किये। सो रात्रि को चोर(ने) कृष्णदास के पिता के भेद में, वनजारा के सब चौदह हजार रुपैया लूटे। सो चौदह हजार रुपैयान में ते तेरह हजार रुपैया कृष्णदास के पिताने राखें। सो यह बात कृष्णदासनें जानी.

तब कृष्णदासने अपने पितासों कह्यो जो– तुमने बुरो काम कियो है। क्यों? जो– तुमने रुपैया पराये वनजारा के लुटायके लिये। सो तुम वाकों दे डारोगे तब तिहारो कल्याण होयगो। तब पिताने कृष्णदास कों मार्‍यो, और कह्यो जो– तू काहू के आगे मति कहियो। जो– हम गाम के हाकिम है, सो हाकिम को यही काम है। तब कृष्णदासनें कह्यो जों– अब तुम खराब होउगे। सो यह कहिके चुप होय रहे।

जब सवारो भयो, तब वह वनजारा चोंतरा ऊपर रोवत आयो। सो आयके कृष्णदास के पिता सों कह्यो जो– हमकों चोरननें लूट्यो है। तब कृष्णदास के पिताने कह्यो जो– तू गाम में क्यों न रह्यो? जो अब हमसों कहा कहत है? सो एसे कहिके वा हाकिमनें अपने मनुष्यन सों कही जो– या वनजारा कों गामतें बाहिर काढ़ि देउ, जो सवारे ही रोवत आयो है।

तब मनुष्यननें काढ़ि दियो। सगरी पूंजी गई, सो यह महा-विलाप करे। सो कृष्णदास दूरितें दोरिके वाके पास आये। तब कृष्णदास कों दया आय गई। तब कृष्णदास मनमें विचारे जो– पिता को बुरो होय तो सुखेन होउ, परन्तु या वनजारा परदेशी को भलो करनो।

पाछे कृष्णदास वा वनजारा के पास आयके कहे जो– तू एकांत में चलिके बैठ, जो– मैं तोसों एक बात कहूं। पाछे एकांतमें वनजारा

को ले जायके कृष्णदासने कह्यो, जो– तेरो माल रुपैया सब गयो, मेरे पिता यहां को हाकिम है, सो ताने चोरी कराई है। सो हजार रुपैया चोरन कों देके सगरो माल मेरे पिताने राख्यो है। तासों या गाम में तेरी न चलेगी। तासों तू जायके राजनगर (अहमदाबाद) राजा के यहां फरियाद करियो। सो मोकुं तू साक्षी में बुलाय लीजियो। परन्तु मेरे पिता के प्रान हू न जाय, और चोरन के हू प्रान न जाय, और तेरो भलो होय जाय सो एसो तू करियो। सो या भांति राजा पास मोकों बुलाइयो, मैं सब बताय देउंगो। तासों तेरो माल रुपैया सब या भांति सों मिलेंगे।

पाछे वा वनजारा राजनगर में आइके राजा के पास सब बात कही। और कह्यो जो– पिताने तो चोरी कराई और बेटानें बतायो। परन्तु कोइ के प्राण न जांय, और मेरी वस्तु मिले, एसो उपाय करो।

तब राजाने कह्यो– धन्य वह बेटा जो– पिताकी चोरी बनाई। सो वाकूं तो मैं राखूंगो। सो यह कहिके पचास मनुष्य और सिपाई बुलायके कह्यो जो– तुम 'चलोतरा' में जायके उहां के हाकिम कों बेटा सहित पकरि लावो। सो या भांति सों जावो जो–कोई जानें नांही। सो वे पचास मनुष्य आये, सो लगे रहे।

एक दिन संध्या समय वह हाकिम घर के द्वार पर ठाड़ो हतो और वाको बेटाहू ठाड़ो हतो। सो राजा के मनुष्य वा हाकिम कों पकरि के राजनगर में लाये। तब राजानें यासों पूछी जो– तू हाकिम होय परदेसी को लूटत है? जो या वनजारे को माल रुपैया देउ।

तब वा हाकिमने कही जो– तुमसों कोईने झूठेही लगाई होयगी।

मैं तो या बात में जानत ही नांही हूं । तब वा राजाने कह्यो जो– तेरो बेटा सौंह खायके कहे सो सांचो । तब पिताने कही जो– बेटा कहि देय तो सांच है । तब राजाने कृष्णदास सों पूछी जो– तू सांच बोलियो । तब कृष्णदासने वा राजा सों कही जो जीव है, तासों पूछ्यो तो सही । जो हजार रुपैया चोरन कों दिये और तेरह हजार रुपैया मेरे पिताने राखे हैं। तासों मैंने वाही समय पिता कों समुझायो, परन्तु मान्यो नांही, सो ताको फल पायो । परन्तु यासों माल रुपैया ले लेहु और यासों कछु कहो मति ।

तब कृष्णदास के पिता सों राजाने कही जो– अजहू चेत, नातर तेरे प्राण जायगें ।

तब कृष्णदास को पिता बोल्यो जो– काम तो बुरो भयो है। परन्तु या वनजारा कों मेरे संग करि देउ । सो याकों सब रुपैया घरतें दे देउंगो । तब राजाने दोइसे मनुष्य संग करिके वनजारा कों और कृष्णदास के पिता कों घर पठायो । और कृष्णदास सों वा राजाने कह्यो जो– तुम मेरे पास रहो, जो तुम सतवादी हो।

तब कृष्णदास कहे जो– मोकों राखिके तुम कहा करोगे? मैं सांच कहूंगो, सो सबको बुरो लगूंगो । जो आजु को समय तो ऐसो है, तासों मैं तो वेरागी होउंगो । जो मैं पिता के काम को नांही रह्यो ।

सो या प्रकार वा राजाने कृष्णदास के राखिवे को बहोत जतन कियो । परि कृष्णदास रहे नांही, पाछे पिताके संग घर आये ।

तब पिताने चोरन कों बुलायके सब पुत्र के समाचार कहे, जो–

या पुत्रने हमारी खराबी करी है, तासों हजार रुपैया लावो। नातर तिहारे और हमारे प्राण जायगें। तब उन चोरनने हजार रुपैया लाय दिये। सो तेरह हजार घर में सों लेके वा वनजारा कों चौदह हजार रुपैया दिये और माल लूटि को देके वा वनजारा कों विदा कियो।

ता पाछे वा राजाने दूसरो हाकिम 'चिलोतरा' गाम में पठायो। तब कृष्णदास के पिताने कह्यो जो–पुत्र ! तेरो एसो बुरो कर्म भयो सो हाकिमी हू गई, और आयो करचो द्रव्यहू गयो। तब कृष्णदासने पितासों कहो जो– पिता ! तैनें एसो बुरो कर्म कियो हतो जो–येहू लोक जातो और परलोक हू बिगरतो, जो जीव तो बच्यो। सो हाकिमी छूटी सो तो आछो भयो। जो हाकिमी होती तो और पाप कमावते।

तब पिताने कह्यो जो– तू वा जन्म को फकीर है। तासों तेंने हमको हू फकीर कियो है। अब तेरे मन में कहा है ? तब कृष्णदासने कही जो– अब तुम मोकों घर में राखोगे तो फकीर होउगे, यातें मोकों विदा ही करो। तब पिताने कही जो– तू कछू खरचि ले घरमें ते कहूं दूरि चल्यो जा। न तोकों देखेंगे न दुख होयगो।

तब कृष्णदास पिता कूं नमस्कार करिके उठि चले। पाछे मनमें विचारे जो–ब्रज होय सगरे तीरथ करनो। तब कछूक दिनमें कृष्णदास श्रीमथुराजी में आयके विश्रांत घाट न्हायके व्रज में निकसे तब फिरते २ श्रीगोवर्द्धन आये। सो तहां सुनी जो– देवदमन को मंदिर बन्यो है जो– अब दोय चारि दिन में बिराजेंगे तो व्रजवासीन को बडो आनंद होयगो। देवदमन जब तें बाहिर प्रकटे जो श्री–

गिरिराज श्रीगोवर्द्धन में ते, तब तें सबन कों सुख दियो है। और सबन के मनोरथ पूरन करत हैं।

तब यह सुनिके कृष्णदासजी अपने मनमें विचारे जों—मैं हू देवदमनको दरशन करूं। सो तब आयके कृष्णदासने देवदमन के दर्शन किये। सो श्रीआचार्यजी आपु राजभोग आरती किये। सो दर्शन करत ही कृष्णदास को मन श्रीगोवर्द्धनधर ने हरि लियो। सो कृष्णदास की ओर श्रीगोवर्द्धनधर देखि रहे.

पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन सों कहे जो—यह कृष्णदास आयो है। सो बहोत दिन को बिछुरचो है, सों मैं याकों देखत हों।

तब कृष्णदास के पास आयके श्रीआचार्यजी कहे जो—कृष्णदास! तू आयो! तब कृष्णदास नें दंडवत करिके बिनती कीनी जो—महाराज! आपु की कृपा तें आयो हूं। तासों अब मोकों शरण राखो।

तब श्रीआचार्यजी कहे जो— जाव, बेगि न्हाय। आवो जो तेरे साम्हें श्रीगोवर्द्धननाथजी देखि रहे हैं। तासों बेगि आय जावो।

तब कृष्णदास दोरिके रुद्रकुंड में न्हाय आये। पाछे कृष्णदास श्रीआचार्यजी के पास मंदिर में आये। तब श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के सन्निधान बैठायके नाम समर्पन करायो। सो कृष्णदास दैवीजीव हैं, सो तत्काल सगरी लीला को अनुभव भयो। सो ताही समय कृष्णदास ने यह कीर्तन गायो। सो पद—

राग सारंग—। 'वल्लभ पतित उधारन जानो०'।

सो यह पद कृष्णदासने गायो, सो सुनि के श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये। ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी को अनोसर करायो।

ता पाछे मंदिर सिद्ध भयो। सो तब सुंदर अक्षयतृतीया को दिन देखिके श्रीगोवर्द्धननाथजी कों नये मंदिर में पाट बेठाये। तब पूरनमल्ल के सब मनोरथ सिद्ध किये। तब श्रीआचार्यजी आपु सदूपांडे को बुलायके कहे जो–मंदिर तो बडो भयो, जो–श्रीगोवर्द्धननाथजी बिराजे। परंतु अब इनकी सेवा को मनुष्य ठीक कर्‌यो चाहिये, तातें तुम सेवा करो। तब सदूपांडे ने विनती कीनी जो–महाराज! हम तो व्रजवासी हैं, जो–आचार विचार सेवा की रीति कछू समुझत नांही हैं। और घर के अनेक काम हैं, तासों आपु आज्ञा देउ तो राधाकुंड ऊपर बंगाली रहत हैं, सो अष्ट प्रहर भजन करत हैं। तासों उनकों राखो तो बुलाय लाऊं। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे, जो–बुलाय लावो। सो सदूपांडे बंगाली वीस पचीस बुलाय लाये। तब उनकों रुद्रकुंड ऊपर झोंपरी बनवाय दीनी, और श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा दीनी। और कृष्णदास कों भेटिया किये। जो– तुम परदेस तें भेट लायके बंगालीन कों दीजो। सो या भांति सो सेवा करोगे।

या प्रकार सब बंगालीन कों रीति भांति वतायके सेवा सोंपी। और कृष्णदास परदेस तें भेट ले आवते सो बंगालीन कों देते। सो रामदास चोहान रजपुत जब नयो मंदिर बन्यो, तब देह छोडिके लीला में जायके प्राप्त भये। तब सगरी सेवा बंगाली करते।

वार्ता प्रसंग-१

पाछे एक समय कृष्णदास श्रीद्वारिकाजी की ओर भेट लेन को गये। सो श्रीद्वारिका श्रीरणछोडजी के दरशन करि के वैष्णवन सों भेट लेके आवत हते। सो एक बैष्णव कृष्णदास के संग हतो। मारग में मीरांबाई को गाम आयो, सो कृष्णदासजी मीरांबाई के घर गये। तहां संत, महंत अनेक स्वामी और मारग के बैठे हते। सो काहूको आये दस दिन, काहूको आये बीस दिन भये हते, परंतु काहूकी बिदा न भई हती। और भेट के लिये बैठे हते। और कृष्णदास तो आवत ही कह्यो जो-मैं तो चलूंगो। तब मीरांबाईने कह्यो जो-कछूक दिन कृपा करिके रहो।

तब कृष्णदासने कही जो-हमारे तो जहां हमारे वैष्णव श्रीआचार्यजी के सेवक होयंगे सो तहां रहेंगे। और अन्यमार्गीय के पास हम नांही रहत हैं। तब मीरांबाई ११ मोहोर श्रीनाथजी की भेट देन लागी सो कृष्णदास नांही लिये। और कृष्णदासने मीरांबाई सों कह्यो जो-तू श्रीआचार्यजी के सेवक नांही है, सो हम तेरी मोहोर हाथ तें न छुवेंगे।

सो एसे कहिके उठि चले। तब संग के वैष्णवने कृष्णदास सों कही जो-तुमने श्रीगोवर्द्धननाथजी की भेट क्यों फेरि दीनी? तब कृष्णदासने वा वैष्णव सों कही जो-भेट की कहा है? जो बहोतेरी भेट वैष्णवन सों लेंयगे। श्री-

गोवर्द्धननाथजी के यहां कोई बात को टोटा नांही है। परंतु सगरे मारग के स्वामी महंत इतने इकठोरे कहां मिलते ? तासों सब की नाक नीची तो करी, जानेंगे जो— हम भेट के लिये इतने दिन सों बैठे हैं, और श्रीआचार्यजी को एक सेवक शूद्र इतनी मोहोर भेट न लीनी। सो जिन के सेवक एसे टेकी हैं, तिनके गुरुकी कहा बात होयगी ? सो ये सब या भांति सों जानेंगे। और आपुन अन्यमार्गीय की भेट काहे कों लेय ?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

तातें शिक्षापत्र में कह्यो है—'तदीयानां महद्दुखं विजातीयेन संगमः" तदीय जो भगवदीय है, तिनको और दुख कछु नांही है। सो जेसो अन्यमारगीय विजातीय को संग को दुख होय। तासों श्रीठाकुरजी तो निवाहैं। जो विजातीय सों बोलनो नांही तब ही सुख है। और जो वार्ता करे तो रस को तिरोधान रसाभास निश्चय होय। तासों कृष्णदासजी मीरांबाई के घर गये, इतनो कहनो पर्यो।

तासों मुख्य सिद्धान्त यह जतायो जो—स्वमार्गीय बिना काहू तें मिलनो नांही। और कदाचित् मिलनो परे तो अपने धर्म कों गोप्य राखे।

सो श्रीगुसांईजी आपु चतुःश्लोकी में कहे हैं—

'विजातीयजनात् कृष्णे निजधर्मस्य गोपनं।
देशे विधाय सततं स्थेयमित्येव मे मतिः' ॥ १ ॥

सो एसे देश में जाय जहां कोई वैष्णव नांही होय, तहां

अपने धर्म कों प्रकट न करे, तब अपनो धर्म रहे । सो काहेतें ? जो-लौकिक हू में पनारो है । सो तासों, न्हायो होइ सो बचिके चले तासों उत्तम जन कों सब प्रकारसों बचनो परे । जैसे उत्त सामग्री है ताकों अनेक जतनसों बचावे, तब श्रीठाकुरजी के भो जोग रहै । तैसेही वैष्णव धर्म है । तासों या धर्म की रक्षा रा तो रहै । यह सिद्धान्त प्रकट कियो.

सो वे कृष्णदास एसे टेकी परम कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग–२

और श्रीगोवर्द्धननाथजी को शृंगार बंगाली करते । सं श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी कों मीना के सब आभरन संभराय दिये हते । और मोरपक्ष को मुकुट, काछिनी, बाग सव बनवाय दिये हते । बंगाली श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेव करते । जो भेट श्रीगोवर्द्धननाथजी के आवती सो बंगाली जोरिके सब अपने गुरुन के यहां पठावन लागे । सो जब श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में कृष्णदास कों अधिकारी किये, तब कृष्णदास मथुरा आगरे तें सामग्री लाय देते ।

और एक अवधूतदास श्रीआचार्यजी के सेवक हते । सो व्रज मे

अवधूतदासजी की फिरचो करते, सो वे बडे कृपापात्र भगवदीय हते

वार्ता सो अडींग के वासी हते ।

सो अवधूतदासजी कुमारिका के जूथ में है । सो रासपंचध्या में जब श्रीअक्रूरजी प्रकट भये, तब ये भक्त सगरे स्वरूप को

दर्शन करिके नेत्र मूंदिके योगी की नांई मगन होय गये। सो ये भक्त को प्राकट्य अवधूतदासजी को है। सो लीला में इन को नाम 'केतिनी' है।

सो अडींग में एक सनोढ़िया ब्राह्मण के घर जन्मे। जब व्रज में अकाल पर्‍यो, तब मा बाप बनिया कों बेटा देके आपु तो पूरव कों गये। पाछें अवधूतदास बरस पंद्रह के भये। तब वह बनिया को घर छोड़िके मथुरा में आयके श्रीआचार्यजी के दर्शन करि विनती कीनी। जो–महाराज! मोकों शरण लीजिये। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–हमारे संग श्रीगोवर्द्धन कों चलो जो–श्री नाथजी के सान्निध्य शरण लेयंगे।

तब अवधूतदास श्रीआचार्यजी के संग श्रीगिरिराज आये। पाछे श्रीआचार्यजी आपु अवधूतदास तें कहे जो–तुम गोविंदकुंड न्हाय लेहु। तब अवधूतदास गोविंदकुंड में न्हाय आये। पाछे श्रीआचार्यजी आपु गोविंदकुंड में स्नान करिके मंदिर में पधारे।

ता समय श्रीगोवर्द्धनधर को राजभोग आयो हतो। तव समय भये भोग सराय, अवधूतदास को बुलाइकें श्रीगोवर्द्धनधर के सान्निध्य बेठाय नामनिवेदन करवायो। तब अवधूतदासने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो–महाराज! मेर मन में तो यह है जो–मैं श्रीगोवर्द्धन-नाथजी कों हृदय में धरिके व्रज में फिरों। तब श्रीआचार्यजी आपु हाथ में जल लेके अवधूतदास के ऊपर छिरके। तब अवधूतदासजी की अलौकि कदेह होय गई। सो भूख प्यास कछू देहाध्यास बाधा नांही करे, सो मानसी सेवा में मगन होय गये। पाछे श्रीआचार्यजीने राजभोग

आरती कीनी । सो श्रीगोवर्द्धनधर को स्वरूप अपने हृदय में नख शिख पर्यंत धरिके व्रज में सदा फिरते । सो स्वरूपानंद में सदा मगन रहते ।

सो एसे करत बहोत दिन बीते। तब एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजीने अवधूतदासकों जताई जो– तुम कृष्णदास अधिकारी सों कही जो–इन बंगालीन कों निकासो । जो मोकें अपनो वैभव बढ़ावनो है। और ये बंगाली मोकों भोग धरत हैं । सो इनकी चुटिया में एक देवी को स्वरूप है, सो मेरे पास बैठावत हैं । तासो इन बंगालीन कों बेगि काढ़ो ।

तब अवधूतदासने यह बात अपने मनमें राखी । सो एक दिन कृष्णदास श्रीगोवर्द्धन सों मथुरा कों जात हते, सो मारग में अवधूतदास मिले । तब अवधूतदासनें कृष्णदास सों पूछी जो– तुम कहां जात हो ? तब कृष्णदासने अवधूतदास सों कह्यो जो–मथुरा जात हों, जो कछू सामग्री चहियत है ।

तब अवधूतदासने पूछी जो– श्रीनाथजी की सेवा कोन करत है ? तब कृष्णदासने कही जो– बंगाली सेवा करत हैं । तब अवधूतदासनें कृष्णदास सों कह्यो जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा बंगालीन कों काढ़िवे की है । सो तुम बंगालीन कों काढ़ो । जो बंगालीन की चुटिया में एक देवी को स्वरूप है । सो जब बंगाली श्रीनाथजी को भोग धरत हैं, तब चुटिया में ते निकासिके देवी कों पास बैठावत हैं । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी

कों सुहात नांही है। तासों बंगालीन को बेगि काढ़ो। जो मोसों आपुने आज्ञा करी है। तब मैं तुमसों कह्यो है।

तब कृष्णदासने कह्यो जो– ये बंगाली श्रीआचार्यजीने राखे हैं। तातें श्रीगुसांईजी आज्ञा करें, तब काढ़े जांय। तब अवधूतदास कहें जो– तुम अड़ेल में जायके गुसांईजीकी आज्ञा ले आवो। तासों जैसे बने तैसे इन बंगालीन कों काढ़ो।

तब कृष्णदास मथुरा जात हते सो अडींग ते फिरि के श्रीगोवर्द्धन आये। सो आयके सगरे बंगालीन सों कही जो– मैं अड़ेल में श्रीगुसांईजी के पास जात हों, सो कछू काम है। पाछे सगरे सेवक, पोरिया, व्रजवासिन सों कहे जो– तुम सावधान रहियो। मैं श्रीगुसांईजी के पास अड़ेल जात हों।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिदा होयके कृष्णदास अड़ेल कों चले। सो दिन पंद्रह में कृष्णदास अड़ेल में श्री-गुसांईजी के पास आये। तब श्रीगुसांईजी कों दंडवत किये।

पाछे श्रीगुसांईजी पूछे जो– कृष्णदास! तुम श्रीनाथजी की सेवा छोड़िके क्यों आये? तब कृष्णदासने कही जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अपनो वैभव बढ़ावनो है, और बंगालीन की चुटिया में एक देवी है, सो राजभोग के समे बैठावत हैं। और जो भेट आवत है सो सब वृंदावन में अपने गुरून कों पठाय देत हैं। सो अबहीतें काहूकों मानत नांही हैं। सो आगे बहोत दिन तांई बंगाली रहेंगे तो झगड़ो बढ़ेगो। तासों

बंगालीन कों आपु काढ़िवे की आज्ञा दीजिये, सो मैं जा के काढूंगो।

तब श्रीगुसांईजी आपु कृष्णदास सों कहे जो-श्रीगोपीनाथजीनें पहेलो परदेश पूरवको कियो हतो, सो एक लक्ष रुपैय पूरव सों भेट आई हती। सो श्रीगोपीनाथजी प्रथम अड़ेल में आयके कहे जो- यह पहले परदेश की भेट श्रीगोवर्द्धननाथजी की है। सो यह कहिके लक्ष रुपैया लेके श्रीगोपीनाथजी श्रीजीद्वार पधारे, सो तहां रूपे सोने के थार, कटोरा श्रीनाथजी कों कराये। ता पाछे सेवा शृंगार करि श्रीगोपीनाथजी अड़ेल में आये। तब बंगाली सब मिलिकें सगरे थार कटोरा द्रव्य वृंदावन में अपने गुरून के यहां पठाय दिये। सो सब समाचार हमारे पास आये परि हम कहा करें? जो बंगालीन कों श्रीआचार्यजीने राखे हैं। सो तासों बंगाली कैसे निकसेंगे।

तब कृष्णदासनें कह्यो जो-महाराज! श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा एसी है जो-बंगालीन कों निकासिवे की। तासों आपु या बात में बोलो मति। तासों मैं जैसे बनेगी वैसे बंगालीन कों काढूंगो।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो-अवश्य बंगालीन कों निकास्यो चहिये। जो-बहुत दिन रहेंगे तब झगरो करेंगे। तब कृष्णदासने कही जो-महाराज! मोकों दोय पत्र लिखि दीजिये। सो एक तो राजा टोडरमल्ल के नाम को, और एक राजा बीरबल के नाम को।

तब श्रीगुसांईजी आपु दोय पत्र लिखि दिये। जो कृष्ण-दास श्रीगोवर्द्धन में है सो ये तुमसों कहे, सो करि दीजो। जो हमकों बंगाली काढ़ने हैं, और सेवक राखने हैं। और कृष्ण-दास श्रीगोवर्द्धननाथजी के अधिकारी हैं, तासों ये करें सो हमकों प्रमाण है।

सो यह लिखिके कृष्णदास कों दोऊ पत्र दिये। तब कृष्णदास श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके चले, सो कछुक दिन में आगरे में आये। तब राजा टोडरमल्ल कों और बीरबल कों दोऊ पत्र श्रीगुसांईजी के हस्ताक्षर के दिखाये, तब उन कह्यो जो—तुम कहो सो हम करें।

तब कृष्णदासनें कही जो—अब तो मैं श्रीनाथजीद्वार बंगालीनकों काढ़िवे कों जात हूं। जो कदाचित् बंगालीन के गुरु श्रीवृंदावन में है सो देशाधिपति के आगे पुकारें तब उन-की ठीक राखियो।

तब उन दोऊ जननने कही जो—तुम जाउ। तुमकों श्रीगुसांईजी की आज्ञा होय सो करो। जो हम ठीक राखेंगे।

पाछे कृष्णदास आगरे तें चले सो मथुरा आये। पाछे मथुरा तें श्रीगोवर्द्धन आये। तहां मारगमें अवधूतदास मिले। तब अवधूतदासने कही जो—कृष्णदास! ढील क्यों करि राखी है? जो— श्रीनाथजी कों अपनो वैभव बढ़ावनो है। तासों बंगालीन कों बेगि काढो। जो श्रीगोवर्द्धनधर की इच्छा है।

तब कृष्णदासने कही जो—मैं श्रीगुसांईजी की आज्ञा ले

आयो हूं। और अब जातही बंगालीन कों काढत हूं। सो यह कहिके कृष्णदास चले, सो श्रीनाथजीद्वार आये।

सो रुद्रकुंड ऊपर आय बंगालीन की झोंपरी में आंच लगवाय दीनी। तब सोर भयो सो सगरे बंगाली श्रीनाथजी की सेवा छोड़िके परवत तें नीचे उतरिके अपनी २ झोंपरी में आये, सो अग्नि बुझावन लागे।

तब कृष्णदासने श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में सब ठौर अपने मनुष्य व्रजवासी दोयसे राखे (हते) सो बेठारि दिये। और कह्यो जो—कोई बंगाली पर्वत ऊपर चढ़ें ताकों तुम चढ़न मत दीजो। और ब्राह्मण सेवक भीतरियान सों कहे जो— तुम श्रीनाथजी की सेवामें सावधान रहियो। तब यह कहिके कृष्णदास परवत तें नीचे हाथ में लकुटी लेके ठाड़े भये।

पाछे बंगाली अग्नि बुझाय के सगरे आये सो पर्वत उपर मंदिरमें चढ़न लागे। तब कृष्णदासने उन बंगालीन सों कह्यो जो—अब तिहारो काम सेवा में नांही है। जो हमने और चाकर राखे हैं, सो सेवा करन कों गये हैं।

तब बंगालीनने लरिवे की तैयारी करी, ओर कह्यो जो— हमारे ठाकुर हैं जो हमकों श्रीआचार्यजी महाप्रभुननें राखे हैं। सो तब लराई भई। पाछे कृष्णदासने बंगालीन कों भजाय दिये। तब सगरे बंगाली भाजे। तब मथुराजी में आय के रूपसनातन सों सगरी बात कही। जो— कृष्णदास जाति को

शूद्र, सो सगरेनकी झोपरी जराय दीनी। और सबनकों मारि के सेवा में ते बाहिर काढ़ि दिये हैं।

सो या प्रकार बात करत हते, इतने में कृष्णदास हू रथ पर चढ़िके पचास व्रजवासी हथियारबंध संग ले श्रीमथुराजी में आये; सो पहले रूपसनातन के पास आये।

तब रूपसनातनने कृष्णदास सों खीजिके कह्यो जो— क्योंरे! शूद्र! तेने इन ब्राह्मणन कों क्यों मारयो है? जो—यह बात देशाधिपति सुनेगो, तब तू कहा जुवाप देयगो?

तब कृष्णदासनें कह्यो जो— हूं तो शूद्र हौं। परि मैं ब्राह्मणन कों सेवक तो नांही करत हों। तुमहू तो अग्निहोत्री ब्राह्मण नांही हो। तुमहू तो कायस्थ हो, कायस्थ होयके इन ह्मणन कों दंडवत कराय सेवक करत हो, सो तुमहू जवाब देत में बहोत दुःख पावोगे। जो— तुम सों जुवाब न बनेगो। और मैं तो जुवाब दे लेऊंगो, जो— तिहारो मन होय तो चलो। देखो तो सही जो तुम सों जुवाब होत है? जो कैसे करत हों।

सो यह कृष्णदास के वचन सुनिके रूपसनातनने कही, जो— तुम जानो और ये जाने। जो हमतो कछु जानत नांही है।

सो या प्रकार रूपसनातन सगरे बंगालीन के गुरु हते, सो तिनने यह बात कही। तब सगरे बंगाली निरास होय के मथुरा के हाकिम के पास जायके यह बात कही। जो— कृष्णदासने हमकों श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवामें ते काढ़ि दिये हैं। तासों तुम कोई प्रकार सों हमकों रखाय देउ।

यह बात करत हते, इतनेही में कृष्णदास हाकिम के पास आये। सो कृष्णदास को तेज देखतही वह हाकिम उठि के कृष्णदास कों पूछि, पास बेठायके कही जो– तुम बडे हो, और श्रीगोवर्द्धननाथजी के अधिकारी हो। तासों तुम इन बंगालीन को गुन्हा माफ करो। अब भई सो तो भई। परि अब इन को फेरि राखो जो– सेवा करें।

तब कृष्णदासने कही जो–अब तो हम इनको नांही राखेंगे, अब ये हमारे चाकर नांही। ये चाकर होय लरिवे कों तैयार भये। इनकी झोपरी जरि गई, तो हम इनकी झोपरी और बनवाय देते। परंतु ये सगरे श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा छांड़ि पर्वत ते नीचे क्यों उतरि आये? तासों अब इनकों सेवा में काम नांही है। और आपु कहत हो, जो–इन को राखो। सो अब हम या बात को पत्र श्रीगुसांईजी कों लिखेंगे। सो वे कहेंगे, तेसो करेंगे।

तब वा हाकिमने कही जो– आछी बात है, जो तुम श्रीगुसांईजी कों लिखो, तब कृष्णदास श्रीनाथजीद्वार आये।

ता पाछे वे बंगाली वृंदावन में रहे। सो ता पाछे फेरि एक दिन सगरे बंगाली भेले होय देशाधिपति के पास आगरे में आयके कृष्णदास की चुगली करी। तब देशाधिपति अकबर पात्साहने कही जो– कृष्णदास कोन है? जो–इन ब्राह्मणन कों पूजामेंते काढ़े। सो उनकों बुलावो।

तब राजा टोडरमल्लनें और बीरबलने अकबर पात्साह

सों कह्यो जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाकुर श्रीविट्ठलनाथजी श्री-गुसांईजी के हैं। सो पहले ये बंगाली सेवा में राखे हते सो इनकों खरची देते। जो अब इन कों काढ़ि दिये है।

तब देशाधिपति ने कही जो– बंगाली झूठि चुगली करत हैं। जो चाकर को कहा है? तासों कृष्णदास कों बुलायके कहो जो– उनकों मन होय तो राखो।

तब देशाधिपति के मनुष्य कृष्णदास को लेवे कों श्रीगिरिराज आये। सो कृष्णदासने तो पहले ही सुनी हती, सो रथ ऊपर चढ़िके दस वीस आदमी लेकें देशाधिपति के मनुष्यन के संग आगरे में आये। तब कृष्णदास राजा टोडर-मल्ल और बीरबल सों मिले। तब राजा टोडरमल्ल और बीर-बलने कह्यो जो– बंगालीनने चुगली करी हती, सो हमने कहि दीनी है। और फेरि हू आज कहि देंयगे, जो– आजु को दिन तुम यहां रहो।

तब कृष्णदास उहां रहे। तब राजा टोडरमल्ल और वीरबल दरबार के समय देशाधिपति के पास आय अकबर सों कहे जो– कृष्णदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के अधिकारी आये हैं, और उनको मन बंगालीन कों राखिवे को नांही है। जो और चाकर राखे है, और ये तो काढ़े हैं।

तब देशाधिपतिने कही, जो– आछो उनको मन होय सो ताकों चाकर राखें। यामें झूठो झगरो कहा है? तासों बंगालीन कों काढ़ि देऊ।

तब राजा टोडरमल्ल और बीरबलने आयके बंगालीन सों कही जो– देशाधिपति को हुकम तुमकों काढ़ि देवे को भयो है, तासों तुम चुप होयके चले जाउ। जो– झगरो करोगे तो दुख पावोगे। तासों हमने तुमकों समुझाय दियो है।

तब सगरे बंगाली निरास होयके चले आये। सो श्री-वृंदावन में रहे। और कृष्णदास राजा टोडरमल्ल और बीरबल सों बिदा होयके चले आये, सो श्रीगिरिराज ऊपर आये×।

ता पाछे दोय कासिद बुलायके श्रीगुसांईजी कों बिनती पत्र लिख्यो, तामें यह लिख्यो जो– बंगालिन कों आपु की आज्ञातें काढ़े, ताको देशाधिपति सों जुवाब होय चुक्यो है, जो अब झगरो मिटि गयो है। और बंगाली झूठे राजद्वार तें परि चुके हैं। तासों अब आपु कृपा करिके पधारिये।

सो दोय जोडी कासिद की श्रीगुसांईजी के पास गई। तब श्रीगुसांईजी आपु पत्र बांचि अड़ेल तें बेगि ही पधारे, सो श्रीनाथजीद्वार आयके कृष्णदास कों बुलाय श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के सन्मुख अधिकारी को दुसालो उढ़ायो। और श्री-गुसांईजी आपु श्रीमुखतें कहे जो– कृष्णदास! तुमने बड़ी सेवा करी है, जो–यह काम तुमहीतें बने जो बंगालीन कों काढ़े। तासों अब सगरो अधिकार श्रीगोवर्द्धननाथजी को तुमही करो।

× यह प्रसंग सं. १६३० के लगभग का है। वार्ता की प्राचीन कथात्मक शैली के कारण इस में समय का सम्मिश्रण होगया है। (विशेष देखिये श्रीविट्ठलेश चरितामृत).

हमहू चूकें तो कहियो जो– कोई बात को संकोच मति राखियो। जो सगरे सेवक टहलुवान के ऊपर तिहारो हुकम, और की कहा है ? जो एसी सेवा तुम ही करी, जो तुम श्रीगोवर्द्धन-नाथजी सों कहोगे सोई करेंगे। तुम श्रीआचार्यजी के कृपापात्र हो, सो तिहारी आज्ञामें (जो) चलेंगे तिन सबन को भलो होयगो। तासों अब तुम श्रीगोवर्द्धननाथजीकी सेवा भली भांति सों करियो। सो सावधान रहियो।

पाछे कृष्णदास श्रीगुसांईजी (और) श्रीगोवर्द्धननाथजी कों साष्टांग दंडवत करिके अधिकार की सगरी सेवा करन लागे। ता दिनतें श्रीनाथजी के अधिकार की गादी बिछवे लगी। श्रीगुसांईजी की आज्ञा तें कृष्णदास गादी उपर बैठते।×

ता पाछे बंगालीनने सुनी जो–श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धन पधारे हैं, और सिंगार करत हैं। सो सगरे बंगाली मिलके श्रीगुसांईजी के पास आये। पाछे विनती करिके कहे जो– हमकों श्रीआचार्यजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा में राखे हते, सो कृष्णदासनें काढ़े हैं, तासों आपु फेरि हमकों सेवा में राखो।

× आज भी निस्वार्थ तथा शुद्ध हृदयसे श्रीनाथजी के अधिकार की सेवा करनेवाले को ही इस गादी पर बेठनेका सौभाग्य महाराजश्री तिलकायत की आज्ञासे ही प्राप्त होता है। कृष्णदास का उस समय एसा प्रभाव था कि–उन्ही के नामसे आज तक भंडार का नाम भी 'श्रीकृष्ण भंडार' चला आ रहा है और नामा इत्यादि में भी गुजराती भाषा का प्रयोग किया जाता है।

तब श्रीगुसांईजी कहे जो– तुम सगरे श्रीनाथजी की सेवा छोड़िके परवततें नीचे उतरि आये, सो दोष तिहारो है। और अब श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा तुमकों राखिवे की नांही है, तासों अब तुमकों राखे न जाय।

पाछें सगरे बंगाली बहोत बिनती करन लागे जो– तुम हमसों सेवा मति करावो, परंतु अब हम खांय कहा? जो– श्रीनाथजी की सेवा पीछे हमारो खानपान को सब सुख हतो, तासों हमकों कछु और सेवा टहल बतावो। तथा कोई और श्रीठाकुरजी बतावो, जासों हमारो निर्वाह चल्यो जाय।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोपीनाथजी के सेव्य श्रीमदनमोहनजी कों देके कहे जो–इनकी सेवा तुम करो। सो तब बंगाली श्रीमदनमोहनजी कों* लेके श्रीवृंदावन में आयके सेवा करन लागे।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो काहेतें? जो– बल्देवजी मर्यादारूप। सो तिनके सेव्य ठाकुर हू मर्यादारूप। सो बंगालीन कों मर्यादा की पूजा है, तासों दिये। और श्रीगुसांईजीने झगरो हू मिटाय दियो।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने सांचोरा गुजराती ब्राह्मण भीतरिया सेवामें राखे। सो मुखिया भीतरीया रामदास कों किये।

---

* मथुरा के नारायण भाट के ठाकुरजी, जो–श्रीवृंदावन के राधाबाग में से उनको प्राप्त हुए थे–सम्प्रति करोली राज्य में विराजमान हैं–

बड़े रामदासजी की वार्ता

सो रामदास ब्राह्मण सांचोरा गुजरात में रहते । ये लीलामें श्रीचंद्रावलीजी की सखी हैं । सो लीलामें इनको नाम 'मनोरमा' है। सो सात्विक भाव । श्रीचंद्रावलीजी की आज्ञाकारी । जैसे श्रीस्वामिनीजी श्रीठाकुरजी की लीला में ललिता मध्याजी परम चतुर । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के कृपापात्र ललितारूप कृष्णदास सब ठोर हुकम करें, तैसे मनोरमा रूपसों रामदास मुखिया भीतरिया श्रीगुसांईजी के आगे सब टहल करें ।

सो (मनोरमा) रामदास गुजरात में एक सांचोरा ब्राह्मण के यहां जनमे । सो वरस वीस के भये । तब माता पिताने देह छोड़ी ।

ता पाछें रामदासजी श्रीरणछोडजी के दर्शन कों गये । सो श्री-आचार्यजी के दर्शन भये, ता समय श्रीआचार्यजी कथा कहत हते । सो कथा श्रीआचार्यजीके श्रीमुखतें सुनिके रामदास को ज्ञान भयो, जो—श्रीआचार्यजी आपु साक्षात ईश्वर हैं, इनकी शरण रहिये तो कृतारथ होय । सो यह मनमें निश्चय कियो ।

ता पाछे श्रीआचार्यजी आपु कथा कहि चुके । तब रामदासने दंडवत करिके विनती कीनी जो—महाराज ! मोकों शरण लीजे । तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो—जाओ न्हाय आवो । तब रामदास न्हाय आये । तब श्रीआचार्यजीने रामदास कों नामनिवेदन करवायो ।

ता पाछे रामदास सों कहे जो—अब तुम भगवत्सेवा करो । तब रामदासने कही जो— मेरे पिता के ठाकुर मेरे पास है, सो आपु आज्ञा देऊ तेसें मैं सेवा करूं । तब श्रीआचार्यजी आपु रामदास के श्री-

ठाकुरजी कों पंचामृतस्नान कराय दिये। ता पाछे रामदास कछूक दिन श्रीआचार्यजी की पास रहे, सो सेवा की रीति भांति सीखे।

ता पाछे रामदासने श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो—महाराज! शास्त्र तो मैं कछु पढ्यो नांही हों, परंतु आप के ग्रन्थ पढ़िवे की इच्छा अभिलाषा है। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुननें रामदास कों अपने ग्रन्थ पढ़ाये। तब रामदासजी के हृदय में व्रज की लीला स्फुरी, सो रामदास ने यह कीर्तन श्रीआचार्यजी के आगे गायो। सो पद—

राग गोरी—'चलि सखी चलि अहो व्रज पेंठ लगी है, जहां बिकत हरिरस प्रेम'

या प्रकार के रसरूप पद रामदासने बहुत गाये, सो सुनिके श्रीआचार्यजी आपु बहोत प्रसन्न भये। तब रामदास श्रीआचार्यजीसों विदा होयके दंडवत करि गुजरात में अपने घर आयके बहोत दिन तांई सेवा कीनी।

ता पाछे एक दिन एक वैष्णव रामदास के घर आयो। तब रामदासने प्रीतिसों वैष्णवकों अपने घरमें राख्यो। पाछे रामदासने कही जो—वैष्णव को संग दुर्लभ है। सो तुमने बड़ी कृपा करी जो—तुम मेरे घर पधारे। सो तब वैष्णवनें कही जो—संग करिवे लायक तो पद्मनाभदासजी हैं, जो एक क्षण हू संग होय तो भगवत्कृपा होय।

सो सुनत ही रामदासजी के मन में यह आई जो—पद्मनाभदास को संग करूं। ता पाछे चारि दिन रहिके वह वैष्णव तो गयो। तब रामदासजी श्रीठाकुरजी कों पधरायके पद्मनाभदास के घर कनोज में

आये। सो पद्मनाभदास प्रीति सों रामदास कों महीना एक राखे, सो भगवद्वार्ता में मगन होय गये।

तब रामदासजीने कही जो—जेसी तिहारी बड़ाइ सुनी हती, तेसेही तिहारे संगतें सुख पायो। सो अब मैं श्रीगोवर्द्धननाथजीके दर्शन करि आऊं। तासों मेरे ठाकुर कों तुम राखो। तब पद्मनाभदासजीने रामदास के ठाकुर श्रीमथुरेशजी के सय्याजी के पास बैठारे। और इहां श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके रामदासको मुखिया किये, सो जनमभरि श्रीनाथजीकी सेवा रामदासने मन लगायके कीनी। सो या प्रकार रामदासजी रहे।

ता पाछे (जब) पद्मनाभदासजी की देह छूटी तब श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के पास श्रीठाकुरजी× को बैठारे। सो सदा श्रीनाथजी की पास रहे।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा को विस्तार बढ़ायो। सो राजसेवा करन लागे, जो–भोग सामग्री को नेग कियो, सेवक बहोत राखे, सो दरजी, सुनार, खाती सगरेन को नेग करि दियो। और भंडारी (अधिकारी) राखे, सो भंडारी को गादी तकिया।

या प्रकार श्रीगोवर्द्धननाथजी की ईश्वरता बढ़ाये। और सगरे सेवकन की ऊपर कृष्णदास अधिकारी कों मुखिया

× श्रीमुकुन्दरायजी।

किये, सो जो काम होय सो पूछनो। सो श्रीगुसांईजी
सेवा श्रृंगार करि जांय, और काहूसों कछु कहें नाहीं
कोई बात कोई सेवक श्रीगुसांईजी सों पूछे तब श्रीगुसांई
आपु कहें जो– कृष्णदास अधिकारी के पास जावो। जो
जांने नाहीं। सो या प्रकार मर्यादा राखी।

या भांति सों कृष्णदास को वैभव भारी और हु
भारी। सो जहां चलें तहां रथ, घोडा, बैल, ऊंट, गाडी,
पचास मनुष्य संग। सो कृष्णदास अधिकारी सब देसन
प्रसिद्ध भये।

सो कृष्णदास नित्य नये पद करिके श्रीगोवर्द्धनधर
सुनावते। सो एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–२

और एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजीने कृष्णदास कों आ
दीनी, जो– स्यामकुंभार को मृदंग समेत संग लेके परासो
सेन आरती पीछे जैयो, तहां रासलीला करेंगे।
श्रीगोवर्द्धननाथजी को दंडवत करिके कृष्णदास परवत तें नी
आये। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी स्यामकुंभार सों कहे जो
तुमकों जहां कृष्णदास कहें, तहां मृदंग लेके जैयो।
या प्रकार स्यामकुंभार कों श्रीनाथजी आपु आज्ञा किये।

सो या प्रकार स्यामकुमार कों श्रीनाथजी आपु आज्ञा किये सो

श्रीहरिरायजी कृत यातें, जो लीलामें स्यामकुंभार विशाखाजी की सखी

भावप्रकाश है। तहां लीलामें इनको नाम 'रसतरंगीनी' है।

सो इनकी मृदंग की सेवा है।

एक समय रसतरंगनी सेन किये हते, सो विसाखाजी को मन गान करिवे को भयो। तब रसतरंगनी कों जगायके कहे जो– तू मृदंग बजाव, सो तब मृदंग वजायो। तब विशाखाजी गान करन लागी। सो अलसातें रसतरंगिनी चूकि जाय। तब विशाखाजी क्रोध करिके कहे जो–आज कैसें वजावत है? तब रसतरंगिनीने कह्यो जो–मोकों नींद आवत है। और तिहारो मन तो गान करिवे को है, और मोकों नींद आवत है सो कैसे बने? तब विशाखाजी मृदंग आपुही लिये और क्रोध करिके विशाखाजीने रसतरंगनी सों कह्यो जो–तू मेरी सखी नांही है। सो जायके तू भूमिमें जनम लेउ। अहंकार करिके बोली सो ताकों यही दंड है।

तब ये महावन में एक कुम्हार के घर जन्मे। सो स्यामकुंभार नाम पर्‍यो। सो सगरे समाज में चतुर हते। श्रीगुसांईजी आपु इनकों बुलायके श्रीनवनीतप्रियाजी के पास राखे। तब इन स्यामकुंभार को नामनिवेदन करवायो।

जव श्रीगोवर्द्धननाथजी को वैभव बढ्यो, तब कृष्णदास के मनमें आई जो मृदंगी चहिये। तव श्रीगोवर्द्धनधर कहे जो–श्रीगोकुल में स्यामकुंभार है, सो मृदंग आछी बजावत है। ताकों श्रीगुसांईजी कों कहिके यहां राखो। तब कृष्णदासने श्रीगुसांईजीसों कह्यो जो–स्याम-

कुंभार कों श्रीगोवर्द्धनधर की सेवा में राखो। जो–यह इच्छा प्रभुन
है। तब श्रीगुसांईजी आपु स्यामकुंभार कों श्रीगोकुल तें बुलायके
नाथजी की सेवामें राखे। सो ता दिन तें स्यामकुंभार श्रीनाथजी
आगे मृदंग बजावतो। सो या प्रकार स्यामकुंभार श्रीगिरिराज में रह

तब कृष्णदासने स्यामकुंभार कों बुलायके कह्यो ज
श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा आजु परासोली में रास क
की है, सो मृदंग ले आवो, सेन आरती पीछे चलेंगे। त
स्यामकुंभारने कह्यो जो–मोहूकों आज्ञा दीनी है, तासों मृ
लेके तिहारे पास आयोहूं। सो जब सेन आरती श्रीगोव
ननाथजीकी होय चुकी, तब कृष्णदास स्यामकुंभार को ले
परासोली में चंद्रसरोवर है, तहां आये। तहां देखे
श्रीगोवर्द्धनधर और श्रीस्वामिनीजी सगरी सखीन सहि
विराजे हैं।

तब श्रीगोवर्द्धनधरने स्यामकुंभार सों कही जो–तू तो मृदं
बजाव, और कृष्णदास सों कह्यो जो–तू कीर्तन गाव। सो चै
सुद १५ * पून्यो के दिन रात्रि महर डेढ गई, उजिया
फैल गई सो अलौकिक रात्रि भई। तब स्यामकुंभार
मृदंग बजायो। सो वसंत ऋतु के सुन्दर फूल लतानसों फू
रहे हैं। सो श्रीगोवर्द्धनधर श्रीस्वामिनीजी सहित नृत्य कर
लागे। ता समय कृष्णदासने यह पद गायो। सो पद–

---

* श्रीनटवरलालजीके यहां इसीदिन रात्रि कों रास के दर्शन होते हैं

राग केदारो–१ 'श्रीवृषभाननंदनी नाचत लाल गिरिधरन संग, लाग डाट उरप तिरप रास रंग राच्यो'।

सो यह पद सुनिके श्रीगोवर्द्धनधर प्रसन्न होयके अपने श्रीकंठ की प्रसादी कुंदकुसुमन की माला दीनी। सो कृष्णदास अपनो परम भाग्य माने सो रोमरोम में आनंद भरि गयो। सो तब रस में मगन होयके यह पद गायो। सो पद–

राग मालव–१ 'अलाग लागिन उरप तिरप गति नटवत व्रजललना रासें × × × × अपने कंठ की श्रमजलदलमलि माला देत कृष्णदासें'। २ 'तताथेई रास मंडल में'। ३ 'चंद गोविंद गोपी तारागन'। ४ 'सिखवत पिय को मुरली बजावत'।

सो या प्रकार बहोत कीर्तन कृष्णदासजीने गाये। तब स्यामकुंभार मृदंग बहोत सुंदर बजायो। सो श्रीगोवर्द्धनधर, श्रीस्वामीनीजी सगरे व्रजभक्तन सहित परम अद्भुत नृत्य किये। सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की कानि तें कृष्णदास पर श्रीगोवर्द्धनधर एसी कृपा करते।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धनधर श्रीस्वामिनीजी सहित सगरे व्रजभक्त अंतर्ध्यान भये। तब कृष्णदास और स्यामकुंभार मृदंग लेके गोपालपुर आये, सो कृष्णदासने समे २ के कीर्तन बहुत किये।

वार्ता प्रसंग–४

और एक दिन सूरदासजीनें कृष्णदास सों कही जो–

कृष्णदास! तुमने जितने कीर्तन किये तामें मेरी छाया आ
है। तब कृष्णदासने कही जो–अब के एसो पद करूं सो त
तिहारी छाया न आवे।

पाछे कृष्णदास एकांत में बेठिके विचार किये एक
मन करिके, जो–सूरदास जो वस्तु न गाये होंय सो गावनं
यह विचार किये। सो जा लीला को विचार कि
ताही लीला के पद सूरदासजी (नें) गाये हैं। सो दान, मान
और गायन को वर्णन सब लीलाके पद सूरदासजीने गाये हते
सो कृष्णदासजी विचार करत हारे। मनमें महाचिंत भई
सो कृष्णदासजी कों प्रहर एक गयो, सो हारिके उठि बैठे
जो कागद लेखनी द्वात कलम धरिके महाप्रसाद लेन गये
तब श्रीगोवर्द्धनधर आयके पद पूरो करि गये। सो पद–

राग गोरी–१ 'आवत बने कान्ह गोप बालक सं
नेचुकी–खुर–रेनु छुरित अलकावली'।

यह पद लिखिके आपु तो पधारे। सो 'नेचुकी
गायन को वर्णन सूरदासजीने नांही कियो हतो। जो 'नेचुकी
गाय सों कहिये जो– पहले ब्यांत होय, ताको स्नेह बछर
ऊपर बहोत होय। सो एसी नेचुकी गाय काहू सखा ग्वा
सों घिरत नांही हैं, सो वारंवार अपने बछरा के तांई घ
कों ही भाजत है। जो एसी नेचुकी के जूथ में श्रीठाकुरजी
आपु पधारे हैं। तब नेचुकी गाय की खुर रेनु मुख प

अलकन पर लगी है। सो यह श्रीठाकुरजी आपु एक तुक करि कागद के ऊपर लिखिके पधारे।

ता पाछे कृष्णदास महाप्रसाद आनंद सो लेके आये सो कीर्तन पूरो किये। सो पद-

राग गोरी-१ 'आवत बने०'।

सो या प्रकार कीर्तन पूरो करिके कृष्णदासजी प्रसन्न होयके सूरदासजी की पास आये, हसत २। तब सूरदासजीने पूछी जो- आज बहोत प्रसन्न हसत आवत हो, सो कहा नौतन पद किये? तब कृष्णदास नें कह्यो जो- आजु एसो पद कियो है, तामें तिहारे पदन की छाया नांही है। जो वस्तु तुमने गाई नहीं है।

तब सूरदासजी कहे जो- तुम मोकों बांचिके सुनावो तो सुनों। तब कृष्णदास (ने) पहली ही तुक कही जो- ताही कों सुनिके कृष्णदास सों सूरदासजी बोले जो- कृष्णदास! मेरे तिहारे वाद है। कछू तिहारे बापसों विवाद नांही है। सो यामें तिहारो कहा है? जो मैंने नेचुकी नांही गाई सो प्रभु कहि दिये। और तो श्रीअंगके वरनन के मेरे हजारन पद हैं, सोई तुमने गायके पूरन किये हैं। यह सूरदासजी के वचन सुनि के कृष्णदासजी चुप होय रहे।

भावप्रकाश. सो तहां यह संदेह होय जो- कृष्णदासजी तो ललिताजी को श्रीहरिरायजी कृत स्वरूप हैं, और श्रीगोवर्द्धननाथजी कृष्णदास की पक्ष किये, सो पद बनाये। तोहू सूरदासजी सों न जीते। ताको कारण कहा है?

तहां कहत हैं जो—कृष्णदासजी ललितारूप हैं। सो तैसेही सूरदासजी चंपकलतारूप हैं। परंतु आपुनो अधिकार—भेद है। सो लीलाहू में श्रीललिताजी की सेवा श्रेष्ठ है। तैसेही यहां सेवा की भात ते' कृष्णदास श्रेष्ठ। सो सगरे सेवकन की सेवा में चोकसी, सगरी वस्तु समारनी, सेवा को मंडान विस्तार करनो। यामें कृष्णदास परम चतुर। जैसे सुनार सों दरजी की सेवा न होय और दरजी सों सुनारके आभूषन को काम न होय। सो सब अपनी २ सेवा में चतुर हैं। और श्रीस्वामिनीजी की सखी दोऊ प्रिय हैं। तासों श्रीगोवर्द्धन-नाथजी की प्रीति तो दोउन के ऊपर है। परंतु कृष्णदास के मन में रंचक अहंकार आयो, जो—मैं हू कीर्तन बहोत किये हैं।

सो वे कृष्णदास श्रीआचार्यजी के ऐसे कृपापात्र भगव-दीय हते।

वार्ता प्रसंग—९

और एक समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में सामग्री चहियत हती, सो तब कृष्णदास गाड़ा लिवाय आपु रथ पर असवार होयके श्रीगोवर्द्धन सों, आगरे आये। सो जब आगरे के बजार में गये, तहां एक वेश्या अपनी छोरी कों नृत्य सिखावत हती। सो वह छोरी परम सुंदर वरस बारह की हती, कंठहू परम सुंदर हतो। सो गाननृत्यमें चतुर बहोत हती। सो वह वेश्या ताल टप्पा गावत हती। सो वह छोरी को गान कृष्णदास के कानपें पर्‌यो हतो सो कृष्णदास के मनमें बैठि गयो, सो प्रसन्न होय गये। तब कृष्णदासने तहां अपनो रथ

ठाढ़ो कियो। सो भीड़ सरकायके वा छोरी को रूप देखे, सो तहां गान सुनिके मोहित होय गये।

तहां यह संदेह होय जो–कृष्णदास श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के **श्रीहरिरायजी कृत** कृपापात्र सेवक वेस्या के गान पर मोहित क्यों भये?

भावप्रकाश. जो ये तो श्रीठाकुरजी के ऊपर मोहित हैं। सो इनकों अप्सरा देवांगना तुच्छ दीसत हैं। और श्रीआचार्यजी आपु जलभेद ग्रन्थ में कहे हैं जो–

'वेश्यादिसहिता मत्ता गायका गर्त्तसंज्ञिताः।
जलार्थमेव गर्तास्तु नीचा गानोपजीविनः॥'

वेश्यादि सहित गायक भाट, डोम, नीच को गान सूकर के गड़ेलाके जलवत है। सो वामें न्हाय, पीवे सो जैसें नीचको गानरस पीवे। या प्रकार के दोष श्रीआचार्यजी कहे हैं।

सो कृष्णदास परमज्ञानवान मर्यादा के रक्षक। सो ये वेश्या के गान पर रीझे? **सो इनकी देखादेखी करे सो बहिर्मुख होय।** ये तो सब कों शिक्षा देवे कों उद्धार करन कों प्रकटे हैं, तासों ये कृष्णदास वेश्या के ऊपर क्यों रीझे?

यह संदेह होय तहां कहत हैं जो–यहां कारन और है। जो–यह वेश्या की छोरी लीला संबंधी दैवी जीव ललिताजी की सखी है, सो लीला में इनको नाम 'बहुभाषिनी' है।

सो एक दिन ललिताजी श्रीठाकुरजी के लिये सामग्री करत हती, तब ललिताजी ने बहुभाषिनी सों कही जो–तू मिश्री पीसिके ले आउ। सो बहुभाषिनी मिश्री को ड़बरा भरिके ले चली। सो दूसरी सखी

सों बात करते करते छांटा उड्यो, सो मिश्री में पर्‍यो । सो बहुभाषिनी को खबरि नांही ।

पाछे मिश्री को डबरा लेके ललिताजी के पास आई, तब ललिताजी परम चतुर हती सो जानि गई । पाछे बहुभाषिनी सों कही जो– यह सामग्री छुइ गई । जो– तेरे मुख तें छांटा पर्‍यो है। सो भगवद् इच्छा होनहार । तब बहुभाषिनी ने कही जो– तुम झूंठ कहत हो, छींटा तो नांही पर्‍यो । और श्रीठाकुरजी सखामंडली में सब की जूंठनि हू लेत हैं ।

सो तब ललिताजी ने कह्यो जो– प्रभुन की लीला तू कहा जाने ? प्रभु प्रसन्न होय चाहे सो करें, सोई छाजे । **जो अपने मन तें कछु हीन क्रिया करे सोई भ्रष्ट ।** तासों तू हीन ठिकाने जनमेगी । तब बहुभाषिनी ने कही जो– तुमहू शूद्र के घर जनम लेके मेरो उद्धार करो । जो तुमकों छोड़िके मैं कहां जाउं ?

सो या प्रकार परस्पर श्राप भयो । तब कृष्णदास शूद्र के घर जन्मे, और बहुभाषिनी को जनम वेश्या के घर मात्र भयो, सो लौकिक पुरुष को मुख नांही देख्यो । सो कृष्णदास कों श्रीगोवर्द्धनधर प्रेरिके आगरे में वा वेश्या के अंगीकार के लिये पठाये । तासों कृष्णदास के हृदय में वेश्या को गान प्रिय लग्यो ।

सो ठाड़े होयके गान नृत्य सुनिके मनमें विचारे जो– यह सामग्री तो अति उत्तम है, और दैवी जीव है, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के लायक है। तासों श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु वाको अंगीकार करें तो आछो है ।

सो यह कृष्णदासजी अपने मनमें विचार करिके दस रुपैया वा वेश्या कों देके कहे जो- हमारे डेरान पर रात्रिकों आइयो। यह कहिके कृष्णदासजी जहां हवेलीमें हमेस उतरते ताही हवेलीमें उतरे, और सामग्री जो लेनी हती सो गाड़ा लदाय दिये।

ता पाछे रात्रि प्रहर एक गई, तब वह वेश्या समाज सहित आई, सो तब नृत्य गान कियो। सो कृष्णदास बहोत प्रसन्न भये। तब वा वेश्या कों रुपैया १००) सो दिये। और वा वेश्या सों कहे जो- तेरो रूप, गान, नृत्य सब आछे हैं। तासों-सवारे हम श्रीगोवर्द्धन जायगें, और हमारो सेठ तो उहां हैं जो- तेरो मन होय तो तू चलियो। तब वा वेश्याने कही जो- हमको तो यही चहिये। पाछे वह वेश्या अपने मनमें बहोत प्रसन्न भई, जो- ये इतने रुपैया दिये तो सेठ न जाने कहा देयगो?

सो तब वेश्याने घर आयके अपनी गाड़ी सिद्ध कराई, सो गायवेको साज सब आछे बनाय गाड़ी ऊपर धरि राख्यो। तब सवारे भये कृष्णदास के पास आई। पाछे कृष्णदास वा वेश्याकों लिवायके ले चले, सो मथुरा आय रहे। तब दूसरे दिन मथुरा तें चले सो मध्यान्ह समय गोपालपुर में आये। पाछे वा वेश्याकों न्हवायके नवीन वस्त्र पहेरवेकों दियो, सो वाने पहर्‌यो। तब कृष्णदास अपने मनमें विचारे जो-यह ख्याल टप्पा गायगी सो श्रीगोवर्द्धनधर सुनेंगे।

तासों मैं याकों एक पद सिखाऊं। तब कृष्णदासने वा वेश्या कों एक पद सिखायो। और कह्यो जो–ये पद तू पूरवी राग में गाइयो। सो पद–

राग पूरवी–'मेरो मन गिरधर छवि पर अटक्यो०'। यह पद कृष्णदासने वा वेश्या कों सिखायो।

ता पाछे उत्थापन के दर्शन होय चुके, तब भोग के दर्शन के समय वा वेश्या कों समाज सहित कृष्णदास पर्वत के ऊपर ले गये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो भोग के समय यातें ले गये, जो– उत्थापन के समय निकुंज में जागिके (श्रीठाकुरजी) उठत हैं। तातें उत्थापन भोग बेगि आयो चहिये। और भोग के दरशन–व्रजके मारग में पधारत हैं, सो अनेक भक्तन को अंगीकार करत हैं। तासों याहू कों अंगीकार करनो है। तासों भोग के समय कृष्णदास वेश्या को परवत ऊपर ले गये।

पाछे भोग के किवाड़ खुले। तब वह वेश्याने पहले नृत्य कियो, ता पाछे गान करन लागी। सो कृष्णदासने पद करिके सिखायो हतो सो गायो। सो गावत २ जब छेली तुक आई जो–'कृष्णदास कियो प्रान न्योछावरि यह तन जग सिर पटक्यो'

या पद को गान करत ही वा वेश्या की देह छूटि गई, सो दिव्य देह होय लीलामें प्राप्त भई।

सो तब सगरे समाजी तथा वा वेश्या की माता रोवन लागी। जो–हम यासों कमाय खाते, अब हम कहा

करेंगे? तब कृष्णदासने उनकों नीचे ले जायके कह्यो जो– अब तो भई सो भई, जो याकी इतनी आरबल हती। सो– या वात को कोऊ कहा करे? अब तुम कहो सो तुमकों देऊं। तब उन कही जो– हजार रुपैया देऊ जो– कछूक दिन खांय। पाछे जो– होनहार होयगी सो सही। तब कृष्णदासनें हजार रुपैया देके उन सबनकों विदा किये।

सो या प्रकार वा वेश्या की छोरी कों श्रीगोवर्द्धननाथजी कृष्णदास की कानि तें आपु अंगीकार किये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

तहां यह संदेह होय, जो– श्रीआचार्यजी के संबंध बिना लीला की प्राप्ति कैसे भई? तहां कहत है जो– कृष्णदास के हृदयमें श्रीआचार्यजी विराजत हैं। सो कृष्णदासने पद वेश्या की छोरी कों सिखायो, सो देखिबे मात्र है। या पद द्वारा श्रीआचार्यजी को संबंध कराये। तासों यह पहिली तुक में कहे जो– 'मेरो मन गिरधर–छबि पर अटक्यो' सो सगरो धरम, मन लगायवे की रीत करी है। जीव अपनी सत्ता मानि स्त्री, पुत्र, देह में मन लगायो (है) तासों समर्पन करावत हैं।

तहां कोऊ कहे, जो– जीव सब दे चुक्यो है, जो अपनी सत्ता छोडिके प्रभुनकी सत्ता सब है। तासों मोकों तो एक श्रीकृष्ण ही गति हैं। तासों या पद में कहे जो–मेरो मन श्रीगोवर्द्धनधर की छबि पर अटक्यो,सो सब छोडिके, या प्रकार कृष्णदास द्वारा श्रीआचार्यजी आपु संबंध कराये, यह जाननो।

तोहू संदेह होय, जो–गुरु बिना लीला में कैसे प्राप्ति भई ? सो अलीखान कों प्रभु दरसन दिये। ता पाछे अलीखान कों और अलीखान की बेटी को सेवक होयवे की कही, सो सेवक कराये।

यहां नांही कराये, यह संदेह होय, सो काहेते ? जो ब्रह्मसंबंध में श्रीगोवर्द्धनधर की हू यही आज्ञा है जो–जाको तुम ब्रह्मसंबंध करवावोगे, ताकूं मैं अंगीकार करूंगो। तासों इन कों श्रीआचार्यजी महाप्रभु, श्रीगुसांईजी द्वारा ब्रह्मसंबंध न भयो और लीला की प्राप्ति कैसे भई ? उद्धार होय, परंतु लीला की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ। सो ब्रह्मसंबंध को दान करिवे के लिये श्रीआचार्यजी के कुल को विस्तार भयो।

सो काहे तें ? जो–सेवकन कों श्रीआचार्यजी आपु नाम सुनायवेकी आज्ञा दीनी, परि ब्रह्मसंबंध की नांही। तासों ब्रह्मसंबंध को दान वल्लभकुलही तें होय। **सो औरतें फलित नांही है।**

यह संदेह होय, तहां कहत है, जो– वेश्याको छोरी **देह तजिके** लीला में गई। तहां लीला में ललिता, श्रीगुसांईजी सदा बिराजत हैं। सो कृष्णदासजी लीला में ललितारूप होय जगत तें काढ़िके लीला में पठाये, सो लीला में श्रीललिताजी ने श्रीस्वामिनीजी द्वारा ब्रह्मसंबंध कराय अपनी सेवा में राखे। सो काहेतें ? जो–ललिताजी की सखी है।

या प्रकार ब्रह्मसंबंध भयो। सो जैसे मथुरा में नागर की बेटी को लीला में ब्रह्मसंबंध श्रीगुसांईजी कराये, यह भाव जाननो।

सो वे कृष्णदास एसे भगवदीय हते। जो वेश्या कों अंगीकार करायो।

वार्ता प्रसंग-६

और एक समय सगरे वैष्णव मिलिके कुंभनदासजी के पास आये। सो उनकों प्रीति सों बैठारिके पूछे जो-आजु बड़ी कृपा करी, जो-कछु आज्ञा करिये।

तब वैष्णवनने कही जो- तुमसों कछु मारग की रीति सुनिवे कों आये हैं। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो- मारग की रीतिमें तो कृष्णदास अधिकारी निपुण हैं, सो उनसों पूछो।

तब उन वैष्णवनने कही जो- हमारी सामर्थ्य नांही है, जो-कृष्णदास सों पूछि सकें। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो- तुम मेरे संग चलो, जो तिहारी ओरतें हम पूछेंगे। तब सगरे वैष्णव कुंभनदासजी के संग गये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो कुंभनदासजी यातें नांहीं कहे, जो- कुंभनदासजी को मन रहस्य लीला में मगन है। सो कहा जानिये जो प्रेममें कहा वस्तु निकसि पडे। और कीर्तन में गूढ रीति सों लीला वरणन करत हैं। तासों जाको जैसे अधिकार है, ताकों तैसो कीर्तन में भासत है। और वैष्णवन सों कहनो परे सो खोलिके समुझावनो परे। तासों कुंभनदासजी कृष्णदास के पास सारे वैष्णवन को संग लेके आये।

सो तब सब वैष्णवन कों देखिके कृष्णदास बहोत प्रसन्न भये, और सबन कों आदर करिके बैठारे। ता समय कृष्णदासनें यह कीर्तन गायो। सो पद-

राग सारंग–१ 'गिरधर जब अपुनो करि जानें०'।

यह पद कृष्णदासने कह्यो। पाछे कृष्णदासने पूछी जो–आज मो पर सगरे भगवदीय कृपा करे सो–मेरे पास पधारे। तासों अब जो प्रसन्न होयके आज्ञा करो सो में करूं। तब कुंभनदासजीने कह्यो जो–सगरे वैष्णवन को मन पुष्टिमारग की रीति सुनिवे को है। सो कहा कहिये? कहा सुमिरन करिये, सो एसे पुष्टिमारग को अनुभव होय सो कृपा करिके सुनावो।

तब कृष्णदासने कह्यो जो–कुंभनदासजी! तुम सगरे प्रकार करिके योग्य हो, जो–श्रीआचार्यजी के कृपापात्र भगवदीय हो, सो उचित है। तुम बड़े हो, जो तिहारे आगे में कहा कहूं? तुमसों कछू छानी नांही है। तब कुंभनदासजी कृष्णदाससों कहे जो–तुम कहो, हमारी आज्ञा है। जो–सगरे सेवकन में तुम मुख्य हो। सेवकन को कार्य तिहारे हाथ है, जो–यह पुष्टिमारग के अधिकारी तुम हो, तातें तुम कहो।

तब कृष्णदासने पहले अष्टाक्षर को भाव कीर्तन में कह्यो, सो पद–

राग सारंग–'कृष्ण श्रीकृष्ण शरणं मम उच्चरे०'।

सो यह अष्टाक्षर को भाव कहिके अब पंचाक्षर को भाव कीर्तन में गाये। सो पद–

राग सारंग–'कृष्ण ये कृष्ण मन मांह गति जानिये०'।

सो ये दोय कीर्तन कृष्णदासने गाय सुनाये। तब सगरे

वैष्णव प्रसन्न होयके कहे जो– कृष्णदास ! तुम धन्य हो। जो– दोय कीर्तन में संदेह दूरि कियो। और मारग को सब सिद्धांत बतायो।

ता पाछे कृष्णदास सों विदा होयके सगरे वैष्णव अपने घर कों गये। सो वे कृष्णदास श्रीआचार्यजी के एसे कृपा-पात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-७

और कृष्णदास को गंगाबाइ क्षत्रानी सों बहोत स्नेह हतो।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो काहेतें ? जो लीला में गंगाबाई श्रुतिरूपा के जूथ में तामसी भक्त हैं। सो मथुरा के एक क्षत्री के घर जन्मी। पाछे वरस ११की भई। तब गंगाबाई कों मथुरा में एक क्षत्री के बेटा सों ब्याह भयो। पाछे गंगाबाई क्षत्राणी के जो बेटा होय सो मरि जाय, सो नो बेटा भये। ता पाछे एक बेटी भई। सो बेटी को विवाह गंगाबाई क्षत्राणीने कियो। गंगाबाई की बेटी के गहनो बहोत हतो। सो वह बेटी मरी। सो बेटी को गहनो लाख रुपैया को दाबि राख्यो, सो कछू मथुरा के हाकिम को देके गहनो सब राख्यो।

ता पाछे वरस ५५ की भई तब झगडा के लिये श्रीनाथजीद्वार आयके रही। सो कृष्णदास सों मिलिके श्रीआचार्यजी सों सेवक होय को कही। तब कृष्णदासने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी, जो– महाराज ! गंगाबाई क्षत्राणी कों शरण लीजिये। तब श्रीआचार्यजी आपु कहे जो–जीव तो दैवी है, परन्तु अभी मन श्रीठाकुरजी में नांही है।

तब कृष्णदासने बिनती कीनी जो– महाराज ! आपकी कृपा तें श्रीगोवर्द्धननाथजी कृपा करेंगे । पाछे श्रीआचार्यजी आपु कृष्णदास के आग्रह सों गंगाबाईकों नामनिवेदन करवायो ।

सो कृष्णदास पहले श्रीगोवर्द्धननाथजी के भेटिया होयके परदेस कों जाते, तब गंगाबाई क्षत्राणी मथुरा कों आवती । पाछे कृष्णदास श्रीनाथजीद्वार आवते तब गंगा क्षत्राणी हू मथुरा सों सगरी वस्तु ले श्रीजीद्वार आवती । सो कृष्णदास गंगाबाई को मन भगवद्धर्म में लगायवेके तांई दोऊ समे को महाप्रसाद श्रीनाथजी को वाके घर पठावते । क्यों ? जो गंगाबाई की खानपान में प्रीति बहोत हती । सो कृष्णदास बहोत सुन्दर सामग्री श्रीनाथजी को आरोगावते, और गंगाबाई कों भगवद्धर्म समुझावते । पाछे कृष्णदास गंगावाई कों श्रीनाथजी के सगरे दरशन हू करावते । सो कृष्णदास के संग तें गंगाक्षत्राणी को मन अलौकिक भयो ।

सो एक दिन श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों राजभोग समर्पत हते, सो सामग्री के ऊपर गंगाबाई की दृष्टि परी* । तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु राजभोग आरोगे नांही। ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु भोग सरायो । पाछे राजभोग आरती करि अनोसर करि आपु परवत तें नीचे पधारे । सो सेवक भीतरिया महाप्रसाद लिये। और श्रीगुसांईजी आपहू महाप्रसाद लेके पोंढे ।

---

* श्रीगुसांईजी के समयमें श्रीनाथजीकी सामग्री आदि की सब सेवा मंदिर के नीचे जो बारह कोठा थे, उसमें होतीथी. और सिद्ध होने के बाद ऊपर लाकर निजमंदिर में भोग आती थी ।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी आय रामदास भीतरिया कों लात मारिके जगाये। तब रामदासजी जागे। सो देखे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं। सो रामदासजी दंडवत करिके हाथ जोड़िके ठाड़े भये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु रामदास सों कहे जो– मैं तो भूख्यो हूं।

पाछे रामदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों विनती कीनी जो– महाराज! श्रीगुसांईजीने राजभोग समर्प्यो हतो, और तुम भूखे क्यों रहे? तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने कही जो– राजभोग में तो सामग्री ऊपर गंगाबाई की दृष्टि परी, तासों मैं नांही आरोग्यो हूं।

तब रामदासजी भीतरिया श्रीगुसांईजी के पास जाय चरणारविंद दाविके जगाये, और विनती कीनी जो– महा-राज! श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु भूखे हैं। सो राजभोग में गंगा-बाई की दृष्टि परी है, तासों श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु राजभोग नांही आरोगे हैं।

सो यह सुनत ही श्रीगुसांईजी आपु तत्काल उठिके स्नान करिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में पधारे। पाछे रामदासजी न्हायके आये, इतने में सब भीतरिया हू स्नान करिके आये। तब श्रीगुसांईजी आपु सीतकाल देखिके भीतरियान सों कहे जो– बड़ी और भात करो। सो बेगि सिद्ध होय जायगो, तातें तैयार करो।

तव भीतरियानने बड़ी और भात कियो। सो श्री-गुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी कों भोग धरे। ता पाछे राजभोग की सगरी सामग्री सिद्ध भई, और सेनभोग की हू सगरी सामग्री सिद्ध भई। सो राजभोग, सेनभोग दोउ भोग संग ही श्रीगुसांईजीने धरे।

पाछे समय भये भोग सरायो। ता पाछे श्रीगोवर्द्धन-नाथजी कों पोढ़ायके अनोसर करवायके बाहिर पधारे। सो एक डबरा में बड़ीभात श्रीगुसांईजी अपुने श्रीहस्त में लेके परवत तें नीचे पधारे। पाछे सगरे सेवकन कों बड़ीभात अपने हाथ सों रंच रंच दियो, और रंचक श्रीगुसांईजी आपु आरोगे। बड़ीभात महाप्रसाद बहुत स्वाद भयो, सो श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों बहोत सरहायो।

पाछे रामदास आदि सब सेवकनने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो- महाराज! यह सामग्री तो सीतकाल में कितनीक बार करी है, परंतु आजु बहोत स्वाद भयो। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो- श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु भूखे हते सो प्रीति सों आरोगे, तासों स्वाद अद्भुत भयो।

ता समय कृष्णदास पास ठाड़े हते। सो कृष्णदासने कही जो- महाराज! आपुही करनहारे और आपुही आरोगन-हारे, सो स्वाद क्यों न होय? तब श्रीगुसांईजी आपु वा समय श्रीमुख सों कहे जो- ये तिहारे ही किये भोग भोगत हैं।

तहां यह संदेह होय जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी आरोगे नांही।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो श्रीगुसांईजी आपु भोग सराये, आचमन मुख वस्त्र करायो पाछे श्रीगोवर्द्धनधर कों बीरी आरो-गाये। सो भूखे श्रीगुसांईजीने न जानें? और बीरी आरोगत श्रीगोव-र्द्धनधर श्रीगुसांईजी सों न कहे, जो– मैं राजभोग नांही आरोग्यो। ताको कारण कहा? जो रामदास भीतरिया सों क्यों कहे?

सो यह संदेह होय तहां कहत हैं, जो–श्रीगोवर्द्धननाथजी वा दिना श्रीगोकुल में श्रीनवनीतप्रियाजी के यहां श्रीगिरधरजीने बड़ीभात करायो हतो, श्रीशोभावेटीजी किये। सो तब श्रीगिरधरजी और श्रीशोभावेटीजी के मन में आई, जो– श्रीगोवर्द्धनधर आपु पधारें और नौतन सामग्री आरोगें। तासों उहां वह दूसरो स्वरूप (भक्तोद्धारक) श्री-गिरिराजतें पधारिके श्रीगोवर्द्धनधर बड़ीभात आरोगे। और श्रीगिरिधरजी, श्रीशोभावेटीजी को तो मनोरथ, सो भक्तन कों अनुभव करत हैं। सो स्वरूप तो आरोगि पाछें श्रीगिरिराज पर्वत के ऊपर पधारे। सो उहां (गिरिराजपें) सगरे सेवक महाप्रसाद ले चुके। और श्रीगुसांईजी आपु पोढ़े। ता समय मंदिर में श्रीस्वामिनीजीने पूछी जो– कहो, कहां होय आये हो? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, जो– बड़ीभात श्रीगोकुल में श्रीगिरिधरजी श्रीशोभावेटीजी को मनोरथ (हतो) सो आरोगके आयो हूं। यह सुनिके श्रीस्वामिनीजीने हू बड़ीभात आरोगवे को मनोरथ कियो, जो– बड़ीभात आरोगें तो आछो। सो यहां (तो) (राजभोग) होय चुके।

तब श्रीस्वामिनीजीने श्रीनाथजी सों कह्यो, जो– जायके रामदास सों कहो जो– सामग्रीपे गंगाबाई क्षत्राणी की दृष्टि परी है। सो काहेतें?

जो–लीलासृष्टि के वचन हू सिद्ध करने हैं। जो– श्रीगुसांईजो को छे महिना को विप्रयोग है।

यातें जो–लीला में एक समय श्रीठाकुरजी ललिताजी सों कहे जो– मैं तेरी निकुंज में पधारूंगो। यह बात श्रीचंद्रावलीजीने सुनी। सो श्रीचंद्रावलीजीने श्रीठाकुरजी कों विविध चतुराई करि सेवा द्वारा ललिताजी के यहां छ मास तक पधारवे सों बरजे। सो ललिताजी विरह करि महा क्रस होय गईं। पाछें यह बात श्री स्वामिनीजोने जानी, सो श्रीस्वामिनीजी ललिताजी कों संग लेके श्रीठाकुरजी की पास वाही समय आईं। और श्रीठाकुरजी सों कह्यो जो– तुम (नें) छे महिना लों मेरी सखी कों विरह दियो, अब तुम छे महिना लों ललितासखी के बस में रहोगे। और जाने मेरी सखी कों दुख दियो हैं, सो छ महिना लों दुःख पावो, और वाकों तिहारो दरसन हू न होय। सो यह बात सुनिके श्रीठाकुरजी आपु चुप होय रहे।

यह बात एक सखीने श्रीचंद्रावलीजी सों कही। सो सुनिके श्रीचंद्रावलीजी कहे जो– श्रीस्वामिनीजी श्रीठाकुरजी तो बड़े हैं। तासों इनसों तो कछू कही जाय नांही। परंतु ललिता सखी होय एसो खोटो कियो, जो श्रीस्वामिनीजी की सखी, सो मेरी सखी बराबरी है। सों इन (नें) मोको श्राप दिवायो जो छे महीना लों मोकों प्रभुन को दरसन हू नांही? सो ललिताने स्वामिनी–द्रोह कियो।

सो काहेते? जो श्रीठाकुरजीतें श्रीस्वामिनीजी प्रकटी हैं। और स्वामिनीजी के मुखचंद्रतें श्रीचंद्रावली प्रकटी। श्रीचंद्रावलीजीतें सगरी स्वामिनी सखी प्रकटी हैं। तासों श्रीठाकुरजी के दक्षिण भाग श्रीचंद्रावलीजी

बिराजत हैं। याते जो– सगरी सखीन के स्वामिनीरूप, श्रीचंद्रावलीजी (सो सर्व में) श्रेष्ठ हैं। तासों श्रीचंद्रावलीजीने कही जो ललिताने स्वामिनी–द्रोह कियो है। तासों ललिता की अकाल मृत्यु होऊ, और प्रेतयोनिकूं पावो। सो श्रीठाकुरजीहू, श्रीस्वामिनीजीहू रक्षा न करि सके। और काहूतें प्रेतयोनि निवृत्त न होय। जो मोकों श्राप दिवायो ताको यह फल भोगो।

यह बात काहू सखीने ललिता सों कही। सो सुनत ही ललिता महा कंपायमान होयके तत्काल दोरिके श्रीस्वामिनीजी के चरणन में आयके गिरि परी। पाछे अपनी सब बात ललिताने कही।

तब श्रीस्वामिनीजीने श्रीठाकुरजी कों बुलायके कह्यो जो– ललिता अपने हाथ सों गई, तासों अब कछू उपाय करो। पाछें श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी को संग ले ललितादि समाज सहित श्रीचंद्रावलीजी के यहां पधारे। सो श्रीचंद्रावलीजी तत्काल उठिके श्रीठाकुरजी कों स्वामिनीजी कों नमस्कार करिके ऊंचे आसन पधराये। पाछे परम प्रीति सों दोउ स्वरूपन की पूजा करिकें सुन्दर सामग्री आरोगाये। ता पाछे बीरी आरोगाय श्रीचंद्रावलीजी हाथ जोरि के ठाड़ी भई। सो तब दोऊ स्वरूपनने प्रसन्न होयके श्रीचंद्रावलीजी को हाथ पकरिके पास बैठारी।

ता पाछे श्रीस्वामिनीजी कहे जो– सुनो श्रीचंद्रावलीजी ! तिहारी प्रीति तो महा अलौकिक है, और हमारे तिहारे में कछू भेद नांही है। और यह ललिता अपनो सखी है, सो यह तिहारी है। तासों अब याको श्राप भयो है, सो ताको छुटकारो करो।

तब श्रीचंद्रावलीजी कहे जो— ललिता अपनी है। तासों यह कछू भयो है सो यह जगत पर लीला करन अर्थ भयो है। सो यह ललिता प्रेत होयगी ताको मैं ही उद्धार करूंगी। जो यह मेरो निश्चय बचन है।

तब ललिता श्रीचंद्रावलीजी के चरणन में गिरिके कह्यो, जो— मैं तिहारो अपराध कियो सो पायो है। तब श्रीस्वामिनीजीने कही जो— यह सगरो परिकर, कलियुग में श्रीगिरिराज ऊपर लीला करनो है, तहां सब प्रकट होयगो। सो श्रीस्वामिनीजी के यह बचन सुनिके श्रीठाकुरजी, श्रीचंद्रावलीजी ललिता आदि सब प्रसन्न भये।

सो **लीलासृष्टि मैं अलौकिक स्नेह है, और अलौकिक श्राप है, और अलौकिक ही ईर्षा है, जो माया कृत तहां नांही है।** सो उहां ही करिके है। **सो भूमि पर जस प्रकट करन के अर्थ ईर्षा श्राप को मिष मात्र। भूमि के जीव लीलागान करि प्रभुन को पावें, सो यही अलौकिक करनो। सो लौकिक ईर्षा श्राप जाने ताको बुरो होय, और अपराधी होय। सो लीला सृष्टि में सब अलौकिक क्रिया है।** यह जाननो।

या प्रकार श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी की इच्छातें श्रीगोवर्द्धन गिरिराज में प्रकट भये, और श्रीस्वामिनीजीरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभु श्रीगोवर्द्धनधर कों प्रकट किये। सो लीला में श्रीस्वामीनीजीतें चंद्रावलीजी को प्राकट्य। ताही भांति सो यहां श्रीआचार्यजी सों श्रीगुसांईजी को प्राकट्य, और ललिता सो कृष्णदास अधिकारी भये।

और श्रीगोवर्द्धनधर के अनेक स्वरूप हैं, परन्तु दोय रूप सदा रहत हैं। सो एक तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुनने उहां पधराये सो तहां बिराजमान हैं, और एक स्वरूप (भक्तोद्धारक) सों सगरे भक्तन कों सुख देत हैं। जो कुंभनदास, गोविंदस्वामी, के संग खेलते। सो जहां जहां भगवदीय हैं, तिनको अनुभव करावत हैं।

तातें जा समय श्रीगुसांईजी आपु भोग समर्पते हते और गंगाबाई क्षत्राणी की दृष्टि परी, ता समय श्रीगुसांईजी राजभोग धरे हैं सो आरोगे। (क्यों?) जो श्रीगोवर्द्धनधर आरोगे नांही, तो असमर्पित खाय के सगरे सेवक भ्रष्ट होय जाय? तातें श्रीआचार्यजी के मंदिरमें पधराये सो स्वरूप ने आरोग्यो।

यातें श्रीस्वामिनीजीने श्रीगोवर्द्धनधर सों कह्यो जो—श्रीगुसांईजी को छ महीना को वियोग है, तासों गंगाबाई को नाम लीजियो। सो कृष्णदास की और गंगाबाई की प्रीति है, सो गंगाबाई सों श्रीगुसांईजी कहेंगे। और कृष्णदासको बोली मारेंगे। तब कृष्णदास को बुरी लगेगी।

सो काहेते? जो यह कार्य करनो जो— कृष्णदास के मनमें बुरी लागे, तब श्रीगुसांईजो को वियोग होय। तासों तुम जाय के कहो जो मैं भूल्यो हूं। सो तब श्रीनाथजीने रामदास सों जाय कही। परि रामदास यह भेद जाने नांही। सो रामदासने श्रीगुसांईजी सों जाय कह्यो, तब श्रीगुसांईजी मनमें जाने जो सामग्री ऊपर गंगाबाई की दृष्टि परी। अब हमसों और कृष्णदास सों लीला में बात भई हती सो पूरन करिवे की श्रीनाथजी की इच्छा है सो निश्चय होयगो, यह जानि

परत है। सो तासों अब जो सेवा बने, सो प्रीति सों करना। क्यों? जो– सेवा अब दुर्लभ है।

यह बिचारके तत्काल न्हाय बड़ीभात यहां नांही भयो हतो और श्रीगोकुल तें आरोगिके आये, तासों गिरिराज के ठाकुर को हू धरनो, सो बेगि सिद्ध करि धरे। ता पाछे सेनभोग की संग राजभोग धरे। ता पाछे सेन आरती करि अनोसर करायके मनमें बिचारे, जो– अब श्रीगोवर्द्धननाथजी को दरसन महाप्रसाद सबही दुर्लभ भयो। सो बड़ीभात को डबरा उठाय मृतिका के पात्र ही में ठलायके परवत तें उतरि रंचक रंचक सबनकों दिये, सो आपुही लिये। सो बहोत सराहे।

तब कृष्णदासने भगवद् इच्छा तें बोली मारी (व्यंग) जो आपुही करनहारे, और आपुही आरोगनहारे। सो क्यों न स्वाद होय!

सो यामें यह जताये जो–हमसों न पूछे, जो– तुम ही जाय सामग्री किये, और तुमही जायके आरोगे। एसो सौभाग्य तिहारो ही है, सो बड़ाई करत हो। सो सब प्रकार सों तिहारी ही बनी है। यह बोली कृष्णदास मारे।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–यह तिहारो ही कियो भोग भोगत हैं। सों यह कहिके दोऊ बात जताये, जो–गंगाबाई क्षत्राणी सों प्रीति करि वाको बैठारि राखे, सो वाकी राजभोग की सामग्री पे दृष्टि परी। सो यह तिहारो कार्य है। नाहो तो गंगाबाई ऊहां तांई कैसे जाय? और तुमने लीला में श्रीस्वामिनीजी सों श्राप दिवायो, सो तिहारो कार्य है। सो तिहारे ही किये भोग भोगत हैं।

यामें यह जताये जो हमकों खबरि परि गई जो– अब तिहारो भाग्य खुल्यो, सो तुम करो सो भोगोगे। जो मनमें तो आय चुकी है। अब उपर तें करनो है, सो करोगे।

सो यह बात सुनिके कृष्णदास के मन में बहोत बुरी लगी। तब कृष्णदास मनमें विचारे जो– श्रीगुसांईजी के दर्शन बंद करने। सो या बातको कोन प्रकार सों उपाय करनो।

तब श्रीगोपीनाथजी श्रीगुसांईजी के बड़े भाई तिनके पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी हते। सो तिनसों कृष्णदास मिलि के कहे जो– तुम श्रीआचार्यजी के बड़े पुत्र श्रीगोपीनाथजी हैं, तिनके पुत्र हो। सो तुम क्यों चुप बैठि रहे हो? जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी को सेवा शृंगार सब करो। जो– श्रीगुसांईजीने अपनो सब हुकम करि राख्यो है। टीकेत तो तुम हो।

तब श्रीपुरुषोत्तमजीने कही जो– हमारी सामर्थ्य नाही है जो– श्रीगुसांईजी सों बिगारें। तब कृष्णदासनें कह्यो, जो– हमारे संग न्हायके चलो, जो– परवत के ऊपर मंदिर में जायके श्रीनाथजी को सेवा शृंगार करो, जो– हम सब करि लेंइगे।

पाछे श्रीपुरुषोत्तमजी उत्थापन तें दोय घडी पहले न्हाये, सो कृष्णदास के संग परवत ऊपर जायके मंदिर में बैठि रहे। और कृष्णदास दंडोती शिला पे जायके बैठि रहे। इतने में श्रीगुसांईजी आपु स्नान करिकें दंडोती सिला के पास आये।

तब कृष्णदासने श्रीगुसांईजी सों कही जो- श्रीपुरुषोत्तमजी न्हायके मंदिर में पधारे हैं। टीकेत तो वे हैं, तासों जब वे आप को बुलावेंगे, तब आपु परवत ऊपर आइयो। तासों अब आपु परवत ऊपर मति चढो, जो- श्रीगोवर्द्धनधर के दरशन न होंयगे।

तब श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी की ध्वजा कों दंडवत करि लीला की बात सुमरन करिके परासोली कूं पधारे, तहां रहे। सो तहां विप्रयोग को अनुभव करन लागे।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश. सो श्रीगोकुल हू श्रीनवनीतप्रियजी के यहां याते नहिं पधारे जो- श्रीस्वामिनीजी के वचन हैं। जो हमहूं को और श्रीठाकुरजी को हू विप्रयोग होयगो। तासों श्रीगोकुल जायेंगे तो कहा जानिये केसी होय ? तासों अब छे महिना लों मिलाप श्रीठाकुरजी सों दुर्लभ हैं, तासों परासोली में बैठि रहैं।

और श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में परासोली की और एक बारी हती, सो जा पर श्रीगोवर्द्धननाथजी आयके श्री-गुसांईजी कों दरसन देते। सो श्रीगुसांईजी आपु सगरे दिन परासोलीतें बारी कों देखते। कृष्णदास मंदिर में ते नीचे जांय तब श्रीगोवर्द्धननाथजी बारी पर आय बैठते।

सो कृष्णदास एक दिन आन्योर में आये, तब बारी पर श्रीगोवर्द्धननाथजी कों बैठे देखे। तब कृष्णदास प्रातःकाल मंदिर में आयके बारी चिनवायके श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो

जो– मैं तो श्रीगुसांईजी के दरशन की मने कियो हूं, सो तुम बारी पर क्यों बैठे ? और अब उतकी ओर मति जैयो । सो कृष्णदास परासोली की ओर श्रीनाथजी को खेलिवेको हू न जान देते ।

सो श्रीगोवर्द्धनधर को श्रीगुसांईजी बैठि बैठिके विज्ञप्ति करते। सो रामदास मुखिया भीतरिया जब श्रीगुसांईजी के पास राजभोग आरती सो पहिची के जाते सो आपु कों श्रीनाथजी को चरणोदक देते। तब श्रीगुसांईजी आपु फूल की माला करि राखते सो माला के भीतर विज्ञप्ति को श्लोक लिखि देते। सो रामदासजी ले जाते । सो श्रीगोवर्द्धननाथजी को माला पहिरावते, तब माला में ते विज्ञप्ति को कागद निकासिके श्रीनाथजी बांचते । पाछे वाको प्रति उत्तर श्रीनाथजी बीड़ा के पान की ऊपर अपनी पीक सों सींकतें लिखि देते । सो रामदास कों देते ।

सो रामदास दूसरे दिन राजभोग सों पहोंचिके जाते, तब श्रीनाथजी को लिख्यो पत्र श्रीगुसांईजी कों देते । सो श्रीगुसांईजी आपु बांचिके पाछे जल में घोरिके पान करते । यातें श्रीनाथजी के किये श्लोक जगत में प्रकट न भये। श्रीगुसांईजी आपु विज्ञप्ति किये सो श्रीनाथजी आपु बांचिके रामदासजी कों देते, तासों विज्ञप्ति प्रकटी है ।

एक दिन श्रीगुसांईजी को वहोत विरह भयो, सो यह लिखे। श्लोक–‘ त्वद्दर्शन विहीनस्य०

सो यह श्लोक लिखिके पठाये, जो– तिहारे भक्त हैं सो तिहारे विना जीवत हैं सो वृथा ही जीवत हैं। सो दुर्भगावत्। सो यह श्रीगोवर्द्धननाथजी बांचिके यह लिखे जो– मेघ को लक्षण यह है, जो– समय होय वर्षा को, तब आयके वर्षे। सो सबरो जगत जानत है। सो एसें अबही कृष्णदास को समय होय चुकेगो तब मिलाप होयगो। सो यह तुमहू जानत हो, और हमहू जानत हैं। तासों धीरज धरि समय होन देउ, जो इतनो विरह क्यों करत हो?

सो यह पत्र रामदासजी लेके आये। तब श्रीगुसांईजी आपु बांचिके यह लिखे जो–

'अंबुदस्य स्वभावोयं समये वारि मुञ्चति,
तथापि चातकः खिन्नं रटत्येव न संशयः'।

सो मेघ को यह स्वभाव है जो– समय होयगो, तब ही वरसेगो (मिलाप होयगो) परंतु चातकने मेघ सों प्रीति करी है। सो एसे भक्त हैं सो तो तिनको (मेघरूप श्रीकृष्ण को) रटत है, सो चेन नाही है। सो (आपु) चाहो तब समय होय। तुम बिना धीरज हम कों नांही है। सो भक्तन को यही धर्म है, जो– चातक की नाई सदा तिहारी चाह करिवो करें। सो यह लिखि पठाये।

या प्रकार रामदासजी नित्य आवते, सो श्रीगुसांईजी के पास सब सेवक आवते, सो कृष्णदासजी जानते। परंतु सेवकन सों कछु चलती नांही। रामदासजी कों बरजे हू

सही, जो– तुम श्रीगुसांईजी के पास पत्र ले जात हो, और पत्र ले आवत हो, सो यह बात ठीक नांही है।

तब रामदासजी कहे, जो– हम तो नित्य श्रीगुसांईजी के दर्शन को जांयगे, चाहे हम कों सेवा में राखो चाहे मति राखो। तब कृष्णदास चुप होय रहे। सो काहेतें? जो– एसो सेवक फेरि कहां मिले? तासों कृष्णदास कछू बोले नांही।

सो पौष सुदी ६ तें आषाढ़ सुदी ५ तांई श्रीगुसांईजी ने विप्रयोग कियो। पाछे अषाढ़ सुदी ५ आई, ता दिन राजा बीरबल श्रीगोकुल आयो। सो श्रीगुसांइजी तो परासोली हते, और श्रीगिरधरजी घर हते।

तब बीरबल श्रीगिरधरजी के पास आयके दंडवत करि के पूछे जो– श्रीगुसांईजी कहां है? हमकों दरशन किये बहोत दिन भये। हमने उनके दरशन पाये नांही।

तब श्रीगिरधरजी बीरबल सों कहे जो– श्रीगुसांईजी तो परासोली में बैठि रहे हैं, जो– कृष्णदास अधिकारीने श्रीगुसांई-जी के दरशन बंद किये हैं। सो श्रीगुसांईजी छे महिना तें बड़ो खेद करत हैं।

तब बीरबलने कह्यो जो– अबही मैं जायके कृष्णदास कों निकासत हों। सो यह कहिके बीरबल श्रीमथुराजी आयो। सो मथुरा की फोजदारी बीरबल की हती, सो मथुरातें पांचसे मनुष्य बीरबलने पठाये और बीरबलने उनसों कह्यो जो– श्रीगोवर्द्धन में जायके कृष्णदास कों पकरि लावो।

तब मनुष्य गये, सो सांझ के समय श्रीगोवर्द्धनमें आये। पाछे कृष्णदास कों पकरिके वे मनुष्य मथुरा ले आये। तब बीरबलने अर्द्धरात्रि ही कों मनुष्य श्रीगोकुल पठायके कह्यो जो– कृष्णदास कों पकरिके बंदीखाने में दिये हैं, जो– तुम श्रीगुसांईजी कों लेके श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में जावो।

तब ये समाचार मनुष्यननें श्रीगिरधरजी सों कहे। सो रात्रिही कों श्रीगिरधरजी घोड़ा ऊपर असवार होयके परासोली कूं पधारे, सो प्रातःकाल ही अषाढ़ सुद ६ आई। सो श्रीगिरधरजीने जायके श्रीगुसांईजी कों नमस्कार करिके कही जो– आपु श्रीगोवर्द्धनधर के मंदिर में पधारो, और सेवा शृंगार करो।

तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीगिरधरजी सों कहे जो– कृष्णदास की आज्ञा होय तो चलें। तब श्रीगुसांईजी सों श्रीगिरधरजीने कही जो–कृष्णदास कूं तो मथुरा में बंदीखाने में दियो है।

यह सुनिके श्रीगुसांईजी आपु कहे जो–हाय हाय! श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के कृपापात्र सेवक भगवदीय कृष्णदास को इतनो दुःख, और इतनो कष्ट। श्रीगुसांईजीने श्रीगिरधरजी सों कही जो– तुमने बीरबल सों कह्यो होयगो। तब श्रीगिरधरजीने कही जो– हम तो सहज ही बीरबल सों कह्यो हतो जो– श्रीगुसांईजी के दर्शन कृष्णदासने बंद किये हैं, इतनो कह्यो हतो। और तो कछू नाही कह्यो।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—कृष्णदास आवेगो, तब ही भोजन करूंगो। सो इतनो सुनतही श्रीगिरधरजी तत्काल घोडा ऊपर असवार होयकें श्रीमथुराजी आये। तब बीरबल तें जायके श्रीगिरधरजीने कह्यो जो—काकाजी तो भोजन तब करेंगे जब कृष्णदास वहां जायंगे। तासों कृष्णदास को छोडि देउ।

तब बीरबलने कृष्णदास कों बंदीखानेमें तें बुलायके कह्यो जो—देखि श्रीगुसांईजी की कृपा, जो—तेरे बिना भोजन नांही करत हैं और तैनें उनसों एसी करी। तासों अब तोकूं छोडत हूं, और आजु पाछे जो तू श्रीगुसांईजी सों बिगारेगो, तब मैं तोकों फेरि कबहू नांही छोडूंगो। सो या प्रकार बीरबलने कहिके कृष्णदास कों श्रीगिरधरजी के हवाले करि दिये।

तब श्रीगिरधरजी कृष्णदास कों लेके परासोली में पधारे। तब श्रीगुसांईजी आपु कृष्णदास कों देखिके श्री-गोवर्द्धननाथजी को अधिकारी जानिके उठि ठाडे भये। तब कृष्णदास दीन होयके श्रीगुसांईजीको दंडवत करि चरण-परस करिके यह पद गायो। सो पद—

राग सारंग।—'ताहीको सिर नाइये जो श्रीवल्लभसुत पद रज रति होय'। × × × × 'कृष्णदास सुर तें असुर भये, असुर तें सुर भये चरणन छोय'।

यह पद सुनिके श्रीगुसांईजी आपु बहोत प्रसन्न भये। तब कृष्णदासने बिनती कीनी जो–महाराज! मेरो अपराध क्षमा करिये, और अब आप श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा में पधारिये।

तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो– तिहारी आज्ञा भई है, सो अब चलेंगे। तब कृष्णदास को संग लेके श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में पधारे। और श्रीगोवर्द्धनधर को दंडोत करि। पाछें शृंगार को समय हतो और आषाढ़ सुद ६ को दिन हतो सो कसूमल कुलह पिछोडा धराये। तब राजभोग सों पहोंचे। पाछे उत्थापन तें सेन पर्यन्त की सेवा सों पहोंचिके सेन आरती करि श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी के सन्मुख कृष्णदास कों दुसाला उढ़ाये। और कहे जो– श्रीगोवर्द्धनधर को अधिकार करो। तुम धन्य हो। तब वा समय कृष्णदासने यह पद गायो। सो पद–

राग कान्हरो–'परम कृपाल श्रीवल्लभनंदन करत कृपा निज हाथ दे माथे०'।

सो यह पद कृष्णदासने गायो, और विनती कीनी जो– महाराज! मेरो अपराध क्षमा करिये। तब श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुखसों कहे जो– तिहारो अपराध श्रीनाथजी क्षमा करेंगे।

ता पाछें श्रीगुसांईजी अनोसर करायके सबन को समाधान कियो, तब सगरे वैष्णव सेवक प्रसन्न भये। पाछें

जैसें नित्य सेवा शृंगार आप श्रीगोवर्द्धनधर को करते, तैसेही करन लागे। और कृष्णदास श्रीगुसांईजी की आज्ञा तें अधिकार की सेवा करन लागे।

सो वे कृष्णदास एसे कृपापात्रभगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-८

और एक समय श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल में हते, सो कृष्णदास श्रीगोवर्द्धन तें श्रीगोकुल आये। तब श्रीगुसांईजी उठिके श्रीगोवर्द्धननाथजी को अधिकारी जानि कृष्णदास कों बहोत प्रसन्नता पूर्वक समाधान कियो, और अपने पास बैठाये। पाछे श्रीगोवर्द्धनधर के कुशल समाचार पूछे और कृष्णदास कों अपने श्रीहस्तसों श्रीनवनीतप्रियजी को महाप्रसाद धरे। ता पाछे सेनभोग को महाप्रसाद लिवाय के रात्रिकों सुंदर सेज पर सेन करायो।

सो जब प्रातःकाल भयो तब कृष्णदास चलन लागे। ता समय कृष्णदासने श्रीगुसांईजीसों बीनती कीनी जो-महाराज! मेरो मन वृंदावन देखिवे को बहोत है। तब श्री-गुसांईजी आपु कहे जो- आछो, जावो, परंतु दुःख पावोगे।

तब कृष्णदास श्रीयमुनाजी पार गये, जो श्रीगुसांईजीने मने किये तोऊ मन न मान्यो, श्रीवृंदावन कों चले। सो मध्यान्ह समये वृंदावन आये। तब वृंदावन के संत महंत कृष्णदास सों मिलन आये, सो कृष्णदास कों वा समय ज्वर

चढ्यो, सो प्यास लागी। तब कंठ सूखन लाग्यो। सो कृष्णदासनें कही जो– प्यास बहोत लगी है, सो कंठ सूख्यो जात है।

तब संत महंतनने कही जो– बेगि जल लावे। सो कृष्णदास अकेलेही रथ पर बेठिके गये हते। कृष्णदासनें कही जो– श्रीगोकुल को वल्लभी वैष्णव होय सो वासों कहो, जो– वह जल लावे तो मैं पिऊं। तब सगरे संतमहंतनने कृष्णदास सों तर्क करिके कह्यो जो–यहांतो कोई वैष्णव नांही है, जो श्रीगोकुल को भंगी यहां ब्याहो है, सो वह यहां आयो है, सो वाको तुम कहो तो बुलावें।

तब कृष्णदासनें कही जो– वह श्रीगोकुल को भंगी सब तें श्रेष्ठ हैं। सो वासों कहियो जो– कुभार के घर तें कोरो वासन लेके श्रीयमुनाजीमें न्हाय के जल भरि लावे। सो तब उनने जायके वा भंगी सों कह्यो जो– कृष्णदास कों ज्वर चढ्यो है, वह प्यासे हैं। सो कहत हैं सो तू उनको जल ले जा। तब वह भंगी उहां सो दोर्यो। सो श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियाजी की राजभोग आरती करि श्रीनाथजीद्वार पधारिवे कूं घाट ऊपर आये हते। सो इतने ही में वा भंगीने कपडा की आड करिके मुख तें कह्यो, जो महाराज! कृष्णदास श्रीवृंदावन में हैं। तहां उनकों ज्वर चढ्यो है, सो प्यासे हैं। जल मोसों मांग्यो है, सो मैं वृंदावन तें यहां दोर्यो आयो हूं।

तब श्रीगुसांईजी खवास सों झारी जल की लेके,

घोडा ऊपर असवार होयके वेगिही आपु वृंदावन पधारे। सो तब कृष्णदास कों रथ उपर तें उठायके जल प्याये। पाछे कृष्णदास सावधान भये। सो ज्वरहू उतरि गयो। तब कृष्णदास श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके यह पद गाये। सो पद–

राग कान्हरो—१ 'श्रीविठ्ठलजू के चरणन की बलि, हमसे पतित उद्धारन कारन परम कृपाल आपु आये चलि'।

सो यह पद गायके कृष्णदासने श्रीगुसांईजी सों विनती कीनी जो– महाराज! मैंनें आप को कह्यो न मान्यो तासों इतनो दुख पायो। ता पाछे श्रीगुसांईजी के संग कृष्णदास श्रीगोवर्द्धन आये, तब सेन आरती को समो भयो, तब श्रीगुसांईजी न्हायके सेन आरती किये। तब कृष्णदासने यह पद गायो। सो पद–

राग कान्हरो–'आजु को दिन धनि २ री माई नैनन भरि देखे नंदनंदन०'।

पाछें श्रीगुसांईजी अनोसर करायके परवत तें नीचे पधारे। सो या प्रकार कृष्णदासने बहोत दिन लों श्रीगोवर्द्धननाथजी को अधिकार कियो।

वार्ता प्रसंग–९

पाछे एक दिन एक वैष्णवने आयके कृष्णदास सों कही जो– मोकूं यहां एक कुवा बनवावनो है, और मोकों अपुने

देस जानो है, सो मैं तो अपने देशको जाउंगो, तासों तुम या द्रव्य कों राखो।

सो एसे कहिके वह वैष्णव तीनसे रुपैया देके अपुने देशकों गयो। तब कृष्णदास वा वैष्णव के रुपैयान में ते एक सो रुपैया एक कूल्हरा में धरिके बागमे एक आंब के वृक्ष नीचे गाडी राखे।

ता पाछे आछो महूरत देखिके पूछरी के पास बागमें कुवाको आरंभ कियो। तब कितनेक दिन पाछे कुवा बनिके तैयार भयो, और दोय से रुपैया लगे। पाछे कुवा को मोहडो बनवावनो रह्यो, सो कृष्णदासजी मन में बिचारे, जो– सो रुपैया में मोहोडो आछो बनेगो।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धनधर के उत्थापन के दरसन करिके कृष्णदास वा कूवा कों देखवे कूं गये, सो बा कुवा को देखन लागे। सो कृष्णदास के हाथ में आसा (लकडी) हतो, सो आसा टेकके कृष्णदास बा कुवा पर ठाडे भये। इतने में आसा सर क्यो, सो कृष्णदास आसा सहित वा कुवा में जाय परे। तब सगरे मनुष्य पास ठाडे हते. सो तिनने सोर कियो। जो– कृष्णदास कुवा में गिरे। पाछे कितेक मनुष्य दोरे, सो रस्सा टोकरा लाये, और दोय मनुष्य कुवा के भीतर उतरे। सो बहोत ढूंढे, परि कृष्णदास को सरीर हू न पायो। तब वे मनुष्य पाछे फिरि आये।

ता समय श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धनधर कों सेनभोग धरिके बाहिर बिराजे हते, सो रामदास भीतरिया श्रीगुसांईजी के पास बैठे हते। ता समय मनुष्यनने जायके कही। जो– महाराज ! कृष्णदास कुवा कों देखत हते, सो आसा सरक्यो। सो कुवा में गिरे। पाछे मनुष्य कुवा में ढूढिवे कों उतरे। सो कृष्णदास को सरीर हू पायो नांही है।

ता समय रामदासजी उहां ठाडे हते, सो कहे 'तामसाना मधो गतिः–' तब यह सुनिके श्रीगुसांईजी आपु कहे, जो– रामदासजी ! एसे न कहिये। जो कृष्णदास तो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के कृपापात्र वैष्णव हते, जो यह लीला है। कूप में गिरे तो कहा भयो ? कहा जानिये कहा है ?

सो याको कारण श्रीगुसांईजी आपु तो जानत हते, जो प्रेतयोनि को श्राप है। तासों आपु प्रकट न किये। सो

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

कृष्णदास या देह सुद्धां प्रेत भये। सो पूछरी के पास एक पीपर को वृक्ष है।* ताके ऊपर जायके बैठे।

वार्ताप्रसंग–१०

और श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुख सों कहे जो– कृष्णदास श्रीगोवर्द्धनधर को अधिकार भलो ही किये और अब एसे सेवक कहां मिले ? और अधिकारी बिना काम चलेगो नांही सो विचार करनो। सो या भांति कहे।

---

*सं. १९९० में यह वृक्ष सूख गया। अभी भी उस वृक्ष के अवशेष उसी प्रसिद्ध और विशाल कूप के पास विद्यमान हैं।

तब रामदासजीने विनती कीनी जो- महाराज! जाकों तुम आज्ञा करोगे, सोई करेगो। जो श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा भाग्य सों मिलत है। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो- हम कोनसे जीव कों कहें, जो कोनसे जीव को बिगार करें। सुधारनो तो बहोत कठिन है और बिगारवो तो तत्काल है।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो याहीसों श्रीआचार्यजी श्रीसुबोधिनीजी में कहे है। जो- श्रीभागवत नारायनने ब्रह्मा सों कह्यो है, परि ब्रह्मा सृष्टि करन को अधिकारी है। तासो श्रीभागवत फलित न भयो। पाछे ब्रह्मा नारदजो सों कही, सो नारद कों सगरे देसन में फिरवे को अधिकार है तासों फलित न भयो। तब नारदने वेदव्यासजी सों कह्यो। सो वेदव्यासजी शास्त्र करन के अधिकारी हैं, तासों व्यासजी कों हू फलित न भयो। पाछे व्यासजीने श्रीशुकदेवजी सों कह्यो। सो शुकदेवजी सर्वत्याग कियो है। सो यही त्याग में लगे। पाछो परीक्षित कों सर्व त्याग भयो। तब अधिकारी श्रीभागवत के भये। (जब) श्रीशुकदेवजी रातदिन तांई कथा कहे। तब सातमें दिन भगवत् प्राप्ति भई।

सो तैसे ही यह श्रीभागवतरूप पुष्टिमार्ग हैं। सो याके अधिकारी निरपेक्ष होय, ताही के माथे यह मारग होय। और जाकों अधिकार पाये अहंकार बढ़े, सो ताकों कछू फल सिद्ध न होय।

तासों श्रीगोवर्द्धनधर को अधिकार हम कौन कों देंय? कौन को बिगार करें। तब रामदासजी सुनिके चुप होय रहे। इतने में सेनभोग को समय भयो, सो सेनभोग श्री-गुसांईजी सराये।

सो सेन आरती करे पाछे श्रीगुसांईजी आपु गोवर्द्धनधर सों पूछे, जो–महाराज! कृष्णदास की तो देह छूटी और अधिकारी विना चलेगी नांही, सो हम कोनकों अधिकार देके विगार करें? तासों आपु कहो ताकों अधिकारी करें।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे जो–हमहू कौन जीवको बिगार करें? जो–कोई अधिकार लेयगो ताको बिगार होयगो। तासों तुम एक काम करो, जो–अधिकार को दुसाला लेके सब के आगे कहो, जाकों अधिकार करनो होय सो दुसाला ओढ़ो। तब जो आयके कहे ताकों देऊ। सो जाकों गिरनो होयगो सो आपुही आवेगो।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु प्रसन्न होयके श्रीगोवर्द्धननाथजी कों सेन कराये। पाछे दूसरे दिन राजभोग आरती के समय सगरे व्रजवासी वैष्णव भेले करिके श्रीगुसांईजी आपु दुसाला हाथ में लियो। पाछे सबन कों सुनायके कह्यो जो–जाकों श्रीनाथजी के घर को अधिकार करनो होय सो या दुसाला कों ओढ़ो। यह सुनिके कितनेकने कही जो– हम करेंगे। सो पहले एक क्षत्री बोल्यो हतो, सो ताकों दुसाला उढ़ायो। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी की आरती करि अनोसर कराय श्रीगुसांईजी आपु श्रीगोकुल पधारे।

पाछे कछूक दिन बीते तब एक समय श्रीगोवर्द्धननाथजी की भैंस खोय गई, सो बरहे में निकसि गई। तब भैंसि ढूंढिवे के लिये गोपीनाथदास ग्वाल और पांच सात ग्वाल पूछरी की

और गये। वे सब परमकृपापात्र भगवदीय हते। सो तब देखे तो श्रीगोवर्द्धननाथजी सखान सहित पूछरी पास एक पीपरके नीचे खेलत हैं। और पीपरके नीचे कृष्णदास अधिकारी प्रेत होयके बैठे हैं। तब कृष्णदास अधिकारीने गोपीनाथदास ग्वाल सों जैश्रीकृष्ण कियो और कह्यो जो—अरे भैया! गोपीनाथदास ग्वाल! तू मेरी विनती श्रीगुसांईजी सों करियो, और कहियो जो—आपके अपराधतें मेरी यह अवस्था भई है। और श्रीगोवर्द्धनधर दरसन देत हैं सो आप की कृपा तें देत हैं।

सो जब श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे अधिकार को दुसाला श्रीगुसांईजीने कृष्णदास कों (दुवारा) उढ़ायो। तब कृष्णदासने यह पद गायो—'परमकृपाल श्रीवल्लभनंदन करत कृपा निज हाथ दे माथे'।

श्रीहरिरायजी कृत

भावप्रकाश.

सो यह पद गायके कृष्णदासने श्रीगुसांईजी सों कही जो—महाराज! मैं छ महिना लों आपको विप्रयोग करायो, सो आपु मेरो अपराध क्षमा करिये। तब श्रीगुसांईजी आपु कहे जो—तिहारो अपराध श्रीनाथजी क्षमा करेंगे।

सो यह श्रीगुसांईजी आपु कहे, तासों श्रीगोवर्द्धनधर दरसन देत हैं, और बोलत हैं, बातें करत हैं। परन्तु श्रीगुसांईजी आपु अपराध क्षमा नांही किये हैं, तासों प्रेतयोनि छूटत नांही है।

और कृष्णदास श्रीगोवर्द्धनधर सों हू कहते जो महाराज! मोकों दरसन देत हो, सो प्रेतयोनि क्यों नांही छुड़ावत हो? तब श्री-

गोवर्द्धननाथजी कहे, जो— यह हमारे हाथ है नांही, उद्धार तो तेरो श्रीगुसांईजी के हाथ है ।

सो काहेतें ? जो— लीला में श्रीचंद्रावलीजी को श्राप है, जो— प्रेतयोनि होय । सो कौन छुडावे ? तासों जद्यपि श्रीस्वामिनीजी की सखी ललितारूप (कृष्णदास) हैं । परन्तु आगे को बचन बिचारि न छुडावत हैं। तासों कृष्णदासने गोपीनाथदास ग्वाल सों कह्यो जो— तू मेरी विनती श्रीगुसांईजी सों करियो, जो— श्रीगुसांईजी की कृपा विना मेरी गति नांही है ।

और बिलछू की ओर बागमें आम के वृक्ष के नीचे रुपैया सौ एक कूलरा में भरिके गाड़े हैं, सो निकासिके कूपके ऊपर को मोहड़ो बनवाय दीजियो। यह श्रीगुसांईजी सों कहियो । और श्रीनाथजी की भैंसि तुम ढूंढ़िवे कों आये हो सो उह घनामें चरत है ।

पाछे गोपीनाथदास ग्वाल घनामें तें भेंस लेके गोपाल-पुर आये । सो भेंस बांधि गोदोहन गाय भेंस को किये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीनाथजी की सेन आरती करिके अनोसर कराय परवत तें उतरे और अपनी बैठक में आयके बिराजे। तब गोपीनाथदास ग्वालने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके कह्यो जो— महाराज! आज श्रीनाथजी की भैंस खोय गई हती सो ढूंढ़न कों पूछरी की और गये हते । तहां कृष्णदास अधिकारी प्रेत भये देखे हैं । सो कृष्णदास

पीपर के वृक्षके ऊपर बैठे हैं। कृष्णदासने मोकों भगवत्-स्मरण कियो हतो। और कृष्णदासने आपसों यह बिनती करी हैं जो—मैं प्रेत हूं, मैनें आप को अपराध कियो है, तासों मोकों प्रेतयोनि प्राप्त भई है। आपुके हाथ मेरो उद्धार है। और बागमें आमके वृक्ष के नीचे कूलरा में रुपैया सौ गड़े हैं। सो निकासिके कुवा को मोहोड़ो बनवायवे को कह्यो है। और भेंस हू कृष्णदासने बताय दीनी है, सो हम ले आये हैं।

तब श्रीगुसांईजी आपु अपने मनमें बिचारे जो—कृष्णदास कों बड़ो दुख है। सो अब याकों प्रेतयोनिमें सों छुडावनो, यह कहिके तत्काल उठिके बागमें पधारे। तब रुपैया १००) निकासिके नयो अधिकारी कियो हतो, सो वाकों देके कह्यो जो—ये रुपैयानसों कृष्णदासवारे कूवा को मोहड़ो बनवाइयो।

ता पाछें श्रीगुसांईजी आपु वाही रात्रि कों असवार होयके मथुराजी पधारे। पाछे प्रातःकाल भये श्रीगुसांईजी आपु अपने श्रीहस्तसों कृष्णदास को क्रिया—कर्म करि, ध्रुवघाट ऊपर श्राद्ध कियो, और कृष्णदास की प्रेतयोनि छुटायके दिव्य शरीर करिके लीला में प्राप्त किये। सो बिलछू सामें गिरिराज में बारी, ता द्वार के मुखिया कृष्णदास हैं, सो तहां जायके बिराजे। सो या प्रकार कृष्णदास की लीला-प्राप्ति श्रीगुसांईजी आपु किये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

तहां यह संदेह होय जो– श्रीगुसांईजी की कृपातें उद्धार न भयो ? सो आपु मथुराजी पधारे और ध्रुवघाट ऊपर श्राद्ध किये ? सो कृपातें (कहा) श्राद्ध अधिक है ?

तहां कहत हैं जो– गोपीनाथदास ग्वाल कृष्णदास कों प्रेत भये देखिके आये । सगरे सेवक व्रजवासीन के आगे गोपीनाथदास ग्वाल नें श्रीगुसांईजीतें कह्यो, जो– कृष्णदास प्रेत भये हैं । सो आपु सो बिनती करी है, जो– आप मोकों प्रेतयोनि सों छुड़ावो । जो श्रीगुसांईजी चाहें तो रंचक मन में बिचारेतें छुटकारो होय । परन्तु पाछे जो सेवक व्रजवासी कोई प्रेत होय सो श्रीगुसांईजी सों कहे, जो– आपु छुड़ावो । सो तब न छुड़ावें तो दोषबुद्धि होय, तब जीव को बिगार होय । तासों श्रीगुसांईजी आपु श्रीमथुराजी में पधारिके ध्रुवघाट ऊपर श्राद्ध कियो, सो या मिष तें छुड़ाये । सो सबनने जानी जो– ध्रुवघाट को श्राद्ध एसो ही है, सो यह महिमा बढ़ाये। सो अपुनो माहात्म्य काल–कठिनता जानि छिपाये । सो याको कारण यह है ।

और दूसरो कारण यह है जो–कृष्णदास एसे भगवदीय हते जो इनके कोटानकोटि पुरुषान को उद्धार होय, सो काहेतें ? जो श्री-भागवत में नृसिंहजी तें प्रहलादनें कह्यो है जो– महाराज ! मेरे पिता को उद्धार होय, तब श्रीनृसिंहजी कहे जो– जा कुलमें भगवद्भक्त होइ सो वाके इकीस पुरषा तरें। तासों तुम संदेह क्यों करत हो?

सो प्रहलादजी तो मर्यादाभक्त भये, और कृष्णदासजी पुष्टिमार्गीय

भगवदीय भये। सो इनके तो कोटानकोटि पुरषान को उद्धार है। परंतु श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के संबंध बिना लीला में प्रवेश न होय। तासों कृष्णदास के मिष करि सृष्टि में मुक्त किये। सो काहेतें? जो कृष्णदासजी, श्रीगुसांईजी सगरो श्रीगोवर्द्धनधर को परिकर अलौकिक है। सो इहां ईर्षा नांही है। सो भूमि पर हू भगवद्-लीला जानि कहनो सुननो।

सो या प्रकार कृष्णदास की वार्ता महा अलौकिक है। तासों श्रीगुसांईजी कहे जो–कृष्णदास रासादिक कीर्तन एसे अद्भुत किये सो कोई दूसरे सों न होय। और श्रीआचार्यजी के सेवक होयके सेवा हू एसी करी, जो दूसरे सों न बनेगी। और श्रीनाथजी को अधिकार हू एसो कियो जो दूसरे सों न होयगो।

सो या प्रकार श्रीगुसांईजी आपु श्रीमुखसों कृष्णदास की सराहना किये। सो वे कृष्णदास अधिकारी श्रीआचार्यजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते। जिनके ऊपर श्रीगोवर्द्धनधर सदा प्रसन्न रहते। तातें इनकी वार्ता को पार नांही। तातें इनकी वार्ता अनिर्वचनीय है सो कहां तांई लिखिये।

अष्टछाप —

अष्टछाप संस्थापना सं० १६०२. स्थान "पूंछरी" (गिरिराज)

वामभागमे—श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण,, १ श्रीसूर, २ परमानंद, ३ कुंभन ४ कृष्णदास ५ नंददास, ६ चतुर्भुजदास, ७ छीतस्वामी ८ गोविंदस्वामी ।

Raghunath, Paliwal Nathdwara

(५) छीतस्वामी

अब श्रीगुसांईजी के सेवक छीतस्वामी, मथुरिया चोबे, अष्टछाप में जिनके पद गाइयत है, तिनकी वार्ता–

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ये छीतस्वामी लीला में श्रीठाकुरजी के 'सुबल' सखा, तिनको आधिदैविक मूल प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो ये स्वरूप 'सुबल' सखा हैं, और रात्रि की लीला में 'पद्मा' हैं। सो पद्माकी श्रीचंद्रावलीजी ऊपर बहुत ही आसक्ति है, सो इहां हू छीतस्वामी को श्रीगुसांईजीपे बहुत ही भरभाव है।

वार्ता प्रसंग–१

सो वे छीतस्वामी मथुरिया चोबे हते। तिनसों सब कोउ 'छीतू' कहते। सो सब मथुरा में पांच चोबे सिरनाम हते। पांचनहू में छीतू बड़े सिरनाम हे।

सो वे स्त्रीन कों देखते, उनसों मस्करी करते। सो एक दिन उन पांचों चोबेननें मिलिके विचार कियो जो– भाई! गोकुल के गुसांई टोंना टामन बहुत करत हैं। जो कोउ उनके पास जात है, सो उनके वस होय जात है। चलो जो– उन कों देखिये, जो वे कैसे टोंना करत हैं?

सो वे पांचो आपुस में मित्र हते, परि वे गुंडा हते।

तब उन पांचोंननें मिलिके एक खोटो रुपिया लियो, और एक थोथो नारीयल लियो, तामें राख भरी। और यह बिचार कियो जो–भाई! गोकुल जायके श्रीगुसांईजी सों आपुन कुटिल विद्या करिये।

तब उन चारोंन सों छीतूने कही जो–सगरेन के पहिले मैं जायके अपनी कुटिल विद्या करि आउं, ता पाछे तुम जइयो। तब विन चोबेननें कही जो–आछी बात है। तब छीतूने कुटिल विद्या को ठाठ ठठ्यो। सो वा थोथे नारियल कों गांठि में बांधिके और वह खोटो रुपैया लेके पांचो जनें मथुरा तें चले, सो नाव में बैठिके श्रीगोकुल में आये। तब छीतस्वामीने कही जो–तुम तो सब बाहिर रहो, बेठो। और मैं भीतर जात हों, जायके उनके टोंना टमना देखों, पाछें तुम भीतर आइयो।

सो छीतू तो थोथो नारियल लेके अरु खोटो रुपैया लेके भीतर गये, और साथ के चोबे तो बाहिर रहे। सो उत्थापन के समे पहिले श्रीगुसांईजी पोंढ़िके उठे हते। सो गादी ऊपर बिराजे हते, हाथ में पुस्तक हतो सो देखत हते।

ता समें छीतस्वामी आये। सो श्रीगुसांईजी कों देखे तो श्रीगिरधारीजी होयके बैठे हैं। तब तो ये मन में पश्चात्ताप करन लागे। (क्यों जो) मैं तो इनसों मसकरी करन आयो हो। सो ए तो साक्षात् पूरण पुरुषोत्तम हैं, ये ईश्वर हैं। मोकों धिकार है, जो–मैं ईश्वर सों कुटिल विद्या करन कों आयो।

या भांति सों सोच करत रहे । पाछें छीतस्वामी वह नारी-यल लाये हते सो दुवकायके श्रीगुसांईजी सों दंडवत करी।

सो इतने में छीतस्वामी सों श्रीगुसांईजी बोले जो– छीत-स्वामी ! तुम नीके हो ? आवो, तुम तो बहोत दिनन में दीखे हो । तब छीतस्वामीने हाथ जोडिके बिनती कीनी जो– महाराज ! हम आपके हैं । एसे कहिके साष्टांग दंडवत करी। और श्रीगुसांईजी सों फेरि बिनती कीनी जो– महाराज ! मोकों आपकी शरण लीजे, अब तो आप मेरो अंगीकार करोगे ।

तब श्रीगुसांईजीनें छीतस्वामी सों कह्यो जो– तुम तो चोबे हो, हमारे पूजनीक हो । तुमकों तो सब आपहीतें सिद्ध है । तुम हमकों दंडवत काहेको करत हो ? और एसे कहा कहत हो ?

तब छीतस्वामीने फेरि हाथ जोरिके बिनती करी जो– महाराज ! मेरो अपराध क्षमा करो । और मोकों शरण लीजे । हम नांहि जानत जो– कोन अपराधतें स्वामी भये हैं । हमारे अब भाग्य खुले हैं जो– आप के दरशन पाये । अब एसी कृपा करो जो– स्वामित्व छूटे । जो आपके दास कहायवे की इच्छा है । और मनकी कुटिलता तो बहोत हुती, परि आपके दरशन करत ही सब कुटिलता दूरि भाजि गई । तातें अब हौं, आप के हाथ बिकानो हों, तातें अब तो आप जो चाहो सोई करो । आप तो दाता हो, प्रभु हो, दीनानाथ हो, दयासिंधु हो । या जीव की ओर प्रभुन

को कहा देखनो? तातें महाराज! अब मोकों आपको ही करि जानिये, आपुनो सेवक करिये।

तब छीतस्वामी को शुद्ध भाव जानिके श्रीगुसांईजी तो परम दयालु हैं, सो आप कृपा करिके कहे जो- छीतस्वामी! आगे आवो। तब ये दंडवत करिके आगे आय बैठे। ताही समे श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों नाम सुनायो। ता समे छीतस्वामीने यह पद गायो—

'भई अब गिरधरसों पहिचान-
कपटरूप धरि छलिवे आयो, पुरुषोत्तम नहि जान ॥ १ ॥
छोटो बड़ो कछु नहिं जान्यो, छाय रह्यो अज्ञान।
छीतस्वामी देखत अपनायो, श्रीविट्ठल कृपानिधान' ॥ २ ॥

तब तो और वे चारो जने, जो बाहिर ठाड़े हते, वे आपुस में बिचार करन लागे जो-भाई! छीतू कों तो टोना लग्यो, जो अब आपुन रहेंगे तो आपुनहू कों टोना लगेगो, तातें अब इहां ते भाजो। सो वे चारो जनें उहां तें भाजे सो मथुराजी में आये।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी सों कह्यो जो- तुम हमारी भेट लाये हो सो लावो। तब छीतस्वामी अपने मनमें बिचारे जो- नारियल रुपैया तो खोटो है, सो भेट कैसे धरों? पाछें विचारे जो- भंडार में पर्यो रहेगो, कहा मालुम होयगो, जो कहांते आयो है?

और फेरि आपु कहे श्रीमुख त जो– छीतस्वामी! भेट को नारियल लाये हो, सो तुम काहेको दुबकाये हो?

तब तो छीतस्वामी को मुख मुकाय गयो, और यह विचार्यो जो– यह तो प्रभु हैं। मैं नारियल लायो, सो जान गये तो नारियल की क्रिया क्यों न जाने होंयगे?

तब श्रीगुसांईजीसों छीतस्वामीनें वीनती करी जो– महाराज! आप तो सब मेरो कृत्य जानत हो! सो वह बात तो मेरी अब छानी राखो। तब श्रीगुसांईजी नें कही जो– छीतस्वामी! तुमारो जस तो जगत में विख्यात है। तुम कछु अपने मन में संदेह मत करो, तुम तो अब हमारे हो। तातें डरपत क्यों हो? वह नारियल ले आवो।

तब छीतस्वामी तो सोच करत रहे। और श्रीगुसांईजीने हरिदास खवास सों आज्ञा करी जो– हरिदास! इनकी गांठिमें सों वह नारियल है सो खोलि लाऊ। सो श्रीगुसांईजी की आज्ञा मानिके हरिदासने वह नारियल और खोटो रुपैया छीतस्वामीं की गांठिमें ते लेकें श्रीगुसांईजी की आगे धर्‌यो।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने हरिदास खवास सों कह्यो जो– आधो नारियल तो इन छीतस्वामी कों देउ। तब हरिदास खवासने वा नारीयल की गरी की दोय फाड़ करी, सो एक फाड़ तो छीतस्वामीकों दीनी, और एक फाडमें तें रंचक २ सबन कों बाँट दीनी।

इतने में श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों आज्ञा दीनी जो-छीतस्वामी! तुमारे साथके जो चारों जने हैं तिनकों यामें तें थोरी २ बांटि दीजो। तब छीतस्वामीनें दंडवत करिके वह गठरी में बांधि राखी।

सो एसी कृपा श्रीगुसांईजी की देखिके छीतस्वामी मनमें विचारे जो-मैं संसार-समुद्र में बह्यो जात हतो, सो मोकों बांह पकरिके काढ़े। और मेरे मनमें खोटे नारीयल को और खोटे रुपिया को पश्चात्ताप हतो सोउ ताप मेरो दूरि कर्‍यो। जो मो पर तो श्रीगुसांईजीने बड़ी कृपा करी।

पाछे छीतस्वामीने प्रसन्न होयके एक नयो पद ता समे बनायो। सो पद-

'हों चरणातपत्र की छैयां।
कृपासिंधु श्रीवल्लभनंदन बह्यो जात राख्यो गहि बहियां॥
नव नख शरद चन्द्रमा मंडल ×त्रिविध ताप मेटत छिन महियां।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल सुजस बखान सकत श्रुति नहियां'॥

यह कीर्तन वाही समे श्रीगुसांईजी के आगे छीतस्वामीने गायो, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये।

तब छीतस्वामीने दंडवत करिके कही जो- महाराज! आप तो प्रभु हो। आप को श्रुति जो वेद है सोउ पार पावत नांही, तो और की कहा सामर्थ्य है? जो आप को जस गान करे।

× नव नखचन्द्र सरद राकाससि हरत ताप सुमिरत मन महियां। एसाभी पाठ है।

ता पाछे संध्यार्ति को समय भयो। तब श्रीगुसांईजी छीतस्वामी सों कहे जो– जाओ दर्शन करो। तब छीतस्वामी मंदिर में जायके तिवारी में तें श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन किये। तब देखे तो मंदिर में श्रीगुसांईजी ठाड़े हैं। तब छीतस्वामी मन में कहे जो– श्रीगुसांईजी कों तो मैं बेठक में छोड़ आयो हतो और ये मंदिर में कहांते ठाड़े हैं? बहुरि मन में कहे जो– भीतर और राह होयगी, ता राह पाबधारे होंयगे।

ता पाछे आरती के दरशन करिके छीतस्वामी बाहर आये। तहां देखे–तो श्रीगुसांईजी गादी ऊपर बिराजे हैं। तब तो छीतस्वामी कों बड़ो आश्चर्य भयो, परि ठीक न परी। ता पाछे सेन आरती भई। तब छीतस्वामी कों महाप्रसाद लिवाये पाछे श्रीगुसांईजीने आज्ञा करी जो– सवारे ही तुम श्रीगिरिराज जायके श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करि आवो।

तब छीतस्वामी रात में तो सोय रहे। प्रातःकाल होत ही सातों स्वरूपन के मंगला के दरशन करिके श्रीगुसांईजी के दरशन किये, पाछे श्रीयमुनाजी उतरिके मूधे ही श्रीगिरिराज कों चले, सो राजभोग के समय जाय पहोंचे। श्रीगोवर्द्धननाथजीके राजभोग आरती के दरशन किये। तब देखे–तो उहां श्रीगुसांईजी ठाड़े हैं, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास ही देखे। तब छीतस्वामी मन में विचारे जो– श्रीगुसांईजी कब पधारे हैं?

ता पाछे छीतस्वामी श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करि के नीचे उतरे। तब उहां लोगन तें पूछे जो– श्रीगुसांईजी इहां कब पधारे हैं? तब उन सेवकनने कही जो– श्रीगुसांईजी तो श्रीगोकुल में हैं, इहां तो नांही पधारे हैं।

तब छीतस्वामी मन में बिचारे जो–मैं तो श्रीगुसांईजी कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास ही देखे हैं, और काल हू श्रीनवनीतप्रियजी के पास ही ठाड़े देखे हैं। और बेठक हू में बिराजे देखे सो सब ठोर येही दरशन देत हैं, तातें ये ईश्वर हैं।

यह विचारिके छीतस्वामी श्रीगोकुल की सुरति बांधि चले, सो उत्थापन भोग के समय श्रीगोकुल आय पहुंचे। श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में गादी ऊपर बिराजे तब छीतस्वामीनें आयके दंडवत कीनी। तब श्रीगुसांईजीने पूछी जो– छीतस्वामी! तुम श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करि आये? तब छीतस्वामीने कही जो–महाराज! श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन किये, और उनके पास ठाड़े आपहू के दरशन किये। तब श्रीगुसांईजी मुसिकाये।

तब छीतस्वामीने अपने मनमें विचारि यह निश्चय कियो जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी को और श्रीगुसांईजी को स्वरूप एक है। यह जानिके ताही समें छीतस्वामीने यह पद करिके गायो। सो पद–राग सारंग।

'जे वसुदेव किये पूरन तप तेई फल फलित श्रीवल्लभदेव।
जे गोपाल हुते गोकुल में सोई अब आनि बसे निज गेह॥

जे वे गोपवधू ही व्रजमें सो अब वेदऋचा भई येह ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल तेई एई एई तेई कछु न संदेह ॥'

यह कीर्तन सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये।

पाछे श्रीगुसांईजीने सेन आरती उपरांत वाहू दिन छीतस्वामी कों अपने यहां महाप्रसाद लिवायो ।

ता पाछे तीसरे दिन छीतस्वामी देहकृत्य करि श्रीजमुनाजी में स्नान करिके अपरसहीमें आय श्रीगुसांईजी के आगे हाथ जोरिके ठाड़े भये । और श्रीगुसांईजी सों बिनती करी जो–महाराज! मोकों कृपा करिके समर्पन करावो ।

तब श्रीगुसांईजीने श्रीनवनीतप्रियजी के आगे समर्पण करवायो । ता पाछे छीतस्वामीनें बिनती कीनी जो– महाराज! आज्ञा होय तो मैं अपने घर जाऊं । तब श्रीगुसांईजी आपु आज्ञा किये जो– राजभोग आरती के दरशन करिके पाछें तुमकों बिदा करेंगे ।

ता पाछे राजभोग आरती भई । पाछे श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में अपरस ही में बिराजे, तब छीतस्वामीने आयके दंडवत करी। पाछे बिनती करी जो– महाराज! आज्ञा होय तो मैं अपने घर जाऊं। तब श्रीगुसांईजी कहे जो–महाप्रसाद लेके अपने घर जइयो ।

ता पाछें श्रीगुसांईजी सब बालकन सहित आपु भोजन कों पधारे । सो छीतस्वामी कों अपने श्रीहस्त सों पातर धरी। ता पाछे आपु भोजन कों पधारे। पाछे जब भोजन

करिके आचमन लेके श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में बिराजे। तब छीतस्वामी हू आचमन करिके श्रीगुसांईजी के पास आये। तब श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों महाप्रसादी बीड़ा दिये। और कह्यो जो– छीतस्वामी ! अब तुम अपने घर जाओ।

तब श्रीगुसांईजी कों छीतस्वामी दंडवत करके चले सो मथुरा आये। तब वे चारों कुटिल हते, सो छीतस्वामी सों मिले। तब उन(ने) छीतस्वामी सों पूंछी जो– तुमने उहां कहा कियो? और हम तो जब ही जान्यो जो– तुमकों टोंना लग्यो। तब छीतस्वामीनें कह्यो जो– अब तो मैं श्रीगुसांईजी को सेवक भयो, तातें अब तो मैं तुमारे काम तें गयो।

यह बात छीतस्वामी की उन चारों जनेनने सुनी। ता पाछे वे चुप होय रहे।

तातें श्रीगुसांईजी को एसो प्रताप हैं। सो वे श्रीगुसांईजी की कृपा तें बड़े कवीश्वर भये, सो बहुत कीर्तन किये। सो वे छीतस्वामी एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–२

और एक समें छीतस्वामी बीरबल के घर गये। छीतस्वामी बीरबल के मोहित हते। सो अपनी बरसोंड लेवे कों गये हते।

सो बीरबलने अपने घरमें रहवे को स्थल दियो, सो छीतस्वामी तहां रहे। सो पिछली घड़ी एक रात्रि रही, तब छीतस्वामी उठिके प्रभुनको नाम लेके एक पद गायो। सो पद–

राग देवगंधार–

जै जै श्रीवल्लभराजकुमार ।

परमानंद कपट खंडन करि सकल वेद उद्धार० ॥

× × ×

छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रकट कृष्ण अवतार ॥

यह छीतस्वामीने गायो, सो बीरबलने सुन्यो । सो बीरबल कों आछी न लागी । (और) मनमें कह्यो जो– देखो इन (ने) कहा बरनन कियो है ? परि बीरबलने छीतस्वामी सों कछू कह्यो नांही । जो यह बात मनमें धरि राखी ।

तापाछे छीतस्वामी उठि देहकृत्य करि श्रीयमुनाजी में स्नान करि, श्रीठाकुरजी कों भोग समरप्यो, ता पाछें भोगसरायके आप प्रसाद लिये ।

पाछे बेठे बेठे छीतस्वामी कीर्तन गावत हते 'जे वसुदेव किये पूरण तप०' । तामें छेली कड़ी में कह्यो जो–'छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल येई तेई तेई येई कछू न संदेह' ।

यह पद छीतस्वामीने गायो । सो सुनिके बीरबल कों वहोत बुरी लगी । तब तो बीरबलने छीतस्वामी सों कह्यो जो–छीतस्वामी ! तुम (ने) अब तो यह पद गाये 'येई तेई तेई येई कछु न संदेह' और सवारे गाये जो 'प्रकट कृष्ण अवतार' सो यह तुमने गायो सो देशाधिपति म्लेच्छ है, जो–यह सुन पावेगो तो तुम कहा जुवाब दोगे ?

तब बीरबलसों छीतस्वामीने कही जो–मोसों देशाधिपति पूछेगो तब मैं जुवाब दऊंगो । परि अब तो मेरे भाये तुई

म्लेच्छ है। (क्यों) जो– तेरे मनमें यह दुर्बुद्धि उपजी। तातें मैं तो आज तें तेरो मुंह न देखूंगो। एसे बीरबल को तिरस्कार करिके उहां तें छीतस्वामी श्रीगोकुल में श्रीगुसांईजी के पास आये।

सो यह बात देशाधिपति सों जायके हलकारे ने कही जो–साहिब! बीरबल का प्रोहित मथुरासे आया था, सो किसी बात के ऊपर बीरबल से रूठकर गया है।

एसे सब समाचार विस्तार सों देशाधिपति के आगे हलकारे ने कहे। ता पाछे जब बीरबल दरबारमें आयो तब देशाधिपतिने कह्यो जो– बीरबल! तेरा प्रोहित तुझ से क्यों रूठ गया है'। तब बीरबल ने देशाधिपति सों कही जो– साहिब! ब्राह्मण एसेही होते हैं। जो सहजकी बात ऊपर रूठ जाते हैं।

तब देशाधिपतिने बीरबल सों कह्यो जो–बात तो कहो क्या थी? तब बीरबलने कही जो–साहिब उन्होने दो पद दीक्षितजी के गाये थे। सो मैंने इतना कहा कि–जब देशाधिपति सुन पावेंगे तब क्या जबाब दोगे? इस पर वे रूठ गये।

तब देशाधिपतिने बीरबल सों कही जो–बीरबल! तेरे प्रोहित ने झूठ क्या कहा? तुझे उस बातकी सुधी आती है, जो मैं नावड़े में बैठा जाता था, सो नावड़ा गोकुल के नीचे जा निकला, उस समय दीक्षितजी वहां घाटके ऊपर बैठे थे। तब दीक्षितजीने मुझे आसीरवाद दिया। मेरे पास मणि थी जिससे पांच तोला सोना नित्य होता था, वह मणि मैने दीक्षितजी को दी।

सो दीक्षितजीने वह मणि हाथमें ले कर मुझसे पूछा जो– तुमने मणि हमको दी ? एसे तीन वार पूछा, तब मैंने तीन वार कहा, जो–मणि दी। तब दीक्षितजीने वह मणि लेकर जमनामें डाल दी।तब मैं फिर बैठा (और कहा) जो– मेरी मणि मुझे पीछे दो। तब दीक्षितजीने यमुना में हाथ डाल के दोनों हाथ की अंजलि भर कर मणि लाकर मुझे दी। और कहा जो– इन में तुम्हारी मणि होय सो काढ़ लो। जब मैंने न ली, तब फिर मुझे तीन वेर पूछा जो–अब तो फेर न लोगे ? तब मैने तीन वार नांही की। तब तो दीक्षितजीने अंजलि भरी की भरी मणि फिर यमुनामें डाल दी। जो बीरबल! यह बात तो तू भूल गया। सो यह बात ईश्वर की कृपा विना नहीं होती। इससे तुमको एसा संदेह न करना चाहिये। जो तुमने अपने मोहित से एसा कहा, सो दीक्षितजी तो साक्षात ईश्वर हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं।

या भांति सों देसाधिपतिने बीरबल सों कह्यो, सो सुनिके बीरबल चुप होय रह्यो, जो– कहा उत्तर देय ?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

तातें गुसांईजी को एसो प्रताप है। जो– देसाधिपति म्लेच्छ है सोऊ जानत है, जो–श्रीगुसांईजी तो साक्षात् ईश्वर हैं। और बीरबल तो बहिर्मुख है। ता तें श्री गुसांईजी के स्वरूप को ज्ञान नांही है। श्रीगुसांईजी कबहुं २ कहते जो– बीरबल तो बहिर्मुख है।

सो वे छीतस्वामी श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-३

और जब बीरबल को तिरस्कार करिके छीतस्वामी श्रीगोकुल आये, ता दिन श्रीगुसांईजी, श्रीगिरधरजी श्री-नाथजीद्वार हते। सो जब छीतस्वामी आये सो बात श्रीगुसांईजीने सुनी, जो- छीतस्वामी या प्रकार अपनी वृत्ति छोड़िके श्रीगोकुल आये हैं, बैठें है। और यह हू बात श्रीगुसांईजीने पहले ही सुनी (हती) जो-छीतस्वामी बीरबल के पास बरसोंड़ लेवे कों गये हते, सो अब या तरह सों बीरबल को तिरस्कार करिके छोड़ि आये हैं।

सो तहां श्रीनाथजीद्वार में श्रीगोवर्द्धननाथजी के तथा श्रीगुसांईजी के दरशन कों दूर के वैष्णव जो आये हे, तिनसों श्रीगुसांईजी ने कह्यो जो- तुमारे पास मैं छीतस्वामी कों पठावत हों, सो तुम इनकी भली भांति सों सेवा कीजो।

ता पाछे बैष्णव तो श्रीगुसांईजी सों विदा होयके अपने देस कों चले।

ता पाछे बीरबल सों रिसायके छीतस्वामी श्रीगोकुल आये हते, सो उहां श्रीगुसांईजी के दरसन श्रीगोकुल में न पाये, तब दोय चार दिन तांई रहिके फेरि छीतस्वामी तरहटी में आये, श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन किये। सो अपने मनमें बहोत आनंद पाये।

ता पाछे श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धननाथजी को अनोसर

करवायके पर्वत तें नीचे उतरे, सो अपनी बेठक में बिराजे। तब श्रीगुसांईजी की आगे आयके छीतस्वामीने सब समाचार विस्तार पूर्वक बीरबल के कहे। तब श्रीगुसांईजी छीतस्वामी के वचन सुनिके बहोत प्रसन्न भये।

ता पाछे श्रीगुसांईजीने लाहोर के जो वैष्णव आये हते, तिनकों एक पत्र लिख्यो अपने श्रीहस्त सों, 'जो–ए छीतस्वामी (को) हमने तुमारे पास पठाये हैं सो इनकी टहल तुम आछी भांति सों कीजो'।

सो वह पत्र श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी कों दियो, और कह्यो जो– छीतस्वामी! तुम लाहोर जावो। तब छीतस्वामीने कही जो महाराज! मैं लाहोर जायके कहा करूंगा? तब श्रीगुसांईजीने छीतस्वामी सों कह्यो, जो–मैंने उन सब वैष्णवन सों कही है, सो वैष्णव तुमारी बिदा आछी तरह सों करेंगे।

तब श्रीगुसांईजी के वचन सुनिके छीतस्वामीने यह पद गायो। सो पद–

राग नट–हम तो श्रीविठ्ठलनाथ उपासी।
सदा सेवों श्रीवल्लभ–नंदन कहा करों जाय कासी॥
छांडि नाथ जो और रुचि उपजत सो कहियत असुरासी।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविठ्ठल बानी निगम प्रकासी॥

जो यह पद छीतस्वामीने गायो। सो सुनिके श्रीगुसांईजी (ने) छीतस्वामी के हृदयकी जानी जो– एतो कहूं जानहार नांही हैं।

तब छीतस्वामीने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो–महाराज! मैं वैष्णव भयो सो कछु वैष्णव के पास तें भीख मांगन कों नांही भयो। और बीरवल पें तो मेरी बरसोंड़ हती सो मैं वाको मुंह तोड़िके लेतो। परि महाराज! वाने तो म्लेच्छ बुद्धि को जुवाब दियो, तातें मैं यहाँ उठि आयो। जो महाराज! मेरे तो राज के चरणकमल छांड़िके कछू काम नांही, और कहूं न जाऊंगो। और अब कहा एसे कर्म करूंगो, जो वैष्णव होयके कहा भीख मागूंगो?

सो छीतस्वामी के बचन सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये, और कह्यो जो–वैष्णव को यही धर्म है, जो–एसे ही चाहिये।

ता पाछें श्रीगुसांईजीने वह पत्र लाहोर के वैष्णवनकों लिख पठायो जो–छीतस्वामी तो इहां ते आय सकत नांही है, तासों यह ब्राह्मण गरीब है। जो तुमतें याकी टहल बनि आवे तो इहां ही मनुष्य के हाथ हुंडी कराय पठाय दीजो। सो वह पत्र श्रीगुसांईजी को एक मनुष्य लाहोर ले जायके उन वैष्णवन कों दियो। तब उन वैष्णवनने वह पत्र बांचिके रूपिया १००) की हुंडी करायके पठाई। और उन वैष्णवननें श्रीगुसांईजी को यह पत्र वीनती को लिख्यो, जो–महाराज! इतनी हुंडी तो हम वर्ष पर्यंत पठावेंगे, आपकी हुंडी के साथ इनकी हुंडी पठावेंगे सदा।

सो पत्र श्रीगुसांईजी के पास आयो, तब बांचिके श्री-

गुसांईजीनें वा पत्र के समाचार सब छीतस्वामी सों कहे। तब छीतस्वामी अपने मनमें बहोत प्रसन्न भये, और श्रीगुसांईजी हू उन वैष्णवन पर बहोत प्रसन्न भये।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

तातें छीतस्वामी उन बीरबल को त्याग करिके श्रीगुसांईजी को जस बढ़ायो। तो आपुने हू बीरबल की बरसोंड़ जितनो छीतस्वामी कों कराय दीनो। तातें वैष्णवन कों तो दृढ विश्वास राखनो श्री गोवर्द्धननाथजी की ऊपर। जो विश्वास राखे तो प्रभु वाकी क्यों न खबर राखें? तातें वैष्णवन कों तो एसो अनन्यता राखी चहिये। और छीतस्वामी जो श्रीगुसांईजी की आज्ञा मानिके लाहोर जाते, तो एकही वार द्रव्य लावते। परि आगे कहा करते? सो उन छीतस्वामीने जो विश्वास राख्यो, तो जनम भरिके द्रव्य और ठोर जाचनो न पड्यो।

तातें या जीवकों एसो एक प्रभुन को आश्रय राखनो। एक आश्रय श्रीवल्लभाधीश को करनो जातें सब फल की प्राप्ति होय।

पाछे वे लाहोर के वैष्णव छीतस्वामी कों प्रतिवर्ष श्रीगुसांईजी की हुंडी के साथ न्यारी हुंडी पठावते, सो वे वैष्णव हू श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र हते। और छीतस्वामी हू श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये। सो उनकी वार्ता कहां तांई लिखिये।

(६) गोविन्दस्वामी

अब श्रीगुसांईजी के सेवक गोविंदस्वामी सनोड़िया ब्राह्मण, महावनमें रहते तिनकी वार्ता–

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश–

ये गोविंदस्वामी लीला में श्रीठाकुरजी के 'श्रीदामा' सखा तिनकों

आधिदैविक प्राकट्य हैं। सो दिवसकी लीला में तो ये श्रीदामा

मूलस्वरूप सखा हैं, और रात्रि की लीला में ये 'भामा' सखी है, श्रीचंद्रावलीजी की। ताते यहां हू ये श्रीगुसांईजी के स्वरूप में आसक्त है।

वार्ता प्रसंग–१

सो वे प्रथम आंतरी गाममें रहते। तहां वे स्वामी कहावते, सो वे सेवक करते। परि गोविंदस्वामी परम भगवदीय हते। सो वे गोविंदस्वामी आंतरी में ते व्रज आये। तब महावनमें रहे, जो– यह व्रजधाम है। इहां श्रीभगवान के चरणारविंद की प्राप्ति केस न होइगी ?

सो गोविंदस्वामी कवीश्वर हते, सो आप पद करते। जो कोई इनके पद सीखिके श्रीगुसांईजी के आगे गावतो, ताकों श्रीगुसांईजी प्रसाद दिवावते, और बहोत प्रसन्न होते। सो वे गावनहारे गोविंदस्वामी के आगे जायके

कहते, जो–तुमारे किये पद हम श्रीगोकुल के गुसांईजी के आगे गावत हैं, सोवे वहुत प्रसन्न होत हैं, और हमकों प्रसाद दिवावत हैं। तातें तुम अपने किये पद हमकों और सिखावो।

सो यह सुनिके गोविंदस्वामी अपने मनमें कहते जो–जो कछु है, सो श्रीगोकुल है, और श्रीगोकुल के गुसांईजी है। परि मिलनो बनत नांहि।

सो एसे करत करत कितनेक दिन भये तब एक समे कोऊ एक श्रीगुसांईजी को सेवक कछु कार्यार्थ श्रीवृन्दावन में जाय निकस्यो। सो भगवदिच्छा सों गोविंदस्वामी को मिलाप भयो। गोविंदस्वामी और वह वैष्णव एकांत ठौर में बेठे हते, तहां कोई वार्ता के प्रसंग में गोविंदस्वामीने कह्यो जो–श्रीठाकुरजी की साक्षात् लीला कैसे जानि परे?

तब वा वैष्णव नें कह्यो जो–पाछे कहूंगो। तब गोविंद-स्वामीने वा वैष्णवसों कह्यो जो–मोकों बहुत दिनन तें या बातकी आतुरता है, और तुम कहत हो जो–काल कहूंगो। जो याहूतें फेर एकांत कहां मिलेगी। तातें मेरे ऊपर कृपा करिके अवही कहो।

तब वा वैष्णवनें गोविंदस्वामी की बहुत आतुरता देखिके उनतें कह्यो जो–आज के समे तो श्रीठाकुरजी कों श्रीगुसां-ईजी श्रीविट्ठलनाथजी नें वस करि राखे हैं। तातें श्रीठाकुरजी के चरणारविंद की प्राप्ति पाईये तो इनही तें पाइये, और को आश्रय करनो वृथा है।

सो यह बात सुनिके गोविंदस्वामीकों अत्यंत आतुरता भई, और अति उत्साह भयो। तब तो गोविंदस्वामीने उन वैष्णव सों कह्यो जो–तुम मेरे साथ चलो। तब रात्रि तो उहांई सोय रहे। पाछे प्रातःकाल भयो। तब तहांतें दोऊ जने चले सो श्रीगोकुल आये। ता समें श्रीगुसांईजी श्रीठाकुरजी कों राजभोग धरिके श्रीयमुनाजी पे संध्यावंदन करत हे। सो ताही समय ये आय पहुँचे।

तब वा वैष्णवन कही जो–श्रीगुसांईजी यही हैं। तब देखि के गोविंदस्वामी के मन में आई जो–ये कोई बड़े कर्मंष्ट हैं। कर्मकांड करत हैं, इनकों श्रीठाकुरजी क्यों कर मिलत होंयगे। एसे चित्त में सोच विचार करन लागे।

इतने में श्रीगुसांईजी संध्यावंदन तर्पण करि चुके। तब श्रीगुसांईजीनें कह्यो जो– गोविंददास! कब आये? तब इन (ने) कही जो प्रभु! अब ही आयो हों।

ता पाछे श्रीगुसांईजी उहांतें मंदिरमे पधारे. सो साथ गोविंदस्वामी हू चले। पर गोविंदस्वामी अपने मनमें बिचार करत हुते, जो इन (ने) मोकों कबहू देख्यो नांही, जो इन (नें) मोकों केसें पहिचान्यो। ताते कछुक कारण दीसत है।

ता पाछे श्रीगुसांईजी तो जाइके मंदिरमें भोग सराये। ता पाछे दरशन के किंवाड खुले। तब गोविंदस्वामीनें राजभोग आरती के दरशन किये। सो साक्षात् बाललीला

रसमय रसात्मक स्वरूपको दरशन कराये। ता समे श्रीगुसांईजी ने गोविंददास को यह दान किये।

ता पाछें श्रीगुसांईजी बाहिर आये। तब गोविंदस्वामीने श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी, जो-महाराज! आप तो कपटरूप दिखावत हो। और आप के यहां तो साक्षात् प्रभु बिराजत हैं। (और) बाहिर तो वेदोक्त कर्म करत हो।

तब श्रीगुसांईजीने गोविंदस्वामी सों कह्यो, जो-भक्ति-मार्ग है, सो तो फूलरूपी है, और कर्ममार्ग कांटारूपी है।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

सो फूल तो रक्षा बिना फूले न रहे। तातें वेदोक्त कर्ममार्ग है सो भक्तिरूपी फूलन कों कांटेनकी बाड़ है। तातें कर्ममार्ग की बाड़ बिना भक्तिरूपी फूल को जतन न होय, तब जतन बिना फूल हु न रहें। तातें यह वस्तु है सो गोप्य है। तातें प्रकट प्रमाण त्यौंहीं है।

तब ये वचन सुनिके गोविंदस्वामी बहोत प्रसन्न भये। तब गोविंदस्वामीने श्रीगुसांईजी सों फेरि बिनती कीनी जो-महाराज! कृपा करिये।

तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो-तू स्नान करि आव। तब गोविंदस्वामी तत्काल स्नान करिके अपरस ही में आये। तब श्रीगुसांईजी ने इन ऊपर कृपा करिके नाम सुनायो, ता पाछे समर्पन करवायो। पाछें अनोसर कराय। श्रीगुसांईजी तो भोजन कों पधारे। तब गोविंदस्वामी कोहू महाप्रसादकी पातर श्रीगुसांई-

जीने अपने श्रीहस्तसों धरी। पाछे प्रसाद लेके गोविंदस्वामी
आचमन करके श्रीगुसांईजी कों दंडवत करी।

ता पाछे गोविंदस्वामी श्रीगोकुल ही में आय रहे
सो वे गोविंदस्वामी पे श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते। इ
ऊपर बहुत कृपा करते। सो गोविंदस्वामी एसे कृपापा
भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग—२

सो पहिले गोविंदस्वामी आंतरी में सेवक करते. सो उहां गोविंदस्वामी कहावते। आंतरी में इनके सेवक बहोत हते। एक समे आंतरी के लोग श्रीगोकुल में आये। सो गोविंदस्वामी जसोदाघाट के ऊपर वेठे हते। सो उन सुनी ही जो— गोविंदस्वामी श्रीगोकुल में रहे हैं। सो सुनि के नाम पायवे के लिये आये हे। तव उन लोगनने पूछी जो—गोविंदस्वामी कहां रहत है?

तब वे लोग पूछत २ गोविंदस्वामी के घर आये। तब गोविंदस्वामी की बहिन कान्हबाईने कही जो—गोविंददास तो स्नान करन कों गये हैं। तब वे लोग जसोदाघाट पे आये, गोविंददास सों पूछी जो—गोविन्दस्वामी कहां है? तब गोविन्ददास ने कही जो—वे तो मरे बहोत दिन भये। तब वे लोग फेर घर आये। इतने में गोविंददास हू घर आये। तब उन लोगनने उनकों पहिचाने, जो इन तो हमसों एसे कही जो—वे ता मरे। सो एतो आप ही हैं।

तब उन लोगन सों कही जो–स्वामी! तुम हमसों यों क्यों कहे जो–वे तो मरे। तब उन गोविंददास ने कही जो–मरे नांही तो अब मरेंगे।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

जो या भांति सों गोविंददासजीने कही, ताको कारन कहा? (क्यों) जो भगवदीय कों मिथ्या न बोलनो। ताको हेतु यह जो– उन लोगनने तो इनसों पूंछ्यो सो– गोविंदस्वामी कहि के पूछ्यो। तासों इन (ने) कही जो–वे स्वामी तो मरे। (क्यों) जो अब तो हम 'दास' हैं।

पाछे गोविंददासने कही जो– तुम अब श्रीगुसांईजी के पास नाम पावो। तब उनने कही जो-हमकों श्रीगुसांईजी की पास ले चलो तब उन लोगन कों गोविंददास अपने साथ ले जायके श्रीगुसांईजी की पास नाम दिवायो। तब वे लोग दिन चार श्रीगोकुल रहिके पाछे आंतरी कों गये। सो वे गोविंददासजी श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–३

और गोविंददास श्रीजमुनाजी में कबहूं न्हाते नांहीं, पांव हू श्रीयमुनाजी में बुड़ावते नांही, कूप के जलसों स्नान करते, श्रीजमुनाजी की रेती में लोटते, अंजुली भरि जल लेते सो पी जाते, और आचमन हू न करते। जो– उनको श्रीजमुनाजी पर एसो भाव हतो। श्रीजमुनाजी कों साक्षात् स्वामिनी को स्वरूप जानते। और यह कहते जो–यह अप्रयोजक सरीर यामें मैं कैसे करि डारों। एसे श्री यमुनाजी को

स्वरुप अगाध भाव संयुक्त है, ताको विचार करते । सो वे गोविंददास एसे भावसंपन्न हते ।

सो एक दिन श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी ए दोऊ भाई श्रीयमुनाजी में स्नान करत हते । ता समे श्रीजमुनाजी के तीर गोविंददास ठाड़े हते । तब श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी दोऊ भाई आपुस में विचार करन लागे, जो–आज तो गोविंददास कों श्रीजमुना में स्नान कराइये । सो इन दोऊ भाई गोविंददास कों पकरिके श्रीजमुनाजी में ले जान लागे । तब गोविंददास ने कह्यो जो–महाराज ! माकों श्रीयमुनाजी में मति डारो, मोकों श्रीयमुनाजी में डारोगे तो मेरो दोष नांही है, आप जानो । ये श्रीयमुनाजी हैं, सो साक्षात् श्रीस्वामिनीजी हैं । ये लीलात्मक स्वरूप है । तातें यह मेरो अप्रयोजक सरीर मैं यामें कैसें डारों ?

सो गोविंददासने जब एसें कह्यो, तब इनने उन कों छोड़ि दिये । तब इन दोउ भाईन कों श्रीजमुनाजी के लीलात्मक स्वरूप को ता समय दरसन भयो । तब गोविंददासने कह्यो जो– महाराज ! इहां तो उत्तम तें उत्तम सामग्री होय सो समर्पिये । सो निज स्वरूप जानिके कह्यो।

सो वे गोविंददास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग–४

और एक समय रात्रि कों श्रीभागवत दसमस्कंध के अष्टादस अध्याय वेणुगीत के अंत के श्लोकको व्याख्यान श्रीगुसांईजी करत हते। सो श्लोक–

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदार–
वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥

सो या श्लोक को व्याख्यान गोविंददास के आगे श्रीगुसांईजी करत हते। सो करत २ अर्द्धरात्रि गई। ता पाछें श्रीगुसांईजी तो आप पोंढ़िवे कों उठे। तब गोविंददास कों आज्ञा दीनी जो– अब तुमही जायके सोय रहो।

तब गोविंददास श्रीगुसांईजी को दंडवत करिके उठि चले। सो अपनी बेठक में श्रीबालकृष्णजी और श्रीगोकुलनाथजी और श्रीगोविंदरायजी बेठे हते, सो आपुस में खेलत हसत हते। और हू वैष्णव पास बेठे हते, सो तहां गोविंददास हू आये।

तब गोविंददास तें श्रीगोकुलनाथजीने पूछी जो–कहो गोविंददास! या विरियां कहां ते आये हो? तब गोविंददासने कही जो–महाराज! श्रीगुसांइजी के पास हो, तहां ते आयो हूं। तब गोविंददास तें श्रीगोकुलनाथजीने कही, उहां कहा प्रसंग होत हतो? तब गोविंददासने कह्यो जो– महाराज! वेणुगीत के अंत के श्लोक को व्याख्यान भयो। तब श्री-

गोकुलनाथजीने गोविंददास तें कह्यो जो– कहा व्याख्यान भयो हो ? तब गोविंददासने कह्यो, जो महाराज ! अपनी बात आपु कहे, ताको कहा कहिये, ताकी पटतर कहा दीजिये ?

तब गोकुलनाथजीने कह्यो जो– श्रीगुसांईजी को स्वरूप गोविंददासने नीके जान्यो है ।

ता पाछे गोविंददास तो अपने घर कों आये । सो वे गोविंददास एसे भगवदीय भये ।

वार्ता प्रसंग–९

और एक दिवस श्रीनाथजी और गोविंददास दोउ अप्सरा कुंड के ऊपर साथ ही खेलत हते । सो तहां ते गोविंददास तो श्रीगिरिराज परवत पर आये, तब उहां देखे तो राजभोग आरती होय चुकी है । तब गोविंददासने कही जो–इहां राजभोग कोन ने आरोग्यो है ? श्रीनाथजी तो अबही आवत हैं, एसें कह्यो । तब श्रीगुसांईजीने फेर सामग्री कराइ, और फेर राजभोग धरयो । फेर आरती भई पाछें अनोसर भयो ।

यहां यह संदेह होय जो–श्रीनाथजी तहां हते नांही तो सेवा कोनकी भई ?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश. तहां कहत हैं जो– श्रीआचार्यजी के पुष्टिमार्ग में श्रीठाकुरजी मर्यादा पुष्टि रीति सों बिराजत हैं । (तोभी) सगरे (सब स्थल में) पुष्टि पुरुषोत्तम के भाव सों सगरी सामग्री आरोगत हैं । सगरी वस्तु वस्त्र आभूषन को अंगीकार करत हैं । और दर्शन देवे में मर्यादा रीति सों

विराजत हैं, बोलत नांहि। सो भगवत्स्वरूप में दोय प्रकार को स्वरूप है। एक भक्तोद्धारक, और एक मर्यादा—पुष्टिरीति सों सब कों दर्शन दे सो सर्वोद्धारक।

भक्तोद्धारक स्वरूप के विषे सब कों दर्शन नांही। सो जहां तांई वैष्णव को प्रेम न होय तहां तांई मर्यादा-पुष्टिरीति सों अंगीकार (और) दर्शन है। भक्तोद्धारक स्वरूप, सर्वोद्धारक मर्यादा-पुष्टिरूप सों सिंहासनपे बिराजिके सब कों दर्शन देत हैं सो स्वरूप में ते बाहर प्रकट होय। सो जहां तरुन, वृद्ध, गाय आदि, जैसो कार्य करनो होय ता प्रकार को रूप करि उह भक्त सों बोलें, अनुभव करावें। तथा मर्यादा—पुष्टि स्वरूप है, उनही के मुख सों बोलें, अनुभव जतावें।

सो यहां भक्तोद्धारक स्वरूप को अनुभव गोविंदस्वामी कों है। और श्रीगुसांईजी ने जो राजभोग धरचो सो श्रीआचार्यजी की मर्यादा अनुसार श्रीनाथजीने सर्वोद्धारक रूप सों आरोग्यो। तोहू गोविंदस्वामी जैसे भक्त के विशेष अनुभव सों श्रीगुसांईजीने फेरि राजभोग धरचो, एसे जाननो।

प्रत्यक्ष अथवा वैष्णव द्वारा विशेष आज्ञा होवे तो भगवत्कृपा भई जाननी। सो यातें श्रीगुसांईजीने हू भगवद् इच्छा समझ करि फेरि राजभोग धरचो।

और गोविंदस्वामी, कुंभनदासजी और गोपीनाथदास ग्वाल ये तीनों जने श्रीनाथजीके एकांत के सखा हैं। श्रीगुसांईजीने इनको सब बात दिखाई ही। सो एकांत के

समे श्रीनाथजी और गोविंददास पूछरी की ओर खेलते हैं। सो गोविंददास सदैव श्रीनाथजीकी साथ रहते।

सो एक दिन राजभोग को समो हतो तातें श्रीनाथजी राजभोग आरोगवे को पधारे। सो पूछरी की ओर तें आवत हते, गोविंददास साथ हे। सो गोपालदास भीतरिया अप्सरा कुंडते स्नान करिके आवत हते गिरिराज ऊपर, सो उनने देखे।

तब गोपालदासने श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो–महाराज! गोविंददास और श्रीगोवर्द्धननाथजी पूछरी की ओर तें आये सो तो मैंने देखे। तब श्रीगुसांईजी सुनिके चुप करि रहे। ता पाछें राजभोग समर्प्यो।

सो वे गोविंददास श्रीनाथजी के एकांतके एसे सखा है। सो वे श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–६

और एक समे श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार में अपनी बेठक में बिराजे हते। ता समय श्रीनाथजी के उत्थापन को समय भयो। सो गोविंददास तो ऊपर दर्शन कों गये। सो जायके देखे तो श्रीनाथजी के पाग के पेच खूट रहे हैं। सो वा समे श्रीनाथजीने पाग सांधिकर बांधी है।

सो वे गोविंददास पाग आछी बांधत हुते। तब गोविंददासने श्रीनाथजी सों पूंछी जो–महाराज! पाग के पेच क्यों खुलि रहे हैं? तब श्रीनाथजीने गोविंददास सों कह्यो जो–तू पाग के पेच संवार दे।

तब गोविंददास भीतर जायके पाग के पेच संवारे। श्रीगोवर्द्धननाथजी की पाग ढीली, सो संवार दी। इतने में श्रीगुसांईजी ऊपर पधारे। तब भीतरियाने श्रीगुसांईजी तें कही जो– महाराज! गोविंददास श्रीनाथजी कों छुये हैं। (जो) मंदिर के भीतर जाय श्रीनाथजी के पाग के पेच संवारे हैं।

तब श्रीगुसांईजी सुनिके चुप होय रहे, कछु बोले नांही। तब तो भीतरियाने फेरि कही जो– महाराज! अपरस छुइ गई। तब श्रीगुसांईजी ने कही– गोविंददास के छुये तें श्रीनाथजी छुये न जांय, तातें संध्याभोग धरो। या भांति सों श्रीगुसांईजीने आज्ञा दीनी।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

ताको हेतु कहा? जो– अनोसर में श्रीनाथजी गोविंददासजी सों खेलत हैं, लिपटत हैं, ऊपर चढ़त हैं। यातें उन के छुये तें अपरस छुई जाय नांहि। और वैसे हू ब्राह्मण हैं, तातें वेद मर्यादा हू में हानि आवत नांही।

सो गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–७

और एक समय गोविंददास जगमोहन में ठाड़े २ कीर्तन करत हते। तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने गोविंददास की पीठ में कांकरी की मारी। सो एक बेर दीनी, दोय बेर दीनी। तब गोविंददासने एक बेर अंगुरीनतें फेर के दीनी। तब तो श्रीनाथजी चोंकि उठे। तब श्रीगुसांईजी फिरिके देखे

तो गोविंददास जगमोहन में ठाड़े है, और दूसरो कोऊ नांही है। तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो– गोविंददास ! यह तुमने कहा कियो? तब गोविंददासने कही जो– महाराज ! "आपनो सो पूत, परायो ढढींगर" मोकों इननें जबतें तीन कांकरी मारी हैं। आप मेरी पीठ तो देखो। पाछे गोविंददासने अपनी पीठ दिखाई। और कह्यो जो– "खेलत में को काको गुसैयां" तब श्रीगुसांईजी सुनिके चुप होय रहे।

ता पाछे श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी को शृंगार करन लागे। तब गोविंददास कीर्तन करन लागे।

या भांति गोविंददास सदैव श्रीगोवर्द्धननाथजी के साथ खेलते। सो वे गोविन्ददास श्रीनाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–८

और एक समे वसंत के दिन हते। सो श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी को सेनभोग सरायके बीड़ी आरोगावत हते। और गोविंददास ठाड़े ठाड़े मणिकोठा में कीर्तन करत धमार गावत हते। सो एक नई धमार करिके गावन लागे। सो धमार। राग रायसो–

श्रीगोवर्द्धनराय लाला. × × × × ×

सो याकी तीन तुक करके चुप होय रहे। गोविंददास तें आगे कही न गई। तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो– गोविंददास ! धमार क्यों नांही गावत हो? तब गोविंददासने कही जो–

महाराज! धमार तो भाजि गई अरु मन उरझाय गयो। 'अचका अचकी आयके भाजि गिरधर गाल लगाय'। सो वह तो भाजी गये तातें ख्याल उतनो ही रह्यो। जो– महाराज! भाजि गये तो आगे खेल कहांतें होय?

तब श्रीगुसांईजी सुनिके बहुत प्रसन्न भये। ता पाछे सेन आरती करिके श्रीनाथजी कों पोढ़ायके श्रीगुसांईजी आपु तो नीचे उतरे। ता पाछे धमारि की एक तुक रही हती सो, श्रीगुसांईजीने पूरी करी। सो तुक– इहि बिधि होरी खेलिके ....

सो वे गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते–

वार्ता प्रसंग–९

बहुरि सीतकाल में श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीद्वार पधारे हते। तब एक समे श्रीगोवर्द्धननाथजी और गोविंददास पूछरी की ओर श्यामढांक है, तहां ढांक की नीचे श्रीनाथजी और ग्वालबाल सब मिल के खेलत हैं। सो कबहूं वा ढांक पर चढ़िके मुरली बजावते, सब ग्वालबालन कों बुलावतें। तहां श्यामढांक तें थोरी सी दूर एक चोंतरा है, तहां गोविंददास बैठे २ कीर्तन करत हते। सो श्रीठाकुरजी श्यामढांक के ऊपर बैठे हतें। गाय सब आसपास गदेला घास चरत हती बन में।

ता समे श्रीगुसांईजी स्नान करिके उत्थापन करिवे कों ऊपर पधारे। तब श्रीनाथजीने गोविंददासतें कही जो–

मैं तो अब अपने मंदिर में जात हों। तहां उत्थापन को समयो भयो है। श्रीगुसांईजी स्नान करिके उपर पधारे हैं। जो-उहां श्रीगुसांईजी मोकों मंदिर में न देखेंगे तो मोसों कहा कहेंगे, जो-तुम कहां गये हे? तातें मैं तो जातहों।

एसे गोविंददास सों कहिके श्रीनाथजी वा ढांकपे तें उतावले ही कूदे, सो कवाय को दांवन तहां ढांकमें अरुझ्यो। सो दांवन को टूक तहां ही फटिके रहि गयो। सो श्रीनाथजी ने न जानी। सो गोविंददासने दूर सों देख्यो जो श्रीनाथजी की कवाय को दांवन फटिके अरुझि रह्यो है।

पाछे श्रीनाथजी तो जायके अपने मंदिरमें सिंहासन पर विराजे, और श्रीगुसांईजीने जायके श्रीनाथजी के मंदिर के किंवाड़ खोले, उत्थापन किये। सो जब झारी भरन लागे ता समे श्रीगुसांईजी देखें तो श्रीनाथजी को दांवन फटि रह्यो है। तब श्रीगुसांईजी झारी भरिके उत्थापन भोग धरिके बाहिर आये। तब रूपा पोरिया कों बुलायके श्रीगुसांईजीने पूंछी जो-रूपा! इहां कोउ आयो तो नांही? तब रूपा पोरियाने कही जो-महाराज! इहां तो कोउ आयो नांही। तब श्रीगुसांईजी चुप करि रहे।

पाछे श्रीनाथजीके उत्थापन भोग सरायके श्रीगुसांईजी श्रीगिरिराज तें नीचे उतरे, सो अपनी बेठक में आये। और भीतरियानकों आज्ञा दीनी जो-तुम आरती करियो। और सब सेवा तें पहुंचियो, तुम मेरो पेंडो मति देखियो।

इतनो कहिके आपतो नीचे आय अपनी बेठक में विराजे। तब सब वैष्णव दर्शन कों आये। सो आप काहूसों बोले नांही।

इतने में ही गोविंददास आये। तब गोविंददासने श्रीगुसांईजी सों कही जो–महाराज! आपु अनमने क्यों बेठे हो?

तब श्रीगुसांईजीने कही जो–कछु नांही। तब गोविंददासने कही जो–महाराज? कछु तो मनमें भ्रम है। तातें यह बात तो कही चहिये। तब श्रीगुसांईजीने गोविंददास सों कही जो--श्रीनाथजीको कबाय को दांवन फट्यो है। जो–न जानिये कोन अपराध पड्यो है?

तब गोविंददासने हँसिके कह्यो जो–महाराज! या बात के लिये तो राज भले अनमने होत हो! (क्यों जो) तुम कहा लरिका को सुभाव जानत नांही हो? तुम्हारो लरिका ढांक के ऊपर बेठ्यो हतो। सो तुम जब न्हाय के गिरिराज ऊपर पधारे तब लरिका वा ढांक ऊपर तें कूद्यो। सो वा ढांक में वा दांवन को टूक फटिके अरुझि रह्यो है, जो–महाराज! आपु पधारो तो मैं दिखाऊं।

तब तो श्रीगुसांईजी गोविंददास की बाँह पकरिके पूछरी की ओर चले। परि काहु सेवक कों संग न लीने। सो जब ढांक के नीचे आये तब श्रीगुसांईजी देखे तो वा कबाय की लीर लटकत है।

तब श्रीगुसांईजीने अपने श्रीहस्त सों उतारि लीनी। ता

पाछे आप उहांते अपसरा कुंड ऊपर आये, सो स्नान करिके अपरस ही में गिरिराज ऊपर पधारे। तब वह लीर श्रीगुसांईजी श्रीनाथजीकी कवाय के ऊपर धरिके देखे तो कवाय वह साजी होय गई। तब श्रीगुसांईजी गोविंददास के ऊपर बहुत ही प्रसन्न भये। पाछे श्रीगुसांईजी श्रीनाथजी की साम्हें देखिके मुसिकाये। तब श्रीनाथजी हू मुसिकाए।

ता पाछे श्रीगुसांईजी सेन आरती करिके सेवा तें पहोंचिके आपु नीचे पधारे, सो अपुनी बेठक में बिराजे। तब और वैष्णव हू श्रीगुसांईजी की पास आयके बेठे। तब गोविंददास हू श्रीगुसांईजी के पास आये। तब श्रीगुसांईजीने उन वैष्णवन सों कही जो–अब कछु तुम्हारे मनमें रह्यो है? तब सब वैष्णव चुप करि रहे। तब श्रीगुसांईजीने कही जो– अब कछु उपाय करिये, जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी को श्रम न करनो पडे।

तब श्रीगुसांईजी आपही मनमें बिचारि के भीतरियान सों कही, और सब सेवकन कों आज्ञा दीनी, जो- आज पाछे संखनाद तीन बेर करिके, ता पाछे क्षण एक रहिके, श्रीनाथजी के मंदिर के किंवाड़ खोलने।

यह सुनत ही गोविंददास बहुत ही प्रसन्न भये। सो गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–१०

और श्रीगोवर्द्धननाथजी गोविंददास कों घोड़ा करते। और आप गोविंददास की पीठ ऊपर असवार होय वन में पधारते। सो एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी गोविंददास के ऊपर चढ़े चले जात हे, ता समे गोविंददास कों लघी की शंका आई, सो मारग में ठाड़े ठाड़े लघी करे जात हे।

सो एक दिन एक वैष्णवने कह्यो जो–गोविंददास! यह कहा है? तब गोविंददास कछू बोलेहू नांही, वाको उत्तर हू न दियो। सो प्याऊ के ढांक की ओर चले ही गये।

सो सेन आरती उपरांत श्रीगुसांईजी नीचे अपनी बेठक में बिराजे हते, तब उहां वा वैष्णवनें कही जो–महाराज! गोविंददास तो आज ठाड़े २ निहरे निहरे जात हते और लघी करत जात हते।

इतने में श्रीगुसांईजी की पास गोविंददास हू आये। तब श्रीगुसांईजीने गोविंददास तें पूंछी जो–यह वैष्णव कहा कहत है? जो तुम मारग में निहरे २ ठाड़े २ लघी करत जात हते? तब गोविंददास ने कही जो–महाराज! घोड़ा हू कहुं बेठिके लघी करत है? और याकों तो सूझे नांही (जो) श्रीनाथजी तो मोकों घोड़ा करिके मेरी पीठ पर असवार होत हैं। और ता समें जो मोकों लघी आई तब मैं बेठिके कैसे लघी करूं? तातें मैं ठाड़े ही लघी करी सो तो याने देखी, परि श्रीनाथजी मेरी पीठ ऊपर असवार हते सो तो याकों सूझे नांही।

तब वा वैष्णवने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके कही जो–धन्य ! ए गोविंददास ! जीन पे महाराज की एसी कृपा है ।

सो वे गोविंददास श्रीगोवर्द्धननाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये ।

वार्ता प्रसंग–११

और एक समे श्रीगुसांईजी तो श्रीनाथजीद्वार पधारे हते । सो श्रीनाथजी की सेन आरति करिके श्रीनाथजी कों पोढ़ाय आपु नीचे अपनी बेठक में पधारे । पाछे गादी ऊपर बिराजे और वैष्णव सब आगे बेठे । तब श्रीगुसांईजी सों सब वैष्णवनने बिनती करी जो– महाराज ! गोविंददासजी तो श्रीनाथजी के राजभोग आरती के पहेले महाप्रसाद लेत हैं ?

तब इतने में ही गोविंददास तहां आये। तब श्रीगुसांईजी ने पूंछी जो– गोविंददास ! ये वैष्णव कहत हैं– जो तुम राजभोग की आरति के पहेले महाप्रसाद लेत हो ? तब गोविंददास ने श्रीगुसांईजी सों बिनती करी जो– महाराज ! मैं परवस लेत हों, काहेतें जो आप तो राजभोग आरति करि के अनोसर करत हो, और तुमारो लरिका आय के ठाड़ो होत हैं और कहेत हैं जो– गोविंददास ! खेलिवे कों चल । तातें हों पहेले ही प्रसाद लेत हों । तब श्रीगुसांईजी कहे जो– राजभोग पहेले तो महाप्रसाद लीजे नांही । तातें राजभोग की आरति उपरांत

प्रसाद लेवे कों आयो करि। तब गोविंददास ने कही जो-महाराज ! जो आज्ञा।

तब दूसरे दिन गोविंददास राजभोग आरति श्रीनाथजी की होय चुकी तब दरशन करि के ही तुरत आये। सो गोविंददास तो महाप्रसाद लेवे कों बेठे। और इहां श्रीगोवर्द्धननाथजी अनोसर भये पाछें जगमोहन में आय के ठाड़े भये और गोविंददास की राह देखत भये।

इतने ही (में) महाप्रसाद लेके गोविंददास आये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने गोविंददास सों पूंछ्यो जो-गोविंददास ! तु इतनी बार लों कहां गयो ? मैं तीन बेर जगमोहन में गयो, और तीन ही बेर पाछो आयो। और अब आय के तेरी राह देखत हों।

तब गोविंददासने कह्यो जो- महाराज ! मैं तो तुमारो राजभोग सरतो तब तुरत ही महाप्रसाद लेत हतो। सो कालि रात्रि को श्रीगुसांईजीने यह आज्ञा दीनी हैं जो-राजभोग की आरति पाछें महाप्रसाद लियो कर। सो अबही आरति पाछें आयो हो। सो सुनि के श्रीनाथजी चुप करि रहे। ता पाछें गोविंददास की पीठ पर असवार होय के श्रीनाथजी तो बन कों पधारे।

ता पाछें उत्थापन को समय भयो तब श्रीगुसांईजी स्नान करि कें श्रीगिरिराज उपर जाय के संखनाद कराये। ता पाछे मंदिर में पधारे तब गडुवा भरन लागे। तब

श्रीनाथजीने श्रीगुसांईजी सों कही जो– तुमने गोविंददास को राजभोग आरति भये पाछे प्रसाद लेवेकी आज्ञा दीनी है, सो मोकों आज बन में खेलवे कों अवार भई। सो तीन बेर तो जगमोहन में आय के फिरि गयो। ता पाछें कितनीक बेर लों जगमोहन में ठाड़ो रह्यो। जब गोविंददास प्रसाद ले के आयो तब याकी पीठ पर असवार होय के खेलन कों गयो। तातें याकों आज्ञा दीजो जो–जा भाँति नित्य प्रसाद लेत है तैसे ही लियो करे।

ता पाछे उत्थापन भाग धरे। सो भोग धरि के अपरस ही में श्रीगुसांईजी नीचे पधारे, पाछे तुरत ही गोविंददास को नीचे बुलाये। तब गोविंददासने आयके श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि। तब श्रीगुसांइजी गोविंददासकों देखि के मुसिकाने।

पाछे गोविंददास सों कह्यो जो– गोविंददास! तुम नित्य प्रसाद लेत हो तेसेही ताही भाँति सों प्रसाद लेवो करो, तुम कों कछु दोष नांही है। तुम कों प्रसाद लेत अवार भई तासों श्रीनाथजी कों गेल देखनी परी। तब गोविंददासने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि कें कही जो–आज्ञा।

ता पाछें श्रीगुसांइजी फेरि श्रीगिरिराज पें पधार के श्रीनाथजी को भोग सरायो। ता पाछें आरती करि कें अनोसर कराये।

सो वे गोविंददास श्रीनाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय अंतरंगी सखा हुते।

वार्ता प्रसंग-१२

और एक समे गोविंददास जसोदा घाट उपर बैठे हते। तहां प्रातःकाल को समो हतो सो गोविंददासनें भैरव राग अलाप्यो। सो गोविंददास को गरो बहोत आछो हतो। और आप गावत ही बहोत आछें हते। सो भैरव राग एसो जाम्यो जो कछु कहिवे में नांही आवे।

सो एक म्लेच्छ चल्यो जात हुतो सो वानें गोविंददास को अलाप सुनि के माथो धुन्यो। और कह्यो जो-वाह वाह! कैसा भैरव अलाप्या है।

जो एसें वा म्लेच्छने कह्यो। सो वा म्लेच्छ की बात गोविंददासने सुनी। तब सुनिके गोविंददासने कह्यो जो-अरे! राग तो छी गयो। (और) कह्यो जो- म्लेच्छने सरायो है, सो राग श्रीगोवर्द्धननाथजी के आगे कैसे गाऊं? राग तो छी गयो। सो ता दिनतें गोविंददासने भैरव राग में कोई पद कियो नांही। जो वे गोविंददास एसे टेक के कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग-१३

और एक समे गोविंददास जसोदा घाट उपर बैठे हते। सो कोउ जल भरिवे को आवतो तासों बतरावते। और अपने हृदय विषे भगवदभाव, तातें जो चतुर होय तासों टोक करते।

सो एक दिन गोविंददास बैठे हते तहां एक बैरागी आय के बेठ्यो और गावन लाग्यो। सो कहूं तो सुर, कहूं ताल,

कहूं अक्षर कहूं राग। तब गोविंददासने सुनिके वा वैरागी सों कह्यो जो–अरे वैरागी! तू मति गावे। गायवे को खराब मति करें, न तो तेरो सुर सुद्ध, न तेरो राग सुद्ध, न तेरो गायवे को ठिकानो। एसे काहेकों गावत हैं? तो पें गायवो न आवे तो मति गावें।

तब उन वैरागीने कह्यो जो– हों तो अपने राम कों रिझावत हूं। मोकों गायवो नांही आवे तो कहा भयो? मेरे राग सों मेरो राम तो रिझत हैं।

तब गोविंददासने कही जो– तेरो राम कछु मूरख नांही जो तेरे गायवे पें रिझेगो, तातें तू मति गावे। तब वे वैरागी चूप करि रह्यो।

जो उन गोविंददास उपर एसी कृपा हती जो सबसों निशंक बोलते। वे गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–१४

और वे गोविंददास पाग आछी बांधते। सो एक दिन महावनतें श्रीगोकुल आवत हते। सो मारग में काहू व्रजवासीने माथेपेंते पाग उतार लीनी। तब तासों गोविंददासने कही जो– सारे! सोलह टूक हैं समारि लीजो, हों सकारे तेरे घर आय के ले जांउगो। पाछे वह व्रजवासी पावन पड़ि के गोविंददास कों पाग दे गयो।

सो वे गोविंददास एसे भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग-१५

और गोविंददास महावन में महावन के टीलन पर एक समे कीरतन करत हते। सो तहां श्रीगोकुलनाथजी कीर्तन सुनिवे कों आवते। तब आपने अपने खवास सों कही जो- सावधान रहियो। जब श्रीगुसांईजी भोजन करिवे कों पधारे (तब) समें होय तब तू मोकों बुलाय लीजो।

सो भीतर राजभोग आवते ता समय आप तहां पधारते, और इहां सावधान मनुष्य जो बेठार्यो हतो सो जब समो होय तब बुलावन कों आवतो, एसे नित्य करते।

सो उहां एक दिन जो मनुष्य रहतो सो कछु काम कों गयो हतो, सो जब श्रीगुसांईजी भोजन को पधारन लागे तब सब बेटान कों बुलाये, तब तहां श्रीवल्लभ नांही हते। तब आप श्रीगुसांईजी कहे जो- महावन की ओर जाउ, तहां गोविंद-दास कीर्तन करत हैं, तहांते श्रीवल्लभ कों बुलायके ले आवो।

ता पाछें मनुष्य दोरे, सो तहां ते श्रीगोकुलनाथजी कों ले आये। तब श्रीगुसांईजी भोजन कों पधारे। सो गोविंद-दास गावत आछो हते ताते श्रीगोकुलनाथजी सुनिवे कों जाते। सो वे गोविंददास एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग-१६

और एक दिन श्रीगुसांईजी मथुराजी में केशोरायजी के दर्शन कों पधारे, जो साथ गोविंददास हू हते। सो उहां केशो-रायजी को शृंगार बहुत ही भारी भयो हतो, सो जरी को वागा, चीरा, ताके उपर जरी की ओढ़नी उढ़ाये।

सो श्रीगुसांईजी तो केशोरायजी के (निज) मंदिर में ठाडे भये और गोविंददास द्वार सों लागे दरसन करत हते। (सो) बागा जरी को ताके उपर ओढ़नी जरी की ओढ़ें देखि कें गोविन्ददासने केशोरायजी सों कह्यो जो–महाराज! नीके तो हो?

तब श्रीगुसांईजी गोविन्ददास की ओर देखि के मुसिक्याये। ता पाछें श्रीगुसांईजी तो केशोरायजी के दरशन करि कें बाहिर आये, तब श्रीगुसांईजी गोविन्ददास सों कहे जो– गोविंददास! एसें न कहिये।

तब गोविंददासने कही जो– महाराज! उष्णकाल के तो दिन और तेसी गरमी पडे, और जरीन को बागा उपर जरीन की ओढ़नी उढाई है, जब कहा कहूं? तब श्रीगुसांईजी मुसिक्याय के चुप होय रहे।

सो वे गोविंददास एसें कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–१७

और एक समे गोविंददासकी बेटी आंतरी तें आई। जो वह थोरीसी रही। परि गोविंददासनें कबहू वासों संभाषनहू न कर्यो, जो कानबाई गोविंददास की बहेन हती ताने कही जो–गोविंददास! तू कबहू बेटी सों बोलत ही नांही, कबहू कछू कहेत ही नांही, योहूं न पूछे जो–तू कब आई है, सो यह कहा?

तब गोविंददासने कानबाई सों कही जो– कन्हीयां! मन तो एक हैं। सो श्रीठाकुरजी में लगाउं के बेटी में लगाउं? तब कान्हबाई सुनि के चुप होय रही।

पाछें कितनेक दिन रहिके जब गोविंददास की बेटी आंतरी कों चली, तब कान्हबाई वाकों बहूबेटिन के पास ले गई। तब बहुबेटीननें गोविंददास की बेटी जानि कें कछु चोली साडी लहेंगा श्रीपारवती वहूजीने दियो। और घरनतें औरन ने हू थोरो थोरो दिनो।

ता पाछें बहूबेटीन सों विदा होय के गोविंददास की बेटी चली। ता पाछे गोविंददास जब घर आये तब कान्ह-बाईने कही जो- गोविंददास! बेटी तो चली गई। तब गोविंददासने कही जो-काहूने कछू दीनो? तब कान्हबाइने कही जो- बहूबेटीनने साडी चोली दीनी हैं।

तब तो यह बात सुनि कें गोविंददास बेटी के पाछे दोरे, सो कोस एक ऊपर जाय पहोंचे। तब बेटीसों गोविंद-दासने कही जो- तोकों बहूबेटीनने जो कछू दीनों है, सो फेरि दे आउं, याके लियेतें आपुनो बुरो होयगो।

तब बेटी जो लाई हती सो सब फेरि दे आई, ता पाछें कान्हबाई सों आय के गोविंददासने कह्यो जो- कन्हीयां! तेनें घरसों क्यों न दीनो? एसे न करिये। तब कान्हबाई सुनिके चुप होय रहि।

सो वे गोविंददास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

—oo—

रूपा पोलिया आदि के जगविख्यात दो तीन प्रसंग अन्य प्राचीन प्रतियें में प्राप्त होने परभी इस प्रति में न होने से एवं स्थल संकोच के कारण दिया गया नहि है। उनका सम्पूर्ण विवरण 'पू. भक्तकवि' नामक ग्रन्थमें दिया जायगा.
—सम्पादक.

(७) चत्रभुजदास

अब श्रीगुसांईजी के सेवक चत्रभुजदास; कुंभनदासजी के बेटा, जिन के पद अष्टछाप में गाइयत है. तिनकी वार्ता–

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश–

ये चत्रभुजदासजी लीला में श्रीठाकुरजी के 'विशाल' सखा को आधिदैविक मूल प्राकट्य हैं। सो दिवस की लीला में तो ये स्वरुप 'विशाल' सखा हैं, और रात्रि की लीला में 'विमला' सखी हैं।

वार्ता प्रसंग–१

सो वे चत्रभुजदास जमुनावता में कुंभनदासजी के यहां जन्मे। सो कुंभनदासजी के प्रथम पांच बेटा हुते, तिनको मन लौकिक में बहोत आसक्त देखि के कुंभनदासजी के मनमें बहुत ही दुःख भयो। और मन में बिचारे जो– मेरे कोउ एसो पुत्र न भयो जातें हों अपने मन को भेद कहों।

पाछें कुंभनदासजीने पांचो बेटान कों न्यारे कर दिये। और कुंभनदासजी की बहू श्रीआचार्यजी महाप्रभु की सेवक हती, और एक बेटी ही सोउ परम भगवदीय हती, सो वह बेटी हू श्रीआचार्यजी महाप्रभुनकी सेवक हती। ब्याह होत ही याको पुरुष तो मरि गयो। तातें वह बेटी हू

(भतीजी ?) कुंभनदासजी के घर रहेती। सो तीनों जने जमुनावते गाम में रहतें।

ता पाछें एक बेटा कुंभनदासजी के और भयो। ताको नाम कुंभनदासजीने कृष्णदास धर्‍यो। सो कृष्णदास बडे भये। तब श्रीनाथजी की गायन की सेवा करतें। और कीर्तन कोई न आवते। सो कृष्णदास नें श्रीनाथजी की गाय बचाई, और आपु नहार के सन्मुख होयके अपनो सरीर दियो सो उनकी वार्ता में प्रसिद्ध है।

परि कुंभनदासजी के मनमें यह मनोरथ जो- कोई एसो पुत्र न भयो। जासों मैं अपने मन को भाव सब कहों, और सब भगवद्वार्ता करों। तासों कुंभनदासजी उदास रहते।

ता पाछे एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी ने परासोली में कुंभनदास सों पूंछी जो- कुंभना! तु उदास क्यों है? तब कुंभनदासने कही महाराज! सत्संग नांहि हैं। फेरि श्रीगोवर्द्धननाथजीने मुसिक्याय के कह्यो जो- अरे कुंभना! सत्संग को फल जो "मैं," सो तो तेरे पाछे पाछे डोलत हों, तोहू तोको सत्संग की चाहना है?

तब कुंभनदासने कही जो-महाराज! भगवदीयन के संग विना जीव आपके स्वरूपानंद को कैसे जाने? आप के स्वरूप में रह्यो जो- आनंद, सोतो भगवदीय हू जानत हैं, और जानत नाहीं। तातें भगवदीयन के संग विना आपके स्वरूप में मन उरझत नाहीं है।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने हँसिके आज्ञा करि जो- कुंभना ! तू धन्य है, जा, मैंनें तोकों सत्संग के लिये भगवदीय पुत्र दियो ।

तो हू कुंभनदासजी यह विचारि के उदास रहते जो कब पुत्र होयगो, फेरि कबतो वो बडो होयगो ? और न जाने वो कौनसे भाव में मगन रहेगो ? एसे करत करत पुत्र होयवे को फेर समय भयो। सो कुंभनदासजी की स्त्री को फेर गर्भ-स्थिति भई ।

सो एक दिन श्रीगोवर्द्धननाथजीने आय के श्रीमुखतें कुंभनदासजी सों कही जो- कुंभनदास ! तू मेरे संग चल । तब कुंभनदासजी श्रीगोवर्द्धननाथजी के संग चले, सो एक व्रज-भक्त के घरमें श्रीनाथजी पधारें। ये व्रजभक्त दहीं माखन की मथनियां दोऊ ऊंचे छींका पें धरिकें आपु कछु कार्य कों गई हती । सो ताही समें श्रीगोवर्द्धननाथजी तहां आय के आप एक हाथ तें दहींकी मथनियां लई। तबही श्रीगोवर्द्धननाथजी को पीतांबर खुल गयो, सो भूमि में गिरन लाग्यो । सो श्रीगोवर्द्धन-नाथजीनें आप तत्काल दोय भुजा और नीचे प्रकट करिके पीतांबर थांभ्यो । और दोय भुजान में माखन दहीं की मथ-नियां लिये रहे, ता समें चत्रभुज स्वरूप को कुंभनदासजी कों दरशन भयो ।

ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी तो सखान सहित दूध दहीं माखन सब आरोगे, बच्यो सो सब बनचरन कों खवाय

दियो। ताही समें वह गोपिका अपने घर में दौरि आई, सो उहां देखे तो-दहीं माखन श्रीठाकुरजी आरोगत हैं। तब वह गोपिका श्रीठाकुरजी कों पकरिवे कों दोरी। तब सखा तो सब भाजि गये। तब कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाड़े रहि गये।

सो जब वह गोपिका निकट आई तब श्रीगोवर्द्धननाथजी अपने श्रीमुख में दूध भरिके वा गोपिका के मुख उपर डारे, सो वाके सगरे मुख में नेत्रन में दूध भरि गयो। सो वह ठाडी होय रही।

तब कुंभनदासजी और श्रीगोवर्द्धननाथजी वहां तें भाजे। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी आप तो अपने मंदिर में पधारे, और कुंभनदासजी जमनावते गाममें अपने घर गये। ता समें मारग में जातें यह पद कुंभनदासजीने गायो। राग सारंग-

आनि पाये हो हरि नीकें।
चोरि २ दधि माखन खायो गिरधर दिन प्रतिही के॥
रोक्यो भवन द्वार व्रजसुन्दरि नुपुर मोर अचानकही के।
अब कैसें जईयत घर अपनेमें भाजन फोरि दुध दधि पीके॥
कुंभनदास प्रभु भके परे फंद जानन देहों भावतें जीयके।
भरि गंडूप छींट दे नेंननमें गिरिधर धाय चले दे कीके॥

यह कीर्तन कुंभनदासजी करत चले। चत्रभुज स्वरूप को जो दर्शन भयो हतो, सो कुंभनदासजी ताके भाव में रस सों भरे अपने आप घर आये। ताही समें कुंभनदासजी की स्त्रीके

बेटा भयो। सो सुनिके कुंभनदासजीने कह्यो जो– या लरिका को नाम चतुरभुजदास हैं।

पाछे उत्थापन के समें श्रीगुसांईजी के पास आयके कुंभनदासजीने दंडवत कियो। तब श्रीगुसांईजी मुसिक्याय के कुंभनदासजी सों पूछे जो– चत्रभुजदास आछे हैं? तब कुंभनदासजीने बिनती कीनी जो– महाराज! जाके उपर आप एसी कृपा करत हो सो तो सदा ही आछे हैं। ताको सब ठोर कल्यान ही हैं।

तब श्रीगुसांईजी कुंभनदासजी सों कहे जो– या पुत्र सों तुमकों बहोत ही सुख होयगो। सो तुमारे मनमें जैसो मनोरथ हतो ताही भांति सों तुमारे मनोरथ सब सिद्ध भये हैं।

पाछे जब पिंडरू होय चुक्यो, तब कुंभनदासजी आछे सुद्धि होय पुत्रको स्नान करायो। और वाकों अपनी गोदिमें ले, श्रीगुसांईजी कों आय के कुंभनदासजीने दंडवत करी। पाछे चत्रभुजदास को मस्तक श्रीगुसांईजी के चरणकमल सों परस कराय के कुंभनदासजीने विनती करी जो– महाराज! कृपा करि के चत्रभुजदास को नाम सुनाईये। तब श्रीगुसांईजी आप मुसिक्याय के कहे जो–राजभोग सरे पाछें नाम निवेदन दोइ संग करवावेंगे।

यह सुनि के चत्रभुजदास ताही समे किलक के हसे। तब कुंभनदासजी हुं मन में बहोत प्रसन्न भये। पाछे राजभोग सरवे को समय भयो तब माला बोली। तब श्रीगुसांईजी

भीतरियान कों आज्ञा दिनी जो– तुम बाहिर जावो । तब सब भीतरिया, पोरिया सब बाहिर जाय बैठें । ता समें मंदिरमें श्रीगोवर्द्धननाथजी और कुंभनदासजी (रहे)। ता समय श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास को नाम सुनाय, पाछे तुलसी ले के कुंभनदास तें कहे, जो– चत्रभुजदास कों (आगे) लावो। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के सन्मुख चत्रभुजदास कों ब्रह्मसंबंध करवायो। पाछें तुलसी श्रीगोवर्द्धननाथजीके चरणकमल पर समर्पे । जो ताही समय सगरी लीला की स्फुरति चत्रभुजदास कों भई, और श्रीगुसांईजी को स्वरूप हृदयारूढ भयो । तब ताही समें चत्रभुजदासने यह कीर्तन गायो । सो पद–

राग सारंग—

सेवक की सुखरास सदा श्रीवल्लभराज कुमार ।

× × × ×

यह कीर्तन चत्रभुजदास ने गायो, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये । और कुंभनदासजी हू प्रसन्न भये । अपने मनमें आनंद पाये, और कहे जो मोकों जैसो मनोरथ हतो तेसेही भगवदीय को संग मिल्यो ।

ता पाछे मंदिरके किंवाड़ खुले । सब लोगन कों दरसन भये । पाछे श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धननाथजी की आरती उतारि के, श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनोसर करवाये । और माला बीडा लेके श्रीगुसांईजी परवत तें नीचे उतरि, अपनी बैठक में पधारे । तहां सब वैष्णव हू आये । तहां कुंभनदासजी हू चत्र-

भुजदास कों लेके आये । तब सबन के आगे चत्रभुजदास मुग्ध बालक होय चुप करि रहे । ता पाछें श्रीगुसांईजी सब वैष्णवन कों विदा किये ।

पाछे आप श्रीगुसांईजी भोजन करिवे को पधारे । ता पाछे श्रीगुसांईजी आप कृपा करि के अपने श्रीहस्त सों कुंभनदास, चत्रभुजदास कों अपनी जूठन की पातर धरी, सो उन दोउ जनेंन नें महाप्रसाद लियो ।

पाछे श्रीगुसांईजी गादी उपर विराजे, सो आप बीडा आरोगत हते, तब कुंभनदासजी, चत्रभुजदासजी आचमन करि के श्रीगुसांईजी के पास आये । तब श्रीगुसांईजी कृपा करिके दोउन कों न्यारो २ उगार दिये, सो कुंभनदास चत्रभुजदासने लियो । ता पाछे श्रीगुसांईजी विसराम करन कों पधारे । तब कुंभनदासजी चत्रभुजदास कों गोद में ले के श्रीगुसांईजी कों दंडवत करि के जमनावते गाम में अपने घर में आये ।

सो जब एकांत में कुंभनदासजी बैठे होंई तब चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी की वार्ता लीला को भाव और श्रीआचार्यजी, श्रीगुसांईजी की वारता करें । तब दोउ जने परस्पर आनंद को पावे । और जब कोउ तीसरो जनो आवे तब चत्रभुजदास बालक की नाईं मुग्ध होय रहें । और जा दिनतें चत्रभुजदास नाम समर्पन पाये हते, ता दिन तें श्रीगोवर्द्धननाथजी के

दरशन किये बिना चत्रभुजदास दूध हु न पीवते । एसे करत करत वरस पांच के भये ।

सो चत्रभुजदास नेम सों दरशन करते । सो वे चत्रभुजदास एसे भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग–२

और एक दिन श्रीनाथजीने कह्यो जो– चतुरभुजदास ! आज तू मेरे संग गाय चरावन कों चलियो । तव चत्रभुजदास राजभोग आरती के दरसन करि के आप गोविंदकुंड ऊपर जाय के वेठे रहे । तब मंदिर में कुंभनदासजीने सबनसों पूंछी जो– चत्रभुजदास आज कहां गयो । तब सबन नें कह्यो जो– दरसन में तो देखे हैं, और पाछे तो हमने देखे नांहीं ।

तब कुंभनदासजी अपने मनमें विचार करन लागे जो– चत्रभुजदास कहां गयो ? पाछें श्रीगुसांईजी (जब) श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनोसर कराय के अपनी बैठक में बिराजें तब कुंभनदासजीने आय के दंडवत कीनी । जब श्रीगुसांईजीने कुंभनदास सों कह्यो जो–कुंभनदास ! तुम उदास क्यों हो ? तब कुंभनदासजीने कह्यो जो– महाराज ! चत्रभुजदास आज दरसन में तो हतो सो अब नांही देखियत है, सो कहां गयो ?

तब श्रीगुसांईजीने कुंभनदास सों कह्यो–जो–तुम आज पाछे चत्रभुजदास की चिंता मति करो । श्रीगोवर्द्धननाथजी वाकों आज्ञा किये हैं जो–तू मेरे संग गाय चरावन को चलि हों । तातें चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरसन करिके तत्काल गोविंदकुंड के ऊपर जाय के बैठयो है ।

सो अब श्रीगोवर्द्धननाथजी गायन कों सखान संग लेके बन में पधारत हैं, श्रीबलदेवजी सखान सहित। सो अब कोई घडी एक में श्यामढांक को पधारेंगे। जो तुमकों जानो होय तो सूधे श्यामढांक कों जाव। तहां श्रीगोवर्द्धननाथजी, चत्रभुजदास समाज सहित मिलेंगे।

यह सुनि के कुंभनदासजी तहां ते चले, सो सूधे श्यामढांक कों आये। तहां देखे तो—श्रीठाकुरजी श्रीबलदेवजी सहित बिराजत हैं। सो सखा तो सब बैठें हैं, और चहुं दिस गाय सब चरत हैं।

तब कुंभनदासजी ने जाय के दंडवत कीनी। तव श्रीगोवर्द्धननाथजी ने कुंभनदासजी तें हसि के कह्यो जो—कुंभनदास! आवो बैठो। तब कुंभनदासजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत कीनी। फेर बिनती कीनी जो— महाराज! आज चत्रभुजदास पर बड़ी कृपा करी। तातें याके परम भाग्य हैं। यह सुनि कें श्रीगोवर्द्धननाथजी चुप होय रहे। सो या भांति श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास के उपर कृपा करन लागे।

वार्ता प्रसंग—३

और एक समें श्रीगोवर्द्धननाथजी व्रजवासीन के घर दूध दहीं माखन की चोरी करन कों पधारे। तब चत्रभुजदास कों यह आज्ञा करें जो— कुंभनाके! तू हू चलियो। सो जाय के एक व्रजबासी के घर में पैठे। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी दूध दहीं माखन सब खाये।

ता पाछे वा ब्रजवासी की बेटीने चत्रभुजदास कों देखे। श्रीठाकुरजी तो वासों दीसे नहीं। तब वह अपने बाप कों पुकारी, जो– या कुंभना के बेटाने हमारो दूध, दहीं, माखन सब खायो है। तब यह बात सुनिके दस पांच ब्रजवासी दोरि-आये। तब श्रीठाकुरजी तो सखान सहित भाजि गये, वेतो चोरी की रीत जानत हते। और चत्रभुजदास तो प्रथमही इनके साथ आये हते। सो ये तो कछु जानत नांही। तातें उहां ठाड़े होय रहें। सो सब ब्रजवासी आय के चत्रभुजदास को पकरिके भलिभांति सों मार्यो। पाछे वे ब्रजबासी चत्रभुज-दासतें कहे जो– आज पाछे तू कबहू चोरी करन कों पेठेगो तो हम तेरे बाप कुंभना कों पकरि लावेंगे।

एसे कहि के ब्रजवासीनने चत्रभुजदासकों छोड़ि दियो। तब चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के पास आये। तब श्रीगोवर्द्धननाथजी सखान सहित बहोत ही हँसे। तब चत्रभुजदासने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो जो– महाराज! दूध, दहीं, माखन तो सखान सहित आप आरोगे, और मार मोकों खवाई?

तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो– तैंने हू दूध, दहीं, माखन क्यों न खायो? और जहां मैं भाज्यो और सब सखा भाजे, तहां तूहू क्यों न भाज्यो? तू क्यों मार खाय रह्यो। तब चत्रभुजदास सुनिकर चुप होय रहे। सो वे चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के तथा श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–४

और एक समे कुंभनदासजी और चत्रभुजदास 'जमुनावता' गाममें अपने घरमें बैठें हुते, सो अर्द्धरात्रि के समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के मंदिर में दीवा बरत देख्यो। तब कुंभनदासजीने चत्रभुजदास सों यह सुनाय के कही जो–'वह देखो बरत झरोखन दीपक हरि पोढें ऊंची चित्रसारी'।

सो कुंभनदासजी इतनो कहि के चुप होय रहे। तब यह सुनिके चत्रभुजदासनें कह्यो जो–'सुंदर बदन निहारन कारन राखे हैं बहुत जतन करि प्यारी'।

यह सुनिके कुंभनदासजी बहोत प्रसन्न भये। और पूंछ्यो जो–तोकों या लीला को अनुभव भयो? तब चत्रभुजदासने कुंभनदासजीतें कह्यो जो– श्रीगुसांईजी की कृपातें और श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की कांन ते यह लीला को अनुभव श्रीगोवर्द्धननाथजी आप जनावत हैं।

तब कुंभनदासजी यह सुनिके आपु बहोत प्रसन्न भये। और यह कीर्तन संपूर्ण करिके भाव सहित चत्रभुजदास कों सुनायो। और चत्रभुजदास सों कुंभनदासजीने कह्यो जो–श्रीगोवर्द्धननाथजी आप तोसों छिपाये नाहीं तो मैंहू तोसो न छिपाऊंगो। ता दिन ते कुंभनदासजी रहस्य–लीला वार्ता सब चत्रभुजदास सों करते। कछु गोप्य न राखते।

सो वे कुंभनदासजी, चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के एसे अंतरंगी सखा हते, कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–६

और एक दिवस श्रीआचार्यजी महाप्रभुनको जनम दिवस आयो। तब श्रीगुसांईजी श्रीजीद्वार हते। सो नाना प्रकार की सामग्री सिंगार सब जन्माष्टमी की रीति करि।

ता समये श्रीगोवर्द्धननाथजी के सिंगार के दरशन करिके चत्रभुजदासने यह कीर्तन सुनायो सो पद–

राग विलावल। 'सुभग सिंगार निरखि मोहनको ले दरपन कर पिय हिं दिखावें'।

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये। ता पाछे श्रीगुसांईजी राजभोग धरिके गोविंदकुंडपे संध्यावंदन करिवे कों पधारे। तब चत्रभुजदास और एक वैष्णव श्रीगुसांईजी के साथ हते। तब श्रीगुसांईजी सों वा वैष्णव ने पूंछयो जो– महाराज! आप तो नित्य ही भांति २ सों सिंगार करत हो, दरसन करावत हो, दर्पन दिखावत हो। और चत्रभुजदासने तो आज कीर्तन में कह्यो जो– 'आज की छबि कछु कहत न आवे' जो– महाराज! ताको कारन कहा?

तब श्रीगुसांईजीने आप श्रीमुखतें वा वैष्णव सों कह्यो, जो– तुम यह बात चत्रभुजदास ही तें पूंछो। तब वा वैष्णवने चत्रभुजदास सों पूंछयो, जो– तुम आज यह कीर्तन किये, ताको कारण कहा?

तब चत्रभुजदासने वा वैष्णव सों कह्यो जो– सुनो। ता पाछें चत्रभुजदासने तहां गोबिंदकुंड ऊपर दूसरो पद गायो। सो पद–

राग बिलावल। 'माईरी आज और काल और नित्यप्रति छिनु और और देखिये रसिक गिरिराजधरण'।

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, तब श्रीगुसांईजी आप चत्रभुजदास की ओर देखिके मुसिकाये ता पाछें वह वैष्णव कों और ही संदेह भयो। जो– चत्रभुजदासजीने दोय कीर्तन किये ताको भेद मैंने न जान्यो।

पाछें श्रीगुसांईजी आप संध्यावंदन करि चुके तब राजभोग को समय भयो हतो सो श्रीगुसांईजी तो मंदिर में पधारे। ता पाछें श्रीगोवर्द्धननाथजीको राजभोग सरायके राजभोग आरति करिके श्रीगोवर्द्धन परवत तें नीचे उतरे। पाछें बेठक में आय के श्रीगुसांईजी आप गादी उपर बिराजे। पाछें सब वैष्णवन कों बिदा करिके श्रीगुसांईजी आपु भोजन कों पधारे। सो भोजन करिके आचमन लेके श्रीगुसांईजी आप गादी ऊपर बिराजे, बीडा आरोगत हते। तब सब वैष्णव तो अपने २ डेरा गये हते, और श्रीगुसांईजीसों वा वैष्णवने विनती करी जो–महाराज! आज चत्रभुजदासने दोय कीर्तन सिंगार के समे किये तिनको भेद मैं न समझ्यो, जो– आप कृपा करिके मेरो संदेह दूरि करो।

तब श्रीगुसांईजी आप वा वैष्णव सों कहे जो– आज श्रीआचा-

यजी महाप्रभुन को जनम उत्सव हतो। तातें आज श्रीस्वामिनीजी अपने मनोरथ की सामग्री, सिंगार, सब अपने हाथ सों धराये हैं। तातें श्रीगोवर्द्धननाथजी आप बहोत ही प्रसन्न भये हैं। यातें चत्रभुजदासने कह्यो जो–"आज और काल और, जो आज की छवि कछु कहत न आवे।"

और गोविंदकुंड पें दूसरो कीर्तन कियो, ताको भाव ये है, जो– नित्य जितने व्रजभक्त हैं सो अपने २ मनोरथ की सामग्री धरावत हैं। अपने २ वस्त्र आभूषन धरावत हैं। तातें आज और, सो क्षण २ में अनेक व्रजभक्तन को सनमान करत हैं। सो जैसो व्रजभक्तन को भाव हैं, जो उनके मनोरथ हैं, तैसे श्रीगोवर्द्धननाथजी आपहु विनके मनोरथ सिद्ध करत हैं। ताते क्षण क्षण में श्रीगोवर्द्धननाथजी की सोभा होत हैं।

जा या भांति सों श्रीगुसांईजी आप वा वैष्णव सों कहे। तब वा वैष्णव को संदेह दूरि भयो। तब वा वैष्णवने अपने मनमें कही, जो– या चत्रभुजदासको बडो भाग्य है। जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी सब लीला सहित दरशन देत हैं। सो वे चत्रभुजदास श्रीगुसांईजीके ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–६

और एक समय 'आन्योर' में रासधारि आये हते। सो श्रीगुसांईजी तो श्रीगोकुल हते, और श्रीगिरधरजी, श्रीगोविंदरायजी, श्रीबालकृष्णजी, श्रीगोकुलनाथजी और श्रीरघुनाथजी ए पांचो बालक श्रीजीद्वार हते। और श्रीजदुनाथजी, श्री-

गोकुलमें हे । और श्रीघनश्यामजी को प्राकट्य भयो न हतो ।

सो ए रासधारी श्रीगोकुलनाथजी के पास आए । और बहोत विनती कीनी जो– आप पधारो तो हम रास करें । तब श्रीगोकुलनाथजी नें रासधारीन तें कह्यो जो– मैं श्रीगिरिधरजी तें पूंछि के कहुंगो ।

ता पाछे जब श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेन आरती होय चुकी और अनोसर भये, पाछें श्रीगोकुलनाथजी श्रीगिरिधरजी सों पूंछ्यो जो– तुम कहो तो मैं रास कराउं, और हू बालकन को मन हैं, और तुम हू रास में आओ, तो आछो है ।

तब श्रीगिरिधरजी नें कह्यो जो–इहां श्रीगुसांईजी तो है नांही, होतें तो उनतें पूछ के रास करावते । तातें मति (कहुं) मेरे ऊपर श्रीगुसांईजी आप खीजें तो । तातें तुमारो मन होय तो परासोली चंद्रसरोवर के ऊपर रास करावो । और मेरो आवनो तो न होयगो ।

तब श्रीगोकुलनाथजी आदि दे के सब बालक रासधारिन कों ले के संग परासोली चंद्रसरोवर पें आये । सो श्रीगोकुलनाथजी चत्रभुजदास हू को अपने संग ले गये हते । और श्रीगिरिधरजी तो आप श्रीगुसांईजी की बैठक में सेन कर रहे हते ।

सो जब प्रहर एक रात्रि गई तब चंद्र सरोवर पें रास को मंडान भयो । चैत्र सुदी पूर्णमासि को दिन हुतो । सो जब तीन प्रहर रात्रि गई और एक प्रहर रात्रि रही, तब श्रीगोकुल-

नाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो- चत्रभुजदास ! कछु गावो। तव चत्रभुजदासने कह्यो, जो-मैं तो श्रीगोवर्द्धननाथजीकों रास करत देखों तब गाऊं, जो रासके करनवारे तो श्रीगिरधरजी के निकट हैं।

तव श्रीगोकुलनाथजीने चत्रभुजदास सों कही जो- अव कहा करिये? रात्रि तो प्रहर एक बाकी रही है, और अव जो बुलायवे जइये तो जात आवत ही में भोर होय जाय, फेर उनके मनमें आवे तो वे आवें, नहीं तो न भी आवें। जो अव कहा करिये?

तव चत्रभुजदासने कह्यो जो-चिंता मति करो। कोई एक घड़ी में श्रीगोवर्द्धननाथजी और श्रीगिरधरजी इहां पधारत हैं।

ताही समे श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिधरजी की बेठक में श्रीगिरधरजी की पास पधारे, और उनसों कह्यो जो-परासोली चंदसरोवर ऊपर चलें, जो उहां रास करिये। तब श्रीगिरिधरजी तहां तें अकेले ही चले, सो दोऊ जने चंदसरोवर ऊपर आये। तब रासधारीनकों श्रीगिरधरजी के दर्शन भये, और श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन न भये, और सब बालकनकों दर्शन भये। पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी अपने व्रजभक्तनके संग रासलीला करी, सो रात्रि हू बढ़ि गई, और चंद्रमा हू और भांति सों सोभा देन लाग्यो।

ता समे चत्रभुजदास ने यह कीर्तन गायो। सो पद-

राग केदारो। चरचरी (ताल)-

'अद्भुत नट भेख धरे जमुनातट स्यामसुंदर, गुननिधान, गिरिवरधर रास रंग राचे।'

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, तब सुनिके श्री-गोवर्द्धननाथजी आज्ञा करे जो – चत्रभुजदास ! यह बिरियां कौन है ? तब चत्रभुजदासने यह दूसरो पद गायो। सो पद–

राग भैरव।

'प्यारी ग्रीवा पें भुज मेलि निरतत पिय सुजान०।'

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो, सो सुनिके श्रीगोवर्द्ध-ननाथजी बहुत प्रसन्न भये, और चत्रभुजदास के सामने मुसि-क्याए। तब चत्रभुजदासने जान्यो जो–धन्य मेरो भाग्य है।

सो एसे २ बहोत कीर्तन चत्रभुजदासने रास के गाये। ता पाछे रात्रि घड़ी दोय रही तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मंदिर में पधारे।

पाछे श्रीगिरधरजी चत्रभुजदास कों संग लेके गोपालपुर आये। ता पाछे रासधारीन कों श्रीगोकुलनाथजीने कछु द्रव्य देके विदा किये, पाछे सब बालकन सहित आप गोपालपुर आये। ता पाछे कछुक दिन रहिके श्रीगोकुलनाथजी श्रीगोकुल पधारे।

पाछे जब श्रीगुसांईजी श्रीगोकुल तें श्रीजीद्वार पधारे, तब श्रीगिरधरजीने रास के समाचार सब कहे, श्रीगुसांईजी सों। तब श्रीगुसांईजी आप आज्ञा किये जो – आपुन कों श्रीगोव-र्द्धननाथजी सों हठ करनो योग्य नांही। श्रीगोवर्द्धननाथजी कों श्रम होत है, और श्रीगोवर्द्धननाथजी तो अपनी इच्छा तें नित्य ही रास करत हैं।

सो या भांति सों श्रीगुसांईजी श्रीगिरधरजी सों कह्यो। तब सुनिके श्रीगिरधरजी चुप करि रहे। सो वे चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग–७

और एक दिन श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास सों कहे, जो- तुम 'अपछरा' कुंड ऊपर जायके रामदासजी को इहां पठाय दीजो, और तुम रामदास को पठायके कछु फूल मिले तो लेते आइयो। तब चत्रभुजदास आप अपछरा कुंड ऊपर आये, तहां इनकों रामदासजी मिले। तिनसों चत्रभुजदासने कही जो – तुम कों श्रीगुसांईजी बुलावत हैं, सो तुम बेगे जाओ।

यह सुनिके रामदासजी श्रीगुसांईजी के पास चले। सो चत्रभुजदास अकेले ही फूल बीनत २ श्रीगोवर्द्धन की कंदरा के पास आय निकसे। तहां देखे तो–श्रीगोवर्द्धननाथजी और श्रीस्वामिनीजी कंदरा में ते उनींदे पधारे हैं सो चत्रभुजदास कों ता समय एसे दरशन भये।

तब यह पद चत्रभुजदासने गायो, सो पद—

राग विभास। 'श्रीगोवर्द्धन–गिरि सघन कंदरा रेन निवास कियो पिय प्यारी०।'

यह कीर्तन श्रीगोवर्द्धननाथजी आप सुनिके आज्ञा किये जो – चत्रभुजदास! कछु और गावो। तब चत्रभुजदासने यह दूसरो कीर्तन ताही समे गायो। सो पद–

राग विलावल। 'रजनी राज कियो निकुंज नगर की रानी।'

यह कीर्तन चत्रभुजदासने गायो । पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी कों दंडवत करिके ताही समें चत्रभुजदास आनंद में फूल लेके, श्रीगुसांईजी कों आयके दंडवत करी । तब श्रीगुसांईजी कहे जो – चत्रभुजदास ! तू फूल लेन कों गयो सो अब तांई कहां रह्यो ? तब चत्रभुजदासने सब समाचार श्रीगुसांईजी सों कहे । तब श्रीगुसांईजी सुनिके चत्रभुजदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भये ।

ता दिन तें श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख तें आज्ञा किये जो – चत्रभुजदास ! जब श्रीगोवर्द्धननाथजी को शृंगार होय, ता समे तू नित्य दरसन कों आयो कर । पाछे जब श्रीगोवर्धननाथजी को शृंगार होतो तब चत्रभुजदास ठाड़े दरसन करते ।

एसी कृपा श्रीगोवर्द्धननाथजी तथा श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास के ऊपर करते । वे चत्रभुजदास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते ।

वार्ता प्रसंग–८

फेर ता पाछे चत्रभुजदास ब्याह न करते । तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो – चत्रभुजदास ! तू ब्याह कर । तब चत्रभुजदासने कही जो – महाराज ! मैं यह सुख छांडिके आपदा में क्यों पड़ूं ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने फेर आज्ञा करी जो – बेगि ब्याह कर ।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी की आज्ञा मानिके चत्रभुजदासने ब्याह करयो ।

सो कछुक दिन पाछे चत्रभुजदास की बहू मरि गई। तब चत्रभुजदास कों अटकाव (मूतक) भयो, तब वे अत्यंत विरह करिके आतुर भये। तब चत्रभुजदास के अंतःकरण की श्रीगोवर्द्धननाथजीने जानी। सो वन में चत्रभुजदास बैठे २ विरह करते, श्रीगोवर्द्धननाथजी सों प्रार्थना करते। सो कीरतन करि करिके दिन वितीत किये। ता समे चत्रभुजदासने कीर्तन गायो। सो पद–

राग भैरव। 'भोर भावतो श्रीगिरिधर देखों०।'

राग विलावल। 'श्याममुंदर प्राणप्यारे छिन जिन होउ न्यारे०।'

राग धनाश्री। 'गोपाल को मुखारविंद जिय में विचारो।'

एसे २ प्रार्थना के चत्रभुजदासने बहोत कीर्तन करि के सूतक के दिन वितीत किये। ता पाछे शुद्ध होयके श्रीनाथजी के शृंगार के दरसन चत्रभुजदासने किये। तब साष्टांग दंडवत करिके हाथ जोरिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के सामे चत्रभुजदास ठाड़े भये। तब श्रीनाथजी उनकी सामने देखिके मुसिक्याये। ता पाछे ग्वाल के, राजभोग के दरशन करिके चत्रभुजदास मन में विचारे जो – घर चलिये। तब फेर श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास सों कहे जो – चत्रभुजदास! तू दूसरो विवाह कर। तब चत्रभुजदासने कही जो – महाराज! जात में तो लरिकिनी कोई नांही है। तब श्रीगोव-

र्द्धननाथजीने चत्रभुजदास सों फेरि कह्यो जो – तू धरेजो कर। तब यह बात सुनिके चत्रभुजदास कछु बोले नांही।

ता पाछे नित्य दिन ५–७ लों आय श्रीगोवर्द्धननाथजी कहे, परंतु चत्रभुजदास के मन में यह बात न आई। तब यह बात श्रीनाथजीने सदूपांडे सों जताई, जो – तुम ढूंढिके चत्रभुजदास को धरेजो कराय देउ।

तब सदूपांडे ने चत्रभुजदास तें कही जो – श्रीगोवर्द्धननाथजीने यह आज्ञा करी है, तातें अवश्य श्रीप्रभुजी की आज्ञा करी चहिये। तब चत्रभुजदासने कही जो– वे तो मेरे पाछे परे हैं, अब कहा करें ?

ता पाछे एक मुकदम की बेटी रांड हती, सो वासों सदूपांडेने कहिके चत्रभुजदास को धरेजो करायो। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास सों हसन लागे, जो– यह देखो कुंभनदासजी सारिखे को बेटा होयके स्त्री मरि गई तोऊ दोई च्यारि महिनाहू न रह्यो गयो, सो तुरत ही धरेजो कियो, और तोहू संतोष नांही। सो या भांति सों चत्रभुजदास की हांसी श्रीगोवर्द्धननाथजी सखा सहित नित्य करते।

सो एक दिन चत्रभुजदासने हू यह सुनि श्रीगोवर्द्धननाथजी सों कह्यो जो– मोकों तो तुम नित्य एसे कहत हो, परंतु तुमहू तो घरघर व्रजवधून के संग लागे रहत हो, (और) संग डोलत हो।

यह सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी लज्या पाये। सो चत्र-भुजदास तें तो कछु बोले नांही, परि श्रीगोवर्द्धननाथजीने

श्रीगुसांईजी सों जायके कह्यो, जो- मोकों चत्रभुजदास या भांति सों कहत है। तातें तुम वाकों बरज दीजो, जो- अब एसे कबहु न कहे।

पाछे जब चत्रभुजदास मंदिर में दरसन करन कों आये, तब श्रीगुसांईजी चत्रभुजदास कों बुलायके कहे जो- तू श्रीगोवर्द्धननाथजी सों एसे क्यों कह्यो? तब चत्रभुजदासने श्रीगोवर्द्धननाथजीकी बात सब श्रीगुसांईजी के आगे कही जो-महाराज! ये मेरी नित्य हांसी करत हैं, जो एक बार मैंने हू एसे कह्यो। तब श्रीगुसांईजीने चत्रभुजदास सों कह्यो जो- आज पाछे एसे तुम मति कहियो।

ता दिनतें श्रीगोवर्द्धननाथजी कहते, परि चत्रभुजदास कछु न कहते। और श्रीनाथजी आप तो हांसी करते। एसी कृपा श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास की ऊपर करते।

सो वे चत्रभुजदास श्रीगोवर्द्धननाथजी सों एसे सानुभावता सों बात करते। तातें वे चत्रभुजदास श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-९.

और एक समय श्रीगुसांईजी आप परदेस पधारे। सो फागुन वद ७ कों श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मथुरा में श्री गुसांईजी के घर पधारे हते। तब श्रीगिरधरजी आदि सब बालक वहु बेटीनने सगरो घर, गहेना, वस्त्रादि सब श्रीगोव-

र्द्धननाथजी की भेट करि दियो। तब एक बेटीजीने सोनेकी मुदरी छिपाय राखी हती।

तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीगिरिधरजी सों कहे जो– मेरी भेट फलानी बेटी के पास है, सो तुम ले आओ। तब श्रीगिरिधरजी ने आयके कह्यो जो– अपनो घर श्रीगोवर्द्धननाथजी की भेट कर्‌यो है, तामें तें तुम कछु राख्यो है सो देहु। तब उन ने मुदरी राखी हती सो दीनी। ता पाछे सब बहू बेटी बहोत ही प्रसन्न भये। जो– हमारी सत्ता की वस्तु श्रीगोवर्द्धननाथजीने अत्यंत प्रीति सों मांगिके अंगीकार कीनी, सो अपनो बड़ो भाग्य है।

जा समे श्रीगोवर्द्धननाथजी मथुरा पधारे, ता समे चत्रभुजदास जमुनावता गाम में अपने घर हते। सो जान्यो नांही जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मथुरा पधारे हैं। सो चत्रभुजदास उत्थापन के समे श्रीनाथजी के मंदिर में आये। तब श्रीगिरिराज पर्वत की ऊपर श्रीनाथजी कों न देखें तब सबन सों पूछे जो– श्रीगोवर्द्धननाथजी आज कहां पधारे हैं? तब पोरियाने और सब सेवकनने कह्यो, जो– श्रीनाथजी तो मथुराजी पधारे हैं। यह सुनिके चत्रभुजदासके मन में बहोत विरह भयो। तब श्रीगिरिराज के ऊपर बैठिके विरह के कीर्तन करन लागे। सो पद–

राग गोरी– 'बात हिलग की कासों कहिये०।'

एसे एसे कीर्तन चत्रभुजदासने बहोत किये।

ता पाछे नृसिंह चतुर्दशी को एक दिवस बाकी रह्यो, तब तेरस के दिन संध्या आरती के समय चत्रभुजदास गिरिराज परवत के ऊपर आये, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी बिना मंदिर देख्यो न गयो। तब चत्रभुजदास के मन में अत्यंत विरह भयो। तब यह कीर्तन चत्रभुजदासने कियो। सो पद–

राग गोरी–' श्रीगोवर्द्धनवासी सांवरे लाल! तुम बिन रह्यो न जाय हो।

या भांति सों अत्यंत विरह के कीर्तन चत्रभुजदासने किये। सो प्रथम तो गायन के झुंड के दरशन चत्रभुजदास कों भये। ता पाछे सखान के मध्य श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीबलदेवजी के दरशन भये।

तब चत्रभुजदासने निकट जायके दंडवत करिके श्रीनाथजी सों विनती कीनी जो– महाराज! आप कृपा करि के मोकों श्रीगोवर्द्धन पर्वत ऊपर दरशन कब देउगे? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास सों कहे, जो– मैं काल श्रीगोवर्द्धन परवत ऊपर पधारूंगो।

एसे चत्रभुजदास कों धीरज देके श्रीनाथजी आप तो अंतर्ध्यान भये। सो चत्रभुजदासने सगरी रात्रि विरह के पद गाये।

ता पाछे प्रहर एक रात्रि गई। तब श्रीगोवर्द्धननाथजीने श्रीगिरधरजी सों जताई जो– कालि प्रात मोकों गोवर्द्धन

पर्वत के ऊपर पधरावो। जो कालि श्रीगुसांईजी उहां पधारेंगे, तातें तुम अब ढील मति करो।

पाछे श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगिरिधरजी सों कह्यो जो– श्रीगुसांईजी दोय चार दिन में पधारिवे वारे हैं, सो अपने घरमें श्रीगोवर्द्धननाथजी को दरशन श्रीगुसांईजी करें तो आछो। तातें श्रीनाथजी कों चारि दिन और राखो। तब श्रीगिरिधरजीने कह्यो, जो– तुम कहो सो तो सांच, परंतु श्रीगोवर्द्धननाथजी की इच्छा एसी है, तातें प्रातःकाल अवश्य श्रीगोवर्द्धननाथजी कों श्रीगोवर्द्धन परवत ऊपर पधरावने।

पाछे रात्रि कों सब तैयारी करि राखी। ता पाछे रात्रि घड़ी ४ रही, तब श्रीनाथजी कों जगायके मंगल भोग समर्पे। पाछे मंगला आरती करि, रथ पर श्रीगोवर्द्धननाथजी कों पधरायके सब बालक, बहू, बेटी सब संग चले। और इहां चत्रभुजदास गिरिराज परवत के ऊपर ऊंचे चढिके वारंवार देखत हैं, जो–अब श्रीगोबर्द्धननाथजी पधारेंगे। तब चत्रभुजदासने ता समय यह कीर्तन गायो–

राग सारंग–'तबतें जुग समान पल जात०।'

यह कीर्तन चत्रभुजदासने कह्यो। इतने म श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन चत्रभुजदास कों भये। ता पाछे श्रीगिरिधरजी आदि सब बालकन कों दंडवत किये। पाछे श्रीगिरिधरजीने श्रीगोवर्द्धननाथजी को शृंगार कियो और राजभोग की तैयारी होन लागी।

ता पाछे श्रीगुसांईजी आप गुजरात के परदेशतें पधारे, सो श्रीगोवर्द्धननाथजी के उत्थापन भोग को समो हतो। तब श्रीगुसांईजी आयके अपनी बैठकमें पधारे, सो श्रीगिरिधरजी आदि सब बालक आयके मिले।

ताही समय श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग की माला बोली। तब श्रीगुसांईजीने श्रीगिरिधरजी सों पूछी जो-श्रीगोवर्द्धननाथजी के इहां राजभोग की इतनी अबार काहेकों है? तब श्रीगिरधरजीने श्रीगुसांईजी सों कह्यो, जो- आज श्रीगोवर्द्धननाथजी मध्याह्न समे मथुरातें इहां पधारे हैं। तातें आज इतनी ढील भई है।

तब श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगुसांईजी सों कह्यो, जो- हम तो दादा तें कहे हुते, जो- दोय दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अपने घर और राखो, तातें श्रीगुसांईजी आपु अपने घरमें श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करें तो आछो। परि दादाने न मानी, सो आज ही गोवर्द्धननाथजी कों पधराये हैं।

तब श्रीगुसांईजी श्रीगिरधरजी के ऊपर बहुत प्रसन्न भये। और श्रीगिरिधरजी सों कहे जो- तुमने मेरे मन को अभिप्राय जान्यो। जो मैं श्रीगोवर्द्धननाथजी कों श्रीगिरिराज पर्वत ऊपर न देखतो तो मोसों रह्यो न जातो।

ता पाछे श्रीगुसांईजी तुरत ही स्नान करिके श्रीनाथजी के मंदिर में पधारे, सो नृसिंह जयंती को उत्सव कियो।

ता दिन तें प्रतिवर्ष नृसिंह जयंती के दिन सेन आरती के समय फेरि श्रीगोवर्द्धननाथजी कों राजभोग आवे, फेरि माला बोले, जो यह रीत भई*।

सो चत्रभुजदास कों श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करिके बड़ो आनंद भयो। ता पाछे अनोसर करिके श्रीगुसांईजी अपनी बैठक में पधारे। तब चत्रभुजदास ने श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके सब समाचार कहे, जो-या भांति सों श्रीगोवर्द्धननाथजी मथुरा पधारे। ता पाछे आज यहां श्रीगोवर्द्धन परवत पे पधारे हैं।

तब श्रीगुसांईजी आप श्रीमुख तें कहे, जो-श्रीगोवर्द्धननाथजी परम दयाल हैं। अपने जनकी आरति सहि सकत नांही हैं। पाछे आप श्रीगुसांईजी पोंढि रहे।

सो वे चत्रभुजदास श्रीनाथजी तथा श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-१०

और एक समय श्रीगोकुलनाथजीने श्रीगुसांईजी सों पूछ्यो जो- आप आज्ञा करो तो एक वार चत्रभुजदास कों श्रीगोकुल ले जाऊं। तब श्रीगुसांईजी कहे, जो-चत्रभुजदास आवे तो ले जावो।

---

*आज भी उसके स्मरण रूप में इस दिन शयन में भी राजभोग आते हैं।

—सम्पादक

ता पाछे श्रीगोकुलनाथजीने चत्रभुजदास सों कह्यो, जो – पेंठ्यो गाम है (तहां) हम कों कछु काम है, सो तुम हमारे संग चलो।

तब चत्रभुजदास श्रीगोकुलनाथजी के साथ चले। जब पेंठ्यो गाम में श्रीगोकुलनाथजी आये तब चत्रभुजदास सों ये कह्यो, जो – हम कों श्रीगोकुल जानो है, जो हमारे संग खवास कोऊ नांही है, तातें तुम हमारे संग श्रीगोकुल तांई चलो। तहां श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन करिके तुमको फेरि हम यहां ले आवेगें।

तब श्रीगोकुलनाथजी घोड़ा ऊपर असवार होयके पधारे। तब चत्रभुजदास हू संग चले। पाछे श्रीगुसांईजी यह सुनिके श्रीगिरिधरजी कों श्रीनाथजी की पास राखिके आप हू घोड़ा ऊपर असवार होयके श्रीगोकुल पधारे। सो उत्थापन को समय हतो, सो श्रीगुसांईजी स्नान करिके श्रीनवनीतप्रियजी कों जगाये।

ता पाछे संध्यार्ति के समय श्रीगोकुलनाथजीने और चत्रभुजदासने सुन्यो, जो – श्रीगुसांईजी आप इहां पधारे हैं। तब श्रीगोकुलनाथजी और चत्रभुजदास बहोत प्रसन्न भये। सो तत्काल श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में आये। तब श्रीगुसांईजी कों दंडवत करिके चत्रभुजदास बाहिर ठाड़े रहे। तब श्रीगुसांईजी श्रीनवनीतप्रियजी के मंदिर में पधारे। और चत्रभुजदास कों बुलायके श्रीनवनीतप्रियजी

के दरशन करवाये । सो दरशन करिके ता समे चत्रभुजदासने गायो। सो पद– राग बिलावल ।

१ महा महोत्सव श्रीगोकुल गाम० ।

२ अंगुरी छांडि रेंगत अरग थरग० ।

या भांति सों लीलासहित चत्रभुजदासने और हू कीर्तन गाये । सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये। तब श्रीगुसांईजी ने चत्रभुजदास तें कह्यो, जो – चत्रभुजदास ! तोकों चहिये सो मांग । तब चत्रभुजदासने श्रीगुसांईजी सों हाथ जोरिके बीनती कीनी जो – महाराज ! आप तो अंतरगतकी जानत हो, तातें आप मोकों कृपा करि के श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कराओ ।

तब श्रीगुसांईजी ने चत्रभुजदास सों कह्यो, जो – काल्हि श्रीनवनीतप्रीयजी को शृंगार करिके, पालना झुलाय के हम हू चलेंगे, तव तुम हू संग चलियो। तब तो चत्रभुजदास मन में बहोत प्रसन्न भये ।

ता पाछे रात्रि कों तो चत्रभुजदास सोय रहे । पाछे प्रातःकाल होत ही चत्रभुजदासने आयके श्रीगुसांईजी कों दंडवत किये । ता समे मंगला के दरशन भये, तहां चत्रभुजदासने यह पद गायो। सो पद—

१ राग बिलावल । हौं वारी नवनीतप्रिया० ।

२ राग देवगंधार । दिन दिन देन उहनो आवत०

एसे एसे कीर्तन चत्रभुजदासने तहां गाये ।

पाछे श्रीगुसांईजी आपु श्रीनवनीतप्रियजी को भोग सराय के शृंगार करिके पालने झूलाये। ता समय चत्रभुजदासने यह पालना को पद गायो–

राग रामकली ।

१ अपने री बाल गोपाले हो, रानी जू पालने झुलावे०

२ झूलो पालने गोविंद० ।

यह पालना चत्रभुजदासने गाये, सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये ।

ता पाछे श्रीगुसांईजी घोड़ा मंगाय, ता ऊपर सवार होयके चत्रभुजदास कों संग लेके आपु गिरिराज पधारे।

उहां श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग को समय हतो। सो श्रीगुसांईजी आप तत्काल स्नान करिके श्रीगोवर्द्धननाथजी के राजभोग समर्प्यो । पाछे समो भयो, भोग सरायो। जब दरशन के किवांड़ खुले, तब चत्रभुजदास सों कुंभनदासने कही, जो – कछु कीर्तन गाव । तब चत्रभुजदास ने यह कीर्तन गायो । सो पद–

राग सारंग । तब तें और कछून सुहाय० ।

यह सुनिके श्रीगोवर्द्धननाथजी चत्रभुजदास के साम्हे देखि के मुसिक्याये । तब चत्रभुजदास ने दंडवत करिके कह्यो, जो– आज मेरो धन्य भाग्य है, जो–श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन भये ।

पाछे इतने में टेरा आयो। तब चत्रभुजदास दंडवत

करिके बाहिर आये। तब कुंभनदास चत्रभुजदास तें पूछे, जो—चत्रभुजदास! तू कहां गयो हतो। तब चत्रभुजदासने कुंभनदास सों कह्यो जो—श्रीगोकुलनाथजी श्रीगोकुल लिवाय गये हते। सो अवहि श्रीगुसांईजी के संग आयो हूं! तब चत्रभुजदास तें कुंभनदासजी ने कह्यो, जो—तू प्रमान में जाय पर्‍यो।

तब यह बात कुंभनदास के मुख तें सुनिके श्रीगुसांईजी आप मंदिर में हँसे। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी कों अनोसर करिके श्रीगुसांईजी आप अपनी बैठक में पधारे। तब चत्रभुजदास ने श्रीगुसांईजी सों बिनती करी, जो—महाराज! कुंभनदासजी ने मोतें कह्यो जो—तूं कहां गयो हतो? तब मैं कह्यो, जो—श्रीगोकुलनाथजी के संग श्रीगोकुल गयो हतो। तब उन मोतें कह्यो, जो—तू प्रमान में जाय पर्‍यो। सो श्रीगोकुल कों प्रमान क्यों गिने?

तब श्रीगुसांईजी आपु चत्रभुजदास सों कहे, जो—कुंभनदास को मन श्रीगोवर्द्धननाथजी में लाग्यो है। जो एक क्षण हू न्यारे नांहि होत हैं। तातें ए और लीला कों प्रमान जानत हैं, और हैं तो—दोऊ लीला एक ही।

ता दिन तें चत्रभुजदास श्रीगिरिराजजी की तलेटी छांडिके कहूं न जाते। ता पाछे श्रीगुसांईजी आप तो भोजन करिके विसराम किये। तब चत्रभुजदास दंडवत करिके अपने घर आये।

श्रीगोवर्द्धननाथजी हू चत्रभुजदास पे परम कृपा करते। सो वे चत्रभुजदास एसे परम कृपापात्र भगवदीय हते।

वार्ता प्रसंग-११

और कितेक दिन पाछें श्रीगुसांईजी आप श्रीगिरिराजकी कंदरा में होयके, लीला में पधारे, तब श्रीगिरिधरजी कों अपनो उपरना दिये। और यह कहे, जो-श्रीगोवर्द्धननाथजी की आज्ञा में रहियो। जामें श्रीगोवर्द्धननाथजी प्रसन्न रहें सोई कीजो, और सब बालकनको समाधान राखियो। श्रीनाथजी के सेवक, जो वैष्णव हैं इन सबन को समाधान राखियो। और जो मेरे अंग को उपरना है, ताको सब लौकिक संस्कार कीजो। काहेतें जो-संस्कार न करोगे, तो फिरि कोई कर्मसंस्कार न करेगो। तातें तुम अवश्य करियो और काहूबातकी चिंता मति करियो। सब वस्तुके कर्ता श्री-गोवर्द्धननाथजी हैं।

एसे श्रीगिरिधरजी को समाधान करिके श्रीगुसांईजी आप तो गिरिराजकी कंदरा में होयके लीला में पधारे।

ता पाछे श्रीगिरिधरजी आदि दे सब बालकन सहित, सब सेवकन सहित महाविरह करिके महाव्याकुल भये। सो ता समय को विरह कछु कहिवे में न आवे।

पाछे फेर धीरज धरिके श्रीगुसांईजीने जो उपरणा की जैसे आज्ञा कीनी हती, तैसेई श्रीगिरिधरजी ने वा उपरना को अग्निसंस्कार कियो। पाछे वेदोक्त विधि सों सब कर्म

दस गात्र-विधान कियो, और हू लौकिक बिधि सब करि शुद्ध होये। ता पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजी की सेवा में सावधान भये।

सो जा समय श्रीगुसांईजी श्रीगोवर्द्धन पर्वत की कंदरा में होयके लीला में पधारे, ता समे चत्रभुजदास जमुनावता गाममें अपने घरमें हुते। सो सुनिके चत्रभुजदास दोरेही आये, सो आयके महाव्याकुल होयके कंदरा के आगे गिरि परे; और महाविलाप करन लागे। जो-महाराज! पधारत समें मोकों आपके दरसन हू न भये। और मैं आप बिना या पृथ्वी ऊपर कोनकों देखूंगो, तातें अब या पृथ्वी ऊपर मोकों मति राखो। मोहूकों आपके चरणारबिंद के पास निकट ही राखो, मोहूकों बुलाय लीजे।

एसे महाविरह संयुक्त होयके चत्रभुजदासने तहां यह कीर्तन गायो। सो पद-

राग केदारो।

फिर व्रज वसहू श्रीविट्ठलेस।
कृपा करिके दरस दिखावहु वह लीला वह वेस॥
संग गाय अरु गोकुल गांव करहु प्रवेस।
नंदराय जो बिलसी संपति बहु ऊर नरेस॥
भक्तिमारग प्रकट करि कलिजन देहु उपदेस।
रचो रास बिलास वह सब गिरि गोवरधन देस॥
वदन इन्दु तें विमुख नैन चकोर तपत विसेस।
सुधापान कराई मेटहु विरह को लवलेस॥
श्रीवल्लभनंदन, दुःख-निकंदन, सुनहु चित्तसंदेस।
चत्रभुज प्रभु घोखकुल के हरहु सकल कलेस॥

जो एसे विरह के कीर्तन चत्रभुजदासने बहुत किये।

तब श्रीगुसांईजीने चत्रभुजदासकी बहोत आरति जानिके महाआनंद स्वरूप (सों) चत्रभुजदास के हृदय में आयके आपु दरशन दिये। और कहे जो–चत्रभुजदास! तू इतनो विरह काहेकों करत हैं? मैं तो सदा तेरे पास ही हूं तातें तू अब इतनो खेद अपने मनमें मति करे।

और अब तो मेरो दरशन तू श्रीगोवर्द्धननाथजी के निकट ही कर्‍यो कर। जहां श्रीगोवर्द्धननाथजी हैं (वहां) सदैव मोहू कों तिनके पास जान्यो कर, तहां ही मैं रहत हों।

एसें चत्रभुजदास को समाधान करिके श्रीगुसांईजी तो आप अन्तर्ध्यान भये। पाछे चत्रभुजदास ताही स्वरूपानन्द में मगन होयके तहां यह कीर्तन गायो। सो पद–

राग केदारो।

श्रीविठ्ठल प्रभु भये न ह्वै हैं।
पाछे सुने न अगें देखे यह छवि फेर न बनि है॥ १॥
मनुषदेह धरि भक्त–हेत कलिकाल जनम को लै हैं।
को फिरि नंदराय को वैभव व्रजबासिन बिलसै हैं॥ २॥
को कृतज्ञ करुणा सेवक–जन कृपा सुदृष्टि चितै हैं।
ग्वाल गाय सब संग लेके को फिरि गोकुल गाम बसै हैं॥ ३॥
धर्मथंभ होय ज्ञान कर्म, को जगति भक्ति प्रकटै हैं।
को करकमल सीस धरकें अबमनि वैकुंठ पठै हैं॥ ४॥
रासविलास महोछव हरि को रागभोग सुख दैहैं।
को सादर गिरिराजधरग की सेवा सार दृढै हैं॥ ५॥

भूषण बसन गोपाललाल के को सिंगार सिखै हैं।
को आरति वारत श्रीमुख पर आनंद प्रेम बढ़ै हैं ॥ ७ ॥
मथुरा–मंडल खग मृगकी को महीमा कहि वरनै हैं।
को वृन्दावनचंद गोविंद को प्रकट स्वरूप दिखै हैं॥ ७ ॥
काको बहोरि प्रताप जु एसो प्रकट पुहुमि में छै हैं।
काको गुन कोरत लीला जसु सकल लोक चलि जै हैं॥ ८ ॥
श्रीवल्लभसुत दरसन कारन अब सब कोउ पछितै हैं।
चत्रभुजदास आस इतनी जो यह सुमिरित जन्म सिरे हैं ॥ ९ ॥

एसे एसे बहोत कीर्तन चत्रभुजदासने करिके, श्रीगुसांईजी के चरणारविंद में मन राखि, अपनी देह छो॰ीके आप हू लीलामें जाय प्राप्त भये। सो चत्रभुजदासकी यह लीला देखिके और जो वैष्णव हते तिनके (और) सेवकन के मनमें बहोत दुःख भयो।

ता पाछे चत्रभुजदास के एक बेटा हतो राघोदास सो आयो, और वैष्णव सब आये। तिन सबनने मिलके चत्रभुजदास कों अग्निसंस्कार कियो। और क्रियाकर्म दसगात्र करि शुद्ध होये।

ता पाछे वे राघोदास जो हे चत्रभुजदासजी के बेटा,

राघोदास की वार्ता सो तिनहू श्रीगुसांईजी सों नाम पायो हो।

सो राघोदास एक समे गांठोली की कदमखंडी में श्रीगोवर्द्धननाथजी की गायन कों चरावत हते, सो उनकों गायन के मध्य श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन भये। होरी खेलत गोपीन के जूथ के मध्य दरसन

भये। सो एसे दरशन करिके तहां राघोदासने एक धमार करिके गाई, जो–' अरीचल जाइये जहाँ हरि खेलत होरी. ।

यह धमार राघोदासने संपूर्ण करिके गाई, ता पाछे तहां ही राघोदासने देह छोडि दीनी।

तब तहां जो गांठोली के वैष्णव हते तिन सुनी जो सबन मिलिके राघोदास को अग्निसंस्कार कियो ।

ता पाछे वे वैष्णव आयके श्रीगिरिधरजी सों कहे, जो–महाराज! राघोदासने या प्रकार सों यह धमारि गाइके अपनी देह छोडि दीनी। तब श्रीगिरिधरजी हँसे और कहे, जो–राघोदास बडे भगवदीय भये। सो उनकों श्रीगोवर्द्धननाथजीने होरी के खेल के दरसन दिये गोपीन सहित।

ता समे राघोदासनें यह धमारि गाइके अपनी देह छोडि दीनी

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो ताको कारण यह है, जो–श्री गोवर्द्धननाथजी के लीला–सुखको अनुभव राघोदास या देह सों ताको प्रकार सह्यो न गयो। तातें या देह छोडिके राघोदास हू जायके लीला में प्राप्त भये।

और श्रीगिरिधरजी हँसे ताको कारण यह जो–जिनके बापदादाननें या देह सों लीलासुखको हृदय में अनुभव करि दूसरेन कों हू ताके पद गाइके अनुभव करायो, ताको बेटा यह राघोदास। तासों इतनो सुख हू हृदय में धारण कियो न गयो।

पाछे रामदास की बेटीने डेढ़ तुक बनाइ वा धमार पूरी कीनी।

सो वे राघोदास और उनकी बेटी श्रीगोवर्द्धननाथजी के एसे कृपापात्र भगवदीय हते।

तब वा मुखियाने कह्यो जो– आछो, या बात की चिंता मति करो ।

ता पाछे वह संघ चल्यो, सो वाके संग नंददास हू चले । सो कछुक दिनमें वह संघ मथुराजी में आय पहुँच्यो। तब संघ तो मधुपुरी में रह्यो, और नंददास तो मधुपुरी की सोभा देखत देखत विश्रांत ऊपर आये । सो तहां अनेक स्त्री पुरुष स्नान करत देखे, और सुंदर स्वरूप के देखे । सो नंददास तो मनमें देखिके बहुत ही मोहित भये। और मनमें बिचार कियो जो– एसी जगह में कछुक दिन रहिये तो आछो है । सो या भांति नंददास अपने मनमें लुभाये ।

ता पाछे नंददासने अपने मनमें यह विचार कियो जो– एकवार श्रीरणछोडजी के दरशन करि आऊं । ता पाछे आइके विश्रांत घाट ऊपर रहेंगे ।

पाछे नंददासने सुनी जो–संघ तो मथुराजी में दस दिन और रहेगो । तब इन ने बिचार कियो जो– संग तो अब ही मथुराजी में बहुत दिन लों रहेगो । तो मैं इतने अकेलो होयके श्रीरणछोडजी के दरशन कों जाऊंगों ।

एसो बिचार अपने मनमें नंददास करिके रात्रिकों तो सोय रहे । ता पाछे नंददास प्रातःकाल उठिके चले, सो काहू तें कछु कही नांहीं । पाछे वा संघमें जो–मुखिया हतो ताने अपने संगमें नंददास कों जब न देख्यो, तब सगरी मथुराजी में ढूंढ्यो ।

जब नंददास कहूं नजर न पडे, तब ढूंढि के बैठि रहे। और नंददासने तो काहूसों पूछी हू नांही। वे तो अकेले चलेही गये। सो श्रीद्वारिकाजी को तो मारग भूलि गये, और चले २ सिंहनंद में जाइ निकसे।

सो गाम के भीतर चले जात हते। तहां एक क्षत्री श्रीगुसांईजी को सेवक रहतो हतो। सो ताकी बहू अत्यन्त सुंदर हती। सो वह स्त्री अपने घरमें नहायके ऊपर ठाड़ी २ केश सुखावत हुती। सो चले जात में वह स्त्री नंददास की दृष्टि परी। सो नंदादस तो वाकों देखिके मोहित भये। और मनमें कह्यो जो-या पृथ्वी ऊपर एसे हू मनुष्य हैं ? और वह स्त्री तो उतरि के अपने घर के कामकाज में लगी। और नंददास तो तहीं ठाड़े ठाड़े मनमें बिचार करन लागे, जो-अब तो एकवार याकों मुख देखों तब जलपान करूंगो।

पाछे ता दिन तो नंददास गये सो कोउ स्थल में जायके सोय रहे रात्रि कों।

ता पाछे दूसरे दिन नंददास प्रातःकाल उठिके वा स्त्री के द्वार पर आइके बेठे। सो नंददास कों तो बेठे बेठे तीन प्रहर व्यतीत होय गये। तब वा क्षत्री के एक लोंडी हती ताने बहूसों कह्यो जो-एक ब्राह्मण प्रातःकाल को अपने घर के द्वार ऊपर बेठ्यो है। सो वाने पानी हू नांहीं पियो। तब बहूने लोंडी सों कह्यो जो-वा ब्राह्मण सों पूछो तो सही जो-तुम द्वार ऊपर काहेकों बेठे हो ?

तब वा लोंडीने आइके नंददास सों कह्यो जो- तुम इहां हमारे द्वारपे क्यों बेठे हो? तब नंददासने वा लोंडी सों कह्यो जो- मैं तो तेरी बहू को एक वार मुख देखूंगो। ता पाछे जलपान करूंगो, तब जाऊंगो। तब वा लोंडी यह सुनिके अपनी बहू पास गई। और यह सब वात वहू सों कही जो- वह ब्राह्मण तो तिहारो मुख देखिके जायगो। तब वहूने लोंडी सों कह्यो जो-मैं तो वाकों अपनो मुख दिखाऊंगी नांही। वह तो आपही ते उठि जायगो।

सो एसेही नंददास कों हू साज (हठ?) पड़ि गई। तब वा लोंडीने बहूतें फेरि कही जो- तुम मेरी एक बात सुनो।

"एक समे श्रीगोकुल श्रीगुसांईजी के दरशन कों अपनो सगरो घर गयो हो। तब संग में मैं हुती और तुम ही हे। सो श्रीगुसांईजी श्रीगोकुलतें श्रीजीद्वार पधारत हते। और मैं, तुम, तुमारो ससुर सब संग हते। ज्येष्ठ को महीना हतो। सो मारग में एक म्लेच्छानी प्यासी होयके विकल भई परी हती, वह मेवा फरोसिनी हती। सो ताही मारग में होयके श्रीगुसांईजी पधारे। श्रीगुसांईजी निकट आये, तब खवासनें वासों कह्यो-तू मारग छोडि के न्यारी उठि बेठ, सो वाकों तो उठिवे की सकती नांही। वाको तो कंठ पानी विना सूखि गयो, सो नेत्रन में प्राण आय रहे हते, सो वापें बोल्यो हू न जाय।

तब श्रीगुसांईजी पूछे जो- यह कहा है? तब खवासने

श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो– महाराज ! एक म्लेच्छानी है, सो मारग में परी है। जो– बहोतेरो वासों कहत है परि वह उठत नांही।

तब श्रीगुसांईजीने वा म्लेच्छानी की ओर देख्यो। तब उन म्लेच्छानीने श्रीगुसांईजी की ओर हाथ सों बतायो जो– मैं तो प्यासी हों। तब श्रीगुसांईजीने खवास सों कह्यो जो– याकों वेगही जल प्यावो। तब खवासनें श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो– महाराज ! इहां तो काहूके पास जल नांही है, और तलाव कुवा हू निकट नांही है, सो पानी कहांते पाईये।

तब श्रीगुसांईजीने खवास सों कह्यो जो– हमारी झारी में जल होयगो। तब खवासने कही महाराज ! झारी छुई जायगी। तब श्रीगुसांईजीने खवास तें कह्यो जो– झारी तो और आवेगी, परंतु फेरि या म्लेच्छानी के प्रान कहांते आवेंगे ? तातें बेगि जल प्यावो, जीव मात्र पर दया राखनी।

सो वह श्रीनवनीतप्रियजी को महाप्रसादी जल हतो सो वा म्लेच्छानी कों प्यायो, सो वह जल पी गई। तब वा म्लेम्छानी के अंग २ में सीतलता होय गई।

तब वा म्लेच्छानीने उठिके श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो– महाराज ! मैनें कन्हैयाजी सुने हते, सो आज मैनें नेनन सों देखे। तातें तुम 'गुसांईयां' सांचे हो, सो मोकों जिवाई।

तापाछें वह गोकुल आय रही। सो वह सुंदर मेवा लायके श्रीगुसांईजी के द्वार ले के आवे। सो वह म्लेच्छानी

श्रीगुसांईजी के मनुष्यनतें कहे जो–ए मेवा तुम राखो। तब वे मनुष्य कहें जो–तू मोल कहे तो लेंय, नांही तो यह हमारे काम न आवे। तब वह थोरे पैसा कहें, सो या भांति सों वाने अपनो जनम व्यतीत कियो। सो वा म्लेच्छानी के ऊपर श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न रहते।

ता पाछे वह म्लेच्छानीने देह छोडी। सो वाने महावन में जायके ब्राह्मण के घर जनम पायो। सो फेर वे श्रीगुसांईजी की सेवकनी भई, और वह कृतार्थ भई।"

सो या भांति सों लोंडीने अपनी बहूसों कह्यो जो–जीव मात्र ऊपर दया राखनी। तातें ब्राह्मण प्रातःकाल को भूख्यो प्यासो वैठ्यो है, सो यह वात आछी नांही है। तब वह बात बहू के हृदे में आई। पाछे वा लोंडी के संग बहू द्वार ऊपर गई। तब नंददास वाको मुख देखिके उठि गये।

सो या भांति सों वे नंददास नित्य आवें सो वाकों मुख देखिके चले जांय। तब पाछे वाके घर के धनी क्षत्रीने सुनी जो–यह ब्राह्मण हमारे घर याकों देखवे कों आवत है। तब वा क्षत्रीने आयके नंददास सों कह्यो जो–तुम हमारे घर के द्वार पर नित्य आवत हों, सो हमारी जगत में हाँसी बहोत होत हैं।

तब नंददासने वा क्षत्री सों कह्यो जो–मैं तुमतें मागत नांही, कछु तुमारो बिगारत नांही। ता पाछे और तुम कहत हों मोसों, तो मैं तुमारे माथे मरूंगो।

तब यह नंददास के बचन सुनिके यह क्षत्री डरप्यो, जो- अब यातें मैं बोलूंगो तो- यह ब्राह्मण हत्या देयगो, सो कछु कहे नांही। और नंददास तो वेसेई नित्य आवें सो वाको मुख देखिके परे जांय।

ता पाछे कितेक दिन में यह बात सगरे गाममें भई। जो- फलाने क्षत्री की बहू को एक ब्राह्मण देखिवे कों नित्य आवत है। सो यह बात सुनिके वा क्षत्रीकों लाज आई। जब क्षत्रीने अपने पुत्रसों कह्यो जो- अब हमकों यह गाम छोड़नो आयो।

ता पाछे घरमें की सब वस्तु भाव बेचिके सब की हुंडी कराई। ता पाछे एक गाड़ी भाड़े करि दस-पांच मनुष्य मारग के लिये चाकर राखे। प्रातःकालतें नंददास वा बहूको म्होडो देखिके गये हते। ता पाछे वह क्षत्री, क्षत्री को बेटा, क्षत्री की बहू और चोथी लोंडी, सो ये चारों जने वा गाड़ी में बेठिके श्रीगोकुलकों चले।

ता पाछे दूसरे दिन नंददास वाके घर आये। सो देखे तो-वाके घरको ताला लग्यो है। तब नंददासने वाके परोसीन सों पूछी, जो- आज या घरके ताला लाग्यो है, सो या क्षत्री के घरके लोग कहां गये?

तब और लोगनने कही जो- जा भले आदमी! तेरे दुःखतें तो वा क्षत्रीने अपनो गाम हू छोड़ि दीनो है। सो वह तो काल प्रातः ही को श्रीगोकुल कों गयो है।

यह बचन सुनते ही नंददास तो अपने डेरा में आये।

जो अपनी बस्तुभाव लेके ताही समें श्रीगोकुल कों चले। सो चलत २ सांझ के समय जहां वा क्षत्री की गाड़ी उतर रही, तहां नंददास हू जाय पहोंचे। सो जायके वा क्षत्री की गाड़ी के निकट ही बैठि गये।

तब वा क्षत्रीने नंददास कों देखिके कह्यो, जो– जा दुखतें हमने अपनो घर छोड्यो, देश छोड्यो, सो दुख तो हमारे संग ही लग्यो आयो। ता पाछें वा क्षत्री के मनुष्य वासों लड़न लागे जो– तू हमारे संग काहे कों आवत है? तब नंददास उठिके दूरि जाय बैठे, और कह्यो जो– हम तुम सों मांगत तो नांही कछू, और यह गामहू तुमारो नांही, ता पाछे रात्रि को तो तहां सोय रहे।

प्रातःकाल होत ही वह क्षत्री तो गाड़ी में बैठके तहांते चल्यो। तब वासों नेक दूरि के नंददास हू चले। सो याही भांति कछुक दिन में श्रीगोकुल के घाट ऊपर आये।

तब उन क्षत्रीने विचार कियो जो– हम तो या ब्राह्मण के दुःखके मारे गाम छोड़िके आये। तोहू वह तो हमारे संग ही आयो है। तातें एसो जतन होई जो– यह हमारे संग श्रीजमुनाजी उतरिके श्रीगोकुल न चले तो आछो है, नांही (तो) हमारी हाँसी श्रीगोकुलमें हू होयगी। और श्रीगुसांईजी यह बात सुनेंगे तो–यह बात आछी नांही है।

तब उन मलाहन सों कहे, (ओर) घटवारेन सों वा क्षत्रीने कह्यो जो– हम तुमकों कछुक द्रव्य देंयगे, परि या ब्राह्मण को

पार मति उतारो। पाछे वह क्षत्री नाव में बैठ्यो, तब नंददास हू नाव पर बेठन लागे, तब उन मलाहनने हाथ पकरिके उतार दियो नाव पें तें। तब नंददास तो श्रीजमुनाजी के तीर ठाडे २ बिचार करन लागे। और वह क्षत्री तो नाव में बैठि के श्रीजमुनाजी के पार भयो।

ता पाछे वह क्षत्री श्रीगोकुल में आयके, लोंडीकों एक ठोर बेठायके वाके पास सब वस्तुमात्र धरिकें आप तीनों जने श्रीगुसांईजी के दरशन कों आये। सो श्रीनवनीतप्रियजी के राजभोग के दरशन किये। ता पाछे अनोसर करायके श्रीगुसांईजी अपनी बेठक में पधारे। तब इन तीनों जनेनने भेट धरी, और दंडवत कीनी।

तव श्रीगुसांईजीने पूछी जो-वैष्णव! कब के आये हो? तब इन कही जो महाराज! अब ही आये हैं। श्रीनवनीत-प्रियजीके राजभोग की आरती के दरशन आपकी दयातें करे हैं। तब श्रीगुसांईजी कहे जो-आज तुम प्रसाद इहांई लीजो, अब बेठो।

एसे आज्ञा देके श्रीगुसांईजी आप तो भोजन कों पधारे। ता पाछे आचमन करिके अपनी जूठन की पातरि वा क्षत्रीकों धरी। सो चार पातर श्रीगुसांईजीने उन के आगे धरी।

तब वा वैष्णवने श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी जो-महाराज! हम तो तीनही जने हैं। और आपने चार पातरि कौन २ की धरी हैं। इहां तो और वैष्णव कोइ दीसत नांही।

तब श्रीगुसांईजीने कह्यो जो–वह तुमारे संग ब्राह्मण आयो है, जाकों तुम पार छोड़ि आये हो। सो वह कौन के घर जायगो ?

तब ए वचन श्रीगुसांईजी के सुनिके तीनो जने लज्जित भये। और कहे जो–जा बात तें देखो हम डरपत हते जो– हमारी हाँसी श्रीगोकुलमें न होय तो आछो है, सो यहां तो सब पहले ही प्रसिद्ध होय रही है। एसे कहिके वे तीनो जने अत्यत सोच करन लागे।

सो श्रीगुसांईजी वा क्षत्री सों कहे जो–तुम सोच काहेको करत हो ? वह तो दैवी जीव है, जो तुमारो संग पाइके इहां आयो है। सो अब तुमकों दुख न देहिगो।

एसे वासों कहिके एक ब्रजवासी कों बुलायके आज्ञा दीनी जो– तू पार जाइके तहां श्रीजमुनाजी के तीर एक नंद-दास ब्राह्मण बेठ्यो है, ताकों बुलाय लाव।

तब वह ब्रजवासी तत्काल आइके नावमें बेठिके पार को चल्यो। और नंददास कों तो उन मलाहनने नावपे सों उतारि दियो, सो श्रीजमुनाजी के तीर बेठे बेठे श्रीजमुनाजी के आगे विज्ञप्ति के पद गावन लागे। सो पद–

राग रामकली–१ 'नेह कारन श्रीजमुना प्रथमआइ' २ 'भक्त पर कर कृपा श्रीजमुनाजू एसी' ३ 'श्रीजमुने २ जो गावे'

सो या भांति नंददास तो श्रीजमुनाजी के तीर बेठे बेठे श्रीजमुनाजी की स्तुति करत हे।

इतने में वह ब्रजवासी जाकों श्रीगुसांईजीने नंददासकों लेवे पठायो हतो, सो नाव लेके पार जाय पहुंच्यो। सो तहां जायके पूछ्यो जो–नंददास ब्राह्मण कहां है? तब इन कही जो- नंददास ब्राह्मण तो मैं ही हूं। तब वा ब्रजवासीने नंददास सों कह्यो जो- तुमकों श्रीगुसांईजीने बुलाये हैं, और यह नाव पठाई है, तामें तुम बेठिके बेगि चलो।

तब तो नंददास प्रसन्न होइके श्रीजमुनाजीकों दंडवत करिके, श्रीगोकुल कों दंडवत करि पाछे नाव में बेठके पार आये। और आयके श्रीगुसांईजी को दरशन करिके साष्टांग दंडवत करी। सो दरशन करत ही नंददास की बुद्धि निरमल होय गई।

तब तो श्रीगुसांईजी सों हाथ जोरि बिनती करी जो– महाराज! मैं जब तें जनम पायो, तब तें विषय करत ही जनम गयो। और आप तो परम कृपालु हो, मेरे ऊपर कृपा करिके मोकों अपनी शरण लीजे।

सो एसे दैन्यता के वचन नंददास के सुनिके श्री-गुसांईजी वहोत प्रसन्न भये। तब श्रीगुसांईजी श्रीमुख तें आज्ञा किये जो – नंददास! जाओ, स्नान करिके अपरस ही में इहां आइयो।

तब नंददास वेसेही स्नान करिके अपरसही में श्रीगु-सांईजी के पास आये। पाछे श्रीगुसांईजीने नंददास को नाम-निवेदन (भावात्मक रुप सों) करवायो। तब श्रीगुसांईजी को स्वरूप नंददास के हृदयारूढ भयो, ता समे नंददासने यह कीर्तन

कियो। सो पद– राग बिलावल। 'जयति श्रीरुक्मिनी–नाथ, पद्मावती–प्राणपति* विप्रकुल–छत्र आनंदकारी० '।

नंददासने यह कीर्तन गायो। सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत ही प्रसन्न भये। ता पाछे श्रीगुसांईजी नंददास कों आज्ञा दीनी जो – तेरी महाप्रसाद की पातर धरी है, सो जाइके महाप्रसाद लेवो।

सो नंददास आइके महाप्रसादी रसोई–घरमें जायके श्रीगुसांईजी की जूठन को प्रसाद लेन लागे। सो लेत ही स्वरूपानंद को अनुभव होन लग्यो। सो नंददास तो देह को अनुसंधान भूलि गये, और जहां के तहां बेठे रहि गये। सो हाथ धोयवे की हू सुधि न रही।

जब उत्थापन को समय भयो, तब भीतरियाने आइके श्रीगुसांईजी सों कह्यो जो – महाराजाधिराज! नंददासजी तो महाप्रसाद लेके उहांई बेठि रहे हैं, उठे नांही हैं। तब श्री-गुसांईजीने उन भीतरिया सों कह्यो जो – उहां तुम नंददास तें कोऊ बोलो मति।

ता पाछे चारि प्रहर रात्रि गई तोऊ नंददास कों देह की सुधि न रही।

ता पाछे दूसरे दिन प्रातःकाल नंददास के पास श्री-गुसांईजी पधारे। तब श्रीगुसांईजीने नंददास के कानमें कह्यो जो – उठो नंददास! दरशन को समय भयो है। तब

---

* यह पद सं. १६२४ के बादका है। देखो गुजराती अष्टछाप –सम्पादक

नंददास उठिके श्रीगुसांईजी कों साष्टांग दंडवत करी। ता समे नंददासने यह कीर्तन कियो। सो पद—

राग बिभास। १ प्रात समे श्रीवल्लभसुत को पुन्य पवित्र विमल जस गाऊं०। २ प्रात समे श्रीवल्लभसुत को उठत ही रसना लीजे नाम०।

सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये।

ता पाछे श्रीगुसांईजी तो मंदिर में पधारे और नंददास आप देह कृत्य करिवे गये। ता पाछे श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन को समय भयो। सो नंददास श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन करिके बहोत प्रसन्न भये। तव नंददासने यह पद गायो। सो पद—

राग बिलावल। १ 'गोपाल ललन कों मोद भरि जसुमति हुलरावति०'।

यह कीर्तन नन्ददासने तहां गायो। सो सुनिके श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भये। तव नंददास ने श्रीगुसांईजी सों हाथ जोरि साष्टांग दंडवत करिके कह्यो जो—महाराज! मोसे पतित को उद्धार करोगे? सो वे नंददास श्रीगुसांइजी के एसे कृपापात्र भगवदीय भये।

वार्ता प्रसंग–२

और एक समय श्रीगुसांईजी रात्रिको अपनी बेठक में बिराजे हते। तब आप आज्ञा करे जो—कालि श्रीनाथजीद्वार अवश्य जानो। तब नंददासने बिनती कीनी जो—महाराजाधिराज! जेसे आपु कृपा करिके श्रीनवनीतप्रियजी के दरशन करवाये, तेसे श्रीनाथजी के दरशन करवावो।

ता पाछे प्रात भये श्रीनवनीतप्रियजी के मंगलाके दर्शन करिके, शृंगार राजभोग करिके श्रीगुसांईजी श्री-नाथजीद्वार पधारे, और नन्ददास को हू संग लिये । सो उत्थापन के समय श्रीगिरिराज आइ पहोंचे। श्रीगुसांईजी तो न्हायके मंदिर में पधारे ।

समो भयो तब दरशन को टेरा खुल्यो । सो नंददास श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन करिके बहोत प्रसन्न भये । ता समे नन्ददासने यह कीर्तन गायो । सो पद–

राग नट । 'सोहत सुरंग दुरंग पाग कुरंग ललना केसे लोइन लोने० ।

यह कीर्तन नन्ददासने गायो, सो श्रीगुसांईजी मंदिर में सुने । पाछे टेरा खेंचि लियो । ता पाछे परमानन्द में नन्ददासने बेठे २ और हू कीर्तन किये। पाछे संध्यार्ति के दरशन खुले तब नन्ददासने दरशन करिके यह कीर्तन गायो । सो पद–

राग गोरी । १ बन तें सखन संग गायन के पाछे पाछे आवत० ।
२ बनतें आवत गावत गोरी० । ३ देखि सखी हरि को बदन सरोज० ।
४ नंदमहरि के मिषही मिष आवे गोकुलकी नारी० ।

सो या भांति सों नन्ददासने बहोत कीर्तन किये ।

ता पाछे नन्ददास छ मास पर्यंत सूरदासजी के संग परासोली में रहे, पाछे श्रीगोकुल में रहे । सो श्रीगुसांईजी नन्ददास ऊपर सदा प्रसन्न रहते। वे नन्ददास एसे कृपा-पात्र भगवदीय भये ।

वार्ता प्रसंग–३

और एक समय श्रीमथुराजी को एक संघ पूरब कों चल्यो, गयाश्राद्ध करिवे कों। ता संघ में दस पांच वैष्णव हू हते। सो कितेक दिन में वह संघ पूरब कों चल्यो, काशीजी जाइ पहुंच्यो।

तब तुलसीदासजीने सुन्यो जो – संघ आयो है। तब वा संघ में तुलसीदासजीने आइके पूछी जो – एक नन्ददास ब्राह्मण इहां तें गयो है, सो मथुराजी में सुन्यो है। सो तुमने कहुं देख्यो होय तो कहो।

तब एक वैष्णवने कही जो-तुलसीदासजी! एक नन्ददास तो श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है। सो वह नन्ददास पहले तो अत्यंत विषयी हतो, सो अब तो बडोही कृपापात्र भगवदीय भयो है!

तब तुलसीदासजी अपने मनमें बिचारे जो – एसो तो वही नन्ददास है, सो श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है। जो अब तो उन कों मेरी शिक्षा न लगेगी।

तब तुलसीदासजीने उन वैष्णवन सों कह्यो जो – मैं तुमकों एक पत्र देउं, ताको जुवाब तुम मोकों मगाय देउगे?

तब उन वैष्णवनने तुलसीदासजी सों कही जो– काल मेरो मनुष्य श्रीगोकुल कों चलेगो। जो तुमकों पत्र देनो होय तो लिखके बेगि त्यार करियो। तब तुलसीदासजीने ताही समे पत्र लिखिके तैयार कियो। तामें लिख्यो जो– तू पतिव्रतधर्म

छोड़ि व्यभिचार धर्म लियो, सो आछो नांही कियो। अब तू आवे तो फेरि तोकों पतिव्रतधर्म बताऊं।

यह पत्र तुलसीदासजीने वा वैष्णव के हाथ दियो। सो वह पत्र अपने पत्रन में धरिके वा वैष्णवने कासिद के हाथ दियो। सो वह पत्र लेके श्रीगोकुल आयो। तब कासिदने दंडवत करिके वे पत्र श्रीगुसांईजी के आगे धरे। तब उन पत्रन में नंददास के नामको जो पत्र हतो सो निकस्यो। तब श्रीगुसांईजीने वह पत्र बांचि के नंददास कों बुलायके दियो।

तब नंददासने वह पत्र लेके बांच्यो। पाछे वा पत्र को प्रतिउत्तर लिख्यो जो– मेरो तो प्रथम रामचन्द्रजी सों विवाह भयो हतो। सो बीचमें श्रीकृष्ण दोरि आइके लूटि ले गये। सो रामचन्द्रजी में जो बल होतो तो मोकों श्रीकृष्ण केसे ले जाते? और श्रीरामचन्द्रजी तो एकपत्नी व्रत हैं। सो दूसरी पत्नीनकुं केसे संभार सकेंगे? एक पत्नी हू बराबर संभारि न सके, सो रावण हरिके ले गयो। और श्रीकृष्ण तो अनंत अबलान के स्वामी हैं, और इनकी पत्नी भये पाछे कोई प्रकार को भय रहे नांही है। एक कालावच्छिन्न अनंत पत्नी-नकुँ सुख देत हैं। जासों मैंने श्रीकृष्ण पति कीने हैं। सो जानोगे। सो मैं तो अब तन, मन, धन यह लोक, परलोक श्रीकृष्ण कों दीनो है। (और) अब तो मैं परवश होइके पर्यो हूं।

एसो नंददासने तुलसीदासजी कों पत्र लिख्यो। तामें एक पद यह लिख्यो। सो पद–

राग आशावरी–१ 'कृष्णनाम जबतें श्रवण सुन्यो री आली ! भूलि री भवन हों। तो बावरी भई री०'।

यह कीर्तन नंददासने वा पत्र में लिखिके वह पत्र कासिद कों दियो। सो वह कासिद कितेक दिननमें कासीजीमें आयो। सो वे पत्र सब वैष्णवन कों दिये।

तब उन वैष्णवनने वह नंददास को पत्र बांचिके तुलसीदासजी कों बुलायके दीनो। पाछे तुलसीदासजीने नंददास को पत्र बांचिके अपने मनमें जान्यो जो– अब नंददास इहां कबहूं न आवेगो। एसो जानिके तुलसीदासजी अपने घर आये।

सो वे नंददासजी श्रीगुसांईजीके एसे कृपापात्र भगवदीय भये। जिनकों श्रीगुसांईजीके स्वरूप में एसो दृढ भाव हतो।

वार्ता प्रसंग–४

औ एक समे तुलसीदासजीने बिचार कियो जो–नन्ददास श्रीगोकुल में है, सो मैं जाइके लिवाय लाऊं। यह बिचारिके तुलसीदासजी काशीजीतें चले, सो कितेक दिनमें श्रीमथुराजीमें आइ पहोंचे।

तब मथुराजी में पूछे जो–इहां नन्ददास ब्राह्मण काशी तें आयो है, सो तुम जानत होउ तो बताओ, जो– वह कहां होयगो ? तब काहूने कह्यो जो– एक नन्ददास तो आइके श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है, सो तो गोकुल होयगो, या गिरिराज होयगो।

तब तुलसीदासजी प्रथम तो श्रीगोकुल आये। सो श्रीगोकुलकी शोभा देखिके तुलसीदासजी को मन बहुत ही प्रसन्न

भयो। पाछे तुलसीदासजी मनमें बिचारे जो– एसो स्थल छोड़िके नन्ददास केसे चलेगो?

तब तुलसीदासजीने तहां पूछ्यो जो–एक नन्ददास ब्राह्मण है, सो कहां होयगो? तब काहूने कही, जो–एक नन्ददास तो श्रीगुसांईजी को सेवक भयो है। सो श्रीगुसांईजी तो श्रीनाथजीद्वार गये हैं, सो उहांही होयगो।

तब तुलसीदासजी फेर मथुरा में आयके श्रीयमुनाजी के दर्शन करे, पाछे तहांते श्रीगिरिराजजी गये। सो उहां परासोलीमें तुलसीदासजी नन्ददासकूं मिले।

पाछे तुलसीदासजीने नन्ददास सों कही जो–तुम हमारे संग चलो। सो गाम रुचे तो अयोध्यामें रहो, पुरी रुचे तो काशीमें रहो, पर्वत रुचे तो चित्रकूट में रहो, वन रुचे तो दंडकारण्य में रहो। एसे बड़े बड़े धाम श्रीरामचन्द्रजीने पवित्र करे हैं।

तब नन्ददासने उत्तर देयवेकुं ये पद गायो। सो पद–

'जो गिरि रुचे तो वसो श्रीगोवर्द्धन, गाम रुचे तो वसो नंदगाम। नगर रुचे तो वसो श्रीमधुपुरी सोभा–सागर अति अभिराम ॥ १ ॥

सरिता रुचे तो वसो श्रीयमुनातट, सकल मनोरथ, पूरन काम। नन्ददास कानन रुचे तो वसो भूमि वृंदावन धाम ॥२॥

पाछे नन्ददास सूरदासजी सों मिलिके श्रीनाथजी के दर्शन करवेकुं गये। तब तुलसीदासजी हू उनके पाछे पाछे गये। जब श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन करे तब तुलसीदासजीने

माथो नमायो नहीं । तब नन्ददास जानि गये, जो - ये श्री-
रामचन्द्रजी बिना और दूसरेकों नहीं नमे हैं । नन्ददासने
मनमें बिचार कीनो जो– यहां और श्रीगोकुलमें इनकों श्रीराम-
चन्द्रजी के दर्शन कराउं । तब ये श्रीकृष्ण को प्रभाव जानेंगे।
पाछे– नन्ददासने श्रीगोवर्द्धननाथजी सों बिनती करी ।
सो दोहा–

कहा कहूं छबि आज की, भले बने हो नाथ,
तुलसी–मस्तक तब नमे, धनुषबाण लो हाथ ॥

यह बात सुनिके श्रीनाथजी कों श्रीगुसांईजीकी कानतें बिचार
भयो, जो– श्रीगुसांईजी के सेवक कहै, सो हमकुं मान्यो चहिये ।

पाछे श्रीगोवर्द्धननाथजीने श्रीरामचन्द्रजीको रूप धरिके
तुलसीदासजीकों दर्शन दिये । तब तुलसीदासजीने श्रीगोवर्द्धन-
नाथजीकों साष्टांग दंडवत् करी ।

जब तुलसीदासजी दर्शन करिके बाहर आये, तब नन्द-
दास श्रीगोकुल चले । तब तुलसीदासजी हू संग संग आये।
तब आयके नन्ददासने श्रीगुसांईजी के दर्शन करि साष्टांग
दंडवत करी और तुलसीदासजीने दंडवत् करी नांहि ।

पाछे नन्ददासकों तुलसीदासजीने कही जो– जैसे दर्शन
तुमने वहां कराये वेसेही यहां करावो । तब नन्ददासने
श्रीगुसांईजी सों बिनती करी– ये मेरे भाई तुलसीदास हैं । सो
श्रीरामचन्द्रजी बिना और कों नहीं नमे हैं ।

तब श्रीगुसांईजीने कही जो– तुलसीदासजी ! बेठो ।

ता समे श्रीगुसांईजीके पांचमे पुत्र श्रीरघुनाथजी वहां

ठाड़े हुते, और उन दिनन में श्रीरघुनाथजी को विवाह भयो हुतो। जब श्रीगुसांईजीने कही जो– श्रीरामचन्द्रजी! तुमारे सेवक आये हैं, इनको दर्शन देवो। तब श्रीरघुनाथलालजीने तथा श्रीजानकीबहूजीने श्रीरामचन्द्रजीको तथा श्रीजानकी-जी को स्वरूप धरिके दर्शन दिये। तब तुलसीदासजीने साष्टांग दंडवत करी।

पाछे तुलसीदासजी दर्शन करिके बहोत प्रसन्न भये। और यह पद गायो। सो पद—

'वरनों अवधि श्रीगोकुल गाम। वहां सरजू यहां यमुना एकहो नाम०'।

ता पाछे तुलसीदासजीने श्रीगुसांईजी सों दंडबत करिके कह्यो–जो महाराज! नंददास तो पहले बड़ो विषयी हतो, सो अब तो याकों बड़ी अनन्य भक्ति भई है, ताको कारण कहा है?

तब श्रीगुसांईजीने तुलसीदासजी सों कह्यो जो–नंददास उत्तम पात्र हुते, यातें पुष्टिमार्ग में आयके प्रवृत्त भये। और अब व्यसन अवस्था याकों सिद्ध भई है। सो अब वे द्रढ भये है। तब श्रीगुसांईजी के श्रीमुख के बचन सुनिके तुलसी-दासजी प्रसन्न होय श्रीगुसांईजी को दंडवत् करिके पाछे आप विदा होय काशी आये

सो वे नंददासजी श्रीगुसांईजी के एसे कृपापात्र भगव-दीय हते। जिनके कहेतें श्रीगोवर्द्धननाथजी कों तथा श्रीरघु-नाथलालजी कों श्रीरामचन्द्रजी को स्वरूप धरिके दर्शन देने पड़े।

वार्ता प्रसंग–५

सो एक दिन नंददास के मनमें एसी आई जो– जेसें तुलसीदासजीने रामायण भाषा किये हैं, तेसे हमहू श्रीमद्-भागवत भाषा करें। पाछे नंददासने श्रीमद्भागवत दशम भाषा संपूरण कियो।

तब मथुरा के सब पंडित मिलिके श्रीगुसांईजी सों बिनती कीनी, जो महाराज! हम श्रीभागवत की कथा कहिके निरवाह करत हते, सो तुमारे सेवक नंददासजीने भाषा में श्रीभागवत कही है। सो अब हमारी कथा कोई न सुनेगो। तातें अब हमारी जीविका तो गई। सो अब आपके हाथ उपाय है।

तब श्रीगुसांईजीने नंददास कों बुलायके कह्यो जो– नन्ददास! तुमने जो श्रीमद् भागवत भाषा में कीनो है, सो इन ब्राह्मणन की जीविका में हानि होत है। तासों तुम ब्रज-लीला तो पंचाध्याई तांई की राखो और सब श्रीजमुनाजी में पधराय देवो।

सो नन्ददासने श्रीगुसांईजी की आज्ञा प्रमाण मानिके ब्रजलीला तांई (भागवत) राखी, और सब श्रीजमुनाजी में पधराय दीनी।

सो वे नंददासजी श्रीगुसांईजी के एसे आज्ञाकारी और बड़े कृपापात्र हते।

वार्ता प्रसंग–६

और एक समे अकबर पात्शाह और बीरबल श्रीमथुराजी आये, सो बीरबल श्रीगुसांईजी के दर्शन कों आयो। सो

श्रीनाथजीद्वार श्रीगुसांईजी पधारे हते, और श्रीगिरधरजी घर हते सो—बीरबल श्रीगिरिधरजी के दरशन करिके अकबर पात्शाह के पास आये। तब पात्साहने पूछी जो—बीरबल ! तू कहां गया था ? तब बीरबल ने कह्यो जो—दीक्षितजी के दरशन को श्रीगोकुल गया था। सो श्रीगुसांईजी तो श्रीनाथजी के दरशन को श्रीगोवर्द्धन पधारे हैं, और उनके पुत्र श्री गिरधरजी घर थे, सो उनके दरशन करके आया हूं।

तब पात्साहने बीरबल सों कह्यो जो—दिन दो में हमभी श्रीगोवर्द्धन चलेंगे, वहां से तुम जाकर दीक्षितजी के दर्शन करआना।

ता पाछे दिन दोय में अकबर पात्साह के डेरा गोवर्द्धन मानसी गंगापे भये। तब बीरबल श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कों गोपालपुर आये। सो दरशन करिके श्रीगुसांइजी को दंडवत् करिके ता पाछे अपने डेरा आयो।

पाछे नन्ददासने सुनी जो—अकबर पात्साह के डेरा गोवर्द्धन में मानसी गंगापे भये हैं। सो अकबर पात्साह के एक लोंडी हती। सो वह श्रीगुसांइजी की सेवक हती। ताके ऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजी बड़ी कृपा करते, वाकों दर्शन देते।

वा लोंडी सों और नन्ददास सों बडी प्रीति हती। सो नन्ददास वा लोंडी सों मिलिवे को मानसी गंगापे आये। सो तहां वा लोंडी को ढूंढन लागे। सो वह लोंडी एक एकांत ठौर में बिलछू पे वृक्षन की लतान की तरें रसोई करत हती। सो रसोई करिके भोग धरयो हो। तहां श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु पधारे हुते। सो नंददास ता समे श्रीगोवर्द्धननाथजी

कों देखे। सो दरशन करिके नन्ददास बहोत ही प्रसन्न भये। और कह्यो जो–याके बड़े भाग्य हैं।

ता पाछे नन्ददास एक वृक्ष की ओटमें ठाड़े रहिके यह कीर्तन गायो। सो पद–

राग टोडी–

चित्र सराहत चितवति दुरि मुरि गोपी बहोत सयानी०।

यह कीर्तन तहां नंददास ने गायो। तब जाने जो– इहां नन्ददास आये हैं। तब वा लोंडीने चारों ओर देख्यो। तब देखे तो–एक वृक्ष की ओट में नन्ददास ठाडे हैं। तब वा लोंडीने नन्ददास सों कह्यो, जो–तुम एसे छिपके क्यों ठाड़े हो? मेरे पास क्यों नांहि आवत हो?

तब नन्ददास ने कही जो– राजभोग को समो हतो, श्रीगोवर्द्धननाथजी आरोगवे पधारे हते, तातें हों इहां ठाड़ो होय रह्यो।

ता पाछे भोग सरायके अनोसर करायके कह्यो जो– मैं तुमतें कही नांही सकत हों, परि श्रीनाथजी को महाप्रसाद है, तामें हू दूध की सामग्री है। तामें तुमारो मन प्रसन्न होय सो लेउ। काहेतें जो– तुम ब्राह्मण हो।

तब नन्ददासने कह्यो जो–अब तो मैं रंचक २ सब सामग्री लेउंगो। तब उन दोउ जनेन ने प्रसन्नता सों महाप्रसाद लियो। ता पाछे आचमन करिके बेठे। तब वा लोंडी ने नन्ददास सों कह्यो जो–अव इहां ते कहूं न जानो होय तो आछो है। यहां जो– मानसीगंगा है। यह श्रीगिरिराज प्रभुनकी दया तें स्थल प्राप्त भयो है। तातें अब मैं काहू

देशमें न जांउ तो आछो है, और अब सदा तुमारो संग होय तो आछो।

तब नन्ददासने बा लोंडी सो कह्यो जो–प्रभु एसे ही करेंगे। ता पाछे लोंडी ने कह्यो जो–अब इन आंखनिसों लौकिक को देखनो उचित नांही है।

पाछे नन्ददास रात्रि कों अपने स्थान मानसीगंगा पे जाय रहे। और प्रातःकाल श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन कों आये, सो गोवर्द्धननाथजी के दरशन किये। और श्रीगुसांईजी के दरशन किये।

ता पाछे अकबर पात्साह के आगे तानसेन रात्रिकों गायवे आये। सो तहां नन्ददास को कियो पद तानसेनने गायो। सो पद–

राग केदारो।

'देखो री! देखो नागर नट नृत्यत कालिंदी के तट०'

× × ×

(अंतमे) 'नंददास गावत तहां निपट निकट'

यह नन्ददासको कीयो पद सुनिके अकबर पात्साहने तानसेन सों पूछी जो – जिसने यह पद बनाया है, सो कहां है? तब बीरबल ने अकबर पात्साह सों कह्यो जो – साहब! वह तो यहां ही है, श्रीनाथजीद्वार में रहता है। बड़ा कवि और भगवदीय है।

तब देसाधिपति ने बीरबल सों कह्यो जो – इसी घडी उनको इहां बुलावो। तब बीरबल ने पातसाह सों कह्यो जो – साहब! वह इस भांति से तो यहां न आवेंगे। मैं कल जाकर लिवा लाउंगा।

ता पाछे दूसरे दिन बीरबल गोपालपुर आये। तब श्रीगुसांईजीके दरशन किये। ता पाछे नन्ददास सों बीरबलने कह्यो जो– नन्ददासजी! तुमकों अकबर पातसाहने बुलाये हैं। तब नन्ददासने बीरबल सों कह्यो जो– मोकों अकबर पातसाह सों कहा प्रयोजन है? मोकों कछु द्रव्यकी चाहना नांहि। जो– मैं जाऊं। और मेरे कछु द्रव्य नांही जो– अकबर पातसाह लेइगो। तातें हमारो कहा काम हैं?

तब बीरबलने कह्यो जो– तुम न चलोगे तो अकबर पातसाह ही तुमारे पास आवेगो।

तब नन्ददासने कही जो– तुम इहां वाको मति लावो। इहां भीड को काम नांही है। तातें मैं सेन आरती पाछे श्रीगुसांईजी सों दंडवत करिके मानसी गंगा आउंगो।

पाछे नंददास सेन आरती के दरशन करि, श्रीगुसांईजी सों दंडवत करिके विदा होयके मानसीगंगा आये! सो तहां अकबर पात्साह और बीरबल दोउ जनें बेठे हते। सो नंददास कों देखिके पातसाहने सन्मान करिके बेठाये।

ता पाछें अकबर पात्साह ने नंददास सों कह्यो जो– तुमने रास को पद बनायो है, तामें तुमने कह्यो हे जो– 'नंददास गावे तहां निपट निकट' सो इतनो झूठ क्यों बोलत हो? जो तुम कहो जो– कोंन भांति सों निकट आये?

तब नंददासने पातसाह सों कह्यो जो– मेरे कहे को तुमकों विश्वास न होयगो। सो तुमारे घर में फलानी (रूपमंजरी?) लोंडी है तासों तुम पूछ लेउ, जो वह जानत हैं।

तब अकबर पातसाहने बीरबल कों तो नंददास के पास बेठाये, और आप अपने डेरामें जायके वा लोंडी सो पूछी,

जो– यह रास को पद नंददास ने गायो है, सो ताको अभिप्राय कहा है?

तब यह बचन पातसाह के सुनिके वह लोंडी पछाड खायके गिरि परी, सो देह छूटि गई। सो वह लीलामें जायके प्राप्त भई। तब देसाधिपति नंददास के पास दोरे आये। सो इहां आयके देखे तो नन्ददास की हू देह छूटि गई है। सो एउ लीला में जायके प्राप्त भये।

तब अकबर पात्साह कों बडो आश्चर्य भयो। तब वाने बीरवल सों पूंछी जो– इन दोउन की देह क्यों छूटि गई? तब बीरबलने-पातसाह सों कह्यो जो– साहिब! इन (नें) अपनो धर्म राख्यो। काहेतें यह बात बतांयबेमें न आवे, कहिवेमें न आवे। तासों या बात को तो यही उपाय है।

ता पाछे अकबर पातसाह अपने डेरान में आयो। ता पाछे यह बात वैष्णवनने सुनी, सो आयके यह समाचार सब श्रीगुसांईजी सों कहे, जो–महाराज! नंददासजीने मानसी गंगा पे या रीति सों देह छोडी।

तब श्रीगुसांईजीने श्रीमुखतें बहोत ही सराहना करी। जो वैष्णवकों एसेही अपनो धर्म (गुप्त) राख्यो चाहिये। जो– और के आगे कहनो नांही। सो वह नंददासजी और वह लोंडी एसे भगवदीय हते। सो दोउ जनेनने अपनो धर्म गोप्य राख्यो।

सो वह लोंडीहू एसी भगवदीय भई। और नंददासजीहू श्री-गुसांईजीके एसे कृपापात्र भगवदीय हते। जिनके ऊपर श्रीगुसांई-जी सदा प्रसन्न रहते। और अपने स्वरूपानंदको वैभव दिखायो। तातें उनकी वार्ता कहां तांई लिखिये? ता वार्ता को पार ना आवे एसे भगवदीय भये।

इति श्री अष्ट छापकी वार्ता संपूरन।

શ્રીદ્વારકેશો જયતિ ।

અષ્ટ-છાપ

ગુજરાતી ઐતિહાસિક વિભાગ

લેખક-પ્રકાશક
શ્રીદ્વારકાદાસ પુરુષોત્તમદાસ પરિખ
શ્રીવિદ્યા વિભાગ કાંકરોલી

—:૦:—

શ્રીવલ્લભાબ્દ ૪૬૩

મુદ્રક : કેશવલાલ સાંકળચંદ શાહ
ધી વીરવિજય પ્રીન્ટીંગ પ્રેસ
સલાપોસ ક્રોસ રોડ-અમદાવાદ

વૈષ્ણવોને નિવેદન

વૈષ્ણવો ! જો આજના યુગમાં તમારા સંપ્રદાય અને તેની વિશુદ્ધ સંસ્કૃતિની રક્ષાની સાથે, ગૌરવયુક્ત જીવન વ્યતીત કરવું હોય તો વિના વિલંબે નીચેની મહત્વપૂર્ણ યોજનાને સ્વીકારી ભાષા-સાહિત્યના પ્રચારને સમ્પૂર્ણ બળથી સ્વીકાર કરો.

એ તો ઇતિહાસથી સર્વ વિદિત છે કે જે દેશ, સમ્પ્રદાય કે સંસ્થામાં તેના પોષક ભાષા-સાહિત્યનો જેટલા અંશમાં અભાવ જોવામાં આવે છે તેટલા જ અંશમાં તેના અસ્તિત્વનો પણ ક્ષય અવશ્યંભાવી હોય છે. અતઃ આપને પણ અમારી એજ પ્રાર્થના છે કે આ યોજના ઉપર સત્વર ધ્યાન આપી સક્રિય બનો—

પુષ્ટિમાર્ગના સક્રિય અસ્તિત્વને અર્થે તેના પ્રાકટ્ય કર્તા શ્રીમદ્ વલ્લભાચાર્યજીના સ્વરૂપના યથાર્થ માહાત્મ્યજ્ઞાનનો જનસમૂહમાં પ્રચાર કરવો અત્યાવશ્યક છે. આપશ્રીના આદર્શ ભક્તોની કૃતિઓ અને ચરિત્રોનો બાહ્ય આવિર્ભાવ મહત્વપૂર્ણ છે એમ સમજી અમે 'શ્રીવલ્લભીય-સુધા' અને 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત-કવિ' નામનો દ્વિદલાત્મક ગ્રન્થ હવે પછી બહાર પાડવાની ઇચ્છા રાખીએ છીએ અને તેમાં આપનો નિમ્નાંકિત પ્રકારે સહકાર વાંછિએ છીએ.

૧. તમારી અને તમારા મિત્રોની પાસેના અપ્રસિદ્ધ હિન્દી, ગુજરાતી વલ્લભીય-સાહિત્ય (આચાર્યશ્રી અને તેમના વંશજો સંબંધીનુંજ)ની અપેક્ષા.

૨. વલ્લભીય કવિઓની અપ્રસિદ્ધ પ્રામાણિક જનશ્રુતિ, એવં આંતર, બાહ્ય પૂરાવાઓની અપેક્ષા.

૩. લાગવગ ધરાવતાં ટ્રસ્ટકો અને સજ્જનો પાસેથી આર્થિક સહાય.

[આ સંબંધી વિશેષ જાણવા માટે પત્ર-વ્યવહાર કરો.]

વિદ્યાવિભાગ—કાંકરોલી

श्रीद्वारकेशो जयति ।

પ્રસ્તાવના

———:o:———

વ્રજભાષા વાર્તા–સાહિત્યનો ઇતિહાસ
અને
તેની પ્રામાણિકતા

યદ્યપિ વિશ્વમાં સર્વોપરિ મનાતી આર્ય-સંસ્કૃતિની ભાવનાનુસાર, સ્વરૂપ–સમ્પન્ન બ્રહ્મ અને નામ–સમ્પન્ન **વ્રજભાષા–સાહિત્યના** વેદ જેમ સ્વતઃ સિદ્ધ મનાય છે તેમ સ્વ-**પ્રચારનું મુખ્ય કારણ** સમ્પ્રદાયની ભાવનામાં તેનું વ્રજભાષા–સાહિત્ય પણ એ જ પ્રકારે સ્વયંસિદ્ધ મનાતું આવ્યું છે; તથાપિ સાહિત્યિક–દૃષ્ટિએ તેનું નિર્માણ કોણે, ક્યા પ્રકારે, કેવા કાળમાં, કેમ કર્યું તે પરત્વે ગંભીર વિચારની આવશ્યકતા છે.

મુદ્રિત, અમુદ્રિત લગભગ સારાયે ભાષા–સાહિત્યના મુખ્ય મુખ્ય ગ્રન્થોના અધ્યયન એવં મનન પશ્ચાત્ વીસ વર્ષના મારા અનુભવે મને તે સંબંધી નિમ્ન–પ્રકારનો નિશ્ચય આપ્યો છે–

'अर्थं तस्य विवेचितुं नहि विभुर्वैश्वानराद्वाक्पते,
रन्यस्तत्र विधाय मानुपतनुं मां व्यासवच्छ्रीपतिः ।
दत्त्वाऽऽज्ञां च कृपावलोकनपटुर्यस्मादतोऽहं मुदा,
गूढार्थं प्रकटीकरोमि बहुधा व्यासस्य विष्णोः प्रियम्× ॥

× જો કે મૂઢ પુરુષો આ શ્લોકને પ્રક્ષિપ્ત અથવા તો આત્મશ્લાઘાવત્ કહી જગદ્‌ગુરુ પરત્વે પ્રમત્ત પ્રલાપ કરે છે, તથાપિ એ અલ્પજ્ઞો જો ગીતા આદિનાં '**तस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः**' તથા '**यदा यदा हि धर्मस्य**' ઇત્યાદિ સ્વસ્વરૂપ એવં સ્વપ્રાકટ્ય–પ્રયોજનદર્શક શ્લોકોને ધ્યાનમાં લે, તો તેમને પોતાના કરેલા પ્રમત્ત પ્રલાપ ઉપર વિલાપ કરવાની નિતાન્ત આવશ્યકતા જણાઇ રહેશે.

મહાપુરુષો પૃથ્વી ઉપર પ્રકટ થઇ પોતાનાં સ્વરૂપ એવં પ્રાકટ્ય–

ઉપર્યુક્ત શ્લોકમાં દર્શાવેલી ભગવદાજ્ઞાના પાલનને અર્થે એ વિભુવદનાનલે ભૂમિ ઉપર પ્રકટ થઈ પોતાના પ્રાકટ્ય–હેતુને નિમ્ન પ્રકારે સિદ્ધ કર્યો—

સ્વલ્પ વયે જ એ 'વૈશ્વાનરે' તત્કાલિન પ્રસિદ્ધ પાટનગરો એવં તીર્થ–સ્થળોમાં વારંવાર પધારી સ્વતેજથી પ્રથમ ત્યાંનાં માયાવાદાચ્છાદિત આવરણોને ભસ્મીભૂત કર્યાં. અનન્તર એ 'વિભુ'એ વિશુદ્ધ બ્રહ્મવાદી શુદ્ધાદ્વૈત જ્ઞાનાકાશને પુનઃ નિર્મળ કર્યું. અને તેમાં વિદ્વાનો એવં સમ્રાટોદ્વારા વારંવાર પોતે 'કનક'× આદિના અભિષેકોથી સમ્માનિત થઈ 'ભક્તિ–માર્તંડ' રૂપે સ્થિત થયા.

એ દિવ્ય માર્તંડે સારાયે ભારતવર્ષમાં વ્યાપ્ત તે સમયની બાહ્યાભ્યંતર–રાજકીય એવં ધાર્મિક વિપ્લવરૂપ–અશાન્તિને પોતાનાં ઉગ્ર તત્ત્વાદિ કિરણોથી નષ્ટ કરી, એક અત્યદ્‌ભુત કૃષ્ણ–ભક્તિના સ્રોતને સ્વ–આત્માનંદમાંથી બાહ્ય પ્રકટ કર્યો. અને તપ્ત તથા તૃષિત જીવોને તેના પાન માટે આહ્વાન કર્યું.

વ્રજનરેશનંદનની ભાગવતોક્ત ગૂઢાર્થમયી તે ભક્તિનું પાન સર્વસાધારણ ને સુલભ કરવાને અર્થે એ 'વાગીશે' નાના ગ્રન્થોના નિર્માણદ્વારા ફલમાર્ગને નિશ્ચિત કર્યો. અને તે માર્ગ–વૃક્ષની શીતલ છાયામાં દમલા, પદ્મનાભ, કુંભન એવં સૂરદાસાદિ મહાનુભાવોને એકત્રિત કર્યા.

પ્રયોજનોને આત્મવિશ્વાસ ભર્યાં વાક્યો દ્વારા પ્રકટ કરી સામાન્ય પુરુષોથી પોતાની વિલક્ષણતાને લોકહિતાર્થે સૃષ્ટિમાં સિદ્ધ કરે છે, જેના અનેક ઈતિહાસો સાક્ષી–દાતા છે. —લેખક.

× હરિહરભટ્ટના સં. ૧૬૬૦ ના લખેલા 'વિષ્ણુસ્વામિચરિત' નામક સંસ્કૃત ગ્રન્થમાં પણ 'કનકાભિષેક'નો એક વધુ ઉલ્લેખ પ્રાપ્ત થયો છે.

અનન્તર તેમના યશોગાનથી સંહૃષ્ટ થયેલા એ ' રાસલીલૈક-ત્તાત્પર્યે ' એમને વ્રજભક્તોના સમ્બન્ધવાળી રાસાદિ લીલાઓથી પ્લાવિત કર્યા. અને ફલતઃ તેમની દ્વારા એ વ્રજભક્તોના પૂર્ણ સંબંધને પ્રાપ્ત થયેલી રસમયી પ્રાકૃતિક-અકૃત્રિમ, સ્વાભાવિક-વ્રજભાષાને ભક્તિ સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં ખેંચી, તેને તેનું પ્રધાનપદ આપ્યું.

પશ્ચાત્ તે ભાષા-ક્ષેત્રને વિસ્તૃત બનાવવાને અર્થે એ 'મહાપ્રભુ'એ સૂરદાસાદિની વાણીમાં સ્વસુધાને મિશ્રિત કરી તેનું ' મણિ-કાંચન ' યોગરૂપે સમ્પાદન કર્યું.

એ પ્રકારે વ્રજભાષા-સાહિત્યનો આવિર્ભાવ કરી એ 'વૈશ્વાનરે' સર્વત્ર જનસાધારણમાં પણ ભાગવતના ગૂઢાર્થને સર્વાનુભવગોચર કર્યો. અને તે દ્વારા પોતાનું પ્રાકટ્ય-પ્રયોજન લોકમાં સિદ્ધ કર્યું.

તે સમયથી તત્કાલીન હિન્દી સ્વરૂપિણી એ વ્રજભાષા આપની છત્રછાયા નીચે ફલી ફૂલી અને સદાને માટે ' વાક્પતિ 'ની કૃતજ્ઞ બની. જે વાત આજના તટસ્થ વિદ્વાનો પણ મુક્ત કંઠે સ્વીકારે છે.[૧]

બસ, તે જ દિવસથી વ્રજભાષા સાહિત્યનો પૂર્ણ ભાગ્યોદય થયો.

આચાર્યશ્રીએ અપનાવેલી એ વ્રજભાષા સંસ્કૃત શબ્દો અને ક્રિયાઓથી જ પરિપૂર્ણ હોઈ સાહિત્યની દૃષ્ટિએ પણ સંસ્કૃતના પ્રચારમાં ઘણી ઉપયોગી નીવડી. અસ્તુ.

વૈશ્વાનરના અન્તર્ધાન બાદ તેમના કુમાર 'શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે' તો પિતૃચરણથી પ્રોત્સાહિત થયેલ તે ભાષાસાહિત્યને અષ્ટછાપની સ્થાપના દ્વારા ગૌરવ શિખરે પહોંચાડયું. અને તેમાં સ્વયં પણ રચના કરીને,

---

१ व्रजभाषा सदा इनकी कृतज्ञ रहेगी । क्योंकि इन्होंने उसे प्रोत्साहित किया और उनके शिष्योंने उसे गौरव के शिखर पर पहुंचा दिया । **रामनरेश-त्रिपाठी** । इन पितापुत्र स्वामियोने हिन्दी गद्यका भी बडा उपकार किया । **मिश्रवन्धु**.

'ભાષા'ને 'ભાખા' કહી તિરસ્કૃત કરનારા વિદ્વાનોના સમક્ષ ભવ્ય આદર્શ વ્યાપ્યું.

યદ્યપિ આપે આચાર્ય-મર્યાદાની રક્ષણાર્થે સ્વરચનાને સંકેતાત્મક પરોક્ષ રૂપ આપ્યું તથાપિ તે દ્વારા પોતાના વ્રજભાષા પ્રતિના પક્ષપાતને ભક્ત-કવિઓ સમક્ષ વસ્તુતઃ સિદ્ધ કર્યો.

અનન્તર આપની વિદ્યમાનતામાંજ શ્રીગોકુલેશ, શ્રીરઘુનાયક આદિ આપના સુપુત્રોએ પણ ભાષામાં અનેક રચનાઓ કરી પદ્ય-સાહિત્યમાં વ્રજભાષાનું સામ્રાજ્ય સ્થાપ્યું, જેનો પ્રભાવ કાવ્ય-ક્ષેત્રમાં અખંડિત રૂપે આજપણ તાદશ છે.

આ પ્રકારે પિતા, પુત્ર અને તેમના વંશ તથા અષ્ટછાપાદિ સેવકોએ પણ વિશુદ્ધ વ્રજભાષા, વ્રજશૃંગાર અને વ્રજભક્તિને આર્યાવર્તના ખૂણે ખૂણે સ્થાપી સ્વ-સ્વપ્રાકટ્ય-હેતુને પૂર્ણ કર્યાં.

આમ સાહિત્યની પદ્યશૈલીને પરિપૂર્ણ કરી અગ્નિકુમાર શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે ભગવદાજ્ઞાથી પ્રેરિત થઈ વ્રજભાષાની ગદ્યશૈલી તરફ પણ મુખ માંડયું.[1] અને તેનો પોતાના જીવનકાલ પર્યન્ત મૌખિક પ્રચાર કર્યો.

શ્રીગોકુલેશનું વ્રજભાષા નેતૃત્વ

અગ્નિકુમારના તિરોધાન અનન્તર એ ભાષાનેતૃત્વનું કાર્ય એમના ચતુર્થ પુત્ર શ્રીગોકુલેશે સંભાળ્યું. કિન્તુ આપનું નેતૃત્વ પોતાના પિતા અને પિતામહના સમય કરતાં વિલક્ષણ પ્રકારનું રહ્યું. ઉક્ત ઉભય પિતા, પુત્રના સમયમાં તો ગણુત્રીના સંસ્કૃત વિદ્વાનો દ્વારા જ કેવળ ભાષા પરત્વે ઉપેક્ષાભાવ રહ્યો, પરંતુ શ્રીગોકુલેશના સમયમાં તો વિધર્મી રાજ્યનો આશ્રય પ્રાપ્ત કરી હરીફ યાવની ભાષાએ રાષ્ટ્રપદ ધારણ કર્યું હતું. યદ્યપિ એનો પ્રચાર રાજા ટોડરમલદ્વારા હિન્દુઓના આર્થિક હિતને અંગે થયો હતો તથાપિ તેને સંસ્કૃત એવં વ્રજભાષાની પ્રતિસ્પર્ધા કરતાં શનૈઃ શનૈઃ સાહિત્ય-ક્ષેત્રને પણ સ્પર્શ કરવા માંડયો.

---

૧ જુઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત.

આ વિકટ પરિસ્થિતિને અનુભવી પરમ નિપુણ એવં દૂરદર્શી શ્રીગોકુલેશે પિતૃચરણ દ્વારા પ્રસ્ફુરિત ગદ્યને જનસાધારણમાં પ્રચારિત કરી વ્રજભાષાને ઉત્તેજિત રાખવાને તત્કાલીન કથાની વાર્તાત્મક શૈલી ને અપનાવી. કેમકે તે સમયમાં લોકોની અભિરુચિ કથા, વાર્તા અને ધર્મપ્રતિ વિશેષ દેખવામાં આવતી હતી. પુરાણોની કથા વાર્તા દ્વારા લોકો ધર્મપ્રતિ એવા તો આસક્ત રહેતા કે તેને માટે તેઓ આવશ્યક પડયે પોતાનો પ્રાણ પણ અર્પણ કરતા.

એ પ્રકારે ભાષા અને ધર્મના અસ્તિત્વની સાથે અભ્યુદયાર્થે પણ શ્રીગોકુલેશે મૌખિક કથાત્મક પ્રચાર કર્યો, કિન્તુ મિથ્યા ક્રિયા, વાણી અને ધ્યાનને સર્વથા પરિત્યાગ કરનાર એ મહાપુરુષે પોતાના તે કાર્યનો વ્યક્તિત્વ, સમાજ કે સાંપ્રદાયિક પ્રતિષ્ઠાની રક્ષણાર્થે પણ આધુનિક ‘ જૂઠ઼ા પ્રચાર ’ (Propaganda) સાથે યત્કિંચિત્ પણ સ્પર્શ થવા દીધો નહિ, કે જેવું કેટલાક દુર્ભ્રાન્તો માને છે.

એ વાતના પુરાવામાં વાર્તાનાં અનેક દૃષ્ટાન્તોમાંના એકાદ બે આ પ્રકારે છે—

કૃષ્ણદાસ અધિકારીના વ્યક્તિત્વ અને સાંપ્રદાયિક સંબંધની પ્રતિષ્ઠાની રક્ષાર્થે પણ વેશ્યા, તથા બંગાલીની ઝોંપડીમાં આગ લગાડવી અને ભૂત થયા આદિના પ્રસંગોને છુપાવવા આવશ્યક હોવા છતાં તે છુપાવ્યા નથી. તેવી જ રીતે નંદદાસનો રૂપમંજરી સાથેનો પ્રેમ અને સનાતની દૃષ્ટિએ ખાનપાનમાં તેની સાથેનો વ્યવહાર પણ છુપાવવામાં આવ્યો નથી. ઇત્યાદિ.

નિજવાર્તાથી વાર્તા પ્રત્યેની અનેક શંકાઓનું સહજ નિવારણ

ઉક્ત સત્યાંશની પૂર્તિમાં, શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાની માફક આચાર્યશ્રીની નિજવાર્તા, ઘરૂવાર્તા, બેઠક ચરિત્ર અને ભાવસિન્ધુને પણ સ્વગુરુ શ્રીગોકુલેશના મુખથી શ્રવણ કરી તેનું જે સંકલન કર્યું છે; તેમાં આપ, ચોરાશી સંખ્યા કેમ ? વાર્તાનો મૂળ ઉદ્દેશ્ય શો ? અને વાર્તાની પ્રામાણિક ઉત્કૃષ્ટતા આદિ પ્રશ્નો ઉપર નિમ્ન પ્રકારે સ્પષ્ટીકરણ કરે છે—

'श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके सेवक तो बहोत हैं। और श्रीगोकुलनाथजी महाराज आप श्रीमुखतें चौरासी वैष्णव की वार्ता (ही क्यों) कही ताको हेतु यह है जो-(ये) चौरासी वैष्णव कैसे हते, ये मुख्य हैं, जिनकुं श्रीमहाप्रभुजी आपु प्रेमलक्षणाभक्ति को दान किये हैं। सो कैसे जानिये सो गोविन्दस्वामी गाये हैं' जो-

'भक्ति मुक्ति देत सबहिनकों निजजनकों कृपाप्रेम बरषत अधिकाई।'

'सो कृपाप्रेमवारे को कहा लक्षण है? जो जिनसों श्रीठाकुरजी साक्षात वाही देहसों बोलत हैं, और बातें करत हैं, चहियत सो मांगि लेत हैं।'

'और श्रीगोकुलनाथजी श्रीसर्वोत्तम की टीका में पद्मनाभदास को स्वरूप लिखे हैं। तातें ए चोरासी भगवदीय कैसेहैं जैसें भगवानके गुण गायेतें जीव कृतार्थ होत हैं तेसें (इन) भगवदीन कों जस गाये तें जीव कृतार्थ होत हैं। वाही तें श्रीसुकदेवजी नवमस्कंधमें सब राजान की कथा कही। सो वे राजा भगवदीय हुते। तातें प्रथम भगवदीय की कथा कहिये तो भगवतकथा को अधिकार होय। तहीतें श्रीसुकदेवजी नवमस्कंध में भगवदीयेको चरित्र कहिके पाछे दसमस्कंध में भगवान को चरित्र कहे। ताहीतें श्रीगोकुलनाथजी चोरासी वैष्णवकी वार्ता प्रकट कीनी।'

'और श्रीगोकुलनाथजी आप कथा कहते सो एक दिन श्रीगोकुलनाथजी आप दामोदरदास संभरवारे की वार्ता करत हुते। तब एक

वैष्णव ने पूछ्यो जो महाराज ! आज कथा न कहोगे ? तब श्रीगोकुलनाथजी आप श्रीमुख तें कह्यो जो आज तो कथा कौ फल कहत हैं। तातें भगवदीयनकों अवस्य चोरासी वार्ता कहनी और सुननी जातें भगवद्भक्ति होय, और श्रीठाकुरजो के चरणारविंद में स्नेह होय और श्रीनाथजी प्रसन्न होंय।' (सं.१८५१ को हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।)

આથી વાર્તાના વિવેચકો સ્પષ્ટ સમજી શકશે કે—

૧ આચાર્યશ્રીના કેવળ ચોરાશી જ સેવકો ન હતા જેમ 'ભારત ધર્મકા ઇતિહાસ'માં મિ. શિવશંકર મિશ્ર લખે છે.

૨ વાર્તા શ્રીગોકુલનાથજીના સમયની છે તેના સુદૃઢ પુરાવા રૂપે સ્વયં શ્રીગોકુલેશે સંસ્કૃતમાં લખેલી શ્રીસર્વોત્તમજીની ટીકામાં પદ્મનાભદાસના તથા વલ્લભાષ્ટક ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકામાં આવેલા કૃષ્ણદાસમેઘનઆદિના વાર્તાના જ અક્ષરશઃ આપેલા પ્રસંગોનાં દષ્ટાંતો વિદ્યમાન છે.

એથી એ વાત નિર્વિવાદ છે કે શ્રીગોકુલેશના ગુજરાતી શિષ્યોએ શ્રીગોકુલેશની પાછળથી તેની રચના કરી નથી, જેમ વ્યક્તિત્વની રક્ષાને અર્થે સ્વ૦ લબ્ધપ્રતિષ્ઠ પં. રામચંદ્ર શુક્લે એમના 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'માં તથા નાગરી પ્રચારિણી સભા–કાશી દ્વારા પ્રકાશિત હિન્દી શબ્દકોષની પ્રસ્તાવનામાં વાર્તા પ્રતિ એક અસહ્ય અન્યાય પૂર્ણ લેખ લખીને જણાવ્યું છે તેમ– જો કે અમે એ સંબંધી એમના મન્તવ્યને સંપૂર્ણ જાણવાને તથા તેને દૂર કરાવવાને અર્થે સબળ પ્રમાણો મોકલવા તેમની સાથે અંગ્રેજીમાં પત્રવ્યવહાર પણ કર્યો હતો છતાં નાગરી પ્રચારિણીના અનેક પત્રોદ્વારા તેમની બિમારીની જ ખબરો આવતી રહેવાથી અમારો એ પ્રયત્ન સફળ ન થયો. અને હાલમાં જ તેમના સ્વર્ગવાસનું સાંભળી ચિત્તને ખેદ થયો. અસ્તુ.

૩ વાર્તાની રચના વલ્લભ સમ્પ્રદાયની ગાદીનો મહિમા વધારવા અર્થે જૂઠા પ્રચારના રૂપમાં કરવામાં આવી નથી, જેમ પં. રામચંદ્ર શુકલે લખ્યું છે, કિન્તુ ભગવદ્પ્રાપ્તિનાજ ઉદ્દેશ્યથી એક ભક્તિની દૃષ્ટિએ જ તેની વાસ્તવિક અનુભવ સિદ્ધ રચના કરવામાં આવી છે-અતએવ તેમાં જ્ઞાતિ, ગૌરવ, સંબંધ આદિ ભૌતિક તત્ત્વોના પક્ષાગ્રહની ઉપેક્ષાજ રહેલી છે. કેમકે-દૃષ્ટાંત રૂપે-

નંદદાસજી ચાહે સનાઢ્ય હો કે સરયૂપારિણ, શ્રીગોકુલનાથજીને તેમ જ પુષ્ટિ સમ્પ્રદાયને તેમના જ્ઞાતિસંબંધથી કોઈ ગૌરવ અથવા અન્ય લાભ નથી. તેવીજ રીતે નંદદાસજી ચાહે રામાયણ રચયિતા તુલસીદાસના ભાઈ હો કે અન્ય તુલસીદાસના, તેથી પણ સમ્પ્રદાયને જરાયે લાભ કે હાનિ નથી. ઊલટું સમ્પ્રદાયની દૃષ્ટિએ તો મર્યાદા પરમ ભક્ત તુલસીદાસની કક્ષા પણ ગૌણજ છે, કેમકે તેમણે મીરાંની માફક સ્વઇષ્ટ શ્રીરામચંદ્રજીને અનેક પરિશ્રમ કરાવ્યા છે જેનો પુષ્ટિદૃષ્ટિથી તો બહિષ્કારજ છે. આથી પાઠકો સમજી શકશે કે વાર્તામાં ભૌતિક જૂઠો સ્વાર્થમય પ્રચાર નથી જ.

૪ સમ્પ્રદાયમાં શ્રીગોકુલેશ અને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ જેવા વાર્તાને શ્રીસુબોધિનીજીની કથાના ફલરૂપે કહે છે. અર્થાત્ પુષ્ટિમાં સાધન અને ફલનો અભેદ હોઈ ઉત્તમ અને ગૌણતાની સમાન આને ફલરૂપે કહેલું નથી, કિન્તુ આગળ ઉપર 'વાર્તા–સાહિત્યનો વાસ્તવિક ઉદ્દેસ્ય' એ પેરેગ્રાફમાં કહેવાશે તેમ તે કેવળ સુધાના અનુભવ રૂપ હોઈ શ્રીસુબોધિની આદિ ભગવલ્લીલાનિદર્શક પરમોત્કૃષ્ટ ગ્રન્થોનાયે અનુભવ–સારરૂપ છે. અતઃ પ્રા૦ વાર્તા–સાહિત્ય પ્રથમ ભાગની પ્રસ્તાવનામાં પ્રમાણરૂપ શબ્દાત્મક સંસ્કૃત સાહિત્યના ફલરૂપે આપ્તવાક્યો રૂપ વ્રજભાષા–વાર્તા–સાહિત્યને એ માટે કહેવામાં આવ્યું છે કે–વિભિન્ન શ્રેણીના જીવોની સાંપ્રદાયિક સેવા, સ્મરણ, સિદ્ધાંત અને આચારવિચાર સમેત તેના ફલના અનુભવ પરત્વેની તમામ શંકાઓનું

વિવિધ સક્રિય સંતોષપ્રદ સમાધાન સંસ્કૃત સાહિત્ય દ્વારા પૂર્ણ થઈ શકતું નથી જેવું વ્રજભાષા વાર્તા–સાહિત્ય દ્વારા. બસ, એથીજ એની ફલરૂપતા સ્વતઃસિદ્ધ છે, તોપણ તેથી સંસ્કૃત–સાહિત્યની ગૌણતા થતી નથી, કેમકે એ ઉભય સાહિત્ય બીજ અને ફલની માફક પરસ્પર આધાર–આધેય રૂપે રહેલું છે, જેમ બીજથી ફલ અને ફલથી બીજનું અસ્તિત્વ છે. અતએવ જેમ ઇશ્વરની સર્વરૂપા શક્તિનું લીલા-ભાવના પરત્વે જ પ્રાધાન્ય ગ્રાહ્ય છે વસ્તુતઃ તો ઇશ્વરની સાથે તેનો અભેદ જ શુદ્ધાદ્વૈતરૂપે રહેલો છે તેમ સુધા–આચાર્યશ્રીના સ્વરૂપાનુભવ પરત્વે જ વ્રજભાષા–વાર્તા–સાહિત્યને શ્રીસુબોધિનીજી આદિ ગ્રન્થોની કથાના પણ ફલ રૂપે વર્ણવેલી છે, અને તેની વાસ્તવિકતાનું જ્ઞાન પણ આચાર્યશ્રીના સ્વરૂપના નિગૂઢ જ્ઞાનની સાથે સંકળાયેલું છે. અતઃ આચાર્યશ્રીના મૂળ સ્વરૂપથી વિમુખ પુરુષ–પછી ભલે તે પુરુષોત્તમના સ્વરૂપમાં પૂર્ણ આસક્ત કેમ ન હોય–કદી પણ આ વસ્તુનો વાસ્તવિક અનુભવ પ્રાપ્ત કરી શકશે નહિ એમ જાણીને જ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ વ્રજભાષા વાર્તા–સાહિત્ય પ્રતિ આ અવિરત શ્રમ કર્યો છે. જ્યારે દુરાગ્રહી અને હઠાગ્રહી સાંપ્રદાયિકો એ શ્રમને સમજશે ત્યારે વાર્તાપ્રતિના તમામ આક્ષેપો સહજ દૂર થઈ જશે, એટલું જ નહિ પરંતુ તે વાર્તા ભક્તિ અને ઐતિહાસિક હિન્દી સાહિત્ય–ક્ષેત્રમાં પણ પરમ આદરણીય બની અગ્રસ્થાનને વિના વિરોધે જરૂર પ્રાપ્ત કરશે જ એમ અમે માનીએ છીએ.

ઉક્ત પ્રકારના બીજા પણ અનેક પુરાવાઓ–કે જે અમે આગળ ઉપર આપીશું–શ્રીગોકુલનાથજીના સત્ય કથનને સિદ્ધ કરનારા ભાષા–સાહિત્યમાં વિદ્યમાન છે; અતઃ વ્રજભાષા વાર્તા–સાહિત્યની પ્રામાણિકતા પણ નિઃસંદિગ્ધ જ છે. અસ્તુ.

પિતા અને પિતામહના અથાગ પ્રયાસે તે સમયનો હિન્દુ રાજા અને પ્રજાનો વર્ગ તો બહુધા વૈષ્ણવ જ હતો, ઉપરાંત અહિન્દુ

રાજા પ્રજાઓમાં પણ પ્રાયઃ વૈષ્ણવી પ્રભાવ વિદ્યમાન હતો. અતઃ શ્રીગોકુલેશે એ સમયનો સદુપયોગ કરી વ્રજભાષાના પ્રચારની સાથે સાથે વૈષ્ણવી ભક્તિનો ચોમેર **અનુભવ** ફેલાવવાને અર્થે તત્કાલીન સમસામયિક મહાપુરુષોનાં શિક્ષાપ્રદ એવં મનોરંજક પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાન્તોનું પણ અવલંબન કર્યું.

એ પ્રકારે શ્રીગોકુલેશે વ્રજભાષાના ગૌરવને સાચવી તેના પ્રચાર-બાહુલ્ય દ્વારા સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં યાવનીભાષાનું મુખમર્દન કર્યું. ફલતઃ તે યાવની-ભાષા રાજ્યના દફતરોમાંજ સ્તમિત રહી.

વાર્તા-સાહિત્યનો વાસ્તવિક-ઉદ્દેશ્ય

આમ છતાં શ્રીગોકુલેશનો વાર્તા-સાહિત્યના પ્રચારનો વાસ્તવિક ઉદ્દેશ્ય જુદો જ હતો. યદ્યપિ શ્રીગોકુલેશે ભાષા અને કૃષ્ણભક્તિના પ્રચારને અર્થે ઉપર કહી ગયા તેમ વાર્તા ને કથાનક શૈલી આપી સરળ રાખી અને તે દ્વારા સર્વ સાધારણ ને આકર્ષ્યા તથાપિ તેની કૂટરચના દ્વારા તેના અર્થ ગાંભીર્યમાં મૌલિકતા સ્થાપી.

'माहात्म्य ज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः ।'

એ આચાર્યશ્રીની ભક્તિની વ્યાખ્યાને શ્રીગોકુલેશે વાર્તાના અક્ષરે અક્ષરમાં ઓતપ્રોત કરી ચરિતાર્થ કરી છે. અને તે દ્વારા પુષ્ટિભક્તિના વાસ્તવિક સ્વરૂપનો દૈવીજીવોને અનુભવ કરાવ્યો છે. **વાર્તામાં પુષ્ટિભક્તોના યથાર્થ સ્વરૂપ વર્ણન દ્વારા વસ્તુતઃ આચાર્યશ્રી એવં પ્રભુચરણના સ્વરૂપ-સામર્થ્યનું જે સુનિપુણ પ્રતિપાદન કર્યું છે તે અનુભવતાં** શ્રીગોકુલેશની આચાર્યશ્રી પરત્વેની પ્રગાઢ અનુભવૈકવેદ્ય બુદ્ધિનો ખાસો પરિચય થાય છે, અને વિના પ્રયાસે એમ કહેવાઈ જવાય છે કે શ્રીગોકુલેશ પણ શ્રીસૂરની માફક મહાન કૂટનીતિજ્ઞ હતા.

કિન્તુ ખેદ છે કે આધુનિક પાશ્ચાત્ય કેળવણીના સામ્પ્રદાયિક અર્ધદગ્ધ વિદ્યાર્થીઓ આ આધ્યાત્મિક તત્ત્વદર્શક વાર્તાઓને કેવળ ભૌતિક પાશ્ચાત્ય ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ જોઈ તેનો ઉપયોગ તુચ્છ સ્વાર્થ પરત્વે જ કરવા ધારે છે.

વાર્તાની પૌરસ્ત્ય ઐતિહાસિક શૈલી

અમે પહેલા ભાગની પ્રસ્તાવનામાં આર્યાવર્તના ઇતિહાસની વ્યાખ્યા આપતાં એ બતાવ્યું છે કે પ્રાચીન આર્યાવર્તનો ઇતિહાસ પરંપરાપ્રાપ્ત ઉપદેશો દ્વારા ચતુર્વિધ પુરુષાર્થ પ્રતિપાદન કરવાવાળો છે, એટલે તેમાં આવશ્યકતાથી અધિક ભૌતિક ગાથાઓનો સમાવેશ જોવામાં આવતો નથી. અરે ! એટલું જ નહિ પણ શ્રી શંકર, રામાનુજ, નિમ્બાર્ક અને શ્રીવલ્લભ જેવા મહાન આચાર્યોના પ્રાકટ્ય–સંવતો તકનો ઉલ્લેખ પ્રાચીન તત્કાલીન પુરુષો દ્વારા થયેલો નથી, કેમકે આધ્યાત્મિક બાબતોમાં તે સમયના પુરુષો તેને નિરર્થક સમજતા હતા.

આમ છતાં વાર્તા–સાહિત્ય ઇતિહાસ–ક્ષેત્રથી વિમુખ રહ્યું નથી. તે સાહિત્યમાં શ્રીગોકુલનાથજીથી પણ વિશેષ શ્રીહરિરાયજીએ ઐતિહ્ય સાધનો એટલાં તો પરિષ્કૃત અને પરિવર્દ્ધિત કર્યાં છે કે તે દ્વારા નવીન ઇતિહાસલેખકો પણ સમય આદિને સ્થિર કરી શકે છે.

અલબત્ત, વાર્તાની શૈલી કથાનકરૂપ હોવાથી તે ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ ક્રમશઃ એવં પરિપૂર્ણ નથી. દૃષ્ટાંતમાં–કૃષ્ણદાસનો બંગાલીઓને કાઢવાનો સમય અને બંગાલીઓનો અકબરના દરબારમાં ફરિયાદનો સમય એક ન હોવા છતાં વાર્તાના પ્રસંગમાં તેની રૂપરેખા અવિચ્છિન્ન રાખવામાં આવી છે. તથાપિ ઇતિહાસજ્ઞો તત્કાલીન અન્ય ઐતિહાસિક ગ્રન્થોના આધારે તેને અલગ અલગ કરી શકે છે. અસ્તુ.

પ્રસંગાત્મક વાર્તાનું નવ્યસાહિત્યાત્મક સંસ્કરણ

શ્રીગોકુલેશ પ્રથમ તો વ્રજભાષાનો પ્રચાર પિતૃચરણની માફક મધ્યભારત અને ગુજરાત આદિ સ્થળોએ વાર્તા કથાદ્વારા મૌખિક રૂપે નિયમિત કરતા, કિન્તુ જેમ જેમ યાવનીભાષા–ઉર્દૂ–નો વિસ્તાર રાજ્યના આશ્રયથી વધવા માંડયો તેમ તેમ આપ પણ સચેત થયા, અને તે ઘાતક પ્રચાર ભવિષ્યમાં વ્રજભાષા ઉપર અણધાર્યો પ્રહાર ન કરે એને માટે આપે ઉક્ત વાર્તાઓના વિવિધ પ્રસંગોનું સ્વશિષ્ય એવં મહાનુભાવ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ પાસે નવ્યસાહિત્યિક સંસ્કરણ કરાવ્યું. ત્યારથી એ વાર્તાઓ ગ્રન્થરૂપે પ્રસિદ્ધ થઈ. [વાર્તાનાં સંસ્કરણો સંબંધી વિશેષ જુઓ આ પુસ્તકમાં આવેલું પ્રાથમિક હિન્દી વક્તવ્ય]

એ સમયે વાર્તાત્મક સુપ્રસિદ્ધ વૈષ્ણવોની ચોર્યાશી અને બસોબાવન સંખ્યાઓનું પણ નિર્માણ થયું. અને તે શ્રીહરિરાયજી દ્વારા થયેલું હોવાથી તેમાં શ્રીગોકુલનાથજીના નામનો પણ ઉલ્લેખ પરોક્ષે થયો.

'વાર્તાઓ' શ્રીગોકુલનાથજીની રચેલી છે તેના બીજા પણ બાહ્યાભ્યંતર પુરાવાઓ આ પ્રકારે પ્રાપ્ત થાય છે—

બાહ્ય પુરાવાઓ—

૧ આર્યાવર્તના ખૂણે ખૂણે વ્યાપ્ત હસ્તલિખિત તે વાર્તાના પ્રાચીન ઉપલબ્ધ ગ્રન્થોમાં 'શ્રીગોકુલનાથજી રચિત' એ શબ્દો છૂટથી વાપરેલા જોવામાં આવે છે.

૨ શ્રીગોકુલનાથજીની ઉપસ્થિતિમાં શ્રીગોકુલમાંજ લખાયેલું વ્રજ સં. ૧૬૯૭ (ગુ. સં. ૧૬૯૬) ના ચૈત્ર સુદ ૫ નું પુસ્તક કાંકરોલી સરસ્વતીભંડારમાં પ્રાપ્ત થાય છે, જેનો બ્લોક પણ આ પુસ્તકમાં આપવામાં આવ્યો છે.

૩ શ્રીગોકુલનાથજીના સમસામયિક શ્રીદેવકીનંદજીએ '**प्रभुचरित्रचिंतामणि**' નામક પોતાના ગ્રન્થમાં તેનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

૪ પ્રભુચરણના અનન્ય સેવક અને શ્રીગોકુલનાથજીના સહયોગી અલીખાન પઠાણરચિત 'ચોર્યાશી વૈષ્ણવ'નું પદ, જે સર્વત્ર પ્રસિદ્ધ છે.

૫ શ્રીગોકુલેશના સમસામયિક એવં શિષ્ય મહાનુભાવ શ્રીહરિરાયજીનો 'ભાવપ્રકાશ' તેનો એક વધુ અને સૌથી જબ્બર પુરાવો છે, કે જેનો કાકાવલ્લભજીએ પોતાના ચોર્યાશીના ધોળમાં પણ ઉલ્લેખ કર્યો છે.

૬ શ્રીહરિરાયજીના શિષ્ય શ્રીવિઠ્ઠલનાથ ભટ્ટે સ્વરચિત 'સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમ' નામક ગ્રંથમાં શ્રીગોકુલનાથજીના રચેલા ગ્રન્થોનાં નામોમાં તેનો ઉલ્લેખ કર્યો છે.

૭ સમસામાયિક શ્રીનાથદેવનો સંસ્કૃત અનુવાદ તેનું એક અકાટ્ય પ્રમાણ છે.

૮ ષષ્ઠપુત્ર શ્રીયદુનાથજીરચિત 'દિગ્વિજય' જેની રચના સં. ૧૬૫૮માં થઈ છે તેની સાથે વાર્તાની સંપૂર્ણ વિગતો પ્રાયઃ બંધબેસતી આવે છે.

૯ વાર્તા ઉપરની અચલ શ્રદ્ધાને પ્રકટ કરતા શ્રીગોકુલેશના સમયથી અદ્યાપિપર્યંત અનેક મહાનુભાવો જેવા કે—અલીખાન, મોહન, શ્રીનાથ, માધો, શ્રીહરિરાયજી, નિજજન, શ્રીદ્વારકેશજી, કાકા વલ્લભજી, દાસવલ્લભ, ભારતેંદુ હરિશ્ચન્દ્ર અને દયારામ આદિના ગદ્યપદ્યાત્મક સંસ્કૃત, વ્રજ એવં ગુર્જરભાષીય અનુવાદો.

આંતર પુરાવાઓ—

૧ વાર્તા પરત્વે વલ્લભવંશના મહાનુભાવોમાં પણ અખંડિત **શ્રદ્ધાને સ્થાન.**

૨ વાર્તાનો **સર્વગ્રાહ્ય પ્રચાર.**

૩ વાર્તામાં રહેલી સેવા, સિદ્ધાંત આદિની સૂક્ષ્મ બારીકિઓ જે આજપર્યંત ગોસ્વામિબાલકોમાં પણ મહાનુભાવોથી અતિરિક્ત કોઈ નથી જાણતું.

૪ વલ્લભવંશનાં ઘરોની સૂક્ષ્મ અપ્રસિદ્ધ વિવિધ રીતભાંતો.

૫ સમય સમય ઉપરનાં પ્રાસંગિક અપ્રસિદ્ધ પદો અને 'મુકુન્દ-સાગર' જેવા અપ્રાપ્ય અજ્ઞાત ગ્રન્થોનો ઉલ્લેખ.

૬ વાર્તામાં આવેલ રીત, રિવાજ, વંશજો અને પંચમહાલ આદિના ઉલ્લેખોની વિદ્યમાનતા.

ઉપર્યુક્ત કથિત બાહ્યાભ્યંતર પુરાવાઓથી સંપ્રદાયને જાણુવા-વાળો મનુષ્ય સહજ સમજી શકે છે કે—કોઈપણ વલ્લભવંશીય પ્રતિભાશાલી વ્યક્તિની રચના વિના 'વાર્તાઓ' સર્વગ્રાહ્ય તથા ભૂત એવં વર્તમાન તત્કાલીન સૂક્ષ્માતિસૂક્ષ્મ રહસ્યપૂર્ણ પ્રસંગો અને ચમત્કૃતિઓથી પરિપૂર્ણ થઈ શકે નહિ જ, વળી અલીખાન અને શ્રીહરિરાયજી જેવા સમસામયિક મહાનુભાવોના હૃદયને પણ આકર્ષી શકે નહિ.

આથી વિશેષ શું હજુયે વાર્તાની પ્રામાણિકતા વિષે કહેવું બાકી રહે છે કે!

શ્રીગોકુલેશ વ્રજ-ભાષાના ગદ્ય લેખક કે આદ્યપિતા?

હાં! તો આધુનિક સાહિત્યકારો શ્રીગોકુલેશને વાર્તાના ગદ્યલેખક રૂપે માને છે, કિન્તુ તે ગૌરવાસ્પદ હોવા છતાં અરુચિકર છે. આપને લેખક ન કહેતાં ગદ્ય-રચયિતા અથવા આદ્યપિતા કહેવા વધુ સંગત છે, કેમકે આધુનિક ગદ્યશૈલીનો પ્રથમ સાહિત્યિક-આવિર્ભાવ આપના દ્વારા જ થયેલો છે. જો કે તે પહેલાનુંયે ગદ્ય પ્રાપ્ત થાય છે- તથાપિ તે આધુનિક શૈલીના સૂત્રરૂપ નથી.

શ્રીગોકુલેશની ગદ્યશૈલી શ્રીહરિરાયજીના સમયમાં પરિમાર્જિત થઈ દ્વારકેશજીના સમયમાં આધુનિકતાને પ્રાપ્ત થઈ. એથી શ્રીગોકુ-લેશને જ વ્રજભાષાગદ્યના આદ્યપિતા કહી શકાય.

શ્રીહરિરાયજી અને વ્રજભાષા–સાહિત્ય

શ્રીગોકુલેશ પછી શ્રીહરિરાયજીએ ભાષાનું નેતૃત્વ સંભાળ્યું અને આપે આચાર્યશ્રીના સમયની વિશુદ્ધ વ્રજભાષાનું પુનઃ નવનિર્માણ કર્યું, અર્થાત્ ભાષામાં ઘુસી ગયેલા યાવની શબ્દોને જ્યાં જ્યાં દેખાયા ત્યાં ત્યાંથી દૂર કરી તેને સંસ્કૃતનો પૂર્ણ સહયોગ આપ્યો, અને આચાર્યશ્રી એવં પ્રભુચરણના સેવકોની માફક આપે પણ ભાષા–પદ્યમાં પ્રાયઃ સંસ્કૃતના શબ્દોનો જ પ્રયોગ કર્યો. એ રીતે પદ્યને સુવ્યવસ્થિત કરી ગદ્યનું પણ સુરમ્ય નવ્ય સંસ્કરણ કર્યું અને વાર્તાઓ ઉપરનું 'ભાવપ્રકાશ' ટિપ્પણ, પ્રાકટ્ય–વાર્તા તથા અનેકવિધ ભાવનાઓ આદિને તેમાં યોજ્યાં.

આપના ગદ્યમાં વ્યાકરણ અને શબ્દરચનાઓની પણ અનેક ચમત્કૃતિઓ જોવામાં આવે છે.

વ્રજભાષાની માફક આપે તેની આંતર સંબંધિની ગુર્જર ભાષાને પણ સંભાળી અને પદ્યમાં તેને પણ સ્વરચના દ્વારા અદ્ભુત અને અપરિમિત સ્થાન આપ્યું.

પ્રાકૃત વૈદિકથી પરિષ્કૃત બનેલી સંસ્કૃત ભાષાની જેમ ગાઢ અંતરંગી વ્રજભાષા છે તેમ તે વ્રજભાષાના અતિશય નિકટ સંબંધવાળી ગુર્જર ભાષા હોઈ આપે વ્રજભક્તિમાં તેનો પણ પ્રભુચરણની માફક સમાદર કર્યો, અને તે દ્વારા ગુજરાતીઓના મનને આકર્ષી ત્યાં વ્રજભાષાના પ્રચારને સૌથી વિશેષ વ્યાપક બનાવ્યો.

એ રીતે શ્રીહરિરાયજીએ સંસ્કૃત, વ્રજ અને ગુર્જર એમ ત્રિવિધ ભાષાને ભક્તિ–સાહિત્યમાં સ્થાન આપી સર્વત્ર ત્રિવેણી વહેવડાવી.

શ્રીદ્વારકેશજી અને વ્રજભાષા

શ્રીહરિરાયજીની પછી શ્રીદ્વારકેશજીએ એ ત્રિવેણીનું નેતૃત્વ સંભાળ્યું અને તેમાં અનેક પ્રકારની નવીન રચનાઓને સ્થાન આપી ગદ્ય પદ્યાત્મક રચનાઓ કરી. આપના સમયમાં વ્રજભાષાનો પૂર્ણોદય રહ્યો, તથાપિ પછીથી તેનું નેતૃત્વ વ્યાપકરૂપે

કોઈએ ન સંભાળ્યું એટલે ગદ્યસાહિત્યમાં ઉર્દૂ મિશ્રિત હિન્દીના પ્રચારનું જોર વધ્યું.

જો કે આપના પછી પણ કાકાવલ્લભજી, શ્રી ચટ્ટુજી, શ્રીમટ્ટુજી અને શ્રીગોપિકાલંકારજી આદિ એ શુદ્ધ વ્રજભાષાના ગદ્યનો પ્રચાર કર્યો, કિન્તુ તે કેવળ અમુક અંશમાં વચનામૃતરૂપે હોવાથી વિસ્તૃત ન રહ્યો. પરિણામે આજ ગદ્યમાં નવીન હિન્દીએ પ્રાધાન્યપદ લીધું. તથાપિ એ દિવ્યવલ્લભવંશમાં હજુ પણ વ્રજભાષાનો મૌખિક પ્રચાર ગૃહવ્યવહારમાં તો ચાલુછેજ. વળી પદ્યમાં તો હજુયે આજની હિન્દી વિશુદ્ધ વ્રજભાષાના સામ્રાજ્ય ને નષ્ટ કરવામાં કામયાબ થઈ નથી જ એમ આધુનિક લેખકો પણ સ્વીકારે છે. વ્રજભાષા પદ્ય-સાહિત્યમાં તો એ દિવ્ય વલ્લભવંશની મહાનુભાવ વહુબેટીઓનું સ્થાન પણ અનેરું છેજ, જેનું વિસ્તૃત વિવેચન અમે '**पुष्टिमार्गीय भक्त कवि**' નામક ગ્રન્થમાં હવે પછી આપીશું.

આ પ્રકારે વ્રજભાષા જગદ્‌ગુરુ શ્રીવલ્લભાધીશ્વર અને તેમના વંશની પૂર્ણ ઋણી બની.

આ વિદ્વત્તાપૂર્ણ વિશુદ્ધવંશે જેમ સંસ્કૃતને પૂર્ણ અપનાવી વિદ્વાનોને મોહિત કર્યા તેમ વ્રજભાષાના નેતૃત્ત્વ દ્વારા સર્વ સાધારણને પણ પૂર્ણ આકર્ષિત કર્યા.

એ પ્રકારે શ્રીભાગવતમાં રહેલી નિગૂઢ ભાવમયી નિર્ગુણ ભક્તિના અબાધિત શીતલ, સુગંધિત સ્રોતને વ્રજભાષા દ્વારા સારાયે ભારતવર્ષમાં અવિચ્છિન્નરૂપે વહેવડાવી, તે વિશુદ્ધ વંશે આચાર્યશ્રીના ઉક્ત પ્રાકટ્ય-પ્રયોજનને જગત સમક્ષ સિદ્ધ કર્યું. અને તેથી **श्रीवल्लभ के वंश में सबही वल्लभ रूप**' એ માન્યતા સર્વ સાધારણમાં પણ આજસુધી ચાલી આવી.

વલ્લભજયંતી
સં. ૧૯૯૭
કાંકરોલી.

આચાર્ય ચરણાનુરાગી—
દ્વારકાદાસ પુરુષોત્તમદાસ પરિખ
'સમ્પાદક'-વાર્તા-સાહિત્ય

—: ઉપકાર—સ્મરણ :—

કૃપાપીયૂષપારાવાર શ્રીમદ્ ગોસ્વામી શ્રી૬તૃતીયગૃહતિલકાયિત શ્રીવ્રજભૂષણલાલજી મહારાજ અને આપશ્રીના અનુજ ગોસ્વામી શ્રી ૬ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી મહારાજશ્રીના કેવળ અનુગ્રહ બળનું સ્મરણ કરીને ટૂંકામાં મિત્રવર્ય શ્રીકણ્ઠમણિ શાસ્ત્રી એવં વીસનગરનિવાસી શ્રીપુરુષોત્તમ શાસ્ત્રીનો પણ પૂર્વવત્ ઉપકાર—સ્મરણ કરીશું, કેમકે શ્રીકણ્ઠમણિજી દ્વારા આ 'અષ્ટછાપ'નું પુસ્તક પ્રુફસંશોધન એવં આધુનિક પદ્ધતિથી રમ્ય બની શીઘ્ર બહાર પડયું, તેમજ શ્રીપુરુષોત્તમજીના શુભ પ્રયાસે આ પુસ્તકની છપાઈમાં નિમ્નાંકિત વીસનગરનિવાસી સદ્‌ગૃહસ્થોએ પ્રાથમિક આર્થિક મદદ પ્રદાન કરી. અતઃ તેમનો પણ ઉપકાર અવિસ્મરણીયજ કહી શકાય.

છપાઈ કાર્ય ચાલુ થયા પછી સિદ્ધપુરનિવાસી ભગવદીય શ્રી બલદેવદાસ ભાઈએ પણ યથાશક્તિ આ કાર્યમાં આર્થિક મદદ સ્વયં કરી અને અન્ય વૈષ્ણવો દ્વારા પણ કરાવી. અતએવ એમનો પણ ઉપકાર માનીશું જ.

આ રીતે મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યના અનુગ્રહ બળે જ લડાઈની મોંઘવારીમાં આ બૃહદ ગ્રન્થ બહાર પાડવાને ઉક્ત સજ્જનોની સહાયથી અમે પ્રારંભાયા છતાં આર્થિક ત્રુટી વધુ ને વધુ દેખાતી ગઈ. પરિણામે મૂંઝવણ ઊભી થઈ ત્યારે એ 'સર્વશક્તિધૃગ્ વાગીશે' અમને પુનઃ **શેઠ ઉજમશી પીતાંબરનાં ધર્મપત્ની** જે યાત્રાર્થે અહીં આવેલાં હતાં તેમની દ્વારા મદદ કરાવી ઉત્સાહિત કર્યા. તથાપિ પૂર્તિ ન અનુભવાતી જોઈ અમે પ્રથમ ભાગના વેચાણનું દ્રવ્ય પણ આ કાર્યમાં લગાવ્યું, પરંતુ આ 'અષ્ટછાપે' દામોદરલીલાનું સ્મરણ

કરાવવા માંડયું અને જેમ જેમ આર્થિક મદદ મળતી ગઈ તેમ તેમ ખર્ચની પૂર્તિમાં એ આંગળનું છેટું રહેતું જ ગયું. છેવટે અમને હતોત્સાહી જોઇ એ કૌતૂહલપ્રિય પ્રભુએ આ કૌતુકને સમાપ્ત કર્યું અને શેઠ રમણલાલ દાતાર પેટલાદવાળાને પચાસ પુસ્તકોના અગાઉ ગ્રાહક બનાવરાવી કાર્યને લગભગ સમાપ્ત કર્યું.

જો કે આ કૌતુકે થોડીવાર માટે અમને મૂંઝવણ ઊભી કરી તથાપિ આખરે શ્રીવલ્લભાધીશ પ્રત્યેની અમારી શ્રદ્ધાને ફલીભૂત કરી સદાને માટે પરમાનંદનું દાન પણ કર્યું. અસ્તુ.

અર્થપ્રદાન કરવાવાળાઓનાં શુભ નામોની યાદી—

૧૦૦) શેઠ માણેકલાલ વ્રજલાલ મોદી વીસનગર
૫૦) શેઠ વ્રજલાલ મોતીલાલ વિસનગર
૫૦) બાઈ અમથી તે શેઠ મથુરદાસ લીલાચંદની દીકરી હા. શેઠ વ્રજલાલ વીસનગર
૧૦૦) દાતાર શેઠશ્રી રમણલાલ કેશવલાલ પેટલાદ
૫૧) શેઠ ઉજમશી પીતાંબર પાટણ
૨૫) બાઇ મણી તે શેઠ જેઠાલાલ મંગનલાલની વિધવા સિદ્ધપુર
૫) મનહરલાલ મટુભાઈ મુંબાઇ
૫) બલદેવદાસ નાથુરામ સિદ્ધપુર
૫) રુઘનાથદાસ ગોવિંદરામ લાલચંદ સિદ્ધપુર

સાંપ્રદાયિક 'અનુગ્રહ' માસિકના તંત્રીઓએ પણ વિના મૂલ્યે જે જાહેર ખબરો તેમના માસિકમાં છાપી આ પુસ્તકપ્રસિદ્ધિમાં સહાયતા કરી છે તે બદલ તેમનો ઉપકાર પણ ભૂલીશું નહિ. આ ઉપરાંત અન્ય અગાઉ થયેલા ગ્રાહકોને પણ સ્મરણ કરી સ્મૃતિ—ભ્રમથી વિસ્મૃત બનેલા ભગવદિયોનો પણ ઉપકાર સ્મરણ કરીએ છીએ.

સરૈયા આર્ટના મેનેજરનો શ્રીહરિરાયજીના બ્લોક બદલ તથા 'ભારતવર્ષ'માં જાહેર ખબર વિના મૂલ્ય છાપવા બદલ શ્રીશાસ્ત્રીજી વસંતરામનો પણ ઉપકાર અવિસ્મરણીય જ છે.

દ્વારકાદાસ 'સમ્પાદક વાર્તા—સાહિત્ય.

प्राचीन वार्ता-रहस्य भाग १

अभिप्राय संग्रह—

आपकी पठाई प्राचीन वार्ता-रहस्य की पुस्तकें प्राप्त हुई। अवकाश पायके मैंने अक्षरशः सुनी। आप के ऊपर भगवत्कृपा है तासों एसे सत्कार्यमें आपकी रुचि भई है। आपको यह परिश्रम प्रशंसा योग्य है। काच के भवन में छिद्र देखनो जैसे पीपिलिका को कार्य है, एसे भगवान तथा भगवदीयन के चरित्र में दोष देखनों असज्जनको कार्य है।

× × पं. गोकुलदासजी विद्यासुधाकर-कोटा.

आपका भेजा हुआ "प्राचीन वार्ता-रहस्य" कुछ समय पूर्व मिला। देखने से चित्त बडा प्रसन्न हुआ। आपने इस में वह रंग भर दिया है जो वर्तमान समय के मलिन हृदयों को भी शुद्ध और सुन्दर रूप दे सकता है। ग्रन्थ के प्रारंभमें "श्री गिरिधरगोपाल" के चित्र की मुहर बडी सुन्दर लगी है। कार्य सब प्रकार प्रशंसनीय है।

—जगन्नाथ शास्त्री
संस्कृत पाठशाला. प्रतापगढराज.

× × ×

भक्ति-भागीरथी का आश्रय लेकर अष्टछापकी सरस काव्यधारा के साथ-साथ प्रस्तुत राष्ट्रभाषा हिन्दी के व्रज-भाषात्मक गद्य साहित्यका प्रोत्कर्ष वार्तारूप में साहित्य-जगत में विद्यमान है। किन्तु साधनों के अभाव एवं इस साहित्य के प्रति प्रायः अनभिरुचि के कारण ही परिष्कृत रूप में वह धार्मिक जनता के समक्ष न आसका। ऐसी परिस्थितिमें आवश्यक शङ्का-समाधान-पूर्वक ऐतिहासिक तथ्यपूर्ण स्पष्टीकरण सहित नवीन रूप में इन भक्ति-भावोद्बोधक पुनित भगवद्वार्ताओं का क्रमागत प्रकाशन एक सराहनीय प्रयास है। यह प्राचीन वार्ता-वृत्त का रहस्य-साहित्य-प्रकाशन वैष्णव जगत के लिये एक अनुशीलनीय वस्तु है। इसमें आठ वैष्णवों

की वार्त्ताओं का समावेश है। इसी प्रकार सभी वार्ताओं के पृथक् पृथक् भाग रूप में प्रकाशन का आयोजन सम्पादकने किया है। साम्प्रदायिक वैष्णव जनता इस आयोजन को क्रियात्मक रूप देने में सर्वविध सहायक होगी, ऐसी आशा है। प्रस्तुत ग्रंथ सर्व प्रकार से पठनीय एवं संग्रहणीय है। अग्रिम भागों की हम उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं।

तैलंग श्रीगोकलानन्दजी,
सम्पादक 'दिव्यादर्श'

× × ×

આપે ઉપર્યુક્ત ગ્રન્થનું પ્રકાશન કાર્ય કરી વૈષ્ણવ જનતા ઉપર મહાન અનુગ્રહ જ કર્યો છે. એ બદલ મારાં અંતઃકરણ પૂર્વક આપને અભિનંદન પાઠવું છું. **પ્રેમલાલ જી. મેવચા સુલતાનપુર.**

× × ×

પ્રાચીન વાર્તા–રહસ્ય ભાગ ૧લો એ ગ્રન્થ સમ્પ્રદાયના ભાષા-સાહિત્યમાં એક પહેલરૂપ છે, તેનું સંશોધન પણ ઘણુંજ સારું થયું છે. એ પુસ્તક વાંચી ગયા પછી દુરાગ્રહીઓ સિવાય ભાગ્યે જ કોઇને ભાષા–સાહિત્ય વિશે શંકા રહે તેમ છે. ભાષા સાહિત્યના સંશોધનનું અને પ્રકાશનનું અપૂર્વ કાર્ય ઉપાડી વિદ્યાવિભાગે સંપ્રદાયની સાચી અને મહાન સેવા બજાવી છે. ટીકાઓના જવાબ શિષ્ટભાષામાં આપ્યા છે તે વૈષ્ણવને છાજે તેવા છે. આપ તરફથી પ્રકટ થયેલ પુસ્તક વાંચ્યા પછી વાર્તા–સાહિત્યની અદ્‌ભુતતા અને મહત્તા સમજાયા વિના નહિ રહે.

શેઠ હરિલાલ જે. M. A.
પુ. પુ: પરિષદના મંત્રી. મુંબાઈ.

વધુમાં, આ પુસ્તક લોકપ્રિય બન્યું એના પ્રત્યક્ષ નમૂનામાં નાથદ્વારા વિદ્યાસમિતિ તરફથી ઉત્તમશ્રેણીના પાઠ્યપુસ્તક તરીકે તે જાહેર થયું છે. ઉપરાંત આક્ષેપપરિહાર સમિતિ એવં શ્રી. રામલાલ ચુનીલાલ મોદી, શ્રી રમાનાથ શાસ્ત્રી અને શ્રી પુરુષોત્તમ ચતુર્વેદી સાહિત્યાચાર્ય આદિના સુંદર અભિપ્રાયો પણ આવેલ છે, જે સ્થાનાભાવથી હવ પછીના પુસ્તકમાં ક્રમશઃ આપવામાં આવશે.

સમ્પાદક '**વાર્તા–સાહિત્ય**'

અષ્ટછાપના ગુજરાતી વિભાગનું શુદ્ધિ-પત્રક×

—०:०—

કૃપા કરીને નીચે પ્રમાણે સુધારીને વાંચો—

અશુદ્ધ	શુદ્ધ	પત્ર	પંક્તિ
રાખી	સખી	૭	૧૧
उउ	उन	૧૬	૧૬
(વિશેષ જુઓ પ્રસ્તાવનામાં)×		૧૭	૨૪
सूरका	सूरको	૨૧	૧૮
સૂરસાવલી	સૂરસારાવલી	૩૨	૧૫
સં. ૧૫૪૦	સં. ૧૬૪૦	૩૮	૨૦
સાતે કવિયો	ઉપસ્થિત કવિયો	૩૯	૭
દંડવત કરી	દંડવત કર્યા	૩૯	૧૦
પ્રાસાદાત્મક	પ્રસાદાત્મક	૪૧	૯
સં. ૧૬૦૭	ગુર્જર સં. ૧૬૦૬	૪૩	૫-૭-૧૦-૨૪
દિગ્વદર્શન	દિગ્દર્શન	૪૮	૩
उपास	उपारत	૪૮	૨૩
सरश्याम	सूरश्याम	૪૯	૧૦
જમનાવતામા	સંકર્ષણકુંડ ઉપર	૭૨	૧૩
સં. ૧૬૨૦	સં. ૧૬૨૫	૮૪	૧૮
स्यामस खासी	स्यामसर व्रासी	૧૦૪	૧૩-૨૫

× મજ હિન્દી સાહિત્ય-વિભાગનું શુદ્ધિ પત્રક સ્થલાભાવથી આપવામાં આવ્યું નથી. એટલે પાઠકોએ પ્રેસની થએલી ભૂલોને સ્વયં સુધારી લેવી.

पत्र १८६ पंक्ति २२ में अंकूरजाके स्थान पर श्रीकृष्ण सुधारना.

અષ્ટછાપ

——:÷:÷:——

મહાનુભાવ શ્રીસૂર—

——:*:——

(સં. ૧૫૩૫ થી સં. ૧૬૪૦)

ભક્તિમાર્ગીય કાવ્યક્ષેત્રમાં સૂરદાસ નામક સુપ્રસિદ્ધ ત્રણ ભક્તકવિ થયા છે. તેમાંના એક અને મુખ્ય અમારા ચરિત્ર-નાયક અષ્ટછાપવાળા મહાનુભાવ શ્રીસૂર છે.

તે પરમવંદનીય શ્રીસૂરની ભક્તિવિષયક મહાનુભાવતા એવં ગંભીર ગૂઢાર્થ-સૂચક વાણીની શ્રેષ્ઠતામાં કોઈનાય બે મત નથી જ.

તેઓ શુદ્ધ વ્રજભાષા-પદ્ય-સાહિત્યના આદ્યપિતા એવં ભક્ત-કવિકુલ-સમ્રાટ હોઈ કાવ્યક્ષેત્રમાં બિન હરીફ સૂર્યની માફક સદાય પ્રકાશિત છે.

એમની વિદ્યમાનતાથી અદ્યાવધિ કોઈ કવિએ તેમની સમાન હોવાનો દાવો કર્યો નથી, એ જ શ્રીસૂરની અપૂર્વ સૂર્યવત્ પ્રભાનો પરમોત્કૃષ્ટ વિજય છે.

શ્રીસૂરના આવા અપરિમિત યશથી આકર્ષાઇ અદ્યાપિ પર્યંત ભારત-વર્ષના વિવિધ પ્રાંતોના કેટલાય સર્વોચ્ચ સાહિ-

ત્યકારો અને અન્વેષણ–કર્ત્તાઓએ વિવિધ ભાષામાં તેમની જીવની લખવાનો પ્રયાસ કર્યો છે.

કિંતુ મારે કહેવું જોઈએ કે વ્રજભાષા–ગદ્ય–સાહિત્યના આદ્યપિતા શ્રીગોકુલનાથજી એવં તત્શિષ્ય શ્રીહરિરાય-મહાપ્રભુથી અતિરિક્ત કોઈનેય તે સંબંધી પૂર્ણ સફલતા પ્રાપ્ત થઈ નથી જ.

એથી વિરૂદ્ધ, એ કહેવું જરાય અતિશયોક્તિ–પૂર્ણ નથી કે–આધુનિક કેટલાક સાહિત્ય–અન્વેષણ–કર્તાઓએ તો અષ્ટછાપના શ્રીસૂરની જીવનીમાં અન્ય સૂરદાસોના યથાપ્રાપ્ત ચરિત્રોને અંકિત કરી તેની વાસ્તવિકતાની પ્રાયઃ હાની જ કરી છે.

અર્વાચીન અન્વેષણ–કર્તાઓમાં મુખ્ય મિશ્રબન્ધુઓ, રામનરેશ પાઠક અને રમાશંકર પ્રસાદ આદિ નવીન દૃષ્ટિના સંશોધકો પણ ઉક્ત દોષથી દૂર રહી શકયા નથી જ. તો પછી, તે પુરુષોની લેખનીને જ પ્રમાણ માની, પોતાના પરમ-પૂજ્ય શ્રીગોકુલેશ પ્રભૃતિ મહાનુભાવોના લેખનમાં શંકા કરનારા કહેવાતા વાલ્લભોનું તો કહેવું જ શું ? અસ્તુ.

આ પ્રકારે અમારા ગૌરવ સમાં શ્રીસૂર આદિ અષ્ટ-છાપનાં વાસ્તવિક ચરિત્રોને સંદિગ્ધ થતાં જોઇ, અમે દુઃખી હૃદયે કિંતુ ઉત્સાહપૂર્ણ, ભગવદ્–ઈચ્છાને આધીન થઇ, કેવળ તે ભક્તોના આશ્રય બલથી જ ઉક્ત ચરિત્રોને વિશુદ્ધ રૂપ આપવા નિમિત્ત માત્ર થયા છીએ. અને તેમાં અમે અમારૂં પૂર્ણ–સૌભાગ્ય સમજીએ છીએ.

અમે ઉપર કહી ગયા છીએ કે સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં સૂર-દાસ નામક ત્રણ સુપ્રસિદ્ધ ભક્ત-કવિનાં ચરિત્રો પ્રાપ્ત છે. તેથી સામ્પ્રત અલ્પપ્રયાસી સાહિત્ય-સંશોધકો દ્વારા સંમિશ્રણ થઇ ગયેલા અષ્ટછાપના શ્રીસૂરના ચરિત્રનું વિશુદ્ધ રૂપ બતાવતાં પહેલાં, અન્ય દ્વય સૂરદાસોનો સ્વલ્પ પરિચય આવશ્યક જાણી અમોએ તે યથાપ્રાપ્ત અહીં ઉધ્ધૃત કર્યો છે—

૧ *પહેલા સૂરદાસનું મૂળનામ બિલ્વમંગલ હતું. તેઓ દક્ષિણમાં કૃષ્ણા નદીના તીર ઉપરના કોઇ એક ગામમાં રહેતા હતા.

પ્રસંગોપાત, સામે પાર રહેતી ચિંતામણી વેશ્યા દ્વારા ઉપદેશ પ્રાપ્ત કરી તેઓ ઘરથી વિરક્ત થઇ ચાલી નિકળ્યા. છતાં રસ્તામાં તેઓ નર્મદાના કાંઠે આવેલી માહિષ્મતી નગરીમાં એક અતિથિ-વત્સલ વૈશ્ય સ્ત્રીના રૂપથી સંભ્રમ યુક્ત થયા. પછી જ્ઞાનદ્વારા તેમણે પોતાની વિષયી આંખોને સોયાથી ફોડી નાખી. અને ત્યારથી તેઓ સૂરદાસના નામથી પ્રસિદ્ધ થયા.+

---

* આ ચરિત્ર લોકમાં અતિ પ્રસિદ્ધ હોવાથી તેને અત્રે વિસ્તારથી આપ્યું નથી. આ પ્રસંગ 'ભક્તિ-માહાત્મ્ય' નામક એક અતિ પ્રાચીન સંસ્કૃત ગ્રન્થથી ઉધ્ધૃત કર્યો છે. ઉક્ત ગ્રન્થ શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી શ્રી કણ્ઠમણિજીથી પ્રાપ્ત થયો છે. જેમાં અનેક ભક્તોના પ્રસંગો યોજેલા છે. કિંતુ ખેદની વાત છે કે તે ગ્રન્થ સાંગોપાંગ પ્રાપ્ત નથી, જેથી તેના કર્તા વિષે મૌન જ સેવવું પડે છે.

—સમ્પાદક.

+ મિશ્રબન્ધુઓ આદિ કેટલાક સાહિત્ય-સંશોધકોએ પણ ઉક્ત બિલ્વમંગલ સૂરદાસના સ્ત્રી વિષયક પ્રસંગને અષ્ટછાપના શ્રી

પછી કેટલોક સમય ગુજરાતમાં રહી તેમણે ભક્તિજ્ઞાન યુક્ત કાવ્ય દ્વારા પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. બાદમાં તેઓ વૃંદાવન જઇને રહ્યા.

તેમનાં પદ ગુર્જર એવં ગુર્જરમિશ્રિત વ્રજભાષામાં ઘણાં પ્રાપ્ત થાય છે. જેવાં કે–

૧ ' કૃષ્ણ કહેતાં શું બેસે નાણું '
२ ' कोउ मेरे काम न आयो श्री हरि विना '
૩ ' કૃષ્ણ નામ ચિત્ત ધરતો જો તું '
૪ ' કેવું તે વાશે વહાણું ઘેલા પ્રાણી '

ઈત્યાદિ.

૨ બીજા સૂરદાસ, અષ્ટછાપના શ્રીસૂર છે, જેમનું ચરિત્ર વિસ્તારપૂર્વક આગળ આપવામાં આવ્યું છે.

૩ ત્રીજા સૂરદાસ, સંડીલાના દિવાન ' સૂરદાસ મદન-મોહન 'ના નામથી પ્રસિદ્ધ હતા. આ સૂરદાસનું મૂળ નામ

સૂરના ચરિત્રમાં યોજવાનો અર્થહીન નિષ્ફળ પ્રયાસ કર્યો ઉપરાંત, તે સ્ત્રી વિષયક પ્રસંગ હોઈ દોષયુક્ત લાગવાથી શ્રી ગોકુલનાથજીએ વાર્તામાં ન યોજ્યો હોય, એવું અનુમાન પોતાના ' નવરત્ન ' નામક ગ્રન્થ પાન ૨૭૭માં કરી ખરે જ તેમણે પોતાની બુદ્ધિનો હાસ્યાસ્પદ હવાલો વિદ્વાનોને આપ્યો છે. પરંતુ વાર્તા–રસિકો વિચારી શકે છે કે–મહાનુભાવ અષ્ટછાપ શ્રીનંદદાસની સ્ત્રી ઉપરની આસક્તિના પ્રસંગનો જેમણે નિર્દોષપણે સ્પષ્ટ ઉલ્લેખ વાર્તામાં કર્યો છે એવા સત્યવક્તા શ્રીગોકુલેશ, યદિ સ્ત્રી વિષયક ઉક્ત પ્રસંગ અષ્ટછાપ શ્રીસૂરનો જ હોત, તો શા માટે વાર્તામાં તે ન યોજત?

—સમ્પાદક.

અજ્ઞાત હોવા છતાં એ નિશ્ચય છે કે તેમણે પોતાનું સૂરદાસનું ઉપનામ સકારણ રાખ્યું છે.

તેઓ દિલ્હી પાસેના કોઈ એક ગામમાં સૂરધ્વજ બ્રાહ્મણને ત્યાં જન્મ્યા હતા. તેઓ બાદશાહ અકબરના એક પરગનાના અમીન યા દિવાન હતા, અને તેમની પાસે રાજ્યના ૧૩ લાખ રૂપીયાની વિપુલ ધનરાશી રહેતી.

જ્યારથી એમને ભગવાન અને ભક્તોનાં ઐક્ય ભાવ-રૂપે દર્શન થયાં ત્યારથી તેઓ સાધુ, સંત અને ભક્તોમાં વિશેષ પ્રીતિ રાખતા, અને પોતાને પ્રાપ્ત ધન ઉપરાંત આવશ્યક લાગે તો ખજાનાના ધનનો પણ સાધુ સંતોના સત્કારમાં ઉપયોગ કરતા.

એમ કરતાં એક વખત દુષ્કાળના સમયમાં એમણે બાદશાહની ૧૩ લાખની ધનરાશીને પરોપકારાર્થે ખર્ચી દીધી.

પછી બાદશાહે ખજાનો મંગાવ્યો ત્યારે તેમાં તેટલાજ પત્થરો ભરી પ્રત્યેક થેલીમાં નિમ્નાંકિત દોહો લખીને મોકલ્યો, અને તેઓ અર્ધી રાત્રે શ્રીમદનમોહન ઠાકુરજીને પધરાવી વૃંદાવન ચાલી નિકળ્યા.

ઉક્ત દોહો આ પ્રકારે છે—

तेरालाख संडीले आये–सब साधुन मिलि गटके ।
सूरदास मदनमोहन मिलि–आधी रातैं सटके ॥

આ વાંચી બાદશાહના આશ્ચર્યનો પાર ન રહ્યો, અને તેણે રાજા ટોડરમલને કહ્યું કે–સાધુઓએ તેરા લાખ ગટક્યા તો ભલે, પરંતુ સૂરદાસ કેમ સટક્યા ?

પછી રાજા ટોડરમલે તેમને પકડી મંગાવી કેદમાં નાખ્યા. ત્યાં તેઓએ પ્રભુને પોતાની મુકિતને અર્થે પ્રાર્થનાનું આ પદ ગાયું–

जब विलंब नहिं कियो, हाक हरनाकुश मार्यो ।
जब विलंब नहिं कियो, केश गहि कंस पछार्यो ॥

*　　*　　*　　*

कहे सूर करजोरि के, तुम दयाल रुक्मनि रवन !
काट फंद मो अंधके,× अब विलंब कारन कवन ॥ ÷

× અહીં 'અંધ' શબ્દ શ્રીસૂરના 'द्विविध आंधरा'ની માફક સકારણ છે. અને તે એમ સૂચવે છે કે–હે પ્રભુ! આપ અને આપના ભક્તોમાં દ્વિવિધ ભાવથી રહિત એવો અંધ જે હું તેના આ ફંદ (કેદ)ને કાટ એટલે દૂર કર.

÷ કેટલાક લેખકોએ આ પદ અષ્ટછાપ વાળા સૂરદાસના નામે ચઢાવી લોકોમાં ભ્રમ ફેલાયો છે. પરંતુ અષ્ટછાપવાળા શ્રીસૂરનાં પદોની ઓળખાણ બે પ્રકારે સ્પષ્ટ છે. એક તો તેમણે પોતાની રચનામાં આવશ્યક પ્રચલિત સંસ્કૃત શબ્દોથી અતિરિક્ત શુદ્ધ વ્રજભાષા શિવાયના કોઈ પણ પ્રકારના શબ્દોનો પ્રયોગ કર્યો નથી, જ્યારે ઉક્ત પદમાં 'કવન' શબ્દ પૂર્વી ભાષાનો પ્રતીત થાય છે.

બીજું કારણ એ સ્પષ્ટ છે કે–શ્રીસૂરે, શરણ આવ્યા પહેલાં પણ કેવળ ઉદ્ધારના શિવાયની કોઈ પણ અંગત સ્વાર્થમય પ્રાર્થના પદો દ્વારા કરી પ્રભુને પરિશ્રમ આપ્યો નથી. અને જ્યાં સુધી મને ખબર છે ત્યાં સુધી તો હું એમ નિશ્ચિત રૂપે કહી શકું છું કે શ્રીસૂર-

આ પ્રાર્થનાથી પ્રભુએ પ્રત્યક્ષ થઈ તેમને દર્શન આપ્યાં. અને બાદશાહને પણ સ્વપ્નમાં સૂરદાસને શીઘ્ર મુક્ત કરવાની આજ્ઞા આપી. પછી બાદશાહે તેમને મુક્ત કરી, ગયેલી સત્તા પુનઃ સ્વીકારી પોતાની પાસે રહેવાને અત્યંત આગ્રહ કર્યો. છતાં તેમણે તે વાત ન માની અને તુરત વૃંદાવન જઈને રહ્યા.

ત્યાં તેમણે સાનુભવતા પ્રાપ્ત કરી ઘણાં પદો રચ્યાં અને તેમાં 'સૂરદાસ મદનમોહન' નામક છાપ રાખી.

ના પદોમાં પ્રભુનું માહાત્મ્ય અને પોતાની દૈન્યતા શિવાય બીજી વસ્તુ બહુ ઓછી જણાય છે. અને શરણે આવ્યા પછી તો તેઓએ દાસ, સખ્ય, અને રાખી ભાવને જ પોતાના પદોમાં મુખ્ય સ્થાન આપ્યું છે.

તદ્દતિરિક્ત જે પદો પ્રાપ્ત છે તે અષ્ટછાપના શ્રીસૂરનાં નથી જ.

વળી જે પુરૂષોનું એવું કહેવું છે કે શ્રીસૂરે ફારસી ભાષામાં પણ પદો રચ્યાં છે અથવા તેમના પદોમાં ફારસી શબ્દો–જેવા કે 'મહેલાત' આદિ આવે છે, તેઓ સ્વયંભ્રમિત છે.

યદ્યપિ તે શંકાનો જવાબ પ્રસ્તુત વાર્તા પ્રસંગ ૪ માં આવી જાય છે તો પણ એનું સ્પષ્ટીકરણ કરવું ઠીક છે કે–સૂરદાસજીનાં વિશુદ્ધ વ્રજભાષામય પદોને બાદશાહ અકબર ફારસીમાં ઉતરાવી સ્વયં વાંચતો અને તેથી સંભવ છે કે તેમના પદોમાં લેખકોએ જાણે કે અજાણે ક્વચિત્ પ્રચારની દૃષ્ટિએ પણ તે સમયની પ્રચલિત ભાષાના શબ્દોને યોજી તેમને વિકૃત કર્યા હોય.

કારણ કે એ આ વાર્તામાં સ્પષ્ટ છે કે શ્રીસૂરની છાપથી, અન્ય લોકો પણ પદોની રચના કરતા. અતઃ તેનું વિકૃત થવું જરાય અસંભવ નથી. —સમ્પાદક

પછી 'ગીતસંગીતસાગર' ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીની કૃપાથી—યદ્યપિ તેઓ પુષ્ટિ સંપ્રદાયના ન હતા તો પણ—તેમણે મહાનુભાવ કવિઓમાં સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું.

ઉક્ત ઉભય સૂરદાસોનો સંક્ષિપ્ત પરિચય આપી હવે અમે અમારા ચરિત્ર—નાયક અષ્ટછાપના શ્રીસૂરના, વાર્તાથી ઉદ્ધૃત અને તેને અપેક્ષિત એવા, શેષ ભૌતિક ચરિત્રને અમારી લેખની એવં મનને પવિત્ર કરવાને અર્થે કંઇક લખીએ છીએ.

શ્રીસૂરનાં વિશુદ્ધ અને સંમિશ્રણ યુક્ત ચરિત્ર નિમ્નાંકિત ગ્રન્થોમાં પ્રાપ્ત છે—

(વિશુદ્ધ પ્રામાણિક ગ્રન્થો)

૧ ૮૪ વૈષ્ણવોની વાર્તા, રચયિતા ગો. શ્રીગોકુલનાથજી. સં.૧૬૪૫
૨ 'ભાવપ્રકાશ' „ „ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ. સં. ૧૭૪૦ લગભગ

(તટસ્થ ગ્રન્થ)

૩ ભક્તમાળ „ નાભાજી. સં. ૧૬૬૦—૮૦
૪ ભક્તિમાહાત્મ્ય (સંસ્કૃત)

(સંદિગ્ધ ગ્રન્થો)

૫ 'મૂલ ગોસાંઇ ચરિત' રચયિતા વેણીમાધોદાસ. સં. ૧૬૮૮
૬ આઇને અકબરી વગેરે—

(આધારભૂત ગ્રન્થો)

૭ સૂરસાગર, ૮ સાહિત્ય લહરી, ૯ સૂર સારાવલી.

ઉપરાંત અન્ય ચરિત્ર ચંદ્રિકા, રામરસિકાવલી; શિવ સિંહસરોજ, નાગર સમુચ્ચય, ભક્તવિનોદ, સુગમપંથ, ભક્તનામાવલી, ભારતેંદુ ભક્તમાલ, ભાષાકોષ, નાગરી પ્રચારિણી

સભાની પત્રિકા, મિશ્રબન્ધુવિનોદ, નવરત્ન, સૂરસુધા, કવિતા કૌમુદી, વ્રજમાધુરીસાર, અને સૂરદાસજીનું જીવનચરિત્ર ઈત્યાદિ ગ્રન્થોમાં સંભ્રમયુક્ત પ્રસંગોનું સંમિશ્રણ જોવામાં આવે છે.

ઉક્ત સંમિશ્રણ યુક્ત ગ્રન્થોના પ્રસંગોને વિશુદ્ધ રૂપ આપવાને માટે પ્રથમના ૧, ૨ સંખ્યાત્મક ગ્રન્થોના આશ્રયની ખાસ આવશ્યકતા છે. કારણ કે સૂરદાસજી પુષ્ટિમાર્ગીય હોવાથી તેમના ચરિત્રનો સંગ્રહ જેટલો તે સંપ્રદાયના મૂળ લેખકોથી વિશુદ્ધ રૂપે પ્રાપ્ત થાય તેટલો અન્યો દ્વારા નહિ જ એ સાવ સીધી વાત છે.

તેમાંયે વળી શ્રીસૂરના સમકાલીન અને અંગત ગાઢ પરિચયવાળા, ગદ્યપદ્ય વ્રજભાષા–સાહિત્યના પૂર્ણ પ્રેમી ગો. શ્રીગોકુલનાથજી દ્વારા જે સંગ્રહ થાય તેની વિશુદ્ધતા અને પ્રામાણિકતામાં તો કહેવું જ શું?

વળી એ નિઃસંદેહ છે કે ગો. શ્રીગોકુલનાથજી સ્પષ્ટ અને સત્યવક્તા હતા. તેના કારણ રૂપે ૮૪ અને ૨૫૨ વાર્તાઓમાં આવેલી શ્રીનંદદાસ, કૃષ્ણદાસ આદિની ઘટનાઓ વિદ્યમાન છે.

શ્રી ગોકુલેશે લોકદૃષ્ટિએ અસંગત અને વિકૃત લાગતી ઉક્ત ઘટનાઓને પણ સ્પષ્ટ તથા વિસ્તારપૂર્વક જનસમૂહમાં નિર્દિષ્ટ કરી છે. એથી વિશેષ તેમની પ્રામાણિકતા માટે અન્ય કયું પ્રમાણ હોઇ શકે?

આ વાત વાર્તાના અભ્યાસીઓ સારી રીતે જાણતા હોઈ તે મહાપુરૂષની ઉક્તિમાં તેઓને જરાય અતિશયોક્તિ કે અવાંચ્છનીય ભાવના દેખાતી નથી જ. અસ્તુ.

જો કે શ્રીસૂરની પ્રામાણિક જીવની જાણવાને માટે તેમના સમકાલીન ગો. શ્રીગોકુલનાથજી રચિત 'ચોરાશી વાર્તા' વિશેષ ઉપયોગી છે, છતાં તે સંક્ષિપ્ત હોવાથી જીજ્ઞાસુઓને વાસ્તવિક તૃપ્તિ આપવાને અસમર્થ છે.

ઉક્ત ત્રુટીને દુર કરવાને અર્થે ગો. શ્રીગોકુલનાથજીના શિષ્ય મહાનુભાવ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુનો પ્રયાસ અતિ પ્રશંસનીય છે.

શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ, આચાર્યશ્રી એવં ગોસ્વામીજીના ૮૪ અને ૨૫૨ વૈષ્ણવોનાં વિશુદ્ધ આધ્યાત્મિક ચરિત્રોને સ્વગુરૂથી શ્રવણ કર્યા બાદ, તેમાં ઓછાં દેખાતાં ભૌતિક અને આધિદૈવિક તત્ત્વોને પુનઃ વિશેષ રૂપમાં શ્રવણ કરવાની પોતાની ઈચ્છાને તેમની પાસે પ્રકટ કરી. તેથી વ્રજભાષા ગદ્ય—સાહિત્યના આદ્યપિતા શ્રીગોકુલેશે શ્રીહરિરાયજીને એકાંત અનુભવગમ્ય અને મનનીય વાર્તાના આધિદૈવિક તત્ત્વોનું આવશ્યક વિશેષ ભૌતિક ચરિત્રની સાથે પુનઃ શ્રવણ કરાવ્યું. જેથી તેના ફલ રૂપે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ વાર્તા ઉપર 'ભાવપ્રકાશ' યોજ્યો, જે અમારા તરફથી પ્રકાશિત થાય છે.

શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાની ભાષાત્મક ટીકા સ્વરૂપે ઉક્ત 'ભાવપ્રકાશ'ને સં. ૧૭૨૯ પછી નિજસેવકોના આગ્રહથી ગ્રન્થાકાર રૂપે લેખનબદ્ધ કરાવી ભાષાના ગ્રન્થો ઉપર પણ ભાષામાં જ ટીકા કરવાની નવીન શૈલીનો અવિષ્કાર કર્યો.

પછી તેની દેખાદેખી નાભાજીના શિષ્ય પ્રિયાદાસે પણ ભક્તમાળ ઉપર સં. ૧૭૮૦ માં એવીજ પદ્યાત્મક ટીકા રચી અને ત્યારથી અદ્યાવધિ ગદ્યપદ્યટીકાત્મક ભાષા શૈલી ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધીજ પામતી જાય છે.

આ રીતે ભાષા સાહિત્યનું પુર વધ્યું. અને તેના પ્રાથમિક પ્રચારનો યશ ગો. શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુને મળ્યો.

આ પ્રકારે શ્રીસૂરના યથાર્થ ચરિત્રને જાણવાને અર્થે '૮૪ વાર્તા' અને 'ભાવપ્રકાશ' એ બે ગ્રન્થો પ્રામાણિક અને મહત્ત્વના છે.

વળી શ્રીગોકુલનાથજી માફક શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુની મહાનુભાવતા, સાક્ષાત્કારિતા અને સત્યપ્રિયતામાં પણ કોઈનાય બે મત નથી જ.* અસ્તુ.

આજપર્યંત કોઈ પણ ચરિત્રનાયક પોતાની વિદ્યમાનતામાં સ્વક્ષેત્રના સર્વમાન્ય રૂપે સ્વીકાર્ય થઈ શકયો નથી, એમ ભારતવર્ષના ઇતિહાસથી સ્પષ્ટ જણાય છે. પરંતુ શ્રીસૂર તેના અપવાદ રૂપે સિદ્ધ થઇ ચુકયા છે. તે વિષે પ્રકાશ ફેંકતા નિમ્નાંક્તિ બે પ્રસંગો અતિ પ્રસિદ્ધ છે જે આ રહ્યા—

પ્રસંગ ૧—શ્રીસૂરના બાર વર્ષ પર્યંતના ગૌઘાટ નિવાસ દરમ્યાન પ્રત્યેક કવિ શ્રીસૂરની પ્રસિદ્ધિથી આકર્ષાઈ તેમને મળવા ગૌઘાટ આવતા. પછી તેમની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કરી વ્રજના દર્શનાર્થે તેઓ મથુરા પ્રયાણ કરતા.

એ રીતે સં. ૧૫૫૩ થી ૧૫૫૫ લગભગ પ્રસિદ્ધ કવિ કબીર પણ શ્રીસૂરને મળવા ગૌઘાટ આવ્યા. થોડા સમયના

---

* શ્રી હરિરાય મહાપ્રભુના વિશેષ ચરિત્ર જ્ઞાનાર્થે જુઓ 'શ્રી વિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત' અને 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્તકવિ' નામક અમારા તરફથી પ્રસિદ્ધ થતા ગુર્જર અને હિન્દી ભાષાના ગ્રન્થોના પ્રસંગો —સમ્પાદક

સત્સંગ પશ્ચાત કબીરે જ્યારે વ્રજના દર્શનાર્થે મથુરા પ્રયાણની આજ્ઞા માગી ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને વ્રજમાં જતા રોકયા. અને તેઓને તેમના નિરાકાર, નિરંજન વાદને સમજાવતાં કહેવા લાગ્યા કે–' વ્રજ તો રસિકોની ખાણ છે, ત્યાંના પ્રત્યેક વૃક્ષનું એક એક પત્તું સગુણ લીલામય પરબ્રહ્મમાં તલ્લીન છે. જેથી તમે–શુષ્ક નિરાકાર બ્રહ્મવાદી–ત્યાં જશો તો ત્યાંનાં સર્વે વૃક્ષો સુકાઈ જશે.'

પશ્ચાત જ્યારે શ્રીસૂરે, પોતાની આ ભવિષ્ય વાણી ઉપર કબીરને વિશ્વાસ થતો ન જોયો, ત્યારે તેમણે ગૌઘાટ ઉપરના એક વૃક્ષ નીચે બેસી તેમને નિરાકાર બ્રહ્મનાં પદ ગાવાને કહ્યું. તેથી કબીરે આજ્ઞાનુસાર એક વૃક્ષ નીચે બેસી શુષ્ક જ્ઞાનનું ફક્ત એક પદ ગાયું. જેથી તે વૃક્ષ જોતજોતાંમાં સુકાઈ ગયું.

આ પ્રત્યક્ષ ચમત્કાર જોઈ કબીર આશ્ચર્યપૂર્વક શ્રીસૂરને શ્રદ્ધાની દૃષ્ટિએ અવલોકવા લાગ્યા. પછી શ્રીસૂરે તે જ વૃક્ષ નીચે બેસી ભક્તિવિષયક લીલામય સગુણ બ્રહ્મનું એક પદ ગાયું, કે જેનાથી તે વૃક્ષ પુનઃ નવપલ્લવિત થયું.

આથી કબીરે શ્રીસૂરની સર્વોચ્ચતા સ્વીકારી. અને તેમની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કરી વ્રજ તરફ પ્રયાણ ન કરતાં ત્યાંથી સીધા કાશી ગયા.*

---

* આ પ્રસંગથી, કબીરનો અંત સમય વિ. સં. ૧૫૭૫ નો જેવો કે નીચેના દોહાથી કબીર પંથિયોમાં પ્રસિદ્ધ છે તે–સિદ્ધ થાય છે. અને તેથી ભક્તમાળના, બાદશાહ સિકંદર સાથે કબીરના થયેલા મેળાપવાળા પ્રસંગને પણ ઇતિહાસની દૃષ્ટિથી પુષ્ટિ મળે છે.

કબીરનો જન્મ સં. ૧૪૫૫–૫૬ માં છે અને અંત ૧૫૭૫ માં છે. તે વાત શ્રીરામકુમાર વર્મા એમ. એ. દ્વારા ' કબીર પદાવલી '

પ્રસંગ ૨—સં. ૧૬૨૮ માં શ્રીરામના અનન્ય÷ ભક્ત તુલસીદાસ પોતાના અનુજ શ્રીનંદદાસને મળવા વ્રજમાં આવ્યા. તે સમયે સૂરદાસજીની પ્રસિદ્ધિ શ્રવણ કરી તેઓ ચંદ્ર સરોવર પરાસોલી તેમને મળવા ગયા.

ત્યાં તુલસીદાસજી રામનામનું ઉચ્ચારણ કરી સૂરદાસજીને મળ્યા. ત્યારે સૂરદાસજીએ તેમને 'આવો તુલસીદાસ' કહીને સત્કાર્યા.

આથી તુલસીદાસજી આશ્ચર્યમાં પડયા. અને વિના નેત્રવાળા સૂરદાસજી એ, કદી ન મળેલા એવા પોતાને કેવી રીતે ઓળખ્યો, તે વિચારમાં લીન થયા.

પછી તુલસીદાસજીએ તેનું કારણ પૂછ્યું ત્યારે સૂરદાસજીએ તેમને કહ્યું કે-તમારા હમણાં બોલેલા બે શબ્દોથી તમારી ઓળખાણ પડી, કિંતુ સૂરદાસજીએ તે સમયે રામનામનો ઉચ્ચાર ન કર્યો.

આ પ્રકારે શ્રીસૂરે પોતાની સુદૃઢ અનન્યતાનો પરિચય

માં સમાલોચનાત્મક રૂપે સિદ્ધ થઇ ચુકેલી છે. એટલે અત્રે તેનો ઉહાપોહ કરવો વ્યર્થ છે.

કબીરના અંતકાલને માટે આ પ્રમાણે પ્રસિદ્ધ છે—

संवत पंद्रहसे पछत्तरा, किया मगहर को गौन ।
माघ सुदी एकादसी, रलौ पौन में पौन ॥

कबीर पदावली
—સમ્પાદક

÷ જે લેખકો 'અનન્ય' શબ્દને હઠધર્મમાં લઈ જઈ, 'તુલસીદાસજી એવા હઠધર્મી ન હતા' એમ કહી ભક્તિમાં પૂર્ણ આવ-

આપી તુલસીદાસજીને મુગ્ધ કર્યા. પછી તેમણે વ્રજનાં મનુષ્યો અને વૃક્ષોની રાધાકૃષ્ણ પ્રત્યેની અનન્યતાનાં તેમને પ્રત્યક્ષ દર્શન કરાવ્યાં. તેથી તેઓએ આશ્ચર્યયુક્ત નિમ્ન દોહો રચ્યો—

राधे २ सब कहै, आक ढाक अरु कैर ।
तुलसी या व्रज भूमिमें, कहा रामसों बैर ॥

પછી સૂરદાસજીએ તેઓને રામકૃષ્ણના અભિન્નત્વનું જ્ઞાન કરાવ્યું. તો પણ જ્યાં સુધી પોતાને રામ અને કૃષ્ણનાં અભિન્ન રૂપે દર્શન ન થાય ત્યાં સુધી તે જ્ઞાનને હૃદય સુદૃઢ-પણે સ્વીકારતું નથી એમ જ્યારે તુલસીદાસે કહ્યું ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને નંદદાસજીની સાથે શ્રીનાથજીનાં દર્શન કરી મનોરથ સિદ્ધ કરવાની આજ્ઞા આપી.

શ્રીસૂર સાચા ભવિષ્યવક્તા તરીકે પ્રસિદ્ધ હોઈ, તેમની આજ્ઞા ઉપર વિશ્વાસ રાખી તેઓ નંદદાસજીની સાથે શ્રીના-થજીનાં દર્શન કરવા ગયા. ત્યાં તેઓને જ્યારે શ્રીરામ સ્વરૂપે પ્રભુએ દર્શન આપ્યાં ત્યારે તેમને સૂરદાસજી દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલ જ્ઞાન દૃઢ થયું. અને પછી તેમણે સૂરદાસજીના પદો દ્વારા સ્ફુટ કૃષ્ણના બાલભાવને હૃદયમાં ધારણ કરી

સ્યક એવા અનન્ય પાતિવ્રત ધર્મને સમજતા નથી તેઓ મોટી ભૂલ કરે છે. તુલસીદાસજી પ્રારંભિક અવસ્થામાં કેટલા રામ પ્રતિ સ્વરૂપાગ્રહી હતા તે આ દોહાથી સ્પષ્ટ છે—

'कहा कहूं छबि आजकी, भले बने हो नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नमै, धनुष बाण लो हाथ ॥'

વિશેષ જુઓ મહાનુભાવ નંદદાસજીનું ચરિત્ર. —સમ્પાદક

તેની છાયા લઇ રામ અને કૃષ્ણનાં બાલભાવવાળાં ઘણાં પદ રચ્યાં, જે આજ 'કૃષ્ણ ગીતાવલી' નામથી પ્રસિદ્ધ છે.

પછી સૂરદાસજીની સર્વોચ્ચતાને સ્વીકારી તેમને પ્રણામ કરી તેઓ પુનઃ કાશી આવ્યા.*

તુલસીદાસજીનાં ભક્તિ વિષયક બાલભાવાદિ રામ અને કૃષ્ણ સંબંધી પદોનું અવલોકન કરતાં ઉક્ત પ્રસંગને ઘણી જ પુષ્ટિ મળે છે. અને તેથી સૂરદાસના સૂર્યવત્ પ્રભાવનું પણ

---

* વેણીમાધોદાસ રચિત 'મૂલ ગોસાઈ ચરિત'ની–સૂરદાસજી સં. ૧૬૧૬ માં શ્રીગોકુલનાથજીથી પ્રેરિત થઈ તુલસીદાસજીને મળવા કામદગિરિ પાસે આવ્યા.–એ વાત આ પ્રસંગથી, તેમજ શ્રીગોકુલનાથજીનું પ્રાકટ્ય સં. ૧૬૦૮ માં હોવાના કારણને લીધે અસંબદ્ધ છે. વળી યુક્તિથી પણ તેમાં બાધ આવે છે. કારણ કે શ્રીસૂર તે સમયે ૮૧ વર્ષના વયોવૃદ્ધ, જ્ઞાનવૃદ્ધ અને એક સ્થલ નિવાસી એવં '**गुरु प्रसाद होत यह दरशन सरसठ वरस प्रबीन**' આ વાક્યથી ભગવલ્લીલાના સાક્ષાત્કારને પ્રાપ્ત થઈ ચુકયા હતા. તેથી તેઓને સ્વઈષ્ટ શ્રીનાથજીની સેવા છોડી અત્રતત્ર ભટકવું શ્રેયસ્કર હોય એમ સંભવે નહીં. તેમજ તેઓ શુદ્ધ પુષ્ટિમાર્ગીય હોવાથી પ્રભુને પરિશ્રમ કરાવે એવા મર્યાદા ભક્તોને મળવા એટલી દૂર જાય એ પણ માની શકાય નહિ જ.

આ સંબંધી શ્રીયુત પં.રામદત્ત ભારદ્વાજ 'સુધા' માસિકના વર્ષ ૧૩ ખંડ ૨ અને સંખ્યા ૩ ના પૃષ્ઠ ૨૧૧ ઉપર '**मूल गोसांई चरित की अप्रमाणिकता**' એ લેખમાં આ પ્રમાણે લખે છે–

बावा वेणीदासजी सूरदासजी के विषय में लिखते हैं—

વિસ્પષ્ટ દર્શન થાય છે. જેથી એમ સહજ કહેવાઈ જવાય છે કે-જેમ સૂર્યના પ્રકાશથી જ ચંદ્ર પ્રકાશે છે તેમ સૂરદાસના કાવ્યના ભાવોની છાયા માત્રથી જ તુલસીનાં પદો જગતને મુગ્ધ કરે છે.

આ વૈજ્ઞાનિક સૂર્ય-ચંદ્રના સંબંધને ધ્યાનમાં લઇ એક વિદ્વાન્ કવિએ ઠીક જ કહ્યું છે કે-

सूर सूर तुलसी ससी..........

વાસ્તવમાં શ્રીસૂર સૂર્ય છે અને તુલસી શશી રૂપ છે. અને ઉભય ભક્ત કવિયો સાહિત્ય સંસારને આવશ્યક ઉષ્ણશીતથી પોષી જીવનદાન આપે છે.

જે પુરુષો સૂરથી તુલસીને સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં કાવ્યની દૃષ્ટિએ ઉચ્ચ બતાવવાનો નિરર્થક પ્રયાસ કરી સૂરની વાણીમાં અશ્લીલતાનો દોષ મુકે છે, તેઓ કેવળ પક્ષપાતના અંધારામાં

" सोरह सो सोरह लगे, कामदगिरि ढिग वास;
सुचि ऐकांत प्रदेश महँ आए सूर सुदास
पठए गोकुळनाथजी कृष्ण-रंग में बोरि ?

+ + +

कवि सूर दिखायेउ सागर को, सुचि प्रेम कथा नटनागर को ।
दिन सात रहे सतसंग-पगे; पद-कंज गहे जव आन लगे ।
नहि बाँह गोसाई प्रबोध किए; पुनित गोकुलनाथ को पत्र दिये । "

अर्थात् सं. १६१६ लगते ही कामदगिरि के समीप वास करते हुए तुलसीदासजी के पास (व्रजभूमि से) श्री गोकुलनाथजी द्वारा कृष्ण-रंग में

જાણી જોઈને ઉભા રહી સૂર્યની સામે ધુવડ-દૃષ્ટિ કરે છે.

પરંતુ ઉક્ત પક્ષપાતીય આરોપના ઉત્તર રૂપે બે તટસ્થ વિદ્વાનો દ્વારા પ્રકાશિત થઈ ચુકેલા નિમ્ન અભિપ્રાયોને હું અહીં ઉદ્ધૃત કરૂં છું:—

(૧) શ્રીયુત **મિશ્રબન્ધુ** લખે છે કે-

तुलसीदास जब कभी राम की नरलीला का वर्णन करते हैं, तब पाठक को यह अवश्य याद दिला देते हैं कि राम परमेश्वर हैं; वह केवल नर-लीला करते हैं । यह बात **ऐसे भोंडे प्रकार से भी वह सैकडों वार स्मरण करातें हैं कि जी उकता उठता है**, और यह जान पडता है कि–गोस्वामीजी पाठक को इतना बडा मूर्ख समझते थे कि कितनी ही वार याद दिलाने पर भी वह राम का ईश्वरत्व भुला देगा, अतः उउ को पुनः–पुनः स्मरण कराने की आवश्यकता है यह बात सूरदास में नहीं है ।

(नवरत्न पत्र २३४)

" परंतु तोभी, यह महाराज (सूरदासजी) गोस्वामी तुलसीदास की भाँति और देवताओं को गालियाँ नहीं देते थे। " (नवरत्न पत्र २३३)

बोरे और भेजे हुए सूरदासजी आए ! उन्होंने अपना 'सूरसागर' दिखाया, और वहां सात दिन रहें। चलते समय गोस्वामीजी के चरण छुए। तब गोस्वामीजीने उन्हें बोध और एक पत्र गोकुलनाथजी के लिये दिया । परंतु सं. १६१६ में श्री गोकुलनाथजी आठ वर्ष के थे, और सूरदासजी ७६ वर्ष के। वह तो कृष्णरँग में पहले से ही रँगे हुए थे। उन्हें आठ वर्ष के बालक कृष्ण के रंग में क्या रँगते । आठ वर्ष के श्री गोकुलनाथ का ६२ वर्ष के गोस्वामी तुलसीदास के पास ७६ वर्ष के महात्मा सूरदास को भेजने का प्रयोजन क्या था? सूरदासजी तो वृद्धावस्था में व्रज छोड़कर कहीं जाते न थे, नेत्रांध भी थे । (વિશેષ જુઓ પ્રસ્તાવનામાં).

શ્રીયુત વિયોગી હરિ લખે છે કે-

"सूरदासजी व्रज-साहित्य के जन्मदाता, परिपोषक एवं उद्धारक कहे जाय, तोभी कोई अत्युक्ति नहीं। इस में संदेह नहीं कि-यह हिन्दी के वाल्मीकि या व्यास हैं। भक्तिपक्ष में तो यह उद्धव के अवतार माने जाते हैं। वात्सल्य रस लिखने में तो आपने गजब किया है। इसी प्रकार गोपियों का विरह और उद्धव-संवाद अपूर्व और अत्यन्त चमत्कार पूर्ण हैं। हमारा तो यह कहना है कि जिन्हे साहित्य का कुछ रसास्वादन लेना है, उन्हें अवश्य ही सूरदास के मधुर, भावपूर्ण पदों का पारायण करना चाहिए। सूरसागर के गानसे लोक और परलोक दोनों ही आनंद-दायक हो सकते हैं, इस में संदेह नहीं। कवि सम्राट सूरके सम्बन्ध में कई भावुक रसिक जनोंने अपनी २ अनुमतियाँ प्रकाशित की हैं।"

(व्रजमाधुरी सार पत्र ३)

શ્રીસૂરની સર્વોચ્ચતા, સ્વયં તારાગણ રૂપે મનાતા મહાકવિ કેશવે પણ, સહર્ષ ભરસભામાં, ઓડછા નરેશ રામસિંહના ભાઈ ઇન્દ્રજીતસિંહ આગળ સ્વીકારી છે અને અન્ય વિદ્વાનો પાસે સ્વીકારાવી પણ છે. તદ્‌વિષયક નિમ્ન પ્રસંગ પ્રસિદ્ધ છે—

એક સમય ઓડછા નરેશના-સર્વોચ્ચ કવિ કોણ એ-પ્રશ્નના જવાબમાં કવિ કેશવે ભર સભામાં ઉભા થઈ, વિદ્યમાન કવિઓમાં સર્વોચ્ચ રૂપે પોતાને ઘોષિત કર્યા.

જેથી વિદ્વાનોએ તેમને શ્રીસૂર માટે તેમનો શો અભિપ્રાય છે એમ પુછ્યું. ત્યારે કવિ કેશવે સહર્ષ કહ્યું કે–તેઓ ભાષા કાવ્યના કવિકુલ સમ્રાટ છે. અને મારા મત પ્રમાણે તો તેઓને કવિ કહેવા તે તેમના અપમાન સમાન છે. તેઓ કવિ નહીં કિંતુ વ્રજભાષા કાવ્ય–સાહિત્યના આદ્યપિતા છે અને કવિમાં તો હું સર્વોચ્ચ છું.

આ પ્રકારે મહાકવિ કેશવે પણ શ્રીસૂરની સર્વોચ્ચતાનો સ્વીકાર કર્યો છે. એથી વધુ ગૌરવ બીજું કયું હોય?

તેથી જ એક કવિયે શ્રેણી વિભાજન કરતાં કહ્યું છે કે–

'सूर सूर, तुलसी ससी, उडुगन केशवदास'

વળી રાજા બીરબલે પણ શ્રીસૂરની કાવ્યશક્તિની, બાદશાહ અકબર સમક્ષ અત્યંત પ્રશંસા કરી છે. જે પ્રસંગ આ રહ્યો–

એક સમય બાદશાહ અકબરે ડુંડવાળા ખેતરમાં એક મનુષ્યને આળોટતાં જોઈ બીરબલને તેનું કારણ પુછ્યું. ત્યારે તેણે બાદશાહની આગળ શ્રીસૂરની કાવ્યશક્તિની પ્રશંસા કરતાં નિમ્ન દોહો કહ્યો–

'किधौं सूर को सर लग्यो–किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यो व्याकुल होत सरीर॥

આવી રીતે સૂરની વિદ્યમાનતામાં પણ તેમની સર્વોચ્ચતાની કીર્તિ–ધ્વજા, ભક્તિ અને કાવ્યક્ષેત્રના મહારથીઓમાં નિર્વિવાદ પણે સર્વ માન્ય અને પરમ વંદનીય હતી. અસ્તુ.

શ્રીસૂરદાસજી પ્રભુના અષ્ટસખા પૈકીના એક વ્રજવાસી સખા હતા, તેવી પ્રસિદ્ધિ આજ છે એમ નહિં પણ તેમની

વિદ્યમાનતામાં યે વિધર્મીઓ પણ દઢવિશ્વાસપૂર્વક તેમ માનતા હતા.

ઉક્ત વાતને સિદ્ધ કરતો એક પ્રસંગ 'ભક્તિમાહાત્મ્ય' નામક સંસ્કૃત ગ્રન્થમાંથી ઉદ્ધૃત કરીને અત્રે આપવામાં આવે છે–

'શ્રીકૃષ્ણના કોઈ એક સખા (ઉદ્ધવ ?) સૂરસેન કુલમાં ઉત્પન્ન થયા હતા. જ્યારે ભગવાન દ્વારકા પધાર્યા ત્યારે તેમની સાથે તે પણ ત્યાં ગયા. કિંતુ એમનું મન વૃંદાવનમાં લાગી રહ્યું હતું. તેમણે એક દિવસ શ્રીકૃષ્ણને કહ્યું કે હું કયારે વ્રજનાં સ્થલોનાં દર્શન કરીશ ?'

'પછી થોડા સમય બાદ શ્રીકૃષ્ણે સ્વધામ પધારતી સમયે ઉક્ત સખા આગળ સ્વઇચ્છાને પ્રકટ કરી, પોતાનો મથુરામાં સદા નિવાસ છે એવં પોતાની લીલા નિત્ય છે એમ બતાવી તેમને નિમ્ન ભવિષ્ય કહ્યું–'

"તમે કલિના સન્ધ્યાંશ (સન્ધિ) સમયમાં મથુરાની પાસે બ્રાહ્મણકુલમાં પેદા થશો. અને મથુરા જઈને મારી લીલાનું સ્મરણ કરી પ્રાકૃત પદોથી એનું ગાન કરશો. જેનો બીજા ઉપર પણ પ્રભાવ પડશે. અને તમારા પદ ગાનાર વ્યક્તિ-ઓનો પણ હું ઉદ્ધાર કરીશ.* પરંતુ તમે જન્મતાંની સાથેજ નેત્રહીન થશો. જેથી તમને સ્ત્રી પુત્રાદિકનું બંધન પ્રાપ્ત થશે

---

* સરખાવો સૂરની વાણી—

अथ श्रीनाथजी के वरदान—

तब बोले जगदीश जगतगुरु सुनो सूर मम गाथ ।
तू कृत मम यश जो गावैगो, सदा रहे मम साथ ॥

सूरसारावली ११०४ छंद

નહિં અને અન્ધા હોવાના કારણથી કેવળ તમારી માતાજ તમને પાળશે. આ પ્રકારે કહી શ્રીકૃષ્ણ અંતર્હિત થયા. ”

× × ×

‘એક સમય મ્લેચ્છ ભૂપ દિલ્હીના બાદશાહે ભક્તિ-પૂર્વક સૂરદાસજીને પોતાને ત્યાં બોલાવી સત્કાર્યા. અને તેણે કહ્યું કે-**આપ ભગવાનના સખા યાદવ છો જેથી આપને બધું સ્મરણ છે.** તો મારી પ્રાર્થના છે કે મારી અનેક સ્ત્રીઓમાં કોઈ યાદવી હોય તો બતાવો÷ ’

‘ત્યારે સૂરદાસજીએ બધી રાણીયોને ક્રમશઃ પોતાની સન્મુખ લાવવાને કહ્યું. પછી તેમના કહેવા પ્રમાણે પ્રત્યેક બેગમ પડદાનો ત્યાગ કરી સૂરદાસજીને પ્રણામ કરીને જવા લાગી. અન્તમાં એક બેગમ આવી જેણે સૂરદાસજીને જોઈ સમીપમાં આવી તેમનાં ચરણ-સ્પર્શ કર્યાં. અને સ્પર્શ માત્રથી તેણીએ પોતાનો દેહ છોડી દીધો.

÷ આ પ્રસંગથી બે ત્રણ વાત સ્પષ્ટ થાય છે. એક તો સૂરદાસજીની વિદ્યમાનતામાંજ તેઓ ઉદ્ધવના અવતાર તરીકે પ્રસિદ્ધ હોવા જોઇએ. અને નિમ્ન દોહો પણ તે સમયનોજ હોવો જોઇએ—

विरहानल उरमें जरै बहत नैन जल धार ।
अचरज को है सूर का ऊधो को अवतार ॥

બીજું બાદશાહ અકબર નવીન ધર્મના સંસ્થાપક તરીકે પ્રસિદ્ધ થયા બાદ પોતાને તેના ‘પયગમ્બર’ રૂપે માનતો હતો. અને તેથી કદાચ તેના હૃદયમાં શ્રીકૃષ્ણની સમાન હોવાની કંઈક અભિલાષા રહેતી હોવી જોઇએ. જેથી તેના મનમાં પોતાની સ્ત્રીઓમાં યાદવી હોવાની ભાવના ઉદ્‌ભવી.

—સમ્પાદક

'પછી તેનું કારણ પુછતાં બાદશાહને સૂરદાસજીએ કહ્યું કે–પહેલાં મથુરામાં 'સુલોચના' નામક એક વેશ્યા રહેતી હતી. તેણીને એક વૈશ્યે પોતાના પુત્રના વિવાહમાં ઇંદ્રપ્રસ્થ:(દિલ્હી) બોલાવી. ત્યાં પ્રશંસાવશ તેણીને રાજાએ પણ નૃત્ય માટે સભામાં બોલાવી અને એની કલા ઉપર પ્રસન્ન થઈ તેણીને બહુજ દ્રવ્ય આપ્યું. નૃત્યની સમય તેણીએ એક રાણીને જોઈ પોતાની વૃત્તિ ઉપર પશ્ચાત્તાપ કર્યો. પછી ત્યાંથી આવીને પોતાનું સમગ્ર દ્રવ્ય દરિદ્ર બ્રાહ્મણોને આપી દીધું અને એ ફળ માગ્યું કે હું આગલા જન્મમાં રાણી થાઉં.'

'તેણી આ પ્રકારનું ચિંત્વન કરતાં થોડા સમયમાં મૃત્યુ પામી અને તે તમારે ત્યાં રાણી થઇને આવી.'

'પછી આયુષ્ય ક્ષય થયા બાદ તેણી મને જોઇને દેહ છોડી મુક્ત થઈ. આ યાદવી ન હતી, કેમકે જેઓએ યાદવ વંશમાં જન્મ લીધો હતો તેઓ મનુષ્ય ન હતાં'*

---

* સૂરદાસજી મથુરા ગયા તે સમયે અકબર મળ્યો હતો (જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે) ત્યારનો આ પ્રસંગ છે. સૂરદાસજી દિલ્હી ગયા નથી.

—સમ્પાદક

સૂરદાસજીનો ભૌતિક ઇતિહાસ

———:o:———

ચોફેર પ્રચલિત પ્રસંગોનું નિરૂપણ કર્યા પછી હવે અમે શ્રીસૂરના ક્રમબદ્ધ ચરિત્રનું સંક્ષિપ્ત વર્ણન કરીએ છીએ–

વ્રજભાષા–ગદ્યસાહિત્યના આદ્યપિતા શ્રીગોકુલનાથજી રચિત 'વાર્તા અને 'નિજવાર્તા'ના આધારે શ્રીસૂરનો જન્મ સં. ૧૫૩૫ ના વૈશાખ શુકલ દ્વિતીય પંચમી અને રવિવારના મધ્યાન્હે દિલ્હી પાસે આવેલા 'સીંહી' નામક ગ્રામમાં એક સારસ્વત બ્રાહ્મણને* ત્યાં થયો હતો.

શ્રીસૂર સ્વગુરૂ મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીથી ફક્ત ૧૦ દિવસજ ન્હાના હતા.

---

* સૂરદાસજીનું બ્રહ્મભટ્ટ હોવું બીલકુલ અસઙ્ગત છે. કારણ કે–એ તદ્દન અસંભવ છે કે શ્રીસૂરના ઘનિષ્ઠ પરિચયવાળા શ્રીગોકુલેશ તેમની જ્ઞાતિ પણ ન જાણતા હોય !

અર્વાચીન તમામ અન્વેષણ કર્તાઓએ વાર્તાને જ તે વિષયમાં વધુ પ્રામાણિક માની એકી અવાજે સૂરદાસજીનું બ્રાહ્મણ હોવું સ્પષ્ટ કર્યું છે. વિસ્તાર ભયથી નીચે સમાલોચનાત્મક ફક્ત એજ મત ઉધ્ધૃત કર્યો છે––

"सरदार कवि ने इन्हें महाकवि चन्दवरदायी का वंशज मानकर, ब्रह्मभट्ट सिद्ध किया है, किन्तु 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में इसका कोई जिकर नहीं है, और 'वार्ता' ही प्रमाण कोटि में अधिकांशतः आ सकती है,

જનશ્રુતિના આધારે તેમના પિતાનું નામ રામદાસ અને માતાનું નામ ભગવતી લક્ષ્મી હતું.

તેઓ જન્મથી જ બાહ્ય ચક્ષુ ચિન્હ રહિત, ભગવદીય અને ત્રિકાલજ્ઞ હતા. શ્રીસૂર ૭ વર્ષના થયા ત્યારે તેઓ

क्यों कि उसे सूरदासजी के समसामयिक गोसाई गोकुलनाथजी ने रचा था।"

वियोगीहरि रचित 'व्रजमाधुरी सार' पत्र. २

"इन छंदो के कपोल कल्पित होने का दूसरा बडा भारी प्रमाण यह है कि श्रीगोकुलनाथजी ने अपने चौरासी-चरित्र में और मियाँसिंह ने भक्त-विनोद् में सूरदास को ब्राह्मण कहा है। गोकुलनाथ गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र थे, और सूरदास के मरने के समय गोस्वामीजी की अवस्था ४८ वर्ष की थी। अतः समझ पडता है कि गोकुलनाथ भी २०-२५ वर्ष के होंगे। फिर गोस्वामीजी और सूरदास में प्रेमका एवं अन्य घनिष्ठ संबंध था। अतः यह विचार भी मन में नहीं आता कि गोस्वामीजी अथवा उनके पुत्र सूरदास का कुल तक न जानते हो। इसी प्रकार चौरासी वार्ता और भक्तविनोद् में शत्रुनाश के वरदान का कोई हाल नहीं लिखा हैं, यद्यपि कूपपतन का वर्णन है, यह संभव नहीं कि यदि यह वरदान सूरदास को मिला होता, तो इन दोनों पुस्तकों में कूपपतन का वर्णन होने पर भी यह हाल न लिखा होता। फिर यह भी संभव नहीं कि यदि इन के छ भाई मारे गए होते, तो ये दोनो लेखक उस बात को न लिखते।"

मिश्रबन्धु-नवरत्न पात्र २२६

સ્વપિતાના કટુ વચનથી ઘરથી વિરક્ત થઈ ચાલી નીકળ્યા.* અને તેમણે ગામથી ચાર કોસ દૂર આવેલા એક નાના ગામની બહાર તલાવ ઉપર આવીને જળ પીધું. ત્યાં તેમણે લોકોને શુકન આદિ બતાવી ભવિષ્ય કહી કેટલીક પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. જેના પરિણામે ત્યાંના લોકોએ તેમને ખાનપાન આદિ-નો પ્રબંધ કરી આપ્યો.

પછી પ્રસિદ્ધિથી આકર્ષાઇ ઘણા મનુષ્યો, કંઠી એવં ઉપદેશ પ્રાપ્ત કરી એમના શિષ્ય થયા. અને ત્યારથી તેઓ 'સૂરસ્વામી' તરીકે પ્રસિદ્ધ થયા.

તેઓ કાવ્યરચના અને ગાનકળામાં જેવા સર્વોત્કૃષ્ટ હતા તેવાજ કોકીલકંઠી હતા. તેથી તેમના અનેક ગુણોથી આકર્ષાઈ કવિઓ અને ગુણીજનોનો સમૂહ તેમની નિકટ સર્વદા રહેતો.

ત્યાં બાર વર્ષના નિવાસ દરમ્યાન તેમણે હજારો પદ માહાત્મ્ય અને દીનતાનાં રચ્યાં.

જનશ્રુતિના આધારે, સં. ૧૫૫૨માં તેઓને નારદજીનો સાક્ષાત્કાર થયો. પછી તેમની દ્વારા ભગવદ્ ગુણાનુવાદ શ્રવણ કરી તેઓ અતિ પ્રસન્ન થયા. અને ભક્તપ્રકૃતિને અનુસરીને તેમણે નારદજી આગળ નિમ્ન પદ દ્વારા માહાત્મ્યજ્ઞાન સંયુક્ત પ્રભુની નિષ્ઠુરતાનું વ્યંગાત્મક વર્ણન કર્યું—

कहावत एसे त्यागी दानी ।
चार पदारथ दिये सुदामा, गुरु के सुत दये आनि ॥

---

* કેટલાકના મતે આઠ વર્ષના થઈ ઉપવિત લીધા બાદ તેઓ વિરક્ત થયા હતા.

विभीषन कौं लंक दीनी, प्रेम प्रीति पहचानि।
रावन के दस मस्तक छेदे, दृढ ग्रही सारंग पानि॥
प्रह्लाद को निज कृपा कीन्ही, सूरपति किये निदान।
सूरदास पर बहुत निठुरता नैनन हू की हान॥

આ પદ શ્રવણુ કરી નારદજી આર્દ્ર હૃદયે તેમને ભગવદ્દર્શનનો વર આપી અંતર્ધ્યાન થયા.

પછી એક દિવસે સૂરદાસજી ભગવદ્ગુણાનુવાદ ગાતાં આનંદના આવેશથી આત્મ-વિસ્મૃત થયા. અને તેઓ ભાવાવેશમાં ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા. તે સમયે નજીકના એક કુવામાં પડતાં ગોપવેશધારી શ્રીકૃષ્ણે તેમની હાથ પકડી રક્ષા કરી*

આપના અલૌકિક સ્પર્શમાત્રથી તેઓને ભગવત્સ્વરૂપનું જ્ઞાન થયું. અને તેથી એમણે પણ તે પ્રભુના શ્રીહસ્તને મજબુત પકડયો.

પછી ગોપવેશ ધારી શ્રીકૃષ્ણ તેમના હાથમાંથી અંતર્ધ્યાન થયા ત્યારે શ્રીસૂરે નિમ્ન દોહો કહ્યો—

---

* 'भक्ति-माहात्म्य' નામક એક પ્રાચીન સંસ્કૃત ગ્રન્થથી ઉદ્ધૃત.

જે ગ્રંથમાં સાત દિવસ સુધી કુવામાં પડી રહેવાનું વર્ણન છે તે, વાર્તાના આધારે તથા યુક્તિથી પણ અસંગત છે. કેમકે વાર્તાને અનુસરીને એ સ્પષ્ટ થાય છે કે શ્રીસૂર કદીયે શિષ્યો વિહીન રહ્યા નથી. એટલે છ દિવસ સુધી શિષ્યોને સૂરદાસજીના કુવામાં પડવાની ખબર ન પડે એ માની શકાય નહિ.

આવોજ એક અન્ય પ્રસંગ બિલ્વમંગળ સુરદાસ સંબંધીનો 'ભક્તિ મહાત્મ્ય' ગ્રન્થમાં પ્રાપ્ત છે. એટલે સંભવ છે કે નામ સામ્યે સૂરદાસના પ્રસંગો અને પદોમાં સંમિશ્રણ થયું હોય.

* हाथ छुडाये जात हो निबल जानि के मोहि।
हिरदे तें जब जाऊगे मर्द बदोंगो तोहि ॥

પશ્ચાત ચારે તરફ પ્રભુને ખોળતાં તેઓ વિકળ થઈ ત્યાંના મનુષ્યોને તે ગોપબાલકના વિષે પુછવા લાગ્યા.

જ્યારે મનુષ્યો તરફથી કોઈ પણ પ્રકારનો જવાબ ન મળ્યો ત્યારે તેઓ સ્વસ્થળે આવી અતિ દૈન્યતાપૂર્ણ હૃદયે શ્રીગોપીજનોની માફક હરિયશોગાન કરતા અસ્વસ્થ ચિત્તે રૂદન કરવા લાગ્યા.

તે સમયે ભક્તાધીન પ્રભુએ ત્યાં પ્રકટ થઈ શ્રીસૂરને દિવ્ય નેત્રો આપી દર્શન દીધાં.

આ વખતે શ્રીસુરે તે અલૌકિક સુધામય મૂર્તિનું દર્શન કરી હૃદયવેધક નિમ્ન પદ ગાયું—

' सन्मुख आवत बोलत बैंन।
ना जानूं तिंहिं समे जु मेरे सब तन श्रवण कि नैन ॥
रोम २ में सुरति शब्द की नख शिख लोचन ऐंन।
इते मांझ बानी चंचलता सुनी न समुझी सैन ॥
तब जकि थकि चकि ठई मौन मुख अब न परै चित्त चैन।
सुनहु सूर यह सत्य, किधौं सुपनौ दिन रैन ॥

---

* ભક્તિમાહાત્મ્યમાં આ દોહો સંસ્કૃતમાં આ પ્રકારે પ્રાપ્ત છે.
मोटयित्वा करं यन्मे दुर्बलस्य गतोह्यसि।
हृदयाचेद्बहिर्यसि तदा त्वां पुरुषं ब्रुवे ॥ (૧૦૪ પ્રકરણ)

પછી શ્રીકૃષ્ણે સુરની વાણીનો અંગિકાર કરી તેમને વર માગવાને કહ્યું. ત્યારે તેમણે અન્ય પ્રાકૃત વસ્તુ ન દેખાય તદર્થ નેત્રોના વિસર્જનપૂર્વક ભગવલ્લીલાનો સાક્ષાત્કાર માગ્યો.

એટલે શ્રીહરિએ તેઓને મથુરામંડલમાં શ્રીવલ્લભાચાર્યજીના શરણુ દ્વારા તે ઇચ્છા પૂર્ણ થશે એમ આજ્ઞા કરી.

પછી શ્રીકૃષ્ણુના અંતર્ધ્યાન થયા બાદ શ્રીસૂરે કેટલાક દિવસ ત્યાં રહી ભગવદમાહાત્મ્ય જ્ઞાનનું પદો દ્વારા વર્ણન કર્યું. તે પૈકી એક રાત્રિએ પુનઃ શ્રીકૃષ્ણે તેમને દર્શન આપી મથુરામંડલમાં શીઘ્ર જવાની આજ્ઞા કરી.

તેથી તેઓ સં. ૧૫૫૩ માં કેટલાક શિષ્યો સહિત મથુરા જવા નિકળ્યા. આ સમયે તેમના પિતા પણુ ત્યાં આવી પહોંચ્યા. એટલે તેમણે તેઓને દુઃખી જાણી પોતે ત્યાગ કરેલો વૈભવ લેવાને કહ્યું.

પછી પિતાએ તે ગ્રહણુ કર્યો. અને સૂરદાસની સાથે તેઓ પણુ મથુરા યાત્રાર્થે ચાલ્યા.

કહે છે કે આ સમયે તેમના પિતાએ મથુરામાં એક સાધુને ત્યાં શ્રીસૂરનો યજ્ઞોપવિત સંસ્કાર કર્યો. અને તેમને વિદ્યાભ્યાસ અર્થે ત્યાં રાખ્યા.

પશ્ચાત સૂરદાસના આગ્રહથી તેમના પિતા ઘર ગયા. અને સૂરદાસજી થોડા દિવસ ત્યાં રહ્યા.

પછી મથુરાના ચોબાની પ્રવૃત્તિથી કંટાળી તેઓ મથુરા અને આગ્રાની વચ્ચે આવેલા ગૌઘાટ નામક સ્થાન ઉપર શિષ્યો સહિત ગયા. ત્યાં શિષ્યોને એક કુટી કરવાની આજ્ઞા

આપી. અને જ્યાં સુધી તે સિદ્ધ થઇ નહી ત્યાં સુધી તેઓ પાસેના 'રૂનકતા' નામક ગામમાં એક સ્થળે રહ્યા.

બાદમાં શ્રીસૂરે ગૌઘાટ ઉપર ૧૨ વર્ષ પર્યંત દઢનિવાસ યુક્ત અનેક શિષ્યો પ્રાપ્ત કરી, ભગવદ્યશોગાન દ્વારા મોટા પ્રમાણમાં પ્રસિદ્ધિ–લાભ મેળવ્યો.

ત્યાં સર્વ પ્રકારનું સુખ હોવા છતાં સૂરદાસજીનું હૃદય ભગવલ્લીલાના દર્શનને માટે વારંવાર અશાંત બનતું. તોપણ તેઓ કોઇ ન જાણે તે રીતે પોતાના અશાંત ચિત્તને, ભગવદાજ્ઞા ઉપર દઢ વિશ્વાસ રાખી શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની પ્રતિક્ષા કરતાં, પુનઃ પુનઃ સમજાવી આશા આપતા.

આ પ્રકારે ઘણા દિવસ વ્યતીત થયા. એવામાં દક્ષિણના મહારાજા 'નૃસિંહવર્મા' સાર્વભૌમના રાજ્યમાં, રાયલુ સેનાની રાજા કૃષ્ણદેવ દ્વારા વિદ્યાનગરમાં કનકાભિષેકથી સન્માન પ્રાપ્ત કરી મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્ય અડેલ થઈ સં. ૧૫૬૬ના ચૈત્ર વદ ૧૧ના દિવસે ગૌઘાટ પધાર્યા×

તે સમયે શ્રીસૂર શિષ્યો દ્વારા મહાપ્રભુનું આગમન સાંભળી હર્ષપૂર્વક આપની પાસે આવ્યા. અને તેમણે દીનતાનાં અનેક પદ ગાયા ઉપરાંત પોતાને શરણે લેવાની નિમ્ન પદ દ્વારા પ્રાર્થના કરીઃ—

' तुम तजि और कौन पै जाऊं ।
काके द्वार जाय शिर नाऊं परहथ कहां बिकाऊं ॥

× આ સંબંધી વિશેષ જુઓ અમારા તરફથી પ્રકટ થયેલ "શ્રી વિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત"

एसो को दाता है समरथ जाके दिये अघाऊं ।
अंतकाल तुमरे सुमिरन बिनु और नहीं कहुं ठाऊं ॥
रंक सुदामा कियो अजाची दियो अभैपद ठाऊं ।
कामधेनु चिंतामनि दीनी कल्पवृक्ष तरछाऊं ॥
भव समुद्र अति देखि भयानक मनमें अधिक डराऊं ।
कीजे कृपा महाप्रभु मो पर,+ सूरदास बलिजाऊं ।

શ્રીસૂરની ઉક્ત દૈન્યતાપૂર્ણ વિનતીને સ્વીકારી આચાર્યશ્રીએ તેમને શ્રીયમુનામાં સ્નાન કરાવી તેજ દિવસે (ચૈત્ર વ. ૧૧) નામ નિવેદન આપીને શરણે લીધા. પછી ભાગવતના દશમસ્કંધની અનુક્રમણિકા એવં પુરૂષોત્તમ સહસ્રનામને રચી તેઓને શ્રવણ કરાવ્યાં. તેથી તેમને સમગ્ર લીલાનું જ્ઞાન થયું. પછી એમણે આચાર્યશ્રીના દશમસ્કંધની ટીકાના મંગલાચરણવાળા શ્લોકને અનુસરીને નિમ્ન પદ ગાયું—

+ ખેદ છે કે મિશ્રબન્ધુઓએ પોતાની 'સૂરસુધા' નામક પુસ્તકમાં આ કડીને ફેરવી નાખી છે–

कीजे कृपा सुमिरि अपनो प्रण सूरदास बल जाऊं ।

તો પણ

तुम तजि और कोन पै जाऊं । काके द्वार जाय शिर नाऊं
परहथ कहां बिकाऊं ॥

એ શબ્દોથી સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે કે શ્રીસૂરે મહાપ્રભુ આગળ પોતાને શરણે લેવાની પ્રાર્થના રૂપેજ, મહાપ્રભુ અને ઇશ્વરના સ્વરૂપમાં સાચો અને વાસ્તવિક અભેદ સમજી, આ પદ ગાયું છે, વિશેષ જુઓ વિશ્વનાથ ગોવિંદજી દ્વિવેદી રચિત શ્રીવલ્લભ દિગ્વિજય પાન ૯૨

—સમ્પાદક

चकईरी चल चरन सरोवर जहां नहिं प्रेम वियोग।'

ઉક્ત શ્લોકમાં 'लक्ष्मी सहस्त्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिं' જેમ કહ્યું છે તેમ સૂરે પણ આ પદના અંતમાં 'जहां श्रीसहस्त्र सहित नित क्रीडत शोभित सूरजदास' એમ ગાયું છે. તેથી આચાર્યશ્રીએ જાણ્યું કે સૂરદાસજીને ભગવલ્લીલા સ્ફુરી.

પછી આચાર્યશ્રીએ તેમને નંદાલયની લીલા ગાવાની આજ્ઞા કરી ત્યારે તેમણે જન્મ પ્રકરણને અનુસરીને 'व्रजभयो महरि के पूत' એ પદ ગાયું. તેમાં નંદાલયનું વર્ણન કર્યા પછી જ્યારે તેઓ ગોપીયોના ગૃહનું વર્ણન કરવા લાગ્યા ત્યારે આચાર્યશ્રીએ તેમને રોકવા માટે, તેમજ તેમના–સ્વ-શિષ્યોના ઉદ્ધાર સંબંધી–આંતરિક સંદેહના નિવારણાર્થે, 'सुनि सूर सबन की यह गति' એ અંતિમ વાક્ય કહી ઉક્ત પદની પૂર્ણાહુતિ કરી તેમને ચુપ કર્યા.

પછી ત્રણ દિવસ પર્યંત આચાર્યશ્રી ત્યાં બિરાજ્યા તે દરમ્યાન શ્રીસૂરે પોતાના અનેક શિષ્યોને સેવક કરાવ્યા. અને ચોથા દિવસે તેઓ આપની સાથે શ્રીગોકુલ આવ્યા.

તે સમયે આગ્રાથી ગજ્જનધાવન કાલપીવાળા પણ શ્રીનવનીતપ્રિયજીને લઈને આચાર્યશ્રીની સાથે ગોકુલ આવ્યા હતા. અને આચાર્યશ્રી શ્રીનવનીતપ્રિયાજીને પ્રેમ-પૂર્વક બાલભાવથી લાડ લડાવતા હતા.

ઉભય સ્વરૂપોની પરસ્પર પ્રીતિને હૃદયમાં અનુભવ કરી સૂરદાસજીએ આચાર્યશ્રીને પ્રસન્ન કરવાને અર્થે આપની આજ્ઞાથી શ્રીનવનીતપ્રિયજીના ગૂઢ સ્વરૂપનું વર્ણન કરતાં

બાલભાવનાં 'शोभित कर नवनीत लिये' આદિ અનેક પદ ગાયાં. જેથી આચાર્યશ્રી પ્રસન્ન થયા.

પછી આચાર્યશ્રી ત્યાંથી સૂરદાસજીને સાથે લઈ શ્રી-ગોવર્ધન પર્વત ઉપર પધાર્યા. ત્યાં નવીન મંદિરમાં બિરાજતા શ્રીનાથજીની સન્મુખ વૈ. શુ. ૩ અક્ષયતૃતીયાના દિવસે સૂર-દાસજીને કીર્તનની સેવા સોંપી.

તે સમયે શ્રીસૂરે વિજ્ઞપ્તીયુક્ત દીનતાનું–'**अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल**' એ–પદ ગાયા બાદ પુષ્ટિમાર્ગના મર્મને પ્રકટ કરતું, માહાત્મ્યજ્ઞાનયુક્ત પૂર્ણ સ્નેહને સૂચવતું "**कौन सुकृत इन व्रजवासिन को**"–પદ શ્રીનાથજીને શ્રવણ કરાવ્યું. જેથા આચાર્યશ્રી પૂર્ણ સંતુષ્ટ થયા.

પછી આચાર્યશ્રીના સંબંધથી શ્રીનાથજીએ શ્રીસૂરને વિવિધ પ્રકારની અનેક લીલાઓનો અનુભવ કરાવ્યો. અને તેમને તે લીલાઓનું સુચારૂ રૂપે વર્ણન કરવાની આજ્ઞા આપી.

જેનું સ્પષ્ટીકરણ શ્રીસૂર આ પ્રકારે નિજ 'સૂરસાવલી'માં આપે છે—

करमयोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायो ।
श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीला भेद बतायो ॥
ता दिन तें हरि लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ।
ताको सार सूरसारावलि, गावत अति आनंद ॥

अथ श्रीनाथजी के वरदान–

तब बोले जगदीश जगतगुरु, सुनो सूर मम गाथ ।
तू कृत मम यश जो गावैगो, सदा रहै मम साथ ॥

पत्र ६०–११०४

આ પ્રકારે શ્રીસૂરે આચાર્યશ્રી અને શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીની કૃપાથી સમગ્ર લીલાનાં પદોનો વિસ્તાર કર્યો. અને તેમાં સૂર એવં સૂરદાસ એમ દ્વિવિધ છાપ ધરી. અસ્તુ.

સૂરસારાવલીના અવલોકનથી એ પ્રતીત થાય છે કે સં. ૧૫૬૬ થી સં. ૧૫૮૬ સુધીના વચગાળાના ૨૧ વર્ષમાં, શ્રીસૂરે, પોતાને પ્રાપ્ત શ્રીનાથજી એવં આચાર્યશ્રીના દિવ્ય પ્રસાદ દ્વારા અનેક લીલાઓનાં અસંખ્ય પદો રચ્યાં અને મહાપ્રભુને શ્રવણ કરાવ્યાં.

તેથી વાર્તાને અનુસાર આચાર્યશ્રી તેઓને 'સૂરસાગર' કહીને બોલાવતા અને આપની તે વાણી આજ પણ સાહિત્ય-સંસારમાં વિશુદ્ધ રૂપે સ્પષ્ટ છે.

સં. ૧૬૩૪ લગભગ જ્યારે બાદશાહ અકબર મથુરામાં સૂરદાસને મળ્યો ત્યારે તેણે શ્રીસૂરને પોતાનો પણ કંઇક યશ ગાવાને કહ્યું. પરંતુ ભગવદ્રસથી પરિપૂર્ણ એવા શ્રીસૂરે તેને સ્પષ્ટ કહ્યું કે '**नाहीन रह्यो मन में ठौर**'।

પછી બાદશાહે સૂરદાસજીને વિષ્ણુપદ સંભળાવાને કહ્યું ત્યારે તેમણે '**मनारे तू कर माधोसों प्रीत**' એ 'સૂરપચીસી' સંભળાવી તેને ઉપદેશ આપ્યો.

તેથી બાદશાહે પ્રસન્ન થઇને કંઇક માગવાને કહ્યું. ત્યારે શ્રીસૂરે નિડરતાપૂર્વક જણાવ્યું કે 'ફરીથી તમે મને કદી મળતા નહિ તેમજ બોલાવતા પણ નહિ'*

* 'આઇને અકબરી'નો અબુલફજલનો–સૂરદાસને બાદશાહને મળવા કાશીથી પ્રયાગ આવવા માટેનો–લખેલો પત્ર અષ્ટછાપના શ્રીસૂર પ્રત્યેનો નથી. કિંતુ સંભવ છે કે 'સૂરદાસ મદનમોહન'

સૂરદાસજીની આવી નિસ્પૃહતા અને નિડરતા જોઈ બાદશાહ આશ્ચર્યચકિત થયો. અને ત્યારથી તે તેમને અને તેમના કાવ્યને શ્રદ્ધાની દૃષ્ટિથી જોવા લાગ્યો. પછી તેણે તેમનાં અનેક કીર્તનો પોતાનાં માણુસો પાસે ફારસીમાં ઉતરાવી લીધાં અને તેનું તે નિત્ય અધ્યયન કરવા લાગ્યો.

પશ્ચાત ધીરે ધીરે અકબર ને શ્રીસૂરનાં પદો પ્રત્યે બહુજ મમત્વ વધ્યું. અને જે કોઈ તેમનાં રચેલાં પદો તેને આપે તેને તે પ્રત્યેક પદ દીઠ એક એક મોહોર આપતો.

આ રીતે બાદશાહ અકબરે શ્રીસૂરનાં પદોનો બહુજ મોટો સંગ્રહ પ્રાપ્ત કર્યો.

આથી જો કે સૂરદાસજી અને તેમના કાવ્યની ખ્યાતિ જગ–પ્રસિદ્ધ થઈ કિંતુ તેની સાથે એક મહાન અનર્થ એ

છાપવાળા સૂરદાસ ઉપરનો હોય. કારણ કે તે સૂરદાસે બાદશાહ અકબરની નોકરી છોડી તે માટે તેમને મનાવવાને અર્થે તેની પ્રશંસાનો પત્ર બાદશાહે તેની ઉપર લખાવ્યો હોવો જોઇએ.

ઉક્ત અનુમાનમાં સમય બહુજ મળતો આવે છે કેમકે અબુલ-ફજલ સંવત ૧૬૩૧ (અકબરના ઈલાહી સન ૧૯)માં બાદશા-હનો નોકર થયો હતો. અને સૂરદાસ મદનમોહન પણ તેજ અરસામાં નોકરી છોડી આગળ જણાવ્યા પ્રમાણે ભાગી ગયા હતા.

વળી અષ્ટછાપના શ્રીસૂર શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની શરણે આવ્યા પછી કદીયે ગોવર્ધન, મથુરા યા ગોકુલ શિવાય કોઈ સ્થળે ગયેલા જણાતા નથી.

અને એ અનુભવ સિદ્ધ વાત છે કે ભગવત્સાક્ષાત્કાર થયા બાદ બાદશાહને અથવા કોઈ અન્યને પણ મળવા અન્યત્ર જઈ મહાનુભાવો સ્થાનભ્રષ્ટ થતા નથીજ. —સમ્પાદક

થયો કે શ્રીસૂરના નામે બનાવટી છાપવાળાં ઘણાં પદો રચાયાં.

એક દિવસે બાદશાહ અકબરની પાસે કેટલાક કવીશ્વરો લોભથી સૂરદાસજીની છાપ ધરી ઘણાં કલ્પિત પદો બનાવીને લાવ્યા. તે વાંચી અકબરે તે પદોની કલ્પિતતાને જાણી લીધી. અને તે બનાવટી પદોની સાથે સૂરદાસજીના વાસ્તવિક પદોને તેણે ઈશ્વરનું સ્મરણ કરી પાણીમાં મૂકયાં. ફલતઃ કલ્પિત પદો જળમાં ડુબી ગયાં અને સાચાં પદો પાણીની ઉપર તરવા લાગ્યાં.

આ સૂરદાસજીની વાણીનો પ્રત્યક્ષ પ્રભાવ જોઈ અકબરને પ્રસન્નતા તો અવશ્ય પ્રાપ્ત થઈ, પરંતુ સાથે સાથે એ વિચારથી ખેદ પણ ઘણો થયો કે મારી લોભ આપવાની પ્રવૃત્તિથીજ સૂરદાસજીનાં વિશુદ્ધ પદોમાં કલ્પિત પદોનું સંમિશ્રણ થયું.

પછી તેણે આર્દ્ર હૃદયે 'પ્રભુ મને આ પાપમાંથી મુક્ત કરો' એમ કહી પોતાની પાસેનાં તમામ પદોને જળમાં મૂકી દીધાં. અને ઈશ્વરને પ્રાર્થના કરતો તે કહેવા લાગ્યો કે 'હે પ્રભુ ! સૂરદાસજીની વાણીથી અતિરિકત સર્વે પદોને શીઘ્ર ડુબાવી દો '

બાદશાહની ઉકત પ્રાર્થનાને સ્વીકારી પ્રભુએ સૂરદાસજીથી ભિન્ન સર્વે વાણીને જળમાં ડુબાવી દીધી.

આ રીતે અકબર દ્વારા શ્રીસૂરની વિશુદ્ધ વાણીનું પૃથક્કરણ થયું.+

+ ઉક્ત પ્રસંગ આ પ્રકારે પણ પ્રાપ્ત છે–

दूसरा यह कि—अकबर के वजीर भाषारसिक ख़ानख़ाना ने सूरसागर संग्रह किया, प्रतिपद के लिये एकएक अशर्फी

પછી ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીની આજ્ઞાથી તે એક લાખ પદના સંગ્રહને અકબરે 'સૂરસાગર' નામ આપ્યું. જે આજ પણ પ્રસિદ્ધ છે.

વળી એક સમય સૂરદાસજી ગોકુલ આવ્યા ત્યારે ગુસાંઈજીએ તેમને ' પ્રેંખ પર્યંક શયનં ' એ પાલનાનું સંસ્કૃત પદ રચી શિખવાડ્યું. ત્યારથી તેઓએ તેને અનુસરીને અનેક પાલનાનાં પદો ગાયાં. અને તે દ્વારા શ્રીનવનીતપ્રિયજી અવં ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીને પોતે પ્રસન્ન કર્યા.

પછી જ્યારે શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી શ્રીનાથજીની સેવાર્થે ગોવર્ધન પધાર્યા ત્યારે તેઓ પણ શ્રીનવનીતપ્રિયજીથી વિદાય થઈ ત્યાં જવા લાગ્યા. તે સમયે શ્રીગિરધરજીએ ગોવિંદજી, બાલકૃષ્ણજી અને ગોકુલનાથજીના અત્યાગ્રહથી સુરદાસજીને થોડા દિવસ વધુ રહેવાનો આગ્રહ કરી ગોકુલમાં રાખ્યા. આ વખતે શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીગિરિધરજીને આશ્વ-

---

देते थे। परंतु जब लोग लोभ से झूठे पद बना बनाकर लाने लगे तब उन्होंने तोलना आरम्भ किया। जो पद सूरदासजी के होते वह चाहे बड़े हों या छोटे तौल में बराबर उतरते, और जो झूठे होते वे कितने ही बडे क्यों न हों हलके हो जाते?

तीसरी यह कि—अकबर ने पदों का संग्रह किया परन्तु झूठे पदों की बहुतायत से संख्या बहुत बढ़ गई तब सब को आग में डाल दिया। जो सूरदासजी के थे न जले और जो झूठे थे सब जल गए।

'सूरदास' पत्र. १२ ७नागरी प्रचारिणी सभाद्वारा प्रकाशित–भूतपूर्व मंत्री बाबू राधाकृष्णदास लिखित

ર્યાન્વિત થઇ કહ્યું કે સુરદાસજી નેત્રવિહીન હોવા છતાં શ્રીનવનીતપ્રિયજીને જેવો શ્રૃંગાર થાય છે તેવુંજ તેઓ પ્રત્યક્ષ-દર્શી માફક વર્ણન કરે છે. માટે તેઓને અવશ્ય કોઈ કહેતું હોવું જોઇએ. જેથી આવતી કાલે કોઈને ખબર ન હોય તેવો અટપટો શ્રૃંગાર કરી આપ સૂરદાસજીની પરીક્ષા લો.

પછી બીજે દિવસે સૂરદાસજીને જગમોહનમાં બેસાડી કદી ન થયો હતો એવો શ્રૃંગાર શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીગિરધરજી પાસે શ્રીનવનીતપ્રિયજીને કરાવરાવ્યો. તે દિવસ જેઠ વદ ૧ નો હતો (વ્રજ અષાઢ વદ ૧) એટલે ગર્મી સખત પડતી હતી જેથી શ્રીગિરધરજીએ શ્રીનવનીતપ્રિયજીને કેવળ મોતિના શ્રૃંગાર કર્યા.* પછી જ્યારે સૂરદાસજીને કીર્તન ગાવાને કહ્યું ત્યારે તેમણે આ પદ ગાયું–

देखेरी हरि नंगमनंगा ।
जलसुत भूषण अंग बिराजत, बसनहीन छबि उठत तरंगा ॥
कहा कहुं अंग अंगकी शोभा, निरखत लज्जित कोटि अनंगा ।
कछू दधि हाथ कछू मुख माखन, सूर हसत व्रजयुवतिन संगा ॥

આ પદ શ્રવણ કરી શ્રીગોકુલનાથજીને પ્રતીત થઈ કે વાસ્તવમાં શ્રીસુરને સર્વ લીલા પ્રત્યક્ષ છે. ×

---

* આજપણ જેઠ માસમાં શ્રીનાથજી અને નવનીતપ્રિયજીને આ શ્રૃંગાર ધરાવવામાં આવે છે.

× મિશ્રબન્ધુઓએ પોતાના 'નવરત્ન' ગ્રન્થમાં, સૂરદાસજી નેત્ર-વિહીન નહીં હોવા જોઇએ કેમકે જેવું અંધ પુરૂષ વર્ણન ન કરી શકે તેવું તેઓએ યથાર્થ અને આબેહુબ પ્રાકૃતિક વર્ણન કરેલું છે એવું કરેલું અનુમાન આ પ્રસંગથી અસત્ય ઠરે છે.

પશ્ચાત એક સમય શ્રીસૂરને મળવા હરિવંશ આદિ વૃંદા-વનના સંત મહંતો પરાસોલી આવ્યા. ત્યારે શ્રીસૂરે તેમનો આદર કર્યો. અને પરસ્પર વાર્તાલાપાનન્તર શ્રીસ્વામિનીજીનાં પદો સંભળાવ્યાં. તે સમયે શ્રીસૂર એવા રસાવેશમાં ડુબી ગયા કે-તેમણે સાત દિવસ સુધી એક આસન બેસી શ્રીસ્વામિ-નીજીના સ્વરૂપને વર્ણન કરતાં અસંખ્ય પદો કહ્યાં.

આથી હરિવંશાદિક મહાનુભાવોએ આપની આર્દ્ર હૃદયે સ્તુતિ કરી. પછી પ્રણામ કર્યા બાદ તેઓ આપની પ્રશંસા કરતા વૃંદાવન ગયા. કિંતુ સૂરદાસજીને પોતાના શરીરનું ભાન ન રહ્યું અને ભાવાવેશમાં તલ્લીન થઇ તેમણે થોડા સમયમાં શ્રીસ્વામીનીજીનાં સહસ્ત્રાવધિ પદ કર્યાં. આથી શ્રીસ્વામિનીજીએ પ્રસન્ન થઇને તેમને સાક્ષાત્ દર્શન આપ્યાં અને તેમની 'સૂરજ' છાપધરી, જે આજ પણ ઘણા પદોમાં જોવામાં આવે છે.

પછી જ્યારે શ્રીસૂરને નિત્યલીલા-પ્રવેશની ભગવદાજ્ઞા થઈ ત્યારે તેઓને સવા લક્ષમાં બાકી રહેલાં ૨૫૦૦૦ પદોની રચના માટે ચિંતા થઈ.

તે ચિંતાને દૂર કરવા શ્રીહરિએ તેમના સંગ્રહમાં બાકી રહેલાં પદો 'સૂરશ્યામ' ની છાપ ધરી પૂર્ણ કર્યાં જે આજ પણ પ્રાપ્ત છે.

પછી સં. ૧૫૪૦ ના મહા સુદ ૨ ના દિવસે સૂર-દાસજી શ્રીનાથજીને દંડવત પ્રણામ કરી પરાસોલી આવી એક ચોતરા ઉપર ધ્વજાની સન્મુખ સુઈ ગયા, અને શ્રીગુસાં-ઈજીનું ચિંત્વન કરવા લાગ્યા.

આ સમયે ગોસ્વામીજી શ્રીનાથજીને શ્રંગાર કરી રહ્યા હતા તેવામાં તેમના હૃદયમાં આકસ્મિક-શ્રીસુરને કીર્તન કરતા ન

જોઈ—અનેક પ્રકારની શંકાઓ ઉદ્ભવી. પછી સેવકો દ્વારા શ્રીસૂરનું પરાસોલી ગમન જાણી આપે તે સેવકોને સ્પષ્ટ કહ્યું કે 'પુષ્ટિમાર્ગનું જહાજ જાય છે માટે જેને જે વસ્તુની આવશ્યકતા હોય તે શીઘ્ર લઇ લ્યો.'

ગોસ્વામીજીની આ આજ્ઞાથી ઘણા સેવકો સુરદાસજીને મળવાને ગયા. પછી રાજભોગાનન્તર સ્વયં શ્રી ગુસાંઇજી પણ અષ્ટછાપના સાતે કવિયો એવં રામદાસ (મુખ્ય પ્રચારક)ને લઈને સૂરદાસજીને દર્શન આપવા ત્યાં પધાર્યા.

પશ્ચાત ગોસ્વામીજીના સંબોધન દ્વારા શ્રીસૂરે આપનું પધારવું જાણી પુનઃ બેઠા થઈ સાષ્ટાંગ દંડવત કરી અને 'દેખો દેખો હરિજુકો એક સુભાવ' એ પદ ગાઈ ગોસ્વામીજી પ્રત્યેના પોતાના હરિરૂપ ગુપ્તભાવનું ત્યાંના ઉપસ્થિત ભાગ્યશાળી વૃંદને દાન કર્યું.

ત્યાર પછી ચત્રભુજદાસના પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપે તેમણે સર્વે વૈષ્ણવોને 'દૃઢ ઈન ચરણુન કેરો' એ પદ દ્વારા ગુરૂ, ગુરૂપુત્ર અને શ્રીહરિને ઐક્ય ભાવરૂપે જોનારને કલિ બાધા નથી કરી શકતો એવો અમૂલ્ય અંતિમ ઉપદેશ આપ્યો.

ત્યારબાદ ગોસ્વામીજીએ તેમને 'ચિત્તની વૃત્તિ ક્યાં છે' આદિ યાદગાર શબ્દોથી ભગવલ્લીલાનું પુનઃ સ્મરણ કરાવ્યું. પશ્ચાત શ્રીસ્વામિનીજીનું વર્ણન કરતાં તેઓએ પોતાનો દેહ છોડી દીધો.

આ રીતે શ્રીસુરે પોતાના પદો દ્વારા દૈન્ય અને ભક્તિભાવનું લોકોને દાન કર્યું.

સૂરસુધા પર એક દૃષ્ટિ

આર્યાવર્તની પુણ્યભૂમીનો ભાગ્યે જ કોઈ મનુષ્ય, કવિ-કુલ સમ્રાટ ભક્ત-શિરોમણિ શ્રીસૂરની કૃપા-વર્ષિણી સુધાથી અપરિચિત હશે! એમની સુધાનું જેઓએ પાન કર્યું છે તેઓ વાસ્તવમાં આ લોક અને પરલોકમાં કૃતકૃત્ય થઈ ચુકયા છે એ નિઃસંદેહ છે.

શ્રીસૂરે, સૂરસાગર, સૂરસારાવલી, સાહિત્યલહરી સૂર-પચીશી, એવં સૂરસાઠી નામક ગ્રન્થો* તથા શ્રીહરિની વિવિધ નિર્દોષ લીલાનાં પાન કરાવતાં અસંખ્ય સ્ફુટ પદો રચી ખચિતજ સાહિત્ય-સંસાર એવં ભક્ત સમાજને પૂર્ણ ઉપકૃત કર્યો છે.

નાગરી પ્રચારિણી સભા દ્વારા નવીન શોધિત સૂરદાસના કહેવાતા **'ब्याहलो'** અને **'नलदमयंति'** નામક બે ગ્રન્થો અષ્ટ છાપ શ્રીસૂરના હોવામાં અમને જ નહીં કિંતુ 'વિયોગી હરિ' 'મિશ્રબન્ધુઓ' આદિ ઘણાને સંદેહ છે.

કારણકે શ્રીસૂરે શ્રીકૃષ્ણથી અતિરિક્ત અન્ય કોઇ પણ વ્યક્તિનાં ચરિત્રોને ગ્રન્થાકાર રૂપે લખ્યાં નથી. હાં! મહા

---

* 'કેટાલાગસ કેટાલાગોરમ'માં 'હરિવંશ-ટીકા' નામનો ગ્રન્થ સૂરદાસજી રચિત હોવાનું લખેલું છે તેમજ પદસંગ્રહ, દશમસ્કંધ. ટીકા અને નાગલીલા એવં ભાગવત નામક શ્રીસૂરના રચેલા ગ્રન્થો નાગરી પ્રચારિણી સભા કાશીદ્વારા પ્રાપ્ત થયાનો ઉલ્લેખ વિનોદ પા. ૨૩૮માં છે. ઉક્ત પ્રથમ ગ્રન્થ જોવામાં આવ્યો નથી. અન્ય ગ્રન્થો સ્ફુટ લાંબા પદોના અન્તર્ગત આવી જાય છે.

પ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્ય એવં તત્પુત્ર ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથ પ્રભુચરણુની આજ્ઞાને માન્ય આપી તેમણે પુષ્ટિ સેવામાં આવશ્યક જન્માષ્ટમીથી અતિરિક્ત અન્ય ત્રણ જયંતિઓ (વામન, નૃસિંહ અને રામ)નાં ફૂટકર પદો અવશ્ય રચ્યાં છે. તેમજ ભાગવતના અનુવાદમાં આવતા અન્ય અવતારોનાં આવશ્યક વર્ણન પણ તેમણે કર્યાં છે. કિંતુ તે ગ્રન્થરૂપે ક્રમબદ્ધ અથવા સ્વતંત્ર તો નહીજ.

વળી એ પણ ધ્યાનમાં રાખવાનું છે કે શ્રીસૂરે, પોતાની કાવ્ય શક્તિ એવં પ્રાસાદાત્મક વાણીને, એક પરબ્રહ્મ શ્રીકૃષ્ણુથી અતિરિક્ત કોઈ પણ મનુષ્ય યા રાજાના યશોગાન કરવામાં ખર્ચ કરી નથી.

તેઓ શ્રીકૃષ્ણુથી અતિરિક્ત અન્યદેવોને પણ શક્તિહીન જાણી ભક્તિમાં તેમની ઉપેક્ષા જ કરતા. તેના પ્રમાણુ રૂપે '**अन्य देव सब रंक भिखारी देखे वहुत घनेरे**' આદિ અનેક પદો પ્રાપ્ત છે.

છતાંય તેઓ તુલસીદાસજીની માફક અન્ય દેવોની નિંદા કરતા ન હતા. કિંતુ તેમણે શ્રીકૃષ્ણુની સર્વોપરિ સત્તાને, જડ, ચૈતન્ય, કલા, અંશ અને અવતારાદિમાં શુદ્ધાદ્વૈત જ્ઞાન સ્વરૂપે જાણી તેમનું આવશ્યક હેતુથી વર્ણન કર્યું છે.

આ પ્રકારે શ્રીસૂરે અન્ય અવતારોનું આવશ્યક વર્ણન કર્યા છતાં શ્રીકૃષ્ણ શિવાય કોઇનીયે સત્તાને ભિન્નરૂપે સ્વીકારી નથી. એવી સ્થિતિમાં અમે 'બ્યાહલો' અને 'નલદમયંતિ' નામક ઉભય ગ્રન્થો અષ્ટછાપવાળા શ્રીસૂર રચિત હોય એ

માની શકતા નથી.*

શ્રીસૂરના સર્વે ગ્રન્થોમાં 'સૂરસાગર' એક અદ્વિતીય ગ્રન્થ છે. અને તેની રચના શ્રીસુરના જણાવ્યા મુજબ વિ. સં. ૧૬૦૨ સુધીની છે.× તેને ક્રમબધ કરવામાં શ્રીસુરે ૧૬૦૮થી ૧૬૩૦ સુધીનો સમય ખર્ચ્યો હોય એમ અનુમાન થઈ શકે છે અને તે અયથાર્થ નથી.

---

* 'નલદમન' કાવ્યનો વિશેષ પરિચય આ પ્રમાણે પ્રાપ્ત થયો છેઃ–

'નલદમન' કાવ્યની રચના હિજરી સન ૧૦૬૮ એટલે સં. ૧૭૧૪ માં પ્રારંભ થઇ છે તેના રચયતા કવિ 'સૂર'ના પિતાનું નામ ગોવરધનદાસ હતું અને તેઓ કંબુ ગોત્રના હતા. તેમના પૂર્વ પુરૂષો 'ગુરદાસપુર' જીલ્લા 'કલાનૌર' સ્થાનમાં રહેતા હતા; અને ત્યાંથી તેમના પિતા લખનૌ આવીને રહ્યા. ત્યાંસૂરદાસ કવિનો જન્મ થયો હતો. (વિશેષ જુઓ 'નાગરી પ્રચારિણી પત્રિકા, વર્ષ ૪૩ ભાગ ૧૯ અંક ૨ માં મુંબાઈના પ્રીંસ ઑફ વેલ્સ મ્યુઝિયમના ક્યુરેટર ડૉ. મોતીચંદ દ્વારા લખાયલો લેખ.)

× गुरु प्रसाद होत यह दरशन सरसठ वरस प्रवीन ॥ १००२ ॥

\+ \+ \+

श्रीवल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो ॥ ११०२ ॥
तादिन तें हरिलीला गाई एक लक्ष पदबंध ।
ताको सार सूरसारावली गावत अति आनन्द ॥ ११०३ ॥

ઉક્ત વાક્યોથી શ્રીસૂર ૧૫૬૬ માં જ્યારથી મહાપ્રભુશ્રી વલ્લભાચાર્યજીની શરણે આવ્યા ત્યારથી તેમણે ૧૬૦૨ સુધીમાં એમની ૬૭ વર્ષની ઉમર તક એક લક્ષ પદોની રચના કર્યાનું અને તેની અનુક્રમણીકારૂપે સૂરસારાવલી ૧૬૦૨ પછી રચવાનું સ્પષ્ટ કહેલું છે.

—સંપાદક.

એ તો નિશ્ચિત છે કે સૂરસાગરની રચના પછીજ સારાવલી અને સાહિત્ય-લહરીની રચના થયેલી છે. અતઃ સૂર-સારાવલીનો સમય ૧૬૦૩ થી ૧૬૦૫ વિ. સંવત સુધીનો છે. તેમજ સાહિત્ય-લહરી નિચેના પ્રસિદ્ધ પ્રસંગના આધારે નંદદાસજીના હિતાર્થે બનાવેલી હોવાથી–નંદદાસજી ૧૬૦૭માં ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથ પ્રભુચરણને શરણે આવેલા હોઇ–તે અરસામાં એટલે ૧૬૦૭ના કારતકથી વૈશાખ માસની ત્રીજ સુધીમાં પુરી થયેલી છે.

ઉક્ત પ્રસંગ આ પ્રમાણે સંપ્રદાયમાં પ્રસિદ્ધ છે—

સં. ૧૬૦૭ માં નંદદાસજી એક સ્ત્રીથી આકર્ષિત થઈ ગોકુલ આવ્યા. ત્યાં ગોસ્વામી શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીના પ્રભાવથી તેઓ શ્રીકૃષ્ણમાં આસક્ત બની સાચા ભક્ત થયા. પછી ગોસ્વામી પ્રભુચરણ તેમને લઇ શ્રીગોવર્ધન પધાર્યા. અને ત્યાં આપે શ્રીનાથજીની આજ્ઞાનુસાર અષ્ટછાપમાં તેમને સ્થાપી અષ્ટસખાની પૂર્તિ કરી. (વિશેષ જુઓ નંદદાસનો ઇતિહાસ).

આ સમયે શ્રીસૂર આદિ અન્ય સાત સખાએ નંદદાસજીને આવો 'નંદનંદન દાસ' કહીને પોતાની પાસે બેસાડચા. પછી નંદદાસજીની પ્રાર્થનાથી શ્રીસુરે તેમને છ માસ પોતાની પાસે રાખી પ્રથમ **'अर्थ करो पंडित अरु ज्ञानी'** એ પદ દ્વારા નંદદાસજીના પાંડિત્ય—ગર્વનું નિવારણ કરી તેમને દૃષ્ટકૂટ આદિ કાવ્ય-ચિત્ર દ્વારા સાંપ્રદાયિક રહસ્ય રૂપ માનસી ધ્યાન એવં ઉપમા ઉપમેય અને શ્રૃંગારી રાધાકૃષ્ણનાં દર્શન કરાવી પુષ્ટિમાર્ગના સિદ્ધાંતથી વાકેફ કર્યા. અને તે કાવ્યચિત્રોના સંગ્રહ રૂપ સાહિત્ય—લહરીની પૂર્તિ સં. ૧૬૦૭ના વૈશાખ

સુદ ૩ ના દિવસે કરી. તેમાં શ્રીસૂરે સ્પષ્ટ શબ્દો નિમ્ન પ્રકારે યોજ્યા છે. જે આ રહ્યા—

मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गौरीनंद को लिखि सुबल संवत पेख ।
नंदनंदन मास छयते हीन तृतिया वार;
तृतीय ऋक्ष सुकर्म जोग बिचारि सूर नवीन;
नंदनंदनदास हित साहित्यलहरी कीन ।

આ પ્રકારે નંદદાસજીએ સુરદાસજી દ્વારા પ્રગાઢ પાંડિત્ય અને શ્રૃંગાર પરિપૂર્ણ કાવ્યોને પ્રાપ્ત કર્યાં

આ રીતે કાવ્યક્ષેત્રમાં નંદદાસજી એક પ્રકારે શ્રીસૂર ના શિષ્યવત્ થયા એટલે તેમના કાવ્યોમાં કંઈ મણા રહે ખરી? તેથીજ અષ્ટછાપમાં સાહિત્યરસિકો દ્વારા નંદદાસજીને શ્રીસૂર પછીનું દ્વિતીયસ્થાન પ્રાપ્ત થયું છે.

અન્ય સૂરપચીસી અને સૂરસાઠી આદિની રચનાનો પ્રસંગ વાર્તામાં સ્પષ્ટ છે અને તેના અનુમાને તેનો રચનાકાળ સં. ૧૬૩૪ લગભગનો અનુમાન થાય છે. અસ્તુ

શ્રીસૂરે અર્વાચીન અને પ્રાચીન વ્રજભાષાના સર્વોત્કૃષ્ટ કવિયોમાં અગ્ર પદ પ્રાપ્ત કર્યું છે તેનું મુખ્ય કારણ તેમની સર્વવ્યાપી (general vision) દૃષ્ટિ છે. જે કવિયો પોતાના મતથી વિરૂદ્ધ વચનોને પણ પોતાના અન્યપાત્રો દ્વારા આદરપૂર્વક કહેવડાવે તેને સર્વ વ્યાપી દૃષ્ટિના કવિયો કહેવાય

છે. ઉક્ત દૃષ્ટિ અમારા શ્રીસૂરમાં અન્ય કરતાં અત્યધિક અંશમાં વિદ્યમાન છે. અને તેથીજ આજ સાહિત્ય—ક્ષેત્રમાં સૂર સૂર્યની માફક પ્રકાશે છે.

સૂરદાસની શુદ્ધ વ્રજભાષા અને કાવ્ય રચના દેખતાં વસ્તુતઃ તેઓ હિન્દીના વાલ્મીક છે એમ કહેવું એ તદ્દન સાચું છે. અસ્તુ.

સૂરસુધામાં જેવો જ્ઞાન ભક્તિ અને શ્રૃંગારનો એકરસ અબાધિત ધોધ વહેતો જોવામાં આવે છે તેવો પાંડિત્ય અને ઉપમા આદિના બહુમૂલ્ય તત્ત્વોનો અવિરોધ સંગ્રહ પણ ઉપસ્થિત છે.

વળી તેમની રસિક રચનામાં લોકોક્તિઓને પણ યથાસ્થાન મળેલું જોવામાં આવે છે જેમકે-**प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।** ઈત્યાદિ.

જેવી રીતે સૌર કવિતા, ભક્તિ, દૈન્ય, શ્રૃંગાર, અને માહાત્મ્યથી પરિપૂર્ણ છે. તેવી રીતે તેમાં ઉપમા ઉપમેય, ગાંભીર્ય અને પાંડિત્યની પણ જરાય કમી નથી.

શ્રીસૂરની હૃદયગત સાચા ભક્તિભાવવાળી ઉદ્ધવસંવાદની રચના ખરેજ કઠોર હૃદયને પણ દ્રવીભૂત કરી નેત્રોદ્વારા અશ્રુધારા વહેવડાવે તેવી છે.

તે કાવ્યોના અવલોકન દ્વારા એ કહેવું યથાર્થ છે કે તેઓ એક સત્યવકતા અને વિશુદ્ધ ભકત હતા. અને તે તેમનાં શ્રીષ્ણુ અને રાધિકા પ્રતિના પ્રેમયુક્ત આવશ્યક નિંદાત્મક કઠોર પદોથી પણ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. તેમણે તુલસીદાસજીની માફક ખુશામદી પદો બહુ ઓછાં રચ્યાં છે.

તેમની સુધા રૂપીણી વાણીમાં ક્ષેત્રોની પૂર્ણતા અને વેધકતા સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે.

સૂરની ભાષા શુદ્ધ વ્રજભાષા છે. તેઓ વ્રજભાષાના પ્રથમ કવિ હોવા છતાં એ કહેવું અવાસ્તવિક નથી કે એમની ભાષા લલિત અને શ્રુતિ મધુર છે, કે જેવી પાછળના અન્ય કવિયોની પણ જોવામાં આવતી નથી.

એમની કવિતામાં માધુર્ય અને કૃપા ઝળહળે છે. યદ્યપિ શ્રીસૂરને અનુપ્રાસનો ઈષ્ટ નહતો તોપણ ઉચિત સ્થાને તેઓએ તેનો પ્રયોગ અવશ્ય કરેલો છે.

શ્રીસૂરની વાણીમાં ઉપમા અને રૂપકોનું બાહુલ્ય છે અને તે પ્રાય: સંયોગાત્મક શ્રૃંગાર વર્ણનના પદોમાં વિસ્પષ્ટ રૂપે દેખાઈ આવે છે.

તેમના વિયોગાત્મક શ્રૃંગાર વર્ણનના પદોમાં ઉપમા અને રૂપકો જોવામાં આવતાં નથી કિંતુ તેની જગ્યાએ સ્વભાવોક્તિની પ્રાધાન્યતા રહેલી છે.

શ્રીસૂર–સુધામાં પ્રબંધધ્વનિ વિશેષ છે તેમજ તેમાં ઉપર કહ્યા પ્રમાણે વર્ણન–પૂર્ણતા (ક્ષેત્રોના વર્ણનની પૂર્ણતા) પરમોત્કૃષ્ટ રૂપે વિદ્યમાન છે.

સૂરદાસજીના પદો સરળમાં સરળ અને કઠિનમાં કઠિન પણ પ્રાપ્ત થાય છે એજ તેની વિશેષતા છે. આજકાલના શાબ્દિક વિદ્વાનો યા કવિયો તેવી રચના કરવામાં નિ:સંદેહ અસમર્થ છે.

વળી કઠિન પદોમાં ઝગમગતું સૂરદાસજીનું વિશુદ્ધ પાંડિત્ય એ વૈદિક એવં પોપટિયા જ્ઞાન તુલ્ય નથી કિંતુ તે પ્રભુદત્ત અલૌકિક કૃપાથી ભરેલું છે.

સૂરદાસજીનાં 'દૃષ્ટકૂટ' પદો ખરેખર સમર્થ પંડિતોને પણ મુંઝાવી નાંખે તેવાં છે. ઉક્ત પદોની પ્રાપ્ત થતી ટીકાના આશ્રય વિના તેનું વાસ્તવિક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવું બહુ જ મુશ્કેલ છે.

સૂરદાસજી પાંડિત્યમાં તો તુલસી અને કેશવ થી પણ ઘણા આગળ વધેલા છે. તેમજ બહુજ્ઞતામાં યે ઉક્ત બન્ને કવિયો તેમની સમાનપણું ભોગવી શકતા નથી.

સૂરદાસજીને પૌરાણિક જ્ઞાન જીર્ણાગ્ર હતું. તેમજ તેઓ સંસ્કૃતના પણ પુરા પંડિત હતા એમ 'કૂટપદો' ના નિરીક્ષણ દ્વારા પ્રતિત થાય છે.

વળી ફૂટકર પદોમાં તેઓએ સંસ્કૃત સાહિત્યના વિચાર એવં કોઇ કોઈ સ્થળે તો સંસ્કૃત શ્લોકોને જેમના તેમ પોતાની રચનામાં વ્યાપ્ત કર્યાં છે. દૃષ્ટાન્ત રૂપે—

'जो गिरिपति मसि वोरि उद्धि मै लें सुरतरु निज हाथ।
मम कृत दोष लिखैं वसुधा भरि तऊ नहीं मित नाथ ॥

આ ઉક્તિને આ શ્લોકથી મેળવો—

असित गिरि समं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे।
सुरतरुवर शाखा०

સૂરદાસજીની બીજી ઉક્તિ આ છે કે—

चर्चित चंदन नील कलेवर बरसति बुन्दन सावन।

આ ઉક્તિને જયદેવના ગીત ગોવિન્દના આ પ્રસિદ્ધ ગીતથી મેળવો.

'चंदन चर्चित नील कलेवर पीत वसन बनमाली'।

આ તો એક સાધારણ સમાનતા છે કિંતુ તેમનાં પદોનું અધિક બારિક અધ્યયન કરવાથી ઘણી બારીકમાં બારીક સમાનતાઓનું પણ દિગ્વદર્શન થશે.

સૂરદાસજીના પદોમાં જ્યોતિષની પણ બહુ સારી ઝળક જોવામાં આવે છે. જ્યોતિષની રાશિ અને લગ્ન સંબંધી વાતો વિગેરેનું તેમણે પદોમાં બહુ સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે. એથી શ્રીહરિરાયજીના કહેલા ભાવપ્રકાશની પણ સારી પુષ્ટિ થાય છે

તેમણે બાદશાહ અકબરને કહેલું નિમ્નપદ તેમની જ્યોતિષ વિદ્યાની પુષ્ટિ કરે છે—

रे मन ! धीरज क्यों न धरे ।

एक हजार नौसें के उपर एसो जोग परे ।। વિગેરે

તેમની ફારસી કવિતાઓમાં અમને સંદેહ છે જેનું કારણ અમે આગળ કહી ગયા છીએ.

પાંડિત્ય અને બહુજ્ઞતા ના અતિરિક્ત પ્રાકૃત નિરક્ષણના ગુણનું મહાકવિમાં હોવું આવશ્યક છે. કારણ કે તે વિના કાવ્યમાં સ્વાભાવિકતા પ્રાપ્ત થતી નથી.

સૂરદાસજીના કાવ્યોમાં ઉક્ત ગુણની ભરમાર જોવામાં આવે છે.

શ્રી સૂરની કવિતા કૃષકજીવન, અને પશુપક્ષી આદિનાં જીવનથી સમ્બન્ધ રાખવાવાળી ઉપમાઓ વડે પરિપૂર્ણ છે. દૃષ્ટાન્તરૂપે—

जनके उपजे दुख किन काटत ।

जैसे मथम आषाढ के वृक्षनि खेतहर निरखि उपास,

कृषक जीवन—

પક્ષિજીવન—

यह संसार सुआ सेमर ज्यों सुन्दर देख लुभायो।
चाखन लाग्यो रुई उड़ि गई हाथ कछू नहि आयो।

વૃક્ષજીવન—

मन रे ! तू वृक्षन को मत ले,
काटे ता पर क्रोध न कीजे सींचे करे न सनेह।
धूप सहत सिर आपने औरन छाया देत।
जो कोऊ तापर पत्थर चलावे ताको तत्क्षन फल देत।

શ્રીસૂરે ગ્રામ્યભાષાને પણ અપનાવી છે તેનું દૃષ્ટાંત—

सरश्याम विनु कोन छुडावै चले जाहु भाइ पोइस,

શ્રીસૂરે જે વસ્તુને હાથમાં લીધી, તેનું તેમણે સાંગોપાંગ રૂપે એવું વર્ણન કર્યું છે કે પાછળના કવિયોને માટે તેમાં વર્ણન અર્થે કશુંય બાકી રાખ્યું નથી.

શ્રીસૂરના આ વર્ણન-પૂર્ણતા ગુણનું રીવાંનરેશ મહારાજ રઘુરાજસિંહદેવે આ પ્રમાણે વર્ણન કર્યું છે—

'मतिराम भूषण बिहारी नीलकंठ गंग, बेनी संभु तोष चिंतामनि कालिदासकी। ठाकुर नेवाज सेनापति सुकदेव देव-पूजन घनआनंद घनश्यामदास की॥ सुंदर मुरारी बोधा श्रीपति हू दयानिधि जुगल कविंद त्यों गोविंद केसौदास की। 'रघुराज' और कविगन की अनूठी उक्ति मोहि लगै झूठी जानि जूठी सूरदास की॥'

અસ્તુ.

શ્રીસૂરની વાણીમાં 'મથુરાગમન'. જેવું હૃદયવેધક છે તેવુંજ બાલલીલાનું સ્વાભાવિક વર્ણન હૃદયગ્રાહી અને પરમ મનોહર છે.

દૃષ્ટાંત રૂપે:—

જે વખતે સહૃદય પાઠક શ્રીસૂર દ્વારા માતા યશોદાના કહેલા શ્રીકૃષ્ણ પ્રતિના આ શબ્દો–' **कजरो को पय पियहु लाल तब चोटी बाढै** '–ના અધ્યનન બાદ, તરતજ બાલક શ્રીકૃષ્ણના દૂધ પીને પુછેલા " **मैया ! कबहि बढैगी चोटी । किती बार मोहि दूध पियत भई अजहूँ है यह छोटी ।** " એ શબ્દોનું મનન કરે છે ત્યારે ખરેખર તેના હૃદયમાં સાચો વાત્સલ્ય રસ પ્રકટ થઈ જે આનંદ પ્રાપ્ત થાય છે તે અદ્વિતીય અને અવર્ણનીય છે.

એવીજ રીતે શ્રીસૂરસુધામાં ઉખલ-બંધન, ગોવર્દ્ધન-લીલા આદિ પણ દોષ રહિત અતિરમણીય છે.

વળી એ કહેવું તદ્દન ઉચિત છે કે શ્રીસૂરે પોતાની રચનામાં કોઈનાય ભાવની ચોરી કરી નથી, બલ્કે તેમના ભાવની દરેક કવિયોએ નિઃસંદેહ ચોરી કરી છે. અસ્તુ.

સૂરદાસજીનું કાવ્યક્ષેત્ર યદ્યપિ તુલસીદાસજીની માફક બૃહદ નથી કિંતુ તેઓએ ઉત્તમતા, ગંભીરતા અને ઉપમા આદિ જે જે વસ્તુઓને આવશ્યક સ્થળે અપનાવી છે, તેમાં તેમણે પાછળના કવિઓને માટે જરાયે જગા રહેવા દીધી નથી. એટલે તેમની કાવ્યક્ષેત્રની ઉત્તમતામાં પરિપૂર્ણતાનો સમાવેશ હોવાથી તેઓ તુલસીદાસજીથી કાવ્યક્ષેત્રમાં આગળ વધ્યા છે એ કહેવું અતિશયોક્તિ પૂર્ણ નથી.

જોકે તુલસીદાસજીએ લોકોક્તિને પદ્યમાં રચી રામ સમ્બન્ધી બનાવી જગતમાં લોકપ્રિયતા પ્રાપ્ત કરી છે કિંતુ અમે ઉપર કહી ગયા તેમ તેઓ પાંડિત્ય, ભક્તિ અને

કાવ્યના ગુણોની દૃષ્ટિએ સૂરથી આગળ જઈ શકયા નથીજ. એવો મત કેવળ અમારોજ નહિં કિંતુ સર્વે કાવ્ય–સાહિત્યના વિદ્વાન નિરીક્ષકોનો પણ છે—

દૃષ્ટાંત રૂપે—

'पाण्डित्यमें सूरदास, तुलसीदास और केशवदास दोनों से बढकर थे। बहुज्ञता में यह दोनों उनकी बराबरी का दावा नहीं कर सक्ते।'

'जो आज हिन्दी साहित्य–संसार में कवियों का मुकुटमणि माना जाता है उसकी कविता के सम्बन्ध में कहना ही क्या?'

'और सचभी है क्यों कि– सूरदास के बराबर अधिक लिखने वाला कोई शायद ही अन्य कवि हिन्दी भाषा का हुआ होगा। कहते हैं कि– अकेले सूरसागर में सवा लाख पद हैं। कवि–प्रतिभा इनमें पूरी थी क्यों कि– जो पद अपने प्रेम और भक्ति के जोश में लिखे हैं वह पढ़ने वालों के हृदय को विना द्रवित किए रहते नहीं–'

बाबू राधाकृष्णदास, नागरीप्रचारिणी सभाके भूतपूर्व मंत्री.

સમયાભાવથી શ્રીસૂર સંબંધી અન્ય વિવેચન અમે અમારા 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત કવિ' નામક ગ્રન્થમાં હવે પછી આપીશું.

—સમ્પાદક

*

શ્રીસૂર નું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક:-

જન્મ—વિ. સં. ૧૫૩૫ ના વૈશાખ સુદ ૫ ને રવિવારના મધ્યાહ્ન સમયે દિલ્હી પાસેના ‘ સીંહી ’ગ્રામમાં.

જાતિ—સારસ્વત બ્રાહ્મણ એવં પિતૃનામ રામદાસ.

શરણાગતિસમય—વિ. સં. ૧૫૬૬ ના ચૈત્ર કૃષ્ણ ૧૧ના દિવસે આગ્રા અને મથુરાની વચ્ચેના ‘ ગૌઘાટ ’ મુકામે.

સ્થાયી નિવાસ—ચંદ્રસરોવર, પરાસોલી.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—ઉત્થાપન.

અંતસમય—વિ. સં. ૧૬૪૦ ના મહા સુદ ૨, (?) સ્થાન પરાસોલી (અહીં હાલ પણ તે સ્થળમાં કુટી અને દ્વાર છે)

લીલાત્મક સ્વરૂપ—કૃષ્ણ સખા એવં ચંપકલતા સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ—વાક્.

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ—શ્રી મથુરેશજી.

શ્રૃંગારાસક્તિ—પાગ.

લીલાસક્તિ—માનલીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર*

સંગ્રાહક:-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે—

શ્રીપરમાનંદદાસજી

(સં. ૧૫૫૦ થી સં. ૧૬૪૦)

યદ્યપિ અમારા વિશુદ્ધ ચરિત્ર–નાયક મહાનુભાવ મહાકવિ શ્રીપરમાનંદદાસજીનું વિસ્તૃત જીવનચરિત્ર પ્રાપ્ત કરવાને અર્થે અમારી પાસે વધુ સાધનો નથી, છતાં અમે ગો. શ્રીગોકુલનાથજી રચિત '૮૪ વાર્તા,' શ્રીહરિરાયજી કૃત 'ભાવપ્રકાશ,' ધ્રુવદાસ રચિત ભક્તનામાવલી, 'ભક્તિમાહાત્મ્ય' એવં પરમ પૂજ્ય નિત્યલીલાસ્થ ગોસ્વામિ તિલકાયત શ્રીગોવર્દ્ધનલાલજી (નાથદ્વારા)ના મૌખિક– પરમ ભગવદીય જદુનાથદાસ દ્વારા પ્રાપ્ત–વચનામૃતોના આધારે સંક્ષિપ્તમાં તેમના ચરિત્રને અહીં ઉદ્ધૃત કરી આશા રાખીએ છીએ કે ઐતિહાસિક વધુ સાધનોના અભાવમાં નિમ્ન સંગ્રહીત ઈતિહાસ સાહિત્યકારોને અવશ્ય સંતોષ આપશે.

મહાકવિ પરમાનંદદાસજીનો જન્મ સં. ૧૫૫૦ ના માગશર સુદ ૭ ને સોમવારની સવારે કનોજમાં એક કાન્યકુબ્જ દરિદ્ર બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો.

બાલકના જન્મતાં વેંતજ તેના પિતાને એક યજમાન શેઠ દ્વારા અઢળક દ્રવ્ય મળ્યું. જેથી પિતાને પરમ આનંદ પ્રાપ્ત થયો અને તેના સ્મારક રૂપે તેણે પોતાના ભાગ્યશાલી પુત્રનું નામ 'પરમાનંદ' રાખ્યું. પછી બ્રાહ્મણો દ્વારા

જન્મપત્રિકાથી પણ તે નામ ને પુષ્ટિ મળી જેથી તેને અત્યંત હર્ષ થયો.

પરમાનંદદાસજી સ્વરૂપે ગૌરવર્ણી એવં કંઈક ઉંચા અને મધ્યમ કદના હતા. વળી તેમનો સ્વર પણ તીવ્ર અને સુમધુર હતો. તેમનું લલાટ વિશાળ અને ભવ્ય હતું. તેમની બન્ને ભુજા દીર્ઘ હતી. અને તેમને લલાટ, ગ્રીવા અને ઉદરે ત્રિરેખા હતી.

આઠ વર્ષની ઉમરે તેમને સ્વપિતાદ્વારા યજ્ઞોપવીત પ્રાપ્ત થયું. અને ત્યારથી તેઓ એક મહાપુરુષની પાસે નિકટના એક ગામમાં વિદ્યાભ્યાસાર્થે જવા લાગ્યા.

ત્યાં તેમણે આવશ્યક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યા બાદ એક મહાત્માના સમાગમ દ્વારા શ્રીકૃષ્ણની વિવિધ નિર્દોષ લીલાનું શ્રવણ કર્યું. પશ્ચાત પંચદશ વર્ષીય ઉમરે તેઓને પ્રભુદત્ત કાવ્યશક્તિનું સહસા દાન થયું અને ત્યારથી તેમણે પોતાના સુમધુર ભાવયુકત પદોની રચના કરવા માંડી.

પરમાનંદદાસજીએ પોતાની પચીસ વર્ષની ઉમરે એક મહાન કવિ તરીકેની પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. અને તેઓએ પોતાના ત્યાગમય ભકિતયુકત જીવન દ્વારા અનેક ગુણી, ભકત અને કવિયોને આકર્ષ્યા.

ત્યારથી તેમની પાસે પ્રત્યેક સમયે ગુણી લોકોનો મોટો સમૂહ રહેવા લાગ્યો કે જેને તેઓ યથાપ્રાપ્ત સાધનોથી ભાવપૂર્વક સંતોષતા.એમના એવા અનેક ગુણોથી મુગ્ધ થઈ

ઘણાએક તેમના શિષ્ય બન્યા અને તેઓ 'સ્વામી' તરીકે અનાયાસ પ્રસિદ્ધ થયા.

આ અરસામાં કન્નોજમાં દુષ્કાળ પડયો જેના ફલરૂપે ત્યાંના હાકિમે તેમનું ઘર લૂંટી લીધુ. ત્યારથી ધનવાન પુરૂષો દ્વારા તેમને દ્રવ્યની મદદ મળતી રહેતી. કિંતુ તેઓ તે દ્રવ્યનો સંગ્રહ ન કરતાં ગુણી અને ભકતોના સત્કારમાં તેને ખર્ચ કરી દેતા. આ જોઈ લોભી અને સ્વાર્થી પિતાએ તેમને તે દ્રવ્યના સંગ્રહ દ્વારા લગ્ન કરવાની લાલચ આપી. કિંતુ ઉક્ત વાતને પરમાનંદદાસે ધિક્કારતાં તેનો નકારાત્મક જવાબ આપ્યો. તેથી તે ધન-ઉપાસક પિતા પરમાનંદદાસજીને અકેલા છોડી પૂર્વ તરફ ધન પ્રાપ્તિને અર્થે ચાલી નિકળ્યો. અને ત્યારથી તેઓ સ્વતંત્ર રૂપે ગુણી સમાજની સાથે રહેવા લાગ્યા.

ત્યાં બે વર્ષના સ્વતંત્ર નિવાસ દરમ્યાન સં. ૧૫૭૭ માં પરમાનંદદાસજી પ્રયાગ આવ્યા અને ત્યાંજ સમૂહ સહિત રહેવા લાગ્યા. કન્નોજની માફક પ્રયાગમાં પણ તેમની ઘણી કીર્તિ પ્રસરી અને કર્ણોપકર્ણ તેની ચર્ચા આચાર્યશ્રીની પાસે અડે-લમાં પણ થઈ.

આ સમયે પોરબંદર નિવાસી સંગીતપ્રેમી કપૂરક્ષત્રી જલઘરિયાએ, આચાર્યશ્રી દ્વારા પરમાનંદદાસના કાવ્યગુણની પ્રશંસાની પુષ્ટિ થતી સાંભળી તેમના પદ સાંભળવાનો નિશ્ચય કર્યો. પશ્ચાત સમય પ્રાપ્ત કરી જેઠ સુદ ૧૧ ની મધ્યરાત્રિએ આચાર્યશ્રીના વચનામૃતો શ્રવણ કર્યા બાદ તેઓ ત્રિવેણીમાં તરીને સામી પાર પ્રયાગ-જ્યાં પરમાનંદદાસજીનો મુકામ હતો ત્યાં-આવ્યા.

તે દિવસે એકાદશી હોવાથી પરમાનંદસ્વામી ભક્તોના સમૂહસહિત રાત્રિ જાગરણ નિમિત્તે ભગવત્સંકીર્તન કરતા હતા.

આ સમયે ત્યાં ઉપસ્થિત કેટલાએક પ્રયાગના જાણીતા વૈષ્ણવોએ કપૂરક્ષત્રીને પરમાનંદદાસની નિકટ બેસાડી તેમનો સત્કાર કર્યો. અને પરમાનંદદાસ સાથે તેમનો પરિચય કરાવ્યો.

પશ્ચાત સમસ્ત રાત્રિ કીર્તન શ્રવણ કરી હૃદયાંતર્ગત પરમાનંદદાસના ગુણો અને પદોની પ્રશંસા કરતા તેઓ બ્રાહ્મમુહૂર્તમાં પુનઃ ત્રિવેણી તરીને અડેલ આવ્યા અને નિજસેવામાં પ્રવિષ્ટ થયા.

અહીં પ્રયાગમાં પરમાનંદદાસજીએ આલસ નિવૃત્ત્યર્થ બ્રાહ્મમુહૂર્ત થયે વિશ્રામ કર્યો. તે સમયે તેમને સ્વપ્ન આવ્યું અને તેમાં તેમને કપૂરક્ષત્રીના ખોળામાં તેમના પૂર્વ સંબંધી ચિરપરિચિત પરમપ્રિય આત્મારૂપ શ્રીનવનીતપ્રિયજીને પોતાના કીર્તન સાંભળતાં જોયા.

પછી સ્વપ્નભંગ થયા બાદ ઉક્ત સ્વરૂપના લાવણ્યમાં મુગ્ધ થઇ તેઓ તરતજ અડેલ આવ્યા અને ત્યાં આચાર્યશ્રીનાં તેમને દર્શન કર્યાં.

પશ્ચાત કપૂરક્ષત્રીને મળી તેમણે આચાર્યશ્રીની પાસેથી નામનિવેદન પ્રાપ્ત કર્યું. પછી આચાર્યશ્રીએ પરમાનંદદાસજીને દશમની અનુક્રમણિકા શ્રવણ કરાવી ભગવલ્લીલા–પીયૂષ-સમુદ્રરૂપ ભાગવતને તેમના હૃદયમાં સ્થાપ્યું. અને ત્યારથી તેઓ શ્રીસૂરની માફક 'સાગર'રૂપે પ્રસિદ્ધ થયા.

તે સમયે તેમણે ગુરૂભેટ રૂપે, પોતાને આચાર્યશ્રીની દ્વારા

પ્રાપ્ત થયેલ ભગવલ્લીલાની સ્ફૂરણાની પ્રતીતિ અર્થે, બાલલીલાનું નિમ્ન પદ ગાઈ આપને સંતુષ્ટ કર્યા—

'माईरी ! कमलनयन श्यामसुंदर झूलत हैं पलना ।'

પછી તેઓ આચાર્યશ્રીની પાસેજ રહેવા લાગ્યા અને તેમની દ્વારા શ્રીસુબોધિનીજીની કથાનું નિત્યપ્રતિ શ્રવણ કરી તેના ભાવ ને તેઓ પદ્યમાં વ્યક્ત કરી આચાર્યશ્રી એવં શ્રીનવનીતપ્રિયજીને અહર્નિશ શ્રવણ કરાવતા.

તેમની આ ચિત્તપ્રવીણતા રૂપ માનસી સેવાથી આચાર્યશ્રી પૂર્ણ સંતુષ્ટ થયા. પછી સં. ૧૫૮૨ માં તેમની 'यह मागौं गोपीजन-वल्लभ०' એ પ્રાર્થના શ્રવણ કરી આપ તેમને લઈને વ્રજ તરફ પધાર્યા.

તે સમયે રસ્તામાં કનોજ મુકામે પરમાનંદદાસે વૈષ્ણવો સહિત આચાર્યશ્રીને અત્યંત દૈન્યતા પ્રેમયુક્ત આગ્રહ પૂર્વક પોતાના ઘરમાં પધરાવ્યા. અને ત્યાં તેમના આગ્રહને વશ થઈ ભક્તવત્સલ આચાર્યશ્રીએ ત્રણ દિવસ સુધી મુકામ રાખ્યો.

મુકામના પ્રથમ દિવસેજ ભોજન કર્યા બાદ આચાર્યશ્રીને પ્રસન્ન કરવાને અર્થે—આપની ચિત્તવૃત્તિ વ્રજના દર્શનમાં લીન છે એમ જાણી—પરમાનંદદાસજીએ નિત્યલીલા ને સ્મરણ કરાવતું નિમ્ન પદ આચાર્યશ્રી સન્મુખ ગાયું—

"हरि तेरी लीला की सुधि आवे।'

ઉક્ત પદના કેવળ શ્રવણ માત્રથી આચાર્યશ્રી, મૂળ નિજસ્વરૂપાવેશમાં આવી લીલામાં મગ્ન થયા. અને ત્રણ દિવસ સુધી દેહાનુસંધાન રહિત રહ્યા. આ જોઈ પરમાનંદ-

દાસજી આદિ વૈષ્ણવો ગભરાયા અને તે સર્વે-ત્રણ દિવસ સુધી ખાનપાન આદિ આવશ્યક દેહકાર્યનો પણ સદંતર ત્યાગ કરી સ્તબ્ધ થઈ ત્યાંજ બેસી રહ્યા. ચોથા દિવસે જ્યારે આચાર્યશ્રીએ નેત્ર ખોલ્યાં ત્યારે નિકટવર્તી વૈષ્ણવોમાં પણ પ્રાણસંચાર થયો અને તેઓ આનંદિત બન્યા.

પશ્ચાત પરમાનંદદાસજીએ-' **माइरी ! हों आनंद मंगल गाऊं**'-એ પદ ગાઈ આચાર્યશ્રીને શ્રીગોકુલની સુધિ કરાવી.

બાદમાં આપના ભોજન કર્યા પછી સર્વે વૈષ્ણવોએ પ્રસાદ લીધો અને પરમાનંદદાસજીએ પણ દેહકાર્યથી નિવૃત્ત થઇ આચાર્યશ્રી આગળ આ પદો ગાયાં-

'विमल जस वृंदावन के चंदको'०-२ ''चल री ! सखी नंदगाम जाय बसिये० ''

આ દ્વિતીય પદ શ્રવણ કરી આચાર્યશ્રીએ વિશ્રામ અનન્તર કન્નોજથી પરમાનંદદાસાદિ વૈષ્ણવોને લઈને વ્રજ તરફ પ્રયાણ કર્યું.

તે સમયે પરમાનંદદાસજીએ પોતાના પૂર્વ શિષ્યોને આચાર્યશ્રી પાસે નામમંત્ર અપાવી સેવક કરાવ્યા.

પછી આચાર્યશ્રી ત્યાંથી જ્યેષ્ઠ માસમાં ગોકુલ પધાર્યા. ત્યાં ભીતરની બેઠકમાં (શ્રીદ્વારકાધીશજીના મંદિરમાં હાલ જે બેઠક છે તેમાં) આપે મુકામ કર્યો. અને ત્યાં પરમાનંદદાસજીને શ્રીયમુનાષ્ટકનો પાઠ કરાવી શ્રીયમુનાજીનાં અલૌકિક દર્શન કરાવરાવ્યાં. તે સમયે પરમાનંદદાસજીએ શ્રીયમુનાજીની સ્તુતિનાં નિમ્ન પદો ગાયાં-

१ 'श्रीयमुनाजी यह प्रसाद हौं पाऊं'०।
२ 'श्रीयमुनाजी दीन जानि मोहि दीजे'०।
३ 'कालिंदी कलिकल्मष-हरनी'।

પછી આચાર્યશ્રીની કૃપાથી પરમાનંદદાસજીને પનઘટ આદિ લીલાનાં પણ દર્શન થયાં. તદનુસાર તેમણે અનેક પદો જેવાં કે-**श्रीयमुना घट भर ले चलि श्रीचंद्रावलि नारि०** આદિ ગાયાં.

બાલલીલાનાં દર્શન આપી આસક્તિ ઉત્પન્ન કરાવ્યા પછી આચાર્યશ્રી તેમને લઈને શ્રીગોવર્દ્ધન પધાર્યા. ત્યાં શ્રીનાથજીની સન્મુખ તેમને પદ ગાવાની આજ્ઞા કરી.

એ સમયે આચાર્યશ્રીની આજ્ઞાથી પરમાનંદદાસજીએ શ્રીનાથજીને '**मोहन नंदराय कुमार**'. વિગેરે પદો ગાઈ પ્રસન્ન કર્યા. તેથી શ્રીનાથજીની આજ્ઞાથી આપે તેમને સમયાનુસારનાં કીર્તનની સેવા સોંપી.

પછી આચાર્યશ્રીએ પરમાનંદદાસજીને સેનના પ્રસાદી દૂધ દ્વારા નિકુંજ લીલાનું દાન કર્યું. ત્યારથી તેમણે તે લીલાનાં અનેક પદો ગાયાં જે વાર્તામાં પ્રકાશિત છે.

પશ્ચાત કેટલાક સમયાનન્તર સં. ૧૫૮૫ માં આચાર્યશ્રી જ્યારે શ્રીગોવર્દ્ધન પધાર્યા હતા તે સમયે ઓડછા દેશનો રાજા પોતાની રાણી સહિત ત્યાં શ્રીનાથજીના દર્શનાર્થે આવ્યો. તેણે—રાણીના પડદામાં રહી શ્રીનાથજીના દર્શન કરવાના આગ્રહથી આચાર્યશ્રી પાસે તેવો બંદોબસ્ત કરાવી—પોતાની રાણીને પડદામાં દર્શને મોકલી. આ સમયે પરમાનંદદાસજી કીર્તનની સેવામાં ઉપસ્થિત હતા.

એ વખતે શ્રીનાથજીએ—જ્યારે રાણી પડદામાં દર્શન કરી રહી હતી ત્યારે—મંદિરનાં દ્વાર ખોલી દીધાં કે જેને લઈ ને મનુષ્યોની ગીડદી રાણી ઉપર આવી પડી. આથી રાણીની બેઈજ્જતી થઈ. એ સમયે પરમાનંદદાસે તે દૃશ્યને જોઇ પોતાના પરમ ઇષ્ટ પ્રભુને પણ એક નીતિ અને સત્યતારૂપે મધુર ઠપકો આપવાને માટે '**कोन यह खेलिवे की बान**' એ ગાવાનો પ્રારંભ કર્યો.

પરંતુ આચાર્યશ્રીએ, પોતાના પ્રાણરૂપ શ્રીનાથજીની સ્વચ્છંદ બાલલીલામાં મ્હેણારૂપ તે શબ્દો કહેવા ઉચિત નથી તેમ કહીને તે પદ ગાતાં પરમાનંદદાસજીને રોકયા, અને તેમને આ પ્રમાણે ગાવાની આજ્ઞા આપી–

'**भली यह खेलिवेकी बान ।**
मदन गोपाललाल काहूकी राखत नाँहिन कान ॥"

પછી પરમાનંદદાસે પણ આજ્ઞાનુસાર ઉક્ત પદને સુધારીને તે પ્રમાણે ગાયું. અસ્તુ.

સંવત ૧૫૮૯માં એક સમય સૂરદાસ, કુંભનદાસ અને રામદાસાદિ પરમાનંદદાસના હૃદયાંતર્ગત ભાવને જાણવાને અર્થે તેમને ત્યાં સુરભીકુંડ ઉપર સેનઆરતી પશ્ચાત ગયા. ત્યારે પરમાનંદદાસે પોતાને ત્યાં અચાનક ભગવદ્ભક્તોને આવેલા જોઈ અત્યંત હર્ષપૂર્વક પ્રથમ તેમનું સ્વાગત કર્યું. અને પછી તેમણે તેઓની ન્યોછાવર માટે નિમ્ન પદ ગાયું–

आये मेरे नंदनंदनके प्यारे ।०

બાદમાં વૈષ્ણવ માહાત્મ્યનાં અનેક પદો ગાઈ પોતાના ભાવને તે ભગવદીયો સમક્ષ પ્રકટ કર્યો.

ત્યારપછી રામદાસે તેમના ગુપ્ત અભિપ્રાયને જાણવાને અર્થે પ્રશ્ન કર્યો કે-વ્રજનાં શ્રીનંદ, ગોપી, ગ્વાલ આદિ ભક્તોમાં સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રેમ કોનો છે ?

યદ્યપિ પરમાનંદદાસના ચિત્તની સંલગ્નતા બાલલીલામાં વિશેષ હતી તો પણ તેમણે આચાર્યશ્રીના અભિપ્રાયમાં તો સર્વોત્કૃષ્ટ પ્રેમ શ્રીગોપીજનોનો જ છે તે, નિમ્ન પદ ગાઈ કહી બતાવ્યું—

'गोपी प्रेमकी ध्वजा०'

પછી **व्रजजन सम घर पर कोउ नांहीं**'० આદિ અન્ય પદો દ્વારા ઉક્ત અભિપ્રાયની પુષ્ટિ કરી.

આ પદો શ્રવણ કરી સૂરદાસાદિ મહાનુભાવો અત્યંત પ્રસન્ન થઈ તેમની આજ્ઞા માગી પોતપોતાના સ્થાનકે ગયા.

પછી સં. ૧૬૨૧–૨૨ના અરસામાં પ્રભુચરણ જ્યારે શ્રીગોકુલ પધાર્યા ત્યારે પરમાનંદદાસજી પણ ત્યાં ગયા. અને તે સમયે આપે તેમને સંસ્કૃતમાં મંગલાર્તિનું '**मंगल मंगलं**'० પદ રચીને શ્રવણ કરાવ્યું. તેથી પરમાનંદદાસે તેને અનુસરીને ભાષામાં '**मंगल माधो नाम उच्चार**' ઈત્યાદિ અનેક પદો રચ્યાં. પછી પ્રભુચરણની આજ્ઞાથી પરમાનંદદાસે તેની મંગલાર્તિ સમે ગાવાની શરૂઆત કરી જે આજ તક સમ્પ્રદાયમાં ચાલુ છે.

પછી સં. ૧૬૪૦માં જન્માષ્ટમીના બીજા દિવસે પરમાનંદદાસજીને પ્રભુચરણે જન્મપ્રકરણની લીલાનાં દર્શન

કરાવ્યાં. જેથી તેને અનુસરીને પરમાનંદદાસે જન્મ-લીલાનાં અનેક પદો રચ્યાં, અને તે આનંદને હૃદયમાં ધારણ કરી તેઓ શ્રીનાથજીને દંડવત્ પ્રણામ કરી સુરભીકુંડ પોતાના સ્થાનકે આવીને સુઇ ગયા.

અહીં શ્રીગુસાંઇજીએ પરમાનંદદાસને રાજભોગના સમે શ્રીનાથજીની સન્નિધાન કીર્તન કરતાં ન જોયા ત્યારે સેવકોને પરમાનંદદાસજી ક્યાં છે એમ પુછયું.

પછી સેવકો દ્વારા પરમાનંદદાસનું સુરભીકુંડ જવાનું સાંભળી આપને અનેક શંકાઓ ઉદ્ભવી. અને છેવટે રાજ-ભોગ આરતિ કર્યા બાદ આપ વૈષ્ણવોને સાથે લઈ ને પરમા-નંદદાસને દર્શન દેવા પધાર્યા.

આ સમયે પરમાનંદદાસ અચેત હતા. તેથી પરમ દયાલુ ભક્તવત્સલ પ્રભુ શ્રીવિઠ્ઠલેશે પોતાના કોમલ શ્રીહસ્તને તેમના માથે ફેરવી તેમને સચેત કર્યા.

પછી પરમાનંદદાસજીએ પ્રભુચરણને સાષ્ટાંગ દંડવત્ પ્રણામ કર્યા અને આપે અંતિમ સમયે પોતાને દર્શન આપી કૃત-કૃત્ય કર્યો એમ જાણી ગદગદ થઈ '**प्रीति तो श्रीनंदनंदनसों कीजे**'૦ એ પદ ગાયું. અને તે દ્વારા શ્રીસૂરની માફક ગુરૂ, ગુરૂપુત્ર અને નંદનંદનમાં પોતાની અભેદ બુદ્ધિનો સર્વે વૈષ્ણવોને પરિચય કરાવ્યો.

ત્યારબાદ એક વૈષ્ણવના—શ્રીઠાકુરજી કૃપા કેવી રીતે કરે ? એ—પ્રશ્નનો જવાબ આપતાં પરમાનંદદાસજીએ '**प्रात समे उठि करिये श्रीलक्ष्मनसुत-गान**' એ પદ ગાઈ તેને ગુરૂભક્તિનો મહામૂલો ઉપદેશ આપ્યો.

પશ્ચાત ગોસ્વામીજીએ તેમને ચિત્તની વૃત્તિ કયાં છે?' એમ પુછયું ત્યારે પરમાનંદદાસે તેના પ્રતિઉત્તર રૂપે સારંગ રાગમાં અંતિમપદ આ ગાયું—

राधे बैठी तिलक संवारति।
मृगनैनी कुसुमायुध के डर सुभग नंदसुत-रूप विचारति॥
दर्पन हाथ सिंगार बनावति बासर जाम जुगति यों डारति।
अंतरप्रीति स्यामसुंदर सों प्रथम समागम केलि संभारति
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवर्द्धनधारी॥
परमानंदस्वामी के संगम रतिरस मगन मुदित व्रजनारी॥

ઉક્તપદને પૂર્ણ કરતાંની સાથેજ પરમાનંદદાસજીએ પણ પોતાના બાહ્ય જીવનને સં. ૧૬૪૦ના શ્રાવણ વદ ૯ના મધ્યાહ્ન સમયે સમાપ્ત કરી દીધું.

પશ્ચાત વૈષ્ણવોએ તેમનો અગ્નિસંસ્કાર કર્યો અને પ્રભુચરણે તેઓને પરમાનંદદાસનું સ્વરૂપ સમજાવતાં આજ્ઞા કરી કે પુષ્ટિમાર્ગનાં વિવિધ રત્નો ભર્યા બન્ને સાગરો અદ્રશ્ય થયા.

પરમાનંદ સુધા ઉપર એક દૃષ્ટિ—

મહાકવિશિરોમણિ પરમાનંદદાસજીના કાવ્યોનું અવલોકન કરનાર પ્રત્યેક વિદ્વાન વ્યક્તિ એ કહી શકે છે કે–તેઓ એક સર્વોત્કૃષ્ટ ઉત્તમોત્તમ શ્રેણીના મહાકવિ છે. અને કાવ્યોમાં જે ભાવો અને તત્ત્વોની યથાર્થતા પૂર્વક આવશ્યકતા છે તે તેમના કાવ્યોમાં વિશેષરૂપમાં સ્પષ્ટ ઝળમળે છે.

તેથીજ મિશ્રબન્ધુઓ આદિ આધુનિક તટસ્થ વિદ્વાનોએ પણ તેમને 'તોષ'ની ઉત્તમ શ્રેણીમાં રાખેલા છે (જુઓ મિ૦વિનોદ પાન ૨૪૪)

આથી જાણી શકાય છે કે તેમની કાવ્ય પ્રતિભા વિશાલ અને તીવ્ર હતી. છતાં સાહિત્યિક દૃષ્ટિએ નિષ્પક્ષપાત હૃદયે કહિયે તો તેઓ શ્રીસૂરની માફક સર્વવ્યાપી દૃષ્ટિના કવિ તો નજ ગણાય. પરંતુ તેથી તેમની કાવ્યશકિતમાં જરાયે ન્યૂનતા પ્રાપ્ત થતી નથી. કેમકે તેમના કાવ્યમાં તાદૃશતા અને તલ્લીનતા આદિ તત્ત્વો કે જે કાવ્યના પ્રાણ સમાન છે તે વિશેષ ચમકે છે.આથી તેમની મહાકવિત્વ શક્તિની પ્રતિભાની કોઈથીયે અવગણના થઈ શકે તેમ નથીજ.

સાંપ્રદાયિક દૃષ્ટિએ તેઓ શ્રીસૂરની માફકજ 'સાગર' સમાન છે. અને તેમનાં કાવ્યોમાં પણ શ્રીસૂરનાં કાવ્યોની સમાન મહત્ત્વ રહેલું છે. તેથીજ ગોસ્વામિચરણે તેમને સૂરદાસની સાથેજ અષ્ટછાપમાં સ્થાન આપ્યું.

પરમાનંદદાસજીના કીર્તનોમાં જે સ્તુત્ય તત્ત્વોનું દિગ્દર્શન થાય છે તેને વર્ણન કરવાને ભાષામાં કોઈ શબ્દોજ નથી એ કહેવું અતિશયોક્તિ ભરેલું નથી. અને તેથીજ

આધુનિક સાહિત્યકારોએ પણ તેમને ઉત્તમોત્તમ શ્રેણી ના બતાવી ભુલાઇને તે વિષે મૌન સેવ્યું છે.

પરમાનંદદાસજીના ગ્રન્થોમાં 'પરમાનંદસાગર'* મુખ્ય છે. તદતિરિક્ત દાનલીલા, ઉદ્ધવલીલા, એવં તેમના રચેલાં સ્ફૂટ પદો પણ પ્રાપ્ત છે.

પરમાનંદદાસજીના કાવ્યોમાં એ શક્તિ હતી કે જેના કેવળ શ્રવણ માત્રથી મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજી જેવા પ્રૌઢ જ્ઞાની ત્રણ દિવસ સુધી દેહાનુસંધાન રહિત થયા. કહો! એથી વિશેષ એમની કાવ્યશક્તિની મહાનતાનું બીજું કયું પ્રમાણ હોઈ શકે? અસ્તુ.

તેમના કાવ્યોમાં વિશેષ ઝળમળતી તલ્લીનતા, નિસ્પૃહતા એવં તાદૃશતા આદિના કેટલાક નમૂના અત્રે ઉદ્ધૃત કરીએ છીએ:—

તાદૃશતાના પ્રત્યક્ષ નમૂના—

देखोरी ! कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुंदर वदन कमलदल लोचन देखत चंद्र लजाया है।

*

पिछोरा खासा को कटि बांधे।
वे देखो आवत हैं नंदनंदन नयनकुसुमशर सांधे ॥
मैं तोहि कै बिरियां समझाई।
उठ उठ उझकि हरि हेरती चंचल टेव जनावति।

---

* 'પરમાનંદ સાગર' કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગમાં પ્રાપ્ત છે અને તેના પ્રકાશનની યોજના વિચારાધીન છે. કોઈ સદ્‌ગ્રહસ્થની મદદથી તે પ્રકટ થશે જ. —સમ્પાદક

તલ્લીનતાનો નમૂનો–

मेरो माई ! माधो सों मन मान्यो ।
मेरो मन और वा ढोटा को एकमेक कर सान्यो ॥
अब क्यों भिन्न होय मेरी सजनी दूध मिल्यो ज्यों पान्यो ।

× × ×

પ્રેમભાવનો નમૂનો––

प्रेम की पीर सरीर न माई ।
निसवासर जिय रहत चटपटी इह धकधकी न जाई ॥
प्रबल सूल सह्यो जात न सखीरी ! आवे रोवन गाई ।
कासें कहौं मरम कों माई ! उपजी कोन बलाई ॥
जो कोऊ खोजे खोज न पईयत ताको कोन उपाई ।
हौं जानत हों मेरे मनकी लागी है कछु बाई ॥
पाछे लगे सुनत परमानंद हरि मुख मृदु मुसकाई ।
मूंदि आंखि आए पाछे तें लीनी कंठ लगाई ॥

कहा करौं बैकुंठ हि जाय;
जहँ नहिं नँद जहाँ नहीं जसोदा जहँ नहिं गोपी ग्वाल न गाय ॥
जहँ नहिं जल जमुना कें निरमल और नहीं कदमन की छाय ।
परमानंद प्रभु चतुर ग्वालिनी व्रजरज तजि मेरी जाय बलाय ॥

*

એ ખરૂં છે કે પરમાનંદદાસજી શ્રીસૂરની તરહ સર્વ-વ્યાપિ દૃષ્ટિના કવિ નથી તો પણ તેઓ સૌરકાલના અન્ય કવિયોમાં પ્રથમ અને મહત્વનું સ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે.

એમાં જરાય સંદેહ નથી કે સામ્પ્રદાયિક દૃષ્ટિએ પરમાનંદદાસજીનું સ્થાન શ્રીસૂરથી ન્યૂન નથી જ. છતાં કાવ્યદૃષ્ટિએ તો તેઓ સૂર અને નંદદાસ પછીજ આવી શકે તેમ છે.

ભગવદીયતામાં તો તેઓ સૂરની માફકજ મહાન છે. તેમના હૃદયનો પ્રેમ અવર્ણનીય, અચિંત્ય અને અગમ્ય છે. મહાપ્રભુની પૂર્ણ કૃપા વિના તેમનાં પદોમાં રહેલું નિગૂઢ તત્ત્વ કોઈનાય હૃદયમાં પ્રવેશી શકે તેમ નથી.

પરમાનંદ સુધામાં સૂરના સર્વોચ્ચ સર્વવ્યાપી પ્રેમને મનોયોગ દ્વારા સંકુચિત કરિ તેને આસક્તિનું સ્વરૂપ આપેલું હોવાથી તે (સુધા) જોકે જગતમાં સર્વ વ્યાપી રૂપે ન રહી છતાં ભક્તિ કોટીમાં તો અગ્રસ્થાનેજ બિરાજે છે. તેનું વિશેષ વિવેચન કુંભનની કાવ્યસુધામાં વિસ્તૃત રૂપે આવેલું છે.

—સમ્પાદક

પરમાનંદદાસજીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક-

જન્મ-વિ. સં. ૧૫૫૦ ના માગશર સુદ ૭ ને સોમવારે સવારમાં કનોજ મુકામે.

જાતિ-કનોજીયા બ્રાહ્મણ.

શરણાગતિસમય-વિ. સં. ૧૫૭૭ ના જેઠ સુદ ૧૨ ના 'અડેલ' મુકામે.

સ્થાયી નિવાસ-સુરભી કુંડ, શ્યામતમાલ વૃક્ષની નીચે

કીર્તનનો મુખ્ય સમય-મંગલા.

અંતસમય-વિ. સં. ૧૬૪૦ ના શ્રાવણ સુદ ૯, સ્થાન સુરભી કુંડ (અહીંનું વૃક્ષ હાલમાં પડી ગયું છે)

લીલાત્મક સ્વરૂપ-તોક સખા એવં ચંદ્રભાગા સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ-જીંહ્વા ઇંદ્રિય.

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ-શ્રીનવનીતપ્રિયજી.

શૃંગારાસકિત-ગ્વાલપગા.

લીલાસકિત-બાળલીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર×

સંગ્રાહકઃ-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

× મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

ભક્ત-શિરોમણિ મહાકવિ

કુંભનદાસ

(સં. ૧૫૨૫ થી સં. ૧૬૪૦+)

કુંભનદાસ અષ્ટસખાઓ પૈકીના એક છે. તેમનો જન્મ વિ. સં. ૧૫૨૫ના ચૈત્ર વદ ૧૧ ના દિવસે વ્રજમંડલમાં આવેલા શ્રીગોવર્દ્ધન ધામની અતિ નિકટના જમનાવતા નામક ગ્રામમાં એક ગોરવા ક્ષત્રિય ને ત્યાં થયો હતો.

તેમના જન્મની આખ્યાયિકા નિમ્ન પ્રકારે પ્રચલિત છે–

કહે છે કે તેમના પિતા ભગવાનદાસ (?) એક સમય સહકુટુંબ કુંભના પર્વમાં પ્રયાગ ગયા હતા. ત્યાં તેમણે સેવાદ્વારા એક મહાપુરૂષની પ્રસન્નતા પ્રાપ્ત કરી પુત્ર પ્રાપ્તિનો વર મેળવ્યો. પશ્ચાત્ ઘર આવ્યા બાદ તેમને ત્યાં યથાસમય એક પુત્રરત્ન સાંપડ્યું. જેનું નામ તેમણે કુંભના પ્રસંગની સ્મૃતિ તરીકે 'કુંભન' રાખ્યું.

+ સૂરદાસજીના અંતિમ સમયે કુંભનદાસજીની ઉપસ્થિતિ વાર્તાથી સિદ્ધ છે. પરંતુ પરમાનંદદાસજીના અંતિમ સમયે તેઓ ન હતા. તેથી ઉક્ત બન્ને મહાનુભાવોના અંતિમ કાલની વચમાં તેમનો અંતિમ સમય અનુમાન થઈ શકે છે. —સમ્પાદક.

કુંભનદાસને આઠ વર્ષે ઉપવીત આપ્યા બાદ તેમના પિતાએ વૈકુંઠવાસ કર્યો. જેથી કુંભનદાસે પોતાની શેષ બાલ્યાવસ્થા પોતાના કાકા ધર્મદાસની દેખરેખમાંજ વ્યતીત કરી.

ત્યારબાદ સં. ૧૫૩૫ માં પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનનાથે ગોવર્દ્ધન પર્વતમાં સ્વતઃ પ્રકટ થઈ ધર્મદાસને કુંભનને પોતાની સાથે રમવા મોકલવાની આજ્ઞા કરી; ત્યારથી કુંભનદાસને કૃપાયુક્ત ભગવત્સાક્ષાત્કાર પ્રાપ્ત થયો.

એ પ્રકારે પ્રભુ શ્રીગોવર્ધનનાથની કૃપાથી કુંભનદાસમાં **મહાત્મ્યજ્ઞાન યુક્ત સુદૃઢ સ્નેહરૂપ પુષ્ટિભક્તિનો** ઉદય થયો. અને વીસ વર્ષ પર્યંત તેઓએ શ્રીનાથજીની વિવિધ લીલાનો અનુભવ કર્યો. તે દરમ્યાન સં. ૧૫૫૦ લગભગ તેમનું લગ્ન 'બહુલા' ગામમાં એક સજાતીય કન્યા સાથે થયું.

સં. ૧૫૫૫ માં મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યે આન્યોર પધારી પ્રભુ શ્રીનાથજીને પર્વતથી બહાર પધરાવ્યા તે સમયે કુંભનદાસ સ્ત્રી સહિત આચાર્યશ્રીની શરણે આવ્યા. ત્યારથી વાકપતિ–શ્રીવલ્લભની કૃપાદ્વારા તેમની દિવ્ય વાણીમાં કૃપાત્મક કાવ્યશક્તિનો પ્રવેશ થયો. એટલે આપની આજ્ઞાથી તેમણે સર્વ પ્રથમ શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજી સન્નિધાન નિમ્ન પદ ગાયું—

सांझ के साँचे बोल तिहारे ।
रजनी अनत जगे नंदनंदन आये निपट सकारे ॥

ઉક્ત પદ શ્રવણ કરી મહાપ્રભુ અત્યંત પ્રસન્ન થયા અને તેમને શ્રીનાથજી ની સન્નિધાન ઋતુ અનુસાર નિત્યપદ ગાવાની આજ્ઞા આપી.

આ સમયે કુંભનદાસની સ્ત્રીએ આચાર્યશ્રી પાસે પુત્ર પ્રાપ્તિનો વર માગ્યો, ત્યારે આપે તેણીને સાત પુત્રો થવાનું વરદાન આપ્યું. જેથી યથાસમય કુંભનદાસને ત્યાં સાત પુત્રો થયા જેમાં કૃષ્ણદાસ અને ચત્રભુજદાસ નામના બે મહાન ભગવદભક્ત હતા.

કુંભનદાસ મોટા કુટુંબવાળા હતા છતાં ઉપજ તેમને કેવળ ખેતીનીજ હતી, જેથી તેઓ સદા અકિંચન અવસ્થા ભોગવતા હતા. તોપણ તેઓ ધર્મની સિદ્ધિના કારણે એટલા તો ત્યાગી અને સંતુષ્ટ રહેતા કે જેની જોડ તે સમયે ન હતી. એ વાતનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ રાજા માનને થયો હતો જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે.

વિ. સંવત ૧૬૦૨ માં પ્રભુચરણે જ્યારે પુષ્ટિ અષ્ટ-છાપની સ્થાપના કરી મહાકવિઓનું નિર્માણ કર્યું ત્યારે તેમાં કુંભનદાસની પણ ગણના થઈ. ત્યારથી તેમની પ્રસિદ્ધિ ભક્ત સમાજ ઉપરાંત સાહિત્ય–સંસારમાં પણ ખૂબ પ્રચલિત થઇ. જેના ફલ સ્વરૂપે વૃંદાવનના હરિવંશાદિક સંત મહંત ઉચ્ચ કવિયો તેમજ રાજા 'માન' જેવા રાજનૈતિક પુરુષો પણ તેમની મુલાકાત લેવા જમનાવતામાં આવવા લાગ્યા.

એ પ્રકારના કુંભનદાસજીના જીવનના અનેક મહત્વપૂર્ણ પ્રસંગોમાં એક એ પણ છે કે તેઓ ભગવત્સાક્ષાત્કારને પ્રાપ્ત

થયેલા હોવા છતાં નિરભિમાનપણે આચાર્યશ્રીની મર્યાદાને જ અવલંબીને રહેતા હતા. કેમકે તેમણે તે જ્ઞાન સારી રીતે પ્રાપ્ત કર્યું હતું કે પુષ્ટિસ્થ પ્રભુ 'कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुं सर्व सामर्थ्य युक्त' છે. એટલે પોતાના ખેત ઉપર કૃપા કરીને અહર્નિશ દર્શન દેતા પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનધરના લાવણ્યામૃતના લોભનો પરિત્યાગ કરીને પણ તેઓ આચાર્યશ્રીએ બાંધેલા સેવાના સમયે, આપની મર્યાદાથી સ્થિત મંદિરની ચરણ ચોકી ઉપર બિરાજમાન શ્રીગોવર્દ્ધનધરની સેવામાં ઉપસ્થિત થતા.

આ રીતે કુંભનદાસજી પ્રભુની સ્વતઃ થયેલી કૃપા કરતાં પણ સ્વગુરૂ મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની મર્યાદાને અધિક મહત્વ દેતા જેનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ વાર્તામાં છે.

એ પ્રકારે કુંભનદાસજીએ લગભગ ૧૧૫ વર્ષની આયુ ભોગવી સં. ૧૬૪૦ માં જમનાવતામાં દેહ છોડી.

× × × ×

કુંભનદાસજીના ચરિત્રમાં રહેલી દૈવીસંપત્તિઓ–

ભગવાન શ્રીકૃષ્ણે ગીતાના ૧૬ મા અધ્યાયમાં કહેલી દૈવી સમ્પત્તિઓ કુંભનદાસજીના આ વાર્તાત્મક ચરિત્રમાં પૂર્ણરૂપે સ્પષ્ટ તરીઆવે છે, જેનાં કંઈક ઉદાહરણ અત્રે ઉદ્ધૃત કરીએ છીએ–

૧ अभय–સં. ૧૬૩૦ની લગભગ જ્યારે બાદશાહ અકબરે કુંભનદાસજીના પદોથી મુગ્ધ થઈ તેમને સન્માનયુક્ત ફત્તેહપુર સીકરીમાં બોલાવ્યા અને તેઓને સત્તાત્મક રૂપે પોતાનો કંઈક યશ ગાવાને કહ્યું ત્યારે તેમણે વિવેકપુરઃસર તે સત્તા અને સન્માનનો અનાદર કરતાં પોતાની દૈવી સમ્પત્તિના મૂળરૂપ જે અભયને નિમ્ન પદ દ્વારા પ્રસિદ્ધ કર્યો તે આ રહ્યો–

भक्त को कहा सीकरी काम ?
आवत जात पन्हैया तूटी विसर गयो हरिनाम ॥
जाको मुख देखत दुःख उपजे ताकों करनी परी प्रणाम ।
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु यह सब झूंठो धाम ।

આથી વિશેષ અભયતા શું સંસારમાં હોઈ શકે ખરી ? એક વિધર્મી બાદશાહને સર્વસમક્ષ 'जाको मुख देखत दुःख उपजे' એ શબ્દો નિડરતા પૂર્વક કહેવા એ શું મનુષ્ય તાકાતની બહારની વાત નથી ? અને તેના પ્રતિધ્વનિરૂપે વળી બાદશાહને શાંત રાખવો તે શું તેમના દૈવી સમ્પત્તિમાંના ૨૧ મા ગુણ 'તેજ' નો પ્રભાવ ન ગણાય ?

૨ सत्त्वसंशुद्धि–દૈવી સમ્પત્તિનું બીજું લક્ષણ જે અંતઃકરણની શુદ્ધિ છે તે, એમના સૂતક એવં શ્રીગુસાંઈજીના વિદેશ ગમનાદિ અનેક સમયે થયેલા ભગવદ્ વિયોગાત્મક પ્રસંગોથી સિદ્ધ જ છે. કેમકે અંતઃકરણની પૂર્ણ શુદ્ધિ વિના સુદૃઢ ભગવદાસક્તિ થવી અસંભવ છે. અને આસક્તિ વિના તાપ થવો દુર્લભ છે. એ ભગવદ્ વિયોગાત્મક તાપ કુંભનદાસજીમાં કેવા પ્રકારનો હતો તે તેમના અનેકાનેક પદોમાંના ફક્ત નિમ્ન એક પદ દ્વારા પણ પ્રત્યેક મનુષ્ય સમજી શકે છે–

केते दिन व्हे जु गये बिनु देखे ।
तरुण किशोर रसिक नंदनंदन कछुक उठत मुख रेखे ॥
वह शोभा वह कांति वदन की कोटिक चंद्र विसेखे ।
वह चितवनि वह हास्य मनोहर वह नटवरवपु भेखे ॥
श्यामसुंदर मिलि संग खेलनि की आवत जीय अपेखे ॥
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु जीवन जनम अलेखे ।

આહ ! ઉક્ત પદ કેટલું હૃદયવેધક છે ? તેમાં શબ્દ શબ્દમાં આસક્તિ ઠાંસી ઠાંસીને ભરી છે. એમાંયે वह शोभा, वह कांति, वह चितवनि, वह हास्य ઇત્યાદિ સ્થલોએ ધરેલો 'वह' શબ્દ કેટલો હૃદયગ્રાહી અને માર્મિક છે ? તેનું વર્ણન કરવું અશક્ય છે. શું ઉક્ત પદથી કુંભનદાસના અંતઃકરણની પૂર્ણ શુદ્ધિ વિસ્પષ્ટરૂપે નથી ઝળહળતી ? એ વાતનો જવાબ તો ભક્ત–હૃદય જ આપી શકે.

३ ज्ञानयोग व्यवस्थिति–દૈવી સમ્પત્તિનું ત્રીજું લક્ષણ જ્ઞાન અને યોગમાં સ્થિતિ તે કુંભનદાસજીના નિમ્ન પ્રસંગોમાં સ્પષ્ટ દેખાઈ આવે છે–

એક સમયે શ્રીપ્રભુચરણે કુંભનદાસજીને કેટલા પુત્ર છે એમ પુછયું ત્યારે તેમણે સાત પુત્રો હોવા છતાં પોતાને કેવળ ડોઢજ પુત્ર છે એમ કહ્યું. તેમના આ ઉત્તરથી ઉપસ્થિત સર્વ વૈષ્ણવો જ્યારે આશ્ચર્યાન્વિત થયા ત્યારે તેમના જ્ઞાનાર્થે શ્રીપ્રભુચરણે કુંભનદાસજીને ડોઢ પુત્રનો પ્રકાર પુછયો. એટલે તેમણે કહ્યું કે શ્રીગોપીજનોની ભાવનાનુસાર સંયોગ અને વિપ્રયોગાત્મકપણે ક્રમશઃ રૂપ અને નામની જે સેવા કરે છે તે ચત્રભુજદાસ આખો પુત્ર છે અને કૃષ્ણદાસ કેવળ સ્વરૂપનીજ સેવા કરતો હોવાથી તે અડધો પુત્ર છે.

આ પ્રકારે કુંભનદાસજીએ શ્રીગોપીજનોના હાર્દિક નિગૂઢ ભાવને પ્રકટ કરી પોતાની મહાઅલૌકિક જ્ઞાનાત્મક સ્થિતિને જનહિતાર્થે પ્રકાશી.

એજ રીતે મનને એકાગ્ર કરવાવાળી યોગસ્થિતિ (પુષ્ટિમાર્ગીય ભગવદ્ વ્યસન) એમના સંયોગ–વિપ્રયોગાત્મક

સેવા પ્રકારથી સિદ્ધ છે. યોગીની માફક તેમણે ઉક્ત ઉભય અંગ સ્વરૂપ સેવાદ્વારા મનની એકાગ્રતા પ્રભુમાં કેવી સિદ્ધ કરી હતી તે જાણવા માટે તેમના અનેકોમાંનું 'હિલગ'નું એકજ પદ અત્રે આપીએ છીએ—

जो पे चोंप मिलन की होई।
तो क्यों रह्यो परे बिनु देखे लाख करे जो कोई ॥

जो पें विरह परस्पर व्यापे तो कछु जीय बने।
लोकलाज कुल की मरियादा एको चित्त न गिने ॥

कुंभनदास प्रभु जाहि तन लागी और कछू न सुहाई।
गिरिधरलाल तोहि बिनु देखे छिनु २ कल्प बिहाई ॥

અહા ! શું સંયોગ અને વિપ્રયોગનું પરસ્પર મિલાન છે ! આ હૃદયની સ્વરૂપાત્મક એકાગ્રતા યોગીઓના પ્રાકૃત યોગદ્વારા સિદ્ધ થતી નથી. એ તો ભગવત્કૃપાથી સિદ્ધ થતી સેવારૂપી અલૌકિક યોગદ્વારા જ સાધ્ય છે.

૪ दान–એજ પ્રકારે દૈવીસમ્પત્તિના ચોથા લક્ષણરૂપ તેમનું અદેય 'દાન' પણ અલૌકિક જ છે. આજ સૂતકમાં રસાત્મક શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીનાં દર્શન રૂપી જે ભિક્ષા વૈષ્ણવોને મળે છે તે કુંભનદાસજીના દાનના ફલ સ્વરૂપ જ છે એ કહેવું ભાગ્યેજ આવશ્યક કહી શકાય ! કુંભનદાસજીએ એ અલૌકિક દાન આપી વૈષ્ણવ સમૂહને અસીમ ઋણી બનાવ્યો છે તે વાર્તાના પ્રસંગથી સિદ્ધ છે.

૫ दम–દૈવી સમ્પત્તિનું પાંચમું લક્ષણ જે દમ (ઇંદ્રીય દમન) તેને બતાવવાને માટે વિસ્તારપૂર્વક વિવેચનની કોઈ આવશ્યક્તા નથી. તે તો ' આંબા ' વિગેરેના પ્રસંગથી સ્વયં-સિદ્ધ છે.

૬ यज्ञ—કુંભનદાસજીમાં દૈવી સમ્પત્તિના છઠ્ઠા લક્ષણરૂપ 'યજ્ઞ' પણ અત્યલૌકિક આધિદૈવિક સ્વરૂપે વિદ્યમાન છે. યજ્ઞનો દેવતા જેમ અગ્નિ છે તેમ અહિં આધિદૈવિક યજ્ઞના દેવતા સ્વરૂપ ભગવદ્ મુખાગ્નિ છે. અને કુંભનદાસજીએ તે અગ્નિને દૈન્ય ભાવયુક્ત પરમ સ્નેહના પુટથી વિવિધ સામગ્રિયો આરોગાવી તેને સંતુષ્ટ કર્યો છે જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે. તેથી વિશેષ બીજો કયો યજ્ઞ હોઈ શકે ?

૭ स्वाध्याय—એજ પ્રકારે સાતમા લક્ષણરૂપ સ્વાધ્યાય (વેદાધ્યયન) તો તેમના ભગવત્સાક્ષાત્કારયુક્ત આધિદૈવિક વેદ સ્વરૂપ કીર્તનોજ છે જેમાં ભક્તિમાર્ગીય જીવોને તો કંઈ સંદેહ નથીજ.

જે કીર્તનો આજ પણ કેવળ અધ્યયન માત્રથી ત્રણે દુઃખને દૂર કરી દૈવી જીવોને પરમાનંદમાં મગ્ન કરે છે તે આધિદૈવિક વેદરૂપ નહિં તો બીજું શું ?

૮ तप तथा धैर्य–દૈવી સમ્પત્તિના આઠમા લક્ષણ રૂપ 'તપ' અને ૨૩ મા લક્ષણ રૂપ ધૈર્ય' તો કુંભનદાસજીના જીવનમાં ક્ષણે ક્ષણે દેખાઈ આવે છે. ' त्रिदुःख सहनं धैर्यम् ' એ આચાર્યશ્રીના વાક્યને તેમણે પોતાના જીવનમાં પ્રત્યક્ષ ઉતાર્યું હતું એમ વાર્તાના અનેક પ્રસંગોથી જણાય છે.

તેમનું તપરૂપ ત્રિવિધ ધૈર્ય આ પ્રકારે છે–

એમણે દરિદ્ર અવસ્થા ભોગવીને લૌકીક દુઃખને ધૈર્યપૂર્વક સહર્ષ સહન કરી શારીરીક ભૌતિક તપ કર્યું, તેજ પ્રકારે ચત્રભુજદાસના પ્રાકટયના પૂર્વે સત્સંગ અર્થે તેમણે માનસિક દુઃખને ધૈર્યપૂર્વક સહન કરી આધ્યાત્મિક તપ કર્યું. અને અસહ્ય ભગવદ્વિયોગમાં પણ દેહની સ્થિતિ રાખીને જે કષ્ટને એમણે ધૈર્યપૂર્વક સહન કર્યું તે આધિદૈવિક તપ તો અદભૂતજ કહેવાય. એ પ્રકારે 'તપ' અને 'ધીરજ' રૂપી સમ્પત્તિ એમનામાં સહજ હતી.

એ રીતે દૈવી સમ્પત્તિનાં સરળતા, અહિંસા, સત્ય, અક્રોધ, અને ત્યાગ આદિ તો તેમના સાદા પરોપકારી અને નિઃસ્પૃહયુક્ત સત્ય જીવનમાં સ્પષ્ટ તરી આવે છે. જેના ઉદાહરણ રૂપે રાજા માનની મુલાકાતનો, શ્રીપ્રભુચરણના વિદેશગમનનો તથા ટોડના ઘના આદિના પ્રસંગો વિસ્પષ્ટજ છે.

એ પ્રકારે અન્ય લક્ષણો પણ એમનામાં વિદ્યમાન હતાં જેનું સ્થળ સંકોચથી વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ અમે અત્રે આપી શકતા નથી. અસ્તુ.

કુંભનસુધા ઉપર એક દૃષ્ટિ—

કુંભનદાસજીના કાવ્યોમાં સહુથી મહત્ત્વપૂર્ણ જે વસ્તુ વિશેષ માત્રામાં દેખાઈ આવે છે તે તેમની ભગવદાસક્તિ ઉપરાંતનું વ્યસન છે.

તેમની કાવ્યસુધામાં તલ્લીનતા એટલી તો વ્યાપક રૂપે વિદ્યમાન છે કે તેના નિરંતરના અવગાહન માત્રથી પણ જીવ ભગવદ્ તન્મયતા સહજમાં પ્રાપ્ત કરી શકે છે.

તેમણે ગોકુલની બાલલીલા ગાઈ નથી કેમકે તેઓ પ્રમેયને જ મુખ્ય માનનારા હતા પ્રમાણને નહિ. છતાં તેમની સખ્યભક્તિ વિશેષત: માહાત્મ્ય જ્ઞાન સંયુક્ત હતી.
દૃષ્ટાંત રૂપે—

एसो भूपति कोन जो हम पे हाथ उठावे।
बंदीजन द्विज वेद पढें द्वारे नित्य गावे ॥
ब्रह्मरूप उत्पन्न करूं रुद्र रूप संहार।
विष्णुरूप रक्षा करूं सो मैं हूं नंदकुमार ॥(दानलीला)

સૂરે જેમ સર્વવ્યાપી પ્રેમનું મૂર્તિમંત સ્વરૂપ 'સૂરસાગર' દ્વારા જનતા સમક્ષ મુક્યું છે; અને જેમ પરમાનંદદાસે ભગવદાસક્તિ પરમાનંદ સાગરમાં મૂકી છે તેમ કુંભને ભગવાન પ્રત્યેની પોતાની થએલી વ્યસન અવસ્થાનું વિશુદ્ધ દૃશ્ય પોતાના પદો દ્વારા જનસમૂહ સમક્ષ સ્થાપ્યું છે.

એ કહેવું ભાગ્યે જ બાકી ગણાય કે પ્રેમ એ ત્રિલોકીની સર્વવ્યાપી વસ્તુ છે એટલે તેના સુદૃઢ અને સર્વોત્કૃષ્ટ ઉપાસક રૂપે સૂરની વાણી પણ સર્વવ્યાપી હોય જ. કિંતુ

આસક્તિ અને વ્યસન મનની એકાગ્રતાને અર્થે ક્રમશઃ એકપછી એક પોતામાં સંકુચિત તત્ત્વોનો સમાવેશ કરતાં હોઈ તેઓ જગતમાં ગુપ્ત અને ગુપ્તતમ રૂપે સ્થિત રહે છે. તે પ્રમાણે તેના ઉપાસક રૂપે પરમાનંદ અને કુંભન ક્રમશઃ એક પછી એક સર્વ સાધારણની દૃષ્ટિમાં ગુપ્ત અને ગુપ્તતમ છે. હાં ! તે વસ્તુના ગ્રાહકો આગળ તો તેઓ ગુપ્ત હોવા છતાં પૂર્ણ પ્રકાશિત છે જ એમાં સંદેહ નહિ.

આ રીતે કુંભનના કાવ્યો સૂરની માફક સર્વવ્યાપી ન હોવા છતાં સંકુચિત તત્ત્વને લીધે ભગવદ્ વ્યસન અવસ્થામાં પૂર્ણ ઉપયોગી અને મહત્ત્વનાં છે જ.

—સમ્પાદક

કુંભનદાસજીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક-

જન્મ-વિ. સં. ૧૫૨૫ ના ચૈત્ર વદ ૧૧ ના દિવસે જમનાવતા ગામમાં.

જાતિ-ગોરવા ક્ષત્રિય, પિતૃનામ-ભગવાનદાસ

શરણાગતિસમય-વિ. સં. ૧૫૫૫ ના વૈશાખ સુદ ૩ ગોવર્ધન-ગોપાલપુર-મુકામે.

સ્થાયી નિવાસ-જમનાવતા.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય-રાજભોગ.

અંતસમય-વિ. સં. ૧૬૪૦

લીલાત્મક સ્વરૂપ-અર્જુન સખા એવં વિશાખા સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ-શ્રોત્ર ઇંદ્રિય

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ-શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજી.

શૃંગારાસક્તિ-કુલ્હે.

લીલાસક્તિ-નિકુંજલીલા

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી
પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર×
સંગ્રાહકઃ-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

× મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે,

ભક્ત કવિરત્ન શ્રીકૃષ્ણદાસજી

———:×:———

(સં. ૧૫૫૩ થી સં. ૧૬૩૧)

———:×:———

હિન્દી સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં યદ્યપિ કૃષ્ણદાસ પયહારી, કૃષ્ણદાસ કવિ આદી અનેક કૃષ્ણદાસ નામક પ્રાચીન સુકવિયોની નામાવલી છે; તોપણ તેમાં મૂર્દ્ધન્ય રૂપે બિરાજમાન અષ્ટછાપના મહાકવિ શ્રીકૃષ્ણદાસજી વિશ્વવિદિત છે.

આ અષ્ટછાપના ભક્ત કવિરત્ન શ્રીકૃષ્ણદાસજીનો જન્મ સં. ૧૫૫૩ ના વૈશાખ સુદ ૩ ના દિવસે અમદાવાદ જીલ્લામાં આવેલા 'ચલોતર' નામક ગ્રામમાં એક કણબી 'મુખી'ને ત્યાં થયો હતો. એમની બાલ્યાવસ્થા અને ગૃહત્યાગનું સવિસ્તર વર્ણન વાર્તામાં હોવાથી અત્રે એટલું કહેવું જ પર્યાપ્ત છે કે તેઓએ ૧૩ વર્ષની વયેજ પિતાના અસત્યાચરણથી ગૃહત્યાગ કરી તીર્થાટનનો પ્રારંભ કર્યો હતો.

પ્રારંભના થોડા જ સમય અનન્તર સં. ૧૫૬૮ માં તેઓ મથુરાના વિશ્રાંત ઉપર મહાપ્રભુ શ્રીવલ્લભાચાર્યજીની શરણે આવ્યા. અને ત્યાંથી આપની સાથે શ્રીગોવર્દ્ધન જઇ શ્રીનાથજીની સન્મુખ તેમણે આચાર્યશ્રીથી નિવેદન પ્રાપ્ત કર્યું.

નિવેદનની સાથે જ કૃષ્ણદાસ ઉપર અસીમ ભગવત્કૃપા ઉતરી અને તેમને ભગવલ્લીલાનો સાક્ષાત્કાર થયો. આથી

તેમની વાણી દિવ્ય અને પ્રસાદાત્મક બની, જેથી તેઓ આગળ જતાં મહાકવિ રૂપે પ્રસિદ્ધ થયા.

કૃષ્ણદાસે શરણુ આવ્યા બાદ ગુરૂભેટ રૂપે જે પ્રાથમિક પદ આચાર્યશ્રી સન્મુખ ગાયું તે આ છે—

'श्रीवल्लभ पतित–उद्धारन जानो ।
शरण लेत लीला दरसावत तापर ढरत गोवर्द्धन रानो ।।
साधन वृथा करत दिन खोवत श्रीवल्लभ को रूप न जाने ।
जाकी कृपा कटाक्ष सकल फल कृष्णदास तीनो जनम न माने ।।'

આ પદ સાંભળી આચાર્યશ્રીએ તેમને ભગવત્સન્નિધાન કીર્તન કરવાની આજ્ઞા આપી. અને ત્યારથી તેઓ કીર્તનની સેવામાં રહ્યા.

પશ્ચાત્ સં. ૧૫૮૨ થી આચાર્યશ્રીએ તેમને શ્રીનાથજીની ભેટ ઉઘરાવવાની સેવા સોંપી ત્યારથી તેઓ વિદેશમાં ભેટ લેવાને જતા. તે દરમ્યાન એક સમય ગુજરાતથી ભેટ ઉઘરાવીને આવતાં રસ્તામાં તેઓ મીરાબાઈના મુકામે આવ્યા. તે વખતે કૃષ્ણદાસને જોઈ મીરાબાઈએ તેમને શ્રીનાથજીની ભેટ રૂપે ૧૧ મહોર અનેક સાધુસંતોના દેખતાં આપવા માંડી. ત્યારે તેમણે તે ન લેતાં મીરાંબાઈને સ્પષ્ટ કહ્યું કે શ્રીનાથજી આચાર્યશ્રીના સેવક વિના અન્યની ભેટને સ્વીકારતા નથી. એ રીતે દિવ્યત્યાગ દ્વારા સ્વામીનો સુયશ વધારી કૃષ્ણદાસ ગોવર્દ્ધન આવ્યા. તેમની આ નીતિ કુશળતાથી પ્રસન્ન થઈ આચાર્યશ્રીએ તેમને મંદિરની

દેખરેખ સમેત શ્રીનાથજીના મુખ્ય ભંડારનું કાર્ય સોંપ્યું.

બાદમાં આચાર્યશ્રીના તિરોધાનાન્તર કૃષ્ણદાસે અવધૂતદાસ દ્વારા શ્રીનાથજીની આજ્ઞાને જાણી મંદિરમાં સ્વચ્છન્દ રીતે સેવા કરતા નિરંકુશ બંગાલીઓને પોતાની નીતિ કુશળતાથી દૂર કર્યા. તેથી પ્રભુચરણે કૃષ્ણદાસ ઉપર પ્રસન્ન થઈ તેમને ઉપરણો ઓઢાવીને શ્રીનાથજીના અધિકારી જાહેર કર્યા.

પશ્ચાત્ પ્રભુચરણે કૃષ્ણદાસની ગાદી કાયમ કરી અને તેમના મુખ્ય ભંડારને 'कृष्ण-भंडार' એ નામ આપ્યું. વળી તેમને અનેક રથો, ઘોડાઓ અને સશસ્ત્ર વ્રજવાસિયોનું સૈન્ય પણ આપ્યું.

ત્યારથી કૃષ્ણદાસની સમ્મતિ વિના મંદિરમાં પ્રભુચરણ પણ કોઈ કાર્ય ન કરતા. આથી કૃષ્ણદાસનો પ્રભાવ સર્વત્ર પ્રસર્યો અને તેઓ પૂર્ણ રાજસમાં ઢળ્યા.

'ભર્યામાં ભરે' એ સૃષ્ટિના નિયમાનુસાર પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીએ પણ પ્રભુચરણની કૃષ્ણદાસ પ્રત્યેની કૃપાને જોઈ પોતાની કૃપાને દ્વિગુણીત કરી. જેના ફલસ્વરૂપે તેમને અનેક વખતે શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીએ પોતાની રાસાદિ લીલાનાં પ્રત્યક્ષ દર્શન કરાવ્યાં અને તે તે સમયે તેમની વાણીનો પણ અંગીકાર કર્યો.

પરમ દયાલ ભક્તવત્સલ પ્રભુ કૃષ્ણદાસ ઉપર એટલી કૃપા કરી ને જ સંતુષ્ટ ન થયા. કિંતુ તેમની દ્વારા સમર્પાયલી એક તુચ્છ વેશ્યાને તેમના રચેલા કીર્તનના સંબંધ-

માત્રથી સદેહે લીલામાં લઈ આપે જગતમાં પોતાનું ભક્તાધીનત્વ સિદ્ધ કર્યું. તેવી જ રીતે તે કૃપાળુ શ્રીજીએ સાહિત્ય સંસારમાં પણ કૃષ્ણદાસના સુયશને વધારવાને માટે કાવ્યપિતા શ્રીસૂરના હૃદયસ્થલમાં નહિ આવેલા 'નેચુકી' ગાયના વર્ણનને કૃષ્ણદાસના નામથી સંપાદન કરી પોતે તેમને અને તેમનાં પદોને પણ જગતવિખ્યાત સૂર્યવત્ શ્રી સૂરના દિવ્ય કાવ્યોની હરોળમાં મૂક્યાં.

આ રીતે શ્રીગોવર્દ્ધનનાથજીએ શ્રીકૃષ્ણદાસજી ઉપર વ્યાપક કૃપા કરી તેમના નામને 'યાવચંદ્રદિવાકરો' પર્યંત ઉજ્જ્વલ રીતે પ્રસિદ્ધ કર્યું. છતાં કૌતુહલ પ્રિય પ્રભુએ અનેક ઉદ્દેશ્યોને સિદ્ધ કરવાને અર્થે કૃષ્ણદાસજીના જીવનમાં પણ એક અસંભવિત કૌતુકને ઉત્પન્ન કર્યું. જેના પરિણામે કૃષ્ણદાસનો પ્રભુચરણથી વિરોધ થયો. તેથી તેમના અતિ ઉજ્જ્વલ ચરિત્રમાં દૃષ્ટિ નિવારણાર્થ એક શ્યામબિંદુ પ્રવેશ્યું.

ઉક્ત વિરોધમાં કૃષ્ણદાસે રાજ્યનીતિનો આશ્રય લઈ શ્રીગોપીનાથજીના પુત્ર શ્રીપુરુષોત્તમજીને શ્રીનાથજીના મંદિરના હક્કદાર તરીકે સિદ્ધ કર્યા; અને તે દ્વારા પ્રભુચરણને સં. ૧૬૨૦ લગભગના પોષ સુદ ૬ ના દિવસથી શ્રીનાથજીનાં દર્શન બંધ કર્યાં.

આ સમયે યદ્યપિ પ્રભુચરણને કલ્પનાતીત અસહ્ય કષ્ટ પ્રાપ્ત થયું. તો પણ આપે આચાર્યશ્રીનાં 'निजेच्छात करिष्यति,' 'पुष्टिमार्ग स्थितो यस्मात् साक्षिणो भवताखिलः,' 'त्रिःदुःख सहनं धैर्यम्' આદિ વાક્યોનું સ્મરણ કરી, તે વાણીના આશ્રય બલે નિષ્ક્રીય બની પ્રભુના વિયોગમાં ચંદ્રસરોવર પરાસોલી તરફ પ્રયાણ કર્યું.

ત્યારપછી છ માસ બાદ શ્રીપુરૂષોત્તમજીના લીલા-પ્રવેશ અને શ્રીગિરધરજીના પ્રયાસથી પુનઃ પ્રભુચરણ શ્રીનાથજીના મંદિરના માલિક બન્યા. આ સમયે કૃષ્ણદાસને રાજા બીરબલે કેદ કરેલા હોવાથી પરમ આર્દ્રહૃદયી શ્રીવિઠ્ઠલેશે તેમને શીઘ્ર મુક્ત કરાવ્યા અને પુનઃ પૂર્વવત્ અધિકારારૂઢ કર્યા.

શ્રીવિઠ્ઠલેશની એ હાર્દિક દયાનો કૃષ્ણદાસ ઉપર અત્યંત પ્રભાવ પડયો. જેના ફલરૂપે તેઓ આસુરાવેશથી મુક્ત થઈ પુનઃ આપશ્રીના અનન્ય ભક્ત બન્યા. તે સમયે કૃષ્ણદાસે પ્રભુચરણના નિરપેક્ષ ઉપકારથી દ્રવીભૂત થઈ આપના સુયશ ને પ્રકટ કરતાં અનેક પદ ગાયાં જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે.

ત્યારબાદ કૃષ્ણદાસની પ્રાર્થનાથી યદ્યપિ શ્રીવિઠ્ઠલેશે તેમના અવિસ્મરણીય અપરાધને શ્રીનાથજી પાસે ક્ષમા કરાવ્યો તોપણ આપનું કોમળ હૃદય કે જે પ્રાણપ્રેષ્ઠ પ્રભુના અસહ્ય તાપથી એટલું તો વિકળ બની ગયું હતું કે આપના અનેકાનેક પ્રયાસોથી પણ તે ઉક્ત અપરાધને વિસારી શકયું નહિંજ.

એ રીતે ઘણા વર્ષ પર્યંત અધિકારારૂઢ રહ્યા બાદ સં. ૧૬૩૩માં કૃષ્ણદાસે પોતાના અપરાધી શરીરને કુવામાં લીન કર્યું અને તેઓ સદાને માટે તેનાથી મુક્ત થયા.

શંકા-સમાધાન

પૂર્વપક્ષી—પ્રેતવિષયક પ્રસંગમાં અમને નીચે પ્રકારની શંકાઓ રહે છે તદર્થ તેનું સમાધાન કરવું આવશ્યક છે.

૧ શું તમે કહી શકો છો કે કૃષ્ણદાસના સંબંધનો પ્રેત વિષયક પ્રસંગ 'વાર્તાકાર'ના નામથી તેમની હયાતી બાદ કોઈ વ્યક્તિ દ્વારા તેમાં પાછળથી યોજવામાં નહિ આવ્યો હોય? જો એમ હોય તો એ પ્રસંગ નિઃસંદિગ્ધ પ્રક્ષિપ્ત હોઈ તેને વાર્તામાંથી દૂર કરવો આવશ્યક છે.

૨ કૃષ્ણદાસ જેવા મહાનુભાવ ભગવદીય પ્રભુચરણ ને ભગવદ્ દર્શનમાં અંતરાયરૂપ થઇ પડે એ વાત શું અસભવ નથી?

૩ કદાચ પ્રશ્ન બીજાને સ્વીકારી પણ લઇએ તો પણ એ વાત તો સર્વથા પાયાહીન માની શકાય એમ છે કે કૃષ્ણ-દાસ પ્રેતરૂપે શ્રીનાથજી સાથે વાર્તાલાપ કરે, અને છતાં તેઓ પ્રેતજ રહે?

યદ્યપિ અમારી ઉપર્યુક્ત શંકાઓનું સમાધાન ભાવનાત્મક દૃષ્ટિએ શકય હોવા છતાં સમ્ભવિત અને ઐતિહાસિક દૃષ્ટિએ તેમ બનવું શકય નથી તેમ અમે માનીએ છીએ. માટે અમારા મત પ્રમાણે તો વાર્તામાં ઇતિહાસને સઙ્ગત રૂપ થઇ પડે એવો નિમ્ન પ્રકારનો ફેરફાર થવો આવશ્યક છે—

'અમારા મન્તવ્યને અનુસાર કૃષ્ણદાસ પ્રેત થયા બાદ શ્રીનાથજી સાથે વાર્તાલાપાનન્તર તેઓ તે યોનિમાંથી છુટી ગયા અને તેના પ્રમાણ રૂપે કૃષ્ણદાસનું 'कृष्णदास सुर तें असुर भये असुर ते सुर भये चरनन छोय' એમ લખવું જોઇએ

ઉત્તરપક્ષી—પ્રથમ મારે ઉક્ત પ્રશ્નોનો ખુલાસો કરતાં

પહેલાં એ વાત ઉપર આપનું ધ્યાન ખેંચવું આવશ્યક છે કે તે પ્રેતવિષયક પ્રસંગ સદંતર લૌતિક તો નથીજ. કેમકે પ્રેત-યોનિ મૃત્યુલોકના પ્રાણીઓથી શ્રેષ્ઠ છે એમ શાસ્ત્ર કહે છે. તેથી તેનો સંબંધ પણ મૃત્યુલોક સાથે સંભવિત નહીં હોવાથી ત્યાં લૌતિક ઇતિહાસની ગમ્ય નથી. અતઃ તે શંકાઓનું નિવા-રણ આવશ્યક લૌતિક ઉપરાંત શાસ્ત્રીય એવં સામ્પ્રદાયિક દૃષ્ટિએજ નિમ્ન પ્રકારે આપવામાં આવે છે—

આપના પ્રશ્ન પહેલાના નિવારણ રૂપે અમારી પાસે કાંકરોલી સરસ્વતી ભંડારથી પ્રાપ્ત શ્રીગોકુલેશની ઉપસ્થિતિ સમયની ગોકુલમાં લખાયેલી વ્રજ સં. ૧૬૯૭ (ગુ. ૧૬૯૬)ના ચૈત્ર સુદ ૫ ને વાર રવિની પ્રતિ વિદ્યમાન છે. અને તેની ‘પુષ્પિકા’નો ફોટો પણ પ્રસ્તુત પુસ્તકમાં આપવામાં આવેલો છે. અતઃ તે વિષે કોઇ શંકા રહેતી નથી. વળી વાર્તા શ્રી-ગોકુલેશ દ્વારા લખાયલી છે કે અન્યથી, તે આપના આંતરિક સંદેહનો વિચાર પ્રસ્તાવનામાં કરેલો છે એથી અત્રે તેનો ઊહાપોહ કરવો પણ વ્યર્થ છે.

આપના બીજા અને ત્રીજા પ્રશ્નનો ઉત્તર યદ્યપિ શ્રી-હરિરાયજીના ‘ભાવપ્રકાશમાં’ સ્પષ્ટ છે તથાપિ તેના સારનું એકીકરણ ત્રિવિધ સંગતિથી અત્રે સૂક્ષ્મરૂપે આપવામાં આવે છે—

અન્ય વાર્તાની માફક આ વાર્તામાં પણ ‘વાર્તાકારે’ ત્રિવિધ ભાષા (લૌકિક-પરમતા અને સમાધિરૂપ) એવં ભાવ-નાની જે સુંદર સંગતિ રચી છે તે નીચે પ્રકારે છે—

લોક સઙ્ગતિ—લૌતિક દૃષ્ટિ—

લોકમાં એ સ્પષ્ટ છે કે અંતિમ સમયે મનુષ્યનું મન કોઈપણ લૌતિક વસ્તુમાં રહી જાય તો તેને પ્રેતાદિ યોનિ

ભોગવવી આવશ્યક થઈ પડે છે. તે વાતની સઙ્ગતિ અત્રે પણ કુવાના કાર્યાર્થના રૂા ૧૦૦)માં કૃષ્ણદાસનું મન રહેલું હોવાના પ્રસંગદ્વારા વાર્તાકારે સિદ્ધ કરી છે.

વેદસઙ્ગતિ—આધ્યાત્મિક દષ્ટિ—

વેદ નિયમાનુસાર શ્રીગુરૂદેવનો અપરાધ મહાનતમ મનાય છે. એક વખતે પ્રભુ પોતાના અપરાધને ક્ષમા કરે છે કિંતુ શ્રીગુરૂદેવના અપરાધને તે કદાપિ ક્ષમા કરી શકતા નથી એ લોક અને વેદમાં પ્રસિદ્ધ છે. તદનુસાર પ્રભુચરણની પ્રાર્થનાથી શ્રીનાથજીએ કૃષ્ણદાસના સ્વ પ્રત્યેના અપરાધને ક્ષમા કર્યો. કિંતુ ન તો શ્રીજીએ તથા ન પ્રભુચરણે ગુરૂ સ્વરૂપ પ્રતિના અસહ્ય અપરાધથી કૃષ્ણદાસ ને મુક્ત કર્યા. જેથી તે અપરાધની નિવૃત્તિને અર્થે તેમને પ્રેતયોનિ ભોગવવી આવશ્યક થઇ પડી.

યદ્યપિ પ્રભુ સર્વસમર્થ છે છતાં શાસ્ત્રીય પ્રણાલીની રક્ષાને અર્થે આપે તેમને સ્વયં પ્રેતયોનિથી મુક્ત ન કર્યા. કિંતુ ગુરૂદેવના અપરાધનું નિવારણ ગુરૂદેવ જ કરી શકે છે એ સિદ્ધાંત ચરિતાર્થ કરાવવાને અર્થે જ પ્રભુચરણ પાસે તેમની મુક્તિ કરાવી. આમ લોક અને વેદની શાસ્ત્રીય પદ્ધતિનું રક્ષણ કર્યા છતાં પ્રભુએ આચાર્યશ્રીના વિશદ સ્વતંત્ર પુષ્ટિમાર્ગની પ્રણાલીને પણ ગૌણ થવા દીધી નહિ. એ જ પ્રભુનું વિરૂદ્ધધર્માશ્રયત્વ આ વાર્તામાં સિદ્ધ કરવામાં આવ્યું છે.

લોક અને વેદની દૃષ્ટિએ કૃષ્ણદાસ અપરાધી હોવા છતાં પુષ્ટિદષ્ટિએ તેઓ નિર્દોષ જ રહ્યા. જેથી શ્રીજીએ તેમનો દેહ દંડ દ્વારા લોકવેદની રક્ષા કરી તોપણ ‘પુષ્ટિ’ની સર્વોચ્ચતા સિદ્ધ કરવાને માટે તે યોનિમાં પણ **ભગવદ્દર્શન એવં વાર્તાલાપનું સૌભાગ્ય પ્રાપ્ત** કરાવ્યું. જે લોક અને વેદની

દૃષ્ટિએ સર્વથા અસમ્ભવ છે. અને આચાર્યશ્રીના 'अत्रापि वेदनिंदायामधर्मकरणात्तथा, नरके न भवेत्पातः किन्तु हीनेषु जायते'। એ વાકયને ગોપીનાથદાસ દ્વારા લોક સમક્ષ સિદ્ધ કર્યું.

પ્રેતયોનિમાં પણ ભગવદ્દર્શનના આ પ્રસંગને બિલ્વમંગલના ચરિત્રદ્વારા પણ ઐતિહાસિક પુષ્ટિ મળે છે.

આ રીતે લોક, વેદ અને 'પુષ્ટિ'નું પૃથક્કરણ કરી કૃષ્ણદાસને પુષ્ટિના વિશુદ્ધરૂપમાં લેવાને માટે દર્શન દ્વાર, સ્પર્શરૂપ ફલ મળે તદર્થ વિપ્રયોગનું દાન પણ આપ્યું.

ભાવસઙ્ગતિ–આધિદૈવિક દૃષ્ટિ—

આધિદૈવિક ભાવાત્મક ભક્તિની દૃષ્ટિએ મહાનુભાવ શ્રીહરિરાયજીએ પોતાના ભાવપ્રકાશ દ્વારા જે ભાવસઙ્ગતિ ભક્તજનો સમક્ષ રાખી છે તે પૂર્ણ સંતોષ રૂપ હોવાથી તેની વિશદ ચર્ચાની આવશ્યક્તા અત્રે રહેતી નથી.

આ પ્રકારે વાર્તાકારે શ્રીપ્રભુના વિરૂદ્ધધર્માશ્રયત્વનું દિગ્દર્શન કરાવી સાથે સાથે ત્રિવિધ મર્યાદાની જે સઙ્ગતિ જનતા સમક્ષ સુચારૂ રૂપે ઉપસ્થિત કરી તે વાસ્તવમાં સરાહનીય છે.

આ સંબંધી કોટા શ્રીબડે મથુરેશજીના મુખિયાજી વિદ્યાસુધાકર શ્રીયુત ગોકુલદાસજી નીચે પ્રમાણે લખી જણાવે છે—

साधारण पुरुषोंको समझाने के लिये तो यही उत्तर है कि मनुष्य के रुधिर मांस के शरीरसे भूतोंका वायुका शरीर उत्तम है । इसीसे अमरकोषमें 'भूतोऽमी देवयोनयः' एसा लिखा है अर्थात् भूत देवताओंमें गिने जाते हैं और जिस प्रकार सेवोपयोगि अथवा ज्ञानोपयोगी देह जिनका हो

वह उत्तम मनुष्य गिना जाता है, और जिनका विषयोपभोग के लिये देह है वह संसारी हीन मनुष्य गिना जाता है। एसेही भूतगणों में जिनका ज्ञानोपयोगी या भजनोपयोगी देह हो वह उत्तमभूत गिने जाते हैं। उनकी गुह्यक, सिद्ध नाम से प्रसिद्धि होती है। और जो अधार्मिक जीव स्त्री पुत्रादि की वासना से भूत हो जाते हैं वे अधम गिने जाते हैं। एवं विषयोपयोगी पृथ्वी के राजा के देह की अपेक्षा कृष्णदासजी अधिकारी का कोटि ब्रह्माण्ड नायक श्रीगोवर्द्धनजी के लीलोपयोगी भूत शरीर अत्यन्त ही श्रेष्ठ हैं। जैसे भक्तजीवों को व्रजके पशु पक्षी वृक्ष आदि के कलेवर देके प्रभुने उनके साथ क्रीडा की, वैसेही कृष्णदासजी अधिकारी को कुछ कारण वशभूत शरीर देके कुछ समय इनको लीलाका अनुभव कराया। पुष्टिमर्यादामार्गीय भी भक्त भगवान से जन्म मरण से छूटनेकी प्रार्थना नहीं करते हैं, जैसे भागवत प्रथम स्कन्ध में परीक्षित ने कहा है-

'महत्सु यां या मुपयामि योनिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः'

हे ब्रह्म ऋषियों! आपसे नमस्कारपूर्वक मैं यही प्रार्थना करता हूं कि जन्म २ में मेरी महापुरुष भक्तों के साथ मित्रता हो।

और भक्त योगीश्वर भी पवन का देह धारण करके ब्रह्मांड के भीतर वाहर विचरते हैं जसा कि भा. द्वि. स्कन्ध में लिखा है—

योगिश्वराणां गतिमाहुरन्तर्
बहि स्त्रिलोक्यां पवनान्तरात्म नाम्।

છીતસ્વામી

(સં. ૧૫૭૨ થી સં. ૧૬૪૨)

સૂર એવં પરમાનંદ આદિ ઉક્ત પ્રાથમિક અષ્ટછાપના કવિયોની માફક છીતસ્વામીનો ઈતિહાસ પ્રાપ્ત થતો નથી. તેમજ વાર્તામાં પણ તેમનું પૂર્વ ચરિત્ર આપેલું નથી. અતઃ લાખ ચેષ્ટા કરવાથી પણ તેમના માતાપિતાના નામ આદિની વિશેષ વિગતો પ્રકાશમાં લાવી શકાતી નથી. તોપણ તિ. શ્રીગોવર્દ્ધનલાલજી મહારાજશ્રીની આજ્ઞાનુસાર આ મહાકવિનો જન્મ સં. ૧૫૭૨ ના માગશર વદ ૧૦ ને વાર શનિના દિવસે મથુરામાં એક ચતુર્વેદી બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો.

યદ્યપિ આ મહાનુભાવનું પ્રાથમિક જીવન દુઃસંગને લીધે વિપરીત પથાનુગામી લોકમાં રહ્યું, તથાપિ સં. ૧૫૯૨માં જ્યારે તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની સન્મુખ આવ્યા ત્યારે તેમની જીવનદશાએ તેમાં પલટો ખાધો.

શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરના અપનાવ્યા બાદ, કુસંગરૂપી વાદળથી ઢંકાયલો એ દિવ્ય'તારલો' પુનઃ ભક્તિ તથા સાહિત્યાકાશમાં પ્રકાશ્યો. અને એના પ્રકાશે ભક્તિના મહત્ત્વ અંગરૂપ ગુરૂના સ્વરૂપનું પ્રથ–પ્રદર્શન કરાવી અનેકોને સુપથગામી કર્યા.

જો કે એમનું વાર્તાત્મક ચરિત્ર સંક્ષિપ્ત હોવાથી ભૌતિકક્ષેત્રમાં સંતોષપ્રદ નથી તથાપિ આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિએ તે અત્યંત મહત્ત્વપૂર્ણ સિદ્ધ થઇ ચુક્યું છે.

તેમના ચારિત્ર્યદ્વારા, ગુરૂ એવં ઈશ્વર વચ્ચે રહેલા શાસ્ત્રીય અભેદનો જે દિવ્યપ્રકાશ ધાર્મિક–ક્ષેત્રમાં દેખાય છે તે વસ્તુતઃ ઉર્ધ્વપથને પ્રકટકર્તા હોઇ અનુસરણીય છે. એટલુંજ

નહિં કિંતુ તેથીયે વિશેષ ગુરૂપ્રત્યેનો તેમનો **કેન્દ્રિત** ભાવ એવં **દૃઢાશ્રય** પરમમનનીય છે. અને તે દ્વારા તેમનો, રાજા બીરબલ જેવા સબલ રાજકીય પુરુષનો વિમુખતા અર્થેનો ઉજ્જવલ ત્યાગ સર્વેને અનુકરણીય છે. એ બધા પ્રસંગો દૈવી સંપત્તિઓનું વિસ્પષ્ટ દર્શન કરાવનારા છે.

વળી પેટના અર્થે ધર્મનો ઉપયોગ ન કરવો એ તેમનો સિદ્ધાંત વસ્તુતઃ આશ્રયના સિદ્ધિરૂપ છે.

સ્થાનાભાવથી અત્રે વિશેષ ન કહેતાં તેમના સ્વરૂપ વિષે અમારૂં આટલું કથન પર્યાપ્ત થશે કે–શ્રીસૂર જે પ્રકારે **ભાવ–સમ્પન્ન** છે તેજ પ્રકારે છીતસ્વામી **સ્વરૂપ–સમ્પન્ન** છે. દૃષ્ટાંતરૂપે—

પોતાના ભાવના પરમકેન્દ્રિય એવં પ્રાણાધિક્ય સ્વરૂપ શ્રી-વિઠ્ઠલેશ્વરના અંતર્ધ્યાન થતાં માત્ર આ સ્વરૂપાસક્ત મહાનુભાવે પણ **સ્વરૂપવિયોગે** કરીને નિમ્ન પદ ગાઈ સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭ ના દિવસે 'પૂંછરી' સ્થલે શ્યામ તમાલની નીચે દેહ છોડ્યો.

'विहरत सातों रूप धरें ।
सदा प्रकट श्रीवल्लभनंदन द्विजकुलभक्तिवरें ॥
श्रीगिरिधर राजाधिराज व्रजराज उद्योत करें ।
श्रीगोविंद इंदु जगकिरन सींचत सुधा अधरें ॥
श्रीबालकृष्ण लोचन विशाल देखे मन्मथ कोटि हरें ।
गुण लावण्य दयाल करुनानिधि गोकुलनाथ भरें ॥
श्रीरघुपति यदुपति घनसामल मुनिजन शरण परें ।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल जिहिं भज अखिल तरें ॥'

છીતસ્વામીનું ચરિત્ર–વિવરણ કોષ્ટક–

જન્મ–વિ. સં. ૧૫૭૨ ના માગશર વદ ૧૦ ને વાર શનિ, મથુરામાં.

જાતિ–ચતુર્વેદી બ્રાહ્મણ.

શરણાગતિ સમય–વિ. સં. ૧૫૯૨.

સ્થાયીનિવાસ–ગિરિરાજમાં 'પૂછરી' સ્થાને શ્યામતમાલ વૃક્ષની નીચે.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય–સંધ્યાર્તિ.

અંતસમય–વિ. સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭ 'પૂછરી' સ્થાને.

લીલાત્મક સ્વરૂપ–'સુબલ' સખા એવં 'પદ્મા' સખી.

ભગવદંગસ્વરૂપ–ભુજા.

લીલાવિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ–શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી.

શૃંગારાસક્તિ–સેહરા.

લીલાસક્તિ–શ્રીગુસાંઇજીની જન્મલીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર.*

સંગ્રાહક–સમ્પાદક વાર્તા–સાહિત્ય.

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્માત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

ગોવિંદસ્વામી

(સં. ૧૫૭૩ થી સં. ૧૬૪૨)

છીતસ્વામીની માફક આ મહાકવિનો ઇતિહાસ પણ હજુ સુધી અંધકારમાંજ રહ્યો છે. અતઃ વાર્તાથી એટલુંજ જાણી શકાય છે કે તેઓ ભરતપુર રાજ્યાન્તર્ગત આવેલા 'આંતરી'× નામક ગામમાં અનુમાનતઃ સં. ૧૫૭૩ માં એક સનાઢ્ય બ્રાહ્મણને ત્યાં જન્મ્યા હતા. ગૃહસ્થાશ્રમાનન્તર તેઓ ભગવત્પ્રાપ્તિને અર્થે વ્રજમાં આવ્યા હતા અને ત્યાં વિશેષ કરીને તેઓ મહાવનના ટીલા ઉપર રહેતા હતા. તેઓ કેવલ મહાકવિ હતા એટલુંજ નહિં અપિતુ એક સર્વોચ્ચ ગવૈયા પણ હતા. સં. ૧૫૯૨ માં જ્યારથી તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની શરણે આવ્યા ત્યારથી તેમણે ભગવત્ સન્નિધાનાતિરિક્ત અન્યત્ર સ્વવાણીનો વિનિયોગ કર્યો નહિં. એટલુંજ નહિં કિંતુ અનાયાસ રૂપમાં પણ જ્યારે તેમની વાણી બાદશાહ અકબરે*

× જે લોકો આ આંતરી ગામને દક્ષિણમાં સતારા જીલ્લામાં આવેલું કહે છે તે સ્વયં ભ્રમિત છે. કેમકે નંદદાસજીની માફક ગોવિંદ-સ્વામીના કાવ્યોમાં કોઇપણ દક્ષિણી ભાષાનો શબ્દ જોવામાં આવતો નથી. વળી તેમની બેટી અકેલીનું 'આંતરી' જવાનું લખેલું છે. તેથી પણ જ્ઞાત થાય છે કે તે વ્રજની નજીકમાં જ હોવું જોઇએ. કેટલાકો ગ્વાલિયર રાજ્યાન્તર્ગત છાવનીથી આવેલા સાત ગાઉ ઉપરના આંતરી ગામને આ આંતરી ગામ સાથે મેળવે છે તે પણ ઉપરનાં કારણથી અમને ઠીક લાગતું નથી.

* ઘણી પ્રાચીન પ્રતિયોમાં આ સમયે અકબરનો ઉલ્લેખ જોવામાં આવે છે. જ્યારે આ પ્રતિમાં કેવળ એક મ્લેચ્છ એમ લખ્યું છે.

—સમ્પાદક.

ગુપ્તવેશે સાંભળી અને તેની સરાહના કરી ત્યારથી તેમણે તે રાગને સદાને માટે પ્રભુ સન્નિધાન નિવેદન ન કર્યો એવા તેઓ અનન્ય ટેકી હતા.

શરણે આવ્યા ત્યારે આ મહાનુભાવે ગુરૂભેટરૂપે 'श्रीवल्लभनंदनरूप अनूप' એ પદ ગાઈ પોતાની સ્વરૂપાસક્તિને પ્રકટ કરી. જેથી પ્રભુચરણ અત્યંત પ્રસન્ન થયા.

તેમની ગાનવિદ્યાની નિપુણતા તો એથી સ્વયંસિદ્ધ છે કે–તે સમયના અકબરના દરબારના નવરત્નોમાંના સર્વોચ્ચ ગવૈયા તાનસેન પણ તેમની પાસેથી ગાન સાંભળવા અને શિખવા હરિદાસના શિષ્ય હોવા છતાં પ્રભુચરણના સેવક થયા.

સ્થલાભાવથી અત્રે સમગ્ર વાર્તાનું દિગ્દર્શન ન કરતાં ટુંકમાં એટલું જ કહેવું પર્યાપ્ત છે કે તેઓ એક નિઃશંક સખ્યભક્તિથી યુક્ત એવં નિરભિમાની મહાકવિ હતા. તેમની સખ્ય ભક્તિનો આદર્શનમૂનો રૂપાપોલિયાના પ્રસંગ ઉપરાંત શ્રીનાથજીના દાવ લઇને ભાગીજવાના સમયે કહેલા આપદમાં સ્પષ્ટ છે—

'पोत ले आयो भाजि गंवार ।
खोलि किंबाड़ घस्यो घर भीतर सिखइ दये लंगवार ॥१॥
कबहू तो निकसेगो बाहिर एसी दउंगो मार ।
गोविंदसों तू वैर अब करिके सुखे न सोवे यार ' ॥२॥

ધન્ય છે આ પરમકાષ્ટાપન્ન સખ્ય ભક્તિને!

તેમનું પરલોકગમન અત્યદ્‌ભુત રૂપે છે. તે સંબંધી ૧૨૦ વચનામૃતમાં એમ પ્રસિદ્ધ છે કે જ્યારે પ્રભુચરણ-(સં. ૧૬૪૨ના મહા વદ ૭મે) પૂજની શિલાના દ્વારથી લીલામાં પધાર્યા ત્યારે આ મહાકવિ પણ સદેહે સાથેજ લીલામાં ગયા.

ગોવિંદસ્વામીનાં ૨૫૨ પદ અદ્‌ભુત છે. તેમનું ગિરિરાજમાં રહેવાનું એકાંતિક સ્થાન 'કદમખંડી' સુપ્રસિદ્ધ છે.

ગોવિંદસ્વામીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક—

જન્મ—વિ. સ. ૧૫૭૩ ભરતપુર રાજ્યાન્તર્ગત 'આંતરી' ગામમાં.

જાતિ—સનાઢ્ય બ્રાહ્મણ.

શરણાગતિ સમય—વિ. સં. ૧૫૯૨.

સ્થાયી નિવાસ—ગિરિરાજમાં કદમખંડી, ગોકુલમાં મહાવનના ટીલા ઉપર.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—ગ્વાલ.

અંતસમય—વિ. સં. ૧૬૪૨ ના મહા વદ ૭ પૂંજની શિલા આગળના દ્વારથી.

લીલાત્મક સ્વરૂપ—'શ્રી દામા' સખા એવં 'ભામા' સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ—નેત્ર.

લીલાવિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ—શ્રીદ્વારકાધીશ પ્રભુ.

શૃંગારાસક્તિ—ટિપારા

લીલાસક્તિ—આંખમિચૌની, હિંડોરા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર*

સંગ્રાહક—સમ્પાદક વાર્તા—સાહિત્ય.

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

ચત્રભુજદાસ.

(સં. ૧૫૯૭ થી સં. ૧૬૪૨)

આ મહાકવિના જન્મની કથા જેવી અત્યદ્ભુત છે તેવીજ તેમની બાલ્યચેષ્ટા પણ. વાર્તાને અનુસાર કુંભનદાસની વૃદ્ધ વયે, આચાર્યશ્રી એવં શ્રીગોવર્દ્ધનધરના આશીવાદથી ચત્રભુજદાસનું પ્રાકટ્ય સં. ૧૫૯૭માં જમનાવતામાં થયું હતું. તેઓ જન્મથી જ દિવ્ય શક્તિવાળા એક મહાનુભાવો ભક્ત–કવિ હતા.

જન્મથી એકતાલીસમા દિવસે જ નામ નિવેદન પ્રાપ્ત કરી તેમણે પ્રભુચરણ આગળ ગુરૂ ભેટ રૂપે ‘सेवक की सुखरास सदा श्रीवल्लभराजकुमार’ એ માર્મિક પદ ગાયું.

યદ્યપિ ચત્રભુજદાસની ભક્તિ વિશેષત: સખ્ય પરિપૂર્ણ હતી તથાપિ સ્વગુરુ સન્મુખ તો તેઓ સંપૂર્ણ દાસ્ય ભાવને જ ધારણ કરતા હતા. તેઓ તેમના પિતા કુંભનદાસજીની માફક ભગવદનુગ્રહથી પણ વિશેષ ગુરુની મર્યાદાનેજ મહત્ત્વ આપતા હતા.

એમણે ફુટકર પદોથી અતિરિક્ત અન્ય કોઈ ગ્રન્થ રચ્યો હોય એમ જણાતું નથી. તેમનાં ફુટકર પદોના સંગ્રહ રૂપે, ચતુર્ભુજ કીર્તન સંગ્રહ, કીર્તનાવલી અને દાનલીલાના ત્રણ ગ્રન્થો કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગમાં છે. તથાપિ એ સ્વતંત્ર ગ્રન્થ ન કહેવાય.

‘મધુમાલતી-કથા’ અને ‘ભક્તિ–પ્રતાપ’ નામના બે ગ્રન્થો કે જે કાશી નાગરી પ્રચારિણી સભાના સભ્યોદ્વારા એમના નામ ઉપર મૂકવામાં આવ્યા છે તે ઠીક નથી.

વાર્તાથી એ જ્ઞાત થાય છે કે સં. ૧૬૪૨ ના મહા વદ ૭ ના દિવસે સ્વગુરુ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરના લીલાપ્રવેશ અનન્તર આ સ્વરૂપાસક્ત અનન્ય ભક્તે ‘રૂદ્રકુંડ’ ઉપર તેમના અલૌકિક વિરહમાં આમલીના વૃક્ષ નીચે દેહ છોડ્યો.

ચત્રભુજદાસનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક—

જન્મ-વિ. સં. ૧૫૯૭ જમનાવતામાં.

જાતિ-ગોરવા ક્ષત્રિય.

શરણાગતિ સમય-વિ. સં. ૧૫૯૭.

સ્થાયી નિવાસ-જમનાવતા.

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—ભોગ.

અંતસમય-વિ. સં. ૧૬૪૨ ના મહા વદ ૭ રુદ્રકુંડ
ઉપર આમલીના વૃક્ષ નીચે.

લીલાત્મકસ્વરૂપ-'વિશાલ' સખા એવં 'વિમલા' સખી.

ભગવદંગ સ્વરૂપ-ત્વચા

લીલાવિભિન્ન સ્વરૂપાસક્તિ-શ્રીગોકુલનાથજી

શૃંગારાસક્તિ-દુમાલા.

લીલાસકિત-અન્નકૂટ લીલા.

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી
પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર*

સંગ્રામક-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય.

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

મહાકવિશિરોમણિ
શ્રીનંદદાસજી

(સં. ૧૫૯૦ થી સં. ૧૬૪૦)

આ મહાકવિનો ઇતિહાસ આજ સુધી હિન્દી સાહિત્ય-ક્ષેત્રમાં એક 'સમસ્યા' રૂપ હતો. જેથી આધુનિક અનેક લબ્ધપ્રતિષ્ઠ લેખકોએ પણ તેને પોતપોતાના ઉર્વર મસ્તિષ્કની યોજનાઓ દ્વારા રજૂ કરી ઇતિહાસમાં અરાજકતા ફેલાવી. પરિણામે અનેક મતભેદોએ હઠાગ્રહનો આશ્રય લઈ, વાક્યુદ્ધ દ્વારા એક સાહિત્યિક 'કલહ' ઉત્પન્ન કર્યો. જે 'કલહે' પ્રાચીન પ્રામાણિક ગ્રન્થો ને પણ 'અછૂતા' ન રાખ્યા.

કિંતુ ભક્તેચ્છાપૂરક આચાર્યશ્રીના અનુગ્રહબળે અમારા પરમમિત્ર માનનીય સોરોંનિવાસી પં. ગોવિંદવલ્લભશાસ્ત્રી કાવ્ય-તીર્થનો તદ્‌વિષયક પ્રયાસ સફળ થયો. અને પરિણામે અન્ય તટસ્થ વિદ્વાનો પણ તેમાં સહમત થયા.

આ રીતે વાગીશ પ્રભુની પ્રેરણાથી ૨૫૨ વાર્તા ઉપર વિરોધ પક્ષે કરેલા સબલ અને તીવ્ર પ્રહારનો નિર્મૂળ નાશ થયો.

પં. ગોવિંદવલ્લભશાસ્ત્રીએ અત્યધિક પરિશ્રમ કરીને વાર્તાને અનુસરતાં જે અકાટ્ય પ્રમાણો પ્રાપ્ત કર્યાં તેમાંનાં કેટલાંક આ રહ્યાં—

सूकरक्षेत्र माहात्म्य—

गणपति गिरा गिरीस, गिरजा गंगा गुरु चरन।
बन्दहुं पुनि जगदीस, छवि वराह महि उद्धरन।
बन्दहुँ तुलसीदास, पितु बड़भ्राता-पदजलज।
जिन निज बुद्धि विलास, रामचरित मानस रच्यो।

सानुज श्रीनंददास, पितु की बन्दहुं चरन-रज ।
कीनो सुजस प्रकास, रास पंच अध्यायि भनि ।
बन्दहुं कृपानिकेत, पितु गुरु श्रीनरसिंह पद ।
बन्दहुं शिष्य समेत, वल्लभ आचारज सुषद ।
बन्दहुं कमला मात, बन्दहुं पद रतनावली ।
जासु-चरणजलजात, सुमिरि लहहिं तिय सुरथली ।
सुकुलवंस दुजमूल, पितरन पद सरसिज नमहुँ ।
रहहिं सदा अनुकूल, कृष्णदास निज अंस गनि ।
महि वराह संवाद, सूकरक्षेत्र महात्म कर ।
हौं धरि कर आह्लाद, कृष्णदास भाषा करहुं ।

ग्रन्थनो अंतिम दोहो आ प्रकारे छे—

सोरह सौ सत्तर प्रमित, सम्वत् सित दल मांह,
कृष्णदास पूरन कर्यो, छेत्र महात्म वराह ।
तीरथवर सौकर निकट, गाम रामपुर वास ।
सोइ रामपुर श्यामपुर, कर्यो पिता नंददास ।

आ ग्रन्थना अन्तमां 'कृष्णदास' पोतानी वंशावली आ प्रमाणे आपे छे—

खेत वराह समीप सुचि गाम रामपुर एक ।
तहं पंडित मंडिन वसत सुकुल वंश सविवेक ॥
पंडित नारायण सुकुल, तासु पुरुष परधान ।
धार्यो सत्य सनाढ्य पद, व्है तपवेद निधान ॥
शस्त्र शास्त्र विद्या कुशल, भे गुरु द्रोण समान ।
ब्रह्मरंध्र निज भेदि जिन, पायो पद निर्वान ॥
तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये, भक्त पिता अनुहारि ।
पंडित श्रीधर शेषधर, सनक सनातन चारि ॥
भये सनातन देव सुत, पण्डित परमानंद ।
व्यास सरिस वक्ता तनय, जासु सच्चिदानन्द ।

तेहि सुत आत्माराम बुध, निगमागम परवीन ।
लघु सुत जीवाराम मे, पंडित धरम धुरीन ॥
पुत्र आतमारामके, पंडित तुलसीदास ।
तिमि सुत जीवाराम के, नन्ददास चन्द्रहास ॥
मथ २ वेद पुरान सब, काव्य शास्त्र इतिहास ।
रामचरितमानस रच्यो, पंडित तुलसीदास ॥
वल्लभकुल वल्लभ भये, तासु अनुज नन्ददास ।
धरि वल्लभ आचार जिन, रच्यो भागवत रास ॥
नन्ददास सुत हौं भयो, कृष्णदास मतिमन्द ।
चन्द्रहास बुध सुत अहे, चिरजीवी व्रजचन्द ॥

'रत्नावली' (चरित्र)

तवै मीत इक दई आस, गुरु नृसिंह के जाउ पास ।
स्मारत वैष्णव सो पुनीत, अखिल वेद आगम अधीन ॥
चक्र तीर्थ ढिग पाठसाल, तहीं पढ़ावत विपुल बाल ।
तहां रामपुर के सनाढय, सुकुल बंशधर द्वै गुनाढय ॥
तुलसीदास और नन्ददास, पढ़त करत विद्याविलास ।
एक पितामह पौत्र दोउ, चन्द्रहास लघु अपर सोउ ॥
तुलसी आतमराम पूत, उदर हुलासी के प्रसूत ।
गये दोउ ते अमरलोक. दादी पोतहिं करि ससोक ॥

+ + +

नन्ददास अरु चन्द्रहास, रहहिं रामपुर मातुपास ।
दम्पति वसि वाराह धाम लहत मोद आठौंहु याम ॥

ગ્રન્થના અન્તમાં કવિ આ પ્રમાણે લખે છે—

एक पितामह सदन दोउ जनमे बुधि रासी ।
दोऊ एकै गुरु नृसिंह बुध अन्तेवासी ॥
तुलसीदास नंददास मते द्वै मुरलीधारे ।
एक भजे सियराम एक घनश्याम पुकारे ॥

एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर में रहे ।
एक रामगाथा लिखी एक भागवत पद कहे ॥

એક અન્ય પદ શોધમાં મળ્યું છે જે આ રહ્યું—

श्रीमत्तुलसीदास स्वगुरु भ्राता पद वंदे ।
शेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनंदे ॥
रामचरित जिन कोन ताप त्रय कलि-मलहारी ।
करि पोथी पर सही आदरेउ आप मुरारी ॥
राखी जिनकी टेक मदनमोहन धनुधारी ।
वालमीकि अवतार कहत जेहि संत प्रचारी ।
नंददास के हृदय नयन कों खोलेउ सोई ।
उज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई ॥

ઉપર્યુક્ત આપેલાં અકાટય પ્રમાણોમાં ' सूकरक्षेत्रमहात्म्य ' સં. ૧૬૫૭માં આપણા ચરિત્રનાયક મહાનુભાવ નંદદાસજીના સુપુત્ર શ્રી કૃષ્ણદાસે રચેલો છે કે જેની પ્રમાણિકતા સર્વે વિદ્વાનોએ મુક્તકંઠે સ્વીકારી છે.

ઉક્ત દ્વિતીય 'रत्नावली' નામક ગ્રન્થ પં. મુરલીધર ચતુર્વેદી સોરોં નિવાસીએ સં. ૧૮૨૯ માં રચેલો છે.

આ બે ગ્રન્થોના પ્રમાણો માટે એક બે સમાલોચકોએ સંદિગ્ધતા પણ દેખાડી, તથાપિ પં. રામદત્ત ભારદ્વાજ એમ. એ. એલ–એલ–બી. ને હાલમાં કાસગંજના પંડા હરગોવિંદને ત્યાંથી 'વર્ષતન્ત્ર' અને 'વર્ષફલ' નામના જે બે જીર્ણ જ્યોતિષ ગ્રન્થો પ્રાપ્ત થયા છે તેનાથી ઉક્ત સમાલોચકોની સંદિગ્ધતા પૂર્ણ રૂપેણ નષ્ટ થાય છે. કેમકે આ જ્યોતિષ ગ્રન્થો એટલા તો ગહન છે કે આધુનિક લોકો તેને સહજમાં સમજી શકે તેમ

નથી. વળી તે સાહિત્યિક વિષય નહિં હોવાથી તેમાં કૃત્રિમ રચનાનો પણ આરોપ થઈ શકે તેમ નથી.

જો કે 'વર્ષતન્ત્ર'ના રચયતા પણ કવિ કૃષ્ણદાસ છે છતાં તે સાહિત્ય અને ઈતિહાસની દૃષ્ટિએ નિરર્થક છે. અતઃ ઉક્ત દ્વિતીય ગ્રન્થ–'વર્ષફલ'–ની ઐતિહાસિક પંક્તિઓ જ અમે અત્રે ઉદ્ધૃત કરિએ છીએ–

दोहा–तात अनुज चन्द्रहास बुधवर निदेस हिय धारि ।
लिख्यो जथामति वर्षफल, बालबोध संचारि ॥

कवित्त–कीरति की मूरति जहां राजे भगीरथकी,
तीरथ वराह भूमि वेदनु जे गाई है ।
जाही धाम रामपुर स्यामलर कीनों तात,
स्यामायन स्यामपुर वास सुखदाई है ॥
सुकुल विप्रवंस मे विग्य तहां जीवाराम,
तासु पुत्र नन्ददास कीरति कवि पाई है ।
ता सुत हौं कृष्णदास 'वर्षफल' भाषा रच्यौ,
चूक होइ सोधै मम जानि लघुताई है ॥
सोरह सौ सत्तामनि विक्रम के मांझ भई,
अतिसय कोप–दृष्टि विश्व के विधाता की ।
बोतत आषाढ बाढ़ लाइ बढ़ि देवधुनी,
बूड़ी जल जन्मभूमि रत्नावलि माताकी ॥
नारी नर बूड़े कछु सेस बड़भाग रहे,
चिन्ह मिटे बदरी के दुखद कथा ताकी ॥
आजु नभ कृष्ण मास तेरसि सनि कृष्णदास,
वर्षफल पूरयौ भयो दया बोध दाताको ॥

ઉપર્યુક્ત ગ્રન્થથી અતિરિક્ત એક 'दोहारत्नावली' નામક

ગ્રન્થ પણ ઉક્ત પં. શ્રી ગોવિંદવલ્લભ શાસ્ત્રીને પ્રાપ્ત થયો છે. તેમાં નંદદાસજી સંબંધી એક દોહો નિમ્ન પ્રકારનો છે—

'मोहि दीनो संदेश पिय अनुज 'नंदके' हाथ।
रतन समुझि जनि पृथक मोहि जो सुमिरित रघुनाथ' ॥

ઉપર્યુક્ત દોહો રામાયણ કર્તા તુલસીદાસજીના ધર્મપત્ની કવિયત્રી શ્રીરત્નાવલી રચિત છે.

આ ઉપરાંત પ્રાચીન વસ્તુઓની શોધ ખોળમાં શ્રીરામદત્ત ભારદ્વાજ એમ. એ. એલ. બી.ને ભ્રમરગીતના ખંડિત જીર્ણ પત્રો કાસગંજના પુરોહિત અને વૈદ્ય હરગોવિન્દ પણ્ડયાને ત્યાંથી પ્રાપ્ત થયાં છે—જે વાર્તાની પુષ્ટિ કરતા છે તે—આ પ્રમાણે છે—

पत्र—१ भ्रमरगीतसम्पुरनम् वि...त नंददास भ्राता तुलसीदास के स्यामस खासी सोंरोजी मध्ये लिखितं कृष्णदास सिष्य बालकृष्ण आज्ञानुसार गुरु कृष्णदास बेटा नन्ददास नाती जीवारामके शुक्ल श्यामपुरी सनाढय......रद्वाज गोती सच्चिदानंद के बेटा आतमाराम...के बेटा रामायण के करता तुलसीदास दूजे...टा नन्ददास चन्द्रहास तिनके बेटा कृष्णद-...सके बेटा ब्रजचंद पोथी लिखी माघ...ोज चन्द्रवार सं. १६७२ शुभम् ।

पत्र—२ अस्पष्ट.

पत्र—३ न कियो सो यह लीला गाइ पाइ रस पुंजना वंदौ तुलसीदास के चरना सानुज नंददास दुःख हरना जिन पितु आतमाराम सुहाये जिन सुत रामकृष्ण जस गाए:
द्र सुवन मम गुरु प्रवीना दास कृष्ण मम नाम सोचीना ।
शुक्ल सनाढय तेज गुण रासी धर्म धुरीण श्याम स खासी ॥

बाल कृष्ण में उर कर दा(सा) (सू)कर क्षेत्र जान मम वासा...भ्र ॥
माधुरी. वर्ष १८ खण्ड २ मई, १९४०

આ તમામ અકાટય પ્રમાણોથી એ સિદ્ધ થાય છે કે મહાનુભાવ નંદદાસજી રામાયણ રચયિતા શ્રીતુલસીદાસજીના કાકાના પુત્ર નાના ભાઈ હતા.

હવે જે ભક્તમાલને છંદ ટાંકી પ્રસિદ્ધ પંડિત રામચંદ્ર શુકલે **એમના 'હિન્દી શબ્દ સાગર' એવં 'ઈતિહાસ'માં વાર્તા ઉપર કટાક્ષ** કર્યું છે તેને અમે ઉપર્યુક્ત પ્રમાણો સાથે સરખાવી વાર્તાની નિર્દોષતા સિદ્ધ કરવાને અર્થે અત્રે ઉદ્ધૃત કરિએ છીએ—

भक्तमाल—

श्रीनंददास आनन्दनिधि, रसिक प्रमुदित रग मगे । टेक.
लीला पद रस रीति ग्रन्थ रचना में नागर ।
सरस उक्ति जुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर ॥
प्रचुर पयध लौं सुजस 'रामपुर' ग्राम निवासी ।
सकल सुकुल संबलित भक्त पद रेनु उपासी ।
चन्द्रहास अग्रज सुहृद परम प्रेम पय में पगे ॥ श्री नंददास०

આથી પાઠકો સહજ સમજી શકશે કે 'વાર્તા' એવં ભક્તમાલ પરસ્પર અવિરૂદ્ધ છે, અને વાર્તાની પ્રામાણિકતા વસ્તુતઃ અકાટય છે.

સ્થાનાભાવથી અત્રે વિશેષ ન લખતાં ઉક્ત પ્રાપ્ત પ્રમાણોની સાથે વાર્તાની એકવાકયતા કરી જનશ્રુતિના આધારે હવે અમે નંદદાસજીનો ઈતિહાસ આપીશું.

નંદદાસજીનો ભૌતિક ઇતિહાસ

નંદદાસજીનો જન્મ અનુમાનતઃ સં. ૧૫૯૦ લગભગ સોંરો નિકટના 'રામપુર' ગામમાં 'જીવારામ' સનાઢ્ય બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો. નંદદાસજીના પિતા જીવારામ સોંરો નિવાસી તુલસીદાસજીના પિતા 'આતમારામ' ના સગા ભાઇ હતા. નંદદાસજીને એક નાના 'ચંદ્રહાસ' નામના પણ ભાઈ હતા. તુલસીદાસજી અને નન્દદાસજી બન્નેનાં માતા પિતા તેમના બાલપણુમાં જ ગત થઇ ગયેલાં હોવાથી તે બન્ને ભાઇઓ તેમની દાદીમાની પાસે સોરમમાં રહેતા હતા. **જેથી તેઓ લોકમાં 'અનુજ' અને 'અગ્રજ' રૂપે પ્રસિદ્ધ થયા.**

તુલસીદાસજી અને નંદદાસજી બન્ને રામાનંદી પંડિત શ્રીનરહરિને ત્યાં વિદ્યાભ્યાસ કરી સંસ્કૃતના પ્રખર જ્ઞાતા થયા. અનન્તર તુલસીદાસજી પ્રાયઃ કથાદ્વારા પોતાની આજીવિકા કરવા લાગ્યા. અને નંદદાસજી તેમની સાથે રહેતા. આ બન્ને ભાઈઓ રામચંદ્રજીના ઉપાસક હતા. સં. ૧૬૦૬ માં જ્યારે તુલસીદાસજી કથાને માટે નંદદાસજીને લઈને કાશી રહેતા હતા ત્યારે એક સંઘ ત્યાંથી યાત્રાર્થે નિકળ્યો. તેની સાથે નંદદાસજી પણુ ચાલી નિકળ્યા. પ્રસંગોપાત રસ્તામાં સિંહનંદમાં તેઓ એક ક્ષત્રાણીથી આસક્ત થયા અને તેની પાછળ પાછળ ગોકુળ આવી શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરના સેવક થયા. એજ સમયે સેવક થતાં માત્ર નંદદાસજીના જીવને અદ્ભૂત પલટો ખાધો.

પછી તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની સાથે ગોવર્દ્ધન આવ્યા. અને ત્યાં ભગવદ્ ઈચ્છાથી અષ્ટસખાની પૂર્તિ રૂપે અષ્ટછાપમાં સ્થપાયા.

આ સમયે શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે જ્યારે સંપ્રદાયના જ્ઞાનાર્થે સત્સંગ કરવાને નંદદાસજીને તેમની પ્રાર્થનાથી મહાનુભાવ શ્રીસૂરને સોંપ્યા ત્યારે શ્રીસૂરે–કે જે ત્રિકાલજ્ઞ હતા–નંદદાસજીને પ્રથમ રામભક્ત જાણી 'આવો નંદનંદનદાસ!' એ પ્રકારે સંબોધ્યા.

અનન્તર પ્રભુચરણની આજ્ઞાથી શ્રીસૂરે તેમને પોતાની પાસે ચંદ્રસરોવર ઉપર છ માસ તક રાખ્યા. તે દરમ્યાન પ્રથમ તેમના હૃદયમાં સર્વવિધ દૈન્યતા સ્થાપવાને માટે તેમણે નંદદાસજીને 'अर्थ करो पंडित अरु ज्ञानी' પદ રચીને સંભળાવ્યું. અને તે દ્વારા તેમનો હૃદયાન્તર્ગત વિદ્યામદ નિવૃત્ત કર્યો.

પશ્ચાત્ કાવ્યચિત્રો—ફૂટપદો—દ્વારા તેમના હૃદયમાં શૃંગાર પરિપૂર્ણ કૃષ્ણને સ્થાપી, મર્યાદા રામભક્તિને દૂર કરી. આ કાવ્યોએ નંદદાસજીના હૃદયને કૃષ્ણાસક્ત કર્યું એટલું જ નહિ અપિતુ તેમનામાં રહેલી કાવ્ય–પ્રતિભાને શક્તિશાલી કરી. ફલતઃ નંદદાસજીની રચના અનેક અલંકારોથી પરિપૂર્ણ શૃંગારમયી બની. અને તેમણે હિન્દી સાહિત્યક્ષેત્રમાં શ્રીસૂર પછી પોતાનું સ્થાન પ્રાપ્ત કર્યું. આ રીતે એક પ્રકારે તેઓ કાવ્યક્ષેત્રમાં શ્રીસૂરના શિષ્યવત્ થયા. સૂરદાસજીએ પણ તેમને માટે છ માસમાં સમગ્ર સાહિત્ય લહરીની રચના કરી અને તેની પૂર્તિ (વ્રજ) સં. ૧૬૦૭ના વૈશાખ સુદ ૩ ના દિવસે નિમ્ન પદ દ્વારા કરી—

'मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गोरीनंदको लिखि सुबल संवत पेख ।
नन्दनन्दन मास छय ते हीन तृतिया बार ॥
नन्दनन्दन जन्म तें है बाण सुख आगार ।
तृतिय ऋक्ष सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन ।
नन्दनन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन ।'

આ પ્રકારે નંદદાસજી શૃંગાર રસ–પરિપૂર્ણ નંદનંદનના સ્વરૂપમાં આસક્ત થયા.

વાર્તાથી જ્ઞાત થાય છે કે આ અરસામાં તુલસીદાસજીએ નંદદાસ પ્રત્યેના મમત્વથી આકર્ષાઈ તેમને પુનઃ ઘર આવવાનો પત્ર લખ્યો. કિન્તુ તેઓએ તે પત્રની ઉપેક્ષા કરી.

અનન્તર પ્રસિદ્ધ જનશ્રુતિને અનુસાર સૂરદાસજીએ તેમને તેમનું ભવિષ્ય કહી ઘર જવાને પ્રેર્યા. છતાં જ્યારે ભવિષ્ય સાંભળીને પણ નંદદાસજીનું મન ઘર જવાને તૈયાર થયેલું ન જોયું ત્યારે શ્રીસૂરે તેમને સ્પષ્ટ શબ્દોમાં નિમ્ન પ્રકારે કહ્યું—

જ્યાંસુધી તમો ઘર જઈ ને ગૃહસ્થાશ્રમમાં સ્થિત નહિ થાવ, તેમજ તમારે ત્યાં થનાર એક ભગવદીય પુત્રનું પ્રાકટ્ય નહિ થાય ત્યાં સુધી તમને 'નંદનંદન'નો સાક્ષાત્કાર અને તેની ભક્તિનો આસ્વાદ કદી પણ પ્રાપ્ત નહિં થાય. કેમકે તમારા હૃદયનો વૈરાગ્ય સુદૃઢ નથી. અતઃ મારી આ વાણીનો સ્વીકાર કરી એકવાર તમો ગૃહસ્થાશ્રમ ભોગવો અને તે દરમ્યાન ત્યાં કૃષ્ણભક્તિનો પ્રચાર કરો.

સૂરદાસજીની આ વાણી શ્રવણ કરીને નંદદાસજી પોતાના ગામમાં ગયા અને ત્યાં સંવત ૧૬૧૨ લગભગ કમલા નામની કન્યા સાથે તેમનું લગ્ન થયું.

ત્યાંના નિવાસ દરમ્યાન તેઓએ ભાગવતની કથા દ્વારા લોકોને કૃષ્ણભક્તિમાં આસક્ત કર્યા. અને પોતાના પ્રભાવથી રામપુર ગામને [1]"શ્યામપુર' નામે પ્રસિદ્ધ કર્યું. અહીં તેમણે એક તલાવ પણ ખોદાવ્યું જેનું નામ તેમણે 'શ્યામસર' પાડ્યું.

---

૧. હાલપણ રામપુર ગામને સરકારી પત્રોમાં શ્યામપુર અથવા શ્યામસર એ નામથી જ લખવામાં આવે છે. આ રામપુર ગામ સોરમજીથી બે કોસ દૂર છે. યદ્યપિ નંદદાસજીના ગૃહસ્થાશ્રમ આદિની વાત વાર્તામાં નથી—કેમકે વાર્તામાં આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિનું જ પ્રાધાન્ય હોવાથી ભગવદ્ભક્તિમાં આવશ્યક હોય એટલો જ ભૌતિક અંશ પ્રત્યેકની વાર્તામાં આપેલો છે—તોપણ બાહ્ય પ્રમાણો એવં સમ્પ્રદાયમાં પ્રચલિત જનશ્રુતિના આધારે ઉક્ત વાતને પુષ્ટિ મળે છે.

અનન્તર તેમને ત્યાં એક પુત્ર ઉત્પન્ન થયો જેનું નામ તેમણે કૃષ્ણદાસ[૨] રાખ્યું. આ રીતે સૂરદાસજીની વાણી સફલ થયા બાદ સં. ૧૬૨૪ લગભગ તેઓ જ્યારે પુનઃ ગોકુલ આવ્યા ત્યારે તેમણે શ્રીગુંસાઈજીને દંડવત કરી **'जयति रुक्मिनिनाथ पद्मावती प्राणपति'** એ પદ ગાયું.

અહીં સં. ૧૬૨૪ માં તુલસીદાસજી કાશીથી પોતાના ઘર સોરમજી આવ્યા. અને ત્યાં પોતાની સ્ત્રી 'રત્નાવલી'ને 'બદરિયા' ગામમાં તેના પિયર ગયેલી જાણી તેઓ પણ ત્યાં ગયા. અહીં સ્ત્રીના સાધારણ ઉપદેશથી તુલસીદાસજીને રામ પ્રતિ દૃઢભાવ ઉત્પન્ન થયો અને તેઓ રાત્રેજ ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા.

અનન્તર તેઓ કાશી ગયા અને ત્યાંથી ફરતા ફરતા સં. ૧૬૨૮ લગભગ વૃંદાવન આવ્યા. ત્યાં તમામ સ્થલે દર્શન કરી જ્યારે તેઓ ગોવર્દ્ધનમાં નંદદાસજીને મળવા ગયા ત્યારે તેમને 'ચંદ્રસરોવર' ઉપર સૂરદાસજીનો સમાગમ થયો. અહીં ત્રિકાલજ્ઞ શ્રીસૂરે તેમના હૃદયમાં ઉછલિત રામ પ્રત્યેના અનન્ય ભાવને અનુભવી તેમને રામ અને કૃષ્ણની અભેદતાનાં દર્શન કરાવ્યાં.× અને તેમણે નંદદાસજી દ્વારા સાક્ષાત્ કૃષ્ણસ્વરૂપ કોટાનકોટિમન્મથ-મોહન પ્રભુ શ્રીનાથજીમાં સ્વઇષ્ટ શ્રીરામચન્દ્રજીનાં પ્રત્યક્ષ દર્શન કરવાનો આદેશ આપી તેમને ગોપાલપુર મોકલ્યા.

---

૨. નંદદાસજી પહેલાં રામભક્ત હતા એ વાત વાર્તાથી સિદ્ધ છે. એટલે પુત્રનું નામ કૃષ્ણદાસ હોવાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે તેઓ શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરની શરણે આવી કૃષ્ણ ભક્ત બન્યા પછી જ પાછા ઘર આવેલા હોવા જોઈએ. અને તેથી જ ગામનું નામ શ્યામસર અને પુત્રનું નામ કૃષ્ણદાસ રાખ્યું.

× આ સંબંધી વિશેષ જુઓ આજ ગ્રંથમાં આપેલો સૂરદાસજીનો ભૌતિક ઈતિહાસ પેજ ૧૩ થી ૧૫

અહીં તેમના મન્દિરમાં આવ્યા બાદ નન્દદાસજીની

'कहा कहों छबि आजकी भले बने हो नाथ।

तुलसी-मस्तक तब नमै, धनुष बाण लो हाथ ॥'

આ પ્રાર્થનાથી પ્રભુ શ્રીગોવર્દ્ધનધારીએ 'ધનુર્ધારી' રૂપે દર્શન આપ્યાં અને એજ રીતે ગોકુલમાં શ્રીગુસાંઇજીએ પણ નંદદાસજીની પ્રાર્થનાથી પંચમ પુત્ર શ્રીરઘુનાથજી–કે જેમનું લગ્ન જાનકી વહુજી સાથે હાલમાં જ થયું હતું–દ્વારા તેમને રામ એવં જાનકી સ્વરૂપે દર્શન કરાવરાવ્યાં. આથી તુલસીદાસજીનું હૃદય અત્યંત દ્રવિત થયું અને તેમણે શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરને પોતાને સેવક કરવાની પ્રાર્થના કરી + કિંતુ ઉદાર હૃદયના શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરે તે પ્રાર્થનાનો અસ્વીકાર કરતાં સમજાવ્યું કે પુષ્ટિમાર્ગમાં તમારા જેવા અનન્ય અનેક ભક્તો છે, કિંતુ મર્યાદામાર્ગમાં તમારા જેવો અનન્ય બીજો નથી અતઃ તમારી તે માર્ગમાં સ્થિતિ આવશ્યક છે.

+ આ સંબંધી 'संप्रदायकल्पद्रुम' માં નિમ્ન પ્રકારે છે.

'मुरली मुकुट दुरायके धनुष बाण गहि हाथ।
रामभक्ति हिय जानि दृढ, नाथ भये रघुनाथ' ॥

करि प्रमाण गिरिधरनकों, आयजु विठ्ठल पास।
शरण मंत्र की विनय किय, मुदितजु तुलसीदास ॥

विठ्ठलेश संतोषि मन, रामभक्ति पहिचान।
पंचम सुत रघुनाथ ढिग भेज दीन्ह नृप मान! ॥
दरसन करि रघुनाथ के, करि प्रणाम नृप मान!।
भक्ति मांगि गृहकों गये तुलसीदास सुजान ॥ सं. क० पत्र ७३

આ પ્રસંગની પુષ્ટિ શ્રીદ્વારકેશજીએ પણ પોતાની 'ભાવભાવના'માં કરી છે. સં. ક. માં સં. ૧૬૨૮ ના ફાગણ સુદ ૧૧ ના દિવસે આ પ્રસંગ બનેલો છે. એમ લખ્યું છે. —સમ્પાદક

આ પ્રસંગનો અનુભવ કરી તુલસીદાસજીએ રામ અને કૃષ્ણની અભેદ લીલાનું પ્રભુચરણ આગળ નિમ્ન પદ દ્વારા વર્ણન કર્યું—

बरनौं अवधि श्रीगोकुल ग्राम ।
उत विराजत जानकीवर इतहिं स्यामास्याम ॥१॥
उहां सरजू बहत अद्भुत इहां श्रीजमुना नीर ।
हरत कलिमल दोउ मूरत सकल जनकी पीर ॥२॥
मनि जटित सिर क्रीट राजत संग लछमन बाल ।
मोर मुकुट रु बन कर इहां निकट हलधर ग्वाल ॥
उहां केवट सखा तारे बिहसिके रघुनाथ ।
इहां नृग जदुनाथ तारयो कूप-गहि निज हाथ ॥४॥
उहां स्रिवरी स्वर्ग दीनौ सीलसागर राम ।
इहां कुबजा ल्याय चंदन किये पूरन काम ॥५॥
भक्तिहित श्रीरामकृष्ण सुधरयो नर अवतार ।
दास तुलसी दोउ आसा कोउ उबारो पार ॥६॥

તુલસીદાસજીની આ અભેદબુદ્ધિ જોઇ પ્રભુચરણ અત્યંત પ્રસન્ન થયા. અને તેમની પ્રાર્થનાથી આપે તેમની વાણીને શ્રીનાથજીની સન્મુખ સદાને માટે અષ્ટછાપની સાથે સ્વસંપ્રદાયમાં ગાવાને તેમને અભયવચન આપ્યું. કે જે આજપર્યંત ચાલુ છે.

એથી પ્રસન્ન થઇ તુલસીદાસજીએ પ્રભુચરણ પ્રતિ પોતાનો ભક્તિ-ભાવ અને કૃતજ્ઞતા પ્રકટ કરવાને અર્થે આ પદ ગાયું—

"जे कहावत सेवक निजद्वारके ।
धरो संवारि पन्हैया ताकी श्रीवल्लभ राजकुमारके ॥
चरनोदक की करौं लालसा मन वच क्रम अनुसारके ।
तुलसी के सुख को बरनन करि कोन सके संसारके ॥"
(कांकरोली स० भं० हि० बन्ध १ पु. सं. २ पत्र ९०)

આ પ્રકારના વર્ણનથી પ્રભુચરણ અત્યંત પ્રસન્ન થયા અને સુદૃઢ ભક્તિનો વર આપી તેમને વિદાય કર્યા. અનન્તર તુલસીદાસજીએ વ્રજમાં રહી 'कृष्णगीतावली' ની રચનાની શરૂઆત કરી. તેમાં સૂરદાસજીનાં બાળલીલાનાં પદોના ભાવનો મુખ્ય આશ્રય લીધો. જે વાંચવાથી પાઠકોને તેનો (સૂરદાસજીની છાયાનો) પ્રત્યક્ષ અનુભવ થાય છે. અસ્તુ.

પશ્ચાત્ નન્દદાસજીએ શ્રીગોકુલમાં રહી શ્રીભાગવતને ભાષામાં કરી, કિન્તુ બ્રહ્મકલેશના કારણે પ્રભુચરણની આજ્ઞાથી દશમસ્કન્ધના પ્રથમથી ભ્રમરગીત સુધીના અધ્યાયની ભાષા સિવાયની તમામ રચના શ્રીયમુનાજીમાં પધરાવી દીધી.

એ રીતે સં. ૧૬૩૯ સુધી નન્દદાસે ૬૮ વ્રજવાસ કરી પ્રભુચરણમાં પોતાની અનન્ય ભક્તિ સ્થાપી અને અનેક પદો રચ્યાં.

અંતમાં સં. ૧૫૪૦ લગભગ તેમને ગોવર્દ્ધન ગામમાં માનસીગંગા ઉપર પીપળના વૃક્ષ નીચે અકબરના એક પ્રશ્ન ઉપર દેહ છોડયો. જે વાર્તામાં પ્રસિદ્ધ છે

નંદદાસજીનું ચરિત્ર-વિવરણ કોષ્ઠક—

જન્મ—વિ.સં. ૧૫૯૦ (?) સોરો પાસેના 'રામપુર' ગામમાં

જાતિ—સનાઢ્ય બ્રાહ્મણ પિતૃનામ—જીવારામ

શરણાગતિ—સમય—વિ.સં. ૧૬૦૬

સ્થાયી નિવાસ—ગોવર્દ્ધન, માનસીગંગા

કીર્તનનો મુખ્ય સમય—શૃંગાર

અંત સમય—વિ.સં. ૧૬૪૦ માનસી ગંગા ઉપર પીપરના [વૃક્ષ નીચે

લીલાત્મક સ્વરૂપ—'ભોજ' સખા એવં 'ચંદ્રરેખા' સખા

ભગવદંગ સ્વરૂપ—ઉદર

લીલા વિભિન્ન સ્વરૂપોસક્તિ—શ્રીગોકુલચંદ્રમાજી

શૃંગરાસક્તિ—ફેંટા

લીલાસક્તિ—કિશોરલીલા-રાસપંચાધ્યાયીની

ગો. શ્રીહરિરાયજી વિરચિત એવં શ્રીદ્વારકેશજી પરિવર્ધિત સાહિત્યાનુસાર

સંગ્રાહક-સમ્પાદક વાર્તા-સાહિત્ય

---

* મૂળ સાહિત્ય પદ્યાત્મક અંતમાં આપ્યું છે.

છીતસ્વામી આદિ પાછળના ચાર સખાઓની કાવ્ય–સુધા ઉપર એક દૃષ્ટિ–

જે પ્રકારે શ્રીસૂર આદિના પ્રથમ ચાર મહાકવિયોની સુધા સંપ્રદાયમાં જેટલી મહત્ત્વપૂર્ણ છે; એ પ્રકારે એટલીજ આ ચાર કવિઓની સુધા પણ છે. તથાપિ કાવ્ય એવં તત્ત્વ-દૃષ્ટિથી એમાં મૌલિક ભેદ રહેલો છે.

નંદદાસજીથી અતિરિક્ત આ અન્ય ત્રણ કવિયોની કાવ્ય ચમત્કૃતિ પ્રથમના ત્રણ કવિયોની અપેક્ષા સાધારણ હોવા છતાં તેમના સ્વરૂપ પરત્વેનાં પ્રેમ, આસક્તિ અને વ્યસન ક્રમશ: અક્ષરશ: સમાન ઝળકે છે. ફેર એટલોજ છે કે સૂર આદિનાં પ્રેમ,આ-સક્તિ અને વ્યસન **ભાવપરત્વે** છે. જયારે આ **સ્વરૂપપરત્વે** છે.

નંદદાસજીની કાવ્ય ચમત્કૃતિ અદ્દ્ભુત છે. તેમને માટે એ કહેવત પણ પ્રસિદ્ધ છે કે **'और सब गढ़िया नंददास जड़िया ।'** નંદદાસજી કાવ્યમાં સૂરદાસજીના શિષ્ય સમાન હોવાથી તેમનાં કાવ્યો અસાધારણ એવં મનોહર હોયજ એ સ્વાભાવિક છે.

વળી નંદદાસજીને સૂરદાસજીની માફક ભાવાત્મક સ્વરૂ-પની સાથે પ્રભુચરણે અનોસરમાં બ્રહ્મસંબંધ કરાવ્યું છે એ પણ મર્મજ્ઞોને માટે એક ખાસ સમજવાની વાત છે. ––અસ્તુ.

સ્થાનાભાવથી અત્રે વિશેષ ન લખતાં 'પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત–કવિ' નામક ગ્રંથમાં સર્વેની કાવ્યસુધા ઉપર સમાલોચના રૂપે વિસ્તૃત લખવામાં આવશે. **—સમ્પાદક.**

અષ્ટછાપના ચરિત્ર-વિવરણનો પ્રમાણ-સંગ્રહ

नंददासजी—

कोन लई कोन दई इंडुरिया गोपाल मेरी,
ग्वाल बाल सखन मांझ तुमही हसत हो।

× × ×

नंददास वसत वास व्रजमें गिरिराज पास
टेडो फटा आडबंद कोनपें कसत हो?

श्रीहरिरायजी—

सूरदास शिरपाग बिराजे, कृष्णदास मुकुट मणि राजे।
ग्वालपगा परमानन्द भ्राजे, कुंभनदास कुल्हे शिरताजे॥
गोविंदस्वामी टिपारे साजे, चत्रभुजदास दुमाले गाजे।
फेंटा नन्द अनंगन लाजे, सेहरा छीत सघन समाजे॥
नित्य लीला भक्त हित काजे, दरशन अष्ट उपाधि भाजे।
कुम्भनदास महारस कंद, प्रेम भरे निज परमानन्द॥
छीतस्वामी गावे सब कोऊ, बांधे हरि गुण सूर वहु।
कृष्णदास जो पावन करे, चत्रभुजदास कीतन उच्चरे॥
नंददास सदा आनंद, गुण गावे स्वामी गोविन्द।
'रसिक' यही श्रवन राखे, श्रीवल्लभकी वानी मुख भाखे।
करि सेवा मन कीजे ध्यान, नितप्रति लीजे आठों नाम॥

श्रीद्वारकेशजी— छप्पय—

सूरदास सो कृष्ण, तोक परमानन्द जानो।
कृष्णदास सो ऋषभ, छीतस्वामी सुबल बखानो॥
अर्जुन कुम्भनदास, चत्रभुजदास विशाला।
नन्ददास सो भोज, स्वामी गोविंद श्रीदामा।
अष्टछाप आठों सखा, द्वारकेश परमान।
जिनके कृत गुनगान करि, होत सुजीवन थान॥

श्रीमट्टुजी महाराज—

जो जन अष्टछाप गुन गावत।
चित्त निरोध होत ताही क्षण हरिलीला दरसावत।
सूर सूर जस हृदे प्रकाशत परमानंद बढ़ावत।
छितस्वामी गोविंद जुगल बस, तन पुलकित जल आवत॥
कुंभनदास चत्रभुजदास, गिरिलीला प्रकटावत।
तरुण किशोर रसिक नंदनंदन, पूरन भाव जनावत॥
नंददास कृष्णदास रास रस, उछलित अंग अंग नमावत।
रसिकदास जन कहांलों बरनों श्रीवल्लभ मन भावत॥

ગદ્ય સંગ્રહ—

ગદ્યમાં શ્રીહરિરાયજીએ જે કંઇ અષ્ટછાપનું ભૌતિક, આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક વર્ણન લખ્યું છે તે 'ભાવપ્રકાશ' માં આવેલું હોવાથી અત્રે લખતા નથી.

ઉપરાંત 'નિજવાર્તા'માં સૂરદાસજીનો જન્મસમય આ માણે છે—

'सो सूरदासजी, जब श्रीआचार्यजी महाप्रभुको प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है। सो श्रीआचार्यजी सों ये दिन दस छोटे हुते'।

શ્રીદ્વારકેશજી ગદ્યમાં આ પ્રમાણે અષ્ટછાપ સંબંધી લખે છે. સુરદાસજીના જન્મ સમયનો ઉલ્લેખ—

'सो सूरदासजी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन तें दस दिन छोटे हते। लीलामें उनको स्वरूप कृष्णसखा,—चंपकलता सखी श्रीजीके वाक् को स्वरूप, गिरिराज के चंद्रसरोवर द्वार के अधिकारी, स्वामी की छाप, सारस्वत ब्राह्मण-सींहीगामके वासी'।

શ્રીદ્વારકેશજી ગોવિંદસ્વામીના આધિદૈવિક સ્વરૂપવિષે આટલું વિશેષ લખે છે-

'ये गोविंदस्वामी लीलामें श्रीठाकुरजीके अन्तरंग सखा 'श्रीदामा' तिनको प्राकट्य हैं। सो श्रीदामा सखा श्रीस्वामिनीजी को भाई है, तातें श्रीठाकुरजीकों अधिक प्रिय हैं। सो एक दिन खेलमें श्रीदामा श्रीठाकुरजीके कंधा उपर चढयो, सो श्रीस्वामीनीजीने देख्यो। तब श्रीस्वामिनीजीने उनकों शाप दियो जो भूमि ऊपर गिरो। उह समय श्रीजीने श्रीस्वामिनीजीसों कह्यो जो-ये तो मेरी मालारूप हैं। परि आपने नहीं मान्यो। ता पाछे ये आंतरी गाममें जन्मे और गोविंदस्वामीके नाम सों प्रसिद्ध भये। परि इनकों भगवन्मिलन की चाह बहोत तातें ये व्रजमें आये' × × ×

નંદદાસજી સંબંધી—

'ये नंददासजी लीलामें 'भोज' सखा अन्तरंग तिनको प्राकट्य हैं। सो दिवसकी लीलामें तो ये 'भोज' सखा हैं और रात्रिकी लीलामें श्रीचंद्रावली की सखी 'चंद्ररेखा' इनको नाम है। इनको मन शृङ्गार करिवे में और रूप सम्हारवे में बहोत, सो वे पूर्व में 'रामपुर' गाममें जन्मे।

એ પ્રકારે આઠે સખાના સ્વરૂપનો વિચાર લખ્યો છે જે શ્રીહરિરાયજીના 'ભાવપ્રકાશ'ને મળતો હોવાથી અત્રે આપતા નથી.

—સમ્પાદક

કૃષ્ણસુધા ઉપર એક દૃષ્ટિ—

(અનુસંધાન પત્ર ૯૦)

શ્રીકૃષ્ણદાસજીની સુધા મહાઅલૌકિક છે. સૂર, પરમાનંદ અને કુંભનની માફક તેમની વાણી પણ ભાવ પ્રાધાન્ય છે. એમની સુધામાં જે તન્મયતા ઝળહળે છે તેના પ્રત્યક્ષ પુરાવા રૂપે તેમને '**मो-मन गिरधर छबि पर अटक्यो**' એ પદ દ્વારા એક સાધારણ વેશ્યાને પણ સદેહ લીલામાં પહોંચાડી તે વિદ્યમાન છે.

જે પ્રકારે કુંભનદાસજીએ દાનલીલા દ્વારા શ્રીનાથજીને મથુરાલીલામાં નિમગ્ન કર્યા* તેજ પ્રકારે કૃષ્ણદાસે પણ પોતાના સિદ્ધ નિસાધનાત્મક ભાવ દ્વારા સ્વવાણીમાં શ્રીનાથજીની સુધાને પ્રાપ્ત કરી સાહિત્યમાં એક નવીન કલ્પના-ક્ષેત્રનો અવિર્ભાવ કર્યો તે કંઇ ઓછું મહત્ત્વનું નથી. તેમાંયે તેમનાં રાસલીલાવિષયક પદ તો એટલાં બધાં અનુપમ છે કે તેના ગાન દ્વારા મનુષ્ય સહજ ભગવત્તન્મયતાને પ્રાપ્ત કરી શકે છે. એથી જ પ્રભુચરણે પણ તે પદોની મુક્ત કંઠે પ્રશંસા કરી છે. અતઃ કૃષ્ણસુધામાં ભાવસમ્પન્ન તન્મયતા—કે જે પ્રેમની પરાકાષ્ઠા છે તેની સિદ્ધિ રહેલી અનુભવાય છે.

કૃષ્ણદાસજીનું એક પ્રાચીન પદ—કે જે શ્રીગુસાંઇજી સાથેના તેમના અવાંચ્છનીય પ્રસંગની પુષ્ટિ કરે છે તે, આ રહ્યું—

परम कृपाल श्रीनंद के नंदन करि कृपा मोहि अपनो जानि के। मेरे सब अपराध निवारे श्रीवल्लभ की कानि मानि के। श्री जमुना जलपान करायो कोटिन अघ कटवाये प्रान के। पुष्टि तुष्टि मन नेम यही निश 'कृष्णदास' गिरिधरन आन के॥

—×—

* આ સબંધી વિશેષ જુઓ વિઠ્ઠલેશ્વર ચરિત્ર,

* श्रीद्वारकेशो जयति *

श्री द्वा० ग्र० माला का पुष्प १३

प्राचीन वार्ता-रहस्य

तृतीय भाग

—*×*—

श्री हरिरायजी कृत भाव प्रकाश, (व्रजभाषा) मूल वार्ता एवं प्रासंगिक ऐतिहासिक विवेचन (गुजराती) तथा संस्कृत वार्ता मणि माला सहित,

—:*:—

सम्पादक—

द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख

प्रकाशक—

श्री विद्या विभाग कांकरोली

वि० सं० २००४] [श्री वल्लभाब्द ४६९

प्रकाशक—

पो० कण्ठमणि शास्त्री विशारद

संचालक

विद्याविभाग—कांकरोली

प्रथमावृत्ति	श्री सर्वस्वतंत्र स्वाधीन	मूल्य
१०००	कृष्णजयन्ती २००४	१॥)

मुद्रक:—

श्री विट्ठलनाथ प्रेस कोटा

दो शब्द

—:×:—

सं० १९९८ के बाद (लगभग ५ वर्ष के उपरान्त) आज पाठकों के सामने प्राचीन वार्ता रहस्य का यह तृतीय भाग बड़ी कठिनाइयों के साथ समुपस्थापित किया जा सका है। कठिनाइयों का दिग्दर्शन विज्ञ पाठकों को क्या कराया जाय ? उसका आपाततः परिज्ञान इसी से किया जा सकता है- कि सर्वविध चेष्टाएँ करते रहने पर भी-- हम प्रेस, और कागज की अप्राप्यता वश अनेक अभिनव ग्रन्थों के साथ इस ग्रन्थ को भी प्रकाश में न लासके। इस ग्रन्थ के इस छोटे से खण्ड को छपा ने में जब लगभग सार्ध वर्ष का लम्बा समय लगाना पड़ा कई प्रेसों का दरवाजा खटखटाना पड़ा और मुँह माँगा दाम देना पड़ा, तब अन्य ग्रन्थों के प्रकाशन की कथा तो दूरापास्त है। यह तो प्रकाशक का या प्रकाशनीय ग्रन्थ का अहोभाग्य कहिये-- जो श्री विट्ठलनाथ प्रेस कोटा के प्रबन्धक मित्रवर पं० श्री लक्ष्मणशास्त्री जी ने साम्प्रदायिकता के नाते इसे छपा देना अंगीकार कर लिया और आई हुई उन विषमता-, ओं को पार कर हमारे मनोरथ को पूरा कर दिया जिन्हें भुक्त भोगी ही जान सकता है। अस्तु कुछ भी हुआ हमारे प्रकाशन की शृंखलास्थित रह सकी और हम पुराने ग्राहकों के संमुख अपनी परवशता वश प्राप्त हुई अकर्मण्यता को दूर हटाने के लिये ' दोशब्द ' लिखने का साहस कर सके यह क्या कम सौभाग्य है। मुद्रण- साहित्य सामग्री की अनुपलब्धिरूप विभीषिका यदि भगवत्कृपा से शीघ्र ही अपगत होसकी तो इस

विलम्ब का अच्छा उत्तर हम अगले समय में दे सकेंगे ऐसी आशा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ जो द्वा ग्र. माला के १३ वें पुष्पका तृतीय भाग है-- में प्रथम भाग की आठ वार्ताओं के आगे की ९ से १६ संख्या तक की "८४ वैष्णवों की वार्ताओं" की वार्ताएँ उपलब्ध साहित्य के साथ पूर्ववत् प्रकाशित की जारही हैं-- केवल मात्र द्वि० भाग के समान गुजराती विभाग को साथ में अनुक्रम रूप में न दे कर पृथक् परिशिष्ट रूप में प्रकाशित करने की विशेषता को लेकर। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रस्तुत विभाग का सम्पादन पहिले के समान ही मित्रवर द्वारकादास जी पुरुषोत्तम दास जी परिख ने ही किया है-- मुझे तो प्रूफ देखने का भी अवसर अस्वास्थ्य के कारण अधिगत नहीं हो सका है-- यद्यपि किसी मानसिक उथल पुथल के कारण श्रीयुत परिख जी ने स्वतन्त्र प्रकाशक बनकर एक प्रकार से विद्या विभाग से अपना सम्बन्ध-विच्छेद* प्रकाशित कर दिया है-- जो वाञ्छनीय नहीं है, फिर भी प्रस्तुत वार्ता साहित्य के प्रकाशन में संस्था के साथ उनका विसम्वाद नहीं है फलस्वरूप श्री प्रभु ने चाहा तो सम्पूर्ण वार्ता सुन्दर रूप में एक साथ ही प्रकाशित हो जाने का अवसर शीघ्र ही आ सकेगा।

स्वीकृत प्रणाली के अनुसार प्रस्तुतभाग में मूलवार्ताएँ, उनके साथ श्रीहरिरायजी-कृत भाव प्रकाश, परिशिष्ट में गुजराती- विवेचन- जिसे अपनी खोज पूर्ण, भावुकता परिप्लुत विद्वत्ता से ऐतिहासिक रूप में परिखजी ने प्रस्तुत किया है और महेश श्रीनाथ देव कृत 'संस्कृत वार्ता मणिमाला' की

---

* देखो नव प्रकाशित- 'हरिरायजी महाप्रभुनुं जीवन चरित्र' भूमिका पत्र ३५

प्रासंगिक ८ वार्ताएँ उपस्थित की जा रही है। 'सं० वा० मणिमाला' की आदर्श प्रति विद्या विभाग के सरस्वती भंडार में अभी तक एक ही विद्यमान थी, जिसके आधार पर यथोपलब्ध वार्ताएँ यथा मति संशोधित कर प्रकाशित की गई हैं। अब जब यह संस्कृत वार्ताएँ मुद्रित हो चुकी हैं- एक अन्य हस्त लिखित प्रति स्व० त्रिगृह श्री गोवर्धन लाला जी मथुरा के विशाल ग्रन्थ संग्रह के साथ प्राप्त हुई है। यह कहना अस्थाने न होगा कि स्वकीय विद्याप्रेम, एवं संग्रह प्रियता होने के कारण विद्याविभागाध्यक्ष, शु. सं० तृतीय पीठाधीश्वर गो० श्री १०८ व्रजभूषण लाल जी महाराज ने जिस तत्परता से यह अमूल्य ग्रन्थ संग्रह उनके एक मात्र स्वर्गीय पुत्र श्री बलदेव लाला जी 'प्रेमकवि' की पतिवियोग विह्वलापत्नी के स्वत्व का पूर्ण संरक्षण करते हुये स्वकीय विद्याविभाग के लिये प्राप्त कर लिया है। अन्यथा शु० सम्प्रदाय के एक अन्यतम विद्वान का यह अनुपम ग्रन्थ संग्रह अन्य ग्रन्थ संग्रहों की भाँति न जाने किस दिशा का पथिक बन जाता ? कुछ कहा नहीं जा सकता। अवसर पर चूक जाने की साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों ने कुछ पैसों के लोभ में पडकर न जाने कितने ऐसे अक्षय, अमूल्य, अनुपम एव अनन्त ग्रंथ भंडारों को हस्तान्तरित कर कहाँ का कहाँ पहुँचा दिया है और इस प्रकार शु० सा० साहित्य की जो दुरवस्था की है वह अकथनीय होते हुये भी लाञ्छनीय है। वास्तव में इस प्राप्त संग्रह को देखने वाला विद्वान् व्यक्ति महाराज श्री की गुणवृत्ति की भूरि २ प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता अस्तु।

मठेश श्री नाथ देव के सम्बन्ध में कुछ विशेष वृत्त (प्र० भाग की अपेक्षा) प्राप्त नहीं हुआ है जो हुआ है वह

प्रामाणिक रूप में पुष्ट हो जाने पर किसी अन्य स्थल पर प्रकाशित किया जायगा।

प्रेस की दूरी, स्वास्थ्य का अभाव और अन्य कई ऊल जलूल आपत्तियों के कारण प्रस्तुत भाग को आकर्षक नहीं बनाया जा सका है-जिसके लिये मानसिक परिताप है और तो और प्रूफ संशोधन भी अपेक्षाकृत ठीक नहीं हो पाया है। फिर भी युद्धजन्य प्रकाशन के अभाव में यत्किञ्चित् सामग्री लेकर हम पाठकों के सन्मुख उपस्थित होने का साहस कर रहे हैं। यदि अनुकूलता मिल गई जैसा कि निश्चय और विश्वास है तो सम्पूर्ण वार्ताएँ एक ही ग्रन्थ के रूप में उक्त साहित्य के साथ प्रकाशित की जायगी तब हम पाठकों से त्रुटियों के लिये क्षमा याचना करेंगे। ऐसी सदाशा है।

ॐ शान्तिः ३

निवेदकः—

पो० कण्ठमणि शास्त्री

संचालक

विद्या विभाग

काँकरोली

श्री कृष्ण जयन्ती

सं० २००४

गो. श्री व्रजभूषणात्मज

चि. श्री गिरिधरगोपाल

सैया आर्ट प्रीन्टरी, अमदावाद.

विषयानुक्रमणिका

(क) व्रजभाषा—

क्रम सं०	वार्ता	पृष्ठ
९	सेठ पुरुषोत्तम दास क्षत्री की वार्ता	१
१०	,, ,, की बेटी रुक्मिणी की वार्ता	१६
११	,, ,, के बेटा गोपालदास की वार्ता	२४
१२	रामदास सारस्वत ब्राह्मण ,, ,,	२६
१३	गदाधरदास कपिल सारस्वत ,, ,,	३५
१४	बेणीदास माधवदास दो भाई की वार्ता....	४६
१५	हरिवंश पाठक सारस्वत	५५
१६	गोविन्ददास भल्ला की वार्ता	५८

(ख) गुजराती विवेचन—

क्रम सं०	वार्ता	पृष्ठ
९	सेठ पुरुषोत्तमदास खत्री	.... १
१०	,, ,, की बेटी रुक्मिणी	.... १–२०
		तथा अन्तिम पृष्ठ
११	,, ,, के बेटा गोपालदास	.... १–३
१२	रामदास सारस्वत ब्राह्मण	.... २०
१३	गदाधरदास कपिल सारस्वत	.... २४
१४	माधवदास	... ३०
१५	हरिवंश पाठक	... ३३
१६	गोविन्ददास भल्ला	... ३४

(ग) संस्कृत वार्ता मणिमाला

क्रम सं०	वार्ता	पृष्ठ
९	श्रेष्ठि पुरुषोत्तम दासस्य वार्ता...	१
१०	पुरुषोत्तमदासस्य दक्षिण देशस्थ विप्रस्य च वार्ता	३
११	सेवकद्वयस्यमन्दारमेरोरूपरिघटिता वार्ता	७
१२	पुरुषोत्तमदासस्य पुत्र्याः वार्ता.... ...	१०
१३	सारस्वत ब्राह्मण रामदासस्य वार्ता	१४
१५	गदाधरदास सारस्वत ब्राह्मण कड़ा मानिकपुर	२०
१६	बेणीदास माधवदासक्षत्रियस्य वार्ता	२३
१७	अम्बाखत्राणी कड़ा मानिकपुर	२६
१८	सारस्वत ब्राह्मण हरिवंशस्य वार्ता ...	२९
	गोविन्ददासभल्ला क्षत्री थानेश्वरस्य वार्ता	३१

विद्याविभाग कांकरोली

की

श्री का० ग्र० माला द्वारा प्रकाशित और प्राप्य ग्रन्थ

सं०	नाम		मूल्य
१	बुरहानपुर आर्य समाज शास्त्रार्थ	(हिन्दी)	।)
२	पुष्टि मार्गीय वैष्णवान्हिक	(गुजराती)	=)।
३	मङ्गलमणि माला—१३ गुच्छ	(संस्कृत हिन्दी) प्र०	=)
४	कविता कुसुमाकर प्र० भाग	(,, ,,)	॥)
५	साम्प्रदायिक ग्रन्थ सूची	(हिन्दी)	।)
६	सम्प्रदाय प्रदीप सजिल्द	(संस्कृत हिन्दी)	२॥)
७	रसिक रसाल	(हिन्दी)	१॥)
८	काँकरोली	(एकत्र चारों भाग सचित्र-हिन्दी)	५)
९	प्राचीन वार्ता रहस्य प्र० भाग	(हि० गु०)	१।)
१०	कांकरोली दिग्दर्शन	(गुजराती)	
११	ध्यान मञ्जूषा	(हिन्दी)	।)
१२	श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुजी की प्राकट्य वार्ता	(हि. गु.)	२)
	श्रीवल्लभ वंशावली	(हिन्दी)	

१३ जगतानन्द	(हिन्दी)	१॥।)
१४ पुष्टिमार्ग	(गुजराती)	१।)
१५ अनन्याश्रय अने असमर्पित त्याग	,,	।)
१६ श्री हरिरायजी महाप्रभुजीनूँ जीवन चरित्र	,,	२)
१७ गोपी प्रेम पीयूष प्रवाह	,,	॥)
१८ समस्या पूर्ति— तीन भाग हिन्दी		॥) ।) ॥।)
१९ समस्या कुसुमाकर प्र० द्वि० कुसुम		=) ≡)
२० घनाक्षरी नियम रत्नाकर		।)
२१ सङ्गीत विश्व दर्शन		≡)
२२ कन्या शिक्षण		।)
२३ विद्या विभाग कांकरोली		।)
२४ गो० श्री बृजभूषणलालजी महाराज का चित्र		=)

प्राचीन वार्ता-रहस्य
तृतीय भाग

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सेठ पुरुषोत्तमदास कासी में रहते, तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं।

—:*:—

श्रीहरिरायजी कृत भाव प्रकाश

सेठ पुरुषोत्तमदास कों दामोदरदास संभरवारे को संग है। जब तांबे को पत्र बचाइवे को कासी गए ता दिनतें सेठकों श्रीआचार्यजी के दरसन की आरति भई। सो श्रीआचार्यजी पहली पृथ्वी परिक्रमा करि कासी पधारे तब सेठ ने मनिकर्निका घाट पर श्रीआचार्यजी के दरसन पाये। सो कृष्णदास सों पूछे:- श्रीआचार्यजी दछिन देस में कृष्णदेव राजा की सभा में मायावाद- खंडन किये हैं, सोई हैं? तब कृष्णदास मेघन ने कही यही हैं। तब सेठ पुरुषोत्तमदास श्रीआचार्यजी के सन्मुख जाइ दंडोत किए, बिनती करी। महाराज! कृपा करके सरन लीजे। कृपा करि घर पावन करिए। तब श्रीआचार्यजी दैन्यता देखि सेठ पुरुषोत्तमदास के घर पधारे। सेठकों, सेठकी बेटी रुक्मिनी को, सेठके बेटा गोपालदास आदि सबकों नाम सुनाए ब्रह्मसंबंध कराए। तब सेठनें बिनती करी, महाराज! अब हमकों कहा कर्तव्य है? तब श्रीआचार्यजी कहे, भगवत्

सेवा पुष्टिमार्ग की रीतिसों करो। सो सेठ के घर श्रीमदन-मोहन जी ठाकुर हते।

पास हजार दस पन्द्रह हजार रुपैया हवो सो घर बनाए। सो नींव में तें श्रीमदनमोहनजी ठाकुर निकसे। और द्रव्य बहुत निकस्यो, करोड़धुजीकहाए। साठ करोड़ द्रव्य पाये। सो पिता कछुक दिन श्रीमदनमोहनजी की पूजा करि देह छोड़े। पीछे सेठने पूजा बहोत दिन लों करी, द्रव्य बहोत कमाए। सो श्रीमदनमोहनजी को श्रीआचार्यजी ने पंचामृत स्नान कराइ पाट बैठाये, सेठ के माथे पधराए।

सो सेठ पुरुषोत्तमदास लीला में श्रीस्वामिनीजी की सखीहैं। इंदुलेखा इनको नाम है और सेठकी सेठ का आधिदैविक बेटो रुकिमिनी इन्दुलेखा की सखी मोदनी स्वरूप नाम है। और गोपालदास सेठ को बेटा, सो इंदुलेखा की सखी गानकला है। सो सेठ पुरुषोत्तमदास श्रीमदनमोहनजी की राजसेवा करते। बावन बीड़ी को नेग हतो। याकौ कारन यह है:-- जो लीला में बीड़ा अरोगाइवे की सेवा इंदुलेखा की है। तातें पुरुषोत्तम-दास ने बावन बीड़ा राखे, जो श्रीठाकुरजी के भावतें बीस और बत्तीसबीड़ा श्रीस्वामिनीजी के भावतें। याकौ आसय यह जो श्रीठाकुरजी कों बिस्वास प्रिय है। तातें बीसों बिस्वा निश्च-यात्मक दृढ विश्वास जताइवे कों बीस बीड़ा श्रीठाकुरजी के भावतें। श्रीस्वामिनीजी कों शृंगार प्रिय है, तातें जुगल रूप के सिंगार सोरह दूने बत्तीस भये। याप्रकार श्रीस्वामिनीजीकों प्रसन्न किए। या प्रकार कहि (यह जताए जो) जितनी सेवा सेठ पुरुषोत्तमदास करते, सो भावपूर्वक करते। सामग्री वस्त्र आभूषण हू में।

और मदनमोहनजी की सेवा श्रीठाकुरजी के भावतें अधिक श्रीआचार्यजी महाप्रभु के भावतें करतें तातें श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइकें श्रीमदनमोहनजी के दोऊ चरन स्याम दरसन कराए। ताकौ आसय यह जो– सर्वांङ्ग गौर, सो तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु कौ निजस्वरूप–श्रीस्वामिनीजी कौ श्रीअंगवर्ण। और चरन दोऊ स्याम, सो श्रीकृष्ण के श्रीअंगवर्ण। तामें चरन स्याम कौ अभिप्राय निकुंजादिक लीला में श्रीठाकुरजी दूसरे स्वरूप (श्री स्वामिनीजी) के चरन—आश्रित हैं। तातें श्रीठाकुरजी के भावतें श्रीआचार्यजी की सेवा दिखाए। या प्रकार सेठ पुरुषोत्तमदास पर अनुग्रह श्रीआचार्यजी किए।

सो श्रीमदनमोहनजी कों श्रीआचार्यजी ने पंचामृत स्नान कराइ पाट बैठारे, सेठ के माथें पधराए॥

वार्ता प्रसंग-१- और सेठ कासी मुख्य विस्वेस्वर महादेव, सो कासी के राजा हैं, तिनके दरसन कों कबहू नहिं जाते। सो एक दिन विस्वेस्वर-महादेव नें स्वप्न में सेठ पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो- गांव कौ नातो तुम नांहि राखत, तो वैष्णव कौ नातो तो राखो, कबहूं हम कों महाप्रसाद तो दियो करो। तब सबेरे सेठ पुरुषोत्तमदास सेवा सों पहोंचिकें महाप्रसाद कौ डबरा बीरा ले विस्वेस्वर महादेव के देवालय कों चले। तब गांउ के लोग सब आश्चर्य ह्वै रहे जो-- सेठ कबहू नांहि आवते सो आजु क्यों आए ? सो कितने लोग संग सेठ के चले। सो सेठ महाप्रसाद कौ डबरा, बीड़ा आगें धरे, श्रीकृष्ण-स्मरण करिके उठि चले। तब बड़े बड़े सैव ब्राह्मण हते

सो सेठ पुरुषोत्तमदास सों कहे, तुम दंडवत् नमस्कार नांहिं किए? श्रीकृष्णस्मरण करि उठि चले सो उचित नांही। तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही, हमारे इन के भगवत्-स्मरण को व्यौहार है। तुम पूछि लीजो। तुम सों विस्वेस्वर महादेव-जी कहेंगे।

सो उन ब्राह्मणन में एक ब्राह्मण महादेवजी कौ कृपापात्र हतो। सो उन ब्राह्मण सों महादेवजी ने कही। जो- हमने सेठ सों महाप्रसाद मांग्यो हतो। हमारे इनके भगवत्-स्मरन कौ व्यौहार ही है। तातें इन सों और कछु मति कहियो। ता पाछें बड़े उत्सव के पाछें महाप्रसाद विस्वेस्वर महादेव कों ले जातें।

भाव प्रकाश- यह कहिवे कौ अभिप्राय यह जो- सेठि पुरुषोत्तमदास अब सेवक भए तब इनकी आज्ञा में सिगरे लोग द्रव्य अर्थ रहें। सो महादेवजी ने जाने जो अब सिगरे अनन्य होंइगें। तो हमारो महातम हूं घटि जायगो, और भगवद् आज्ञा कलिकाल आयो, सो जीवन कों वहिर्मुख करने हैं।* और सेठ पुरुषोत्तमदास ने भक्ति फैलाई सो इनसों तो कछू चले नांही। तब महादेवजी ने यह उपाइ कियो, जो- सेठजी

---

*"त्वञ्च रुद्र! महा बाहो! मोहनार्थंसुरद्विषाम्।
पाषण्डाचरणं धर्मं कुरुष्व सुर सत्तम?।"
एसे पुराणादि में कहे हुए अनेक वाक्य अत्र स्मरणीय हैं।

सम्पादक

तो महाप्रसाद दंन जाँइ, ता करि सिगरे लोग महादेवजीके देवालय जान लागे। जो कोउ बरजे तो उत्तर करें- सेठजी सरिखे जात हैं तो हमारी कहा? महादेवजी बड़े भगवदीय हैं। या प्रकार जीव बहिर्मुख भए। परन्तु यह न जाने जो- सेठकों आज्ञा भई सो गए, परन्तु रुकमिनी गोपालदास कबहूं नाँहि गए, हम कैसे जांइ! परन्तु सबकों उत्तम फल नाँहि देनो है। तातें सेठ पुरुषोत्तमदास हू गए।

वार्ता प्रसंग- २- और एक दिन विश्वेश्वर महादेवजी ने कालभैरव कों, कोतवाल कासीके हते तिनसों- कह्यो, जो- सेठ पुरुषोत्तमदास वैष्णवन के घरतें अर्द्धरात्रिकों आवत हैं अबेरे सबेरे, सो सेठ पुरुषोत्तमदास के घर की चौकी दीजो। कोई छलवा, चोरादिक उपद्रव न करै। तब कालभैरव नित्य सेठ पुरुषोत्तमदास के घर की चौकी पहरा देते।

सो एक दिन वैष्णव के घरतें अर्द्धरात्रि समें सेठ पुरुषोत्तमदास आवत हे। सो घरके द्वार ऊपर तब काहुको देख्यो पाछें फिरिकें देखें तब पूछे जो-तू कौन है? तब कालभैरवने कहे जो मौकों महादेवजी ने तिहारे घर की चौकी पहरा देवे की कही है, सो नित्य चौकी देत हों। तब सेठ पुरुषोत्तमदास बोले नाँहीं किंवार दै घर में आए।

भाव प्रकाश- यह कहि कें यह जताए जो- सेठ एसे कृपापात्र भगवदीय हते। परन्तु वैष्णव के संग अर्थ आपु

चलाइ के जाते। तातें वैष्णव कौ संग अवस्य करनों। क हे तें श्रीआचार्यजी लिखे हैं " पोषकाभावे तु शिथिलम् " (अर्थात्) पोषक कौ अभाव होई तब मन सिथल व्है जाइ, भक्ति घटि जाइ। सो पोषण सत्संग तें होइ।

और कालभैरव कों महादेवजी राखे सो यातें, जो-- कासी में भूत छुलावा बहोत, तथा चोरादिक। सो महादेवजी विचारे जो- मोकों भगवान् ने कासी कौ राज दियो है, जातें या गांव में अन्याव होइ सो मेरे माथें। तातें भगवदीय कौ कछू बिगार होइ तो भगवान् मोपर अप्रसन्न होइ जाँइ। और सेठजी हमकों महाप्रसाद (हू) कृपा करिकें दिए, हमारों तो कछू लेत नांहीं। तातें इतनी चौकसी* तो करी चाहिए। तातें कालभैरव सों चौकी पहरा की कहे। (सो यातें) जो कदाचित् कछु बिगार हू होइ तो दंड कालभैरव के माथें। तातें आपु नाँही दिए।

वार्ता प्रसंग- ३- और एक दछिन देस कौ ब्राह्मण कासी में आयो सो सैवी महादेवजी कौ कृपापात्र हतो। जब महादेवजी दरसन देंइ तब वह ब्राह्मण खान-पान करे। सो एसें करत जन्माष्टमी कौ उत्सव आयो।

सो सेठ पुरुषोत्तमदास बड़े मंडान सों जन्माष्टमी कौ उत्सव करते। सो महादेवजी जन्माष्टमी के दिन सेठ पुरुषोत्तमदास के घर आए। सो नौमी कों नंदमहोत्सव पाछें दुपहर

---

* अन्य प्रतिओं में "चाकरी" शब्द भी है— सम्पादक

कों आए । तब ब्राह्मण कों दरसन भयो । तब वह ब्राह्मण नें विस्वेस्वर महादेवजी सों पूछे, जो– कालि तिहारो दरसन नांहि भयो । आजु दुपहर कों भयो, ताकौ कारन कहा ? तब महादेवजी ने कही– मैं जन्माष्टमी कौ उत्सव देखन कों (सेठ के घर) गयो हो, कालिह सवारे तें । सो आजु आयो । तब वह ब्राह्मण नें कही, जो– एसे सेठ कौन हैं ? जिनके घर तुम उत्सव देखन जात हो । तब विश्वेश्वर महादेवजी ने कही, जो– वे बड़े भगवद्भक्त हैं, हम सों श्रेष्ठ हैं ।

भाव प्रकाश– ताकौ यह अर्थ जो– सेठ पुष्टिमार्गीय भगवद्भक्त हैं, हम मर्यादामार्गीय हैं ।

तब ब्राह्मण ने कह्यो, जो– एसे भगवद्भक्त हम हूं को करो । महादेवजी ने कह्यो, सेठ पुरुषोत्तमदास के सेवक जाइ के होउ । वे नाम सुनावत है, उनकों श्रीआचार्यजी की आज्ञा है । तब वह ब्राह्मण ने कही, जो तुमहीं नाम सुनावो । तब महादेवजी ने कही, जो– हमारो दियो नाम फलेगो नांही ।

भाव प्रकाश– ताकौ अर्थ यह हमारो नाम दिए– मर्यादाभक्ति कौ अधिकारी होइगो । तातें पुष्टिमार्ग कौ अधिकार उनहीं कों है ।

तब वह ब्राह्मण सेठ पुरुषोत्तमदास के द्वार पर आइ सेठकों खबर कराई । तब मनुष्यन नें कही, एक ब्राह्मण

तुमसों मिलन आयो है । तब सेठनें कही जो- माथो खाली करन आयो होइगो ।

भाव प्रकाश- याको अर्थ यह जो- महादेवजी को भक्त है, नाम सुनेगो, परन्तु दृढ भक्ति बहुत दिन लों पचेंगें तब होइगी ।

पाछें सेठ सेवा तें पहोंचिकें बाहिर आए । तब वह ब्राह्मण नें दंडवत् कियो । तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही- तुम यह अनुचित क्यों करत हो ? हम क्षत्रिय हैं, तुम ब्राह्मण होइके दंडवत् करत हो ? तब उह ब्राह्मण नें कही, जो हमको नाम देहु, सेवक करो । तब सेठने कही हमतो काहू कों नाम देत नाहीं । सेवक नाहिं करत ।

भाव प्रकाश- ताको अर्थ यह नाम देवे वारे सेवक करवेवारे तो श्रीआचार्यजी महाप्रभु हैं । यह बात तो वह ब्राह्मण समुझयो नांहि ।

तब बहोत आग्रह किए परन्तु सेठ ने नाम नांहि दियो । तब महादेवजी पास फिरि आयो । कह्यो- सेठतो नाम नांहि देत । तब विश्वेश्वर महादेव ने कह्यो, जो- तू फेरि जाइकें सेठजी सों कहियो जो मोकों महादेवजी ने पठायो है । जो अबकें नाहिं फेरेंगे । तब वह ब्राह्मण फेरि आइकें सेठजी सों कहीं जो- मोकों महादेवजी ने पठायो है सो नाम देउ ।

भावप्रकाश- ताकौ यह अर्थ जो जीव पुष्टिमार्ग कौ है। तातें नाम देऊ।

तब सेठ ने उह ब्राह्मण कों नाम सुनाय हाथ जोरिकें जैश्रीकृष्ण कियो। तब वह ब्राह्मण ने कह्यो तुम मोकों नाम सुनाऐ, अब हाथ जोरिकें नमस्कार क्यों करत हो ? तब सेठ ने कही हम श्रीआचार्यजी की आज्ञातें नाम देत हैं। हमारे तिहारे गुरु श्रीआचार्यजी महाप्रभु हैं। जब श्रीआचार्यजी महाप्रभु पधारें तब उनके पास फेरि नाम सुनियो। हमारे तिहारे भगवत् स्मरण कौ व्यौहार भयो। पाछें वह ब्राह्मण अड़ेल में जाइ श्रीआचार्यजी के पास नाम निवेदन पाए। तब वह कछूक दिन रहि दछिन देस गयो। वैष्णव भयो।

भावप्रकाश- यह वार्ता में यह संदेह है जो महादेवजी जन्माष्टमी कौ उत्सव देखन सेठ पास आए। सो श्रीआचार्यजी संबंधी लीला सो गोपालदास गाए हैं- 'यह मारग श्रीवल्लभ-चरनो- जहाँ नहि प्रवेस विधि हरनो'।

यहाँ यह भाव जाननो जो सेठ के घर सारस्वत कल्प को पूर्णावतार की लीला है। तहां सगरी लीला है। सो महादेवजी कों कल्पाँतर की लीला, सो अंसकला है, ताकौ अनुभव भयो। यह कहि यह जताए जो श्रीआचार्यजी के ठाकुर हैं तहां पुष्टिमार्गीय वैष्णव कों पूर्ण पुरुषोत्तम के स्वरूप को दरसन होइ। अन्यमार्गी कों ऐसे दरसन न होई।

महादेवजी उह ब्राह्मण सों कहे जो सेठके सेवक होउ। तब पुष्टिमार्ग में अंगीकार होइगो।

वार्ता प्रसंग ४— और सेठ पुरुषोत्तमदास एक दिन मंदिर में बैठे हे, मंदिर वस्त्र करत हते। सो दूरितें गोपालदास देखिकें मनमें विचार कियो। जो-- अब सेठजी वृद्ध भए हैं। तातें अब मैं सेवा में तत्पर होंऊ। तब गोपालदास न्हाइ आए। तब सेठनें गोपालदास के मनकी जानि के बुलाए। बेटा आगे आउ। तब गोपालदास निकट आइकें देखे तो बीस पच्चीस बरस के सेठ हैं। तब सेठ पुरुषोत्तम-दास ने गोपालदास सों कही जो-- भगवदीय सदा तरुन हैं। परन्तु जो अवस्था होइ ताकों मान दियो चाहिए तातें आजु पाछें एसी मनमें मति लाइयो।

भावप्रकाश- याकौ अर्थ यह जो - गोपालदास के मन में यह आई जो - मैं तरुन हों सेठजी वृद्ध हैं अब मैं सेवा में तत्पर होउं। या बात में गोपालदास को बिगार जान्यो जो तू, हम कहा सेवा करेंगे ? श्रीआचार्यजी जासों कृपा करेंगे वासों ही श्री ठाकुर जी सेवा करावेंगे। सो तरुन कहा, वृद्ध कहा ? आजु पाछें एसी मन में कबहू मति लाइयो। सो या प्रकार मानमर्दन करि बेगिही समुझाए। काहे तें गोपाल-दास लीला में सेठकी सखी हैं तातें ए न समुझावें तो और कौन समुझावें ?

वार्ता प्रसंग ५- और एक समय सेठ दछिन में गए। तहां झारखंड में मंदार पर्वत है, ताके ऊपर मंदार मधुसूदन

ठाकुर हैं। सो उह पर्वत तें मनुष्य गिरै तो चोट न लगै अन-जानें। और जानि के सिगरे पाप कहि कें ऊपर तें गिरै तो देह छूटै। पाछे दूसरे जनम में कामना सिद्ध होय। एसो वा पर्वत कौ माहात्म्य लोक में प्रसिद्ध है।

तहां एक बेर श्रीआचार्यजी पृथ्वी परिक्रमा करत पधारे हे। तहां एक समय सेठ पुरुषोत्तमदास और एक ब्राह्मण वैष्णव विरक्त संग दोउ जने गए। सो उहां रात्रि व्है गई। तातें पर्वत पर सोइ रहे। अर्द्ध रात्र समय एक ब्राह्मण सिद्ध कौ रूप धरि श्रीठाकुरजी आपु आए। तब सेठ बोले नांही। उह वैष्णव सेठ के संग कौ पूछे, जो तुम कौन हो ? तब उन कह्यो जो - मैं ब्राह्मण हों या पर्वत पर रहत हों। तुम कौन हो ? तब वाने कही - हम श्रीवल्लभाचार्यजी के सेवक हैं। तब उन ब्राह्मण ने कही हमारे पास मणि है, तुम लेउगे ? तब वैष्णव ने कही, मणि में कहा गुण है ? तब उह ब्राह्मण ने कही जितनो द्रव्य चहिए सो मणि सों मिलै। तब उह विरक्त वैष्णव ने कही जो मैं कहा करूंगो ? जगदीस सेर चून देइगो। तातें सेठ पुरुषोत्तमदास गृहस्थ हैं, इनको बहोत खरच हैं, इनको देउ। तब ब्राह्मण ने कही जो– सेठ-जी कों जगावो। तब उह वैष्णव नें जगाइ के सेठजी सों कही, यह मणि लेउ। यासो जितनो द्रव्य चहिए तितनो होइगो।

तब सेठ पुरुषोत्तमदास ने कही, जो—हमारे तो मणि नांहि चहिए। तब उह सिद्ध ब्राह्मण मणि लेकै फिरि गयो। तब वैष्णव ने सेठजी सों कह्यो,तुम मणि क्यों न लिए ? तब सेठ ने कही तू क्यों न लियो ? पहेलेतो: तोकों देत हो। तब उह वैष्णव ने कही मैं विरक्त हों, मणि कहा करूंगो ? जगदीस सेर चून जहां तहां ते देइगें। तब सेठ ने कही तोकों सेर चून देइगें तो मोकों दस सेर हू देइगें। कहा जगदीस के कछु टोटो है ? सो ब्राह्मण बावरे ! मैं श्रीठाकुरजी कौ आश्रय छोड़ि मणि कौ आश्रय करूं ? पाछे सेठ अपने घर आए।

भावप्रकाश— यह वार्ता में बहोत संदेह हैं जो सेठ सेवा छोड़ि कें दक्षिण क्यों गए ? इनके कछु कामना तो नाँही सो दक्षिण में उहां मधुसूदन ठाकुर के दर्शन कों क्यों गए ? तहां कहत हैं, जो- सेठके मनमें यह आई जो दक्षिण में श्री आचार्यजी को जनम है। सो जनमस्थान के दर्शन करि आऊँ ताके लिए दक्षिण गए। तब मंदार मधुसूदन ठाकुर सेठजी सों कहे जो तुम कृपा करिकें या पर्वत में मेरे पास आओ तो या स्थल को पाप दूरि होय। काहेतें मेरे यहाँ अनेक पापी आवत हैं सो कोऊ पर्वततें महात्म्य सुनिकें गिरत हैं। सो उनके पाप बहोत भए हैं। तातें सिगरे तीर्थ गंगाजी आदि भगवदीय के आइबे को मार्ग देखत हैं*। तातें तुम या देस

---

* "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता"। तथाच "ते पुनन्त्युरु कालेन दर्शनादेव साधवः" श्रीभागवत।

में आए हो तो पावन करो। और तुम आवोगे तो या तीरथ को महात्म्य बढ़ैगो। निहारो तो कछु बिगरे है नाहीं प्रभु के आश्रयतें। या प्रकार मंदार मधुसूदन कहे। तब सेठजी उह परवत पर गए। तब मणि लेइके लुभ्याए। परंतु सेठजी निष्काम हैं इनकों कछु डर नांहीं। तातें जो एसे निष्काम होई वामें तीर्थ कों पवित्र करिवे को सामर्थ होय। तिनकों बाधक न परें। और सकामीकों तीर्थ हू बाधक हैं। सो यातें जो उह स्थल के महात्म्य तें पर्वत तें गिरे तब मनोरथ के फल पावें। यह कहि जताए, जो- मनोरथ कामना कछू वस्तु की कामना भई तब पुष्टिमार्ग सों गिरे। और निश्चय मणि न लिए ताको अभिप्राय यह जताए, जो- बिना मांगे (हू) कछूफल मिले ताके लिए मे (भी) बाधक अन्य संबंध होई तो कामनातें तो निश्चय अन्याश्रय होय। तातें सेठ नें उह विरक्त वैष्णवसों कही जो- 'बावरे' ताको कारन यह जो मणि आदि कछू फल देन आवें, तासों बोलनो नांहीं, आपुहि चल्यो जाइ। या प्रकार सेठके दृढाश्रय हतो।

वार्ता प्रसंग- ६- और एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभु कासी पधारे। सो सेठ पुरुषोत्तमदास के घर उतरे। तब सेठ पुरुषोत्तमदास के ठाकुर श्रीमदनमोहनजी कों पंचामृत स्नान कराइ आपु भोग धरि भोजन किए। तब दामोदरदास हरसानी नें श्रीआचार्यजी सों विनती करी, जो- महाराज! यह कहा? यहां पंचामृत ठाकुर कों न्हवाए? तब

श्रीआचार्यजी कहे जदपि यह हमारी आज्ञातें नाम देत है तऊ इतनी मर्यादा राखी चहिए।

भावप्रकाश- याको आशय यह जो- सेवक करें ताके सन्मुख सिष्य के पाप आवत हैं, सो गुरु सामर्थ्यवान होइ सो पाप कों जरावे। सो सेठ जदपि मेरी आज्ञातें नाम देत हैं, भगवदीय हैं तातें पाप कहा करें वाकों, परंतु तऊ मर्यादा सों सेव्य कों पंचामृत के न्हवाएतें सेठ के पंचतत्व को सरीर सुद्ध होय एक यह गौणभाव। और उत्तम भाव यह जो- सेठ श्रीमदनमोहनजी की श्रीआचार्यजी महाप्रभु के भावसों सेवा करत है। तातें श्रीआचार्यजी पंचामृत स्नान कराई, श्रीगोवर्द्धनधर रूप करि भोग धरत हैं। यह भाव जाननो।

वार्ता प्रसंग- ७- बहुरि एक दिन कासी के राजा के मनमें आई जो सेठ पुरुषोत्तमदाससों हम मिलिए। सो राजा गंगा पार रहत हतो। तहांते प्रातःकाल आयो। ता समय सेठजी छोटी परदनी पहरें गोबर संकेलत हते। तब सेठके लोग नें सेठसों कह्यो, जो- तुमसों मिलन कों राजा आवत हैं। सो आछे वस्त्र पहिरिकें गादी पर बैठो। तब सेठ कहे जो आवन दे। राजा कौ कहा डर है ? तब राजा आयो। तब सेठ गोबर भरे हाथ राजा के आगे आए। तब राजा चतुर हतो सो कहे सेठजी। तुम धन्य हो। या संसार में मान बडाई एक तिहारी छूटी है। तब सेठ नें कही हम गृहस्थ हैं, घर कौ काम कर्यो चहिए। तब राजा प्रसन्न होइ

के घर गयो। या प्रकार सेठकों प्रतिष्ठा की चाह रंचक हू नांहीं। और गाय की टहल, सो अपने घर कौ काम कहे।

भावप्रकाश- ताकौ आसय यह जो जैसे श्रीठाकुरजी की सेवा जेसें गाय की सेवा। यही घर कौ काम है। लौकिक वैदिक काम है सो बाहिर कौ काम हैं। या भांति तें सेठि ने कही।

वार्ता प्रसंग- ८- सो एसे सेवा करत जन्माष्टमी आई। तब श्रीआचार्यजी ने नंदरायजी के घर जन्म उत्सव भयो ता लीला के भावतें पालना नन्द महोत्सव किए। तब नंदरायजी, यशोदाजी, गोपी ग्वालसों रह्यो न गयो। सो साचात् पधारे। नंदमहोत्सव अनिर्वचनीय भयो। सो दर्शन सेठ पुरुषोत्तमदास कों, रुकमिणी कों, गोपालदास कों भए।

भावप्रकाश- काहेतें ये लीला संबन्धी पात्र हैं। पाछें श्रीआचार्यजी ने जसोदाजी गोपीग्वालसों कहे जो- या काल में तुम साचात् पधारे सो उचित नांही। तब सबनने कह्यो, जहां तुम साचात् स्वामिनी रूप व्है उत्सव करो तहां हमसों क्यों रह्यो जाइ? तब श्रीआचार्यजी नें कही जो (अबसों) हम सब तिहारे भेष धरावेंगे। तिनके भीतर व्है पधारियो। तब कहे जो आछो भेष सों पधारेंगे। ता दिनतें श्रीआचार्यजी नें भेष की रीति जन्माष्टमी पे किए। या प्रकार प्रथम ही जन्म उत्सव सेठ पुरुषोत्तमदास के घर कियो। ता पाछें

सेठ जह पुरुषेनात्तमदास नित्य श्रीमदनमोकों पालनें झुलावत । जन्म उत्सव के भावमें सदा मगन रहते ।

वार्ता प्रसंग- ९- और श्रीआचार्यजी के पास वादी बहोत आवें । सो वाद करत संझा व्है जाय। सो आपु के भोजन बिना किए वैष्णव महाप्रसाद लेइ नाही तब श्रीआचार्यजी पत्रावलंबन ग्रन्थ कारके एक कागद पर लिखि एक वैष्णव कों दिए । जो- विश्वेश्वर महादेवजी के देवालय में लगाइ भीति सों, यह कहियो- जितने पंडित शैव, ब्राह्मण वादी आवें सो संदेह होइ, सो यामें देखि लेउ । जो उत्तर न पावो तो श्रीआचार्यजी पास आइयो । तब वैष्णव 'पत्रावलंबन' ग्रन्थ ले जाइ महादेव के पास भींति में लगाइ, सिगरे माया वादी तो तहां आवें ही, तिनसों वैष्णव ने कही, जो संदेह श्री-आचार्यजी सों पूछनो होइ सो याकों बांचि लेउ । सो सबन को उत्तर मिल्यो । सब चुप व्है रहे । और कहे जो श्रीआचार्यजी ईश्वर हैं इतने छोटे ग्रन्थ में हजारन मायावादीन को निरुत्तर किए ।

भावप्रकाश- महदेवजो के पास लगाइवे को आसय यह है जो हमारो कियो तिहारे इष्ट महादेव कों प्रमाण है । तो तुमको जीतने कितनीक बात हैं । और इतने पर या काशी के राजा विश्वेश्वर हैं । उनके पास यह झगरो डारे हैं । खोटे खरे के महादेव साक्षी हैं । अब जो न मानोगे तो तुम को महादेव दंड देइगे । या प्रकार

म धरि गाडीवान सों कहे, बेगे गाडी पाछे कों घर कों हांकि तोकों एक रूपैया देउंगो। इहां श्रीमदनमोहनजी रुकमनी सों कहें, बेग तू उठि के न्हाइ के पूरी कर, सेठ साक लेकें आवत हें। तब रुक्मिनी ने कही, महाराज! सेठ तो गया को गए हैं। तब श्रीठाकुरजी ने कही, सेठ गया करि आयो, उनकी गया पूरण भई। तू उठि के पूरी बेगे करि, तब रुक्मिनी न्हाइ के, मेदा घर में सिद्ध हतो, सो पूरी करन लागी। पहर एक रात्रि गई हती। कछूक पूरी बाकी रही तब सेठ घर पर आई पुकारे। तब गोपालदास ने किवाड खोलि दिए। तब सेठ रुक्मिनि सों पूछे कहा समय है? तब रुकमनि ने कही पुरी करी है, साक नाहीं है। तब सेठजी ने कही में साक लायो हों। तब रुक्मिनी ने कही बेगे सँवारि देउ थोरी सी पूरी रही है। तब सेठजी और गोपालदास मिलिकें बेंगन सँवारि दिए। रुक्मिनी ने सामग्री सिद्ध करी। सेठहू न्हाइकें भोग धर तब सेठ गोपालदास सों कहे, दस पांच वैष्णव बेगे मिले सो लिवाइ लाउ। तब गोपालदास वैष्णवन को बुलाइ लाए। इतनें समय भयो भोग सराए। सेन आरती करि श्रीठाकुरजी कों पोढ़ाए। अनौसर कराइ वैष्णवन सों मिलिके महाप्रसाद लिए। पाछें उह मामा कछूक दिन में गया करि आयो। तब कह्यो तुम पाछेते क्यों फिरि आए। तब सेठने कही, मोकों कहा पूछत हो, मेरे घर में कछु काम हतो। तातें फिरि आयो।

भावप्रकाश— या वार्ता में यह सिद्धांत भयो जो सामग्री उत्तम देखिए तामें अपने प्रभु को स्मरण करिए। वाको बहोत मोल में (खरीदिये) झगरो न करिए। अपने सामर्थ प्रमान लीजिए।और भगवत सेवा रूप यह धर्म के आगें सिगरे वैदिक धर्म तुच्छ जानिए। तब श्रीठाकुरजी प्रसन्न होइ। सेठकी प्रीति अर्थ दूसरे फिरि सैन भोग श्रीठाकुर जी अरोगे। तातें स्नेह है सोई प्रभु प्रसन्नता कौ कारन है।

सो वे सेठ पुरुषोत्तमदास श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के एसे कृपापात्र भगवदीय हे। तातें इनकी वार्ता कौ पार नांही सो कहां तांई लिखिए। वैष्णव ६ (८४ मध्ये) (६६ मध्ये वैष्णव संख्या १२)

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक सेठ पुरुषोत्तमदास की बेटी रुकमिनी तिनकी वार्ता और ताकौ भाव कहत हैं—

भाव प्रकाश— ए रुक्मिनी लीला में श्रीस्वामिनीजी की सखी है इंदुलेखा, तिनकी सखी 'मोहिनी' है। श्री ठाकुरजी की सेवा में तत्पर है। मोहिनी जो आनन्द ताकी उपजावनहारी है तातें इनको नाम मोहिनी हैं।

वार्ता प्रसंग- १- सो एक समें श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की सरन रुक्मिनी आई। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ने वाकौ नाम सुनायो। ता पाछें निवेदन करवायो सो उह रुकिमिनी बड़ी कृपापात्र हती।

सो एक समय श्रीगुसांइजी कासी पधारे हे। सो तहां सूर्य ग्रहण भयो। तब श्रीगुसांईजी मणिकर्णिका घाट स्नान कों पधारे। तब रुक्मिनी (हू) श्रीमदनमोहनजी कों स्नान कराइ कें आपु मणिकर्णिका स्नान कों आई, सो श्रीगुसांइजी पधारे जानिके। सो स्नान करिकें वस्त्र पहिरे। तब एक वैष्णव ने श्रीगुसांइजी सों कह्यो महाराज। सेठ पुरुषोत्तम-दास की बेटी गंगास्नान कों आई है। तब श्रीगुसांईजी कहे, रुक्मिनी, आगे आऊ। तब रुक्मिनी आगे आई। तब श्रीगुसांईजी पूछे तू कितने दिनन में गंगास्नान कों आई है? तब रुक्मिनी ने कही, महाराज! चौबीस बरस पाछें गंगा स्नान कों आई हों। यह रुक्मिनी के बचन सुनिके श्रीगुसांईजी कौ हृदय भरि आयो। जो एसी सेवा में मगन है! जो गंगास्नान कौ अवकास नाहि है।

भाव प्रकाश— तहां यह संदेह होई, जो चौबीस बरस पहिलें तो गंगाजी स्नान कों आई हती। अब श्री गुसांइजी पधारे तातें आई परन्तु गंगास्नान या आग्रह तें रुक्मिनी सेवक भए पाछें आई नहीं। ऐसी सेवा में मगन हैं।

सो श्रीगुसांईजी रुक्मिनी कों देखि के कहते, जो-इनसों श्रीठाकुरजी उरिन कबहूं न होइगें।

भाव प्रकाश— ताको अर्थ यह जेसे रास पंचाध्याई में श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन सों कहे, जो- तिहारो भजन एसो

हैं जो मैं सदा रिनि रहुँगो। तेसे रुक्मिनी सों श्रीठाकुरजी रहेंगे। या भाव सों श्री गुसाँईजी ने कही।

वार्ता प्रसंग- २- और क्षत्रिय लोगन में बहुबेटी कासी में कार्तिक, माह, वैसाख गंगास्नान करतीं। सो रुक्मिनी नें सेठ पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो तुम कहो तो मैं कार्तिक स्नान करूँ। तब सेठने कही करो, जो चाहिए सो लेऊ। तब रुक्मिनी ने कहि घृत खांड मंगाइ देहु, मेदा तो घर में हैं। तब सेठ ने घी खांड मंगाइ दियो। सो रुक्मिनी पहर रात्रि पिछली सों उठि नित्य नेगतें अधिक सामग्री करै। सो मंगलातें राजभोग पर्यन्त अरोगावे। पाछें उत्थापन के पहर एक पहलें न्हाइ सामग्री करै। सो उत्थापन तें सयन पर्यंत अरोगावे। एसे करत कितने के दिन बीते। तब सेठनें रुक्मिनी सों पूछयो जो- कार्तिक न्हाते तो तोकों कबहू देख्यो नांहि, तू गंगाजी कौन समय न्हाति है? तब रुक्मिनी कही मेरे कार्तिक न्हाइवे को कहा काम है? जाकों कछू कामना होइ सो कार्तिक न्हाइ। मैं तो याही भांति न्हात हों। तब सेठ पुरुषोत्तमदास बहुत प्रसन्न भए।

भावप्रकाश— तहाँ यह संदेह होइ जो रुक्मिनी ने कार्तिक न्हाइवे को नाम लेके सेठ पास सामग्री क्यों लीनी अरोगाइवे को नाम लेती तो कहा सेठ सामग्री न देते? तहां कहत हैं, जो जैसे कुमारिकान को मन श्रीठाकुरजी

सों लाग्यो तब न्यारे मनोरथ (कियो) (सो) जसोदाजी सों कह्यो चहिए। तब जसोदा जी सों कहे, जो तुम कहो तो हम कात्यायनी देवी को पूजन करें, मार्गसिर महिना श्री जमुना जी स्नान। तब श्री जसोदाजी ने श्रीनंदरायजी सों कहि न्यारी सामग्री पूजन की घी खाँड सब कुमारिकान कों दिये। तब कात्यायनी देवी कौ मिस करी श्रीयमुनाजी कौ पूजन कियो काहेतें, श्री ठाकुरजी श्री यमुनाजी एक ही हैं। तातें "पुरुषोत्तमसहस्रनाम" में श्री आचार्यजी कहे हैं "कात्यानी व्रत व्याज सर्वभावाश्रिताङ्गनः"। कात्यायनी व्रत कौ व्याज जो मिस करि सर्व प्रकार को भाव सगरे अंग मे आवेश करि प्रभु को आश्रय कियो तैसे ही रुक्मिनी ने हू कार्तिक, मार्गसिर, माह, वैसाख इत्यादिक को नाम ले व्रज भक्तन के भाव पूर्वक सेवा करी यामें यह जताए जैसे व्रज भक्तन के भाव की खबरि काहुकों न परी तैसे रुक्मिनी के भाव की खबरि काहुकों न परी। और की कहा? सेठ पुरुषोत्तमदास हू रुक्मिनी के हृदय के भाव कों पहोंचि न सकते ऐसो अगाध हृदय हतो।

वार्ता प्रसंग- ३- बहुरि एक समय रुक्मिनी की देह असक्त भई। तब रुक्मिनी ने कह्यो, अब देह छूटे तो आछो। जा देह तें भगवान की सेवा न भई सो देह कौन काम की? पाछें भगवत् इच्छा तें देह छूटी तब काहु वैष्णव ने श्री गुसांइ जी सों कही महाराज रुक्मिनी ने गंगा पाई। तब श्रीगुसांई जी कहे जो एसे मति कहो। एसे कहो जो गंगाजी ने रुक्मिनी पाई।

भावप्रकाश— काहेतें जो गंगाजी किनारे तो अनेक जीव देह छोड़त हैं। परन्तु गंगाजी को एसो भगवदीय कहाँ मिले? या प्रकार श्रीमुखते कहे। ताको कारन यह जो- भगवदीय गंगाजी आदि तीरथ को पवित्र करत हैं। तामें नन्ददास जी नें (हू) पंचाध्याई में गायो है- "गंगादिकन पवित्र करन अवनि पर डोलें"। भगवदीय कौ प्रागट्य जीवन के उद्धारार्थ ही है। जैसे भगवान् को प्रागट्य तेसे ही भगवदीय को प्रागट्य हैं सो 'पुष्टि प्रवाह मर्यादा' ग्रंथ में श्री आचार्यजी भगवदीय को स्वरूप लिखे हैं।

"तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्ना एव न संशयः।
भगवद्रूप सेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत ॥ १२ ॥
स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रिया सु वा ॥ १३ ॥

पुष्टि मार्गीय जीव यह संसार के जीवन ते भिन्न हैं या में संशय नाहीं। भगवान को रूप ही है। भगवान की सेवा ही के अर्थ जगत में पुष्टि धर्म प्रगट करिवे के लिए जन्मे हैं। भगवान के सरूप में, भगवान के अवतार में, भगवान के जेसे गुन हैं, भगवान की जैसी क्रिया हैं, तेसे ही भगवदीय में लच्छन है। तातें भगवान में अरु भगवदीय में तारतम्य नाही हैं। या प्रकार श्री गुसांईजी भगवदीय के गुन सब रुक्मिनी में कहे।

सो यह रुक्मिनी श्रीआचार्यजी महाप्रभुन की सेवक एसी कृपापात्र भगवदीयही। तातें इनकी वार्ता को पार नाही सो कहां ताई लिखिए। (८६ मध्ये वैष्णव)

अब श्रीआचार्य जी महाप्रभुन के सेवक सेठ पुरुषोत्तम दास के बेटा गोपालदास। तिनकी वार्ता।

भाव प्रकाश— सेठ पुरुषोत्तमदास लीला में इन्दुलेखा श्रीस्वामिनीजी की सखी हैं। ताकी सखी 'गायनकला' सो ये हैं। व्रजभक्तन को विरह संयुक्त गायन तिनकी कला गोपालदास में झलकत है। यह कहि यह जनाए जो गोपालदास विरह में सदा मगन रहते।

वार्ता प्रसंग- १- सो गोपालदास सों श्रीमदनमोहन जी सानुभाव हते, सो जो चहिए सो मांगि लेते। ऐसे सदैव कृपा करते। और गोपालदास कीर्तन बहुत करते। सो एक समय होरी के दिनन में गोपालदास कों बहोत विरह भयो। होरी के भाव संयोग रस की विस्मृति व्है गई। तब नित्य जैसें व्रजभक्त वेनुगीत जुगलगीत गावत हैं ता भावसों दोइ कीर्तन 'ललना' कहिकें गाए।

भावप्रकाश— सो ललना को अर्थ यह जो व्रजकी ललना या प्रकार विरह में गान करत हैं।

सो ललना गावत ही श्रीठाकुरजी लीला सहित दर्शन दिए। तब गोपालदास बलिहारी लिये। तातें गाए, जो "मदनमोहन के वारनें बलि बलि दासगोपाल।

वार्ता प्रसंग- २- सो कितनेक दिन पाछे गोपालदास की देह बहोत असक्त भई। तब भगवत् नाम कौ उच्चार करते। तब श्रीमदनमोहन जी आप हुंकारी देते एसी कृपा करते। एसे करत रात्रि कों गोपालदास कौं नींद आवती फेरि चोंकि कें विरह में पुकारते। श्रीमदनमोहनजी। तब मंदिर सों श्रीठाकुरजी कहते क्यों पुकारत हो? मैंतो तेरे निकट हों। तब गोपालदास कहते, महाराज! आपु क्यों जागत हो? मेरो तो पुकारिवे को सुभाव परयों हैं। तब मदनमोहनजी कहते मोसों तेरो विरह सह्यो नांहि जात। तातें तेरो समाधान करत हुं। या प्रकार गोपालदास मंदिर कौ अरु चोक कौ ताला लगाइ चोखटि पर माथो धरि के, एक वस्त्र बिछाइ विरह में परे रेहतें। सरीर के सुख की खबरि ही नाहि रहति। तातें विरह के कीर्तन बहुत गाए हैं।

और श्री आचार्यजी के ग्रन्थ सुबोधिनी निबंध श्री गुसांई जी के रहस्य ग्रन्थ सो सब गोपालदास अनोसर में देख्यो करते। समय पर भगवत् सेवा करते। व्यौपार बनिज लौकिक वैदिक सर्व त्याग करि लीलारसमें मगन रहतें। सो श्रीगुसांईजी गोपालदास ऊपर बहोत प्रसन्न रहते। कहतें जो सेठ पुरुषोत्तमदास को परिवार एसो ही चाहिये। विरह की दसा अनिर्वचनीय है। तातें गोपालदास की वार्ता

कौ विस्तार नाहि किए । सेठ पुरुषोत्तमदास के परिवार सहित वार्ता एक । (या प्रकार वैष्णव ग्यारह भए परन्तु परिवार सहित वार्ता एक गिनवे तें ८४ मध्ये वैष्णव छ और ६६ मध्ये वैष्णव १४ भए)

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक रामदासजी सारस्वत ब्राह्मण पूरब में रहते तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं ।

भाव प्रकाश— सो ए रामदासजी लीला में राधा सहचरी की सखी है । 'प्रेम मंजरी' इनको नाम है । ए कुमारीका के जूथ में है ।

सो रामदास के पिता के पास द्रव्य बहोत हतो । परन्तु पुत्र नाँहि हतो । सो सूर्य की उपासना बहोत करी । तब सूर्य प्रसन्न होइ के एक पुत्र दियो । सो रामदास जी बरस आठ के भये तब पिता ने विवाह रामदास को कियो । पाछें देह छोड़ी । सो रामदास को एक मर्यादा-मार्गीय वैष्णव को सतसंग भयो । तब मर्यादा मार्गीय वैष्णव ने कही, कोई तीरथ करे हो ? तब रामदास जो कहे पिता की देह छूटी, अब घर छोडि के कैसे जाँइ ? तब वा मर्यादा-मार्गीय वैष्णव ने कही, भलो ! गंगासागर तो तिहारो निकट है । यहां तो न्हाइ आवो, चलो मैं संग चलूं । तब रामदास संग चले । तब रामदासजी उह मर्यादामार्गीय के संग गंगासागर जाइ नहाए । तीन दिन तहाँ रहे । चौथे दिन तहाँ रहे न्हाइ के, गंगा सागर के किनारे रसोई करन के लिए थोरी सी रेती डारे । तब लालजी को स्वरूप उहाँ तें निकस्यो सो रामदास जी गंगासागर के जल सों न्हवाइ उह मर्यादा-मार्गीय वैष्णव सों कहयो । मोको भगवत्स्वरूप प्राप्ति भयो ।

तब वह मर्यादा मार्गीय वैष्णव ने कही, तिहारे बड़े भाग्य हैं। तुम इनकी पूजा करियो, परंतु तुम सेवक काहू के हो! तब रामदासजी बरस सोरह के हते। सो कहे, मैं सेवक तो अबही नाहीं भयो। तब मर्यादामार्गीय वैष्णव ने कह्यो, मैं तुमको सेवक करों जो तिहारो मन होय। तब रामदास जी कहे घर जाइ के स्त्री सहित सेवक होउंगो। तब उह मर्यादामार्गीय वैष्णव ने कह्यो, जो- श्रीवल्लभाचार्यजी, सो (जिनने) दक्षिण में कासी में मायावाद खंडन किये है सो पुरुषोत्तम पुरी में पधारे हैं। उनकी सरन तोकों मिले तो तेरे बड़े भाग्य है। तब यह सुनतही रामदासजी श्रीठाकुरजी कों लेके घर कों बेगे चले। उह मर्यादामार्गीय तो गंगासागर ऊपर रह्यो। सो चौथी मजलि करि अपने गाम के बाहर एक बगीचा है तहां रामदास मध्याह्न समें आये। सो श्रीआचार्यजी हू पुरुषोत्तम पुरी सों एक दिन पहले के आइ उतरे हते। तब श्री आचार्यजी रामदास सों कहे, तुमकों गंगासागर में भगवत् सरूप कैसो प्राप्त भयो है! सो हमकों दिखाउ। तेरो नाम रामदास है। तब रामदास चक्रत होइ रहे। जोमैं अबही चल्यो आवत हों, काहू कों भगवत् सरूप दिखायो नाहीं। तातें ये महापुरुष है। तब पास वैष्णव हे, तिनसों पूछे ये महापुरुष को नाम कहा है? तब कृष्णदास मेघन ने कही श्री वल्लभाचार्यजी सिगरें प्रसिद्ध हैं। मायावाद खंडन करि भक्तिमार्ग को स्थापन किए हैं। तब रामदास साष्टांग दन्डवत करि बिनती किये, महाराज! मेरे घर पधारिये। तब श्रीआचार्यजी कहे, तुम सारस्वत ब्राह्मण हो; तिहारे क्षत्री सों खानपान को व्यौहार कैसे छूटेगो? तब रामदासजी कहे, आपु की कृपा तें मेरे द्रव्य बहोत है। मैं तो काहू सों जल को व्यौहार हू न राखोंगो। आपु आज्ञा करोगे तैसें करूंगो। तब श्री

आचार्य जी प्रसन्न होइ के रामदास के घर पधारे तब स्त्री सहित रामदास को नाम समर्पन कराए। श्रीठाकुरजी को पंचामृत सों स्नान कराई पाट बैठारें। श्रीठाकुरजी को नाम श्रीनवनीयप्रियजी धरें। पांच रात्रि रामदास के घर रहि के सगरी रीति सेवा की बताए, आपु पृथ्वी परिक्रमा को पधारें।

वार्ता प्रसंग १ — सो रामदासजी अष्ट प्रहर अपरस में रहते। जलपान बीड़ा अपरस में लेते।

भाव प्रकाश— यह कहि यह जताए जो - लौकिक काहू सों बोलते नांही। व्यौहार बनिज कछू न करते, स्त्री संग हू छोड़े।

या प्रकार भगवत् सेवा करते। श्रीठाकुरजी को नेगहू बहोत हतो। द्रव्य हू बहोत हतो। सो कछुक दिन में द्रव्य थोरो सो आइ रह्यो।

भाव प्रकाश— ताको अभिप्राय यह, जो - रंच द्रव्य को अहंकार हतो। सो अन्याश्रय श्रीठाकुरजी कों छुडाय दैन्य करनो है। तातें द्रव्य थोरो सो रहयो।

तब रामदास ने बिचार्‍यो, जो - कछू द्रव्य को उपाइ कर्‍यो चहिए। तब पूरव देस में पटबस्त्र बुनावत हैं तिन-कों तांती कहत हैं। सो तांतीन कों ब्याज द्रव्य दियो तो ब्याज बहोत आवन लाग्यो। तब रामदासजी के मन में

कछुक हरख भयो । ताते श्रीठाकुरजी आज्ञा किए , जो - तू मोकों तांतिन ऊपर राख्यो ?

भाव प्रकाश— ताकौ आसय यह , जो - मैं भाव प्रीति सों रहत-हों सो पहले द्रव्य पर राख्यो , जो द्रव्य घट्यो तब ब्याज पर राख्यो , जो तांती सों ब्याज आवै । तामें मेरी सेवा ब्याज को द्रव्य महा हीन, द्रव्य को मैलि सो वासुं करे सो ता पर मैं कैसें रहूंगो ।

तब यह आज्ञा सुनि के रामदास चौंकि परे ।

भाव प्रकाश— सो यह जो - हाय हाय । मैं बुरो काम कियो । अब भगवत् इच्छा होइगी सो सही, परन्तु एसो कार्य कबं हूं न करनो ।

तब तांतिन पास गए। कहे मेरो सगरो द्रव्य देहु । तब तांतिन ने कही तुम कों ब्याज दिए जात हैं तो द्रव्य कहा देऐ ? कहा थोरे दिनन में (ही) मांगन लागे ? तब रामदास जी कहें मोकों लरिका साथ काम पर्यो है, लरिका कहे सो करनो ।

भाव प्रकाश— यह कहि यह जताए , जो - बालक कौ ख्याल बिरुद्ध है । कोई खिलोनां कों ऊंचे बैठारे , काहू कों नीचे बैठारे । काहू को फोरि डारे । सोई प्रभु कौ सुभाव कर्तुं , अकर्तुं , अन्यथा कर्तुम् सर्व सामर्थ्य , जो मन में आवे सो करें । यह सिद्धांत कहे । परन्तु तांती जाने कोई बालक होइगो ।

सो सिगरो द्रव्य भेलो करिके रामदास जी कों दिए। सो घर लाए। सेवा करन लागे। सो कछूक दिन में सिगरो द्रव्य उठि गयो।

भाव प्रकाश— तब द्रव्य को आश्रय तो छूट्यो। परन्तु पहले को गर्व ताकौ बीज है सो श्रीठारकुजी अब दूरि करेंगे।

तब रामदास जी एक बनिया के इहां उधारे उचापति करन लागे। तब माथे रिन भयो। बनिया इनकों टोके। तब वा बनिया की उचापति छोडि और बनिया के इहां उचापति करन लागे।

तब एक दिन उह बनिया ने बहोत तगादो करयो। और कह्यो जो अब मेरे इहां उचापति नांहि करत तो मेरो दाम चुकाई देहु। तब वाकों बहोत कहि सुनि के विदा किए। परन्तु लज्जा के मारें बहोत दुःख भयो।

भाव प्रकास— तामें पिछलो अहंकार दोष दूरि भयो।

तब श्रीठाकुरजी रामदास को रूप करि उह बनियां कौ करज सब चुकाइ दिए। रूपैया १००) अधिक दै अपने हस्त सों रामदास के जमा लिखि आए। रामदासजी को दुख सह्यो न गयो।

भाव प्रकाश— जो मेरे लिए इन इतनो दुख पायो है

यातें श्रीठाकुरजी करज चुकाए। परन्तु सौ रूपया अधिक धरे ताको कारन यह जो अधिक धरे तें कदाचित द्रव्य संबंन्धि प्रसन्नता गर्व होइ तो पुष्टिमारगीय फल न होय दास भाव जात रहै। श्री ठाकुरजी करज चुकाए। रामदास बैठे रहे। तातें थोरो सो रूपैया १००) धरें। यह परीक्षा अर्थ। और कछू दूसरे बनिया को करज हू भयो है। कछू खरच के लिए।

पाछें एक दिन रामदास का वैष्णव बुलावन कों आए। तिनके संग रामदासजी चलें। सो उह बनियां की हाट आगें होइकें निकसे। सो उह बनियां की नजर बचाइ आनाकानी देई के निकसे जो यह मांगेंगो। सो बनियां ने रामदास जी कों देखें। और बिचारयो जो- ये नजर बचाइ कें यातें आगें निकसे, जो - मैं इनसो तगादो बहोत कियो है। तब बनियां रामदासजी के आगे आइ पांवन पर्यो। कह्यो मेरे अभागि जो तुम उचापति अपनी हाट सों नांहि करत। परन्तु सौ रूपया अधिक धरें हैं सो तो लेजाउ। तब रामदासजी ने कह्यौ मैं पाछें आऊंगो। अब काम जात हों। तब बनियां हाट पर आयो। रामदासजी नें अपने मन में बिचार कियो जो - मैं तो याकों कछू द्रव्य दियो नांहि। तातें मति कहुं श्रीठाकुरजी याकों दिए होंइ।

सो वैष्णव के इहां जाइ कछू छुवा छाई कौ काम हतो सो बताइ पाछे रामदासजी उह बनियां के हाट पर आइ

कहैं, अपनो लेखो निकार। तब बनियां ने कही, तुम लेखो चुकाइ रुपैया १००) अधिक धरि अपनें हाथ सों लिखि गए हो, फेरि देखि लेहु। सो बही में श्रीठाकुरजी के हस्ताक्षर देखे, तब चुप करि रहे।

तब घर में आइ बिचारे जो - अब घर में रहनो नांही। चाकरी करूंगो।

भावप्रकाश— ताकौ कारण यह जो घरमें रहौं तो श्रीठाकुरजी कों श्रम होय द्रव्य खानो परें; स्त्री की प्रीति साधारण है। तातें यह खायगी।

तब ऐक घोरा लिए। हथियार बांधि चाकरी करन प्रागमें आए। तब जलपान बीड़ा बिना अपरसमें लेन लागे।

भावप्रकाश— ताकौ कारण यह जो कछू अपरस कौ अहंकार हतो, जो और सों एसी अपरस नांहि बनत सोउ श्रीठाकुरजी छुडाई अहंकार मिटाए। और यह जताए जो एसी अपरस कौन कामकी जामें श्रीठाकुरजी कों श्रम करनो परै।

पाछें एक दिन रामदासजी प्रागमें अडेलमें श्रीआचार्यजी महाप्रभु के दरसन करन आए। सो पांचों कपरा पहरि हथियार बांधि दंडवत् किए। तब श्रीआचार्यजी रामदास सों देखिकें कहे, धन्य है। रामदास तू धन्य है। तब वैष्णव पास बैठे हैं सो कहन लागें, महाराज! अब याकों धन्य क्यों

कहत हो ? याकी अपरस तो छूटी, सिपाहीन में रहत है, हथियार बांधत हैं ? तब श्रीआचार्यजी कहे, यह धन्य है। श्रीठाकुरजी कों श्रम नांहि करावत है। तातें या समान धीरज काहूकौ नांही, यह श्रीमुखतें कहे।

भावप्रकाश— ताकौ कारण यह जो- कहा बहोत अपरस सों कार्य होत है ? पुष्टिमार्गीय धर्म बहोत कठिन है। द्रव्य सिगरो गयो, रिन माथे भयो, परन्तु धीरज नाँही छूट्यो। सो कहा जो मन श्रीठाकुरजी में रह्यो। हृदय के भीतर चिंता रूप कष्ट नांहि भयो। पाछें श्रीठाकुरजी रिन चुकाए। सो मनमें प्रसन्न न भयो। चाकरी कौ कार्य कियो। अब दैन्यता याकों भई है, मन श्रीठाकुरजी में है। या आसयतें श्रीआचार्यजी धन्य कहे।

वार्ता प्रसंग- २- और श्रीआचार्यजी के द्वार आगे एक खाड़ा हतो। सो आपु न्हाइवे कों पधारें, तब कहें यह खाड़ा अजहूं भरयो नांही है। यह कहिकें आपुतो श्रीयमुनाजी स्नान कों पधारे, सिगरे वैष्णव खाड़ा भरन लागे। तब रामदासजी एक बड़ो टोकरा ले जहां तांई श्रीआचार्यजी न्हाइ के पधारें तहां तांई में खाड़ा पूरि बराबर धरती करि दिए। तब श्रीआचार्यजी आपु रामदास कों देखे खाड़ा भरते, सिगरे कपड़ा धूरि सों भरे देखिके, फेरि श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइ के कहे, रामदास धन्य है।

भाव प्रकाश— सो यातें जो और वैष्णव आछे कपरा उतारी एक धोती पहरि खाड़ा भरें। रामदास श्री-आचार्य जी की आज्ञा सुनि के परम भाग्य सेवा मानी खाड़ा भरयो सिपाइपनेकी लाज सरम सब छोड़ी। ता पर श्री-आचार्यजी बहोत प्रसन्न भए। जो-या प्रकार भगवत् सेवा में प्रतिष्ठा मन में न आवे, छोटी मोटी हीन सेवा भाग मानि के करनो। यह सिद्धान्त जताए।

फेरि रामदास जी बरस एक में द्रव्य बहोत कमाइ घर आए। पाछे भली भांति सों सेवा करन लागें।

भाव प्रकाश—सो श्रीठाकुरजी कों धीरज देखनो हतो। पाछें द्रव्य की कहा है। जो चाहिए सो सब सिद्ध है।

वार्ता प्रसंग ३—पाछे एक दिन स्त्री ने कही तुम दूसरो व्याह करो तो संतति होइ।

भाव प्रकाश—ताकौ कारण यह जो-स्त्री कों रामदास के हृदय के अभिप्राय की खबरि नाहीं। तातें जान्यो जो-मोसों राजी नहीं हैं, तो दूसरो व्याह करो। व्याह करें एक पुत्र होइ।

तब रामदास नें कही जो मोकों पुत्र की इच्छा नहीं है। तब स्त्री ने कही-मेरे एक पुत्र की इच्छा है। तब रामदास ने कही, जो तिहारे इच्छा है तो श्रीनवनीतप्रियजी की सेवा

बालभाव सों कर। जैसे खानपान सों लड़ावत हैं। तिहारो मनोरथ पूरन होइगो। पाछे कछुक दिनन में पुत्र भयो।

भाव प्रकाश—सो रामदासजी ने तो भाव रूप अलौकिक बात कही, जो श्रीठाकुरजी कों बालभाव सों लड़ावोगी तो पई बालक तिहारे होइगें। जसोदाजी के सौभाग्य कों पावेगी। सो तो स्त्री उत्तम अधिकारी होइ तो समुझे। तातें पुत्र की कामना सहित श्रीठाकुरजी की बाल-भाव सों सेवा करी। सो श्रीठाकुरजी ने पुत्र दियो। परन्तु रामदासजी के फल कों नहि पायो। रामदास कों कबहू लौकिक कामना में मन न भयो। तातें श्रीआचार्यजी प्रसन्न रहते। तातें रामदास के भाव की कहां तांइ कहिये।

सो रामदास श्रीआचार्यजी महाप्रभु के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते सो इनकी वार्ता कौ पार नहीं सो कहां तांई लिखिये। वैष्णव ७ (८४ मध्ये) (६६मध्ये वैष्णव१५भए)

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक गदाधरदास कपिल सारस्वत ब्राह्मण कड़ा में रहते तिनकी वार्ता और ताकौ भाव कहत हैं—

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश—

सो गदाधरदास मकरस्नान कों तीर्थराज प्रयाग बरस के बरस जाते। सो एक समय गदाधरदास प्रयाग में रहते। तहां श्रीआचार्यजी पधारे। सो पंडित सब श्रीआचार्य जी सों चर्चा करन आवते। सो गदाधरदास कौ काका प्रयाग रहतो, तहां गदाधरदास उतरते। सो गदाधरदास कौ काका पण्डित हतो, परन्तु सैव हतो। सो काका ने

गदाधरदास सों कही, श्रीवल्लभाचार्यजी पधारे हैं । तिनसों कछू सन्देह पूछनो है, सो मैं जात हों । तब गदाधरदास कहे, जो मैं हूं चलूंगो, सो दोऊ आए । तब गदाधरदास के काका ने श्रीआचार्य जी सों पूछ्यो, जो महाराज ! ठाकुर तो एक है परन्तु वैष्णव सम्प्रदाय में न्यारे न्यारे क्यो मानत हैं ? कोई कृष्ण कों, कोई राम कों, कोई नृसिंघ, कोई नारायण आदि, तामें निश्चय कौन ठाकुर ? तब श्रीआचार्यजी कहे जैसे चक्रवर्ती राजा कौ राज तो सगरी पृथ्वी पर, और राजा देस देस के गाँव गाँव के, सोऊ राजा कहावें, परन्तु चक्रवर्ती के आज्ञाकारी । तैसे ही पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सो सर्वोपरि । और अवतार अंस कला करिके होइ, सब श्रीकृष्ण के आज्ञाकारी । ठाकुर सब कों कहिए । तब गदाधरदास कौ काका चुप करि रह्यो । गदाधरदास दैवी जीव तिनके मन में सिद्धांत बैठि गयो । जो श्रीआचार्यजी की सरन जइए तो श्रीकृष्ण की प्राप्ति होइगी । तब गदाधरदास ने श्रीआचार्यजी कों दण्डवत प्रणाम करि बिनती किये, महाराज ! सरन लीजिए । मैं संसार में बहोत भटक्यो । तब श्रीआचार्यजी ने कही, जो तुम अपने काका कों तो पूछो । इनकौ चित्त दुख पावै तो सेवक काहे कों होउ ? तब गदाधरदास के काका ने कही, महाराज ! हमारे तो गायत्री मंत्र सों काम है, और तो हम जानत नाहीं, गदाधरदास की ए जाने । ना हम हां कहें, ना हम ना कहें । तब गदाधरदास ने कही, अब मैं आप कौ दास भयो । अब संसारी जीव सों व्योहार मेरे नाहीं है । तातें मैं आपु के सरन आयो हों, कृपा करिके सरन लीजिए । और यह बहिर्मुख कब कहेगो जो - तू सेवक होउ । या प्रकार गदाधरदास के बचन सुनिके गदाधरदास कौ काका उहां तें उठि बाहर आइ ठाढो भयो ।

तब श्रीआचार्यजी गदाधरदास के ऊपर बहोत प्रसन्न भए। कहे, बिना सेवक ऐसी टेक है तो सेवक भये, भलो वैष्णव होइगो। तब आचार्य जी कहे जा त्रिवेणी न्हाइ आव। तब गदाधरदास न्हाइ के अपरस में आए। तब श्रीआचार्य जी ने नाम सुनाइ ब्रह्म सम्बन्ध करायो। पाछे गदाधरदास ने बिनती कीनी महाराज अब मोकों कहा कर्तव्य है? सो आज्ञा दीजे। तब गदाधरदास सों श्रीआचार्यजी कहे, जो तुम भगवत्सेवा करो। स्वरूप कहूं ते लावो। तब गदाधरदास ने बिचारयो जो एक स्वरूप ये मेरे काका के घर है, सो कैसे मिले? मैं तो या बहिर्मुख सों बोलत नाही हों। यह बिचार करत बाहर निकसे, माला तिलक करिके। सो गदाधरदास के काका ने पूछो जो-सेवक भयो सो भली करी परन्तु मेरे घर तो चलो। तब गदाधरदास ने कही मोकों तिहारे घर में ठाकुर हैं सो देउ तो मैं चलों। तब उन कहीं जो ले जाउ। मेरे ठाकुर सों कहा काम है? तब गदाधरदास काका के संग वाके घर गये, श्रीठाकुरजी मांगे। तब उन कह्यो खानपान तो करो, दुपहर भयो है। श्रीठाकुरजी पाछे ले जैयो। तब गदाधरदास ने कही अब हमारे तिहारे जल—व्यौहार नाहिं। श्रीठाकुरजी देउ फेरि तुम श्रीठाकुरजी सों काम न राखो तो देउ। तब काका ने कहा, हम सैव मार्गीय हैं। हम सों ठाकुर सों कहा? हम तो महादेवजी कों जानें। तातें बेगे ले जाउ।

श्रीठाकुरजी गदाधरदास के काका कौ मन यातें फेरे जो। भगवदीय जाको घर छोड़े तहाँ श्रीठाकुरजी हू न रहें। यातें बेगि दिए। तब श्रीआचार्यजी पञ्चामृत स्नान कराइ श्रीमदनमोहनजी नाम धरयो। गौर स्वरूप हैं। तब तीन दिन गदाधरदास श्रीआचार्य जी पास रहे। सेवा की सिगरी रीति सीख सो श्रीआचार्यजी "भक्तिवर्द्धिनी" ग्रन्थ किए,

ताको व्याख्यान किए । तामें यह कहे जो- "अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः । व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत्सदा ।" तामें मुख्य सेवा अव्यावृत्त होय यह कहे । तासों उतरती व्यावृत्त कहे । हरि में मन राखे । यह सुनत ही गदाधरदास ने सङ्कल्प किए जो-व्यावृति कछू न करनी । पाछे श्रीआचार्यजी महाप्रभुन सों बिदा होइ ओरछा वे अपने घर आए । सो इनको ब्याह तो भयो न हतो, माँ बाप हू न हते । इनहू की अवस्था बरस तीस की हती । सो सगे सम्बंधीन सों कहे अब तुम और घर में जाइ रहौ, मैं वैष्णव भयो । मेरे तिहारे जल-व्योहार नाहीं । तब और घर में जाइ रहे । गदाधरदास सिगरो घर खाली करि सेवा श्रीमदन-मोहनजी की प्रीति सों करन लागे ।

वार्ता प्रसंग १—सो गदाधरदास कों श्रीमदन-मोहनजी सानुभावता जतावते । आगे जजमान के घर जाते, जो चहिये सो लै आवते । वैष्णव भये पाछें अव्यावृत से रहते । सो सब ठौर कौ जानो छोड़ दियो । जो आवे तामें निर्वाह करें । चित्त मानसी सेवा फलरूप में इन को लग्यो । "चेतस्तत्प्रवणं सेवा" या भाव में मगन रहें । तनुजा, वित्तजा जो बने सो करें । बहोत संग्रह करे नांही । जो आवे ताकी सामग्री करि श्रीमदनमोहनजी को भोग धरें । वैष्णव कों महाप्रसाद लिवाइ देते । या प्रकार त्याग पूर्वक रहते ।

सो एक दिन भगवद् इच्छा तें जजमान के घर तें कछु आयो नाहीं ।

भाव प्रकाश--ताकौ कारण यह जो श्रीठाकुरजी ने इनकी परीक्षा लिए। जो अव्यावृत्त को संकल्प तो होनो सहज ही है परन्तु न मिलै तब धीरज रहै यह महा कठिन है। तातें कछू न आयो।

तब मंगला में जल की लोटी भोग धरे। सिंगार में, राज-भोग में जल ही धरें। पाछे उत्थापन में सेन पर्यन्त जल ही धरें। परन्तु उधारो न लिए।

भाव प्रकाश--काहे तें यह व्यौहार हैं। और उधारो लेय जहाँ ताँई वाकौ द्रव्य न देय तहां ताँई वाकी सेवा है। इनकी नाहीं। और काम्य कौ प्रमान नाहीं। उधारो लियो, देह छूटिजाय तो रिन माथे रहै, जन्म लेनो होइ। यह शास्त्र में कहे हैं। परन्तु इनके तो कालकौ डर नांही। अव्यावृत श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके- ग्रन्थ कौ आश्रय किए।

ऐसे करत रात्रि प्रहर डेढ गई, सोइ रहे। परन्तु छाती में आगि सी लागी जो- आजु मेरे ठाकुर भूखे रहे।

भाव प्रकाश—याकौ हेतु यह जो- जद्यपि ये जल धरि के मानसी में सब आरोगाए हैं, श्रीठाकुरजी अरोगे हैं। काहे तें येहू श्रीराधा सहचरीकी सखी हैं। 'कलकंठी' इनकौ नाम है। कुमारिका के जूथ मे हैं। इनकों श्रीयमुनाजी कौ आश्रय है। राधा सहचरी के गान समय ये सुर भरत हैं। इनहूं कौ कंठ बहोत सुन्दर हैं। तातें जमुनाजी के भाव सों सिगरे भोग में जल ही धरे। तातें सिगरी सामग्री भाव करि सिद्ध हैं। परन्तु या सामग्री में वैष्णव कौ समाधान नांही। सिगरीइन्द्रिय

की सेवा नाहीं, सामग्री हाथसों धरै और व्रज भक्तन की मानसी हू करै। और श्रीठाकुरजी को न्यारो मनोरथ हू करै। यह पुष्टिमार्ग की रीति है। जो सामग्री हाथ सों भोग धरन में प्रीति न होइ तो व्रज भक्तन के भाव हू छूटि जाँइ। ज्ञान मार्ग की रीति व्है जाइ। "पत्रंपुष्पं,फलं,तोयं,योमेभक्त्या प्रयच्छति"। या वाक्य में बोध अर्थ है। मर्यादा मार्गीय के भाव में पत्र, पुष्प, फल, जल जैसो बन्यो सो धर्यो। सामग्री को आग्रह नांही है। और गीता में कहे जो भक्त धरै। यामें यह अर्थ जो भक्त होइ सो चारों वस्तु विवेक पूर्वक धरै। स्नेही होय ताको भक्त कहिए। तामें पत्र जो पान नथा पोई के पात, अरु रुइ (अरई) के पात तिनके पत्रोड़ा करि स्नेह सों सँवारि धरै। ज्ञानी कों स्नेह नांही, सो मीठे करुई सगरे पत्ता धरै। और फूल में गुलाब के फूल कों खांड में सामग्री करि प्रेम सों अरोगावै। फल सुन्दर मीठे करवे चाखि के धरै। सो भक्त होय तो चाखै। जद्यपि मर्यादा में भीलनी सवरी हती, सो बन के फल कों चाखि के धरे, जो फल जहरी कोई कीरा को खायो होइ तो पहले मोकूं दुःख होइ। परन्तु श्रीरामचन्द्रजी कों मति होइ। तब श्रीरामचन्द्रजी सराहना किए। जो एसे फल दसरथ पिता के घर और जनक विदेही के इहाँ ब्याह में हू नाहि खाए। सो यहां एसी प्रीति नांही। भक्त सँवारि के धरै। ज्ञानी जैसे मिले तैसे धरै। तातें गदाधरदास तो पुष्टिमार्गीय लीला संबंधी हैं सो भावपूर्वक जल धरें। परन्तु स्नेही हैं तातें छाती में आग लागी जो-आजु कछू न आयो। सो छाती में विरह रूप आगि लागी। जो—आजु कछू नाहि धर्यो जो-वैष्णव के निवाह बिना श्रीठाकुरजी भूखे ही हैं। या प्रकार कौ गूढ़भाव जिनके

हृदय को है। और श्रीठाकुरजी कों विरह कौ दान करनो है तातें कछू न आयो। सो छाती में विरह रूपी आगी लागी। मुख्य अधिकारी भए। जिनकों विरह नांही उनकों पुष्टि-मार्ग को फलनांही। या प्रकार डेढ प्रहर रात्री गई।

सो तब एक जजमान आयो। गदाधरदास कों पुकारि, किवाड़ खोलाय के रुपया ४) और कछू वस्त्रादिक दियो। और कह्यो जो आजु मेरे सुद्ध श्राद्ध हतो ताकी दक्षिणा लेहु। यह कहि उह घर गयो। तब गदाधरदास कों हृदय में विरह बहोत जो बेगिही कछू धरिए। यह भावसों एक रुपैया ले सामग्री लेनकों बजार में बेगे गए। सो एक हलवाई जलेबी करत हतो। सो देखत ही वासों पूछी यामेंते काहूकों दीनों तो नाहीं। तब उन कही अब करी है; बेची नांही। तब रुपैया दै, कहै बेगि तोलदें। सो लेकै आइ घरमें न्हाइ, श्रीठाकुरजी कों भोग धरी। पाछे श्रीठाकुर जी कों पोढाइ वैष्णवनकों बुलाई महाप्रसाद सब लिवाइ दियो। आपु भूखेई सोई रहे। परन्तु मनमें सुख पाए। जो श्रीठाकुरजी आरोगे। और वैष्णव कौ नागो न पर्यो। पाछें तीन रुपया कौ सीधो सामान लाइ सामग्री करि भोग धरि पाछें श्रीठाकुरजी को पोढाइ वैष्णवन कों बुलाई महाप्रसाद की पातरि धरी। तब वैष्णव महाप्रसाद लेति बोलें, जो- गदाधरदास रात्रिकों तुम महाप्रसाद दिए सो यह सामग्री तो हमहू करत हैं परन्तु एसो स्वाद नाहीं होत। सो एसी क्रिया हमहू कों बतावो। कैसे करी हती? तब गदाधरदास

ने कही, कालि मेरे घर कछू न हतो। सो रात्रिकों रुपया चारि आए। एक रुपैया की जलेबी बजार सों लायो। या प्रकार सब कहें। तब सिगरे वैष्णव गदाधरदास की ऊपर प्रसन्न भऐ।

भावप्रकाश— ताकौ हेतु यह है जो- श्रीठाकुरजी श्रीआचार्यजी इनके ऊपर प्रसन्न हैं। सो सिगरे वैष्णवन के हृदय में हैं। बुद्धि के प्रेरक श्रीकृष्ण हैं * तातें निष्कपट शुद्ध भाव वारे वैष्णव पर कोई अप्रसन्न न होय। या प्रकार वैष्णव प्रसन्न भए। तब गदाधरदासजी ने एक कीर्तन गायो—

"गोविंद पद पल्लव सिरपर बिराजमान।
तिनकों कहा कहि आवै सुखकौ प्रमान।
व्रज दिनेस देस बसत कालानल हून त्रसत,
बिलसत मन हुलसत करि लीला रस पान॥ १॥
भींजे नित नैन रहत, हरि के गुनगान कहत,
जानत नहिं त्रिविध ताप मानत नहिं आन।
तिनके मुख कमल दरस,पावन पदरेंनु परस,
अधम जन 'गदाधर' से पावत सन्मान॥ २॥

जो मैं अधम जन हों परन्तु तुम भगवदीय हो सो मो सारिखे को सन्मान करत हो। या प्रकार वैष्णवन में और श्रीठाकुरजी में द्रढ प्रीति एक रसहती। तातें श्रीठाकुरजी और वैष्णव इनके बस हते। एसे गदाधरदास उत्तम भगवदीय हे।

---

* बुद्धि प्रेरक श्रीकृष्णस्य पाद पद्म प्रसीदतु।

वार्ता प्रसंग २– और एक दिन गदाधरदास ने वैष्णव महाप्रसाद कों बुलाए हते । सिगरी सामग्री करी परन्तु साग कछू न हतो तब गदाधरदास ने वैष्णव बैठे हते तिनसों कही– एसो कोई वैष्णव है जो साग ले आवे ? सो माधोदास, बेनीदास के भाई जिनने वेस्या घर में राखी हती सो बोले, कहो तो मैं ले आऊं ।

भावप्रकास— ताको आसय यह जो मैं वेस्या राखो है मेरो लाया लेहुगे ?

तब गदाधरदास कहे ले आवो ।

भावप्रकास- सो गदाधरदास के हृदय में दोष दृष्टि नांही है । श्रीआचार्यजी को संबंध जानत हैं । तातें कहे ले आवो ।

तब बथुवा की भाजी ले आए । तब गदाधरदास प्रसन्न ह्वै कें कहे, बेगे संवारि देउ ।

भावप्रकास— यामें यह जताए जो प्रीति सों लाए । तब सँवारिबे की मुख्य सेवा हू दिए । तामें जताए जो सेवा प्रीति सों करै । कैसे हू होउ ताके हाथ कौ श्रीठाकुरजी प्रीति सों अंगीकार करें ।

पाछें सामग्री सिद्ध करी श्रीठाकुरजी कों भोग धरें । समय भए भोग सराइ अनोसर करि सिगरे वैष्णवन को महाप्रसाद की पातरि धरें । सो सब वैष्णव महाप्रसाद लेत साग बखान्यो । तब गदाधरदास परोसत माधवदास पास आए तब

प्रसन्न होइकै माधोदास सों कहे जो तिहारो लायो साग श्रीठाकुरजी आरोगे। तातें तोकों हरिभक्ति दृढ होऊ। यह आसीर्वाद दिए।

भावप्रकाश— यामें यह जताए जो रंच सेवा साग की माधोदास किए। तातें श्रीठाकुरजी प्रीतिसों आरोगे। यह तब जानिए जो वैष्णव प्रसाद लेइ सराहना करें। तब दोऊ सेवा सिद्ध होय और भगवदीय समान उदार कोऊ नांही जो रंच साग की सेवा किए जनम जनम कौ संसार मिटाइ हरि भक्ति करि दिए। एसे गदाधरदास भगवदीय है।

वार्ता प्रसंग २- और एक-दिन गांव कें बाहिर बनजारा आइ उतरयो। ताकों बैल चाहिए सो गाम में आइ दस पंद्रह गदाधरदास के सगे ब्राह्मण बैठे हते। सो गदाधरदास की ईर्षा करते जो भगत भयो है। सो बनजारे ने उन ब्राह्मण सों पूछयो हमकों बैल मोलकों लेने सो कहां मिलेंगे? तब उन ब्राह्मणन ने कही गदाधरदास भगत है उनके यहां जितने चाहिए तितने लेहु। परन्तु योंतो वे न देइंगे। उनके पास रुपैया दे आवो। कहियो हमकों जहां सो चाहो वहां सों मंगवाइ देहु। पाछे दुसरे दिन जइयो। तब बैल तुमकों मिलेंगे। तब बनजारा १००) रुपया लै गदाधरदास के पास गयो। कह्यो हमको बैल लेने हैं। सो तुम मंगाइ देहु। तब गदाधर दास ने कही - बाबा हमारे बैल कहां? गाँउ में पूछो, हमतो जानत नांही। तब बनजारे ने १००) रुपैया गदाधरदास के आगें धरि दिए। उठिचल्यो कह्यो कालि बैल लेन आऊँगो। सोसों गांउ के लोगन ने

या भांति बताए हैं। तब गदाधरदास ने जानी जो हमारी जाति के ने याकों बहकायो होइगो। तब गदाधरदास ने कही कालिह मध्याह्न समेतो न देखोगे। तौऊ बनजारा प्रसन्न होइके कहे; जो आछो। यह रुपैया राखो।

पाछें गदाधरदासजी १००) रुपैया की सामग्री मगाए। सिगरे पाक सिद्ध करि दूसरे दिन भोग धरे। फेरि सिगरे वैष्णवन कों परोसत हते मध्याह्न समे तब बनजारा आयो। तब गदाधरदास ने कही भले समय आयो। ए सब ठाकुरजी के बैल हैं। यामें बछरा हू हैं, तरुन हूं हैं। जैसे चाहिए तैसे देखि लेहु।

भावप्रकाश— याको आसय यह- बैल धर्म को रूप है। सो गदाधरदास कहे आजुके काल में धर्म इन वैष्णवन में हैं। सो धर्म लेनो होइ तो देखिले। बैलकों यह जा कारज में लगावे सोई करै। नाँही न करै। जो खवावै सोई खावै। संतोष करै तैसे ये वैष्णव हैं। जाजा कार्य में चलत हैं सो प्राप्त होय। तामें संतोष हैं।

सो बनजारे की सामग्री श्रीठाकुरजी अरोगे। वैष्णव महाप्रसाद लिए। और गदाधरदास प्रसन्न होइके कहे। सो उह बनिजारे कों ज्ञान होइगयो। जो एतो भगवद्भक्त हैं। गांउ के लोगन ने मसखरी करी, लराइवे को उपाइ करयो हतो। परन्तु मेरे बड़े भाग्य हैं। जो या मिष मो सारिखे की पापी सत्ता अंगीकार किए। अब मैं इनकी सरन

जाऊंतो । कृतार्थ होऊं । तब साष्टांग दंडवत् गदाधरदास कों करि कह्यो मैं रात्रि दिन संसार समुद्र में भटकत हों । अब तिहारी सरन आयो हुं । मेरो उद्धार करो । तब गदाधरदास ने कही हमतो सेवक करत नांही । परन्तु ए सगरे वैष्णव और हम श्रीआचार्यजी के सेवक हैं, सो अड़ेल में बिराजत हैं, तिनके सेवक होउ । पाछें गदाधरदास ने दैवीजीव जानि वाको महाप्रसाद दिए । तब बनजारा अड़ेल आई श्रीआचार्य जी पास नाम पाइ कृतार्थ भयो ।

भावप्रकाश— यामें यह जताए जो भगवदीय के एकक्षण के संग तें जो उत्तम जीव होय तो वाको कार्य है जाइ गदाधरदास एसे भगवदीय हे इनके हृदय को अगाध भाव है सो कैसे कह्यो जाय सो वे गदाधरदासजी श्री आचार्यजी महाप्रभुन के एसे कृपापात्र भगवदीय हे । तातें इनकी बार्ता को पार नहीं सो कहां ताईं लिखिए । वैष्णव ८ (८४ मध्ये) (९६ मध्ये वैष्णव संख्या १६)

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सेवक बेनीदास माधवदास दोऊ भाई छत्री हते कडा में रहते तिनकी वार्ता और ताकौ भाव कहत हैं—

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश	बेनीदास वृषभानजी के गाडा को बैल है । सो 'ऋषभ' सखा कों सींग मारयो सो तीन दिन 'ऋषभ' सखा दुख पायो । ताके शाप तें गिरे भूमि पर । और माधवदास

'रतनप्रभा' ललिताजी की सखी है : सो इहां भगवद् इच्छा ते दोऊ भाई भए । परन्तु मन मिले नांही । सो माधौदास ने बेस्या घर में राखी हती, सो वैष्णव सब निंदा करते । परन्तु

उह वैष्णव दैवी हती। चंद्रावलीजी की सखी 'चन्द्रलता' लीलामें इनको नाम हतो। सो अलौकिक संबंध बिना दैवी जीव की दृढ प्रीति बंधे नांही।

वार्ताप्रसंग १– पाछें एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभु कडा में पधारे। तब सिगरे वैष्णव दरसन कों आए, पाछें माधौदास सुने। सोऊ आय श्रीआचार्यजी कों दंडवत् कियो। तब सिगरे वैष्णव दरसन कों आए। तब सिगरे वैष्णवन नें श्रीआचार्यजी सों कही– महाराज माधौदास ने वेस्या राखी है। तब श्रीआचार्यजी पूछे, क्यों माधौदास वैस्या राखी है ? तब माधौदास ने कही, महाराज मेरो मन वाके ऊपर आसक्त है। तातें राखी है। या प्रकार तीनि बेर श्रीआचार्यजी पूछे। तीनों बेर माधवदास ने कही महाराज ! मेरो मन वा पर आसक्ते है, तातें राखी है। तब श्रीआचार्य जी चुप है रहे।

भावप्रकाश— याको अभिप्राय यह, जो प्रथम वैष्णव निंदा करते। सोऊ माधोदास कों वेस्या को संग छुड़ावन कों। जो निंदा ते लाज पाइ छोडेंगे। यातें करते। अपने भाई जानि कें, ईर्षा द्वेष भाव नाहिं हतो। जो द्वेष होइ तो सिगरेन कों बाधक होई। पाछें श्रीआचार्यजी सों वैष्णवन ने कही। सोउ माधौदास के लिए जो श्रीआचार्यजी के कहे तें छूटै तो आछो। लौकिक में वैष्णव की निंदा होत हैं सो छूटै। सो श्रीआचार्यजी सर्व लीला को प्रकार जानत हैं। तातें कहें क्यों रे माधौदास ! तू वेश्या राखे है ? यह कही। यह कहते- जो

वेश्या कौ संग छोड़ दे तोकों बाधक है। तो माधौदास छोड़ि देते। आपु बड़ाई करी। क्यों रे माधौदास वेश्या सरीखी हीन को अंगीकार करि राखे? संसार में बड़ी जात हती। लौकिक सोंउ न डरप्यो? तब माधौदास कहे- मन वा पर आसक्त व्है गयो। जो याकों कहूं ठिकानो नाहीं है तातें संसार की लाज सरम वैष्णव कीहू कानि छोड़ि राखो है। सो मैं नाही राखी मनके प्रेरक आपु हो। आपुही वापर आसक्त कियो सो आपुही राखी है। या प्रकार तीनि बार कहे। सो यातें जो- साँची प्रीति होइगी (तो) एक दृढ वचन साँचे निकसेंगे। सो साँचे ही तीनिबार माधौदास ने कही। तब आपु प्रसन्न भए। जो एसे टेक के वैष्णव दुर्लभ हैं।

तब सिगरे वैष्णव श्रीआचार्यजी महाप्रभुनसों कहे- महाराज! अब तांई तो आपु की कानि हती। अब आपु सों हू कहि छूट्यो। आपु वासों कछू कहे नांही?

भावप्रकाश— यह कहे जो- यातें जो वैष्णवन कों बड़ी चिंता भई जो आपु आगे कहि दियो। अब याको कैसे कल्यान होइगो? यह चिंता करि फेरि वैष्णव ने कही आपु यासों कछू कहे नांही? सो कहो, यह जताए।

तब श्रीआचार्यजी वैष्णवन को समाधान कियो। तुम चिंता मति करो। याको मन वापर आसक्त है सो श्रीठाकुरजी कों फेरत कितनीक बार लगेगी। और गदाधरदास ने याकों आसीर्वाद दियो है जो हरि भक्ति दृढ होइगी सोई यह माधौदास है।

भावप्रकाशः—यह कहि यह जताए जो याकी चिन्ता तुम मति करो। यह संसार में परिवेवारो नाहीं है। वेस्या आदि औरहू कों संसार तें काढन वारो है। गदाधरदास ने दृढ़ भक्ति दीनी सो मैंने दीनी। अब जो मैं हठ करिके छुड़ाऊं तो गदाधरदास भगवदीय की कृपा कैसें जानी जाय। यातें गदाधर दास ने हरि भक्ति दीनी सो दृढ होइगी। तुम याकी चिंता मति करो।

तब सब वैष्णव प्रसन्न होइके चुप ह्वै रहे। ता पाछे माधोदास को मन फिरयो। सो वेश्या दूरि कीनी। वैष्णव की रीति मर्यादा में चलन लागे। भले वैष्णव भए।

भाव प्रकाश— यामें यह जताए जो वेश्या कों दूरि कीनी सो यह अर्थ वेस्या कों बताए जो तू श्री गुसाँई जी की सखी है। जब श्री गुसांई जी पधारेंगे तब तेरो कार्य होइगो। तातें अब हमसों तो सों न बने। यह कहि के काढे। तब वह वेस्या बिना घी की चुपरी रुखी अँगाखरी खाइ के निर्वाह पन्द्रह वर्ष लों कियो। पाछें श्रीगुसांई जी कड़ा में पधारे, तब वेस्या ने सुनी। तब श्रीगुसाँईजी सों आइ विनती करी, महाराज! मेरो अङ्गीकार करिए। तब श्रीगुसाँई जी कहे हम वेश्या कों सेवक नांही करत। तब घर आइ कें परि रही। अन्न, जल छोड़ दियो। सो आठ दिन श्रीगुसांईजी कड़ा में रहे। दूरि तें वेस्या दरसन करि जाइ। पाछें नोमें दिन श्रीगुसाँईजी पधारन लागे। तब वेस्या दोइ मनुष्यन के हाथ पकरि कें आई। कह्यो महाराज! आजु नोमो दिन है। बिना अन्नजल मेरे अब प्रान छूटेंगे, जो आपु अंगीकार न करोगे। तब श्रीगुसांईजी ने जानी जो अब याको दोष दूरि भयो सुद्ध भई। तब उह वेस्या को नाम सुनायो। पाछें उह ब्रह्मसम्बन्ध की विनती

करी, महाराज ! माधौदास कहि गए हैं जो तू श्रीगुसाईंजी की दासी है। सो आप के लिये पन्द्रह बरस सों सूखो अन्न-करी खाय देह राखी। अब नौमें दिन तें जल हू त्यागो है। और जो मोकों आज्ञा करो सो मैं करों। मैं तो दुष्ट हों, परन्तु माधौदास के सम्बन्ध तें मोकों श्रीआचार्य जी महाप्रभुन के दरसन हू भये, और आप के हू भए। तातें मोकों ब्रह्मसंबन्ध कराइ मेरे माथे भगवत् सेवा पधरावो, तो मेरे प्रान रहेंगे। तब श्रीगुसाँइजी सुद्ध भाव देखिके ब्रह्मसम्बन्ध कराए। लालजी पधराय दिये। वैष्णवन सों कहे याकों रीति भांति सब बताइ दीजो, ता प्रकार यह सेवा करै। ऐसें करत वेस्या कों अटकाव भयो। सो वैष्णव तो बरजे जो चारि दिन लों कछू मति अलादि छुवो। परन्तु वाकों बिरह प्रेम बहोत सो रह्यो न जाइ, अटकाव में सेवा करै। पाछें पांचवें दिन अपरस काढे। श्रीठाकुरजी कों पञ्चामृत स्नान करावे। सो वैष्णवनने उनसों व्यवहार छोडि दियो। पाछें कछुक दिनमें श्रीगुसांई जी कड़ा पधारे तब सबनने श्रीगुसांईजी सों कही, महाराज! वह वेस्या अटकाव में हू बहोत बरजे परन्तु मानत नाहीं, सेवा करत है। पाछें वेश्या सों ऐसे सुने श्रीगुसाँईजी निकट बुलाइ कहे—अटकाव में लोटी क्यों भरत हो? तब वेस्या ने कही महाराज! मेरे जितने रोम हैं इतने धनी लौकिक में किए। सब आपकी कृपा तें छूटे। अब एक धनी अलौकिक आपु करि दिये, तिन बिना कैसे चारि दिन रह्यो जाइ? सो आपु तो अन्तर्यामी हो। एक छन को अन्तराइ सह्यो नहिं जात है। अरु पाँचवे दिन अपरस हू काढि पञ्चामृत सों श्रीठाकुरजी कों स्नान करावत हों। यह मर्यादा हू राखत हों। अब आप सब के अन्तर की जानत हो। जो आज्ञा देउ सो करों। तब श्रीगुसांई जी याके ऊपर श्रीठाकुरजी प्रसन्न देखि कैं कहे जैसे करति है तैसेई करियो। या प्रकार वाको समा-

धान करि घर पठाई। जो बेगि जा, तेरे लिए श्री ठाकुर जी बैठि रहे हैं। तब वह दंडोत करिके गई।

पाछें श्रीगुसांईजी वैष्णवन सों कहें, जो वह वेश्या करै, वासों मति कछू कहियो। वाकी देखादेखी और कोई मति करियो. वापर श्रीठाकुर जी वाही भाँति प्रसन्न हैं तुम पर मर्यादा ही सों प्रसन्न होंइगे। या प्रकार उह वेश्या कों माधौदास के संग तें प्रेम भयो।

वार्ता प्रसंग २— माधौदास बेनीदास सों मिलि कै रहते। सो एक दिन मोतीकी माला बहोत मोल की भारी बिकान आई। सो देखिके माधौदास ने बेनीदास सों कही, यह माला श्रीनवनीतप्रियजी लाइक है, सो लेहुं। तब बेनीदास ने कही, माला की कहा है। हमारे जो कछू वस्तु है सो सब श्रीठाकुरजी की ही है। यह कहिके बात टारि दिए।

भाव प्रकाश—यामें यह जताए, जो संसार में आसक्त होय सो लोगन के दिखाइबे के लिये सब श्रीठाकुरजी को कहै। परन्तु श्रीठाकुर जी के लिए खर्च न करै।

तब माधौदास नें कही जो- सब श्रीठाकुरजी को है तो श्रीठाकुरजी के लिए माला क्यों नांहि लेत? तब भाई बेनीदास ने कही जो हमसों कैसे लीनी जाइ? तब माधौदास ने कही जो मेरो द्रव्य बांटि देहु। मैं तुमसों न्यारो रहूंगो।

भाव प्रकाश—यामें यह कहै- तुम बैल हो, सो केवल गृहस्थाश्रम को ब्यौहार लादो। हों तो न्यारो रहि मनोरथ करूंगो।

सो द्रव्य आधो बांटिके न्यारे भए। सो थोरो द्रव्य। हतो सो माला लीनी न गई। परन्तु मन मे यह जो- ऐसी श्री नवनीत प्रियजी कों अंगीकार होई। सो द्रव्य लें के दच्छिण कमावन गए। और यह माला कों माधौदास ने अलौकिक अंगीकार विचारें। सो लौकिक में आदि नांहि सो प्रयाग में बिकन आई। तब प्रयाग के बैष्णव मोल लें श्री आचार्यजी कों दिए। श्री आचार्यजी ने श्री नवनीत प्रियजी कों पहराए।

उहां माधौवदास नें द्रव्य बहोत कमायो सो पाहिली माला तें उत्तम मोल लेके चले। सो मारग में एक बड़ी नदी आई। तहां नाव पर बैठे और हू बहोत लोग बैठे और नाव मध धारा में जब आई तब श्रीनवनीतप्रियजी लाल छरी लेकै आए। सो एक माधोदास को दरसन भए तब श्रीमुख तें कहे नाव डुबाऊँ ? तब माधोदास कहे निजेच्छातः करिष्यति। तब श्रीवनीतप्रियजी कहे तू कहां गयो हतो तब माधोदास कहे माला लेन गयो हों। तब श्रीनवनीतप्रियजी कहैं, कहा हमारे माला नांहि है ? देखि उहि माला। श्रीआचार्यजी धराए हैं और मेरे बहो तेरी हैं। तब माधोदास कही महाराज ! आपके बहोतेरी हैं परि सेवक को यह धर्म नांहि जो बैठे रहे। उद्यम करनो। तब नाव डुबत तें रही।

भाव प्रकाश—श्रीठाकुर जी नाव पर आइकें कहें सो बातें जो तेरे पीछें मोकों इच्छिन आनो परयो, सो तू क्यों गयो ? मेरे कहा माला नाँहीं है ? तातें नाव डुबाऊं तो तू कहा करै ? मनोरथ तेरो धर्‌यो रहै । तब माधौदास कहे "निजेच्छातः करिष्यति" । सो "निजानां सेवकानां इच्छा करिष्यति" । जो भक्तन की इच्छा होइ सो ही सदा आपु करत आए हो । "भक्त मनोरथ पूरकाय नमः" को आप नाम है ।* सो माला को अङ्गीकारि श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के द्वारा होइ । ता पाछें सरीर रूपी नाव डूबे ताकी मोकों कछू चिन्ता नाहीं है । जब तिहारी इच्छा में आवै तब डुबाइयो । और तिहारे माला बहोत हैं सो यामें मेरो कहा उद्यम । जोतिहारो मनोरथ कछू बनि आवैतो उद्यम सुफल है । नाहि तो गृहस्थाश्रम हू वृथा पचि मरनो है । तातें सेवक को धर्म यह जो तिहारे अंगीकार को मनोरथ करत रहै । तब श्री-ठाकुरजी नाव डूबन तें राखी । नांही तो जैसे श्रीठाकुरजी नाव डुबावन की कही । तैसे माधौदास हू भगवान इच्छा कहते । भक्त की आज्ञा होइ तो डूबे ही । परन्तु निजेच्छातः कहे । निज जो भक्त तिनकी इच्छा माला अङ्गीकार करन की । या प्रकार कहे । और माधौदास कों तो नाव डूबन की चिन्ता नांही । परन्तु और हू नाव पर बैठे सो भक्त के संग बचे चहिये । वे कैसे डूबन माधौदास देहि ? तातें भगवदीय की बानी गूढ है । भगवान्, समझें, के कृपा होइ सो समुझें और नाव हाली हती तब सबको मुख सूखि गयो । मल्लाह ने कही, हमारे हाथ नाही है । ता समय माधौदास को मन प्रसन्न

---

*"दास चत्रभुज प्रभु के निजमत चलत लाल गिर धरन" એ કથન પણ અત્રે સ્મર્તવ્ય છે. —સમ્પાદક

है सो नाव डूबत तें रही। तब सबन नें कही जो ए महापुरुष बैठे हैं तातें नाव बची। नाहि तो सबरे डूबते।

पाछे पार उतरें। कछुक दिनन में श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के पास माधोदास आए। तब माधोदास सों श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ने कही नाव डुबत तें कैसे रही? तब माधोदास ने सब समाचार श्रीआचार्य जी सों कहे। तब श्री आचार्यजी सिगरे वैष्णवन सों कहे। जो देखो यह वही माधौदास है कैसी टेक को वैष्णव भयो ता दिन तें माला को नाम 'माधोदास' कहे सो सिगरे कहत।

भाव प्रकाश—यह कहि यह जताए जैसे लीला में इन को नाम 'रत्नप्रभा' तैसे ही रतन जैसो प्रकास माधौ दास की वार्ता को है। एसे माधोदास भगवदीय हैं। या वार्ता में भगवदीय के आसीर्वाद को उत्कर्ष प्रगट कियो।

सो माधोदास श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के एसे कृपापात्र भगवदीय हे। तातें इनकी वार्ता को पार नाहि सो कहां तांई लिखिए। वैष्णव ६ (८४ मध्ये) ६६ मध्ये वैष्णव १७ भए)

अब श्री आचार्य जी महाप्रभुन के सेवक हरिवंश पाठक सारस्वत ब्राह्मण कासी के, तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं—

हरिदासजी कृत भाव प्रकाश- ए लीला में "गति उत्तालिका" बिसाखाजी की सखी है। सगरी सेवा तत्काल सामग्री सिद्ध करत हैं। तातें इनकी चाल इनकी क्रिया उतावली सो वेग करत हैं। तातें बिसाखाजी इनपर बहोत प्रसन्न रहते।

सो हरिवंस पाठक पहलें गणेश के उपासक हते। सो जब श्रीआचार्यजी 'पत्रावलंबन' कासी में किए। पंडितन को जीतें तब हरिवंस पाठक के मन में आई जो मैं हूँ श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के दरसन करि आऊं। सो दरसन को आए। तब विप्र रूप देखिकें मन में आई जो ए ऊ ब्राह्मण हैं हम हूं ब्राह्मण हैं। ए पंडित हैं। सो मेरे कहा काम है। मेरे गणेस के दरसन में ढील लगे सो ठीक नांहि हैं। यह बिचारि दूरि तें देखि पाछे फिरे। सो घर में आइ गणेस की पूजा को सामान लै चलन लागे। सो द्वार पर ठोकर लगी, गिरि परे सो मूर्छा आइ गई। तब गणेस ने सपने में हरिवंस पाठक सों कहे, तू श्रीआचार्यजो के दरसन करे बिना मेरे पास आवत हतो सो मैं तेरो मुंह न देखोंगो श्रीआचार्यजी को अपराध कियो। श्रीआचार्यजी पूर्णपुरुषोत्तम हैं। तिनसों अपराध छमा कराइ मेरे पास आइयो। तब हरिवंस पाठक को सरीर की सुधि भई। सो श्रीआचार्यजी महाप्रभुन पास दोरयो आयो। दण्डवत करि बिनती करी, महाराज! आप पूर्ण पुरुषोत्तम हो, मैं नहिं जान्यो। अब मेरो अपराध छमा करि सरन लेहु। तब श्रीआचार्यजी कहे हम हूं ब्राह्मण हैं तुम हुं ब्राह्मण हो। सरन आइवे की क्यों कहत हो? तब हरिवंस पाठक ने कही महाराज! हम तो अज्ञानी जीव हैं, संसार समुद्र में पड़े हैं। सो आप के स्वरूप को कहा हम जानें? हम तो गणेस के उपासक हैं। सो गणेस हु आप के अपराध सों

डरपत हैं । तातें मोकों तिहारे पास पठाए । जो अपराध छमा कराइ आवो । सो मैं अब जान्यो जो हम सों बड़े आप हो, अब मोकों सरन लेहु । तब श्रीआचार्यजी सेठ पुरुषोत्तमदास के इहां उतरते हते । तहां हरिवंस पाठक को नाम सुनाए । तब हरिवंस पाठक ने बिनती करी महाराज ! घर में स्त्री है एक बेटा एक बेटी है । ताकों अङ्गीकार करिये । तब श्री-आचार्य ने कही तुम भगवत् स्वरूप कहूं ते लावो । तब तेरे घर पधारि सबको नाम निवेदन कराइ श्रीठाकुर जी पधराय देंइगे । तिनकी तुम सेवा करियो और की सेवामति करियो । तब हरिवंस पाठक ने कही महाराज पुरुषोत्तम पाये पाछे ऐसो को अभागो है जो और देवता के पाछे द्वार भटकैगो । यह कहि बजार में आइ कछू न्योछावर दे, एक छोटे से लालजी कौ स्वरूप लियो । सो श्रीआचार्यजी के पास आय बिनती करी, महाराज अब कृपा करिके वेगि पधारिए । काहे तें सरीर को भरोसो नाहीं और कदाचित कोई को काल आइ जाइ तो जीव को अकाज होइ । यह आरति देखि श्रीआचार्यजी महाप्रभु प्रसन्न होइ हरिवंस पाठक के घर पधारे । सिगरी अपरस सिद्धि कराई । सिगरे कुटुम्ब कों नामनिवेदन कराइ श्रीठाकुरजी कों पञ्चामृत सों स्नान कराइ पाट बैठारे । पाछें आप पाक करि भोग धरि भोजन किए । सबन कों जूठनि धरी । पाछे आप सेठ पुरुषोत्तमदास के घर पांव धारे ।

पाछें आप पृथ्वी-परिक्रमा कों पधारें । तब हरिवंस पाठक सों कहे जो सन्देह होइ सो सेठ पुरुषोत्तमदास सों पूछि लीजो । सो हरिवंस पाठक सेवा भली भाँति सों करत । श्रीठाकुरजी सानुभावता जनावन लागे ।

वार्ता प्रसंग—सो एक समय हरिवंस पाठक पटना ब्यौहार को गए हते। सो पटना के हाकिम सों बहोत मिलाप हतो। सो वह हाकिम मनमें अपने में जाने जो एकछु मांगे तो मैं इनको देंऊ सो एक दिन उह हाकिम ने कही मैं तुम ऊपर बहुत प्रसन्न हों, तातें तुम जो कछु मांगो सो मैं देहुं। तब हरिवंस पाठक ने कही, कोई दिन कछू काम परैगो तो कहूंगो। सो एसे करत डोल उत्सव के दिन निकट आए। तब श्रीठाकुरजी ने हरिवंस पाठक सों जताई जो तू डोल मोकों न झुलावेगो? तब हरिवंस पाठक मनमें विचारे अब कहा करिए दिन थोरे रहे, चलेसो तो न पहोंचिये तब वह हाकिम पास गए और कहें कछू मांगत है सो मोकों दियो चाहिए तब वह हाकिम ने कही जो चाहो सो मांगो। तब हरिवंस ने कही जो मोको दिन ३ में कासी पहोंचो चाहिए। तब वह हाकिम न घोड़ा और मनुष्य साथ दिए। सो मजालि मजालि पर घोड़ा की डाक पर चले जाई घोड़ा मनुष्य पलटत जाई। सो एसे करत दूसरे दिन आइ पहोंचे। रात्रि को सब डोल की तयारी सिद्ध करि राखी दूसरे दिन झुलाए बड़ो सुख भयो। पाछे दिन दस पंद्रह रहीके पटना आए। तब वह हाकिम ने हरिवंस पाठक सों पूछी एसो घर में कहा जरूरी काम हतो जो यह मांग्यो कछु द्रव्यादिक मांगते, तो लाख रुपये की

सीखि देतो। तब हरिवंश पाठक ने कही जो हम ग्रहस्थ हैं। अनेक काम घर के हैं। सो गयो हतो। या प्रकार अपनो धर्म गोप्य राखे। ऐसे भगवदीय हे। ता पाछे बड़े उत्सव, छोटे उत्सव सिगरे घर आइ के करते।

भाव प्रकाशः—यामें यह सिद्धांत जताए जो सनेही आइ कै उत्सव अपने ठाकुर पास करे तो ठाकुर प्रसन्न रहें, और श्री ठाकुर जी की सेवा को प्रकार काहू सों कहनो नाहीं जैसे हरिवंश पाठक उह हाकिम सों कछु न कहे गृह में अद्यपि वैष्णव हते तऊ श्री ठाकुर जी के अनुभव नाम नाहीं कह्यो। वैष्णव हुए (८४ मध्ये) (८६ मध्ये वैष्णव ५८ भए)

सो हरिवंश पाठक श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हे। तातें इनकी वार्ता को पार नहीं सो कहां तांइ लिखिये।

अब श्री आचार्य जी महाप्रभुजी के सेवक गोविंददास भल्ला क्षत्री थानेस्वर में रहते तिनकी वार्ता और ताको भाव कहत हैं।

श्री हरिराय जी कृत भाव प्रकाश—सो गोविंददास थानेश्वर में सिपाहिगीरि करते हाथियार बांधते। थानेश्वर के हाकिम पास रहते। रुपैया पांच साम को रोज पावते। सो थानेस्वर में श्रीआचार्य जी पधारे। तब थानेश्वर में बहोत जीव सरन आये। तब गोविंददास भल्लाने श्रीआचार्यजी महाप्रभुन सों बिनती करी, जो महाराज! मेरे द्रव्य बहोत है, कहा करूँ। तब श्री आचार्य जी ने कही-

भगवत सेवा करो। तब गोविन्ददास भल्ला ने कही- महाराज स्त्री अनुकूल नांही है। ताको आसय यह जो देवी नांही है तब श्रीआचार्यजी कहें स्त्री को त्याग कर। तब गोविन्ददास ने स्त्री कों त्याग करि सिगरो द्रव्य लाइ श्रीआचार्य जी महाप्रभुन सों बिनती करी, महाराज! द्रव्य को कहा करूँ स्त्री को तो त्याग करयो। तब श्री आचार्यजी ने कही यह द्रव्य के चार भाग करि एक भाग श्रीनाथजी की भेटकरि एक भाग स्त्री को दें। यातें जो- ब्याह भयो ताको छोड़े को दोष पुंजी दिये छूट्यो। दो भाग तू लेके भगवत सेवा कर। तब गोविन्ददास भल्ला नें कही, महाराज! कछु आपु अंगीकार करिए। तब श्रीआचार्य जी नें कही, भलो, एक भाग हम कों दे। तब गोविन्ददास ने द्रव्य के चारि भाग करे एक भाग श्रीनाथजी कों भेट किए एक भाग श्रीआचार्यजी महाप्रभुन कों भेट कियो। एक भाग स्त्री कों दियो। एक भाग को द्रव्य ले महावन में आइ रह्या। सो यातें जो गांव में स्त्री को प्रतिबंध परे। तातें महावन आइ मथुरानाथ जी की सेवा करन लागे।

वार्ता प्रसंग १—सो गोविंददास महावन में नित्य के चौबीस टका की सामग्री करें, भोग धरें। उहांइ मर्यादा मार्गीय वैष्णव कों खिवाय देई बचै सो गाइकों खवाइ देइ तामें तें आपु कछू न लेंइ। आपु न्यारि लींटी करि भोग धरि खांय।

भाव प्रकाश—याको आसय यह जो-महा वन में नन्द रायजी को देवालय कराइ ब्राह्मण को पूजा सोंपी हती। सो

मर्यादा रीति सों करते। खरच नन्दराय जी देते। सो ठाकुर हते। ब्राह्मण पूजा करते। सो देवालय को आपु कैसे लेंइ? तातें न्यारी लीढी करि मन ही सों भोग धरि लेते।

ऐसे करत द्रव्य सब निपट्यो तब श्रीनाथजीद्वारि आइ श्रीगोवर्द्धनधर की परचारगी करन लागे। दाइ समय के पात्र मांजें। रात्रि पहर डेढ रहे पाछली, तब उठि देह कृत्य करि न्हाइ के गागरि ले मथुरा आइ श्रीयमुना जल की गागर भरि राजभोग पहले आवते। पात्र सब मांजि रसोइ पोति अपनी सब सेवा सों पहोंचि पर्वत तें नीचे आई, तिलक धोइ माला उतारि गांठि बांधि गोवर्धन के आसपास सो कोरी भिक्षा मांगि लावते। सो सेर पांच सात को आहार हू हतो। सो आहार लाइके आवे तब आइके अपने हाथ सों पीस रोटी करि श्रीगोवर्धनधर की ध्वजा को दिखाइ चरणामृत मिलाइ कें लेते। पाछें सेनभोग के पात्र मांजने। रसोई पोति सेवा सों पहोंचि सैन करते। या प्रकार सेवा करते। परन्तु श्री गोवर्धननाथजी को आछो न लागतो।

भाव प्रकाश—ताको कारन यह जो भाव प्रीति सों ऐसी सेवा करें, तो श्री गोवर्धनधर वाके पाछें लगे डोलते परन्तु गोविंददास भला सामग्री हते, सो अहंकार सों करते। स्त्री को त्याग हू अहंकार सों कर्यो। महावन में हू चौबीस टका की सामग्री रोज करते। सो अहंकार सों करते। इहां हू सिगरी सेवा अहंता तें करते। सरीर को कष्ट पावते।

हो ? तब श्रीगोवर्धनधर नें कही, जिहरो सेवक बाको बहुत खिजावत है। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुन ने सिगरे सेवक बुलाइ सेवा टहल महाप्रसाद की पूछे। सो सब सों सिखा दिये जो अहंकार मति करियो। तब गोविंददास सो पूछे सो वे सब कहें। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहें श्रीनाथजी की रसोई में सिगरे सेवक महाप्रसाद लेत हैं। तुमहू लिया करो।

भाव प्रकाश—यह कहि यह जताए जो सिगरे सेवक की रीति चलो। अहंकार छोड़ो। और प्रभु अक्लिष्ट कर्मा है दुःख पाय अहंकार सों करिए सो प्रभु को भावें नांही।

तब गोविंददास ने कही महाराज! देवअंस कैसे लेहु

भाव प्रकाश—यामें यह भाव सों कहे जो सिगरे देव अंस लेत हैं मैं कैसे लेऊँ!

तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु कहे जो हमारी रसोई में महाप्रसाद लेउ।

भाव प्रकाश—ताको आशय यह जो आपकी रसोइ होइ, यह कहि यह जताए जो श्री गोवर्धनधर की सेवा छोड़ि हमारी करो। इहां रहो। सब सेवकन सों मिलिके चलो तो निर्वाह होय नाही तो हमारे पास रहो महाप्रसाद लेहु।

तब गोविंददास फेरि अहंकार करि कहें देव-अंस, गुरु अंस कैसे लेहुं। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभुननें कही जो सेवा छोड़ि देउ।

भाव प्रकाश—यामें यह जताए जो श्रीनाथ जी के यहां अहंकार किए तब सहज में सेवा छूटि गई सो सेवा छोड़ि दीनी परन्तु आज्ञा न मानी। तातें श्रीगोकुलनाथजी कहे छत्री अहंकारि करि सेवा छोड़ि दीनी याको आसय यह जो श्री गोकुलनाथजी को अहंकार प्रिय नाहीं है। 'तामसा ना अधो-गतिः' काहेतें अहङ्कार दास भाव में विरोधी हैं, तातें छत्री अहंकारी कहे। ताको आसय यह और छत्री सेवक बहोत भए परन्तु अहङ्कार छत्रीपने को छोड़ि दिए। और इनकों वैष्णव नाहीं कहे "छत्री अहङ्कारी" कहे सो छत्रीपनो दासहू भए पें नाश न भयो गुरु आगें। तातें उत्तम कुल-मद बाधक दिखाए। जो एक दिन अहङ्कार सों सेवा छूटें। सदा कछुक न करावें। यह सिद्धांत दिखाए।

तातें शिक्षापत्र में लिखे हैं " असाधनः साधनो वान साधुः साधुरेवता। सत्वादेव निखिलं फलं प्राप्नोत्य संशयम्। या मार्ग में कितने असाधन हैं, जिनसों भगवद्धर्म नाहीं बनत। कितने साधन बहोत करत हैं, सेवा स्मरण जप पाठ यामें कोई साधु जो सात्विक है कोई असाधु राजसी तामसी है। परन्तु सरन रात्रि दिन दृढ़ है प्रभु की। तिनही कों प्राप्ति निश्चय है यह जताए।

वार्ता प्रसंग २- तब छत्री अहंकारि नें सेवा छाड़ि दीनी

पाछें मथुरा आए। परन्तु बिना सेवा पूजा रह्यो न जाइ, दैवी है। तब केसौराइजी की सेवा इनारे लीनी। सोउ विपरीत किए।

भाव प्रकाश—काहे तें पहले महावन में मथुरानाथ जी की सेवा छोड़ि दिए श्रीगोवर्धनधर की सेवा किए सोको

ठीक किए। परन्तु श्री गोवर्धननाथ को की सेवा छोड़ि फेर मर्यादा में गए। ताते बिपरीत भए सो कहत हैं।

वार्ता प्रसंग २- पाछे एक दिन गोविंददास ने केसोरायजी की सज्या निवार भराए। सो बुननवारे कों मेवा खवाइ बुनाए सो बहोत सुन्दर भई। और मथुरा के हाकिम ने खाट निवार सों बुनाइ, तब काहू ने कही केसोराय जी की सज्या भई तैसी न भई। यह सुनिकें वह हाकिम केसोराय जी के मंदिर में आयो। सो तिवारी में केसोरायजी की सज्या धरी हती। तापर चढ़ि बैठ्यो। सो कोई नें गोविंददास भल्ला सों कही, जो मथुरा को हाकिम आइ श्रीठाकुरजी की सज्या पर बैठ्यो है। तब गोविंददास गुपति लेत आए। सो हाकिम को उहांई मारयो। पाछें हाकिम के मनुष्यने गोविंददास को अपराध कियो। यह बात मथुरा के बैष्णावन ने सुनी। सो गोविंददास की देह को आग्नि संस्कार कियो।

पाछें यह बात एक बैष्णाव नें श्रीआचार्यजी सों कहे महाराज ! ऐसे वैष्णाव की यह गति कैसे भई ? तब श्री-आचार्यजी महाप्रभुन ने कही, याके परलोक में तो कछु हानि नाही भई (परि) यह मेरी आज्ञा न मान्यो तातें ऐसो भयो। यह पहले जन्म में नन्दराय जी को भैंसा हतो। सो याके ऊपर श्रीठाकुरजी चढ़ते। सो याने एक दिन श्रीकुरजी के

पूंछ की मारी, ताकौ दंड भयो । और श्रीनन्दरायजी के इहां श्रीठाकुरजी को मंन्दिर बन्यो तब याकी पीठ पर पानी माटी बहोत ढुयो है ।

भाव प्रकाशः—यह कही यह जताए जो तहांहू भार उठायो और यहांहू भार उठायो । परन्तु प्रीति सों सेवा नांही करी जैसो अधिकार पूर्व को होय तैसोई कार्य बने ।

और गोबिन्ददास सारस्वत कल्प में नन्दरायजी के पास हथियार बाँधि के रहते । सो मथुरा में कंस को कर देते, सो इनके हाथ देते । लीला में इनको नाम 'मनसुखा' गोप है । सो श्री ठाकुर जी नें जब धोबी के वस्त्र लूटे मारे तब मनसुखा कंस को पैसा टका राखतो ताको लूंटिके मारग में बहोतन कों मारें । सो सब अधमरे दस पांच भए । सोऊ वैर भाव इनको चल्यो आयो ।

पाछें ये श्वेत बाराह कल्प भयो यानें श्रीनंदरायजी के घर भेंसा भए । ता बात कों पाँच हजार बरस भये । तहां श्रीठाकुरजी को पूंछ की दीनी, यह अपराध परयो । सो मथुरा को हाकिम मलेच्छ हतो । सो कंस को तोसा-खाना करतो । ताको गोविन्ददास ने मारें । जो याने नन्द-रायजी पास तें पैसा बहोत दियो है । और अब श्रीठकुरजी की सेज्या पर बेठ्यो । यह मारन लायक है । तातें मार और दस पांच अधमरे पहले किये । तिन सबन मिलके गोविन्ददास को मारे । सबको बैर छूट्यो । पाछे अब नन्द-राइजी पास फेरि गोप भये । या प्रकार कहि यह जताए

जो पिछुले बेर सों बेर होइ, पिछुले स्नेह सों स्नेह होइ। सो गोविन्ददास भल्ला एसे भगवदीय हते। इनकी वार्ता में यह सिद्धांत जताए जो-अहङ्कार न करनो। और अपुने हठ करि गुरु की आज्ञा उलङ्घन न करनो। और पुष्टिमार्गीय श्रीठाकुरजी की सेवा छोड़ि कें मर्यादा मार्गीय श्रीठाकुर जी की सेवा न करनी।

सो वे गोविन्ददास श्रीआचार्यजी महाप्रभु के एसे कृपापात्र भगवदीय हे। तातें इनकी वार्ता कहां तांई लिखिये। वैष्णव ११ (८४ मध्ये) (६६ मध्ये वैष्णव १६ भए)

શેઠ પુરૂષોત્તમદાસ

૧.ભૌતિક ઇતિહાસ+— શેઠ પુરુષોત્તમદાસ જ્ઞાતે 'ચોપડા' ક્ષત્રી હતા. તેમનો જન્મ વિ૦ સં૦ ૧૫૩૫ માં રાયપુર જીલ્લા ની અંદર આવેલ ચંપારણ્ય ની પાસેના ચતુર્ભદ્રપુર, (ચોડાનગર) માં થયો હતો. તે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી થી લગભગ એક બે માસ પછી જન્મ્યા હતા. એમના પિતાનું નામ 'કૃષ્ણદાસ' હતું = કૃષ્ણદાસ દ્રવ્ય સમ્પન્ન હોવાથી શ્રેષ્ઠિ-શેઠ-કહેવાતા . તેઓ 'રતનપુર' ના રાજા જગન્નાથસિંહદેવ (વિ૦ સં૦ ૧૪૧૭) ના વંશજ રાજા ભુવનેશ્વર ના અમાત્ય હતા×.

વિ૦ સં૦ ૧૫૩૩ માં મકરસંક્રાંતિના વિશેષ પર્વ ઉપર જ્યારે કૃષ્ણદાસ ત્રિવેણી સ્નાન અર્થે પ્રયાગ ગયા હતા ત્યારે ત્યાં દક્ષિણ થી આવેલ વેલ્લનાડુ શ્રી લક્ષ્મણ દીક્ષિત નો તેમને સમાગમ થયો હતો. એ સમયે દીક્ષિત જી ના આચાર વિચાર અને વિદ્વત્તા થી કૃષ્ણદાસે પ્રભાવિત થઇ તેમની પાસેથી 'ગોપાલ-મંત્ર' ની દીક્ષા લીધી હતી. દીક્ષાનન્તર તેમણે દીક્ષિતજીપાસેથી પુત્ર પ્રાપ્તિ નો વર પણ મેળવ્યો હતો*. ત્યાર પછી લક્ષ્મણ દીક્ષિત ત્યાંથી જ્યારે કાશી ગયા ત્યારે કૃષ્ણદાસ પુનઃ ચોડા-નગર આવ્યા હતા

+વાર્તા, ભાવપ્રકાશ, યદુનાથ દિગ્વિજય, વલ્લભદિગ્વિજય આદિ ગ્રન્થો ના આધારે.

="श्रेष्ठिनः कृष्णदासस्य शिष्यीभूतस्य यज्वनः।
पुरुषोत्तमदासेति शिशोर्नाम समर्पितम्। वल्लभदिग्विजयः।१२४॥

×" तत्रच राज्ञोऽमात्येन कृष्णदास श्रेष्ठि..."(यदु०दिग्वि०पृ.८)

*"अथाऽत्र महत्यां पर्वयात्रायां दीक्षितं,लक्ष्मणाऽऽचार्यं विरक्त जनैः समर्चितं समागतं श्रुत्वा श्रेष्ठी कृष्णदासः सपत्नीकः पुत्रार्थी समागतस्तदर्थं ययाचे तेन देवसमाराधनं कृत्वा वृत्तवरः प्रचालितः (व. दि. ५०)

વિ૦ સં૦ ૧૫૩૫ (ચૈત્રી) માં જ્યારે કાશી માં દશ-નામી સન્યાસીઓ અને મ્લેચ્છો વચ્ચે સંઘર્ષ થવાનો ભય જાગ્યો ત્યારે અન્ય જનતા ની માફક દીક્ષિતજી પણ કાશી છોડી ને સ્વદેશ જવા નિકલ્યા હતા. આ સમયે દીક્ષિતજી નાં સ્ત્રી ઇલ્લમાગારુ ગર્ભ સમ્પન્ન હતાં. તેમણે રાયપુર જીલ્લાના ચંપારણ્યમાં વ્રજ વૈશાખ વદી ૧૦ ઉપરાંત ૧૧ રવિવારની રાત્રિના પ્રથમ પ્રહરે બાલક ને જન્મ આપ્યો. આ બાલક તે જગદ્‌ગુરુ શ્રી મદ્‌વલ્લભાચાર્ય જી હતા. ત્યાર પછી દીક્ષિતજી તે બાલક ને લઈ ને કેટલાક દિવસ ચોડાનગર માં કૃષ્ણદાસ ને ત્યાંજ રહ્યા.

એ અરસા માં કૃષ્ણદાસ ને ત્યાં પણ એક પુત્ર નો જન્મ થયો. આ પુત્ર તેજ આપણા ચરિત્ર નાયક શેઠ પુરુષોત્તમદાસ હતા. કૃષ્ણદાસે પોતાના આ પુત્ર ને અતિ શ્રદ્ધાપૂર્વક લક્ષ્મણ દીક્ષિત ની સન્મુખમાંજ. જન્મથીજ યશ અને તેજ ને પ્રાપ્ત એવા શ્રીમદ્‌વલ્લભાચાર્યજી ના ચરણ માં સમર્પિત કર્યા.×

તદનન્તર કાશી ના ઉપદ્રવ શાંત થયે દીક્ષિતજી એ પુનઃ કાશી જવાના પોતાના વિચાર ને શ્રેષ્ઠિની સમક્ષ પ્રકટ કર્યો. એટલે શ્રેષ્ઠિએ રસ્તા ની આવશ્યક સર્વે તૈયારી ની સાથે ઘોડા મનુષ્ય આદિ નો પ્રબંધ કરી આપ્યો×.

×".. तस्य बालस्य प्रपत्तिः कारिता रक्षा च दत्ता ।
(य० दि० ६)

*ग्रामेशेन ततो दोला चापि समर्पिता ।
किंकराः पञ्चसंख्याका वीराश्च पथिरक्षिणः ।

(व० दि० १२७)

દીક્ષિતજી એ કાશી માં આવી ને ત્યાંજસ્થાયી નિવાસ કર્યો. પછી વિ૦ સં૦ ૧૫૪૦ માં જ્યારે શ્રીવલ્લભ પાંચ વર્ષ ના થયા ત્યારે લક્ષ્મણ ભટ્ટજી એ તેમને યજ્ઞોપવીત આપવાનો નિશ્ચય કર્યો. એ વાતની કૃષ્ણદાસ ને જાણ થતાં તેઓ કાશી આવ્યા અને યજ્ઞોપવિત નો સર્વ વ્યય પોતેજ કર્યો. એ પ્રકારે કૃષ્ણદાસે દીક્ષિત જી ને સેવા દ્વારા પ્રસન્ન કર્યા. પછી દીક્ષિત શ્રી લક્ષ્મણ ભટ્ટ જી ની આજ્ઞા ને પ્રાપ્ત કરી પુનઃ તેઓ 'ચોડા' ગયા.

વિ૦ સ૦ ૧૫૪૫ માં જ્યારે લક્ષ્મણભટ્ટજી ના દેહ ત્યાગ ને એક વર્ષ થયું હતું તે અરસા માં કૃષ્ણદાસ અમાત્ય પદ થી અવકાશ પ્રાપ્ત કરી કાશી આવી ને રહેવા લાગ્યા. એ સમયે તેમણે ભટ્ટજી ના કુટુંબ ની તપાસ કરી કિન્તુ ત્યાં કોઈ પ્રાપ્ત ન થયું. અહીં કૃષ્ણદાસે પોતાને રહેવાને અર્થે એક મકાન ખરીદ્યું અને તેમાં તે સહકુટુંબ રહેવા લાગ્યા. અહીં તેમણે શેઠ પુરુષોત્તમદાસ નું લગ્ન કર્યું. ત્યાર પછી લગભગ વિ. સં. ૧૫૪૮ માં કૃષ્ણદાસ નું અવસાન થયું. ત્યારથી શેઠ પુરુષોત્તમદાસ સ્વતંત્ર રીતે વાણિજ્ય આદિ કરવા લાગ્યા.

એ અરસા માં શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ને કન્નોજ ના દામોદરદાસ સંભરવાલાનો સમાગમ થયો. એમણે કૃષ્ણદાસ મેઘન દ્વારા સાંભળેલ શ્રી વલ્લભાચાર્યજી ના યશ ને શેઠ પુરુષોત્તમદાસ આગળ કહ્યો ત્યારથી શેઠ પુરુષોત્તમદાસ આચાર્યશ્રીના દર્શન ની પ્રતીક્ષા માં રહેતા હતા.

વિ. સં. ૧૫૫૦ ની આસ પાસ શેઠ પોતાના ઘર ને નવું બનાવવા તેનો પાયો ખોદાવ્યો. તેમાંથી તેમને અઢળક દ્રવ્ય અને એક શ્રીમદનમોહનજી નું સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયું. ઇતિહાસના

અનુસંધાન થી એમ અનુમાન થઇ શકે છે કે તે દ્રવ્ય પૂર્વેના કોઈ દટાઇ ગયેલા દશનામી સન્યાસી ના મઠ નું હોવું જોઇએ= ઘર નવું થયા પછી શેઠ તેમાં રહી શ્રીમદનમોહનજી ની શ્રદ્ધા પૂર્વક પૂજા કરવા લાગ્યા.

એવામાં વિ. સં. ૧૫૫૨ માં શ્રી મદ્દવલ્લભાચાર્યજી પોતાની પ્રથમ પૃથ્વી પરિક્રમા × સમાપ્ત કરતાં કાશી પધાર્યા. આપનું પધારવું સાંભળી શેઠ મણિ કર્ણિકા ઘાટ ઉપર આવી આપનાં દર્શન કર્યાં. અને કૃષ્ણદાસ મેઘન દ્વારા પરિચય પ્રાપ્ત કરી તે આપના સેવક થયા. પછી આપને પોતાના ઘરમાં પધારવા વિનંતી કરી.

એ સમયે શેઠ ને ત્યાં રુક્ષ્મણી અને ગોપાલદાસ ના જન્મ થઈ ચૂકયા હતા. એથી શેઠ શ્રીમદ્દવલ્લભાચાર્યજી ને પોતાને ત્યાં પધરાવી તે સર્વે ને સેવક કરાવ્યા. તેમજ શ્રીમદન-મોહનજી ને પુષ્ટ કરાવ્યા. ત્યારથી શેઠજી આપના અનન્યગામી સેવક બન્યા.

શેઠની વૈષ્ણવતા જોઈ ને શ્રીમદ્દવલ્લભાચાર્યજી એ તેમને જીવોને અષ્ટાક્ષરમંત્ર શ્રવણ કરાવવાની પણ આજ્ઞા આપી. સાથે સાથે તેમની પ્રીતિ ને વશ થઈ આચાર્યશ્રીએ તેમના ઘરનેજ કાશી ના નિવાસ તરીકે પસન્દ કર્યું. ત્યારથી શેઠ ના ઘરમાં આજ પર્યંત આપની બેઠક વિદ્યમાન છે.

આચાર્ય શ્રી એ શેઠ ને ત્યાંજ 'પત્રાવલંબન' ગ્રન્થ ની રચના કરી હતી. 'નંદમહોત્સવ' ના પ્રકાર ને પણ આપે સહુ થી પહેલા અહીંજ પ્રકટ કર્યો હતો. શેઠ આપની યાવ-જજીવન તન મન અને ધન થી સંપૂર્ણ શ્રદ્ધા સહિત નિષ્કામ ભક્તિ કરી.

= જુઓ શ્રી વિઠ્ઠલેશ ચરિત્ર પત્ર ની ફુટ નોટ × જુઓ વાર્તા

શેઠ માં વૈષ્ણવતા ના આદર્શ રૂપ ભક્તિભાવ ની સાથે સંતો ને ઉપયુક્ત એવાં ત્યાગ અને વૈરાગ્ય પણ દૃઢ હતાં. તેમણે મણિ નો તિરસ્કાર કરી સન્યાસી ઓથી પણ ન થઈ શકે એવા ભગવદાશ્રય વાલા અપૂર્વ ત્યાગનો પરિચય આપ્યો હતો એજ રીતે રાજાની સન્મુખ ગૌ સેવા અને સાદા જીવન ને નિઃસંકોચ રુપમાં પ્રકટ કરી જ્ઞાન વૈરાગ્ય ના આદર્શ ને પણ પ્રકટ કર્યો હતો. તેમનો સમગ્ર વ્યવહાર ભક્તિભાવ થી સમ્પન્ન હતો એ પણ તેમની વાર્તા થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે.

શેઠનો અન્તિમ સમય યદ્યપિ પ્રાપ્ત થતો નથી તથાપિ વાર્તા માં તેમની વૃદ્ધાવસ્થા નો ઉલ્લેખ હોઈ તેમણે લગભગ ૬૦—૭૦ વર્ષ ની ઉમર ને તો અવશ્ય પ્રાપ્ત કરીજ હશે એમ અનુમાન થઈ શકે છે. અને તેના આધારે તેમની ભૂતલ સ્થિતિ લગભગ વિ૦ સં૦ ૧૬૦૦ પર્યંત રહેલી હોવી જોઇએ.

શેઠ નાં પુત્રી રુક્ષ્મણી અને ગોપાલદાસ નો કોઈ વિશેષ ઇતિહાસ પ્રાપ્ત થતો નથી તથાપિ વાર્તા ના આધારે રુક્ષ્મણી નો જન્મ વિ૦ સં૦ ૧૫૪૯ લગભગ અને ગોપાલદાસ નો જન્મ વિ૦ સં૦ ૧૫૫૧ ની આસ પાસ થયો હોવો જોઇએ. કેમકે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી પ્રથમ પરિક્રમા કરી વિ૦ સં૦ ૧૫૫૨ માં કાશી પધારેલા નિશ્ચિત છે.* અને તેજ સમયે શેઠ પુરુષોત્તમ દાસે ઉભય ને નામ નિવેદન પ્રાપ્ત કરાવ્યું હતું. અતઃ પુરુષોત્તમદાસ ની તે સમય ની વય ૧૮ વર્ષ ની હોઈ ઉભય સંતતી ના જન્મ નો સમય ઉપર પ્રમાણેજ નિર્ધારિત થઈ શકે છે. શેઠ નું લગ્ન તેરવર્ષ ની વયે થયું હોય તો ૧૮ વર્ષ માં બે સંતતિ થવી સામાન્ય રીતે સ્વીકાર થઈ શકે તેમ છે અસ્તુ.

રુક્ષ્મણી અને ગોપાલદાસ ની ભૂતલ સ્થિતિ ક્યાં સુધિ રહી તેનો નિશ્ચય થઈ શકતો નથી. તોપણ "गङ्गा ને

रुक्मिणि पाई" એ શ્રી ગુસાંઇજી ના વાક્યથી રૂક્ષ્મણી નો અંતિમ સમય શ્રી ગુસાંઇજી ના તિરોધાન પહેલાં અર્થાત વિ૦ સં૦ ૧૬૪૨ પહેલા જ થયેલો નિશ્ચિત થાય છે. ગોપાલ દાસ તો વિરહ માંજ રહેતા હોવાથી તેમની ભૂતલ સ્થિતિનો સમય બહુ ઓછો હોવો જોઇએ.

શેઠ પુરૂષોત્તમદાસ ની ઉભય સંતતિ ભગવત્સેવા અને સ્મરણ નિષ્ઠ હતી. રુક્ષ્મણી ને માટે તો શ્રીગુસાંઇજી એ "इनसों श्रीठाकुरजी उरिन कबहू न होइगें"। એ પ્રમાણે આજ્ઞા કરી હતી એથી તેમની સેવા નિષ્ઠતા નો પરિચય મળી રહે છે. તેનું કેટલુંક સેવા વિષયક વિશેષ વર્ણન "ભાવસિંધુ" થી પણ પ્રાપ્ત થઇ રહે છે. ગોપાલદાસ ભક્તની સાથે કવિ પણ હતા. તેમણે શ્રીમદાચાર્ય ચરણ અને શ્રી ઠાકુરજી નાં કેટલાંક પદ પણ ગાયાં છે. જેનો કાવ્ય પરિચય "પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત કવિ" માં હવે પછી આપવામાં આવશે.

૨. વાર્તા સ્વારસ્ય—પ્રથમ ભાગ "વાર્તા - રહસ્ય' પૃષ્ઠ ૬ ઉપર આપેલા દ્વાદશાંગ રૂપ વાર્તા-કોષ્ઠક ને અનુસાર શેઠ પુરૂષોત્તમદાસ ની વાર્તા શ્રીમદાચાર્યચરણ ના શિર સ્વરૂપ પુષ્ટિમુક્તિ (મોક્ષ) રૂપા છે.

શ્રીમદાચાર્યચરણ શ્રીભાગવતના મુક્તિ- લક્ષણ માં "निष्प्रपञ्चानां स्वरूप- लाभो मुक्तिः" એ પ્રમાણે ભક્તો ના "સ્વરૂપલાભ" ને મુક્તિ કહેલી છે. આ સ્વરૂપલાભ તે ભક્તોની પોતાના આધિદૈવિક મૂલ રૂપમાં સ્થિતિ થવી તે છે. આ સ્થિતિ બે પ્રકારે થાય છે. એટલે તે મુક્તિ દ્વિવિધ ધર્મરૂપ પણ છે.

"સ્વરૂપલાભ" રૂપ મુક્તિ નું એક ધર્મરૂપ જીવ કૃતિ સાધ્ય 'સાયુજ્ય મુક્તિ' છે. એમાં માર્ગનિષ્ઠાએ, ક્રમેકરી, જીવ

નો કૃષ્ણ સંબંધ દ્વારા પરમાનંદમાં પ્રવેશ થાય છે.* એનું બીજું ધર્મ રૂપ ભગવત્કૃતિ સાધ્ય 'સાદ્યો મુક્તિ' છે. એમાં સાધન ક્રમ રહિત જીવ માં પ્રમેય બળે શ્રી કૃષ્ણ અત્યંત કૃપા યુક્ત થઈ પ્રવેશ કરે છે.= આમ સ્વરુપ લાભ વાળી મુક્તિ નાં બે ધર્મ રૂપો પણ પ્રાપ્ત છે.

શેઠ પુરૂષોત્તમદાસની વાર્તા માં મુક્તિ નું 'સ્વરૂપલાભ' વાળું લક્ષણ આ પ્રકારે કહેવામાં આવ્યું છે—

"और सेठि पुरुषोत्तमदास एक दिन मन्दिर में बैठे हे। मन्दिर- वस्त्र करंत हते। सो दूरि तें गोपालदास देखि के मन में विचार कियो, जो अब सेठिजी वृद्ध भए हैं। तातें अब मैं सेवा में तत्पर होऊं। तब गोपालदास न्हाइ आए। तब सेठिने गोपालदास के मन की बात जानि कै बुलाए। बेटा! आगे आउ तब गोपालदास निकट आइकें देखे तो बीस-पचीस वर्ष के सेठि हैं। तब सेठि पुरुषोत्तमदास ने गोपालदास सों कही जो, भगवदीय सदा तरुन हैं। परन्तु जो अवस्था होइ ताकों मान दियो चाहिए। तातें आजु पाछें एसी मन में मति लाइयो।"

આ પ્રસંગ માં શેઠ પુરુષોત્તમદાસે પોતાના મૂળ આધિ-દૈવિક ભગવદીય રૂપ ને સ્પષ્ટ કર્યું છે. એ થી તેમનો 'સ્વરૂપ-લાભ' પ્રકટ થઈ રહે છે. તેમણે પોતાના વિશેષ સામર્થ્ય દ્વારા ગોપાલદાસ ના હ્રદય ની વાત ને જાણી પોતાના સ્વરૂપલાભ રૂપ ભગવદીયત્વ નો તેને પણ અનુભવ કરાવ્યો છે.

---

* તથા જુઓ શ્રી હરિરાયજી કૃત "મુક્તિ દ્વૈવિધ્ય નિરૂપણ" ગ્રન્થ.

ભગવદીયો ની સર્વજ્ઞતા સ્વતઃ સિદ્ધ હોય છે. તે ન કેવલ જીવોનાજ હૃદય ની વાત ને જાણી શકે છે કિન્તુ ભગવાનના હૃદયની પણ વાત ને સહજ માં જાણી લે છે. એથી અહીં ગોપાલદાસ ના હૃદય ની વાત ને શેઠ પુરુષોત્તમદાસે જાણી તે કોઈ આશ્ચર્ય જનક ન થી. કૃષ્ણદાસ મેઘન, દામોદર દાસ સંભરવાલા આદિ ભકતો એ શ્રીમદાચાર્યચરણના હૃદય ની વાત ને પણ જાણી લીધી છે એ પૂર્વે વાર્તા થી જ્ઞાત છે. "पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः" એ આચાર્ય વાકય જ્યાં પુષ્ટિ પુષ્ટિ ભકતો માં "સર્વજ્ઞતા" ના લક્ષણ ને કથે છે ત્યાં શેઠ પુરૂશોત્તમદાસાદિ નિર્ગુણ શુદ્ધ પુષ્ટિભકતો માં સર્વજ્ઞતા હોય તેમાંતો આશ્ચર્યજ શું ?

પ્રશ્ન—અહીં એક પ્રશ્ન એ થઈ શકે છે કે શ્રીમદ્ભાગવતના મુકિતલક્ષણનું તાત્પર્ય તો કૃત્રિમ ભૌતિક રૂપો ને છોડી ને ભકત ની મૂળ રૂપમાં સ્થિતિ થવી એમ છે. કિન્તુ અહીં શેઠ નું તે ભૌતિક રૂપ છુટ્યું નથી. તેથી મુકિત લક્ષણ અત્રે ફલિત થતું નથી

સમાધાન—ઉકત શંકા ઠીક નથી. કેમકે શુદ્ધ પુષ્ટિ ભકતો આ દેહમાંજ પોતાના મૂળ અલૌકિક રુપની પ્રાપ્તિ કરી મુકત દશા ને પ્રાપ્ત થયેલા હોય છે. યદિ જો તેઓ આ દેહ ને છોડી ને સ્વરૂપલાભ રુપ મુકિત ને પ્રાપ્ત થાય તો અન્ય મર્યાદા ભકતો કરતાં તેમની વિલક્ષણતા સિદ્ધ થઈ શકે નહીં. પરન્તુ "સર્વત્રોત્કર્ષના કથન થી પુષ્ટિ નો નિશ્ચય થાય છે ' એ શ્રીમદાચાર્ય ચરણ ના વાકય ને અનુસાર આ ભકતો ' માં

ઉત્કર્ષતા થી પુષ્ટિ નું જ્ઞાન થવાને માટે તેમનામાં મર્યાદા થી વિલક્ષણતા રહેવી આવશ્યક છે. અત: અહિં શેઠ ના ભૌતિક દેહમાંજ અલૌકિક રુપ ના 'સ્વરૂપલાભ' રુપ મુક્તિ નું દર્શન કરાવવા માં આવ્યું છે. પુષ્ટિ ભક્તોના આ ભૌતિક દેહમાંજ અલૌકિકતા પ્રાપ્ત થઈ રહે છે તેનો પ્રકાર શ્રીહરિરાયજી એ "સ્વમાર્ગીય ભાવના નિરૂપણ" ગ્રન્થ માં આ રીતે વર્ણવ્યો છે-

"પુષ્ટિ ભક્તો માં વિયોગરસની સ્થિતિ હોય છે. તે સ્વતાપવડે ભૌતિક દેહ ને તપાવી તેમાં રહેલા મલાદિક ને દૂર કરે છે. એ થી અગ્નિ ના સંબંધ થી જેમ કાષ્ઠ તેજોમય બને છે તેમ તે દેહ તેજોમય બને છે. આ વિયોગાગ્નિ સ્વરુપાત્મક હોવાથી દેહ નો નાશ કરતો નથી કિન્તુ દેહ ને મૂર્તિવત્ અધિષ્ઠાન રૂપ કરી તેમાં સમાન આકાર થી આત્મા રુપે પ્રવેશે છે. એથી તે તદ્રૂપ થઈ અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થાય છે.*

પ્રશ્ન—અહીં એક અન્ય પ્રશ્ન પણ ઉપસ્થિત થઈ રહે છે. તે એકે જ્યારે આ દેહ માં અલૌકિકતા પ્રાપ્ત થાય છે. તો તેનો ત્યાગ કેવીરીતે અને કેમ સંભવે ?

સમાધાન—પુષ્ટિ ભક્તો ના દેહ નો ત્યાગ ભગવદ્ ઇચ્છા ઉપરજ અવલંબિત છે. જે ભક્તો માટે ભગવદ્ ઇચ્છિા દેહત્યાગ

---

* "प्रकारस्तु पूर्व देहान् स्वतापेन शुद्धान् विधाय तत्स्थितं मलादि दूरीकृत्य वह्नि संबंधेन काष्ठमिव तेजोमयं विधाय, यथा वियोगाग्निना नाशो न भवति तदात्मकत्वात्, मूर्तिवदधिष्ठानत्वेन तन्निर्माय तत्र भावात्मा बहिःप्रकटसमाकारः सर्वलीलाविशिष्टः प्रविशतीति ।"

—શ્રીહરિરાયજી

ની હોય છે તેજ દેહ ત્યાગ કરે છે. જેને અર્થે તે નથી હોતી તે ભક્ત સદેહે પણ લીલા માં જઈ શકે છે. સદેહે લીલા માં ગયા નાં દૃષ્ટાંતો ગોવિંદસ્વામી પ્રભૃતિ નાં પ્રાપ્ત છે. જે ભક્તો ભગવાન ની ઇચ્છા ને જાણી ને દેહ ત્યાગ કરે છે તેઓ આ કાલ ને ભગવાન ની ઇચ્છા શક્તિ રૂપ સમજીનેજ તેનો કેવળ આદર માત્ર કરે છે. અન્યથા તે અસાધારણ અવસ્થા માં કાલ નું અતિક્રમણ પણ કરી શકવાના સામર્થ્ય વાળા હોય છેજ 'તેને કાલ કર્મનવ બાધેરે યમને શિર ધનુષ નસાંધેરે' એ વલ્લભાખ્યાનનાકથનની સાથે 'पुष्टिः कालादिबाधिका' વાળું- આચાર્ય વાક્ય પણ અત્રે સ્મરણીય છે. અત્રે કાલ ને આઠ વાર પાછો ફેરનાર ડાકરી નું સ્મરણ પણ આવશ્યક છે.શેઠ પુરુષોત્તમદાસે પણ "परन्तु जो अवस्था होइ ताकौ मान देनो चाहिये।" આ શબ્દોમાં ઉક્ત અભિપ્રાય નેજ સ્પષ્ટ કર્યો છે.

બીજું પુષ્ટિ ભક્તો ના આ દેહ માં અલૌકિકત્વ પ્રાપ્ત થયે તેનો ત્યાગ જો કે સંભવતો ન થી તો પણ પ્રભુની ઇચ્છા ને જાણી ને પુષ્ટિ ભક્તો, પ્રભુની સમાન પોતાના કર્તુંમ, અકર્તુંમ, અન્યથા કર્તુંમ સર્વ સામર્થ્ય રૂપ થી તેનો ત્યાગ કરી શકે છે. ત્યાગ ની સમયે તે તેમાં રહેલા અલૌકિકત્વ નું સંવરણ કરી તેને પુનઃ કેવળ પંચભૌતિક કરી દે છે. એ તેમનું કર્તુંમ્ અકર્તુંમ્ અને અન્યથા કર્તુંમ્ સામર્થ્ય છે. અલૌકિકતા ને પ્રાપ્ત થયા પછી પણ વ્રજ ભક્તો એ દેહ ને છોડવાનું શ્રીસુબોધિની પ્રભૃતિમાં પ્રાપ્ત છે.* અતઃ ભગવાનની સમાન ભગવદ્ ભક્તો માં પણ વિરુદ્ધ ધર્માશ્રય વાળું સામર્થ્ય રહેલું દેખાઈ આવે છે. એથીજ શ્રીમદાચાર્યચરણે ભગવાન અને પુષ્ટિભક્તો માં સંપૂર્ણ અભેદ બતાવ્યો છે. કેવલ લીલા સિદ્ધયર્થેજ તેમાં ભિન્નતા રહેલી દેખાય છે.

---

*જુઓ ભ્રમરગીત અધ્યાય ૪૩ શ્લોક ૫ ની શ્રીસુબોધિની.

स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ।
तथापि यावता कार्यं तावत् तस्य करोति हि ।" (पु. प्र. म.)

આમ શેઠ પુરુષોત્તમદાસની વાર્તા માં એકાદશસ્કંધીય મુક્તિ લક્ષણ થી પુષ્ટિમુક્તિ નું મૂળ-ધર્મી રુપ કહેવામાં આવ્યું છે. આ પ્રકારની મુક્તિજ ધર્મી સ્વરૂપ શ્રીમદ્આચાર્યચરણના શિર રૂપ છે.

ઉક્ત મુક્તિ ના દ્વિવિધ ધર્મ રુપ 'સાયુજ્ય' અને 'સદ્યો' મુક્તિ શેઠ ની પુત્રી રુક્ષ્મણિ અને શેઠ ના પુત્ર ગોપાલદાસની વાર્તાઓ માં કહેવાયેલ છે. પૂર્વોક્ત 'સાયુજ્ય મુક્તિ' રૂક્ષ્મણિ ની વાર્તા માં આ પ્રકારે કહેવાઈ છે—

"सो रुक्मनि ने सेठि पुरुषोत्तमदास सों कह्यो जो- तुम कहो तो कातिक स्नान करूं । तब सेठि ने कही, करो । .. सो रुक्मनि पहररात्रि पिछली सों उठि नित्य नेग तें अधिक सामग्री करै । सो मङ्गला तें राजभोग पर्यंत आरोगावै । पाछे उत्थापन तें सेन पर्यंत आरोगावै । एसे करत कितनेक दिन बीते तब सेठि ने रुक्मनि सों पूछे, जो कार्तिक न्हात तोकों कबहू देख्यो नाही । तू गंगाजी कौन समय न्हात है । तब रुक्मनि कही, मेरे कार्तिक न्हाइवे को कहा काम है ? मैं तौ याही भांति न्हात हों ।"

આ ઉદ્ધરણ માં સાયુજ્યમુક્તિ નાં "માર્ગનિષ્ઠા" "સાધન ક્રમ" "કૃષ્ણ સંબંધ" અને "પરમાનન્દ માં પ્રવેશ" એમ ચાર તત્ત્વો પૈકીના પ્રથમ નાં બે તત્ત્વો સ્પષ્ટ થયેલાં છે. કાર્તિકાદિ સ્નાનના નિમિત્તે રુક્ષ્મણિ એ ભગવાન ને જે વિવિધ અને વિશેષ સામગ્રીઓ અરોગાવી તે તેની માર્ગ ઉપર ની

નિષ્ઠા ની સૂચક છે. કેમકે તેણે કાર્તિકાદિ સ્નાન ના ફલ ની જરા પણ અપેક્ષા રાખ્યા વિના એક માત્ર શ્રીહરિનેજ સમ્પ્રદાયના સિદ્ધાંત ને અનુસાર નિષ્કામ ભાવે સામગ્રી અરોગાવી તે માર્ગ ની નિષ્ઠા નેજ સ્પષ્ટ કરે છે. એજ પ્રકારે તેણે શ્રીહરિ ની મંગલા થી સેન પર્યંત ના ક્રમ ને અનુસાર તનુ વિત્તજા સેવા કરી સમ્પ્રદાયના સાધન ને પણ સ્પષ્ટ કર્યું છે. એનો ઉલ્લેખ પણ ઉક્ત ઉદ્ધરણ માં મળી આવે છે. આમ રૂક્મણી મા "સાયુજ્ય મુક્તિ" ના પ્રારંભનાં બે તત્ત્વો ઉક્ત કથન થી સ્પષ્ટ થયા છે. તેનું ત્રીજું તત્ત્વ જે "કૃષ્ણ સંબંધ" તે તેના ચોવિસ વર્ષે શ્રીગુસાંઇજી ના દર્શન અર્થે ગંગા સ્નાન કરવા આવ્યા ના વાર્તાના પૂર્વ ઉલ્લેખ થી સ્પષ્ટ થઈ જાય છે. તેને શ્રીકૃષ્ણની સેવા માં એવી તો આસક્તિ હતી કે તદતિરિક્ત અન્ય કોઈ પણ પ્રકાર નો સંબંધજ પ્રાપ્ત ન હતો. એથી એ સેવા દ્વારા કૃષ્ણ નો સંબંધ તેને સારી રીતે સિદ્ધ થયો હતો એ સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. એની વિશેષ પુષ્ટિ શ્રીગુસાંઇજી ના "इनसों श्री ठाकुरजी उरिन कबहू न होइंगे ।" એ કથન થી થઈ રહે છે. આ વાક્ય માં પ્રાપ્ત "उरीन" શબ્દ રુક્ષ્મણી અને શ્રીઠાકુરજીના સાક્ષાત સંબંધ નો પણ સૂચક છે. જેમ વ્રજભક્તો ના સાક્ષાત્ પ્રેમ થીજ શ્રીકૃષ્ણ તેમના સદા ને માટે રૂણી થયા છે તેમ રૂક્ષ્મણી ના પણ સાક્ષાત્ પ્રેમથીજ શ્રીઠાકુરજી તેજ પ્રકારે રુણી થયા છે. એથી ઉભય વચ્ચે સાક્ષાત્ સંબંધ રહેલો જણાઈ આવે છે. એતદર્થે શ્રી હરિરાયજી એ પણ ત્યાં ના "ભાવપ્રકાશ" માં તેજ ભક્તો નુંજ દૃષ્ટાંત આપ્યું છે. સાયુજ્ય મુક્તિ નું ચોથું તત્ત્વ "પરમાનંદમાં પ્રવેશ" છે. તે "गंगा ने रुक्मनि पाई" એ શ્રી ગુસાંઇજી ના વાક્ય થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. અહિ શ્રીગુસાંઇજી એ ભગવત્ચરણોદક સ્વરૂપીની ગંગા થી પણ રૂક્મણિ નો વિશેષ ઉત્કર્ષ પ્રકટ કર્યો છે.

ભગવત્ચરણોદક થી વિશેષ ઉત્કર્ષ ભગવાન સિવાય અન્ય નો સંભવે નહિં. અતએવ રુકમણી નો પરમાનંદ સ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણ માં પ્રવેશ નિશ્ચિત થયેલો છે. એથીજ ગંગાની અપેક્ષા રુક્મણી નો ઉત્કર્ષ વિશેષ કહેવાયો છે. આમ "સાયુજ્ય મુકિત" નાં ચારે તત્ત્વો રુક્મણીની વાર્તા માં સ્પષ્ટ હોઈ આ વાર્તા તે મુકિત ને સ્પષ્ટ કરનારી છે.

ગોપાલદાસની વાર્તા માં "સદ્યોમુકિત" નું નિરૂપણ છે. એમાં પૂર્વ કથન ને અનુસાર સાધન ક્રમ નો અભાવ હોય છે. તેમાં કેવળ પ્રમેય બલે શ્રીકૃષ્ણ અત્યંત કૃપાયુકત થઈ જીવમાં પ્રવેશે છે. આ પ્રકારની 'મુકિત' ગોપાલદાસ ની વાર્તા માં આ પ્રકારે પ્રાપ્ત થઈ રહે છે—

"श्रौर गोपालदास कों रात्रि कों नींद आवती । फेरि चौकि के बिरह में पुकारते, श्रीमदनमोहन जी ! तब मन्दिर सों श्रीठाकुर जी कहते क्यों पुकारत हो ? मैं तो तेरे निकट हों।......या प्रकार विरह में गोपालदास मन्दिर कौ ताला लगाइ, चोक कौ ताला लगाइ, चौखटि पर माथो धरि एक वस्त्र बिछाइ विरह में परे रहतें।"

આ ઉદ્ધરણ માં ગોપાલદાસના સાધન ક્રમ નો અભાવ સ્પષ્ટ છે. તેમને સાધનની અપેક્ષા રાખ્યા વિના શ્રી કૃષ્ણે અત્યંત કૃપાવંત થઈ પ્રમેય બળે વિરહ નું દાન કર્યું હતું. અને તે વિરહ દ્વારા શ્રીકૃષ્ણેજ તેમનામાં પ્રવેશ કર્યો હતો. એથીજ જ્યારે જ્યારે ગોપાલદાસ વિરહ માં વિકલ થઈ પ્રભુને પુકારતા ત્યારે ત્યારે પ્રભુ અવાજ દઈ તેમનું સમાધાન કરતા. વાર્તા માં આવેલુ "मोसो तेरो बिरह सह्यो नहिं जात" એ પ્રભુનું

વાક્ય અત્યંત કૃપા નું સૂચક છે. વિરહ નું દાન પ્રમેય બળ વિના પ્રાપ્ત થતું ન થી. અતઃ પ્રમેય બલ પણ અત્રે સ્પષ્ટજ છે. અને શ્રીમદનમોહનજી સમય સમય ઉપર અનોસરમાં પણ તેમનું સમાધાન કરતા તે ગોપાલદાસ માં શ્રીકૃષ્ણ ના પ્રવેશ નું સૂચક છે. ગોપાલદાસ ના હૃદય માં પ્રભુએ સારી રીતે પ્રવેશ કર્યો હતો ત્યારેજ શ્રીઠાકુરજી તેમનું હરેક સમયે સમાધાન કરતા. આમ આ વાર્તા માં "સદ્યો મુકિત" નું સ્પષ્ટ નિરૂપણ છે. આ ત્રણે વાર્તાઓ ને સમજવા અર્થે અહીં એક કોષ્ટક આપવામાં આવે છે.—

પરમફલ રૂપ

ધર્મી

શ્રીમદાચાર્યચરણનું 'શિર' અંગ તે

પુષ્ટિમોક્ષ

(શેઠ પુરુષોત્તમદાસ)

એ પુષ્ટિ મોક્ષ ના ધર્મ રૂપ

"સાયુજ્ય મુક્તિ"	"સદ્યોમુક્તિ"
(જીવકૃતિ થી સાધ્ય)	(ભગવત્કૃતિથી સાધ્ય)
રૂક્મણી—સાધન	ગોપાલદાસ—ફલ
(સંયોગાત્મક)	(વિયોગાત્મક)
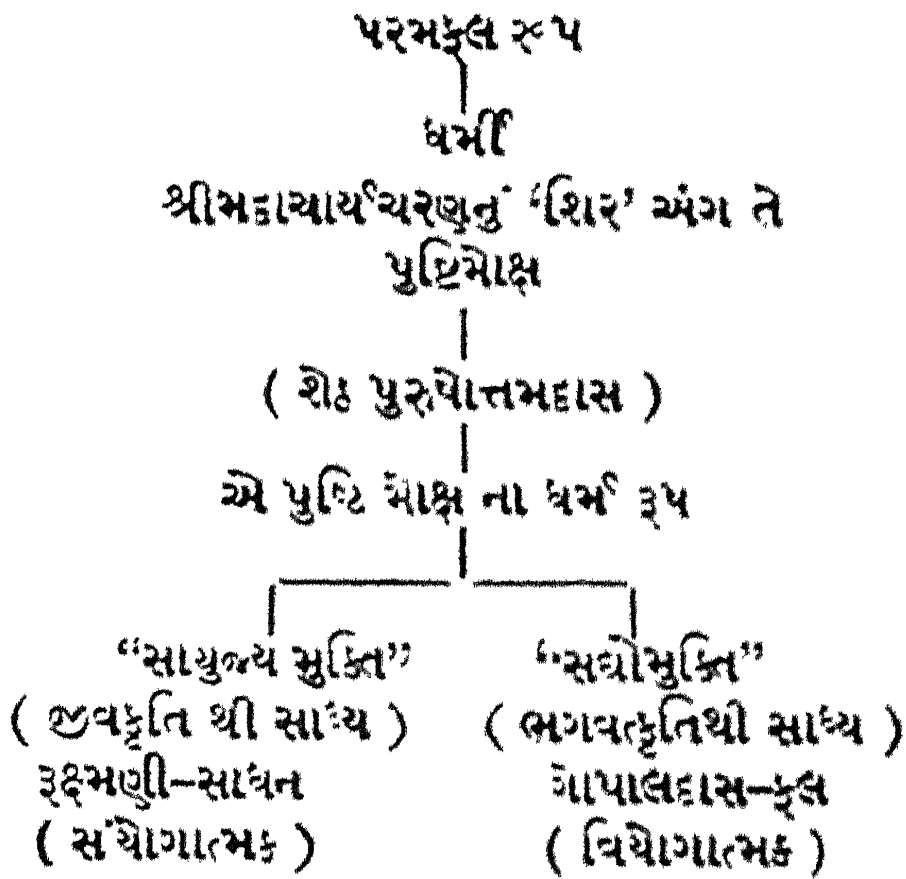
આ પ્રકારે શ્રીમદાચાર્યચરણે પુરુષોત્તમદાસ માં પુષ્ટિ મુકિત ને સ્થાપી તેમની દ્વારા મર્યાદા મુકિત ક્ષેત્ર કાશી માં તેને પ્રકટ કરી. એથી પુષ્ટિ ની ઉત્કર્ષતાએ આપનો યશ કાશી માં પણ ફેલાયો અને તે દ્વારા આપનું મસ્તક શિવપુરી કાશી

માં પણ સદા ઉન્નતજ રહયું. કાશી માં આપે કરેલા ધ્વજા-રોહણ નો સંકેત પણ આનુંજ સૂચનકર્તા છે.ત્યારથીજ કાશીમાં આજ પર્યન્ત પુષ્ટિ ની વિજય પતાકા ફરહરાય છે. અને ત્યાં આજ પણ માયાવાદી શૈવો માં યે આંશિક ભકિત જોવામાં આવે છે. એ પુષ્ટિ ભક્તિ નો પ્રકટ વિજય છે.

અન્યત્વે, આ ત્રિવિધ ધર્મ ધર્મી મુકિત રૂપ ત્રણે ભગવદીયોનાં ફલ રૂપા માનસી સેવા ના મધ્ય ફલ રૂપ ત્રણ રૂપો આ પ્રકારે છે—

"सेवायां फलत्रयं; अलौकिक सामर्थ्यं, सायुज्यं, सेवोपयोगी देहो वा वैकुण्ठादिषु ।" એ આચાર્ય કથન ને અનુસાર "અલૌકિક સામર્થ્ય" રૂપ પ્રથમ ફલ શેઠ પુરુષોત્તમદાસ માં સિદ્ધ થયેલ છે. આ "અલૌકિક સામર્થ્ય" તે સર્વાભોગ્ય સુધા ધર્મી રૂપ આનન્દ છે. દ્વિતીય 'સાયુજ્ય' ફલ રૂકિમણી માં સિદ્ધ થયેલ છે. આ 'સાયુજ્ય' તે ભગવદ્દભોગ્યા સુધા ધર્મભૂત આનન્દ પ્રભુ અપ્રધાનીભૂય ભક્ત પરવશ છે. તૃતીય "સેવોપયોગી દેહ વા વૈકુણ્ઠાદિષુ" ફલ ગોપાલદાસ માં સિદ્ધ થયેલ છે. આ ફલ તે દેવભોગ્યા સુધા ધર્મભૂત આનન્દ પ્રભુ પ્રધાનીભૂત સ્વવશ છે. જેમ સ્વર્ગ ફલ ની મધ્યે અમૃત પાનાદિ છે.તેમ માનસી ફલ રુપ મધ્યે આ ત્રણ ફલ છે.*

૩. **પ્રસંગોનું પરિશિષ્ટ રહસ્ય**—શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ની વાર્તા પૂર્વોક્ત પ્રકારે પુષ્ટિ મુક્તિ મોક્ષ રુપ છે. આ મોક્ષ શુદ્ધ પુષ્ટિ અવસ્થા રુપ હોઈ તે પરમફલ રુપ ધર્મી વિપ્રયો-

*श्री द्वारकेशजी की भाव भावना पृष्ठ २०

ગાત્મક શ્રીમદાચાર્યચરણના સ્મરણ ભજન સ્વરૂપા છે.* આ સ્મરણ ભજન ની પૂર્ણતા જ્ઞાપનાર્થ આ વાર્તા માં ષડૈશ્વર્ય યુક્ત ધર્મી ની સાથે અન્ય ધર્માદિ પુષ્ટિના ત્રણ પુરુષાર્થો નું પણ નિરૂપણ કરાયેલ છે. અત્રે ષડૈશ્વર્યો દ્વારા જેમ શ્રીમદાચાર્ય ચરણના સ્મરણ ને સિદ્ધ કરેલ છે. તેમ ધર્મી યુક્ત ત્રણ પુરુષાર્થો દ્વારા આપના ભજન ને સ્પષ્ટ કરેલ છે. આ ધર્મી સ્વરૂપલાભ વાળી મુક્તિ નું તાદાત્મ્યભાવવાળું દ્વિતીય અભિન્ન રૂપ તે પુષ્ટિ (સદ્યો) મુક્તિજ છે. આમ ષડૈશ્વર્ય સહિત ધર્મી-મોક્ષ-ની સાથે અન્ય ત્રણ પુરુષાર્થો ના નિરૂપણ થી દસ તત્ત્વ પ્રાપ્ત થાય છે. એથી આ વાર્તા માં દસ પ્રસંગોજ કહેવાયલા છે. તે દસે નું રહસ્ય આ પ્રકારે છે.

પ્રસંગ—૧. આ પ્રસંગ માં તામસ મૂઢ જીવોના ઈશ્વર રૂપ મહાદેવ ની પ્રસાદ-યાચના દ્વારા શેઠ માં રહેલ શ્રીમદાચાર્ય ચરણના 'ઐશ્વર્ય' ધર્મ નું સ્મરણ કરાયેલ છે. આ 'ઐશ્વર્ય' તે પુષ્ટિ ના ઉત્કર્ષ રૂપ છે.

પ્રસંગ—૨. આ પ્રસંગ માં મહાદેવ અને કાલ ભૈરવ જેવા સમર્થ દેવો દ્વારા ભય પૂર્વક શેઠ ના ઘરની કરાયલી રખવાલી તે શેઠ માં સ્થિત શ્રીમદાચાર્યચરણ ના 'વીર્ય' ધર્મ ના સ્મરણ રૂપ છે.

પ્રસંગ—૩. સ્માર્ત્ત ધર્મ જેને મહાદેવના સાક્ષાત્કાર રૂપ થી ફલિત થયેલો છે. એવા બ્રાહ્મણનો પણ શેઠ 'પુષ્ટિમાર્ગ'

---

* "अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः । स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः ।" એ આચાર્ય વાક્ય માં ઉક્ત પ્રકારના પુષ્ટિ મોક્ષનું નિરૂપણ છે. એનું વિસ્તૃત વિવેચન અમારા તરફ થી પ્રસિદ્ધ થયેલ 'પુષ્ટિ-માર્ગ' માં આવેલ છે જીજ્ઞાસુ એત્યા જોવું

માં કરાવેલ પ્રવેશ તે તેમનામાં સ્થિત શ્રીમદાચાર્યચરણના 'યશ' ધર્મ ના સ્મરણ રૂપ છે.

પ્રસંગ—૫. આ પ્રસંગમાં મંદારમધુસૂદન ઠાકુર નું ચિંતિત દ્રવ્ય આપનાર અમૂલ્ય મણી દ્વારા લલચાવવું છતાં શેઠ નું આશ્રય સ્વરૂપ શ્રીહરિમાંજ એક માત્ર પરમ વિશ્વાસ થી તેના તાદ્દશ રૂપ (આશ્રય) ને પ્રાપ્ત થવું તે તેમના માં સ્થિત શ્રીમદાચાર્યચરણના 'શ્રી' ધર્મ ને સ્મરણ કરાવે છે. "श्रियो हि परमाकाष्ठा सत्रकास्ताद्दशा यदि" એ વાકય અત્રે સ્મરણીય છે.

પ્રસંગ—૭. રાજા ની સન્મુખ પણ શેઠ દ્વારા થયેલ રાજસી સ્વભાવ નું પરિવર્તન અર્થાત્ રાજ વિવેક ને અનુસાર કરવાં જોઇતાં કાર્યો નું સહજ વિસર્જન તે તેમના માં સ્થિત શ્રીમદાચાર્યચરણનાં 'જ્ઞાન' ધર્મ ને સ્મરણ કરાવનાર છે. જ્ઞાન-દૃઢ થયા વિના સ્વભાવનું પરિવર્તન શકય નથી 'मग्न-गतय: એ વાકય અત્રે સ્મરણીય છે.

પ્રસંગ ૧૦—ભગવત્પ્રીત્યર્થ મામા આદિના આગ્રહ રૂપ લોક સંબંધ નો તેમજ ગયા યાત્રા રૂપ વેદ સંબંધ નો અહિં કહેવાયલો સહજ ત્યાગ તે શેઠ માં સ્થિત આચાર્યશ્રી ના "વૈરાગ્ય" ધર્મ ના સ્મરણ રૂપ છે.

પ્રસંગ ૪—આ પ્રસંગ માં ધર્મી નું નિરૂપણ છે. આ ધર્મી તે પુષ્ટિ મોક્ષ રૂપ ચતુર્થ પુરુષાર્થજ છે. અહિં કહેલો શેઠ નો 'સ્વરૂપલાભ તે પૂર્વ કથન ને અનુસાર પુષ્ટિ મુક્તિ રૂપ છે.

આ ધર્મી રૂપ હોવાથી તેમાં અન્તર્ગત પણાએ ષૈશ્વર્ય ની પણ આ પ્રકારે સ્થિતિ કહેલી છે—

૧. ઐશ્વર્ય—ગોપાલદાસ માં થયેલ લોક બુદ્ધિ રૂપ અજ્ઞાન ને દૂર કરવું તે ઐશ્વર્ય. ૨. વીર્ય- પોતાના અલૌકિક રૂપ ને પ્રકટ કરવું તે વીર્ય. ૩. યશ—ગોપાલદાસ ને તે સ્વરૂપ-નો સારી રીતે અનુભવ કરાવવો તે યશ. ૪—શ્રી ભગવદીય ના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવું તે શ્રી ૫—જ્ઞાન-મન્દિર વસ્ત્ર કરવું તે જ્ઞાન. (મંદિરવસ્ત્ર કર્યા થી હૃદયની શુદ્ધિ થાય છે. એતદર્થ તે જ્ઞાન રૂપ છે.) ૬. વૈરાગ્ય—ભગવદ્ ઇચ્છા રૂપ કાલ નું-પરિપાલન તે વૈરાગ્ય.

ઉક્ત પ્રકારે અત્રે પ્રાસંગિક ષૈશ્વર્યાં નું નિરૂપણ છે હવે ધર્માદિ ચતુર્વિધ પુરુષાર્થ રૂપ ધર્મા વિપ્રયોગાત્મક શ્રીમદા-ચાર્યચરણના ભજન ને કહેવામાં આવે છે.

પ્રસંગ ૬—

ધર્મ— सर्वदा सर्व भावेन भजनीयो व्रजाधिपः
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाच न ।

એ શ્રીમદાચાર્યચરણ ના કથન ને અનુસાર પ્રસંગ ૬ માં કહેલ ભગવત્સેવા તે અત્રે "ધર્મ" રૂપ છે. એમાં શ્રીમદા-ચાર્યચરણ ની ભાવના એ શેઠ કરેલી શ્રીમદનમોહનજી ની સેવા તે પુષ્ટિ ધર્મ ના યે મર્મ રૂપ છે. કેમકે પુષ્ટિસ્થ જીવો માં જે દીનતા એક માત્ર ફલાત્મક સાધન રૂપ હોય છે. એ દીનતા ને શેઠ પુરુષોત્તમદાસે "इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः" એ દાસ્યભાવ રૂપ શ્રીમદાચાર્યચરણ પ્રતિની દાસત્વ ભાવ વાળી સેવા દ્વારા સિદ્ધ કરી છે. એથી તેમના માં

દાસાનુદાસત્વ સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. આ પ્રકારના ભાવની સિદ્ધિને અર્થેજ પુષ્ટિમાર્ગ માં આચાર્યસેવા પ્રસિદ્ધ છે. અત્રે 'વૃત્રચતુ: શ્લોકી' ઉપરની શ્રીગુસાંઇજી ની વ્યાખ્યા તથા "પ્રાચીનવાર્તા-રહસ્ય" પ્રથમભાગ પૃષ્ઠ ૪૦ ઉપર ની શ્રીદામોદરદાસ હરસાની ની વાર્તા ના ભાવપ્રકાશનું અનુસંધાન આવશ્યક છે.

પ્રસંગ ૮—

અર્થ—एवं सदा स्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति

प्रभुः सर्व समर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् ।

આ આચાર્યકથન ને અનુસાર પ્રભુજ એક માત્ર પુષ્ટિમાર્ગના 'અર્થ' રૂપ છે. આ 'અર્થ' ને શ્રીમદાચાર્યચરણે શેઠ પુરુષોત્તમદાસને ત્યાં 'પત્રાવલંબન' થી પ્રકટ કર્યો છે, આ 'પત્રાવલંબન' દ્વારા બ્રહ્મવાદ નું સારી રીતે નિરૂપણકરિ હરિના માહાત્મ્ય જ્ઞાન રૂપ 'અર્થ' થીજ અર્થાત્ અખિલ ભુવનેશ્વર સ્વરૂપ પ્રભુ શ્રીકૃષ્ણ ને અર્થ રૂપથી હૃદયમાં ધારણકરવાથીજ ભક્ત નિશ્ચિન્ત થઈ તેનું સેવન કરી શકે છે આમ આ નવમા પ્રસંગ માં પુષ્ટિમાર્ગીય 'અર્થ' પ્રસિદ્ધ છે.

પ્રસંગ ૯—

૩ 'કામ'—यदि श्री गोकुलाधीशोधृतः सर्वात्मना हृदि ।

ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥

શ્રીમદાચાર્યચરણના આ કથન ને અનુસાર શ્રીગોકુલાધીશજ એક માત્ર પુષ્ટિમાર્ગ માં 'કામ' રૂપથી આહ્ય થયેલા છે એ શ્રીગોકુલ અર્થાત્ વ્રજભકતોના વૃંદ ના અધીશ જ્યાં વિદ્યમાન હોય ત્યાં ગોપ ગોપી આદિ સમસ્ત ભક્તવૃંદ ઉપસ્થિત થઈ રહેછે શ્રીમદાચાર્યચરણે આ વસ્તુને જન્માષ્ટમી ના પ્રસંગ થી સ્પષ્ટ કરી છે. અર્થાત આપે નંદમહોત્સવ ના

મિષે શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ને પુષ્ટિમાર્ગીય 'કામ' રૂપ સાક્ષાત્ શ્રીગોકુલાધીશ નો રસાત્મક અનુભવ કરાવ્યો એથીજ ત્યાં વ્રજભક્તો નો પરિકર પણ સ્વતઃ પ્રકટ થયો. ભગવાન્ અને ભગવાન નો પરિકર ભિન્ન રહે નહિ એ વાતનું પણ એના થી જ્ઞાન થઈ રહે છે.

પ્રસંગ ૪—

> ૪ મોક્ષ—अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वर पादयोः
> स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः

એ આચાર્ય કથન ને અનુસાર સર્વાત્મનાભાવે શ્રીગોકુલેશ્વર નું સ્મરણ ભજન ન ત્યજવું. કેમકે એજ પુષ્ટિમાર્ગના પરમમોક્ષ રૂપ છે. સર્વાત્મના ભાવવાળું સ્મરણ ભજન આધિદૈવિક સ્વરૂપ પ્રાપ્તિ વિના સિદ્ધ થઈ શકતું નથી કેમકે તેમાં ધર્મી સંયોગ વિપ્રયોગાત્મક રસ ની સ્થિતિ હોય છે. અતઃ તેના અનુભવ અર્થે મૂળ ધર્મી રૂપની આવશ્યકતા રહેલી હોય છે. આ પ્રકારનું ધર્મી રૂપ શેઠ પુરુષોત્તમદાસને સિદ્ધ થયું હતું તે પૂર્વે કહેવાયેલું છે.

રામદાસ

૧ ભૌતિક ઇતિહાસઃ– રામદાસ નો વિશેષ ઇતિહાસ અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. " વાર્તા " અને " ભાવપ્રકાશ " ને અનુસાર આ રામદાસ પૂરવ ના સારસ્વત બ્રાહ્મણ હતા- તેઓ ગંગાસાગરની સમીપના કોઈ એક ગામમાં રહેતા હતા તેમના પિતા સૂર્યના ઉપાસક હતા. સૂર્યની પ્રસન્નતાથી તેમને ત્યાં રામદાસનો જન્મ થયો હતો. રામદાસ જ્યારે આઠ વર્ષના થયા ત્યારે તેમનુ લગ્ન કરવામાં આવ્યું હતું.

તેમની સ્ત્રી નું નામ પ્રાપ્ત થતું નથી. તેમને એક પુત્ર પણ થયો હતો

રામદાસ પ્રારંભમાં મર્યાદામાર્ગીય કોઈ વૈષ્ણવની સાથે ગંગાસાગર ગયા હતા. ત્યાં તેમને એક ભગવત્સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયું હતું. પુનઃ તે શ્રીવલ્લભાચાર્યજી નો યશ સાંભળી તેમના દર્શને પુરૂષોત્તમપુરી જતા હતા. ત્યાં રસ્તામાં તેમને આચાર્ય શ્રી નાં દર્શન થયાં હતાં. તે સમયે આચાર્યશ્રી થી પ્રભાવિત થઈ તેમણે આપશ્રી ને પોતાના ઘરમાં પધરાવી સ્ત્રી સહિત દીક્ષા લીધી હતી. રામદાસ નો શરણકાલ પ્રથમ પરિક્રમા નો અર્થાત્ વિ સં૦ ૧૫૫૩ ની આસ પાસ નો પ્રાપ્ત થાય છે.

શરણ અનન્તર રામદાસે સમ્પ્રદાય ની રીતિ ને અનુસાર ગંગાસાગર થી પ્રાપ્ત થયેલ શ્રીઠાકુરજીને આચાર્ય-શ્રી થી પુષ્ટ કરાવી સેવાનો પ્રારંભ કર્યો હતો. આચાર્યશ્રીએ આ ઠાકુરજીનું નામ ‘ શ્રીનવનીતપ્રિયજી ’ ધર્યું હતું જે આજ શ્રીગોકુલમાં ‘ રાજાઠાકુર ’ ના નામથી તિલકાયત શ્રીના સાથે બિરાજે છે. આ ઠાકુરજી એ રામદાસ નું દેવું ચૂકાવ્યું હોવાથી તેમને સહુ કોઇ ‘ રાજાઠાકુર ’ ના નામથી સંબોધે છે. આજપણ તે શ્રીગોકુલ ની જમીદારી ના માલિક રૂપથીજ ગોકુલમાં બિરાજે છે.

રામદાસની પાસે અઢલક દ્રવ્યહતું તેથી તે સર્વ પ્રકાર ના વ્યાપારો ને છોડી અષ્ટ પ્રહર અસ્પર્શ માં રહીનેજ રાજ વૈભવથી શ્રીઠાકુરજી ની સેવા કરતા હતા. પરંતુ પાછલથી જ્યારે તે દ્રવ્ય ઘટ્યું ત્યારે તેમણે શેષ રહેલા દ્રવ્યને વ્યાજ ઉપર મુક્યું. અને તે વ્યાજ દ્વારા સેવાના વૈભવને જાલવી

રાખ્યો. પરંતુ શ્રીઠાકુરજીને આ વાત ઠીક ન લાગી એથી તેમણે તે દ્રવ્ય ના વ્યાજ ને બંધ કરી તેનેજ ખર્ચ કરવા માંડયું એમ કરતાં જ્યારે તે દ્રવ્ય સમ્પૂર્ણ ઘટયું ત્યારે કેટલાક વખત પર્યંત ઉધાર લઈ કામ ચલાવ્યું. આ પ્રકાર ના વ્યવહારથી શ્રી ઠાકુરજી ને જ્યારે પરિશ્રમ પડયો જાણ્યો ત્યારે તેમણે અસ્પર્શતા ને છોડી અન્યત્ર જઈ સિપાહીગીરી કરવા માંડી. જ્યારે તે અડેલ ગયા ત્યારે આચાર્યશ્રીએ તેમની ધીરજ નાં વખાણ કર્યાં.

રામદાસની પ્રીતિ આચાર્યશ્રી માં વિશેષ હતી એ તેમના અડેલમાં ખાડા પૂરવાના પ્રસંગ થી સ્પષ્ટ થઈ રહે છે. તે સમયે લોકલજ્જા તેમજ સિપાહીની પોશાક આદિની પણ ઉપેક્ષા કરી ને તે આચાર્યશ્રીની સેવા માં તત્પર થયા હતા.

રામદાસ નો ભાવ અલૌકિક હતો. જ્યારે સ્ત્રીએ એક પુત્ર અર્થે તેમને બીજા વિવાહ નું કહ્યું ત્યારે તેમણે પોતાનો તે પ્રતિ વૈરાગ્ય બતાવી પોતાના ઠાકુરજી માંજ વાત્સલ્ય ભાવ થી સેવા કરવાને કહ્યું, પરન્તુ સ્ત્રી એ સકામ ભાવ થી તે સેવા કરી જે થી તેને એક પુત્ર થયો.

રામદાસ ની ધીરજ અપરિમિત હતી તેમણે તમામ દ્રવ્ય ખૂટી ગયા છતાં પોતાની ધીરજ ને ન છોડી હતી. તેમનો પુષ્ટિ-ધર્મ પણ અદ્વિતીય હતો જ્યારે તેમણે શ્રીઠાકુરજી ને પરિશ્રમ પડ્યો જાણ્યો ત્યારે તેઓ લોકલજ્જા આદિ ને છોડી સિપાહીગીરી માં રહ્યાં આ તેમના સાહસ ની પરાકાષ્ઠા હતી.

૨. વાર્તા-સ્વારસ્ય:—રામદાસની વાર્તા પુષ્ટિમુક્તિ ના

'વીર્ય' ધર્મની સૂચક છે. એમાં પરાક્રમ સમ્પન્ન વિવેક, ધૈર્ય અને આશ્રય ની પરાકાષ્ઠા રહેલી અનુભવાય છે. પ્રભુના અસાધારણ વીર્ય- પરાક્રમ- વિના પુષ્ટિનાં વિવેકાદિ સિદ્ધ થઈ શકતાં નથી.

૧ વિવેક: -- "विवेकस्तु हरि: सर्वंनिजेच्छात: करिष्यति" ઇત્યાદિ આચાર્યચરણે નિરૂપેલી વિવેક ની આજ્ઞાઓ ને રામદાસે વ્યાજે મૂકેલા દ્રવ્ય ના સંપૂર્ણ અભાવ સમયે પણ પ્રાર્થનાદિ ની ઉપેક્ષા કરી પ્રભુ ને પરિશ્રમ પડતો જાણી સિપાહીગીરી ની નોકરી ને સ્વીકારી તે વિવેક ની પરાકાષ્ઠા ને સિદ્ધ કરી છે. " प्रार्थिते वा ततः किंस्यात् स्वाम्यभिप्राय संशयात्" ઇત્યાદિ આજ્ઞાઓ અત્રે સ્મરણીય છે.

૨ ધૈર્ય:- "त्रिदुःख सहनं धैर्यम्" એ આચાર્યચરણે નિરૂપેલા ધૈર્ય ને રામદાસે લોકલજ્જા અને ભગવત્સેવાદિ માં નેગાદિ ની થયેલી ત્રુટિ આદિ લૌકિક અલૌકિક દુ:ખોં ને સહન કરી ને સ્પષ્ટ કર્યું છે. અત્યન્ત દ્રવ્ય સમ્પન્ન અવસ્થા ને ભોગવ્યા પછી પણ ભગવત્સુખાર્થે સિપાહીગિરિ ની નોકરી કરેલી. એમાં જે અસહ્ય લૌકિક લજ્જા આદિ દુ:ખો રહેલાં છે તે ભૌતિક દુખો ને રામદાસે જેમ સહન કર્યાં તેમ ભગવત્સેવા માં બાંધેલા નેગની ત્રુટિ નું અલૌકિક આધિદૈવિક દુ:ખ પણ અસહ્ય જ હતું એને પણ રામદાસે સહન કર્યું છે. એ પ્રકારે સ્ત્રીનું પુત્રકામનાદિ નું માનસિક-આધ્યાત્મિક દુ:ખ પણ તેમણે સહન કર્યું. આ ધૈર્ય ની પરાકાષ્ઠા છે.

૩ આશ્રય:— "अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः।" એ આચાર્ય નિરૂપિત આશ્રય ને રામદાસે સ્ત્રી ની પુત્ર કામના સમયે શ્રીહરિ પ્રતિજ બાલભાવ ની સેવા ના ઉપદેશ

થી સ્પષ્ટ કરેલો છે. આમ રામદાસ ની આ વાર્તા માં પુષ્ટિ ના વિવેક ધૈર્યાદિ દ્વારા પુષ્ટિમુક્તિ ના 'વીર્ય' ધર્મ નું નિરૂપણ છે.

ગદાધરદાસ

૧. ભૌતિક ઇતિહાસ—ગદાધરદાસ નો વિશેષ ઇતિહાસ અન્યત્ર પ્રાપ્ત ન થી. "વાર્તા" એવં "ભાવપ્રકાશ" ને અનુસાર તેઓ કડ઼ા- માણિકપુર ના સારસ્વત 'કપિલ' સંજ્ઞાધારી બ્રાહ્મણ હતા. તેમને એક કાકા હતા. જે પ્રયાગ માં રહતા હતા.

ગદાધરદાસ મકર સ્નાનાર્થે જયારે પ્રયાગ આવતા ત્યારે તે તેમના કાકા ને ત્યાં ઉતરતા. એક સમય જ્યારે શ્રીવલ્લભાચાર્યજી પ્રયાગ પધાર્યા હતા- ત્યારે તેમની સાથે ચર્ચા કરવાને ગદાધરદાસના કાકા આપના મુકામે ગયા હતા. એ વખતે ગદાધરદાસ પણ એમની સાથેજ હતા.

ગદાધરદાસ ના કાકાએ આચાર્યશ્રી ને કૃષ્ણ, રામ, નૃસિંહ અને નારાયણ આદિ માં મુખ્ય ઈશ્વર કોણ એમ જ્યારે પ્રશ્ન કર્યો ત્યારે આપે લોક યુક્તિ એ ચક્રવર્તિ રાજાના દૃષ્ટાંતે મુખ્ય ઇશ્વર રૂપ થી શ્રીકૃષ્ણનું પ્રતિપાદન કર્યું આ સમય ગદાધરદાસ સાથે હતા તે આ સાંભળી આચાર્યશ્રી ની શરણે આવ્યા.

ગદાધરદાસે શરણ અનન્તર પોતાના કાકા શૈવી હોવાથી તેમના ઘરનો ત્યાગ કર્યો. કાકા ને ત્યાં એક શ્રીમદનમોહનજી નું સ્વરૂપ હતું તે તેમણે કાકા ની પાસે થી માંગી લીધું. આચાર્ય શ્રી એ આ સ્વરૂપ ને પુષ્ટ કરી તેમને સેવાર્થે પધરાવી આપ્યું-

અને ઉપદેશ રૂપથી 'ભક્તિવર્દ્ધિની ને પ્રકટકરી તેનુ વ્યાખ્યાન કરયું 'ભક્તિવર્દ્ધિની' ના "अव्यावृत्तं भजेत् कृष्णं" વાલા આચાર્ય વાકયને શ્રવણ કરીને ગદાધરદાસે તેને પોતાના જીવન પર્યન્ત અનુસરવાનો નિશ્ચય કર્યો.

ગદાધરદાસ આચાર્ય શ્રી ની શરણે આવ્યા ત્યારે તેઓ ત્રીસ વર્ષ ના હતા. તે સમયે તેમનાં માતા-પિતા વિદ્યમાન ન હતાં તેમજ તેમનું લગ્ન પણ થયું ન હતું

આચાર્યશ્રીના તિરોધાન અનન્તર ગદાધરદાસ ની ઉપસ્થિતિ નો કોઇ પણ ઉલ્લેખ કંઈ પણ પ્રાપ્ત થતો ન હોવાથી એમ અનુમાન થઈ શકે છે કે તેમનો અંતિમ કાલ વિ૦ સં૦ ૧૫૮૭ ના આસ-પાસ નો હોવો જોઇએ. તેઓ ત્રીસવર્ષે શરણે આવ્યા અને તેમણે કેટલાક કાલ પર્યંત સેવા કરી તેમજ માધવદાસાદિ ને અનન્યભક્તિ નું દાન કર્યું એ સર્વ ને જોતાં તેમની આયુ ૬૦ થી ૬૪ વર્ષ ની અનુમાન થઈ શકે છે. એ ઉપરથી તેમનો શરણકાલ વિ૦ સં૦ ૧૫૫૨ લગભગ નો સમજી શકાય તેમ છે.

ગદાધરદાસ ની વૈષ્ણવો ઉપર પ્રીતિ અદ્ભુતહતી એ તેમના "गोविन्द पदपल्लव शिर पर विराजमान" વાળા પદ થી સ્પષ્ટ થઇ રહે છે. એમાં "अधम जन गदाधर से पावत सन्मान" વાળા વાકય થી તેમની અલૌકિક દીનતા નું પણ ભાન થઈ રહે છે. તેમનામાં આચાર્યશ્રી ની કૃપા થી વાક-સિદ્ધિ પણ હતી તે માધવદાસ ને પ્રાપ્ત થયેલ ભક્તિ થી જાણી શકાયછે. તેઓ નિરભિમાની સમદર્શી અને ત્યાગી પુરુષહતા. એથીજ તેમના ક્ષણિક સંગ થી વણઝારો પણ વૈષ્ણવ થયો હતો. તેમની ભક્તિ ઉગ્ર- વિપ્રયોગાત્મક હતી એથી જ્યારે પ્રભુ દિનભર ભૂખ્યા રહ્યા ત્યારે તેઓ વ્યાકુલ થયા અ

તે વ્યાકુલતા ના કારણેજ તેમણે રાત્રે અનાયાસપૈસા પ્રાપ્ત થતાં માત્ર બજારની જલેબી પ્રભુને ભોગ ધરી હતી. આવી ઉગ્રભક્તિ પ્રાપ્ત થયેજ ભક્ત દેહાનુસંધાન રહિત થઇ શકે છે. અને ત્યારેજ તે જીવધર્મરૂપ આચારવિચારો ને સહજ વિસરી જાય છે. અત્રે વાઘાજી રજપૂત નું દૃષ્ટાંત પણ સ્મરણીય છે. સેવામાં જે લોકવેદના આચારો નું પાલન કર્તવ્યરૂપછે તે માત્ર જીવ ના હૃદય ની શુદ્ધિ ને અર્થેજ હોય છે. એ શુદ્ધિ જો ઉગ્ર ભકિત દ્વારા સ્વતઃ સિદ્ધ થઇ જાય તો તે જીવ ને તેવા પ્રકાર ના આચાર વિચારાદિ નું ધર્મ રૂપ થી પાલન કરવું શેષ રહેતું નથીજ તો પણ તેવા ભકતોમાં યે તેવા આચારાદિ સામાન્ય અવસ્થા માં દેખાયે છે અને તે કેવળ તેમને માટે તો લોકવેદ ના સંગ્રહાર્થ રૂપ અને ભગવદાજ્ઞાઓ ના પાલન રૂપ થીજ હોય છે. અન્ય રૂપ થી નહિજ. કારણ કે જો તેવા મહાનપુરૂષો તે આચારો નું સામાન્ય અવસ્થાઓ મા પણ ઉલ્લંઘન કરેતો તેનું અનુકરણ સાધારણ જનતા કરવા લાગીજાય એથી સામાન્ય ધર્મો નો વ્યતિક્રમ થઇ ને તે પરોક્ષ ભગવદાજ્ઞા ઓના ઉલ્લંઘન નો દોષ પણ પ્રાપ્ત થઈ રહે.

અત્રં જે જલેબી નું સ્નેહાધિકયે તાપભાવથી પ્રભુને સમરપણ કરવામાં આવ્યું છે તેને ગદાધરદાસ પોતાના ઉપયોગ માં લીધી નથી એ વસ્તુ વિશેષ કરીને દ્રષ્ટવ્ય છે તેઓ તો તે સમયે ભૂખ્યાજ સુઈ રહયા હતા. એથી તેમના થી આચાર મર્યાદા નું ઉલ્લંઘન પણ થયું નથી।

તેમણે જે પ્રકાર ના સ્નેહ થી પ્રભુને તેનો ભોગ ધર્યો તેજ પ્રકાર ના સ્નેહ થી વૈષ્ણવોના સ્વરૂપ ને પણ ભગવદ્ ભાવરૂપ જાણી નેજ તે જલેબી વૈષ્ણવો ને પણ લેવડાવી એ થી સ્નેહ ની શુદ્ધતા એ તે કાર્ય પણ પુષ્ટિરૂપજ થઈ રહયું.

અત: તેમાં કોઈ પણ પ્રકારના દોષ ની સંભાવના રહે લી નથી આમ ગદાધરદાસ ની ભક્તિની ઉત્કર્ષતા સ્વત: સિદ્ધ છે.

ગદાધરદાસ કવિહતા. તેમનાં પદો માં ' ગદાધર ' છાપ પ્રાપ્ત થઈ રહે છે એમનો કાવ્ય પરિચય ' પુષ્ટિમાર્ગીય ભક્ત કવિ ' માં હવે પછી આપવામાં આવશે—

વાર્તા—સ્વારસ્ય

ગદાધરદાસજી ની વાર્તા નું સ્વરૂપ પ્રથમ ભાગ ની પ્રસ્તાવના માં જણાવ્યા પ્રમાણે (પુષ્ટિ) ઉતિ નું છે. ઉતિલીલા અર્થાત કર્મવાસના નું સ્વરૂપ. આહિં તે ઉતિ પુષ્ટિ ના ભાવરૂપે હોવાથી આ વાસના તે પુષ્ટિની સેવા ભાવના રૂપમાં પ્રસિદ્ધ છે. ભાવના એ ભાવનું આધ્યાત્મિક સ્વરૂપ છે (જુઓ. વાર્તા રહસ્ય પ્રથમ ભાગ પત્ર ૧૦) ભાવના થીજ ભાવ રૂપ હરિ ની પ્રાપ્તી છે. આ ભાવના નું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે—

" भावस्तु विप्रयोगेण तापक्लेशैर्विचारणम् । "

અર્થાત્ " વિરહે કરી તાપકલેશ વિચાર કરવામાં આવે તે ભાવ — " અહીં " વિચાર કરવામાં આવે " એશબ્દો થી સાધન રૂપતા કહેલી છે. અતએવ એહી જે ભાવ શબ્દ યોજ્યોછે તે સાધનરૂપ ભાવના ના અર્થમાં પ્રયુક્તછે.ભાગવતોક્ત ઉતિ લીલા માં સદ્વાસના, અસદ્વાસના અને સદસદ્વાસના એમ ત્રણ ભેદ રહેલા હોય છે કિન્તુ અહીં ભાવરૂપ પુષ્ટિ પ્રકારમાં તે કેવલ સદ્‌ભાવના રૂપજ છે. આ સદ્‌ભાવના પોતાના સામર્થ્યે થી અસદ્‌વાસના અને સદસદ્વાસના ને પોતાની સદૃશ કરી દે છે તેનાં વાસ્તવિક ઉદાહરણ ગદાધરદાસ ની આ વાર્તા માં રહેલાં છે માટે આ વાર્તા આચાર્ય શ્રી ની ભાવાત્મક ઉતિ-લીલા પ્રસિદ્ધ છે—

સદ્‌વાસના- પુષ્ટિ માર્ગ માં વાસના નું સ્વરૂપ ભાવના નું છે. અને તે ભાવના ભાવ સિદ્ધ કરવાનું મુખ્ય સાધન છે.

ગદાધરદાસ માં આ સદ્ભાવના કેવા રૂપમાં સ્થિત હતી તે વાર્તા ના પ્રથમ પ્રસંગ થી આરીતે સ્પષ્ટ છે—

પ્રારંભમાં ગદાધરદાસ ની ભાવના ની શરૂઆત કેવી રીતે થઈ તે બતાવે છે— " चित्त मानसी सेवा फल रूप में इन कों लाग्यो । " અહીં " लाग्यो " શબ્દ મૂકવામાં આ વ્યો છે તે સાધન રૂપતા ના સ્પષ્ટિકરણ રૂપ છે. અતએવ ગદાધરદાસ ની ભક્તિ ની પ્રવૃત્તિ માનસી રૂપ સદ્ભાવના થી શરૂ થાય છે. કિન્તુ આ સાધન રૂપ પ્રારંભની માનસી ભાવના ને તનુજા વિત્તજાની પણ અપેક્ષા રહેલી હોય છે. માટે આગળ વાર્તા માં " परन्तु या मानसी भावना में वैष्णव कों समाधान नाहीं " એ પ્રમાણે બાહ્ય સેવા ની આવશ્યકતા કહેલી છે. એનો ક્લેશ ગદાધરદાસ ને થયો તે જણાવવાને આગળ વાર્તા માં કહેલું છે કે— " तातें छाति में आगि लागी जो आछु कछू नाहीं धर्यो " આ પ્રકારના વિરહથી ગદાધરદાસ ની ઉક્ત સાધન રૂપ " સદ્ભાવના " સિદ્ધભાવ સ્વરૂપમાં પરિવર્તિત થઈ ગઈ. આ પ્રાપ્ત ભાવનું સ્વરૂપ તેમના " गोविन्द पद पल्लव सिर पर विराजमान " એ આખાય પદનાં અક્ષરે અક્ષર માં ઝળકે છે આ સિદ્ધ સ્વરૂપા ભાવ ના પ્રતાપેજ તેમણે પ્રસંગ બે માં વર્ણિત ઉતિલીલાની અસદ્વાસના નાં સ્થિતિ ભત માધવદાસ કે જેની વેશ્યામાં અસદ્પ્રીતિહતી તેને તેમણે ભક્તિ રૂપ પરમભાવનું દાન કર્યું તેનું વર્ણન વાર્તાના આ શબ્દો થી સ્પષ્ટ છે—

" तब प्रसन्न होइ के माधोदास सों कहे जो-तिहारो लायो साग श्रीठाकुर जी आरोगे तातें तोकों हरि भक्ति दृढ होऊ। यह आसिरबाद दिये । એજ પ્રકારે ત્રીજા પ્રસંગ માં સદ્ અને અસદ્વાસના રૂપ વણઝારાનો પણ ગદાધરદાસે પોતા માં સ્થિત સિદ્ધ ભાવરૂપ ભક્તિના બળે ઉદ્ધાર કર્યો એ રીતે વાર્તા માં ઉતિરૂપ સદ્વાસના ના પુષ્ટિ સ્વરૂપ નું વર્ણન કર્યું છે-

આ સદ્‌ભાવના રૂપ પુષ્ટિ નું સ્વરૂપ આચાર્યે શ્રીના દક્ષિણ શ્રીહસ્ત રૂપછે.

બીજા પ્રકારે આ વાર્તા માં 'યશ' નું પ્રતિપાદન છે. 'યશ' એ પુષ્ટિ ધર્મ છે. અત આ 'યશ' પુષ્ટિ મોક્ષ (મુકિત) ના ધર્મ રૂપ છે. ગદાધરદાસે માધવદાસ ને ભકિત નું જે દાન કર્યું છે તે આચાર્ય શ્રી વિના અન્યત્ર દુર્લભ છે. સાયુજ્યાદિ મર્યાદા મુકિત ભગવાન અને તેમના ભકતો આપી શકે છે કિન્તુ પુષ્ટિ ભકિત નું દાન તો કેવળ શ્રીમદાચાર્ય ચરણજ કરી શકે છે. એવી તે ભકિત અદેય દુર્લભ છે. એનું દાન શ્રીમદાચાર્ય ચરણજ કરી શકતા હોવા થી ." अदेयदान दक्षश्च " એ પ્રકારે આપ નું નામ પ્રસિદ્ધ ! થયેલું છે આ પ્રકારનું અદેયદાન ગદાધરદાસે શ્રીમદાચાર્યચરણના આશ્રયથી માધવદાસ ને કર્યું એથી ગદાધરદાસ માં શ્રી- મદાચાર્યચરણનો 'યશ' ધર્મ પ્રકટ રહેલો સિદ્ધ થઈ રહે છે. એનાથી માધવદાસ વિષયાનન્દ થી મૂકત થઈ ભજના- નંદરૂપ પુષ્ટિ ભકિત વાલી મુકિત (મોક્ષ) ને પ્રાપ્ત થયા. અતઃ આ 'યશ' પુષ્ટિ મુકિત ના ધર્મ રૂપ છે.

પદ્મનાભદાસ ની વાર્તા માં જે આશ્રય નું પ્રતિપાદન છે તે શુદ્ધ પુષ્ટિ ની અવસ્થા રૂપ છે. એથી ગદાધરદાસ ની વાર્તા પુષ્ટિ ઉતિ રૂપ જમણા શ્રીહસ્ત રૂપ છે જ્યારે પદ્મનાભ- દાસ ની વાર્તા પુષ્ટિ ના શુદ્ધ આશ્રય રૂપ આચાર્ય શ્રી ના વામ શ્રીહસ્તરૂપ છે.આ વામ શ્રીહસ્તરૂપ આશ્રય સ્વાધીના ભક્તિરૂપ છે. અર્થાત્"कृष्णाधीनातु मर्यादा स्वाधीना पुष्टि रुच्यते"એ આચાર્ય કથન માં નિરુપિત સ્વાધીનાપુષ્ટિભકિત અત્ર 'આશ્રય' રૂપથી પ્રસિદ્ધ છે. એમાં સ્વરુપ ની પણ અપેક્ષા રહેતી નથી તેમાં 'કેવળ ' ભાવજ આશ્રય રૂપ થી સિદ્ધ હોય છે આ

'આશ્રય' રૂપ શુદ્ધ પુષ્ટિ નું વિવેચન અમારા તરફ થી પ્રકાશિત, પુષ્ટિમાર્ગ' માં થયેલું છે એથી અત્ર તેનું પિષ્ટ પેષણ કરવામાં આવતું નથી. પદ્મનાભદાસે અહેલમાં શ્રીમથુરાધીશ ને શ્રીમહાપ્રભુજી ને ત્યાં પધારવાની વિનતી કરી-પોતાની સ્વરૂપ નિરપેક્ષતા અને સ્વાધીના ભાવ અવસ્થા ને સ્પષ્ટ કરી છે. એથી તે શુદ્ધ આશ્રય અવસ્થા રૂપ છે.

માધવ દાસ

ભૌતિક ઈતિહાસ—

માધવદાસ નું વિશેષ વૃત્ત અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. "વાર્તા" અને "ભાવપ્રકાશ" ને અનુસાર માધવદાસ કડા માણેકપુર માં રહેતા હતા. તેમના માતા પિતા નું નામ જ્ઞાત નથી. એમને એક મોટા ભાઈ હતા તેમનું નામ વેણીદાસ હતું એ બન્ને ભાઈ પ્રયાગમાં શ્રીઆચાર્યશ્રીની શરણ આવ્યા હતા.

માધવદાસ ની સ્થિતિ શ્રીમહાચાર્યચરણ ની ભૂતલ સ્થિતિ પછી ઉપલબ્ધ થતી નથી. એથી તેઓ વિ० સ ૧૫૮૭ પહેલાં જ ગત થઈ ગયેલા હોય એમ જણાય છે. તેમણે શરણ આવ્યા પછી પણ ઘણા વર્ષો સુધિ વેશ્યા ની સાથે વિષય ભોગ ભોગ વ્યો હતો. ત્યાર પછી ગદાધરદાસ ના આશીર્વાદ થી તે અનન્ય ભક્ત થયા હતા તેમણે વિ० સં० ૧૫૭૩-૭૪ માં વેશ્યા ને છોડી હતી એમ "વાર્તા" ના આ કથન થી સમ-જાય છે—

"जो वेश्या को दूर की नी।++ तब वेश्या ने बिना घी की आंगाकरी आय निर्वाह पंद्रह वर्ष लों कियो । पाछे श्रीगुसांई जी कडा में पधारे तब वेश्या ने सुनी। श्रीगुसांई जी सों आय बिनती करी। ''' महाराज मोकों माधोदास कहि गए हे जो तू श्रीगुसांई जी की दासी है। सो आपु के लिए

पंद्रह बरस त्यों सूखी अंगाकरी खाय देह राखी।"

અહિ "माधोदास कहि गए हैं" અર્થાત્ માધવદાસ કહિ ગયા હતા. એ શબ્દો થી માધોદાસ નું જેમ પરોક્ષ સિદ્ધ થઈ રહે છે તેમ શ્રીગુસાઈજી નું સ્વતંત્ર રૂપ થી સર્વ પ્રથમ કડા માં આગમન થયું તેના પૂર્વ પંદ્રહ વર્ષ પહેલાં માધવદાસે વેશ્યા નો ત્યાગ કર્યો હતો એ પણ સ્પષ્ટ કહેવાયલું છે. શ્રીગુસાંઈજી નું સર્વપ્રથમ સ્વતંત્ર રૂપ થી કડા માં આગમન વિ૦ સં૦ ૧૫૮૮ માં થયે લું છે. એ સમય આપે અડેલથી ગોપાલપુર જતાં વચ્ચે કડામાં મુકામ કર્યો હતો. અત: ૧૫૮૮ માં થી ૧૫ વર્ષ બાદજતાં સં૦ ૧૫૭૩ આવે છે. આ સમય માધવદાસ ની અનન્ય ભકિત ના પ્રારંભનો સિદ્ધ થઈ રહે છે.

અત: માધવદાસ ની ભૂતલ સ્થિતિ ઓછા માં ઓછી ૫૦-૬૦ વર્ષ ની માનવામાં આવે તો તેઓ વિ૦ સં૦ ૧૫૫૨ માં આચાર્ય શ્રી ની શરણે આવ્યા હોવા જોઇયે. કેમકે ત્યાર પછી તેમણે ઘણા વર્ષો સુધિ વેશ્યા નો સંગ કર્યો. પછી તેનો ત્યાગ કર્યો. પછી દક્ષિણ કમાવા ગયા. ત્યાં થી મોતિ ની માલા લાવ્યા અને આચાર્ય શ્રી ને સમર્પિત કરી આ બધી ઘટનામાં ઓછામાં ઓછા વીસ વર્ષ નું અનુમાન આવશ્યક છે. એથી તેમના શરણ કાલ નો ઉકત સંવત ઠીક લાગે છે.

માધવદાસ ની ભકિત સત્ય અટલ અને શુભનિષ્ઠા વાળી હતી. તેમણે શ્રીમદાઆચાર્યચરણ ની આગળ પણ પોતાના દોષને છિપાવ્યો નહિ. તેમજ શ્રીનવનીતપ્રિયજીએ જયારે તેમની પરીક્ષા કરી ત્યારે પણ તેઓ જરા પણ ધૈર્ય થી ચલિત થયા નહિ. એમની શુભનિષ્ઠા ભાઈના સહવાસના ત્યાગ થી પણ પ્રત્યક્ષ થઈ રહે છે. જયારે ભાઈ એ કાપટય ભાવ થી "આ બધુ પ્રભુનુંજ છે" એમ કહી માલા લેવાની ના

પાડી ત્યારે માધવદાસ પોતાના હિસ્સા નું દ્રવ્ય લઈ અલગ થયા અને પોતે જે મનોરથ કર્યો હતો તેને પૂર્ણ કરવાને અર્થે દક્ષિણ જવાનું સાહસ ખેડયું. અને ત્યાંથી તેવીજ માલા ખરીદી અડેલ આવી શ્રીઆચાર્યજીને તે શ્રીનવનીતપ્રિયજીના અર્થેભેટ કરી. આ માલા આજપણ શ્રીનવનીતપ્રિયજીનેત્યાં નાથદ્વારામાં વિદ્યમાન છે અને તેનું નામ ' માધવદાસ જ પ્રચલિત છે.

માધવદાસ ના સંગ થી વેશ્યા માં પણ ભક્તિ ભાવ પ્રકટયો અને તેને લઈને તે આગ્રહ પૂર્વક શ્રીગુસાંઈજી ની સેવકની થઈ. એ સમયે વેશ્યા માં રહેલો વિષયભાવ પ્રભુપ્રતિ સુદ્દઢ પતિવ્રતા ધર્મના રૂપમાં પલટાઇ ગયો અને તેણે અટકાવ માં પણ પ્રભુનો વિરહ સહ્ય ન થવાથી સેવા કરવા માંડી અને શુદ્ધ થયે અપરસ કાઢી શ્રીની સેવા મર્યાદાની પણ તે રક્ષા કરતી. એનાથી શ્રીગુસાંઈજી પણ પ્રસન્ન થતા. અત્રે શેરગઢના દામોદરદાસની માતા વીરબાઇ નું દૃષ્ટાંત પણ સ્મરણીય છે।

૨. વાર્તા—સ્વારસ્ય—

માધવદાસ ની વાર્તા પુષ્ટિ મુક્તિ ના ' શ્રી ' ધર્મ રૂપ છે. એમાં માધવદાસ નો શ્રીનવનીત પ્રિયજી પ્રતિ જેમ દૃઢ વિશ્વાસ સ્પષ્ટ થયો છે તેમ તેમના માં તાદૃશ ભાવ વાળી અલૌકિક સાક્ષાત્ સેવા પણ ફલિત થયેલી માલા ના પ્રસંગ થી અનુભવાય છે. " श्रियोऽपि परमाकाष्ठा सेवका स्तादृशा यदि । ,, એ વાકય અત્રે દ્રષ્ટવ્ય છે. પુષ્ટિ મોક્ષ રૂપ શ્રીમદાચાર્ય ચરણ માં પોતાના તે વિશ્વાસ ને સમર્પિત કરી માધવદાસે પોતામાં શ્રીમદાચાર્યચરણ ના ' શ્રી ' ધર્મ ને સ્પષ્ટ કર્યો છે.

———:※:———

હરિવંશપાઠક

૧. ભૌતિક ઇતિહાસઃ— હરિવંશપાઠક નું વિશેષ વૃતાંત-અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. " વાર્તા " અને " ભાવપ્રકાશ " ને અનુ-સાર આ હરિવંશ પાઠક કાશી ના હતા. પહેલાં તેઓ ગણેશ ના ઉપાસક હતા. પરન્તુ પછી થી તેઓ શ્રીઆચાર્યજીની શરણે આવ્યા હતા. તેમના શરણ કાલ ના નિશ્ચય અર્થે 'ભાવપ્રકાશ' ની આ પંક્તિયો દ્રષ્ટવ્ય છે—

" सो जब श्री आचार्य जी पत्रावलंबन काशी में किए पंडितन कों जीते तब हरिवंश पाठक के मन में आई जो मैं हू श्री आचार्य जी महाप्रभुन के दरसन करि आऊं। ××× सो श्री आचार्य जी पास दौरयो आयो दंडवत् करि बिनती करी महाराज××× अब मेरो अपराध छिमा करि सरनि लेहुं

આ પંક્તિ ઓ થી એ સ્પષ્ટ છે કે તેઓ પત્રા વલંબન સમયે કાશીમાં આચાર્યશ્રી ની શરણે આવ્યા હતા. પત્રાવલંબન નો સમય દિગ્વિજ ય ને અનુસાર તૃતીય પરિક્રમા નો છે. વાર્તામાં પણ " पाछें आपु पृथ्वी परिक्रमा कों पधारे " એ શબ્દ પ્રાપ્ત થાય છે એથી જે લોકો નું એવું માનવું છે કે ત્રણે પરિક્રમા અનન્તર પત્રાવલંબન ની રચના થઈ છે તે અસત્ય ઠરે છે તૃતીય પરિક્રમા સમયે આપ વિ૦ સં૦ ૧૫૬૪ માં કાશી પધાર્યા હતા અતઃ હરિવંશ ના શરણકાલ નો સંવત પણ તેજ સિદ્ધ થઈ રહે છે.

હરિવંશ પાઠક લોકમાં સારી રીતે વૈરાગ્ય વાલા હતા. એથીજ તેમણે હાકિમ ના પાસે અન્ય કંઈપણ ન માંગતાં કેવળ સેવા ની સિદ્ધિ ની ભાવનાએ શીઘ્રાતિશીઘ્ર

કાશી જવાના પ્રબંધની જ યાચના કરી.

હરિવંશ પાઠક ને એક સ્ત્રી તેમજ બે સંતાન હતાં તેઓ વ્યવસાય અર્થે વિશેષ કરીને પટના રહેતા હતા. ત્યાં થી તે પ્રતિ ઉત્સવ ઉપર પોતાના ઘરે આવીને શ્રીઠાકુરજી ની સેવા કરતા. એમણે શ્રીમહાચાર્યચરણ ની ઈચ્છા ને જાણી આપ શ્રી ની સેવકની પંચવર્ષીય કૃષ્ણાનું પાલન કર્યું હતું અને તે મોટી ઉમરની થઈ ત્યારે લોકાપવાદના ભયે તેને શ્રીગુસાંઈજી ને ત્યાં મૂકી આવ્યા હતા. શ્રીમહાચાર્યચરણ ના સેવકો ઉપર હરિવંશ ની અત્યંત પ્રીતિ આથી સિદ્ધ થઈ રહે છે.

હરિવંશ ના સેવ્યસ્વરૂપ બાલકૃષ્ણ જી હતા જે ને બજાર થી ન્યોછાવર કઈ મેળવ્યા હતા.

૨ વાર્તા—સ્વારસ્ય— આ વાર્તા પુષ્ટિમોક્ષરૂપ શ્રીમહાચાર્યચરણ ના 'વૈરાગ્ય' ધર્મ રૂપ છે. એથી હરિવંશમાં ભગવત્સુખાર્થ સર્વ પ્રલોભન ના ત્યાગ ને અત્ર સ્પષ્ટ કરવામાં આવ્યો છે. પુષ્ટિમાર્ગ માં ભગવત્સુખાર્થ સર્વ વસ્તુના ત્યાગને જ વૈરાગ્ય કહેવાવલો છે—

———:*:———

ગોવિન્દદાસ ભલ્લા

૧ ભૌતિક ઈતિહાસ— ગોવિંદદાસ નું વિશેષ વૃત્તાંત અન્યત્ર પ્રાપ્ત નથી. "વાર્તા" અને "ભાવપ્રકાશ" અનુસાર તેઓ થાનેશ્વર ના ક્ષત્રી હતા. તેઓ ત્યાંના હાકિમ ની નોકરી કરતા

તેમાં તેમને ઘણું દ્રવ્ય પ્રાપ્ત થયું હતું૦ એમનુ લગ્ન થયું હતું

જયારે શ્રીમદ્વલ્લભાચાર્યજી થાનેશ્વર પધાર્યા ત્યારે તે આપના સેવક થયા હતા પછી સ્ત્રી અનુકૂલ ન હોવાથી તેમણે શ્રીમદાચાર્યચરણ ને પોતાની સ્થિતિ ને નિવેદન કરી આપની આજ્ઞાનુસાર તે પોતાના દ્રવ્ય ના ચારભાગ કર્યા તેમાં થી એક ભાગ સ્ત્રી ને, એક શ્રીનાથજી ને, અને એક ભાગ આ-ચાર્યશ્રી ને સમર્પિ એક ભાગ પોતાને માટે રાખ્યો પછી તેઓ મહાવન માં શ્રીમથુરાનાથજી ની મર્યાદારિતિથી સેવા કરવા લાગ્યા ત્યાં પોતાના ભાગ નું દ્રવ્ય ઘટયૂં ત્યારેતે શ્રીનાથદ્વારમાં આવી શ્રીનાથજી ની સેવામાં રહ્યા અહિં તે઼ઓ કોરી ભિક્ષા માંગી પોતાનો નિર્વાહ કરતા આ વાત શ્રીનાથજી ને સોહાઈ નહિં, એથી આપે શ્રીમદાચાર્યચરણ ને તે બાત જતાવી. તે થી શ્રીમદાચાર્યચરણે ત્યાં પધારી ને તેમને સમજા-વ્યા. પરન્તુ દેવદ્રવ્ય અને ગુરુદ્રવ્ય ન લેવાનો તેમનો આગ્રહ જોઈ પાછળ થી તેમને આપે સેવા છોડી દેવાનો આદેશ આપ્યો આદેશાનુસાર તેમણે શ્રીનાથજી ની સેવા છોડી દીધી અને મથુરામાં કેશવરાયજી ની સેવા નો ઇજારો લીધો. ત્યાં તેમને ત્યાંના હાકિમ થી લડાઇ થઈ અને તેમાં તે માર્યા ગયા. ગુરૂ આજ્ઞા ઉલ્લંઘનનું તેમને એ ફળ મળ્યું કે એકતો શ્રીનાથજી ની સેવા છુટી અને બીજૂં મ્લેચ્છો ના હાથથી તેઓ મારયા ગયા.

તેમનો શરણ આવવાનો સમય સ્પષ્ટરૂપ થી પ્રાપ્ત નથી તોપણ શ્રીનાથજીના પ્રાકટ્ય પછીજ તેઓ શરણ આવ્યાછે એ વાર્તા માં"શ્રીનાથજી નો એકભાગકાઢયા વાળા ઉલ્લેખ થી સ્પષ્ટજ છે. શ્રીનાથજી નો પ્રાદુર્ભાવ વિ૦ સં૦ ૧૫૫૫ માં છે અતઃ તેમનો શરણ કાલ તે પછીનોજ સ્પષ્ટ થાય છે.

ગોવિંદદાસ ભલ્લા નો અંતિમ સમય વિ૦ સં૦૧૫૮૭ નો પૂર્વ છે. કેમકે વાર્તા ને અનુસાર તેમના અંતિમ સમયની ઘટના

શ્રીમહાપ્રભુજી પાસે વૈષ્ણવો એ વ્યક્તકરી હતી શ્રીમહાપ્રભુ-જી નું તિરોધાન વિ૦ સં૦ ૧૫૮૭ નિશ્ચિત છે એથી ગોવિંદ-દાસ નો અંતિમ સમય તે પૂર્વ નો સ્પષ્ટ થઈ રહે છે.

ગોવિંદદાસ ભલ્લા એ સેવેલા શ્રીમથુરાનાથજી કાલાંતરે શ્રીમહાપ્રભુજી ને ત્યાં પધાર્યા હતા અને ત્યારથી વંશ પરંપરા એ તે સ્વરૂપ આજ કાંકરોલીમાં ગો૦ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી ને માથે બિરાજમાન છે.

રવાર્તા સ્વારસ્ય—આ વાર્તામાં પુષ્ટિમોક્ષ ના 'જ્ઞાન' ધર્મ નું સૂચન છે. જ્ઞાન ના આવિર્ભાવે ગોવિંદદાસ થી શ્રીનાથજી ની સેવા ન થઈ શકી અને બ્રહ્મવિદની સમાન તેમણે જહાં તહાં અર્થાત્ કેશવરાયજી મર્યાદા સ્વરૂપની પણ સેવા કરી છે.

આ ભાગમાં આવેલા સ્વરુપોની યાદી અને વિગત

વાર્તા સં૦	સ્વરૂપોનાં નામ	કોનાં સેવ્ય	હાલ કયાં બિરાજે છે
૧	શ્રીમદન મોહન જી	શ્રીમહાપ્રભુજી	શ્રીમદ્‌ગોકુલ
૪	શ્રીનવનીત પ્રિયાજી [રાજા ઠાકોર]	"	"
૫	શ્રીબાલકૃષ્ણજી	"	"
૬	શ્રીબાલકૃષ્ણજી	"	શ્રીનાથદ્વારા
૭	શ્રીબાલકૃષ્ણજી	"	"
૮	શ્રીમથુરા નાથ જી	"	શ્રીકાંકરોલી

ગોપાલદાસ અને રૂકમણી ની

વાર્તાઓનાં સ્વારસ્ય

(પત્ર ૧૫ "પ્રસંગોનું પરિશિષ્ટ રહસ્ય" પહેલાંનું અનુસંધાન)

ગોપાલદાસની વાર્તા પુષ્ટિમોક્ષ ના 'ધર્મી' પ્રકાર રૂપ માં દહેલ ધર્મી-પ્રમેય- નું સ્વરૂપ પૂર્વે સ્પષ્ટ થયેલું છે. એમાં ઐશ્વર્યાદિ છ ધર્મો આ પ્રકારે વ્યક્ત થયેલા છે—

ઐશ્વર્ય—"समय पर भगवद् सेवा करते" વિરહ દ્વારા તનની સુધિ ન રહેવા છતાં સમય ઉપર ભગવદ્ સેવા કરવી તે તેમનું ઐશ્વર્ય છે.

વીર્ય—"मोसों तेरो विरह सह्यो नहि जात" શ્રીઠાકુરજી તેમનો વિરહ સહન ન કરતા તે તેમની ભક્તિતેની ઉત્કર્ષતા વીર્ય રૂપ છે.

યશ—"ताते तेरो समाधान करतु हुँ।" શ્રીઠાકુરજી તેમનું નિરંતર સમાધાન કરતા એ તેમનો 'યશ' છે.

શ્રી—"विरह में सदा मगन रहते" આચાર્યશ્રીના વિપ્રયોગાત્મક રસ સદૃશ નિરંતર સ્થિતિ રહેવી તે 'શ્રી' ધર્મ છે.

જ્ઞાન—"विरह में गान करते" શ્રીઠાકુરજી ની લીલા ભાવના ના જ્ઞાન સહિત ગુણ ગાન તે અત્રે 'જ્ઞાન' ધર્મ છે.

વૈરાગ્ય—"लौकिक वैदिक सर्व त्याग करि लीला रस में मगन रहते।" લીલા રસના અનુભવ પૂર્વક ભગવત્સુખાર્થ લૌકિક વૈદિક ધર્મોના ત્યાગ તે અત્રે 'વૈરાગ્ય' છે.

રૂક્મણીની વાર્તા પુષ્ટિમોક્ષના 'ઐશ્વર્ય' ધર્મ રૂપ છે. એમાં શ્રીઠાકુરજી ની ઋતુ સમયાનુસાર સેવા કરવી તેમજ શ્રીઠાકુરજી ને પણ પોતાને અધીન કરવા તે બધુ પુષ્ટિ મોક્ષ ના ઐશ્વર્ય રૂપ છે. એનો વિસ્તાર પૂર્વે થઈ ગયો છે.

આ ભાગમાં કહેલાં ભગવત્સ્વરૂપો ની ઐતિહાસિક યાદી—

વાર્તા	સ્વરૂપોનાં નામ	કોનાં સેવ્ય	હાલ ક્યાં બિરાજે છે
૧/૯	શ્રીમદનમોહનજી	શ્રી મહાપ્રભુજીના	ગોકુલ
૪/૧૨	શ્રી નવનીતપ્રિયજી (રાજાઠાકોર)		,,
૫/૧૩	શ્રીમદનમોહનજી	,,	જામનગર
૬/૧૪	શ્રીબાલકૃષ્ણજી	,,	ગોકુલ
૭/૧૫	શ્રીનવનીતપ્રિય જી	,,	કોટા
૮/૧૬	શ્રીમથુરેશજી	,,	કાંકરોલી

વાર્તા સંખ્યા માં ઉપરની સંખ્યા આ ભાગના ક્રમને અનુસાર છે જ્યારે તેની નીચેનીજે સંખ્યા છે તે પ્રારંભ થી શરૂ કરેલ સંખ્યા ને અનુસાર છે. પ્રથમ ભાગમાં ૮ વાર્તાઓ છે. (દ્વિતીય ભાગ ની અષ્ટસખાની વાર્તા ઓ ની પ્રારંભિક

સૂરદાસાદિ ચાર સખાઓ ની વાર્તાઓની ગણત્રી ચોરાસી વાર્તાઓની અન્તિમ સંખ્યા ૮૧, ૮૨, ૮૩, અને ૮૪એમ છે.)

વાર્તા સંખ્યા૬/૧૪માં શ્રીઠાકુરજીનું નામ પ્રાપ્ત નથી છતાં 'સેવ્ય સ્વરૂપોની વાર્તા' માં હોવા થી અત્રે તેને આપેલ છે.

આ શ્રી ઠાકુર જી શ્રીમહાપ્રભુજી ના સમય માંજ મહાવન થી ગોકુલ પધારી ગયા હતા. ત્યાર થી અદ્યાપિ શ્રીમહાપ્રભુજીના વંશમાંજવરાજે છે.

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीनाथदेव कृता

संस्कृत वार्ता-मणिमाला *

—:(!8[):—

वार्ता ६

(पुरुषोत्तम दास चौपडा काशी)

अथ कश्चिच्चौपडाख्यः पुरुषोत्तमदासकः ॥
वाराणस्यां छत्रश्रेष्ठस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥ ५२१ ॥
श्रीमदाचार्यवर्य्याणां शरणं, स्वसमर्पणी ॥
श्रीकृष्णनाम सर्वेभ्योऽश्रावयत्तदनुज्ञया ॥ ५२२ ॥
भवति स्म सदा गेहे यः श्रीमदन मोहनम् ॥
राजसेवा-संविधाभिः प्रभुं संपत्समन्वितः ॥ ५२३ ॥
द्विपञ्चाशद्धटिकान् स्म यश्च स्वप्रभवे सदा ॥
समर्पयति पक्वान्न-राजभोगोत्तरं मुदा ॥ ५२४ ॥
विश्वेश्वरमहादेव-दर्शनार्थमपि क्वाचित् ॥
न गतः स्वप्रभोः सेवा-कर्मण्यनवकाशतः ॥ ५२५ ॥
एवं संभजतस्तस्य कालो बहुतरो गतः ॥
एकदा विश्वनाथेन रुद्रेण स्वप्न ईरितम् ॥ ५२६ ॥
"पुरुषोत्तमदासावामेकग्राम—निवासिनौ ॥
तत्रापि वैष्णवत्वाख्य--सम्बन्धं तु पुरस्कुरु ॥ ५२७ ॥

* इसकी प्रथम ८ वार्ताएं प्रथम भाग में प्रकाशित की जा चुकी हैं।

यत्स्वप्रभोः सुप्रसादं देहि स्वल्पमपि क्वचित्'' ॥
इत्याश्रुत्योत्थितः प्रातः स्नात्वा सेवां समाचरत् ॥ ५२८ ॥
राजभोगारार्त्तिकां तां कृत्वाथ बहिरास्थितः ॥
परिधाय स्ववासांसि हस्तयोस्तत्प्रसादितान् ॥ ५२९ ॥
बीटकाँश्चतुरो धृत्वा पुरुषोत्तमदासकः ॥
विश्वेशदेव-निलयमभियाति स्म वैष्णवः ॥ ५३० ॥
अभियान्तं तमालोक्य लोका ग्राम-निवासिनः ॥
विस्मिता ऊचुरन्योन्य "महो याति शिवालयम् ॥ ५३१ ॥
चित्रमेष क्वापि नाप्त" इति ते चालिताः समम् ॥
श्रेष्ठी देवालयं प्राप्तः पुरो विश्वेश्वरस्य, तान् ॥ ५३२ ॥
विधाय "जयश्रीकृष्णेति" ब्रुवन् पुनरागमत् ॥
तदा तत्र महाशैवविप्रैः पृष्ट "महो त्वया ॥ ५३३ ॥
श्रेष्ठिन्नमस्कृतो नेशः कृष्णेत्युक्त्वा गतं, न सत्" ॥
तदाऽऽकर्ण्य श्रेष्ठिनोक्तं "पृष्टव्यः स हि वोऽधुना ॥ ५३४ ॥
विश्वनाथो महादेवो वक्ष्यतीति' न संशयः ॥
निश्येको विश्वनाथस्य कृपापात्रं द्विजोत्तमः ॥ ५३५ ॥
तस्य स्वप्ने शिवेनोक्तं "पुरुषोत्तमदासकः ॥
महाभागवतो भक्तस्तस्मादार्थितं मया ॥ ५३६ ॥
प्रभोर्महाप्रसादाख्यं वस्तु तद्दातुमागतः ॥
व्यवहारश्च मेऽनेन श्रीकृष्ण- स्मरणात्मकः ॥ ५३७ ॥
अस्मिन् किमपि नो वाच्यमसाधु भवदादिभिः ॥
इत्याकर्ण्य स्वप्नवृत्तं तेन सर्वत्र वेदितम् ॥ ५३८ ॥

श्रुतवद्भिः शैवविप्रैः संशयो ह्यपाकृतः ॥
ततः स्म तेन पुरुषोत्तमदासेन वै प्रभोः ॥ ५३९ ॥
महामहोत्सव – महाप्रसादान्नं निवेद्यते ॥
एकदा विश्वनाथेन काल भैरव सन्निधौ ॥ ५४० ॥
प्रोक्तं "भो! वक्तुमायाति पुरुषोत्तमदासकः ॥
अतिकालेन स्वगृह मित्यस्य परि —षद्गणाः,, ॥ ५४१ ॥
रक्षां विधेहि सततं बहिः स्थित्वेति" सोऽकरोत् ॥
कदाचिदपि वेलायामेकाकी स निशीथके ॥ ५४२ ॥
आगतो वैष्णव गृहात्पुरुषोत्तमदासकः ॥
दृष्ट्वानुयान्तमारात्तं काल भैरव रूपिणम् ॥ ५४३ ॥
स्वगृह द्वारपर्यन्तमेकतः शनकैः स्थितम् ॥
पृष्टवान्निर्भयः कोऽसि तदा स प्रोक्तवान् गणः ॥ ५४४ ॥
काल भैरव नामाहं श्रेष्ठिन् ? विश्वेश्वरस्य हि ॥
आज्ञया रक्षिता तेऽस्मि योजितः परिषद्गणः ॥ ५४५ ॥
इति श्रुत्वा वैष्णवाग्र्यः पुरुषोत्तमदासकः ॥
कपाटिकां पिधायान्तर्गतो गेहे मुमोद ह ॥ ५४६ ॥

इति श्रीवैष्णववार्तामालायां नवमो मणिः

वार्ता १०

अथैको दक्षिणादिशः शैवो विप्रः समागतः ॥
वाराणस्यां कृपापात्रं विश्वेशस्य बुधोऽवसत् ॥ ५४७ ॥

दृष्ट्वा तु विश्वनाथं स पिबति स्म जलं सदा ॥
नोचेदुपवसेत्क्वापि परमेष्ट शिवेक्षणः ॥ ५४८ ॥
स इत्थमेकदा कृष्णा- जन्माष्टम्यामहर्निशम् ॥
उपोषितो विचिन्वन्स विश्वेशं न व्यलोकयत् ॥ ५४९ ॥
प्राप्तं नवम्यां मध्यान्हे पश्यन् विप्रो जगाद तम् ॥
"पूर्वेद्युरद्य मध्यान्हमालये तव दर्शनम् ॥ ५५० ॥
भगवन्न मया प्राप्तमत्र को हेतु रुच्यताम्" ॥
तदा विश्वेश्वरेणोक्तं "द्रष्टुं जन्माष्टमी- सुखम् ॥ ५५१ ॥
पुरुषोत्तमदासस्य गतोऽहं श्रेष्ठिनो गृहे ॥
विसर्जितोऽधुना यामि दधि -कर्दम संप्लुतः" ॥ ५५२ ॥
तदाऽऽकर्ण्य द्विजेनोक्तं "भगवन! धूर्जटे! स कः? ॥
पुरुषोत्तमदासाख्यो यद्गृहे भगवानगात्" ॥ ५५३ ॥
तदा विश्वेश्वरेणोक्तं "विप्र" ! स क्षत्रियोत्तमः ॥
महाभागवतः श्रीमान्" इत्याकर्ण्यान्वयुंक्त सः ॥ ५५४ ॥
अहो "एवं विधाः सन्ति महाभागवता मुदा ॥
अभियन्ति गृहान्येषामीशा अपि भवादृशाः" ॥ ५५५ ॥
तन्निशम्योक्तमीशेन ब्रह्मन् ! भागवतास्तथा ॥
महान्तः सर्वसुहृदः करुणा विश्वपावनाः ॥ ५५६ ॥
तदभिप्रायमाकर्ण्य विप्रेणोक्तं विभोः पुरः ॥
"एवं चेत्तर्हि भगवद्भक्तं कुर्विह मामपि" ॥ ५५७ ॥
तदा विश्वेश्वरेणोक्तं "यद्येवं तर्ह्युपाश्रयहि ॥
पुरुषोत्तमदासस्य निकटे कृष्णनाम तत्" ॥ ५५८ ॥

तदा प्रोक्तं पुन र्विप्र-वर्येण "भगवन् ? भवान् ॥
कृष्णनामोपदिशतु मह्यमेवेह सर्वथा" ॥ ५५९ ॥
तदाऽऽश्रुत्योक्तमीशेन "द्विजाकर्णय तत्वतः ॥
प्रायोपदिष्टं ते कृष्णनाम नेह फलिष्यति ॥ ५६० ॥
एतन्मार्गाचार्यवर्यत्वाऽ भावादिति मे मतिः" ॥
इत्याकर्ण्य ज्ञातहार्दोऽथ विप्रो
गत्वा द्वारे श्रेष्ठिनोऽ तिष्ठदेकः ॥
केनाप्याऽरात्स्वागमं सेवकेन—
सोन्तःस्थस्याऽऽवेदयद्वैष्णवस्य ॥ ५६१ ॥
श्रुत्वा प्रोक्तं श्रेष्ठिना भृत्यवर्ग !
सम्यक् स्थाने वेष्यतां ब्राह्मणः सः ॥
प्रायः प्राप्तो मां विवादेप्सुरेव—
कर्त्ता शून्यं मस्तकं शुष्क तर्कैः ॥ ५६२ ॥
तदनु स्वयमेवाप्तः सेवातो लब्ध सत्क्षणः ॥
बहिः सदस्युपासीनमेकं विप्रं ददर्श सः ॥ ५६३ ॥
ब्राह्मणः सहसोत्थाय ववन्दे दंडवन्मुदा ॥
दृष्ट्वा तमाह स श्रेष्ठी "हा हा तेऽनुचितं कृतम् ॥ ५६४ ॥
वयं हि क्षत्रिया जात्या, यूयं पूज्या द्विजोत्तमाः' ॥
तदा विप्रेणोक्त"महो देयं श्रीकृष्णनाम मे" ॥ ५६५ ॥
श्रेष्ठिनोक्तं कथं यूय मुपदेश्या मयाऽऽर्यकाः ॥
पुनर्विप्रेणोक्तमिति "देयं श्रीकृष्णनाम मे" ॥ ५६६ ॥

भूयः कृतेऽप्याग्रहे तन्नोद्दिष्टं श्रेष्ठिना तदा ॥
तदा ततः परावृत्य गतो विश्वेश्वरं प्रति ॥ ५६७ ॥
उक्तवान् "राति नो नाम स श्रेष्ठीति करोमि किम्" ॥
तदाकर्ण्योक्तमीशेन "याहि भूयो मयेरितः ॥ ५६८ ॥
मे नाम गृह्णन्सदनं प्रेषितोऽस्मीति शंभुना" ॥
तन्निशम्य पुनर्विप्रः श्रेष्ठिनो गतवान् गृहे ॥ ५६९ ॥
पुरुषोत्तमदासाख्य ! श्रेष्ठिन्नद्यागतोऽस्म्यहम् ॥
आज्ञया विश्वनाथस्य भूयो वाराणसी-पतेः ॥ ५७० ॥
विश्वेश्वरेणेत्थमुक्तमपि 'श्रेष्ठिन् ! द्विज-मनः ॥
कर्णे सव्ये श्रावयतु कृष्ण नामास्य पारकम्' ॥ ५७१ ॥
तदभिप्रायमालोच्य सर्वं श्रेष्ठी द्विजन्मनः ॥
श्रावयामास वै श्रोत्रे कृष्णनामास्य पारकम् ॥ ५७२ ॥
"शरणं मम श्रीकृष्ण" इत्यूचेऽञ्जलि- बन्धतः ॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति प्रणतस्तस्य वै पुरः ॥ ५७३ ॥
तदोक्तं तेन विप्रेण किमिदं क्रियतेऽधुना ॥
प्रणतिश्च कथं युक्ता ममेति विनिरूप्यताम् ॥ ५७४ ॥
तदोक्तं श्रेष्ठिना विप्र! वैष्णवोऽस्मीति वै मया ॥
वंदनीयपदाचार्याः सन्तीशा आवयोरिह ॥ ५७५ ॥
तेषामनुज्ञयैवेह कृष्णनाम दिशामि तत् ॥
इत्यावेऽऽदित हार्देन श्रेष्ठिना क्षत्रियेण सः ॥ ५७६ ॥
ज्ञापितो वल्लभाचार्य—पादानां निकटे गतः ॥
निवेदितात्मवृत्तान्तो भूयो-नामासवांस्ततः ॥ ५७७ ॥

कियद्दिनावधि स्थित्वा श्रीमदाचार्य—सन्निधौ ॥
अधीत्य बहुशो ग्रन्थान्पुनर्देशं निजं ययौ ॥ ५७८ ॥
इति श्रीमद् वैष्णव वार्ता- मालायां दशमो मणिः

——00——

वार्ता ११

निर्भ्झारखण्डे पापघ्नो मंदारो नाम पर्वतः ॥
ततः पतेच्चेन्मनुजो व्यथते न कदापि च ॥ ५७९ ॥
अवन् तत्प्रकृतं पापं सकामश्चेत्ततः पतेत् ॥
देहं त्यक्त्वा स वै मर्त्योऽभीप्सितं काममाप्नुयात् ॥ ५८० ॥
नित्यं संनिहितो यत्र मन्दिरे मधुसूदनः ॥
तद्दर्शनार्थमाचार्याः प्राप्तास्तत्र पुरा स्वयम् ॥ ५८१ ॥
तत्र द्रष्टुं गतौ तौ द्वौ श्रमिदाचार्य—सेवकौ ॥
पुरुषोत्तमदासः स कोऽपि वर्णी तथा द्विजः ॥ ५८२ ॥
मधुसूदनदेवं तौ दृष्ट्वागन्तुं समुत्सुकौ ॥
अथः परित्यक्तजनौ तुङ्गमासेदतुर्गिरिम् ॥ ५८३ ॥
मधुसूदन—वासं तमरण्ये पश्यतोस्तयोः ॥
तमिस्रायामपद्वी मतीव भ्रममाणयोः ॥ ५८४ ॥
तदा सुप्तौ गिरौ नक्तं पर्यायेण च निर्जने ॥
बिलोक्यैकः समायातः सिद्धोऽपृच्छत्प्रबोधयन् ॥ ५८५ ॥
कौ युवामिह संप्राप्तौ कुतो वेति तदा तयोः ॥
स एको ब्रह्मचार्यूचे" विद्धि नौ वैष्णवौ सुरः ॥ ५८६ ॥

श्रीवल्लभाचार्यविमौः सेवकौ, दर्शनार्थिनौ" ॥
तदाऽऽकर्ण्योवाच सिद्धो "रे! मर्त्यः कोपि नात्र हि ॥ ५८७ ॥
वसते किमुनामास्यां व्याघ्रादेरपि यद्भयम्" ॥
तदोक्तं वर्णिना 'सिद्ध! सांप्रतं तु स्थितं गिरौ ॥ ५८८ ॥
निर्भयं तद्वचः श्रुत्वा सिद्धेनोक्तं द्विजन्मने ॥
'रे ममास्ते मणिः पार्श्वे तं ददामि गृहाण मे' ॥ ५८९ ॥
तदा पृष्टं वर्णिना भो! मणिः किं कार्य-साधकः ॥
तदा सिद्धेनोक्त मिति यदर्थेत्तद्ददाति सः ॥ ५९० ॥
तदाऽऽकर्ण्य द्विजेनोक्तं तर्हि तं कामये न हि ॥
ब्राह्मणोऽहं विरक्तश्च ब्रह्मचारी सदाऽनघ! ॥ ५९१ ॥
यो मे पार्श्वे स्वपित्यास्ते क्षत्रियोऽस्मै प्रदेहि तम् ॥
तदा सिद्धेनोक्तमिति प्रतिबोधय तर्हि तम् ॥ ५९२ ॥
बाढमित्यभ्युपेत्यैव वर्णिना सः प्रबोधितः ॥
उक्तञ्च भो! गृहाणेमं मणि बाहुजमद्वरं (?) ॥ ५९३ ॥
तदाऽऽकर्ण्य श्रेष्ठिनोक्तं मणिः किं कार्य-साधकः ॥
तदा सिद्धेन तस्याग्रे प्रभावः कथितो मणेः ॥ ५९४ ॥
तदाऽऽश्रुत्य श्रेष्ठिनोक्तं तर्हि गृह्णामि नो मणिम् ॥
श्रेष्ठिनोक्तं ब्रह्मचारिन्! गृह्णासि न कथं मणिम् ॥ ५९५ ॥
तदोक्तं वर्णिना श्रेष्ठिन! विरक्तोऽस्मि न संग्रही ॥
पिष्टं प्रस्थमितं नित्यं जगदीशो ददाति मे ॥ ५९६ ॥
बहुलं भवताऽपेक्ष्यं ग्रहस्थस्य कुटुम्बिनः ॥
ततो ग्राह्यो मणिश्चेति क्रिया समभिहारतः ॥ ५९७ ॥

तदोक्तं श्रेष्ठिना ब्रह्मन् ! जगदीशो ददाति यत् ॥
तुभ्यं प्रस्थमितं दाता, दशप्रस्थमितं स मे ॥ ५९८ ॥
तस्य का न्यूनता दाने भाग्या विश्वंभर प्रभोः ! ॥
त्यक्त्वा तदाश्रयं किं वा कुर्यामस्य मणेरिति" ॥ ५९९ ॥
उक्तौ जगृहतुर्नोभौ यदा सिद्धोऽगमत्तदा ॥
ततोऽवरुह्य तौ प्रातः संवृतौ स्वानुजीविभिः ॥ ६०० ॥
मध्येमार्गं विहसता वर्णिना श्रेष्ठिसंज्ञिना ॥
पुनरुक्तमहो "श्रेष्ठिन्"! कथं नात्तो मणिस्त्वया ॥ ६०१ ॥
गृहस्थोहि भवान् धुर्यः कुटुम्बी व्यवहारवान् ॥
सेवाभारः शीर्ष्णि तवेत्युचितो मणि-संग्रहः" ॥ ६०२ ॥
तदोक्तं श्रेष्ठिना हं हो ! ब्रह्मन् ! विकलभाषणः ! ॥
किंस्वाचार्याश्रयं त्यक्त्वा गृह्णीयां तन्मणेरहम् ॥ ६०३ ॥
नेत्थं वाच्यं वैष्णवेन वैष्णवस्य पुरोमम ॥
इति संवदमानौ तावयितुः स्वस्वमाश्रमम् ॥ ६०४ ॥

इतिश्रीवैष्णववार्तामालायामेकादशो मणिः ॥ ११ ॥

वार्ता १२

यदा कदाचित् स्माऽऽयान्ति वल्लभाचार्य दीक्षिताः ॥

पुरुषोत्तमदासस्य तदा मन्दिरमास्थिताः ॥ ६०५ ॥

कुर्वन्तिस्म स्वगृहवत्तस्य सेवां प्रभोर्मुदा ॥

पञ्चामृतेन विधिवत् स्नापयित्वा प्रसाद्य च ॥ ६०६ ॥

भोगं समर्पयन्तिस्म बुभुजुस्तदनन्तरम् ॥

तद्दामोदरदासेन दृष्ट्वा पृष्टं तदाद्भुतम् ॥ ६०७ ॥

"भो महाराजाधिराज ! भवद्भिः किमिदं कृतम् ॥

पञ्चामृतैः स्नापयित्वार्पितंयन्मे पुरः प्रभोः ॥ ६०८ ॥

पश्चात् तद् भुक्तमित्यत्र संशयोमे निवार्यताम् " ॥

तदाऽऽकर्ण्योक्तमाचार्यैर्भो दामोदरदासकः ॥ ६०९ ॥

यद्यप्यनेन पुरुषोत्तमदासेन दीयते ॥

श्रीकृष्णनामाज्ञया मे तथापीह मया श्रुतेः ॥ ६१० ॥

मर्यादा रक्षितव्येति लोकसंग्रह कारणात्" ॥

इत्याकर्ण्य स गंभीरमाचार्याणां वचो महत् ॥ ६११ ॥

तद्दामोदरदासोपि निःसंदेहोऽभवत् क्षणात् ॥

पुरुषोत्तमदासस्य तस्य वै श्रेष्ठिनः सती ॥ ६१२ ॥

दुहिता रुक्मिणी नाम्नी तस्यवार्ता निरूप्यते ॥

एकदा श्रीमदाचार्याः श्रीमद्गोस्वामिनस्तथा ॥ ६१३ ॥

वाराणस्यां संवसन्तो गङ्गायां स्नातुमागमन् ॥

ग्रह-पर्वणि संकीर्णे तीर्थे सन्मणिकर्णिके ॥ ६१४ ॥
तदा स्नातुमिता पूर्वं स्नापयित्वा गृहे प्रभुम् ॥
रुक्मिणी चिंतिताचार्य—गोस्वामि स्नानदर्शना ॥ ६१५ ॥
दृष्ट्वा प्रत्यभिजानन्तः श्रीगोस्वामि महाशयाः ॥
आहूयाग्रे पृष्टवन्तो गङ्गायां रुक्मिणीं स्वयम् ॥ ६१६ ॥
कियद्वर्षोत्तरं स्नातुमायातासीह पर्वणि ॥
तदोचे रुक्मिणी राजपूज्या भयां किमीहितं ॥ ६१७ ॥
गंगायां स्नातु माशासे चतुर्विंशत्समोत्तरम् ॥
श्रुत्वेति श्रीमदाचार्यसूनु गोस्वामिनस्तदा ॥ ६१८ ॥
विक्लिन्न हृदयाः प्रोचु "रहो पश्यत ! पश्यत !! ॥
सेवायां परिचर्यायां यस्याः सक्तात्मनोनिशम् ॥ ६१९ ॥
अवकाशः क्वापिनाभूद्गङ्गायां स्नातुमप्यणुः ॥
धन्या भगवदीयेयं रुक्मिणी श्रीप्रभुप्रिया ॥ ७१९ ॥ ६२० ॥
श्रीमदाचार्य- कृपयेत्युक्त्वा तुष्टाः प्रतुष्टुवुः ॥
स्नात्वाते विधिवत् पूर्वं पश्चादपि महाशयाः ॥ ६२१ ॥
समायाता गृहंस्वायं रुक्मिणी चापि सत्वरम् ॥
जनामाघोर्ज्जे वैशाखे कुर्वन्ति स्नानमन्वहं ॥ ६२२ ॥
दानं नियमतः पूजां विष्णोर्वै वैष्णवा इति ॥
आलक्ष्योक्तवती तातं रुक्मिणी पुरुषोत्तमम् ॥ ६२३ ॥
कुर्यांभोः कार्तिक स्नानं प्रातर्यद्यनु मन्यसे ॥
श्रुत्वेति सोऽपि पुरुषोत्तमोवाच उवाच ताम् ॥ ६२४ ॥

वाढं कुरु स्नानमूज्ज तद् गृहाण यदिच्छसि" ॥

तदाऽऽकर्ण्य तया प्रोक्त" मेवं चेद्दीयतामिह ॥ ६२५ ॥

यदृच्छया समाच्छद्य पिष्ट सा राज्यशर्करं ॥

तदा श्रुत्यैव पुरुषोत्तमदासेन हर्षतः ॥ ६२६ ॥

घृतं सशर्करं तस्याः स्थापितं बहुलं पुरः ॥

गोधूम चणकौ (वापि?) पिष्टभार गृहेस्थितम् ॥ ६२७

गृहीत्वा मुदिता प्रासे कार्तिक मासि सान्वहम् ॥

उत्थायापररात्रान्ते शुचिः स्नात्वाऽथ मंदिरे ॥ ६२८

प्रबोधितस्य स्वाविभो राजभोगावधि स्वयम् ॥

भोगार्थं नव्यपक्वान्न सामग्रीं विविधा मुदा ॥ ६२६

चतुरा रचयद्भक्त्यार्पयति स्म स्व हस्ततः ।

कृत्वा स्नातोत्थापनेऽपि सामग्रीमार्पयन्नवाम् ॥ ६३

नित्यं शयन पर्यन्तमित्थं नियममास्थिता ॥

कार्तिके सा तथा माघ वैशाख मासि पावने ॥ ६३१

एकदा श्रेष्ठिनो पृष्टा : भोभो रुक्मिणि ! पुत्रिके ॥

नदृश्यसे गता स्नातुं गंगा तीर्थे मया कदाचित् ॥ ६३२

कीदृक् ते कार्तिकस्नानं सत्यं कथय मा मृषा ॥

तदाऽकर्ण्योवाच सत्यं रुक्मिणी पितरं प्रति ॥ ६३३

बहिः स्नानेन तीर्थेपि कः कामो मे विशिष्यते ॥

इत्थमेव स्नामि सदा पावने कार्तिकादिके ॥ ६३४

अत्रान्तर्भोगसेवायां यत्रिः स्नाता प्रभोऽरिति ॥

श्रुत्वैतद्बहु संतुष्टः श्रेष्ठी तस्या वचो महत् ॥ ६३५

भजन्तो (?) गोस्वामिपादा इत्थ्वाकर्ह्यपि रुक्मिणीम्
आहुः स्माहो प्रीतिबद्धो वत्सलायाः कदाऽनृणः ॥ ६३६
रुक्मिण्या भवितै तस्या यशोदा वत्सलो हरिं ॥
एवं कियद्दिनान्ते सा शरीरेणाऽक्षमावदत् ॥ ६३७
" स्याः कथंचिदयं देहः पतेद्भद्रं तदा भवेत् " ॥
इत्येवं चिंतयन्त्यास्तु रुक्मिण्याः सहरीच्छया ॥ ६३८ ॥
देहः पपात निर्मुक्त इत्यशेषजनैः श्रुतम् ॥
उक्तं सद्भिः क्वचिच्छ्रीमद्गोस्वामि निकटे गतैः ॥ ६३९ ॥
महाराजा ! सेविकया भवतां श्रीप्रभुं जुषा ॥
रुक्मिण्या सा तया गंङ्गेत्याकर्ण्योक्तं तदार्यकैः ॥ ६४० ॥
नैवं वाच्यं वाच्यमित्थं गंगया सेति रुक्मिणी ॥
नित्याङ्गसङ्गिनी विष्णोः सकृदेकाङ्गसङ्गया ॥ ६४१ ॥
इतिपश्य प्रभुप्रीतिसेवाकर्मादिकान् गुणान् ॥
कीर्तयन्तिस्म गोस्वामिपादाः सा रुक्मिणीत्य भूत् ॥६४२॥

इति श्रीमद्वैष्णववार्तामालायां द्वादशो मणिः

———o———

वार्ता १३

(रामदास सारस्वत ब्राह्मणः)

अथ काश्चिद्रामदासो विप्रः सारस्वतो महान् ॥
भजातिस्म प्रभुं प्रीत्या श्रीमदाचार्यसेवकः ॥ ६४३ ॥
अस्पर्शतः स्म कुरुते सर्वकार्यं तथात्मनः ॥
चीटकानुपयुक्तस्म नीरं चास्पर्शयोगतः ॥ ६४४ ॥
एवं वै वर्तमानस्य संपन्नस्य सदा स्वतः ॥
चिरं स्थितस्य स्वगृहे द्रव्यं व्ययमितं बहु ॥ ६४५ ॥
यत्किञ्चन स्थितं गेहे तदा तस्य व्यचिंतयत् ॥
आयः स्यादवशिष्टेन यथैतेन तथा मया ॥ ६४६ ॥
कार्यमित्यन्यथा सेवा निर्वाहः संभवेत्कथम् ॥
तदोपेतस्तंतुवाय- लोकेषु द्रव्यमात्मनः ॥ ६४७ ॥
व्यवहारानुसारेण प्रादान्मूल विवृद्धये ॥
तथा कृते तत् द्रव्यस्य वृद्धिद्रव्यं समागमत् ॥ ६४८ ॥
स्वगृहे बहु लोभेन तान्तवैर्व्यवहारतः ।
पूर्वदेशे पट्टवस्त्र वायकास्तान्तवा इति ॥ ६४९ ॥
ख्यातास्तेष्वेकदा प्रोक्तं रामदासेन भो जनाः ॥
यदा मेऽभीप्सितं नेतु तद् गृहीष्येपणं स्वकम् ॥ ६५० ॥
इति भाषा बंधनेन निश्चिन्तस्य च सर्वदा ॥
रामदासस्य सेव्यं स्वं प्रभुं संसेवतो मुदा ॥ ६५१ ॥
नवनीतरतं साक्षादाचार्य विनिवेदितम् ॥

कालोऽत्यगात् बहुतरः स्वप्नेजातु प्रभुः स्वयम् ॥ ६५२ ॥
सेवकं श्रीरामदासं प्रत्यूचेऽकिमहं त्वया ॥
रचितस्तन्तुवायेषु वृध्यर्थमितभोग भुक् ॥ ६५३ ॥
तदाकर्ण्यैव चकितो रामदासो बभूवह ॥
प्रातरुत्थाय स ततस्तन्तुवायजनान्प्रेति ॥ ६५४ ॥
उवाच "भो ! मे तत् द्रव्यं समर्पयत सर्वशः" ॥
तदातैरुक्त"मेतात्किं कारणं सर्वमर्थ्यते" ॥ ६५५ ॥
तदोक्तं रामदासेन ऽ कार्यमापतितं मया ॥
बालस्य हठिनस्तस्य मनोरञ्जनमिष्यते ॥ ६५६ ॥
तदाऽऽकर्ण्यांशुतैस्तन्तु-वायकैः सर्वमाहृतम् ॥
तद् द्रव्यं स समादाय स्वगृहे संन्येवशयत् ॥ ६५७ ॥
भूयस्तथैव साविभोर्नित्यं सेवा समाचरत् ॥
एवं कृते व्ययमितं तत् द्रव्यं सर्वमेवहि ॥ ६५८ ॥
तदाऽऽलच्य स्वयं पश्चाद्रामदासः स सेवकः ॥
कस्यचिद्वणिजो हट्टादानिन्ये तद् ऋणीकृतम् ॥ ६५९ ॥
धान्यादिकं नित्यमिति संभूतं भूरिशो तदृणम् ॥
आलच्य तत्याज ततस्तदाऽऽहरण मन्यतः ॥ ६६० ॥
कृतवान् वणिजः पूर्वतनस्याप्रेप्य सञ्चरन् ॥
कदाचित्पूर्वतनेनाग्रे रामदासं प्रतीरितम् ॥ ६६१ ॥
" कथं भो ! रामदासेह हट्टाद्वस्तु न गृह्यते ॥
नचेदेवं तर्हिकुतः मदीयं दीयतामृणम् ॥ ६६२ ॥

भूयः प्रेरणा मासाद्य पीडयामास तं वणिक् ॥
तदैकदा प्रभुः साक्षाद्रामदास-वपुर्धरः ॥ ६६३ ॥
तस्यैव वणिजः प्रापद्विपणौ लिखतः स्वतः ॥
उक्त्वा "नानयस्वेति लेखपत्रं पुरोमम" ॥ ६६४ ॥
तेनानीतं लेखपत्रं दृष्ट्वा सव्यांच (?) लेखवित् ॥
सर्वं तद् द्रव्यमावेद्य भूयोमुद्राः शतंनिजाः ॥ ६६५ ॥
अधिकाअर्पयामास वणिजव्यवहारतः ॥
त्रे स्वहस्ताक्षराणि दत्वाऽऽलिख्यागमद् गृहम् ॥ ६६६ ॥
नैतद् वृतं रामदासो यथाविद्यात्तथा ऽ करोत् ॥
कदाचिद्वैष्णवाः केचित् उत्सवालोकनोद्यतम् ॥ ६६७ ॥
निमंत्रितं रामदासमानिन्युस्तेन वर्त्मना ॥
तस्यैव वणिजो ऽ भ्यर्णं वंचयित्वा दृशं शनैः ॥ ६६८ ॥
निरक्राम्यद्रामदासो देयर्णार्थिनशंकया ॥
तथायान्तं तमालोक्य दूरादेत्य स वै वणिक ॥ ६६९ ॥
उवाच " भो रामदास ? गृह्यते न ममापणात् ॥
यत्किंचिदपिवा वस्तुतदभाग्यं ममेति हि ॥ ६७० ॥
तावद्धात्मनोधिकं द्रव्यं मपि न्यस्तं यदात्मना ॥
तत्तुनेयं व्ययार्थं ते श्रुत्वागाद"न्वियामिति ॥ ६७१ ॥
मध्येमार्गं प्रचलता रामदासेन चिंतितम् ॥
मयात्वस्मिन्ननिःक्षिप्तं द्रव्यं किमपि वै क्वचित् ॥ ६७२ ॥
वदत्यवमेयं किंचिदत्र कारणमस्त्यहो ॥

ततो वैष्णव लोकानां गृहे गत्वोत्सवं परम् ॥ ६७३ ॥
विलोक्य प्राणिपातेन, मध्येमार्गं वणिक् गृहात् ॥
रामदासेनोपहूत आनेयं लेखपत्रकम् ॥ ६७४ ॥
तत्रैव वणिजा लेखपत्रं संदर्शितं पुरा ॥
उक्तंच " भो स्वाद्रनेदं हस्तेन लिखित दलम् ॥ ६७५ ॥
कथं विस्मर्यते वही पात्रिका च प्रदृश्यताम् ॥
दृष्ट्वा तद्रामदासेन श्रीशहस्ताच्चरं दलम ६७६ ॥
तूष्णीं भूतो गृहं यातः स्त्रिया अग्रे न्यवेदयत् ॥
"अधुना तु गृहे स्थास्ये कुर्वे देशान्तरंगतः ॥ ६७७ ॥
कस्यचित् सेवया जीव्यां चात्रवृत्तिं विपद्गतः" ॥
इति निश्चित्य मनसा निष्क्रीतोऽश्वोऽथ तत्कृते ॥ ६७८ ॥
सर्वशस्त्राणि वा मार्गे बबन्धोष्णीष वेष्टनम् ॥
प्रसादि नीरताम्बूलान्यादद् स्पर्शितां त्यजन् ॥ ६७९ ॥
कियद्दिनानन्तरं सोप्यस्मि ग्राममागतः ॥
श्रीमदाचार्यवर्याङ्घ्रि दर्शनार्थाय सज्जितः ॥ ६८० ॥
दण्डवत्प्रणतं दृष्ट्वा श्रीमदाचार्य दीक्षिताः ॥
तमूचु "धन्यधन्येति" रामदासं पुरः सताम् ॥ ६८१ ॥
तदाऽऽलक्ष्यरितं सद्भिः सेवकैरन्तिके स्थितैः ॥
कथमार्याः कथमथ धन्यमेव विधं ह्यमुम् ॥ ६८२ ॥
विहायास्पार्शिता धर्मं चात्रवृत्तिमुपाश्रितम ॥
तन्निशम्योक्तमाचार्यैः -- स्यंधन्योऽस्त्यतःऽधुना ॥ ६८३ ॥

यन्न प्रभुं श्रमयति धीरो नैतादृशो परः ॥
इति स्वाचार्य-वाक्यं ते निर्व्यलीकं परं महत् ॥ ६८४ ॥
निशम्य वैष्णवाः सर्वे बभूवुर्हृत संशयाः ॥
एकदा श्रीमदाचार्याः स्नातुं गङ्गां यतो गताः ॥ ६८५ ॥
तत्र मार्गे गर्तमेकं वीक्ष्य प्रोचुर्यदृच्छया ॥
अहो न पूरितो गर्त्तो मध्ये मार्गं प्रयातुकः ॥ ६८६ ॥
इत्याचार्य मुखोद्गीर्णवचः श्रवण मात्रतः ॥
वैष्णवास्तत्त्क्षणात्सर्वे तं पूरयितु मुद्यताः ॥ ६८७ ॥
भूतास्ततोमृत् क्षेपार्थं गृहीत तृण-पत्रिका ॥
रामदासस्तु तं गर्त्तं पूरयामास सज्जितः ॥ ६८८ ॥
तावदाचार्य चरणाः स्नात्वा तत्र समागताः ॥
पश्यन्तः पूरितं गर्त्तं रामदासेन तत्त्क्षणात् ॥ ६८९ ॥
तुष्यत्युद्योगिनि हरिरित्युक्त्वा तुष्टिमाप्नुवन् ॥
किञ्च श्रीरामदासस्य पुरः सङ्गति वर्जितः ॥ ६९० ॥
पत्नी प्रोवाच "भो ! स्वामिन्नन्यां परिणयेति वै ॥
बालको भविता तस्या" मित्याकर्ण्य सचाब्रवीत् ॥ ६९१ ॥
"न ममेच्छा सुतस्येति" पुनरुक्तं तदालिया ॥
"तर्हि मेतस्य वाँच्छेति श्रुत्वा भर्त्रेरितं पुनः ॥ ६९२ ॥
बाढं तवेच्छा यद्यस्ति तर्हि स्वस्य प्रभोर्मुदा ॥
नवनीतरतस्यास्य सेवां सूनोर्धिया कुरु ॥ ६९३ ॥
वस्त्रैरनेकैः पक्वान्नैराकल्पैः क्रीडनैरपि ॥

हरिं लाळय सुप्रीत्या पुत्रस्ते भवितेतिवै" ॥ ६६४ ॥
इत्याश्रुत्य तथा तुष्टो नवनीतरतस्तया ॥
कालांतरेण जनितः पुत्रो वैष्णव एव तत् ॥ ६६५ ॥
एतादृक् रामदासोभूच्छ्रीमदाचार्य सेवकः ॥
महापुरुष संबंधी महापुरुष उत्तमः ॥ ६६६ ॥

इति श्रीमद् वैष्णव मालायां चतुर्दशोमणिः ॥

——(०)——

वार्ता १५

[गदाधरदास सारस्वत ब्राह्मण कड़ा मानिकपुर]

अथ सारस्वतो विप्रो गदाधरइति श्रुतः ॥
कडारमाणिकपुरे कन्याजरव्यातिगावसत् ॥ ६९७ ॥
श्रीमदाचार्यशरणः प्रभुं मदनमोहनम् ।
बृहद्गौरस्वरूपं सं भजतिस्म सुनिर्धनः ॥ ६९८ ॥
यजमानगृहात् किंचिद्यद्यथेयात्तथार्पयत् ॥
एकदा यजमानस्य वृत्तिलभ्यमपि चयात् (?) ॥ ६९९ ॥
नागतं किमपि स्वान्नं यत् प्रसाध्य समर्पयेत् ॥
तदागदाधरो बालभोग — मार्पयदंभसा ॥ ७०० ॥
शृंगार भोगमपिच वस्त्रपूतेन तेन हि ॥
राजभोगं जले नैव तथोत्थापन भोगकम् ॥ ७०१ ॥
शायनं च तथा कृत्वा दुःखितो मनसिस्वयम् ॥
सुप्तो संतप्त हृदयो निशीथार्द्धंगते ऽ विक्रम् ॥ ७०२ ॥
तदैको यजमानोस्य द्वार्युच्चारितवान्वचः ॥
"कपाटोद्घाटनम् ब्रह्मन् ! कुरुत्व"मितिवै पुनः ॥ ७०३ ॥
श्रुतवान्स समुत्थाय कपाटोद्घाटमाकरोत् ॥
यजमानोऽददान्मुद्राश्चतस्रो युगलां वरम् ॥ ७०४ ॥
द्वादशाहे पदं देयं तस्मै धातुजपात्रिका ।
सदक्षिणां पितृश्राद्धे प्रत्तो प्रति गृहाणमे ॥ ७०५ ॥

इत्यादाय सवस्त्रादि ग्रहमध्ये न्यवेशयत् ।
मुद्रागृहीत्वा विपणौ गतः क्षीरजमिष्टकम् ॥ ७०६ ॥
सद्यः केनापि कृतिना क्रियमाणमनार्पितम् ।
आकलय्य निरक्षीणात् गृहीत्वाऽऽशुग्रहेनयत् ॥ ७०७ ॥
पुनःस्नात्वोत्थापिताय प्रभवे भोग मार्पयत् ।
तदैवाऽऽकारितेभ्यश्च वैष्णवेभ्योऽददाति तत् ॥ ७०८ ॥
प्रसादिभोगं सुस्वादुं बुभुजुस्तेप्यलौकिकम् ॥
स्वयं किमपितन्नाऽऽदत् पुनः सुप्तो निशि स्वयम् ॥ ७०९ ॥
प्रातः प्रबुद्ध उत्थाय विपणेरानय द्रुहु ।
आमान्नं घृतमिष्टादि तत्पाकं संविधाय च ॥ ७१० ॥
प्रभवे भोगमावेद्य वैष्णवां स्तानभोजयत् ।
तदासन्तो वैष्णवा स्ते प्रोचुस्तं वै गदाधरम् ॥ ७११ ॥
रात्रौ प्रसादि यन्मिष्टं त्वमादत्तं प्रभोर्हिनः ।
भुक्तं सुस्वादु च यथा न तथैतत्कृतं कथम् ॥ ७१२ ॥
इति प्रष्टः सतानूचे प्रकारं तत्प्रसादजम् ॥
पुनःक्वचिद्भोजयितुं प्रसादान्नं निजप्रभोः ॥ ७१३ ॥
आमंत्रिता वैष्णवास्ते तद्गदाधर शर्म्मणा ॥
महानसेऽखिलं दृष्ट्वा शाकपत्रमनाहृतम् ॥ ७१४ ॥
उक्तं कंचित्प्रति "ह्यास्ते कोऽप्यत्रैताद्दगप्यहो ? ॥
य आनयेच्छाकपत्र" मित्याकर्ण्याह कोप्यमुम ॥ ७१५ ॥
विषयी वैष्ण वोऽभ्ये त्य "हं" हो शाकमिहानये ॥

इत्युदीर्याऽऽ पणात्सद्यो वास्तुकं शाकमानयत् ॥ ७१६ ॥
संस्कृत्य शाकं वास्तूकं दत्तवान्स महानसे ॥
सिद्धशाकं भोगमध्ये भुक्तवान् प्रभुरर्पितम् ॥ ७१७ ॥
तत्प्रसादाप्तशाकान्नं भुक्तवंतोऽथ वैष्णवाः ॥
स्तुवन्तः स्वादु संभूतं शाकमत्वद्य सोऽब्रवीत् ॥ ७१८ ॥
धन्यरे ! धन्य विपायिन (?) शाकभोजयितुः प्रभो ॥
विदुरस्येवहृदि ते दृशो भक्ति र्दृढास्त्विति ॥ ७१९ ॥
यदाशिषा वैष्णवाश्रयः सोऽभूदिति स वै महान् ॥

इति श्रीमद् वैष्णव वार्ता- मालायां पंचदशोमणिः

वार्ता १६

(वेणीदास और माधवदास क्षत्रिय)

वेणीदासः क्षत्रियाण्यस्तथा माधवदासकः ॥
एतावास्तां भ्रातरौ हि तयोर्वार्ता ऽधुनोच्यते ॥ ७२० ॥
शाकानेता यः पुरोक्तः स वै माधवदासकः ॥
वेश्यायां विषयासक्तो वेशितायांस्वकेगृहे ॥ ७२१ ॥
निन्द्यमानो वैष्णवैः स्वैरेवं वृत्तोप्यजीगणात् ॥
नकाश्चिदप्याचार्याणामपि कर्णपथं गतः ॥ ७२२ ॥
प्रष्टोऽथ श्रीमदाचार्यैः क्वचिद् दृष्टि पथं गतः ॥
"कथंस्ववैष्णवगृहे त्वया वेश्या निवेशिता" ॥ ७२३ ॥
इत्याश्रुत्येरितं तेन "सत्यं ब्रूयां महाशयाः ॥
अतिसक्तं मनस्तस्यामिति मे सा निवेशिता" ॥ ७२४ ॥
इत्यापृष्टः स तैर्वाचा त्रिरपीत्थं न्यवेदयत् ॥
श्रुत्वेति श्रीमदाचार्यै स्तूष्णीं भूतं नचेरितम् ॥ ७२५ ॥
तदोक्तं वैष्णवै "रद्यावधिसंकोच आहितः ॥
गतोस्तमधुनाप्येऽपि हा पुरो वदतोऽस्य वः ॥ ७२६ ॥
श्रीमद्भिरास्मिन् किमपि नोक्तं वेश्यारतेपि च ॥
तदोक्तं श्रीमदाचार्यैरहो अस्य तथा मनः ॥ ७२७ ॥
प्रभोः परावर्तयितुं को विलम्बो भविष्यति ॥
इति प्रभुप्रसादाशीः परावर्तितचेतसः ॥ ७२८ ॥

तस्यमाधवदासस्य हरौ भक्तिर्दृढाऽभवेत् ॥
वेश्यानिःसारिता तेन गृहाच्छक्त्या महात्मनः ॥ ७२९ ॥
दृष्ट्वा माधवदासेन क्वचिन्मौक्तिकमालिका ॥
समीचीऽऽनापणे ऽनर्घ्या योग्येयं स्वप्रभोरिति ॥ ७३० ॥
रात्र्योक्तंस्वगृहे आतुर्वर्णादासस्य वै पुरः ॥
क्रीत्वाविगृह्यतामेषा ऽपीच्या मौक्तिकमालिका ॥ ७३१ ॥
नवनीतरसे श्रीमत्कंठादेति पुनः पुनः ।
आत्रोक्तं रति विकलः स्वगृहे यद्विभूषणम् ॥ ७३२ ॥
वस्त्रं धान्यं धनं सर्वं प्रभोरेव किमेतया ॥
अस्माकं गृहिणामात्मजन्मो द्राह्धनार्थिनाम् ॥ ७३३ ॥
कत्थमित्थं घटतेति ज्ञात्वा वंचितमीहितः ॥
ऊचे माधवदासस्त्वद्धावितोऽस्मि पृथक् गृही ॥ ७३४ ॥
इत्युक्त्वाऽभूत् पृथक् गेही विभज्य धनमात्मनः ॥
तद्व्यानिष्क्रयं वस्तु गृहीत्वा दक्षिणं गतः ॥ ७३५ ॥
तत्रवस्तु स विक्रीय व्यापारेण धनं बहु ॥
बर्द्धयामास, चानर्घ्यां काम्यां मौक्तिक मालिकाम्॥ ७३६ ॥
अप्युतमां प्राग् दृष्टाया गृहीत्वा स न्यवर्तत ॥
वर्त्मन्याप्तां नदीं तर्तुं संभृतं नावमास्थितम् ॥ ७३७ ॥
एकस्तत्कर्णधृग् भूत्वा नवनीतरतः स्वयम् ॥
करेलकुटिकां बिभ्रदुवाच बहुमापयन् ॥ ७३८ ॥
किमरे मज्जमेयं त्वां सनावं सपरिच्छदम् ॥

इतिमाधवदासस्तत् श्रुत्वोचे धैर्यमास्थितः ॥ ७३६ ॥
विवेकीति हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति ॥
तदाकर्ण्य प्रभुः प्रोचे किमरे नेहमालिका ॥ ७४० ॥
मम मुक्तामणिमयीत्याकर्ण्यो चे स तं पुनः ॥
प्रभो ते संति भूयस्यः परं धर्मो न मादृशाम् ॥ ७४१ ॥
अनुद्यमः स्वामिसेवा साधने भूषणादिना ॥
सेवकस्य तु धर्मोयऽनुद्यमो भक्ति साधने ॥ ७४२ ॥
इत्याकर्ण्य स्वात्ममतं प्रभुणानौर्न मज्जिता ॥
इतस्ततः प्लाव्यमाना स्रवन्त्यां कलिता जनैः ॥ ७४३ ॥
अलचाबाद्भिर्वाप्यं तयोः संवदमानयोः ॥
वेपमानैर्नाविरूढै राश्चर्यं चकितैस्तदा ॥ ७४४ ॥
उक्तं वताहो! धन्योऽस्य धर्मोनियमसंयमः ॥
यदयं तुष्टहृदयो हसतीति विचिन्त्य तैः ॥ ७४५ ॥
आश्रितः समहान्सर्वैः कुशली पारमभ्यगात ॥
ततः संभृतसंभारः सहितो ह्यचिरेण सः ॥ ७४६ ॥
स्वदेशमागतः प्रादान्मालां स्वाचार्यहस्तयोः ॥
दंडवत्प्रणतः पृष्टः श्रीमदाचार्यपण्डितैः ॥ ७४७ ॥
कथं रेप्लाव्यमाना नौ रक्षितेति निरूप्यताम् ॥
तदाऽऽकर्ण्य स तद् वृत्तं वर्णयामास तत्वतः ॥ ७४८ ॥
तदाश्रुत्योचुराचार्या वैष्णवानां पुरः सताम् ॥
सोयं माधवदासोऽत्र प्रत्याभिज्ञायतां बुधाः ॥ ७४९ ॥

॥ इति श्रीवैष्णववार्तामालायां षोडशो मणिः ॥

वार्ता १७

[अम्मा क्षत्राणी, कड़ा माणिकपुर]

कड़ार माणिकपुरे वासिन्येका महत्तया ॥
'अम्बा' नाम्नी क्षत्रियाणी श्रीमदाचार्यसेविका ॥ ७५० ॥
तस्या हरिं जुषः सूनुरादिमः कालतोमृतः ॥
इति दुखेनातुरापि कुर्वन्ति हरिसेवनम् ॥ ७५१ ॥
निनायकालं क्लेशेन प्रातः स्नाता सदाशिशुम् ॥
कृष्णं प्रबुद्धं प्रसाद्य राजभोगं समर्प्य च ॥ ७५२ ॥
कृत्वानवसरं नित्यं बहिः स्थाने स्म रोदिति ॥
तत् श्रुत्वा बालकः कृष्णोऽभ्यन्तरेखेदमाप्तवान् ॥ ७५३ ॥
इत्थं नित्यं संरुदन्त्या द्वितीयोऽपि सुतो मृतः ॥
तद्वद्रोदीद्राजभोगोत्तरं पूर्ववदातुरा ॥ ७५४ ॥
प्रभुश्चासहमानस्तामुपेत्यावारयच्छिशुः ॥
अम्बमाक्रन्द खिन्नोऽहं भवामीत्यब्रुवन्मुहुः ॥ ७५५ ॥
तथापिरोदमानां 'ता' तथा वीक्ष्य सर्व प्रभुः ॥
श्रीमदाचार्यसूनुश्रीगोस्वाम्यग्रे न्यवेदयत् ॥ ७५६ ।
अहो अम्बा विलपती त्यहमत्यन्तदुःखितः ॥
भवामि मा चिरं प्राज्ञा वर्जनीया प्रयत्नतः ॥ ७५७ ॥
तदाकर्ण्याथ गोस्वामिपादैराप्तैः समाहिता ॥
"अम्बमाक्रंद बालोयं श्रीकृष्णः स्वपतीति वै" ॥ ७५८ ॥

तदभिप्रेत्य साऽऽक्रंदादमंदात्सन्यवर्तत ॥ ७५६ ॥
अपुत्रावापुत्रमेव कृष्णमेकममन्यत ॥
नित्यं सेवार्थमुद्बुद्ध्वा प्रातः स्नाता स्वहस्तयोः ॥
सुगंधसारमालिप्य मन्दिरे जुजुषे प्रभुं ॥ ७६० ॥
मुदोस्याथ स्वहस्ताभ्यां प्रसाधित मिति क्वचित् ॥
अम्बा पात्रेऽर्प ।यित्वाऽऽग्रेपयस्तस्य गताबहिः ॥ ७६१ ॥
तस्यास्तत्समये प्राप्ता गोस्वामिप्रभवो गृहे ॥
आवार्यगतयस्तेऽन्तरपवार्य पटावृतिं ॥ ७६२ ॥
ददृशुस्तं बालकृष्णं पिवन्तं तत्पयोमुदा ॥
तावत्ततः परावृताः कृत्वा जवनिकां पुनः ॥ ७६३ ॥
इत्था लद्ध्याम्बया पृष्टा कस्माद्स्मान्महत्तमाः ॥
परावृता इति श्रुत्वाप्रोक्तं गोस्वामिभिस्तदा । ७६४ ॥
दृष्टः पयः पिवदन्नम्बे ! मयासेव्यस्तव प्रभुः ॥
तदाम्बयोक्तं भो बालः कृष्ण एष विलक्षणः ॥ ७६५ ॥
इति न ज्ञायते किं वा दृश्यतामिति ते पुनः ॥
दृष्ट्वाबालं तथा हृष्टाः परावृत्ता गृहं प्रति ॥ ७६६ ॥
अम्बां प्रत्युक्तवन्तश्च "हेम्बः वस्तदिदं पयः ॥
गृहे संप्रेषणी यंम" इत्या श्रुत्येरितं तया ॥ ७६७ ॥
" अत्रोपि भो भवानेव पाता वातत्र पीयताम् " ॥
इत्यावेदितहार्दा ते प्राप्ता निजगृहे मुदा ॥ ७६८ ॥

अथापितत्पयः सर्वं प्रेषयामास तद् गृहे ॥
पूर्णोभयस्वरूपज्ञा महापुरुषयोगतः ॥ ७६९ ॥
जनन्या इव यस्यावै वत्सलायाः प्रभुर्भुवन ॥
स्वेष्टमर्थयतीत्यासीत्साऽऽनन्दभाजनम् ॥ ७७० ॥

इति श्रीमद् वैष्णववार्ता मालायां सप्तदश वार्तामणिः

वार्ता १८

(हरिवंश सारस्वत ब्राह्मण काशी)

हरिवंशो द्विजः सारस्वतः स्वाचार्य-सेवकः ॥
काशीवासी पाठकोऽभूत्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥ ७७१ ॥
सकदाचित् पत्तनाख्ये देशे व्यापृतये गतः ॥
तत्रत्यकोटपालेन प्रीतिमाववसच्चिरम् ॥ ७७२ ॥
कोट पालोऽस्य स गुणैः सत्यवादादिभिर्वशः ॥
स्वान्तर्व्यचिन्तयच्चैतद्यदयं निःस्पृहः सुहृत् ॥ ७७३ ॥
किञ्चिदप्यर्थयेन्मत्तस्तद्ददामि विचारयन् ॥
इत्येवं पत्तने सोऽपि कोटवालेन सम्मतः ॥ ७७४ ॥
चक्रे व्यापारममलं किमप्यर्थञ्च नार्थयत् ॥
मास फाल्गुनके पूर्वं दोलोत्सवदिन द्वयात् ॥ ७७५ ॥
हरिवंशस्य पुरतो व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥
स्वप्ने प्रोक्तं स्वसेव्येन संबोध्य प्रभुणा निशि ॥ ७७६ ॥
कथं रे ! नैष्यसि गृहे न मान्दोलयिष्यसि ॥
इत्युक्तमात्रे प्रोद्बुद्धो हृदि चिंतितवान्सुधीः ॥ ७७७ ॥
तदैवोत्थाय सदनं कोटपालस्य सोऽगमत् ॥
दृष्ट्वा समागतं कोटपालो दूरात् समुत्सुकः ॥ ७७८
अवदत्किमहो मित्र प्राप्तः प्रार्थयितुमवान् ॥
तदोमित्यब्रवीत्सोऽपि नेयो ऽहं मित्र ! सत्वरम् ॥ ७७९ ॥

आश्वयां दिन द्वयाभ्यंतरीतिश्रुत्वा ऽभ्युपोषिनान् ॥
बाढमित्यश्व आरोप्य व्यसृजत्तं सहानुगैः ॥ ७८० ॥
तदाज्ञया प्रतिग्रामं सवर्त्मनि समारुहन् ॥
श्रान्तं श्रान्तं विसृज्याश्वं निशि गेहं समागमत् ॥ ७८१ ॥
प्रातः स्नातोऽथ दोलार्थं सामग्रीं संनिधाप्य सः ॥
प्रभुमान्दोलयामास दोलारूढं मुदान्वितः ॥ ७८२ ॥
कियद्दिनावधि गृहे स उषित्वा गृही पुनः ॥
पत्तनाख्यं पुरमगात् व्यापार - परि चिंतया ॥ ७८३ ॥
वतमागतं समालक्ष्य कोट पालेन तेन वै ॥
पृष्टं भोऽमित्र ! किं शीघ्रं समभूते चिकीर्षितम् ॥ ७८४ ॥
यदर्थं गतवानाशु मत्सकाशाद्दिनद्वयम् ॥
तदोक्तं हरिवंशेन "किमप्येताद्दगेव भोः ॥ ७८५ ॥
अवाच्यं समभूत्कार्यं यदर्थं गतवान्ह्य मे ॥
इत्युक्तो परतं तं वै कोटपालस्तथा मुदा ॥ ७८६ ॥
प्रीणयामास सवतं सोपितं स्वगुणैः सदा ॥
परं स्वमार्गीय वृत्तान्तं ना वेदयदमुष्य सः ॥ ७८७ ॥
श्रीमदाचार्यशय-रीतिज्ञोऽनधिकारतः ॥ ७८७½ ॥

॥ इति श्रीमद्वैष्णववार्तामालायामष्टादशोमणिः ॥

तत्र श्रीमथुरानाथ प्रभोः सेवां समाचरत् ॥
स्वचतुर्विंशतकं द्रव्यजं भोगमार्पयत् ॥ ७९७ ॥
तद्भोगीयप्रसादान्नं वैष्णवान्समभोजयत् ॥
अभावे वैष्णवानां स गवामग्रे न्यवेदयत् ॥ ७९८ ॥
वानराणामग्रतश्च महावननिवासिनाम् ।
परंतद्देव भोगान्नमथात् किञ्चिदपि स्वयं ॥ ७९९ ॥
नादाद् गोविन्ददासाख्यः श्रोताधर्मपरायणः ॥
किंतु कृत्वा पृथग् लीटीः समर्प्याश्नातिनित्यशः ॥ ८०० ॥
एवं संसेवतस्तस्य धनं सर्वं व्ययं गतम् ॥
ततोगतः श्रीनाथस्य गोवर्धनगिरौ प्रभोः ॥ ८०१ ॥
परिचर्यां चकारोच्चैर्मध्यान्हे पात्रमार्जनीम् ॥
रात्रेश्च पश्चिमे यामे साधिके स समुत्थितः ॥ ८०२ ॥
याति स्म नित्यं मथुरां पृष्टबद्धकमण्डलुः ॥
विश्रांतितीर्थतः स्नात्वा देवार्थं भृतभाजनम् ॥ ८ ३ ॥
आगत्य भोगतो भ्येति पुनः सेवार्थमात्मनः ।
विधाय दर्शनं तस्य भूयः पात्राण्यमार्जयत् ॥ ८०४ ॥
महानसभुवं चापि मृदालिप्य पुनः पुनः ॥
परिचर्यामात्मनीनां प्रभोरेव विधाय सः ॥ ८०५ ॥
गिरेरधोऽवतरति तिलकं संनिवर्त्य सन् ॥
तुलसीकाष्ठजां मालां मुक्तार्थं निजकण्ठतः ॥ ८०६ ॥
गिरेः पार्श्वग्राममध्ये भिक्षार्थी याति नित्यदा ॥

आममन्नं स भिक्षित्वा चतुः पंचक शेटकम् ॥ ८०७ ॥
आहारमात्रं मिलितमायाति स्म पुनर्गृहम् ॥
पिष्टं विधाय तेनांगारारोटिकाः लीटिका कृता ॥ ८०८ ॥
प्राज्याः पक्वा दर्शयित्वालये श्रीशध्वजाग्रतः ॥
चरणामृतमाधाय कश्चिदन्तः प्रसादिताः ॥ ८०९ ॥
भुंक्ते स्म गोविन्ददास इति निर्वाहमाचरत् ॥
एवं निर्वाहतः सेवां कुर्वतो चिन्तयत् प्रभुः ॥ ८१० ॥
तस्य गोवर्धनाधीशो भावपत्रं समञ्जसं ॥
पुरोवदत्स्वाचार्याणामरिल्लग्रामवर्तिनाम् ॥ ८११ ॥
अहो मां खेदयत्येको भवदीयोऽत्रसेवकः ॥
तदाकर्ण्याखिन्नतः श्रीवल्लभाचार्यदीक्षिताः ॥ ८१२ ॥
चलिता नातिचिरतो विश्रान्ता अग्रिमे पुरे ॥
सत्कृता वैष्णवैः प्रत्युद्गमनासनवासनैः ॥ ८१३ ॥
तदैव तत्र स्वाचार्याः प्रष्टवन्तः समाश्रितान् ॥
कथं रे! वैष्णवाः केन रोषितोऽस्मत्प्रभुर्गिरौ ॥ ८१४ ॥
तन्निशम्याश्रितैरुक्तं न नो विदितमण्वपि ॥
तदाकलय्य स्वाचार्या ततो मधुपुरीमिताः ॥ ८१५ ॥
तत्रस्था प्रष्टवन्तोऽपिनाप्नुवान्निश्चयं ततः ॥
चलिता गोपालपुरं श्रीद्वारं प्राविशँस्तदा ॥ ८१६ ॥
स्नात्वा श्रीवल्लभाचार्यारूढा गोवर्धनोपरि ॥
स्पृष्ट्वा कपोलौ श्रीशस्य स्वपाणिभ्यां तमब्रुवन् ॥ ८१७ ॥

गोवर्धनाधीश तातः ! विमनस्कोसि हा कुतः ? ॥
तदा गोवर्द्धनभृता प्रोक्तं श्रीशेन खिद्यता ॥ ८१८ ॥
"तात श्रीवल्लभाचार्याः शृणुतेदमिहान्वहम् ॥
भवदीयः कश्चिदेको मां खेदयति सेवकः ॥ ८१९ ॥
अथाप्रच्छंस्तदा श्रुत्वाचार्या आहूय सेवकान् ॥
प्रत्येकं वदत स्वं स्वं सेवाकर्मेह सेवकाः ॥ ८२० ॥
इत्यापृष्टा स्तदा प्रोचुः सेवकाः स्वस्वकर्म तत् ॥
प्रसादान्नग्रहान्तं च तथा गोविन्ददासकः ॥ ८२१ ॥
तदाचार्यैः क्षमाचार्यैर्विज्ञातं यदनेन हि ॥
प्रभुर्गोविन्ददासेन रोषितो नात्र संशयः ॥ ८२२ ॥
प्रोक्तं भोस्ते प्रभोर्भाग्यं प्रसादान्नं महानसात्" ॥
तदोक्तं तेन भोः प्राज्ञा देवस्वं नाश्नुयामिति ॥ ८२३ ॥
तदभिज्ञायोक्तमार्यै भोज्यं न स्तन्महानसात् ॥
तत्राप्युक्तं भो ! गुरवो गुरुस्वं कथमश्नुयाम् ॥ ८२४ ॥
इत्याकर्ण्येतिनिर्बन्धवचनं तस्य ते तदा ॥
अभुवं स्तदिमां सेवामपि त्यज्य महामते ! ॥ ८२५ ॥
इति श्रुत्वाऽत्यजत्सेवां क्षत्रियः सोप्यहं कृती ॥
तदैव गोविन्ददासोऽप्यगमन्मथुरां पुरीम् ॥ ८२६ ॥
केशवालय–सेवायां अध्यक्षत्वं समग्रहीत् ॥
मितद्रव्यानुरोधेन पुराध्यक्षपठानतः ॥ ८२७ ॥
सेवां केशवदेवस्य कुर्वन्नास्त स्म चित्रधा ॥